

संक्षिप्त ब्रह्मपुराण

नैमिषारण्यमें सूतजीका आगमन, पुराणका आरम्भ तथा सृष्टिका वर्णन

यस्मात्सर्वमिदं प्रपञ्चरहितं भावाजगज्ज्योते
यस्मिन्निष्ठति यति चान्तसमये कल्पपुनरुत्पत्तेः पुनः ।
यं ध्यात्वा मुनयः प्रपञ्चरहितं किन्दन्ति योजं शुभं
तं वन्दे पुरुषोत्तमात्ममयत्वं नित्यं विभुं निष्ठलम् ॥
ये ध्यायन्ति बुधाः समाधिस्थसमये तृप्तं विचरन्निभं
निस्थानन्दमयं प्रसन्नमयत्वं सर्वेश्वरं निर्गुणम् ।
व्यक्ताव्यक्तपरं प्रपञ्चरहितं ध्यायन्कल्पमयं विभुं
तं संसारविनाशहेतुमज्जरं वन्दे हरिं मुक्तिदम् ॥*

पूर्वकालकी बात है, परम पुण्यमय पवित्र
नैमिषारण्यक्षेत्र बड़ा मनोहर जान पड़ता था।
वहाँ बहुत-से मुनि एकत्रित हुए थे, भौतिक-
भौतिके पुष्प उस स्थानकी शोभा बढ़ा रहे थे।
पीपल, पारिजात, चन्दन, अगर, गुस्ताब तथा
चम्पा आदि अन्य बहुत-से वृक्ष उसकी शोभा-
वृद्धिमें सहायक हो रहे थे। भौतिक-भौतिके
पक्षी, नाना प्रकारके मृगोंका झुंड, अनेक पवित्र
जलाशय तथा बहुत-सी वायलियाँ उस वनको
विभूषित कर रही थीं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य,
शूद्र तथा अन्य जातिके लोग भी वहाँ उपस्थित
थे। ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी—

सभी जुटे हुए थे। झुंड-को-झुंड गाँवें उस
वनकी शोभा बढ़ा रही थीं। नैमिषारण्यवासो
मुनियोंका द्वादशवार्षिक (बारह वर्षोंतक चलू
रहनेवाला) यज्ञ आरम्भ था। जौ, गेहूँ, चना,
उड़द, मूँग और तिल आदि पवित्र अन्नोंसे
यज्ञमण्डप सुशोभित था। वहाँ होमकुण्डमें
अग्निदेव प्रज्वलित थे और आहुतियाँ डाली जा
रही थीं। उस महायज्ञमें सम्मिलित होनेके
लिये बहुत-से मुनि और ब्राह्मण अन्य स्थानोंसे
आये। स्थानीय महर्षियोंने उन सबका यथायोग्य
सत्कार किया। ऋषिजोंसहित वे सब लोग
जब आरामसे बैठ गये, तब परम बुद्धिमान्
लोमहर्षण सूतजी वहाँ पधारे। उन्हें देखकर
मुनिवरोंको बड़ी प्रसन्नता हुई, उन सबने
उनका यथावत् सत्कार किया। सूतजी भी उनके
प्रति अदरका भाव प्रकट करके एक श्रेष्ठ
आसनपर विराजमान हुए। उस समय सब
ब्राह्मण सूतजीके साथ वार्तालाप करने लगे।
कलचीतके अन्तमें सबने व्यस-शिष्य लोमहर्षणजीसे
अपना संदेह पूछा।

* प्रत्येक कल्प और अनुकल्पमें विस्तारपूर्वक रचा हुआ यह सप्रसन्न यथामय जगत् जिनसे प्रकट होता, जिनमें
स्थित रहता और अन्तकालमें जिनके भीतर पुनः स्तन हो जाता है, जो इस दृश्य-प्रपञ्चसे सर्वथा पृथक् है, जिनका
ध्यान करके मुनिजन समाप्त मोक्षपद प्राप्त कर लेते हैं, उन त्रिप, निर्मल, निष्ठल तथा व्यापक भगवान् पुरुषोत्तम
(जगन्नाथजी)—को मैं प्रणाम करता हूँ। जो शुद्ध, आकाशके समान नित्य, नित्यानन्दमय, सदा प्रसन्न, निर्मल, सबके
स्वामी, निर्गुण, व्यक्त और अव्यक्तसे परे, प्रपञ्चसे रहित, एकमात्र ध्यानमें ही अनुमन करनेयोग्य तथा व्यापक है,
समाधिकालमें विद्वान् पुरुष इसी रूपमें जिनका ध्यान करते हैं, जो संसारकी उत्पत्ति और विनाशके एकमात्र कारण
हैं, जरा-अवस्था जिनका स्पर्श भी नहीं कर सकते तथा जो मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं, उन भगवान् श्रीहरिको मैं
वन्दना करता हूँ।

मुनि बोले—सद्भुतिरोमने! आप पुराण, तन्त्र, छहों शास्त्र, इतिहास तथा देवताओं और दैत्यों के जन्म-मर्त्य एवं चरित्र—सब जानते हैं। वेद, शास्त्र, पुराण, महाभारत तथा मोक्षसत्त्वमें कोई भी बात ऐसी नहीं है, जो आपको ज्ञात न हो।



महामते! आप सर्वज्ञ हैं, अतः हम आपसे कुछ प्रश्नोंका उत्तर सुनना चाहते हैं; बताइये, यह समस्त जगत् कैसे उत्पन्न हुआ? भविष्यमें इसकी क्या दशा होगी? स्वप्न-जड़मय संसार सृष्टिसे पहले कहाँ लीन था और फिर कहाँ लीन होगा?

लोकहर्षणजीने कहा—जो निर्बिकार, सुदृढ, नित्य, परमात्मा, सदा एकरूप और सर्वविजयी हैं, उन भगवान् विष्णुको नमस्कार है। जो ब्रह्म, विष्णु और शिवरूपसे जगत्की उत्पत्ति, पालन तथा संहार करनेवाले हैं, जो भक्तोंको संसार-सागरसे तारनेवाले हैं, उन भगवान्को प्रणाम है। जो एक होकर भी अनेक रूप धारण करते हैं, स्थूल और सूक्ष्म तब जिनके ही स्वरूप हैं, जो अव्यक्त (कारण) और व्यक्त (कार्य)—रूप

तब मोक्षके हेतु हैं, उन भगवान् विष्णुको नमस्कार है। जो जगत्की उत्पत्ति, पालन और संहार करनेवाले हैं, जरा और मृत्यु जिनका स्पर्श नहीं करता, जो सबके मूल कारण हैं, उन परमात्मा विष्णुको नमस्कार है। जो इस विश्वके आधार हैं, अल्पसूक्ष्मसे भी सूक्ष्म हैं, सब प्राणियोंके भीतर विराजमान हैं, शर और अशर पुरुषसे उत्तम तथा अधिमासी हैं, उन भगवान् विष्णुको प्रणाम करता हूँ। जो वास्तवमें असंयत निर्मल ज्ञानस्वरूप हैं, किन्तु अज्ञानवश वाया पदार्थोंके रूपमें प्रतीत हो रहे हैं, जो विश्वकी सृष्टि और पालनमें समर्थ एवं इसका संहार करनेवाले हैं, सर्वज्ञ हैं, जगत्के अधीश्वर हैं, जिनके जन्म और विनाश नहीं होते, जो अमृत, आदि, अल्पसूक्ष्म तथा विशेश्वर हैं, उभय ग्रीहणिको तथा ब्रह्मा आदि देवताओंको भी प्रणाम करता हूँ। तत्पश्चात् इतिहास-पुराणोंके ज्ञाता, वेद-वेदाङ्गोंके परब्रह्म विद्वान्, सम्पूर्ण शास्त्रोंके सत्त्व पशुशतानन्दन भगवान् व्यसकरो, जो मेरी गुरुदेव हैं, प्रणाम करके मैं वेदके मुख्य माननीय पुराणका वर्णन करूँगा। पूर्वकालमें दक्ष आदि ऋषि मुनियोंके चूनेपर कमलकोटि भगवान् ब्रह्मजीने जो सुनायी थी, वही पावनश्रुति की कथा मैं इस समय कहूँगा। मेरी यह कथा बहुत ही विचित्र और अनेक अर्थवाली होगी। इसमें बुक्तियोंके अर्थका विस्तार होगा। जो इस कथाको सदा अपने हृदयमें धारण करेगा अथवा निरन्तर सुनेगा, वह अपनी पति-परम्पराको कवच रखते हुए स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होगा।

जो नित्य, सदसत्स्वरूप तथा कारणभूत अमृत प्रकृति है, उसीको प्रधान कहते हैं। उसीसे पुरुषने इस विश्वका निर्माण किया है। मुनिवरो! अभिज्ञतेजस्वी ब्रह्माजीको ही पुरुष समझो। वे समस्त प्राणियोंकी सृष्टि करनेवाले

तथा भगवान् नारायणके आश्रित हैं। प्रकृतिसे महत्त्व, महत्त्वसे अहङ्कार तथा अहङ्कारसे सब सूक्ष्म भूत उत्पन्न हुए। भूतोंके जो भेद हैं, वे भी उन सूक्ष्म भूतोंसे ही प्रकट हुए हैं। यह सनतन सर्ग है। तदनन्तर स्वयम्भू भगवान् नारायणने जना प्रकारकी प्रजा उत्पन्न करनेकी इच्छासे सबसे पहले जलकी ही सृष्टि की। फिर जलमें अपनी शक्तिका आधान किया। जिसका दूसरा नाम 'नार' है, क्योंकि उसकी उत्पत्ति नगवान् नरसे हुई है। यह जल पूर्वजलमें भगवान्का अपन (निवासस्थान) हुआ, इसलिये वे नारायण कहलाते हैं। भगवान्ने जो जलमें अपनी शक्तिका आधान किया, उससे एक बहुत विशाल सुवर्णमय अण्ड प्रकट हुआ। उसीमें स्वयम्भू ब्रह्माजी उत्पन्न हुए—ऐसा सुना जाता है। सुवर्णके समान कान्तिमान् भगवान् ब्रह्मने एक वर्षतक उस अण्डमें निवास करके उसके दो टुकड़े कर दिये। फिर एक टुकड़ेसे भूलोक बनाया और दूसरेसे भूलोक। उन दोनोंके बीचमें आकाश रखा। जलके ऊपर फैली हुई पृथ्वीको स्थापित किया। फिर दसों दिशाएँ निश्चित कीं। साथ ही काल, मय, वाणी, काम, क्रोध और रतिकी सृष्टि की। इन भावोंके अनुरूप सृष्टि करनेकी इच्छासे ब्रह्माजीने सात प्रजापतियोंको अपने मनसे उत्पन्न किया। उनके नाम इस प्रकार हैं—मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुत्स, क्रतु तथा वसिष्ठ। पुराणोंमें ये सात ब्रह्मा निश्चित किये गये हैं।

तत्पश्चात् ब्रह्माजीने अपने रोषसे रुद्रको प्रकट किया। फिर पूर्वजोंके भी पूर्वज सनत्कुमारजीको उत्पन्न किया। इन्हीं सात महर्षियोंसे समस्त प्रजा तथा ग्यारह रुद्रोंका प्रादुर्भाव हुआ। उक्त सात महर्षियोंके सात बड़े-बड़े दिव्य वंश हैं, देखकर भी इन्हींके अन्तर्गत हैं। उक्त सातों वंशोंके लोग

कर्मनिष्ठ एवं संतानवान् हैं। उन वंशोंको बड़े-बड़े ऋषियोंने सुरोभित किया है। इसके बाद ब्रह्माजीने विष्णु, कृष्ण, मेघ, रोहित, इन्द्रधनुष, पक्षी तथा मेघोंकी सृष्टि की। फिर यज्ञोंकी सिद्धिके लिये उन्होंने ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद प्रकट किये। तदनन्तर साध्य देवताओंकी उत्पत्ति बताया जाती है। छोटे-बड़े सभी भूत भगवान् ब्रह्माके अङ्गोंसे उत्पन्न हुए हैं। इस प्रकार प्रजाकी सृष्टि करते रहनेपर भी जब प्रजाकी वृद्धि नहीं हुई, तब प्रजापति अपने शरीरके दो भाग करके आधेसे पुरुष और आधेसे स्त्री हो गये। पुरुषका नाम मनु हुआ। इन्हींके नामपर 'मन्वन्तर' काल माना गया है। स्त्री अयोनिजा शतरूपा थी, जो मनुको पत्नीरूपमें प्राप्त हुई। उसने दस हजार वर्षोंतक अत्यन्त दुष्कर तपस्या करके परम



तेजस्वी पुरुषको पतिरूपमें प्राप्त किया। वे ही पुत्र स्वयम्भुव मनु कहे गये हैं (वैराज पुरुष भी उन्हींका नाम है)। उनका 'मन्वन्तर-काल' इकहत्तर चतुर्युगीका बताया जाता है।

सतरूपाने वैराज पुरुषके अंशसे वीर, प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक पुत्र उत्पन्न किये। वीरसे काम्या नामक श्रेष्ठ कन्या उत्पन्न हुई जो कर्दम प्रजापतिकी धर्मपत्नी हुई। काम्याके गर्भसे चार पुत्र हुए—सम्राट, कुक्षि, विराट और प्रभु। प्रजापति अग्निने राजा उत्तानपादको गोद से लिया। प्रजापति उत्तानपादने अपनी पत्नी सुनुताके गर्भसे हव, कीर्तिमान्, आयुष्मान् तथा वसु—ये चार पुत्र उत्पन्न किये। भुवसे उनकी पत्नी सम्मुने स्निहि और भव्य—इन दो पुत्रोंको जन्म दिया। स्निहिके उसकी पत्नी सुछायाके गर्भसे रिपु, रिपुव्रध, वीर, वृकल और वृकतेजा—ये पाँच पुत्र उत्पन्न हुए। रिपुसे बृहतीने चक्षु नामके तेजस्वी पुत्रको जन्म दिया। चक्षुके उनकी पत्नी पुष्करिणीसे, जो महात्मा प्रजापति वीरगङ्गा कन्या थी, चाकुष मनु उत्पन्न हुए। चाकुष मनुसे वैराज प्रजापतिकी कन्या गङ्गलाके गर्भसे दस महाबली पुत्र हुए, जिनके नाम इस प्रकार हैं—कुत्स, पुरु, सताघ्न, तपस्वी, सत्यवाक्, कवि, अग्निधुत, अतिरात्र, सुसुम्न

तथा अभिमन्यु। पुरुसे आग्नेयीने अङ्ग, सुमना, स्वाति, क्रतु, अङ्गिरा तथा मय—ये छः पुत्र उत्पन्न किये। अङ्गसे सुनीधाने वेन नामक एक पुत्र पैदा किया। वेनके अत्याचारसे ऋषियोंको बड़ा क्रोध हुआ; अतः प्रजाजनोंकी रक्षाके लिये उन्होंने उसके सहिते हाथका मन्थन किया, उससे महाराज पृथु प्रकट हुए। उन्हें देखकर मुनियोंने कहा—‘ये महातेजस्वी नरेश प्रजाको प्रसन्न रखेंगे तथा महान् पराके भागी होंगे।’ वेनकुमार पृथु धनुष और कवच धारण किये अग्निके समान तेजस्वीरूपमें प्रकट हुए थे। उन्होंने इस पृथ्वीका पालन किया। राजसूय-यज्ञके लिये अधिष्ठित होनेवाले राजाओंमें वे सर्वप्रथम थे। उनसे ही स्तुति-गानमें निपुण स्तु और मागध प्रकट हुए। उन्होंने इस पृथ्वीसे सब प्रकारके अनाज जुड़े थे। प्रजाकी जीविका वाले, इसी उद्देश्यसे उन्होंने देवताओं, ऋषियों, पितरों, दानवों, गन्धर्वों तथा अप्सराओं आदिके साथ पृथ्वीका दोहन किया था।

राजा पृथुका चरित्र

मुनियोंने कहा—लोमहर्षणजी। पृथुके जन्मकी कथा विस्तारपूर्वक कहिये। उन महात्माने इस पृथ्वीका किस प्रकार दोहन किया था?

लोमहर्षणजी बोले—द्विजवरों! मैं वेनकुमार पृथुकी कथा विस्तारके साथ सुनाता हूँ। आप लोग एकअचिन्त होकर सुनें। ब्राह्मणों! जो पवित्र नहीं रहता, जिसका इन्द्र छोटा है, जो अपने शासनमें नहीं है, जो व्रतका फलन नहीं करता तथा जो कृतघ्न और अहितकारी है—ऐसे पुरुषको मैं यह प्रसङ्ग नहीं सुना सकता। यह स्वर्ग देनेवाला, यश और आयुकी वृद्धि करनेवाला, परम धन्य, वेदोंके

तुल्य, माननीय तथा गूढ़ रहस्य है। ऋषियोंने जैसा कहा है, वह सब मैं यों-का-त्यो सुना रहा हूँ; सुनो। जो प्रतिदिन ब्राह्मणोंको नमस्कार करके वेनकुमार पृथुके चरित्रका विस्तारपूर्वक कीर्तन करता है, उसे ‘अमुक कर्म मैंने किया और अमुक नहीं किया’—इस बातका स्मरण नहीं होता। पूर्वकालकी बात है, अत्रि-कुलमें उत्पन्न प्रजापति अङ्ग बड़े धर्मरत्न और धर्मके रक्षक थे। वे अग्निके समान ही तेजस्वी थे। उनका पुत्र वेन था, जो धर्मके तत्त्वको बिलकुल नहीं समझता था। उसका जन्म मृत्युकन्या सुनीधाके गर्भसे हुआ था।

अपने नानाके स्वभावदोषके कारण वह धर्मको पोछे रखकर काम और लोभमें प्रवृत्त हो गया। उसने धर्मकी मर्यादा भङ्ग कर दी और वैदिक धर्मोंका उल्लङ्घन करके वह अधर्ममें तत्पर हो गया। विनाशकाल उपस्थित होनेके कारण उसने यह क्रूर प्रतिज्ञा कर ली थी कि 'किसीको ब्रह्म और होम नहीं करने दिया जाएगा। कबन करने योग्य, ब्रह्म करनेवाला तथा ब्रह्म भी मैं ही हूँ। मेरे ही लिये ब्रह्म करना चाहिये। मेरे ही उद्देश्यसे हवन होना चाहिये।' इस प्रकार मर्यादाका उल्लङ्घन करके सब कुछ ग्रहण करनेवाले अयोग्य वेनसे मरोधि आदि सब महाविघ्नोंने कहा—'वेन! हम अनेक वर्षोंके लिये यज्ञकी दीक्षा ग्रहण करनेवाले हैं। तुम अधर्म न करो। यह ब्रह्म आदि कार्य सनातन धर्म है।'।

महाविघ्नोंकी ये कहते देख छोटी बुढ़ियाले



वेनने हँसकर कहा—'अरे! मेरे सिवा दूसरा कौन धर्मका लक्ष्य है। मैं किसको बात सुनूँ। पित्र, पराक्रम, तपस्या और सत्यके द्वारा मेरी सम्पन्नता

करनेवाला इस भूतलपर कौन है? मैं ही सम्पूर्ण प्राणियोंकी और विशेषतः सब धर्मोंकी उत्पत्तिका कारण हूँ। तुम सब लोग मूर्ख और अचेत हो, इसलिये मुझे नहीं जानते। यदि मैं चाहूँ तो इस वृक्षोंको भस्म कर दूँ, जलमें बहा दूँ या भूलोक तथा घुलोकको भी रैज्य डालूँ। इसमें तनिक भी अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है।' जब महाविघ्न वेनको मोह और महत्कारसे किसी तरह हटा न सके, तब उन्हें बड़ा क्रोध हुआ। उन महात्मियोंने महाबली वेनको पकड़कर बाँध लिया। उस समय वह बहुत उछल-कूद मचा रहा था। महर्षि क्रुपित हो ये ही, वेनकी चारों ओरका मन्थन करने लगे। इससे एक बबल रंगका पुरुष उत्पन्न हुआ, जो बहुत ही भटा था। वह भयभीत हो हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। उसे आकुर देव अग्निने कहा—'निनीद (बैठ जा)। इससे वह निरादरताका प्रवर्तक हुआ और वेनके फपसे उत्पन्न हुए भीवरोंकी सृष्टि करने लगा। तत्पश्चात् महात्म्योंने पुनः अरणीको भीति वेनकी



दाहिनी भुजाका मन्थन किया। उससे अग्रिके समान तेजस्वी पृथुका प्रादुर्भाव हुआ। वे भयानक टंकुर करनेवाले आजगव नामक धनुष, दिव्य बाण तथा रक्षार्थ कवच धारण करने प्रकट हुए थे। उनके उत्पन्न होनेपर समस्त प्राणी बड़े प्रसन्न हुए और सब ओरसे वहाँ एकत्रित होने लगे। वेन स्वर्गगामी हुआ।

महात्मा पृथु-जैसे सप्तपुत्रने उत्पन्न होकर वेनको 'पुम्' नामक नरकसे छुड़ा दिया। उनका अभिषेक करनेके लिये समुद्र और सभी नदियाँ रत्न एवं जल लेकर स्वयं ही उपास्थित हुईं। आत्किरस देवताओंके साथ भगवान् ब्रह्माजी तथा समस्त चराचर भूतोंने वहाँ आकर राजा पृथुका राज्याभिषेक किया। उन महाराजने सभी प्रजाका मनोरञ्जन किया। उनके पिछने प्रजाको बहुत दुःखी किया था, किन्तु पृथुने उन सबको प्रसन्न कर लिया; प्रजाका मनोरञ्जन करनेके कारण ही उनका नाम राजा हुआ। वे जब समुद्रकी यात्रा करते तब उसका जल स्थिर हो जाता था। पर्यन्त उन्हें जानेके लिये मार्ग दे देते थे और उनके रथकी ध्वजा कभी भङ्ग नहीं हुई। उनके राज्यमें पृथ्वी बिना जोते-बोदे ही अन्न पैदा करती थी। राज्यका चिन्तन करनेमात्रसे अन्न सिद्ध हो जाता था। सभी गौर्ष कामधेनु बन गयी थीं और पत्तोंके दोने-दोनेमें यधु भरा रहता था। उसी समय पृथुने पैतामह (ब्रह्माजीसे सम्बन्ध रखनेवाला)-यज्ञ किया। उसमें सोमाभिषवके दिन स्तुति (सोमरस निकालनेकी भूमि)-से परम बुद्धिमान् सूतकी उत्पत्ति हुई। उसी महायज्ञमें मिहान् मागधका भी प्रादुर्भाव हुआ। उन दोनोंको महर्षियोंने पृथुकी स्तुति करनेके लिये बुलाया और कहा—'तुम लोग इन महाराजकी स्तुति करो। यह कार्य तुम्हारे अनुरूप है और ये महाराज भी इसके योग्य पात्र

हैं।' यह सुनकर सूत और मागधने उन महर्षियोंसे कहा—'हम अपने कर्मोंसे देवताओं तथा ऋषियोंको प्रसन्न करते हैं। इन महाराजका नाम, कर्म, लक्षण और यज्ञ—कुछ भी हमें ज्ञात नहीं है, जिससे इन तेजस्वी नरककी हम स्तुति कर सकें। तब ऋषियोंने कहा—'भविष्यमें होनेवाले गुणोंका उल्लेख करते हुए स्तुति करो।' उन्होंने वैसा ही किया। उन्होंने जो-जो कर्म बताये, उन्हींको महावली पृथुने पीछेसे पूर्ण किया। तभीसे लोकमें सूत, मागध और वन्दीजनोंके द्वारा आशीर्वाद दिलानेकी परंपरा चल पड़ी। वे दोनों जब स्तुति कर चुके, तब महाराज पृथुने अत्यन्त प्रसन्न होकर अनूप देशका राज्य सूतको और मागधका मागधको दिया। पृथुको देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुई प्रजासे महर्षियोंने कहा—'ये महाराज तुम्हें जीविका प्रदान करनेवाले होंगे।' यह सुनकर सारी प्रजा महारथ राजा पृथुकी ओर दीड़ी और बौली—'आप हमारे लिये जीविकाका प्रबन्ध कर दें।' जब प्रजाओंने उन्हें इस प्रकार घेरा, तब वे उनका हित करनेकी इच्छासे धनुष-बाण हाथमें ले पृथ्वीकी ओर दीड़े। पृथ्वी उनके भयसे घबरा उठी और गीकन रूप धारण करके पगी। तब पृथुने धनुष लेकर भगती हुई पृथ्वीका पीछा किया। पृथ्वी उनके भयसे ब्रह्मलोक आदि अनेक लोकोंमें गयी, किन्तु सब जगह उसने धनुष लिये हुए पृथुको अपने आगे ही देखा। अग्रिके समान प्रवृत्ति रखने कारण उनका तेज और भी उद्दीप्त दिखायी देता था। वे महान् योगी महात्मा देवताओंके लिये भी दुर्धर्ष प्रतीत होते थे। जब और कहीं रखा न हो सकी, तब तीनों लोकोंकी पूजनीया पृथ्वी हाथ जोड़कर फिर महाराज पृथुको ही शरणमें आयी और इस प्रकार बोली—'राजन्! सब लोक मेरे ही ऊपर स्थित

हैं। मैं ही इस जगत्को धारण करती हूँ। यदि मेरा नाश हो जाय तो समस्त प्रजा नष्ट हो जायगी। इस बातको अच्छी तरह समझ लेना। भूपास! यदि तुम प्रजाका कल्याण चाहते हो तो मेरा वध न करो। मैं जो बात कहती हूँ, उसे सुने; ठीक उपायसे आरम्भ किये हुए सब कार्य सिद्ध होते हैं। तुम उस उपायपर ही दृष्टिपात करो, जिससे इस प्रजाको जीवित रख सकोगे। मेरी इत्या करके भी तुम प्रजाके पासन-खेवजमें समर्थ न होगे। महामते! तुम क्रोध त्याग दो, मैं तुम्हारे अनुकूल हो जाऊँगी। तिर्यग्योनिमें भी स्त्रीको अवध्य ब्रह्मपा गया है; यदि यह बात सत्य है तो तुम्हें धर्मका त्याग नहीं करना चाहिये।'



पृथुने कहा—भद्रे! जो अपने या पराने किसी एकके लिये बहुत-से प्राणियोंका वध करता है, उसे अनन्त पातक लगता है; परन्तु जिस अशुभ व्यक्तिका वध करनेपर बहुत-से लोग सुखी हों, उसके मारनेसे पातक या उपपातक कुछ नहीं लगता। अतः वसुधे! मैं प्रजाका कल्याण

करनेके लिये तुम्हारा वध करूँगा। यदि मेरे कहनेसे आज्ञा संसारका कल्याण नहीं करोगी तो अपने बाणसे तुम्हारा नाश कर दूँगा और अपनेको ही पृथ्वीरूपमें प्रकट करके स्वयं ही प्रजाको धारण करूँगा; इसलिये तुम मेरी आज्ञा मानकर समस्त प्रजाकी जीवन-रक्षण करो; क्योंकि तुम सबके धारणमें समर्थ हो। इस समय मेरी पुत्री जन जाओ; तभी मैं इस भयङ्कर बाणको, जो तुम्हारे वधके लिये उद्यत है, रोकूँगा।

पृथ्वी बोली—बीर! निःसंदेह मैं यह सब कुछ करूँगी। मेरे लिये कोई बछड़ा देखो, जिसके प्रति कोढ़युक्त होकर मैं दूध दे सकूँ। धर्मरक्षाओंमें केवल भूपास! तुम मुझे सब ओर घूमकर कर दो, जिससे मेरा दूध सब ओर बह सके।

वह राजा पृथुने अपने धनुषकी नोकसे लाखों पर्वतोंको उखाड़ा और उन्हें एक स्थानपर एकत्रित किया। इससे पर्वत बढ़ गये। इससे पहलेकी सृष्टिमें भूमि समतल न होनेके कारण पुरों अथवा प्रायोंका कोई सीमाबद्ध विभाग नहीं हो सका था। उस समय अन्न, गोरक्षा, खेती और व्यापार भी नहीं होते थे। यह सब तो वेन-कुमार पृथुके समयसे ही आरम्भ हुआ है। भूमिका जो-जो भाग समतल था, वहीं-वहींपर समस्त प्रजाने निवास करना पसंद किया। उस समयतक प्रजाका आहार केवल फल-मूल ही था और वह भी सड़ी कठिनाईसे मिलता था। राजा पृथुने स्नायम्पुत्र मनुको बछड़ा बनाकर अपने हाथमें ही पृथ्वीको दुहा। उन प्रतापी नरेशने पृथ्वीसे सब प्रकारके अन्नका दोहन किया। उसी अन्नसे आज भी सम प्रजा जीवन धारण करती है। उस समय ऋषि, देवता, पितर, नाग, दैत्य, यक्ष, पुण्यजन, गन्धर्व, पर्वत और वृक्ष—सबने पृथ्वीको दुहा। उनके दूध, बछड़ा, फल और दुहनेवाला—ये सभी पृथक्-

पृथक् थे। ऋषियोंके चन्द्रमा बछड़ा बने, बृहस्पतिने दुहनेका काम किया, तपोमय ब्रह्म उनका दूध था और वेद ही उनके पात्र थे। देवताओंने सुवर्णमय पात्र लेकर पुष्टिकारक दूध दुहा। उनके लिये इन्द्र बछड़ा बने और भगवान् सूर्यने दुहनेका काम किया। पितरोंका चाँदीका पात्र था। प्रतापी यम बछड़ा बने, अन्तकने दूध दुहा। उनके दूधको 'स्वधा' नाम दिया गया है। ऋगोंने तपकको बछड़ा बनाया। तुष्यीका पात्र रखा। ऐरावत नागसे दुहनेका काम लिया और विष्णुकी दुग्धका दोहन किया। असुरोंमें मधु दुहनेवाला बना। उसने मायामय दूध दुहा। उस समय विरोचन बछड़ा बना था और लोहेके पात्रमें दूध दुहा गया था। यक्षोंका कण्ठ पात्र था। कुबेर बछड़ा बने थे। रक्तनाभ यक्ष दुहनेवाला था और अन्तर्यामि होमेकी विद्या ही उनका दूध था। एतसेन्द्रोंमें सुमाली नामका राक्षस बछड़ा बना। रक्तनाभ दुहनेवाला था। उसने कमलरूपी पात्रमें शोभितरूपी दूधका दोहन किया। गन्धर्वोंमें भिन्नरवने बछड़ेका काम पूरा किया। कमला ही उनका पात्र था। सुरुषि दुहनेवाला था और पवित्र सुगन्ध ही उनका दूध था। पर्वतोंमें महर्षिगिरी मेरुने हिमवान्को बछड़ा बनाया और स्वर्ग दुहनेवाला बनकर तिलामय पात्रमें रत्नों एवं ओषधियोंको दूधके रूपमें दुहा। वृक्षोंमें प्लक्ष (पाकड़) बछड़ा था। खिले हुए शालके वृक्षने दुहनेका काम किया। पलाशका पात्र था और जलमे लक्ष कटनेपर पुनः अङ्कुरित हो जाना ही उनका दूध था।

इस प्रकार सबका धारण-पोषण करनेवाला यह पावन वसुधैव कुटुम्बकम् समस्त चराचर जगत्की आधारभूत तथा उत्पत्तिस्थान है। यह सब कामनाओंको देनेवाला तथा सब प्रकारके अर्थोंको अङ्कुरित करनेवाला है। गौरवपूर्ण पृथ्वी मेदिनीके,

नामसे विख्यात है। यह समुद्रतक पृथुके ही अधिकारमें थी। मधु और कैटभके मेदसे ज्वाला होनेके कारण यह मेदिनी कहलाती है। फिर राजा



पृथुकी आज्ञाके अनुसार भूदेवी उनकी पुत्री बन गयी, इसलिये इसे पृथ्वी भी कहते हैं। पृथुने इस पृथ्वीका विष्णु और शोधन किया, जिससे यह अन्नकी खान और समृद्धिशालिनी बन गयी। गीर्वाण और नगरोंके कारण इसकी बड़ी शोभा होने लगी। वैन-कुमार महाराज पृथुका ऐसा ही प्रभाव था। इसमें संदेह नहीं कि वे समस्त प्राणियोंके पूजनीय और वन्दनीय हैं। वेद-वेदाङ्गोंके पारङ्गत विद्वान् ब्राह्मणोंको भी महाराज पृथुकी ही वन्दना करनी चाहिये, क्योंकि वे सनातन ब्रह्मयोगि हैं। राज्यकी इच्छा रखनेवाले राजाओंके लिये भी परम प्रतापी महाराज पृथु ही वन्दनीय हैं। युद्धमें विजयकी कामना करनेवाले पराक्रमी योद्धाओंको भी उन्हें महत्तक प्रेरणा चाहिये। क्योंकि योद्धाओंमें वे अग्रगण्य थे। जो सैनिक राजा पृथुका नाम लेकर संग्राममें जाते हैं, वह भयङ्कर संग्रामसे भी

सकुशल लीटता है और यशस्वी होता है। वैश्यवृत्ति करनेवाले बनी वैश्योंको भी चाहिये कि वे महाराज पृथुको नमस्कार करें, क्योंकि राजा पृथु सबके वृत्तिदाता और परम यशस्वी थे। इस संसारमें परमकल्याणकी इच्छा रखनेवाले तथा

तीनों वर्णोंकी सेवामें लगे रहनेवाले पवित्र शूद्रोंके लिये भी राजा पृथु ही चन्दनीय हैं। इस प्रकार जहाँ पृथुकी दुहनेके लिये जो विशेष-विशेष बछड़े, दुहनेवाले, दूध तथा पात्र कल्पित किये गये थे, उन सबका मैंने वर्णन किया।

चौदह मन्वन्तरों तथा विवस्वान्की संततिक्रम वर्णन

ऋषि बोले—महामते सूतजी! अब समस्त मन्वन्तरोंका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये तथा उनके प्राथमिक सृष्टि भी बताइये।

लोमहर्षण (सूत) ने कहा—विप्रगण! समस्त मन्वन्तरोंका विस्तृत वर्णन तो ली चर्चामें भी नहीं हो सकता, अतः संक्षेपसे ही सुनो। प्रथम स्थायम्भुव मनु हैं, दूसरे स्वरोचिष, तीसरे उत्तम, चौथे तामस, पाँचवें रैवत, छठे वायुव तथा सातवें देवव्रत मनु कहलाते हैं। वैवस्वत मनु ही वर्तमान कल्पके मनु हैं। इसके बाद ऋषि, भीष्म, रीच्य तथा चार वेत्थावर्ण्य नामके मनु होंगे। ये भूत, वर्तमान और भविष्यके सब मिलकर चौदह मनु हैं। मैंने जैसा सुना है, उसके अनुसार सब मनुओंके नाम बताये। अब इनके समयमें होनेवाले ऋषियों, मनु-पुत्रों तथा देवताओंका वर्णन करूँगा। मरिचि, अग्नि, अङ्गिरा, पुलह, क्रतु, पुलस्त्य तथा वसिष्ठ—ये सात ब्रह्मजीके पुत्र उत्तर दिशामें स्थित हैं, जो स्थायम्भुव मन्वन्तरके सप्तर्षि हैं। अङ्गिभ, अङ्गिबाहु, मेध, मेधातिथि, वसु, ज्योतिष्मान्, द्युतिष्मान्, हव्य, सबल और पुत्र—ये दस स्थायम्भुव मनुके महान्वती पुत्र थे। विप्रगण! यह प्रथम मन्वन्तर बताया गया। स्वरोचिष मन्वन्तरमें प्राण, बृहस्पति, दत्तत्रेय, अग्नि, ज्यवन, वायुप्रोक्त तथा महाव्रत—ये सात सप्तर्षि थे। तुषित नामवाले देवता थे और इविर्ग,

सुकृति, ज्योति, आप, मूर्ति, प्रतीत, नभस्य, नभ तथा ऊर्ध्व—ये महारत्ना स्वरोचिष मनुके पुत्र बताये गये हैं, जो महान् वत्सवान् और पराक्रमी थे। यह द्वितीय मन्वन्तरका वर्णन हुआ। अब तीसरा मन्वन्तर वत्सव्रत जाता है, सुनो। वसिष्ठके सात पुत्र वासिष्ठ तथा हिरण्यगर्भके तैजस्वी पुत्र ऊर्ध्व—ये ही उत्तम मन्वन्तरके ऋषि थे। इष, ऊर्ध्व, तनूर्ज, मधु, माधव, शुचि, शुक्र, सह, नभस्य तथा नभ—ये उत्तम मनुके पराक्रमी पुत्र थे। इस मन्वन्तरमें भानु नामवाले देवता थे। इस प्रकार तीसरा मन्वन्तर बताया गया। अब चौथेका वर्णन करता हूँ। काम्य, पृथु, अग्नि, वाहु, धातु कपीवान् और अकपीवान्—ये सात उस समयके सप्तर्षि थे। सत्य नामवाले देवता थे। द्युति, तपस्थ, सुतप, तपोभूत, सनातन, तपोरति, अकल्पाव, तन्वी, चन्वी और परतप—ये दस तामस मनुके पुत्र कहे गये हैं। यह चौथे मन्वन्तरका वर्णन हुआ। पाँचवें रैवत मन्वन्तर है। उसमें देवबाहु, यदुध, वेदशिरा, हिरण्यरोमा, पर्जन्य, सोमनन्दन ऊर्ध्वबाहु तथा अत्रिकुमार सत्यनेत्र—ये सप्तर्षि थे। अभूतरत्ना और प्रकृति नामवाले देवता थे। धृतिमान्, अव्यय, युक्त, तत्त्वदर्शी, निरुत्सुक, अरण्य, प्रकाश, निर्मल, सत्यवाक् और कृती—ये रैवत मनुके पुत्र थे। यह पाँचवें मन्वन्तर बताया गया। अब छठे वायुव मन्वन्तरका वर्णन करता

हैं, सुनो। उसमें भृगु, नभ, विवस्वत, सुवस्वत, धिरजा, अतिनामा और सहिष्णु—ये ही सप्तर्षि थे। लेख नामवाले पाँच देवता थे। नक्षत्रलेख नामसे प्रसिद्ध रुद्र आदि चाक्षुष मनुके दस पुत्र बतलाये जाते हैं। यहाँतक छठे मन्वन्तरका वर्णन हुआ। अब सप्तमं वैवस्वत मन्वन्तरका वर्णन सुनो। अत्रि, वसिष्ठ, कश्यप, गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र तथा जमदग्नि—ये इस वर्तमान मन्वन्तरमें सप्तर्षि होकर आकाशमें विराजमान हैं। सत्य, त्र्यम्बक, विष्णुदेव, वसु, मरुद्गण, अदित्य और अश्विनीकुमार—ये इस वर्तमान मन्वन्तरके देवता माने गये हैं। वैवस्वत मनुके इक्ष्वाकु आदि दस पुत्र हुए। ऊपर जिन महतेजस्वी महर्षियोंके नाम बताये गये हैं, उनकी पुत्र और पौत्र आदि सम्पूर्ण दिव्यजनोंमें फैले हुए हैं। प्रायःक मन्वन्तरमें वर्षकी व्यवस्था तथा लोकप्रभुओंके लिये जो सात सप्तर्षि रहते हैं, मन्वन्तर बीतनेके बाद उनमें चार महर्षि अपना कार्य पूरा करके रोग-शोकसे रहित ब्रह्मलोकमें चले जाते हैं। उत्पन्नात् दूसरे चार तपस्वी आकर उनके स्थानकी पूर्ति करते हैं। भूत और वर्तमान कालके सप्तर्षिगण इसी क्रमसे होते आये हैं। सावर्णि मन्वन्तरमें होनेवाले सप्तर्षि ये हैं—परशुराम, व्यास, आश्रम, भरद्वाजकुलमें उत्पन्न द्रोणकुमार अश्वत्थामा, गौतमवंशी सरस्वान्, कौशिककुलमें उत्पन्न गालव तथा कश्यपनन्दन जीव। वैती, अध्वरीवान्, रामन, धृतिमान्, वसु, अरिष्ट, अभुष्ट, काजी तथा सुमति—ये भविष्यमें सावर्णिक मनुके पुत्र होंगे। प्रातःकाल उठकर इनका नमस्तेनेसे मनुष्य सुखी, यशस्वी तथा दीर्घायु होता है।

भविष्यमें होनेवाले अन्य मन्वन्तरोंका संक्षेपसे वर्णन किया जाता है, सुनो। सावर्ण नामके पाँच मनु होंगे; उनमेंसे एक तो सूर्यके पुत्र है और शेष चार प्रजापतिके। ये चारों मेरुगिरिके शिखरपर

पार्वी तपस्या करनेके कारण 'वेद सावर्ण्य' के नामसे विख्यात होंगे। ये दक्षके धेवते और प्रियाके पुत्र हैं। इन पाँच मनुओंके अतिरिक्त भविष्यमें रौष्य और भीत्य नामके दो मनु और होंगे। प्रजापति रविके पुत्र ही 'रौष्य' कहे गये हैं। रविके दूसरे पुत्र, जो भूतिके गर्भसे उत्पन्न होंगे 'भीत्य मनु' कहलायेंगे। इस कल्पमें होनेवाले ये सत्त्व भावी मनु हैं। इन सबके द्वारा द्वीपों और नगरोंसहित सम्पूर्ण पृथिवीका एक सहस्र युगोत्तक जलन होगा। सत्ययुग, त्रेता आदि चारों युग एकद्वार बार बीतकर जब कुछ अधिक काल हो जाय, तब वह एक मन्वन्तर कहलाता है। इस प्रकार वे बीसह मनु बतलाये गये। ये यशकी वृद्धि करनेवाले हैं। समस्त वेदों और पुराणोंमें भी इनका प्रभुत्व वर्णित है। ये प्रजाओंके पालक हैं। इनके यशस्वी कीर्तन श्रेयस्कर है। मन्वन्तरोंमें कितने ही संहार होते हैं और संहारके बाद कितनी ही सृष्टियाँ होती रहती हैं; इन सबका पूरा-पूरा वर्णन सैकड़ों वर्षोंमें भी नहीं हो सकता। मन्वन्तरोंके बाद जो संहार होता है, उसमें तपस्या, ब्रह्मचर्य और शास्त्रज्ञानसे सम्पन्न कुछ देवता और सप्तर्षि शेष रह जाते हैं। एक हजार चतुर्गुण पूर्ण होनेपर कल्प समाप्त हो जाता है। उस समय सूर्यकी प्रचण्ड किरणोंसे समस्त प्राणी दग्ध हो जाते हैं। तब सब देवता अदित्यगर्भके साथ ब्रह्मजीके आगे करके सुरश्रेष्ठ भगवान् नारायणमें लीन हो जाते हैं। वे भगवान् ही कल्पके अन्तमें पुनः सब भूतोंकी सृष्टि करते हैं। वे अव्यक्त सनातन देवता हैं। यह सम्पूर्ण जगत् उन्हींका है।

मुनिवरों! अब मैं इस समय वर्तमान महतेजस्वी वैवस्वत मनुकी सृष्टिका वर्णन करूँगा। महर्षि कश्यपसे उनकी चारों दक्षकन्या अदितिके गर्भसे

विद्यस्थान् (सूर्य)—का जन्म हुआ। विश्वकर्माकी पुत्री संज्ञा विद्यस्थान्की पत्नी हुई। उसके गर्भसे सूर्यने तीन संतानें उत्पन्न कीं, जिनमें एक कन्य और दो पुत्र थे। सबसे पहले प्रजापति ऋद्धदेव, जिन्हें वैवस्वत मनु कहते हैं, उत्पन्न हुए। उत्पन्न हुए यम और यमुना—वे चुड़ही संतानें हुईं। भगवान् सूर्यके तेजस्वी स्वरूपको देखकर संज्ञा उसे सह न सकी। उसने अपने ही समान वर्णवाली अपनी छाया प्रकट की। वह छाया संज्ञा अथवा स्वर्ण नामसे विख्यात हुई। उसको भी संज्ञा ही समझकर सूर्यने उसके गर्भसे अपने ही समान

तेजस्वी पुत्र उत्पन्न किया। वह अपने बड़े भाई मनुके ही समान था, इसलिये सावर्ण मनुके नामसे प्रसिद्ध हुआ। छाया-संज्ञासे जो दूसरा पुत्र हुआ, उसकी तनैश्वरके नामसे प्रसिद्धि हुई। यम धर्मराजके पदपर प्रतिष्ठित हुए और उन्होंने समस्त प्रजाको धर्मसे संतुष्ट किया। इस शुभकार्यके कारण उन्हें पितरोंका आधिपत्य और लोकपालका पद प्राप्त हुआ। स्वर्ण मनु प्रजापति हुए। आनेवाले सावर्णिक मन्वन्तरके वे ही स्वामी होंगे। वे आज भी मेरुशिखरके शिखरपर विराजमान रहते हैं। उनके भाई तनैश्वरने ग्रहकी पदवी पायी।

वैवस्वत मनुके वंशजोंका वर्णन

लोमाह्वीणजी कहते हैं—वैवस्वत मनुके भी पुत्र उन्हींके समान हुए, उनके नाम इस प्रकार हैं—इक्ष्वाकु, नाभाग, धृष्ट, शयीति, नरिष्यन्त, प्राशु, अरिष्ट, करुष तथा पुष्य। एक समयकी



बात है, प्रजापति मनु पुत्रकी इच्छासे मित्रावरुण-याग कर रहे थे। उस समयतक उन्हें कोई पुत्र नहीं हुआ था। उस यज्ञमें मनुने मित्रावरुणके अंतर्मुखी आहुति डाली, उसमेंसे दिव्य वस्त्र एवं दिव्य आभूषणोंसे विभूषित दिव्य रूपवाली इला नामकी कन्या उत्पन्न हुई। महाराज मनुने उसे 'इत्य' कहकर सम्बोधित किया और कहा—'कन्यापी! तुम मेरे पास आओ।' तब इलाने पुत्रकी इच्छा रखनेवाले प्रजापति मनुसे यह धर्मयुक्त वचन कहा—'महाराज! मैं मित्रावरुणके अंतर्मुखसे उत्पन्न हुई हूँ, अतः पहले उन्हींके पास जाऊँगी। आप मेरे धर्ममें बाधा न डालिये।' यों कहकर वह सुन्दरी कन्या मित्रावरुणके समीप गयी और हाथ जोड़कर बोली—'भगवन्! मैं आप दोनोंके अंतर्मुखसे उत्पन्न हुई हूँ। आपलोगोंकी किस आज्ञाका पालन करूँ? मनुने मुझे अपने पास बुलाया है।'।

मित्रावरुण बोले—सुन्दरी! तुम्हारे इस धर्म,

विनय, इन्द्रियसंयम और सत्यसे इमस्तोम प्रसन्न हैं। महाभाग! तुम हम दोनोंकी कन्यাকে रूपमें प्रसिद्ध होगी तथा तुम्हीं मनुके बंसका विस्तार करनेवाला पुत्र हो जाओगी। उस समय तीनों लोकोंमें सुघुम्रके नामसे तुम्हारी ख्याति होगी।

वह सुनकर वह पित्तके समीपसे लौट पड़ी। मार्गमें उसकी बुधसे भेंट हो गयी। बुधने उसे मैथुनके लिये आमन्त्रित किया। उनके बीचसे उसने पुरूरवाको जन्म दिया। तत्पश्चात् वह सुघुम्रके रूपमें परिणत हो गयी। सुघुम्रके तीन बड़े धर्मस्थ पुत्र हुए—उत्कल, गव और विन्ताश्व। उत्कलकी राजधानी उत्कला (उड़ीसा) हुई। विन्ताश्वको पश्चिम दिशाका राज्य मिला तथा गव पूर्व दिशाके राज्य हुए। उनकी राजधानी गवाके नामसे प्रसिद्ध हुई। जब मनु भगवान् सूर्यके ठेकमें प्रवेश करने लगे, तब उन्होंने अपने राज्यको दस भागोंमें बाँट दिया। सुघुम्रके बाद उनके पुत्रोंमें इक्ष्वाकु सबसे बड़े थे, इसलिये उन्हें मध्यदेशका राज्य मिला। सुघुम्र कन्यके रूपमें उत्पन्न हुए थे इसलिये उन्हें राज्यका भाग नहीं मिला। फिर बसिष्ठजीके कहनेसे प्रतिष्ठानपुरमें उनकी स्थिति हुई। प्रतिष्ठानपुरका राज्य पाकर महाप्रसन्नी सुघुम्रने उसे पुरूरवाको दे दिया। मनु कुम्भर सुघुम्र क्रमशः स्त्री और पुरुष दोनोंके लक्षणोंसे भुक्त हुए, इसलिये इन्द्र और सुघुम्र दोनों नामोंसे उनकी प्रसिद्धि हुई। नरिष्यन्तके पुत्र शक्र हुए। नाभागके राजा अम्बरीष हुए। भृशसे चाहेँक नामवाले क्षत्रियोंकी उत्पत्ति हुई, जो युद्धमें दम्भत होकर लड़ते थे। कक्रवके पुत्र काक्य नामसे विख्यात हुए। वे भी दम्भत थे। प्रंसुके एक ही पुत्र थे, जो प्रजापतिके नामसे प्रकट हुए। सत्यतिके दो जुड़की संतानें हुई। उनमें अन्नत नामसे प्रसिद्ध पुत्र तथा सुकन्य नामवाली कन्या थी। यही

सुकन्या महावि ज्वनको पत्नी हुई। अन्नतके पुत्रका नाम रेव था। उन्हें अन्नत देशका राज्य मिला। उनकी राजधानी कुशस्थली (द्वारका) हुई। रेवके पुत्र रेवत हुए, जो बड़े धर्मात्मा थे। उनका दूसरा नाम ककुयी भी था। अपने पित्तसे ज्येष्ठ पुत्र होनेके कारण उन्हें कुशस्थलीका राज्य मिला। एक बार वे अपनी कन्यको साथ ले ब्रह्माजीके पास गये और वहाँ गन्धर्वोंके गीत सुनते हुए दो बड़ी ठहरे रहे। इतने ही समयमें मानवलोकेमें अनेक भूत बीत गये। रेवत जब वहाँसे लौटे, तब अपनी राजधानी कुशस्थलीमें आये; परन्तु ठग बहाने वहाँका अधिकार हो गया था। यदुर्वशियोंने उसका रूप बदलकर द्वारवाती रख दिया था। उसमें बहुत-से द्वार बने थे। वह पुरी बड़ी मनोहर दिखायी देती थी। भोज, वृष्णि और अन्धक वंशके वसुदेव आदि बादव उसकी रक्षा करते थे। रेवतने वहाँका सब भूतान्त ठीक-ठीक जानकर



अपनी रेवती नामकी कन्या बलदेवजीको ब्याह दी और स्वयं मेरुपर्वतके शिखरपर जाकर वे तपस्यामें

लग गये। धर्मात्मा बलरामजी रैवतीके साथ सुखपूर्वक विहार करने लगे।

पुष्यभने अपने गुरुकी तपस्या वध किया था, इसलिये वे शापसे मुक्त हो गये। इस प्रकार ये वैवस्वत मनुके नौ पुत्र बताये गये हैं। मनु जब छोड़ रहे थे, उस समय इक्ष्वाकुकी उत्पत्ति हुई थी, इक्ष्वाकुके सौ पुत्र हुए। उनमें विकुक्षि सबसे बड़े थे। वे अपने पराक्रमके कारण अयोध्या नामसे प्रसिद्ध हुए। उन्हें अयोध्याका राज्य प्राप्त हुआ। उनके शकुनि आदि चौब सौ पुत्र हुए, जो अत्यन्त बलवान् और उत्तर-भारतके रक्षक थे। उनमेंसे महाशक्ति आदि अष्टावन राजपुत्र दक्षिण दिशाके पालक हुए। विकुक्षिका दूसरा नाम शशाङ्क था। इक्ष्वाकुके मरनेपर वे ही राज्य हुए। शशाङ्कके पुत्र ककुत्स्थ, ककुत्स्थके अनेक, अनेकके पृथु, पृथुके विहराज, विहराजके आर्ज, आर्जके पुष्यनाभ और पुष्यनाभके पुत्र क्षत्रस्त हुए। उन्होंने ही श्रावस्तीपुरी बसायी थी। श्रावस्तीके पुत्र बृहदश और उनके पुत्र कुवलाश्व हुए। वे बड़े धर्मात्मा राजा थे। इन्होंने धुन्धु नामक दैत्यका वध करनेके कारण धुन्धुमार नामसे प्रसिद्धि प्राप्त की।

मुनि बोले—महाप्राज्ञ सुतजी! हम धुन्धु वधका वृत्तान्त ठीक-ठीक सुनना चाहते हैं, जिससे कुवलाश्वका नाम धुन्धुमार हो गया।

लोमहर्षजजीने कहा—कुवलाश्वके सौ पुत्र थे। वे सभी अच्छे धनुर्धर, विद्याओंमें प्रवीण, बलवान् और दुर्धर थे। सबकी धर्ममें निष्ठा थी। सभी धन्यकर्ता तथा प्रचुर दक्षिण देनेवाले थे। राजा बृहदशने कुवलाश्वको राजपदपर अभिषिक्त किया और स्वयं वनमें तपस्या करनेके लिये जाने लगे। उन्हें जाते देख ब्रह्मर्षि उतड़कर रोका और इस प्रकार कहा—'रामन्! आपका कर्तव्य है प्रजाकी रक्षा, अतः वही कीजिये। घरे आश्रमके

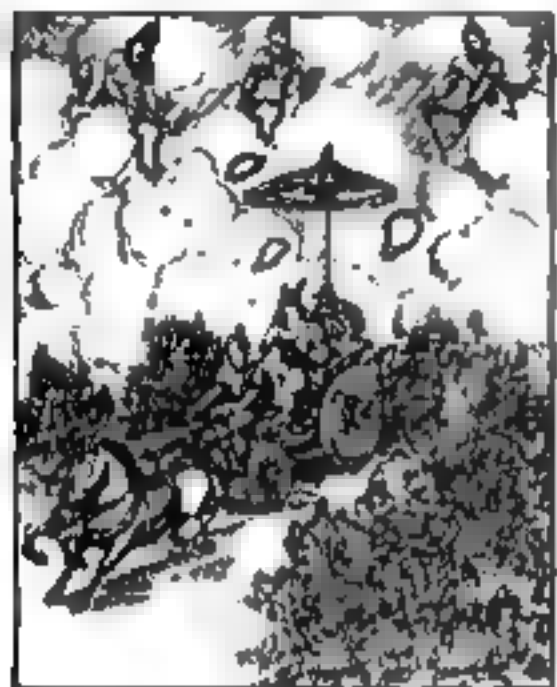
समीप मधु नामक राक्षसका पुत्र महान् असुर धुन्धु रहता है। वह सम्पूर्ण लोकोंका संहार करनेके लिये कठोर तपस्या करता और बालूके भीतर सोता है। वर्षभरमें एक बार वह बड़े जोरसे साँस छोड़ता है। उस समय बहोंकी पृथ्वी डोलने लगती है। उसके श्वासकी हवासे बड़े जोरकी धूल उड़ती है और सूर्यका मार्ग ढीक लेती है। लगातार लता दिनोंतक धुकम्प होता रहता है। इसलिये अब मैं अपने उस आश्रममें रह नहीं सकता। आप सम्पन्न लोकोंके हितकी इच्छासे उस विशालकाय दैत्यको मार डालिये। उसके मारे जानेपर सब सुखी हो जायेंगे।'



बृहदश बोले—भगवन्! मैंने तो अब अस्त्र-शस्त्रोंका त्याग कर दिया। वह मेरा पुत्र है। यही धुन्धु दैत्यका वध करेगा।

राजर्षि बृहदश अपने पुत्र कुवलाश्वको धुन्धुके वधकी आज्ञा दे स्वयं पर्वतके समीप चले गये। कुवलाश्व अपने सब पुत्रोंको साथ ले धुन्धुको मारने चले। साथमें महर्षि उतड़ भी थे। उतड़के

अनुरोधसे सम्पूर्ण लोकोंका हित करनेके लिये साक्षात् कामान् विष्णुने कुम्भारके शरीरमें अपना तेज प्रविष्ट किया। दुर्धर्ष कुम्भारका जब बुढ़के लिये प्रविष्ट हुअ, तब देवताओंका यह मन्त्र शब्द गूँज उठा—'ये श्रीमान् मोक्ष जनक हैं। इनके हाथसे आज धुन्धु अवश्य मर जायगा।' बुढ़के



साथ वहाँ जाकर बीरवर कुम्भारने समुद्रको खुदवाया। खोदनेवाले राजकुमारोंमें वाल्मीके भीतर धुन्धुका कत्ता लगा लिया। वह संक्षम दिलवाले घेरकर पड़ा था। वह अपने मुकुम्भी जगसे सम्पूर्ण लोकोंका संहार-ना करता हुआ जलन्वा खेत बहाने लग्य। जैसे चन्द्रमाके उदयकालमें समुद्रमें न्धार उमता है, उसकी उताल तरङ्गें बहने लगती हैं, उसी प्रकार वहाँ जलन्वा तेज बहने लगा। कुम्भारके पुत्रोंमेंसे तीनोंको छोड़कर तेज सभी धुन्धुकी मुखाग्रिसे बसकर बस्य हो गये। तदनन्तर महाहोजसबी राजा कुम्भारने उस महात्मनी धुन्धुपर आक्रमण किया, वे सोयी थे, इसलिये उन्होंने योग्भातिके द्वारा वेगसे प्रकाहित होनेवाले जलको

पी लिया और आत्मको भी बुझ दिया। फिर जलपूर्वक इस महात्म्य जलपर राक्षसको मारकर मूर्धनि उखडूका दर्शन किया। उतडूने तब महात्म्य राक्षसको मर दिया कि 'कुम्भारा धन अक्षय होगा और तनु तुम्हें पराजित न कर सकेंगे। धर्ममें खरा कुम्भारा त्रेम बन्द होना तथा अन्तमें स्वर्गलोकका अक्षय निवास प्राप्त होगा। बुढ़में बुढ़ारे जो पुत्र



राक्षसद्वारा मारे गये हैं, उन्हें भी स्वर्गमें अक्षयलोक प्राप्त होगा।'

धुन्धुमारके जो तीन पुत्र बुढ़से जीवित बच गये थे, उनमें दुर्धर्ष नामसे ज्येष्ठ थे और कम्पाक्ष तथा कपिलाक्ष उनके छोटे भाई थे। दुर्धर्षके पुत्रका नाम दुर्धर्ष था। दुर्धर्षका पुत्र निकुम्भ हुआ, जो सदा क्षत्रिय-धर्ममें उत्थर रहता था। निकुम्भका बुढ़वित्तराज पुत्र संहर्षक था। संहर्षकके दो पुत्र हुए—अकृत्तक और कृत्तक। उसके हेमवती नामकी एक कन्या भी हुई, जो आगे चलकर दुषहतीके नामसे प्रसिद्ध हुई। इसका पुत्र प्रसेनजित् हुआ, जो तीनों लोकोंमें विजयवत् था। प्रसेनजित्ने गौरी

नामवाली पतिव्रता स्त्रीसे कहा कि यह भी, जो बादमें पतिके रूपसे बाहुदा नामकी नदी हो गये। प्रसेनजित् के पुत्र राजा युधामन्यु हुए। युधामन्यु के पुत्र मान्धाता हुए। ये त्रिभुवनविजयी थे। शशबिन्दुकी सुशीला कन्या वैश्रवधी, जिसका दूसरा नाम बिन्दुमती भी था, मान्धाताको पत्नी हुई। इस भूलपर उसके समान रूपवाली स्त्री दूसरी नहीं थी। बिन्दुमती बड़ी पतिव्रता थी। यह दस हजार धर्मयुक्तों की प्रेरणादायक थी। मान्धाताने उसके गर्भसे धर्मज्ञ पुरुकुतस और राजा मुमुकुन्द—ये दो पुत्र उत्पन्न किये। पुरुकुतसके उनकी स्त्री गर्वदाके गर्भसे राजा असदस्यु उत्पन्न हुए, उनसे सम्भूतका जन्म हुआ। सम्भूतके पुत्र राजदमन त्रिभन्वा हुए। राजा त्रिभन्वासे विद्यान् उत्पन्न हुए। उनका पुत्र महावती उत्पन्न हुआ। उसकी बुद्धि बड़ी छोटी थी। उसने वैवाहिक यन्त्रोंमें विघ्न डालकर दूसरेकी पत्नीका अपहरण कर लिया। जालसाज, कामसूत, मोह, साहस और चञ्चलतावश उसने ऐसा कुकर्म किया था। जिसका अपहरण हुआ था, वह उसके किसी पुरवासीकी ही कन्या थी। इस अधर्मरूपी शत्रु (कटि)-के कारण कुपित होकर त्रिधातुने अपने उस पुत्रको त्याग दिया। उस समय उसने पूछा—'पिताजी! आपके त्याग देनेपर मैं कहाँ जाऊँ?' पिताने कहा—'ओ कुसकलङ्क! जा, चाण्डालोंके साथ रह। मुझे द्वेष—जैसे पुत्रकी आवश्यकता नहीं है।' यह सुनकर वह पिताके कबानुसार नगरसे बाहर निकल गया। उस समय महर्षि वसिष्ठने उसे मना नहीं किया। वह सत्यव्रत चाण्डालके घरके पास रहने लगा। उसके पिता भी वनमें चले गये। तदनन्तर उसी अधर्मके कारण इन्द्रने उस राज्यमें वर्षा बन्द कर दी। महापरायणी विश्वामित्र उसे राज्यमें अपनी पत्नीको



रखकर स्वयं समुद्रके किनारे भारी तपस्व्य कर रहे थे। उनकी पत्नीने अकालघस्त हो अपने मझले औरस पुत्रके गलेमें रस्सी डाल दी और रोष परिकरके भरण-पोषणके लिये लौ गाये लेकर



उसे बेच दिया। राजकुमार सत्यव्रतने देखा कि

विक्रयके लिये इसके गलेमें रस्ती बँधी हुई है; उस उस पर्मात्माने दया करके महर्षि विश्वामित्रके उस पुत्रको छुड़ा लिया और स्वयं ही उसका भरण-पोषण किया। ऐसा करनेमें उसका उद्देश्य

यह महर्षि विश्वामित्रको संतुष्ट करके उनकी कृपा प्राप्त करना। महर्षिका यह पुत्र गलेमें बन्धन पहनेके कारण महातपस्वी गालकके नामसे प्रसिद्ध हुआ।

राजा सगरका चरित्र तथा इक्ष्वाकुवंशके मुख्य-मुख्य राजाओंका परिचय

लोकहर्षणजी कहते हैं—राजकुमार सत्यव्रत भक्ति, दया और प्रतिज्ञावश विनम्रपूर्वक विश्वामित्रजीकी स्वीका चलन करने लगा। इससे मुनि बहुत संतुष्ट हुए। उन्होंने सत्यव्रतसे इच्छानुसार घर माँगनेके लिये कहा। राजकुमार बोला—‘मैं इस शरीरके साथ ही स्वर्गलोकमें चला जाऊँ।’ जब अन्नवृष्टिका भय दूर हो गया, तब विश्वामित्रने उसे पिताके राज्यपर अभिषिक्त करके उसके द्वारा यह कराया। वे महातपस्वी थे, उन्होंने देवताओं तथा वसिष्ठके देखते-देखते सत्यव्रतको शरीरसहित

स्वर्गलोकमें भेज दिया। उसकी पत्नीका नाम सत्यप्रताप था। यह केकयकुलकी कन्या थी। उसने हरिश्चन्द्र नामक पिछ्वाप पुत्रको जन्म दिया। राजसूय-यज्ञका अनुष्ठान करके वे सम्राट् कहलाये। हरिश्चन्द्रके पुत्रका नाम रोहित था। रोहितके हरित और हरितके पुत्र बहुत हुए। बहुतके पुत्रका नाम विजय था। वे सम्पूर्ण पृथ्वीपर विजय प्राप्त करनेके कारण विजय कहलाये। विजयके पुत्र राजा रुक्क हुए, जो धर्म और अर्थके ज्ञाता थे। रुक्कके रुक, रुकके बाहु और बाहुके सगर हुए। वे गर अर्थात् बिचके साथ प्रकट हुए थे, इसलिये उनका नाम सगर हुआ। उन्होंने भृगुवंशी आर्य-मुनिसे आग्नेय-अस्त्र प्राप्तकर तालजङ्घ और ईहय नामक क्षत्रियोंको युद्धमें हराया और समूची पृथ्वीपर विजय प्राप्त की। फिर राक, पङ्कव तथा पारदोंके धर्मका निराकरण किया।

मुनियोंने पूछा—सगरकी उत्पत्ति गरके साथ कैसे हुई? उन्होंने क्रोधमें आकर राक आदि महामेजस्वी क्षत्रियोंके कुलोचित धर्मोंका निराकरण क्यों किया? यह सब विस्तरपूर्वक सुनाइये।

लोकहर्षणजीने कहा—राजा बाहु व्यसनी थे, अतः पहले ईहय नामक क्षत्रियोंने तालजङ्घों और तर्कोंकी सहायतासे उनका राज्य छीन लिया। यवन, पारद, काव्योच तथा पङ्कव नामके गर्जने



भी हैहयों के लिये पराक्रम दिखाया। राज्य छिन जाने पर राजा बाहु दुःखी हो पत्नी के साथ वन में चले गये वहाँ उन्होंने अपने प्राण त्याग दिये। बाहु की पत्नी कदवी गर्भवती थी। वे भी राज्य का सङ्ग्रह करने को प्रस्तुत हो गयीं। उन्हें उनकी सौतने पहले से ही जहर दे रखा था। उन्होंने वन में चिता बनायी और उस पर अकड़ हो चित्त के साथ भस्म हो जाने का विचार किया। भृगुवंश और वसुनि को इनकी दरबार पर बड़ी रक्षा आयी। उन्होंने उनकी चिता में जलने से रोक दिया। उन्होंने अश्वपथ व

पहने पर वे सभी महर्षि वसिष्ठ की शरण में गये और उनके चरणों पर गिर पड़े। उन महातेजस्वी वसिष्ठ ने कुछ शर्तों के साथ उन्हें अभय दान दिया और राजा सगर को रोका। सगर ने अपनी प्रतिज्ञा तथा गुरु के वचन का विचार करके केवल उनके धर्म का निराकरण किया और उनके वेष बदल दिये। शत्रुओं के आगे वस्तुओं को मुँह कर विदा कर दिया। यवनों और काम्बोजों का सारा सिर मुँहा दिया। पारसों के सारे केश उड़ा दिये।

धर्म विजयी राजा सगर ने इस पृथ्वी को जीतकर अश्वमेध-यज्ञ करी दीक्षा ली और अश्व को देश में विचरने के लिये छोड़ा। वह अश्व जब पूर्व-दक्षिण समुद्र के तट पर विचर रहा था, उस समय किसी ने उसके चुर लिये और पृथ्वी के भीतर छिपा दिया। राजा ने अपने पुत्रों से इस प्रदेश को खुदवाया। महासगर की खुदाई होते समय उन्होंने वहाँ आदिपुरुष भगवान् विष्णु को जो हरि, कृष्ण और प्रजपति नाम से भी प्रसिद्ध हैं, महर्षि कपिल के रूप में शयन करते देखा। जाने पर उनके नेत्रों के



गर्भ जहर के साथ ही प्रकट हुआ। वही महाराज सगर हुए। और ने बालक के जन्मकर्म आदि संस्कार किये, वेद-शास्त्र पढ़ाये तथा आग्नेय-अस्त्र भी प्रदान किया, जो देवताओं के लिये भी दुःसाह है। उसीसे सगर ने हैहयवंशी क्षत्रियों का विनाश किया और लोक में बड़ी भारी कोटि पायी तदनन्तर उन्होंने शक, यवन, काम्बोज, पारस तथा पाण्डुवर्णों का सर्वनाश करने के लिये उद्योग किया। वीरवर महात्मा सगर की मार



तेजसे वे सभी जलकर मरम हो गये। केवल चार ही बचे, जिनके नाम हैं—वर्षिकेतु, सुकेतु, धर्मरथ और पञ्चनद। ये ही राजाके वंश चक्रनेवाले हुए। कपिलरूपधारी भगवान् नारायणने उन्हें वरदान दिया कि 'राजा इक्ष्वाकुवध वंश अखण्ड होगा और इसकी कीर्ति कभी मिट नहीं सकती।' भगवान्ने समुद्रको सगरका पुत्र बना दिया और अन्तमें उन्हें अश्वत्थ स्वर्गावासके लिये भी आशीर्वाद दिया। उस समय समुद्रने अर्घ्य लेकर महाराज सगरका वन्दन किया। सगरका पुत्र होनेके कारण ही समुद्रका नाम सगर हुआ। उन्होंने अश्वमेध-यज्ञके उस अश्वको पुनः समुद्रसे प्राप्त किया और उसके द्वारा सौ अश्वमेध-यज्ञके अनुष्ठान पूर्ण किये। हमने सुना है, राजा सगरके साठ हजार पुत्र थे।

मुनिोंने पूछा—साधुवर! सगरके साठ हजार पुत्र कैसे हुए? वे अत्यन्त बलवान् और चौर किस प्रकार हुए?

लोकहर्षणजीने कहा—सगरकी दो रानियाँ थीं जो तपस्या करके अपने पाप दण्ड कर चुकी थीं। उनमें बड़ी रानी विदर्भनरेशकी कन्या थी। उनका नाम केसिनी था। छोटी रानीका नाम महती था। वह अरिष्टनेमिकी पुत्री तथा परम धर्मपरायण थी। इस पृथ्वीपर उसके रूपकी समता करनेवाला दूसरी कोई स्त्री नहीं थी। महर्षि ऋषिने उन दोनोंको इस प्रकार वरदान दिया—'एक रानी साठ हजार पुत्र प्राप्त करेगी और दूसरीको एक ही पुत्र होगा, किंतु वह वंश चसानेवाला होगा। इन दो घरोंमेंसे जिसकी जिसे इच्छा हो, वह वही ले ले।' तब उनमेंसे एकने साठ हजार पुत्रोंका वरदान ग्रहण किया और दूसरीने वंश चसानेवासे एक ही पुत्रको प्राप्त करना चाहा। मुनिने 'तथास्तु' कहकर वरदान दे दिया, फिर एक रानीके राजा पञ्चजन हुए और दूसरीने बीजसे भरी हुई एक तूँबी उत्पन्न

की। उसके भीतर तिलके बराबर साठ हजार गर्भ थे। वे समयानुसार सुखपूर्वक बढ़ने लगे। राजाने उन सब गर्भोंको बीसे भरे हुए घड़ोंमें रखवा दिया और उनका पोषण करनेके लिये प्रत्येकके पीछे एक-एक धन नियुक्त कर दी। तत्पश्चात् क्रमशः दस महीनोंमें सगरकी प्रसन्नता बढ़ानेवाले वे सभी कुमार उठ खड़े हुए। पञ्चजन ही राजा बनावे गये। पञ्चजनके पुत्र अंशुमान् हुए, जो बड़े पराक्रमी थे। उनके पुत्र दिलीप हुए, जो सार्वभौमके नामसे भी प्रसिद्ध हैं, जिन्होंने स्वर्गसे यहाँ आकर दो बड़ीके ही जीवनमें अपनी बुद्धि तथा सत्यके प्रभावसे परमार्थ-साधनके द्वारा तीनों लोक जीत लिये। दिलीपके पुत्र महाराज भगीरथ हुए, जिन्होंने नदियोंमें केह गङ्गाको स्वर्गसे पृथ्वीपर उतारकर समुद्रतक पहुँचाया और उन्हें अपनी पुत्री बना लिया। भगीरथकी पुत्री होनेके कारण ही गङ्गाको भगीरथी कहते हैं। भगीरथके पुत्र राजा शुत हुए। शुतके पुत्र त्रिभाग हुए, जो बड़े धर्मात्मा थे। त्रिभागके पुत्र अम्बरीष हुए, जो सिन्धुद्वीपके पिता थे। सिन्धुद्वीपके पुत्र अमुताजित हुए और अमुताजितसे महायशस्वी ऋतुपर्णकी उत्पत्ति हुई, जो द्यूतविद्याके रहस्यको जानते थे। राजा ऋतुपर्ण महाराज नलके सखा तथा बड़े बलवान् थे। ऋतुपर्णके पुत्र महायशस्वी आर्तुपर्णि हुए। उनके पुत्र सुदास हुए, जो इन्द्रके मित्र थे। सुदासके पुत्रको सौदास कहा गया है; वे ही कल्पावपदके नामसे विख्यात हुए तथा राजा मित्रसह भी उन्हींका नाम था। कल्पावपदके पुत्र सर्वकर्मा हुए, सर्वकर्माके पुत्र अनरण्य थे। अनरण्यके दो पुत्र हुए—अनमित्र और रघु। अनमित्रके पुत्र राजा दुलिदुह थे। उनके पुत्रका नाम दिलीप हुआ, जो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीके प्रपितामह थे। दिलीपके पुत्र महाबाहु रघु हुए, जो अयोध्याके महान्वली सम्राट् थे। रघुके अज और

अजके पुत्र दशरथ हुए। दशरथसे महाकाश्यपी बर्मरथ्या श्रीरामका प्रादुर्भाव हुआ। श्रीरामचन्द्रजीके पुत्र कुशके नामसे विख्यात हुए। कुशसे अतिथिका जन्म हुआ, जो बड़े यशस्वी और धर्मात्मा थे। अतिथिके पुत्र महापराक्रमी निषध थे। निषधके नल और नलके नभ हुए। नभके पुण्डरीक और पुण्डरीकके क्षेमधन्वा हुए। क्षेमधन्वाके पुत्र महाप्रतापी देवानीक थे। देवानीकसे अहीनगु, अहीनगुसे सुधन्वा, सुधन्वासे राजा नल, नलसे

धर्मात्मा ठक्क, ठक्कसे चक्रनाभ और चक्रनाभसे नलका जन्म हुआ। मुनिवरो! पुराणमें दो ही नल प्रसिद्ध हैं—एक तो चन्द्रवंशीय वीरसेनके पुत्र थे और दूसरे इक्ष्वाकुवंशके धुरंधर वीर थे। इक्ष्वाकु-वंशके मुख्य-मुख्य पुरुषोंके नाम बताये गये। वे सूर्यवंशके अत्यन्त तेजस्वी राजा थे। अदितिनन्दन सूर्यकी तथा प्रजाओंके पोषक ब्रह्मदेव मनुकी इस सृष्टि-परम्पराका पाठ करनेवाला मनुष्य संतापमान होकर और सूर्यका स्तुत्य प्राप्त करता है।



चन्द्रवंशके अन्तर्गत जह्नु, कुशिक तथा भृगुवंशका संक्षिप्त वर्णन

लोमहर्षणाजी कहते हैं—पूर्वकालमें जब ब्रह्मजी सृष्टिका विस्तार करना चाहते थे, उस समय उनके मनसे महर्षि अत्रिका प्रादुर्भाव हुआ, जो चन्द्रमाके पिता थे। सुननेमें आया है कि अत्रिके तीन हजार दिव्य वर्षोंतक अनुसर नामकी तपस्या की थी, उसमें उनका बीर्य ऊर्ध्वगामी हो गया था। वही चन्द्रमाके रूपमें प्रकट हुआ। महर्षिका यह तेज ऊर्ध्वगामी होनेपर उनके नेत्रोंसे उसके रूपमें गिरा और दसों दिशाओंको प्रकाशित करने लगा। चन्द्रमाको गिरा देख लोकपितामह ब्रह्मजीने सम्पूर्ण लोकोंके हितकी इच्छासे उसे रथपर बिठाया। अत्रिके पुत्र महात्मा सोमके गिरनेपर ब्रह्माजीके पुत्र तथा अन्य महर्षि उनकी स्तुति करने लगे। स्तुति करनेपर उन्होंने अपना तेज समस्त लोकोंकी पुष्टिके लिये सब ओर फैला दिया। चन्द्रमाने उस ग्रेह रथपर बैठकर समुद्रपर्यन्त समुखी पृथ्वीकी इक्कीस बार परिक्रम की। उस समय उनका तो तेज चूकर पृथ्वीपर गिरा, उससे सब प्रकारके अन्न आदि उत्पन्न हुए, जिनसे यह जगत् जीवन धारण करता है। इस प्रकार महर्षिकोंके



स्वयनसे तेजको पाकर महाभाग चन्द्रमाने बहुत वर्षोंतक तपस्या की, उससे संतुष्ट होकर ब्रह्मदेवाओंमें ग्रेह ब्रह्मजीने उन्हें बाँध, ओषधि, जल तथा ब्रह्मणोंका राज बना दिया। मृदुल स्वभाववालोंमें सबसे ग्रेह सोमने यह विशाल राज्य पाकर राजसूय यज्ञका अनुष्ठान किया, जिसमें लाखोंकी

दक्षिणा बाँटी गयी। उस यज्ञमें सिनो, कुहू, द्युधि, पुष्टि, प्रभा, वसु, कीर्ति धृति तथा लक्ष्मी—इन नौ देवियोंोंने चन्द्रमाका सेवन किया। यज्ञके अन्तमें अवधूत-ज्ञानके पश्चात् सम्पूर्ण देवताओं तथा ऋषियोंने उनका पूजन किया। राजाधिराज सोम दशमें दिग्गजोंको प्रव्यसित करने लगे। महर्षियोंद्वारा सत्कृत यह दुर्लभ ऐश्वर्य पाकर चन्द्रमाकी बुद्धि भ्रान्त हो गयी। उनमें चिन्तयका भाव दूर हो गया और अनीति आ गयी; फिर तो ऐश्वर्यके मदसे मोहित होकर उन्होंने बृहस्पतिजीकी पत्नी ताराका अपहरण कर लिया। देवताओं और देवर्षियोंके बारम्बार प्रार्थना करनेपर भी उन्होंने बृहस्पतिजीको तारा नहीं लौटायी। तब ब्रह्माजीने स्वयं ही बीचमें पड़कर ताराको वापस कराया। उस समय यह गर्भिणी थी, यह देख बृहस्पतिजीने क्रुपित होकर कहा—‘मेरे क्षेत्रमें तुम्हें दूसरेका गर्भ नहीं करन करना चाहिये।’ तब उसने तुणके झूठपर उस गर्भको त्याग दिया। पैदा होते ही उसने अपने तेजसे देवताओंके विग्रहको लज्जित कर दिया। उस समय ब्रह्माजीने तारासे पूछा—‘ठीक-ठीक बताओ, यह किसका पुत्र है?’ तब यह हाथ जोड़कर बोली—‘चन्द्रमाका है।’ इतना सुनते ही राजा सोमने उस बालकको गोदमें उठा लिया और उसका वस्तक सूँघकर बुध नाम रखा। यह बालक बड़ा बुद्धिमान् था। बुध आकाशमें चन्द्रमसे प्रतिकूल दिशामें उड़ित होते हैं।

मुनिवरो! बुधके पुत्र पुण्यव्य हुए, जो बड़े विद्वान्, तेजस्वी, दानशील, यज्ञकर्ता तथा अधिक दक्षिणा देनेवाले थे। वे ब्रह्मवादी, पराक्रमी तथा शत्रुओंके लिये दुर्धर्ष थे। निरन्तर अग्रिहोत्र करते और यज्ञोंके अनुष्ठानमें संलग्न रहते थे। सत्य बोल्ते और बुद्धिको पवित्र रखते थे। तौनों लोकोंमें उनके समान यक्षस्त्री दूसरा कोई नहीं

था। वे ब्रह्मवादी, सन्त, धर्मज्ञ तथा सत्यवादी थे। इसीलिये यक्षस्त्रियों ठवशीने मान छोड़कर उनका करन किया। राजा पुण्यव्य ठवशीके साथ पवित्र स्थानोंमें ठनसठ वर्षोंतक विहार करते रहे। उन्होंने महर्षियोंद्वारा प्रशंसित प्रथागमें राज्य किया। उनके ऐसा ही प्रभजन था। पुण्यव्यके सात पुत्र हुए, जो गन्धर्वलोकमें प्रसिद्ध और देवकुमारोंके समान सुन्दर थे। उनके नाम इस प्रकार हैं—आयु, अमायसु, विश्वसु, धर्मात्मा, सुतायु, इक्षवसु, वनायु तथा कृष्णायु—ये सब ठवशीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। अमायसुके पुत्र राजा भीम हुए। भीमके पुत्र काञ्चनप्रभ और उनके पुत्र महाकली सुहोत्र हुए। सुहोत्रके पुत्रका नाम जहु था, जो केशिनोके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। उन्होंने सर्वमेध नामक महान् यज्ञका अनुष्ठान किया। एक बार गङ्गा उन्हें पति बननेके लोभसे उनके पास गयीं, किन्तु उन्होंने अनिच्छा प्रकट कर दी। तब गङ्गा ने उनकी यज्ञशास्त्र कहा दी। यह देख जहुने क्रोधमें भरकर कहा—‘गङ्गे! मैं तेरा जल पीकर तैरे इस प्रयत्नको अभी अर्घ्य किये देता हूँ। तू अपने इस चर्मका फल शीघ्र खा ले।’ यों कहकर उन्होंने गङ्गाको पी लिया। यह देख महर्षियोंने बड़ी अनुनय करके गङ्गाको जहुकी पुत्रीके रूपमें प्राप्त किया, तबसे वे जक्ष्मी कहलाने लगीं। तत्पश्चात् जहुने भुवनाश्वकी पुत्री कावेरीके साथ विवाह किया। भुवनाश्वके शापवश गङ्गा अपने आधे स्वरूपसे सरिताओंमें बँट कर कावेरीमें मिल गयी थीं। जहुने कावेरीके गर्भसे सुनय नामक धार्मिक पुत्रको जन्य दिया। सुनयके पुत्र अजक, अजकके बालकाञ्च और कलाकाञ्चके पुत्र कुश हुए। कुशके देवताओंके समान तेजस्वी चार पुत्र हुए—कुशिक, कुशनाभ, कुशव्य और मूर्तिमान्। राजा कुशिक यन्में रहकर ग्वालोंके साथ पले थे। उन्होंने इन्द्रके

समान पुत्र प्राप्त करनेकी इच्छासे तप किया। एक हजार वर्ष पूर्ण होनेपर इन्द्र अथभूत होकर उनके पास आये। उन्होंने स्वयं अपनेको ही उनके पुत्ररूपमें प्रकट किया। उस समय वे उन्मत्त गंधिके नामसे प्रसिद्ध हुए। कुरिषिककी पत्नी पीरा थी। उसीके गर्भसे गंधिका जन्म हुआ था। गंधिके एक परम सौभाग्यशालिनी कन्या हुई, जिसका नाम सत्यवती था। गंधिके उस कन्याका विवाह शुक्राचार्यके पुत्र ऋषीकके साथ किया था। ऋषीक अपनी पत्नीसे बहुत प्रसन्न रहते थे। उन्होंने अपने तथा राजा गंधिके पुत्र होनेके सिन्धे पृथक्-पृथक् चर तैयार किये और अपनी पत्नीको बुलाकर कहा—'मुने! इस चरका उपयोग तुम करना और इसका उपयोग अपनी मातासे करना।



तुम्हारी माताको जो पुत्र होगा, वह तेजस्वी क्षत्रिय होगा। लोकमें दूसरे क्षत्रिय उसे जीत नहीं सकेंगे। वह बड़े-बड़े क्षत्रियोंका संहार करनेवाला होगा तथा तुम्हारे लिये जो चर है, वह तुम्हारे पुत्रको धीर, तपस्वी, शक्तिपरायण एवं ब्रह्म ब्राह्मण

बनसेगा।' अपनी पत्नीसे यों कहकर भृगुनन्दन ऋषीक चने जंगलमें चले गये और वहाँ प्रतिदिन तपस्यामें संलग्न रहने लगे। उस समय राजा गंधिके अपनी स्त्रीके साथ तीर्थयात्राके प्रसङ्गमें भूमते हुए ऋषीकपुत्रिके आश्रयपर अपनी पुत्रीसे मिलनेमें लिये आये थे। सत्यवतीने दोनों चर ऋषिके लिये दिये थे। उसने उन्हें हाथमें लेकर अपनी माताको निवेदन किया। उसकी माताने दैववत् अपना चर पुत्रीको दे दिया और उसका चर स्वयं ग्रहण कर लिया।

उदनन्तर सत्यवतीने सप्तसप्त क्षत्रियोंका विनाश करनेवाला चर धारण किया। उसका शरीर अत्यन्त ठहीप हो रहा था। देखनेमें वह बड़ी भयङ्कर जान पड़ती थी। ऋषीकने उसे देखकर योगके द्वारा सब कुछ जान लिया और उससे कहा—'भले! तुम्हारी माताने चर बचलकर तुम्हें दग लिया। तुम्हारा पुत्र कठोर कर्म करनेवाला और अत्यन्त दारुण होगा तथा तुम्हारा भाई बड़ाभूत तपस्वी होगा; क्योंकि मैंने तपस्यासे सर्वकर्म ब्रह्मका भक्त तबमें स्थापित किया था। तब सत्यवतीने अपने पतिके प्रसन्न कसे हुए कहा—'मुने! मेरा पुत्र ऐसा न हो; आध-जैसे महर्षिके ब्राह्मणाधर्मकी उत्पत्ति हो, वह मैं नहीं चाहती।' यह सुनकर मुनि बोले—'भले! मेरा पुत्र ऐसा हो, वह संकल्प मैं नहीं किया है; तथापि पिता और माताके कारण पुत्र कठोर कर्म करनेवाला हो सकता है।' उसके यों कहनेपर सत्यवती बोली—'मुने! आप चाहें तो नूतन लोकोंकी भी सृष्टि कर सकते हैं। फिर क्यों पुत्र उत्पन्न करना मैं बड़ी चाहत है। आप मुझे शान्तिपरायण क्रोमत्त स्वभाववाला पुत्र देनेकी कृपा करें। यदि चरका प्रभाव अन्यथा न किया जा सके तो मैंसे दण्ड स्वाभाविक भीत्र भले हो हो जब, पुत्र विला कदापि न हो।' तब मुनिने

अपने तपोकालसे वैश्व ही करनेका आश्वासन देते हुए सत्यवतीके प्रति प्रसन्नता प्रकट की और कहा—‘सुन्दरि! पुत्र अभवत् पीत्र्ये मैं कोई अन्तर नहीं मानता। तुमने जो कहा है, वैश्व ही होगा।’ तत्पश्चात् सत्यवतीने भृगुवंशी जमदग्निको जन्म दिया, जो तपस्यास्त्रायण, जितेन्द्रिय तथा सर्वत्र सम्भाव रखनेवाले थे। सत्यवती भी सत्यधर्ममें तत्पर रहनेवाली पुण्यात्मा रही थी। बड़ी कौशिकी नामसे प्रसिद्ध महाकदी हुई। इक्ष्वाकुवंशमें रेणु नामके एक राजा थे। उनकी कन्याका नाम रेणुका था। रेणुकाको कामली भी कहते हैं। तप और विद्यासे सम्पन्न जमदग्निने रेणुकाके गर्भसे अत्यन्त भयङ्कर परशुरामजीको प्रकट किया, जो समस्त विद्याओंमें पारंगत, धनुर्वेदमें प्रवीण, क्षत्रिय-कुलका संहार करनेवाले तथा प्रख्यात अश्विके समान तेजस्वी थे। ऋषीकके सत्यवतीसे प्रथम तो ब्रह्मदेवाओंमें ब्रह्म जमदग्नि हुए। यध्यम पुत्र नूनःशेष और कनिष्ठ पुत्र नून-पुत्र थे। कुशिकमन्दन गाधिने विश्वामित्रको पुत्ररूपमें प्राप्त किया, जो तपस्वी, विद्वान् और सन्नत थे। ये ब्रह्मर्षिकी समानता पाकर कालावधि ब्रह्मर्षि हो गये। चर्मरत्न विश्वामित्रका दूसरा नाम विश्वरथ था। विश्वामित्रके

देवराज आदि कई पुत्र हुए, जो सम्पूर्ण विश्वमें विख्यात थे। उनके नाम इस प्रकार बतलाये जाते हैं। देवराज, कात्यायन गोत्रके प्रवर्धक कति, हिरण्यक, रेणु, रेणुक, सांकुति, गालव, मुद्गल, मधुच्छन्द, जव, देवल, अष्टक, कच्छप और हारित—ये सभी विश्वामित्रके पुत्र थे। इन कौशिकवंशी महात्माओंके प्रसिद्ध गोत्र इस प्रकार हैं—पाणिनि, बभ्रु, ध्यानजय्य, पार्थिव, देवराज, सासङ्गायन, वाष्कल, लोहितायन, हरीत और अष्टकाद्यायन। इस वंशमें ब्राह्मण और क्षत्रियका सम्बन्ध विख्यात है। विश्वामित्रके पुत्रोंमें नूनःशेष सबसे बड़ा माना गया है, यद्यपि उसका जन्म भृगुकुलमें हुआ था, तथापि वह कौशिक गोत्रवाला हो गया। हरिदशके चतुर्थमें वह पशु बनाकर खाया गया था, किन्तु देवताओंने उसे विश्वामित्रको समर्पित कर दिया। देवताओंद्वारा प्रदत्त होनेके कारण वह देवराज नामसे विख्यात हुआ। देवराज आदि विश्वामित्रके अनेक पुत्र थे। विश्वामित्रकी पत्नी दुषट्टतीके गर्भसे अष्टकका जन्म हुआ था। अष्टकका पुत्र लीहि बताया गया है। इस प्रकार वेने बहुकुलका वर्णन किया। इसके बाद महारथ आयुके वंशका वर्णन करेगा।



आयु और नहुषके वंशका वर्णन, रजि एवं ययातिका चरित्र

लोमहर्षिणाजी कहते हैं—आयुके उनकी पत्नी स्वर्धनुकुमारी प्रभाके गर्भसे पाँच पुत्र उत्पन्न हुए। ये सभी वीर और महारथी थे। सर्वप्रथम नहुषका जन्म हुआ। उनके बाद वृद्धसर्मा उत्पन्न हुए। तत्पश्चात् क्रमशः रथ्य, रजि तथा अनेक हुए। ये तीनों लोकोंमें विख्यात थे। रजिने पाँच सौ पुत्रोंको जन्म दिया। ये सभी राजेश क्षत्रियके नामसे

विख्यात हुए। उनसे इन्द्र भी उत्पन्न थे। पूर्वकालमें देवताओं तथा असुरोंमें भयंकर युद्ध आरम्भ होनेपर दोनों पक्षोंके लोगोंने ब्रह्माजीसे पूछा—‘भगवन्! आप सब भूतोंके स्वामी हैं; बताइये, हमारे युद्धमें कौन विजयी होगा? हम इस बातको ठीक-ठीक सुनना चाहते हैं।’

ब्रह्माजीने कहा—रजा रजि हथियार हाथमें



लेकर चिनके लिये पुट्ट करने, वे निःसंदेह दोनों लोकोंपर विजय प्राप्त कर सकते हैं। जिस पक्षमें रजि है, उधर ही भूति है। जहाँ भूति है वहाँ लक्ष्मी है तथा जहाँ भूति और लक्ष्मी हैं, वहाँ धर्म एवं विजय है।

यह सुनकर देवता और शम्भु दोनोंका मन प्रसन्न हो गया। वे रजिसे बात अन्तर बोले—'रजन्! आप हमारी विजयके लिये ब्रह्म धनुष और तीर लीजिये।' तब रजिने स्वार्थको सापने रखकर अपने चतकी प्रकाशमें लाले हुए उभय पक्षके लोगोंसे कहा—'देवताओं! यदि मैं अपने चतकमेंसे सप्तसप्त दैत्योंको जीतकर वर्तन; इन्द्र वन सङ्घ को तुम्हारी ओरसे युद्ध करूँगा।' देवताओंने इस शर्तको पहसे ही प्रसन्नतापूर्वक मन्त्र लिया। वे बोले—'रजन्! ऐसा ही करो। तुम्हारी मनः-कामना पूर्ण हो।' देवताओंकी यह बात सुनकर राजा रजिने असुरोंसे भी यही बात पूछी। उन आहंकारी छनवोंने स्वार्थको ही सोचकर उन्हें अधिपानपूर्वक उत्तर दिया—'रजन्! तुम इस

युद्धमें चुपचाप खड़े रहो। हमारे इन्द्र तो प्रह्लाद ही होंगे। इनके लिये हम विजय करनेको प्रभुता हैं।' देवताओंने फिर कहा—'रजन्! तुम दैत्यपक्षको जीतकर देवेन्द्र हो सकते हो।' तब रजिने उन सब छनवोंका, जो देवराज इन्द्रके लिये अवध्य थे, संहार कर डाला और देवताओंकी यह हुई सम्पत्तिको पुनः इनके छोन लिया। इस समय देवताओंमेंसे इन्द्र महाराज रजिके पास आये और अपनेको 'इनका पुत्र' घोषित करते हुए बोले—'तात। अब निःसंदेह हम सब लोगोंके



इन्द्र हैं, क्योंकि मैं इन्द्र आजसे आपका पुत्र कहलाऊँगा।' इन्द्रकी बात सुनकर इनकी मायासे खड़ब हो महाराज रजिने 'तवास्तु' कह दिया। वे इन्द्रपर बहुत प्रसन्न थे।

रज्यके कोई पुत्र नहीं था। अब अनेनाके वंशका वर्णन करूँगा। अनेनाके पुत्र महायशस्वी राजा प्रतिध्वज हुए। प्रतिध्वजके पुत्र संजय, संजयके जय, जयके विजय, विजयके कृति, कृतिके इर्वध, इर्वधके प्रतापी सहदेव, सहदेवके धर्मरत्न

नदीन, नदीनके जयसेन, जयसेनके संकृति तथा संकृतिके पुत्र महायशस्वी धर्मत्या क्षत्रबुद्ध हुए। क्षत्रबुद्धका पुत्र सुनहोत्र था। उसके कर्म, रत्न और गुत्समद—ये तीन धर्म धर्मत्या पुत्र हुए। गुत्समदके पुत्र शुनक थे। शुनकसे शौनकका जन्म हुआ। रत्नके पुत्रका नाम आर्हिषेण था। इनके कर्मण हुए। काश्यपके पुत्रका नाम काशिरा हुआ। काशिराके दीर्घतपा, दीर्घतपके वसु और वसुके पुत्र धन्वन्तरि हुए। वे काशीके महापुत्र और सब योगोंका ज्ञाता करनेवाले थे। उन्होंने भद्राश्रमसे आश्रमसे अध्ययन करके चिकित्सकका कार्य किया और उसके आठ भाग करके शिष्योंको पढ़ाया। धन्वन्तरिके पुत्र केतुमान् हुए और केतुमान्के और पुत्र भीमरथके नामसे प्रसिद्ध हुए। भीमरथके पुत्र राजा दिवोदास हुए, जो काशीके सद्यः और धर्मत्या थे। दिवोदासके उनकी पत्नी दुष्यन्तीके गर्भसे प्रतर्दन नामक पुत्र हुआ। प्रतर्दनके दो पुत्र थे—वत्स और भार्ग। वत्सके पुत्र अलर्क और अलर्कके संनति हुए। अलर्क बड़े ब्राह्मणपद और साधुप्रतिज्ञ थे। संनतिके पुत्र कर्मण्य सुनीष हुए। सुनीषके महायशस्वी श्रेय, श्रेयके केतुमान्, केतुमान्के सुकेतु, सुकेतुके धर्मकेतु, धर्मकेतुके महारथी सत्यकेतु, सत्यकेतुके राजा विभु, विभुके आनर्त, आनर्तके सुकुमार, सुकुमारके धर्मण्य भृष्टकेतु, भृष्टकेतुके राजा वेनुहोत्र और वेनुहोत्रके पुत्र राजा भार्ग हुए। प्रतर्दनके जो वत्स और भार्ग नामक दो पुत्र वत्सपुत्रे गये हैं, उनमें वत्सके वत्सभूमि और भार्गके भार्गभूमि नामक पुत्र हुए थे। काश्यपके कुलमें ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य-जतिके हजारों पुत्र हुए। अब नहुषकी संतानोंका वर्णन सुने।

नहुषके उनकी पत्नी पितृकन्या विरजके गर्भसे पाँच महाबली पुत्र हुए, जो इन्द्रके समान तेजस्वी

थे। उनके नाम थे हैं—यति, ययाति, संयाति, अयति तथा पार्वक। उनमें यति प्रबुद्ध थे। उनके बाद ययाति उत्पन्न हुए थे। यतिने ककुत्स्थकी कन्या जैसे बिकाह किया था। वे मोक्षधर्मका आश्रम से ब्रह्मस्वरूप भुनि हो गये। उन पाँच भाइयोंमें ययातिने इस पृथ्वीको जीतकर शुक्राचार्यकी पुत्री देवयानी तथा असुर-कन्या शर्मिष्ठाको पत्नीरूपमें प्राप्त किये। देवयानीने यदु और त्वर्यसुको जन्म दिया तथा नृपत्न्याकी पुत्री शर्मिष्ठा ने हुआ, अनु तथा पूर नामक पुत्र उत्पन्न किये। ययातिपर प्रसन्न हो इन्द्रने उन्हें अत्यन्त प्रकाशमय रथ प्रदान किया। उसमें उनके समान योगशस्त्री दिव्य अश्व भुटे हुए थे। ययातिने उस ब्रेह्म रथके द्वारा छः राज्योंमें ही सम्पूर्ण पृथ्वी तथा देवताओं और दानवोंको भी जीत लिया। वे पुरुषमें राजाओंके हितों दुर्धन थे। समुद्र और सातों द्वीपोंसहित सम्पूर्ण पृथ्वीको अपने अधिकारमें करके उन्होंने उसके पाँच भाग किये और उन्हें अपने पाँचों पुत्रोंमें बाँट दिया। उत्पन्न एक दिन उन्होंने यदुसे कहा—‘बेटा! कुछ आवश्यकतावश मुझे तुम्हारी युवावस्था चाहिये। तुम मेरा बुढ़ापा ग्रहण करो और मैं तुम्हारे रूपसे तरुण होकर इस पृथ्वीपर विचरूँगा।’ यह सुनकर यदुने उत्तर दिया—‘राजन्! मुझपेमें खान-पान-सम्बन्धी बहुत से दोष हैं। अतः मैं उसे नहीं ले सकता। आपके अनेक पुत्र हैं, जो मुझसे भी बढ़कर प्रिय हैं। अतः युवावस्था ग्रहण करनेके लिये किसी दूसरे पुत्रको बुलाइये।’

ययाति बोले—ओ भूर्ख! मेरा अनादर करके तैरे लिये कौन-सा आश्रम है? अथवा किस धर्मका विधान है? मैं तो तेरा गुरु हूँ, फिर मेरी बात क्यों नहीं मानता?

यों कहकर ययातिने कुपित हो यदुको शाप

दिया—'ओ पृथ्वी! तेरी संततिवशे कभी राज्य नहीं मिलेगा।' तत्पश्चात् यथातिने क्रमशः दुष्ट, दुर्वसु



तथा अनुसे भी यही बात कही, परन्तु उन्होंने भी युवावस्था देनेसे इन्कार कर दिया। तब यथातिने अत्यन्त क्रोधसे भरकर उन सबको भी पूर्ववत्



राज्य दे दिया। इस प्रकार सबको साथ दे राजाने अपने छोटे पुत्र पुरुसे भी यही प्रस्ताव किया—'कहा। यदि तुम्हें स्वीकार हो तो अपना युवावा तुम्हें देकर और तुम्हारी युवावस्था स्वयं लेकर इस पृथ्वीपर बिचरूँ।' पिताकी आज्ञाके अनुसार प्रताप पुरुने इनका युवावा ले लिया। यथाति भी पुरुके तरुण रूपसे पृथ्वीपर बिचरने लगे। ये कामनाओंका अन्त बूँदते हुए चैत्ररथ नामक वनमें गये और वहाँ बिनाबी नामक अप्सराके साथ रमण करने लगे। जब काम और भोगसे तन हो चुके, तब पुरुके जमीन जाकर उन्होंने अपना युवावा ले लिया। उस समय यथातिने जो उद्गार प्रकट किया, उसपर ध्वन देनेसे मनुष्य सब भोगोंकी ओरसे अपने मनकी इसी प्रकार हटा सकता है, वैसे कसूआ अपने अङ्गोंको सब ओरसे समेट लेता है। यथाति कोले—

यं कसू आशः कायचतुर्धरेण ताप्यति।
इतिह कुचमलोच भूय स्वाधिकर्षी॥
कक्षीय्यां जीहिष्यं हिरण्यं चलाः सिन्धुः॥
कामनेकस्य जलवीथिं कान्तं न मुह्यति॥
यदा भवं न कुली सर्वभूतेषु पापकम्।
जयन्तं मनस्य जाया हृष्टं सम्पद्यते नरा॥
यदा वेदो न विभेति यदा ज्ञानात् विभेति।
यदा वेदो न हेति यदा सम्पत्तिं लब्धः॥
यदा दुःखस्य दुर्गतिकर्षी न जीवति जीवतः।
येऽपि ज्ञानवित्तयो योगिनो युगां त्यजतः सुखम्॥
जीवीय जीवतः केवलं दुःख जीवीय जीवतः।
जयन्त जीवितवत् न जीवतोऽपि न जीवति॥
यदा कामसुखं लोके यदा दिव्यं महत्सुखम्।
पुष्पाङ्ककसुखस्यै नहिनि यदपि कल्पम्॥

(१२) ४०—४६)

'भोगोंकी इच्छा उन्हें भोगनेसे कभी रहता नहीं होती, अपितु घोरसे अगकी भाँति और भी

बढ़ती ही जाती है। इस पृथ्वीपर जितने भी पान, जी, सुवर्ण, पशु तथा स्त्रियाँ हैं, वे सब एक मनुष्यके लिये भी पर्याप्त नहीं हैं—ऐसा समझकर विद्वान् पुरुष मोहमें नहीं पड़ता। जब जीव मनुष्याणी और क्रियाद्वारा किसी भी प्राणीके प्रति पाप-बुद्धि नहीं करता, तब वह ब्रह्मभावको प्राप्त होता है। जब वह किसी भी प्राणीसे नहीं डरता तथा उससे भी कोई प्राणी नहीं डरते, जब वह हठका और द्वेषसे परे हो जाता है, उस समय ब्रह्मभावको प्राप्त होता है। छोटी बुद्धिवाले पुरुषोंद्वारा जिसका त्याग होना कठिन है, जो मनुष्यके बूढ़े होनेपर भी बूढ़ा नहीं होता तथा जो प्राणनाशक रोगके समान है, उस तृष्णका

त्याग करनेवालेको ही सुख मिलता है। बूढ़े होनेवाले मनुष्यके बाल पक जाते हैं, दाँत टूट जाते हैं, परन्तु धन और जीवनकी आशा उस समय भी स्थिर नहीं होती। संसारमें जो कामबन्धित सुख है तथा जो दिव्य सोपान महान् सुख है, वे सब भिन्न-भिन्न कृष्ण-वयसे होनेवाले सुखकी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं हो सकते।

जो कहकर राजर्षि ययाति स्त्रीसहित वनमें चले गये। वहाँ बहुत दिनोंतक उन्होंने भारी तपस्या की। तपस्याके अन्तमें भृगुपुत्र नामक तीर्थके भीतर उन्होंने सद्गति प्राप्त की। महायशस्वी ययातिने स्त्रीसहित व्रजवास करके देहका त्याग किया और स्वर्गलोकको प्राप्त कर लिया।

ययाति-पुत्रोंके वंशका वर्णन

ब्राह्मणोंने कहा—सूतजी! हमलोग पुरु, इन्द्र, अनु, यदु तथा तुर्वसुके वंशोंका पृथक्-पृथक् वर्णन सुनना चाहते हैं।

लोमहर्षणजीने कहा—मुनिवर! आपलोग महात्मा पुरुके वंशका विस्तारपूर्वक वर्णन सुनें, मैं क्रमशः सुनाता हूँ, पुरुके पुत्र सुवीर हुए, उनके पुत्रका नाम मनसु था मनसुके पुत्र राजा अभयद थे। अभयदके सुधन्वा, सुधन्वाके सुकहु, सुकहुके रौद्राश्व तथा रौद्राश्वके दशार्णेय, कुक्कनेयु, कक्षेयु, स्थण्डिलेयु, संततेयु, ऋचेयु, जलेयु, स्थलेयु, धनेयु एवं वनेयु ये दस पुत्र हुए। इसी प्रकार भद्रा, शूद्रा, मद्रा, सल्य, मल्य, खलदा, नलदा, सुरसा, गोचपला तथा स्त्रीरत्नकूटा—ये दस कन्याएँ हुईं। अत्रिकुलमें उत्पन्न महर्षि प्रभाकर उन सबके पति हुए। उन्होंने भद्राके गर्भसे परम यशस्वी सोमको पुत्ररूपमें उत्पन्न किया। राहुसे आहत होकर जब सूर्य आकाशसे पृथ्वीपर गिरने

लगे और समस्त संसारमें अन्धकार छा गया, उस समय प्रभाकरने ही अपनी प्रभा फैलायी। महर्षिने गिरते हुए सूर्यको 'तुम्हारा कल्याण हो' यह कहकर आशीर्वाद दिया। उनके इस कथनसे सूर्य पृथ्वीपर नहीं गिरे। महातपस्वी प्रभाकरने सब क्षेत्रोंमें अत्रिको ही श्रेष्ठ बनाया। अत्रिके यज्ञमें देवताओंने उनके बलकी प्रतिष्ठा की। उन्होंने रौद्राश्वकी कन्याओंसे दस पुत्र उत्पन्न किये, जो महान् सत्त्वगुणाली तथा उग्र तपस्यामें तत्पर रहनेवाले थे। वे सभी वेदोंके पराङ्गत विद्वान् तथा गोत्रप्रवर्तक हुए। स्वस्त्यात्रेय नामसे उनकी ख्याति हुई। कक्षेयुके सभानर, वाक्षुव तथा परमन्यु—ये तीन महारथी पुत्र हुए। सभानरके पुत्र कालानल तथा कलानलके धर्मज्ञ सृजय हुए। सृजयके पुत्र वीर राजा पुरजय थे। पुरजयके पुत्रका नाम जनमेजय हुआ। जनमेजयके पुत्र महाशाल थे, जो देवताओंमें भी विख्यात हुए और इस पृथ्वीपर भी उनका

यस फैला था। महाशूलके पुत्र महाभनाके नामसे विख्यात थे। देवताओं ने भी उनके सरकार किया था। उन्होंने धर्मज्ञ ठोसेन तथा महाकसी विधि—ये दो पुत्र उत्पन्न किये। उशीनरकी पाँच पत्नियाँ थीं जो राजपियोंके कुसमें उत्पन्न हुई थीं। उनके नाम इस प्रकार हैं—नृग, कृमि, नवा, दवा तथा दुमद्वती। उनसे ठोसेनके पाँच पुत्र हुए—नृगके पुत्र नृग थे, कृमिके गर्भसे कृमिका ही जन्म हुआ था। नवाके नव तथा दवाके दवासे हुए। दुमद्वतीके गर्भसे उशीनरकुमार शिबिकी उत्पत्ति हुई। शिबिकी शिबिदेशका राज्य मिला। नृगके अधिकारमें यौधेय प्रदेश आया। नवको नवरष्ट तथा कृमिकी कृमिराज्यपुरीका राज्य प्राप्त हुआ। मुत्तलके अधिकारमें अम्बह देश आया। शिबिके विधिविधायक चार पुत्र हुए बृषधर्म, सुवीर, केकय तथा भद्रक। उनके समृद्धिवाली जनपद उनके नामसे प्रसिद्ध हुए।

अब महामनाके दूसरे पुत्र तितिधुकी संतानोंका वर्णन किया जाता है। तितिधु पूर्ण दिशके राजा थे। उनके पुत्र महापरशुरमी उत्पन्न हुए। उत्पन्नके पुत्र केन, केनके सुतपा तथा सुतपाके बलि हुए। राजा बलि सोनेका तरकस रखते थे। वे बहुत बड़े योगी थे। उन्होंने इस भूतलपर बंशकी वृद्धि करनेवाले पाँच पुत्र उत्पन्न किये। उनमें सबसे पहले अङ्गकी उत्पत्ति हुई। तत्पश्चात् क्रमशः—वज्र, सुह, पुण्ड तथा कलिङ्ग उत्पन्न हुए। वे सब लोग बालेय क्षत्रिय कहलाते हैं। बलिके कुसमें बालेय ब्राह्मण भी हुए, जो बंशकी वृद्धि करनेवाले थे। ब्रह्माजीने प्रसन्न होकर बलिकी यह वर दिया कि 'तुम महायोगी होओगे। एक कल्पकी तुम्हारी आयु होगी। बलमें तुम्हारा समानकृत करनेवाला कोई न होगा। तुम धर्म-तत्त्वके ज्ञाता होओगे। संस्राममें तुम्हें कोई जीत न सकेगा। धर्ममें तुम्हारी प्रधानता होगी। तुम सबों

स्वर्गको देखभाल करोगे। सर्वत्र श्रेष्ठ माने जाओगे और चारों बगनोंको पर्याप्तके भीतर स्थापित करोगे।'

भगवान् ब्रह्माजीके यों कहनेपर बलिकी बड़ी शान्ति मिली। वे दीर्घ कालके बाद मरकर स्वर्गको गये। उनके पाँच पुत्रोंके अधिकारमें जो जनपद थे, उनके नाम इस प्रकार हैं—अङ्ग, वज्र, सुह, कलिङ्ग और पुण्डक। अब अङ्गकी संतानका वर्णन करता हूँ। अङ्गके पुत्र मङ्गराज दधिवाहन हुए। दधिवाहनके पुत्र राधा दिविरथ। दिविरथके इन्द्रकुल्य पाण्डमी और विद्वान् धर्मरथ तथा धर्मरथके पुत्र धिन्नरथ हुए। राजा धर्मरथ जब कालाञ्जलि पर्यन्तपर चढ़ करते थे, उस समय महारथा इन्द्रसे उनके साथ बैठकर सोमपान किया था। धिन्नरथके पुत्र दत्तरथ हुए, जो लोभपदके नामसे विख्यात थे। उन्होंनेकी पुत्री सान्ता थी। दत्तरथके पुत्र महापरासवी और चतुरङ्ग हुए, जो जम्भभृङ्ग मुनिकी कृपासे उत्पन्न हुए थे। चतुरङ्गके पुत्रका नाम पृथुलाश्व था। पृथुलाश्वके पुत्र महापरासवी जम्भ थे। जम्भकी राजधानी जम्भ थी, जो पहले मालिनीके नामसे प्रसिद्ध थी। जम्भके पुत्र हर्षश्च हुए। हर्षश्चके पुत्र वैभाण्डकि थे, जिनका काहन इन्द्रका ऐरावत हाथी था। उन्होंने मन्त्रद्वारा उस उत्तम हाथीको पृथ्वीपर उतारा था। हर्षश्चके पुत्र राजा भद्ररथ हुए, भद्ररथके बृहत्कर्ण, बृहत्कर्णके बृहदर्म और बृहदर्मसे बृहन्मन्त्रकी उत्पत्ति हुई थी। मङ्गराज बृहन्मन्त्रने जयद्रथ नामक पुत्र उत्पन्न किया। जयद्रथके दुडरथ, दुडरथके विश्वविजयी जनमेजय। उनके पुत्र वैकर्ण, वैकर्णके विकर्ण तथा विकर्णके भी पुत्र हुए, जो अङ्गवंशका विस्तार करनेवाले थे। वे सब अङ्गवंशी राजा बतलाये गये, जो सत्यवती, महात्म्य, पुत्रवन् तथा महारथी थे।

अब रौद्राक्षकुमार राजा ऋचेयुके बंसका वर्णन करूँगा, सुनो। ऋचेयुके पुत्र राजा मतिनार हुए। मतिनारके तीन बड़े धर्मात्मा पुत्र थे—वसुधेध, प्रतिरथ और सुबाहु। ये सभी वेदवेत्ता तथा सत्यवादी थे। मतिनारको एक कन्या भी थी, जिसका नाम इला था। वह इन्द्रावादिनी थी। उसका विवाह तंसुसे हुआ। तंसुके पुत्र राजर्षि धर्मनेत्र हुए। इनकी स्त्री उत्पलवती थी। उत्पलवतीसे उन्होंने चार पुत्र उत्पन्न किये—दुष्यन्त, सुष्यन्त, प्रवीर और अश्वत्थ। दुष्यन्तके पुत्र पराक्रमी भरत हुए, जो ऊर्मदमनके नामसे विख्यात थे। उनमें दस हजार हाथियोंका बल था। वे लकुन्तलाके गर्भसे उत्पन्न ब्रह्मवर्ती राजा थे। इन्हींके नामपर इस देशको भारतवर्ष कहते हैं। अग्निगणन्दन बृहस्पतिजीके पुत्र महामुनि भरद्वाजने भरतसे पुत्रोत्पत्तिके लिये बड़े-बड़े यज्ञोंका अनुष्ठान कराया। इसके पहले पुत्र-जन्मका सारा प्रयास व्यर्थ हो चुका था। अतः भरद्वाजके प्रयत्नसे जो पुत्र उत्पन्न हुआ, उसका नाम दत्त हुआ। दत्तके जन्मके कल्प राजा भरत स्वर्गवासी हो गये, तब भरद्वाजजी दत्तधर्मके राज्यपर अभिषिक्त करके जगमें चले गये। दत्तधर्मने पाँच पुत्र उत्पन्न किये—सुहोत्र, सुहोता, गय, गर्ग तथा महात्मा कपिल। सुहोत्रके दो पुत्र थे—महासत्यवादी कप्रिष्ठ तथा राजा गुत्समति। गुत्समतिके पुत्र ब्रह्मण, शत्रिघ्न और वैश्य—तीनों बगोंके लोग हुए।

मुनिवरो अब आजमीढ नामक दूसरे वंशका वर्णन सुनो। सुहोत्रका एक पुत्र था—बृहत्। उसके तीन पुत्र हुए—अजमीढ, द्विमीढ और पुरुमीढ। अजमीढसे नौलीके गर्भसे सुशान्ति नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। सुशान्तिसे पुरुजति और पुरुजतिसे बाह्याक्षका जन्म हुआ। बाह्याक्षके पाँच पुत्र हुए, जो समृद्धिशाली पाँच जनपदोंसे युक्त थे। उनके

नाम यों हैं—मुद्गल, सृञ्जय, राजा बृहदिषु, पराक्रमी यक्षीनर तथा कुमिलाक्ष। ये पाँचों देशोंकी रक्षाके लिये अग्राम् (समर्थ) थे; इसलिये उनके अधिकारमें आये हुए जनपद पञ्चास कहलाये। मुद्गलके पुत्र महात्मसखी मीदस्थ थे। महात्मसृञ्जयके पुत्र पञ्चजन हुए। पञ्चजनके सोमदत्त, सोमदत्तके सहदेव और सहदेवके सोमक हुए। सोमकके पुत्रका नाम जन्तु था, जिसके जो पुत्र हुए। उन सबमें छोटे वृष्ण थे, जिनके पुत्र दुष्यद हुए। ये सभी आजमीढ तथा सोमक शत्रिघ्न कहलाते हैं। अजमीढके एक और पत्नी थी, जिसका नाम था—धूमिनी। रानी धूमिनी बड़ी पतिव्रता थीं। ये पुत्रकी कामभासे प्रसन्न करने लगीं। दस हजार वर्षोंतक अत्यन्त दुष्कर तपस्या करके उन्होंने विधिपूर्वक अग्निमें इबन किया तथा पवित्रतापूर्वक निषिद्ध भोजन करके वे अग्निहोत्रके कुशोंपर ही लेट गयीं। उसी अवस्थामें राजा अजमीढने धूमिनीदेवीके साथ सम्भोग किया। इससे ऋक्ष नामक पुत्रकी उत्पत्ति हुई। ऋक्ष भूषके समान वर्णवाले एवं दर्शनीय पुरुष थे। ऋक्षसे संवरण और संवरणसे कुरु उत्पन्न हुए, जिन्होंने प्रयागसे जाकर कुरुक्षेत्रकी स्थापना की। वह बड़ा ही पवित्र एवं रमणीय क्षेत्र है। वित्तने ही पुण्यात्मा पुरुष उसका सेवन करते हैं। कुरुका महान् वंश इन्हींके नामपर कौरव कहलाया। कुरुके चार पुत्र हुए—सुधन्व, सुधनु, परोक्षित् और अरिमेजय। परोक्षित्के पुत्र जनमेजय, श्रुतसेन, अग्रसेन और भीमसेन हुए। ये सभी बलशाली और पराक्रमी थे। जनमेजयके पुत्र सुरथ हुए, सुरथके विदूरथ, विदूरथके महारथी ऋक्ष हुए। ये दूसरे ऋक्ष थे। इस सोमवंशमें दो ऋक्ष, दो ही परोक्षित्, तीन भीमसेन तथा दो जनमेजय नामके राजा हुए। द्वितीय ऋक्षके पुत्र भीमसेन थे। भीमसेनसे प्रतीय और प्रतीपसे

शान्तनु, देवापि तथा बाह्लिक—वे तीन महारथी पुत्र हुए।

अब राजर्षि बाह्लिकके वंशका वृत्तान्त सुनो। बाह्लिकके पुत्र महावशस्वी सोमदत्त थे। सोमदत्तसे भूरि, भूरिश्रवा और सत—वे तीन पुत्र हुए। देवापि देवताओंके उपाध्याय और पुनि हुए। शान्तानु करैवर्षरत्नका भ्रर वहन करनेवासे राजा हुए। अब ये शान्तनुके त्रिभुवनविद्यमान वंशका वर्णन करूँगा। शान्तनुने गङ्गाके गर्भसे देवव्रत नामक पुत्र उत्पन्न किया। देवव्रत ही भीष्म नामसे विख्यात पाण्डवोंके पितामह थे। तत्पश्चात् शान्तनुकी काली नमवासी पत्नीने विभिन्नवीर्य नामक पुत्र उत्पन्न किया, जो पिताका प्यारा तथा धर्मात्मा था। विभिन्नवीर्यकी स्त्रियोंसे श्रीकृष्णदेवचनने भृतराष्ट्र, पाण्डु तथा विदुरको जन्म दिया। भृतराष्ट्रने गन्धारीके गर्भसे सौ पुत्र उत्पन्न किये। उन सबमें दुर्लभचन ज्येष्ठ था। पाण्डुके पुत्र अर्जुन हुए। अर्जुनसे सुभद्राकुमार अभिमन्युकी उत्पत्ति हुई। अभिमन्युसे परीक्षित और परीक्षितसे जनमेजयका जन्म हुआ। जनमेजयके काश्या नामकी पत्नीसे चन्द्रपीड तथा सूर्यापीड नामक दो पुत्र हुए। इनमें सूर्यापीड मोक्ष-धर्मके ज्ञाता थे। चन्द्रपीडके महान् वानुधर सौ पुत्र थे। वे सब इस पृथ्वीपर जनमेजय क्षत्रियके नामसे प्रसिद्ध हुए। उन सौ पुरोंमें सबसे बड़ा सत्यकर्ण था, जो हस्तिनापुरमें राजा करता था। महामातु सत्यकर्ण प्रचुर दक्षिण देनेवासे थे। सत्यकर्णके पुत्र प्रतापी श्वेतकर्ण हुए। वे पुत्र न होनेके कारण तपोवनमें चले गये। वहाँ सुष्मरुकी पुत्री मालिनी, जो यदुकुलमें उत्पन्न हुई थी, वनमें आयी थी। उसने श्वेतकर्णसे गर्भ धारण किया। उस गर्भके स्थापित हो जानेपर राजा श्वेतकर्ण पहलेके किये हुए संकल्पके अनुसार महाप्रस्थानको चले। अपने त्रियम्बकी आते देख मालिनी भी

उनके पीछे लग गयी, मार्गमें उसने एक सुकुमार शिशुको जन्म दिया, किन्तु उसको भी छोड़कर वह पतितव्रता बतिका पीछे चल दी। नवजात शिशु पर्वतकी छाटीपर रो रहा था। तब उसपर कुपा करनेके लिये अक्षकशमें मेघ प्रकट हो गये। त्रिहिहाके दो पुत्र थे—पैपलादि और कौशिक। वे दोनों उस शिशुको देख दयासे हृषीभूत हो गये। उन्होंने उसे ठठाकर जलसे धोया और रक्तमें डूबे हुए उसके कर्धभागको शिस्त्रपर रगड़कर स्पर्श किया। रगड़नेपर उसको दोनों पसलियाँ बकरेकी भीति स्त्रायवर्षको हो गयीं। इसलिये उन दोनोंने उस बालकका नाम अजयपार्श्व रख दिया। उसे रमककी शासनायें दो ब्राह्मणोंने पाल-पोसकर बड़ा किया। रमककी पत्नीने अपना पुत्र बनानेके लिये उसे मोह ले लिया। सबसे वह रमककी पुत्र माना जाने लगा। दोनों ब्राह्मण उसके सचिव हुए। उन सबके पुत्र और पौत्र एक ही समयमें—समय अवसरसे हुए। वह महत्मा पाण्डवोंका पीरव-वंश बरताना लग्य। बहुचन्दन ययातिने अपनी बुद्धावस्थाका परिचयन करते समय अत्यन्त प्रसन्न हो वह उद्गर प्रकट किया था—‘सम्भव है यह पृथ्वी चन्द्रमा, सूर्य और ग्रहोंके प्रकाशसे रहित हो जाय, किन्तु करैवर्षरत्नसे सूनी वह कभी नहीं होगी।’ इस प्रकार मैंने राजा पूरुके विख्यात वंशका वर्णन किया। अब तुर्वसु, दुहसु अनु और यदुके वंशका वर्णन करूँगा।

तुर्वसुके पुत्र अहि, वह्निके गोभानु, गोभानुके उका त्रैस्तनु, त्रैस्तनुके करंधम तथा करंधमके वरुह हुए। अवीक्षित् बन्दन राजा मरुत इस मरुतसे भिन्न हैं। करंधमकुमार मरुतके कोई पुत्र नहीं था। उन्होंने बहुत दक्षिण देकर यज्ञ किया, उसमें उन्होंने दक्षिणके रूपमें महत्मा संवर्तकी अपनी संवत्त नामकी कन्या दे दी। तत्पश्चात् उन्होंने

पुरुवंशसे दुष्यन्तको गोद ले लिया। इस प्रकार ययातिके शापवश जब तुर्वसुका बंश नहीं चला, तब उसमें पौरवंशका प्रवेश हुआ। दुष्यन्तके पुत्र राजा कलशोम हुए। कलशोमसे अह्निककी उत्पत्ति हुई। अह्निकके चार पुत्र हुए—पाण्डव, कैरत, कोल तथा चोल। दुह्युके पुत्र बभ्रुसेतु, बभ्रुसेतुके अङ्गारसेतु और अङ्गारसेतुके मरुपति हुए, जो युद्धमें युवनाश्वकुमार मानवताके हाथसे मारे गये। अङ्गारसेतुके पुत्र राजा गान्धार हुए, जिनके नामपर गान्धार प्रदेश विख्यात है। गान्धारदेशके कोड़े सब घोड़ोंसे भरे होते हैं। अनुके पुत्र धर्म, धर्मके घृत, घृतके वनदुह, वनदुहके प्रचेता और प्रचेताके सुचेता हुए। ये अनुके वंशज बतलाये गये। यदुके पाँच पुत्र हुए, जो देवकुम्हारोंके समान सुन्दर थे। उनके नाम हैं—सहजान, पयोद, क्रोड, चोल और अञ्जिक। सहजानके तीन परम धर्मपुत्र हुए—हैहय, हय तथा वेणुहय। हैहयका पुत्र धर्मनेत्र हुआ। धर्मनेत्रके कर्त और कर्तके साहज नामक पुत्र हुए। साहजने साहजनी नामकी स्त्री बसायी। साहजका दूसरा नाम महिष्मान् भी था। उनके पुत्र प्रतापी भद्रश्रेष्ठ थे। भद्रश्रेष्ठके दुर्दम और दुर्दमके कनक हुए। कनकके चार पुत्र हुए, जो सम्पूर्ण विश्वमें विख्यात थे। उनके नाम इस प्रकार हैं—कृतवीर्य, कृतीज, कृतधन्वा तथा कृताग्रि।

कृतवीर्यसे अर्जुनकी उत्पत्ति हुई, जो सहस्र भुजाओंसे युक्त हो साठ द्वीपोंका राजा हुआ। उसने अकेले ही सूर्यके समान तेजस्वी रथारु संपूर्ण पृथ्वीको ओत लिया था। उसने दस हजार वर्षोंतक अत्यन्त कठोर तपस्व्य करके दत्तात्रेयजीकी आराधना की। दत्तात्रेयजीने उसे कई वरदान दिये। पहले तो उसने युद्धकालमें एक हजार पुजारें माँगीं। युद्ध करते समय किसी योगेश्वरकी भाँति

उसके एक सहस्र भुजाएँ प्रकट हो जाती थीं। उसने छौह, सप्पन्न और नगरोंसहित सम्पूर्ण पृथ्वीको कठोरतापूर्वक ओत तक्क साठ द्वीपोंमें साठ सौ यज्ञ किये, उन सभी यज्ञोंमें एक-एक लाख वर्षे दक्षिण ही गये थे। सबमें सोनेके यूप गड़े थे। सोनेकी ही वेदियाँ बनी थीं। वहाँ दिव्य वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत देवताओं और गन्धर्वोंके साथ महर्षिगण भी विष्णुनगर बैठकर सुशोभित होते थे। कर्तवीर्यके यज्ञमें नारद नामक गन्धर्वने इस महाका गान किया—'अन्य राजास्तेषां यज्ञ, दान, तपस्व्य, पराक्रम और तत्त्व-ज्ञानमें कर्तवीर्य अर्जुनकी स्थितिकी नहीं पहुँच सकते।' यह श्रेणी था; इसलिये सातों द्वीपोंमें छल, तलवार, धनुष-बाण और रथ लिये सट्ट चारों ओर बिखरता दिखायी देता था। कर्मपूर्वक प्रज्ञाकी रक्षा करनेवाले महाराज कर्तवीर्यके प्रभावसे किसीका धन बह नहीं होता था। किसीको श्रेण नहीं सताता था तथा कोई भ्रममें नहीं पड़ता था। ये सब प्रकारके राजोंसे सम्मत पुरुषर्त सज्जद थे। ये ही पशुओं तथा खेतोंके भी रक्षक थे और ये ही भोगी होनेके कारण वर्षा करते हुए भेष बन जाते थे। जैसे शरद्-ऋतुमें भास्कर भास्कर अपनी सहस्रों किरणोंसे शोभायमान होते हैं, उसी प्रकार राजा कर्तवीर्य अर्जुन अपनी सहस्रों भुजाओंसे शोभा पाते थे। उन्होंने कर्कोटक नामके पुत्रको जीतकर उन्हें अपनी पत्नी महिष्मतीपुरीमें मनुष्योंके साथ बसाया था। वे वर्षाकालमें समुद्रमें जलक्रीड़ा करते समय अपनी भुजाओंसे रोककर उसकी जलरश्मिके वेगको पीछेकी ओर लौटा देते थे। उनके राजधानीको घेरकर बहनेवाली नर्मदा नदीमें जब वे जलक्रीड़ा करते समय लोटते थे, तब समय बड़ नदी अपनी सहस्रों चञ्चल लहरोंके साथ डरती-डरती उनके पास आती थी। महासगरमें जब वे अपनी सहस्रों

धुआँ पै घटकते थे, उस समय पातालनिवासी महादेव निश्चेष्ट होकर भयसे छिप जाते थे। ऊँची



उठती हुई उठाल तरङ्गें बिभ्रुषित हो जाती थीं। बड़े-बड़े मीन और तिमि आदि बलवन्त कूटपटाने लगते थे। सागरके जलमें फेन जम जाता था। समुद्र बड़ी-बड़ी भँवरीके कारण धुध दिखाने देता था। देवताओं और असुरोंके काले हुए मन्दराचल पर्वतसे क्षीरसमुद्रकी जो दस्त हुई थी, वही दस्त वे अपने सहस्र बाहुओंसे महासागरकी कर देते थे। उस समय मन्दराचलके द्वारा समुद्र मन्थनकी बात सोचकर बकिज और अमृतोत्पत्तिसे आकर्षित हुए बड़े-बड़े नम सहसा ऊपर उठलकर देखते और भयंकर कार्तवीर्य नरेशपर दृष्टि पड़ते ही मस्तक झुककर निश्चेष्ट रह जाते थे। जैसे संध्याके समय वायुके झोंकेसे कदलीखण्ड काँपते हैं, उसी प्रकार वे भी काँपने लगते थे। राजा कार्तवीर्यने अभिमानसे भरे हुए सङ्क्रामित रज्ज्वरको अपने पाँच ही बाणोंसे सेनासहित मूर्च्छित करके धनुषकी प्रत्यक्षासे बाँध लिया और माहिष्मतीपुरीमें

सहकर बंदी बना लिया। यह समाचार सुनकर महर्षि पुलस्त्य उनके पास गये। महर्षिके याचना करनेपर उन्होंने रज्ज्वरको मुक्त कर दिया। अर्जुनकी हज़ार भुजओंमें धारण किये हुए धनुषोंकी प्रत्यक्षाका



इतना जोर सन्द होता था, माने प्रसन्नकालीन घेस गती हैं अमला सत्र पट पड़ा हो। अहो! परशुरामजीका पराक्रम धन्य है, जिन्होंने सुवर्णधम तालबन्धके समान राजा कार्तवीर्यकी सहस्रों भुजओंको काट डाला था। एक दिनकी बात है, प्वासे अग्निदेवने राजा कार्तवीर्यसे शिक्षा माँगी। उन्होंने सातों द्वीप, नगर, गाँव, गोड तथा सारा राज्य उन्हें धिक्कारमें दे दिये। अग्निदेव सर्वत्र प्रचलित हो उठे और महाराज कार्तवीर्यके प्रभावसे सभस्त पर्वतों एवं पर्वतोंको चत्तने लगे। उन्होंने वरुणपुत्रके रमणीय आश्रमको भी जला दिया। पूर्वकालमें वरुणने किस तैजस्वी महर्षिको अपने पुत्ररूपमें प्राप्त किया था, वे वसिष्ठके नापसे विख्यात हुए। उनकीका नाम आपव भी है। महर्षि वसिष्ठका मूल्य आश्रम जलाया गया था, इसलिये उन्होंने

शाप दिया—‘हैहय! तुने मेरे इस वनको भी जलाने बिना न छोड़ा, अतः तेरे द्वारा यह महान् पाप हुआ है। इस कारण मेरे-जैसा एक दूसरा वनकी ज्वाला तेरा बंध करेगा। जम्बूद्वीपमें महाबाहु परशुराम, जो बलवान् और प्रतापी है, तेरा वनपूर्वक मर-भरदन करके तेरी हजार पुत्रोंको मार डालेंगे और तुझे भीतके मार डालेंगे।’



जो शत्रुओंके नाशक और धर्मपूर्वक प्रज्जके रक्षक थे, जिनके प्रतापसे किसीके बन्धन नाश नहीं होने पाता था, वे महाराज कर्तवीर्य महापुत्रि वसिष्ठके शापवश परशुरामजीके हाथसे मृत्युको प्राप्त हुए। उन्होंने स्वयं ही पहले इसी तरहका वर

पाया था। कर्तवीर्यके सौ पुत्र थे, किन्तु उनमें पाँच ही शेष बचे। वे सभी अस्त्र-तस्त्रोंके ज्ञाता, बलवान्, शूर, धर्मात्मा और वीरवीर्य थे। उनके नाम थे—सुरसेन, शूर, वृषज, मधुपथ्य और जयपथ्य। जबपथ्य अवन्तीके महाराज थे जबपथ्यके पुत्र महाबली तासजङ्ग हुए। उनके सौ पुत्र थे, जो कलकङ्कके नामसे विख्यात थे। हैहयवंशमें धीतिहोत्र, सुजात, धीज, अवन्ति, लौण्डिकेर, तासजङ्ग तथा भरत आदि क्षत्रियोंका सम्मुख हुआ। इनकी संख्या बहुत होनेसे पृथक्-पृथक् नाम नहीं बताये गये।

वृष आदि बहुत-से पुण्यात्मा बादव इस पृथ्वीपर उत्पन्न हुए। उनमें वृष वंशके प्रवर्तक थे। वृषके पुत्र मधु थे। मधुके सौ पुत्र हुए, जिनमें वृषज वंश चलानेवाले हुए, वृषजके वृष्णि और मधुके बंसज बाधक कहलाये। इसी प्रकार मधुके नामपर बादव तथा हैहयके नामसे हैहय क्षत्रिय कहलाये हैं। जो प्रतिदिन कर्तवीर्य अर्जुनके जन्मका वृत्तन्त वही कहेंगे, उसके भनका भार नहीं होगा, उसका गह हुआ धन भी मिल जायगा। इस प्रकार क्षत्रि-पुत्रोंके पाँच वंश यहाँ बताये गये, जो समस्त लौकोंको धारण करते हैं। मधुके बंसधर पुण्यात्मा क्रोष्टुके, जिनके कुलमें वृष्णिवंशजातंस श्रीहरि श्रीकृष्णरूपमें प्रकट हुए थे, वंसका वर्णन सुनकर मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

क्रोष्टु आदिके वंशका वर्णन तथा स्वयमन्तकमणिकी कथा

लोमहर्षणजी कहते हैं—क्रोष्टुके गन्धारी और माद्री दो पत्नियें थीं। गन्धारिने महाबली अनमित्रको जन्म दिया तथा माद्रीके भुषाजित् एवं देवमीदुष् ये दो पुत्र हुए; इन तीनोंका वंश

पृथक्-पृथक् चला, जो वृष्णिकुलमें वृद्धि करनेवाला था। माद्रीके दो पुत्र और सुने जाते हैं—वृष्णि तथा अन्धक। वृष्णिके भी दो पुत्र थे—अफत्क और चित्रक। अफत्क बड़े धर्मात्मा थे। वे जहाँ

रहते, वहाँ रोगका भय नहीं होता तथा वहाँ अवृष्टि कभी नहीं होती थी। एक बार कश्यप-नरेशके राज्यमें पूरे तीन वर्षोंतक इन्द्रने वर्षा नहीं की। तब उन्होंने क्षफल्कको बुलवाया और उनका बड़ा आदर-सत्कार किया। क्षफल्कके वहाँ पहुँचते ही इन्द्रने वृष्टि आरम्भ कर दी। काशिराजके एक कन्या थी, जिसका नाम नादिनी रखा गया था। वह प्रतिदिन ब्राह्मणको एक गौ दान किया करती थी, इसीलिये उसका ऐसा नाम पड़ा था। वह क्षफल्कको पत्नीरूपमें प्राप्त हुई और उसके गर्भसे अक्षरका जन्म हुआ, जो दानै, बड़कना, वीर, शस्त्रज्ञ, अतिथिप्रेमी तथा अधिक दक्षिण देनेवाले थे। इनके अतिरिक्त उपमन्दु, मधु, मेदुर, अरिभञ्ज, अविधित, आक्षेप, शत्रुघ्न, अरिर्मदन, धर्मभृत्, यतिधर्मा, धर्मैश्वर, अन्यकर, आवाह तथा प्रतिपत्त नामक पुत्र एवं वराङ्गना नामकी सुन्दरी कन्या हुई। अक्षरके उपसेनकन्या सुगात्रोके गर्भसे प्रसेन और उपदेव नामक दो पुत्र हुए, जो देवताओंके समान कान्तिमान् थे।

चित्राके पृथु, विपृथु, अक्षप्रीव, अक्षबाहु, स्वपाशक, गलेवण, अरिहनेमि, अक्ष, सुधर्म, धर्मभृत्, सुबाहु तथा बहुबाहु नामक पुत्र एवं श्रविष्ठा और श्रवणा नामकी दो कन्याएँ हुई। देवमोदुष्वे असिकनी नामकी पत्नीके गर्भसे शूर नामक पुत्र उत्पन्न किया। शूरसे रानी भोज्यके गर्भसे दस पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें सबसे पहले महाबाहु वसुदेव उत्पन्न हुए, जिन्हें आनकदुन्दुभि भी कहते हैं। उनके जन्म लेनेके बाद देवलोकमें दुन्दुभियाँ बजी थीं और आनकें (मृदङ्गों)—की गभीर ध्वनि हुई थी, इसलिये उनका नाम आनकदुन्दुभि पड़ गया था। उनके जन्म-कालमें फूलोंकी वर्षा भी हुई थी। समस्त मन्त्र-लोकमें उनके सम्मान रूपवान् दूसरा कोई नहीं था। नरश्रेष्ठ

वसुदेवकी कान्ति चन्द्रमाके समान थी। वसुदेवके बाद क्रमशः—देवभङ्ग, देवक्रव, अनाधृष्टि, कनकक, वसुमान्, गुञ्जम्, श्याम, शमीक और गण्डूष उत्पन्न हुए। शूरके पाँच सुन्दरी कन्याएँ भी हुई, जिनके नाम इस प्रकार हैं—पुष्पकीर्ति, पृथा, श्रुतदेव, कुलक्रव तथा राजाभिदेवी। ये पाँचों वीर-पुत्रोंकी जन्मी हुई। वृष्णिके छोटे पुत्र अनीध्रिसे शिनिना जन्म हुआ। शिनिने पुत्र सत्यक हुए। सत्यकके सात्यकि उत्पन्न हुए, जिनका दूसरा नाम युवुधन था। देवभागके पुत्र महाभाग उद्धव हुए। गण्डूषके कोई पुत्र नहीं था, अतः विष्णुवसेनने उन्हें अनेक पुत्र दिये। उनके नाम इस प्रकार हैं—भालदेव, सुदेव तथा सर्वलक्षणसम्पन्न पद्माल आदि। उन सबमें छोटे थे—महाबाहु रौक्मिणेश, जो पुढसे कभी पीछे नहीं हटते थे। कनककके दो पुत्र हुए—तन्त्रिज और तन्त्रिपाल। गुञ्जमके भी दो पुत्र थे—वीर तथा अक्षहनु। श्यामके पुत्र शमीक थे। शमीक राजा हुए। उन्होंने राजसूय-यज्ञ किया था, उनके पुत्र अम्बालानु हुए।

अब वसुदेवके वीर पुत्रोंका वर्णन करूँगा। वृष्णिवंशकी अनेक शाखाएँ हैं। जो उसका स्मरण करता है, उसे कभी अनर्थकी प्राप्ति नहीं होती। वसुदेवजीके चौदह सुन्दरी पत्नियाँ थीं। पुरुवंशकी कन्या रोहिणी, मर्दिशदि, बैसाखी, भद्रा, सुनाग्री, सहदेवा, तन्त्रिदेव, श्रीदेवी, देवशिक्षा, वृकदेवी, उपदेवी तथा देवकी—ये बारह तो राजकुमारियाँ थीं और सुतनु तथा बड़का—ये दो दासियाँ थीं। ज्येष्ठ पत्नी रोहिणीने, जो बाह्यिककी पुत्री थी, वसुदेवजीसे ज्येष्ठ पुत्रके रूपमें बलरामजीको प्राप्त किया। तत्पश्चात् उनके गर्भसे शरण्य, राठ, दुर्दम्य, दम्य, शत्रु, पिण्डरक और उशीनर नामक पुत्र तथा चित्रा नामकी कन्या हुई। इस प्रकार रोहिणीकी नौ संतानें थीं। चित्रा ही आगे चलकर

सुभद्राके नामसे विख्यात हुई। वसुदेवके देवकीके गर्भसे महायज्ञस्वी भगवान् श्रीकृष्ण अवतर्ण हुए। बलरामके देवकीके गर्भसे निराश उत्पन्न हुए, जो मृता-पिताके बड़े साइले थे। सुभद्राके अर्जुनके सम्बन्धसे महारथी अभिमन्यु उत्पन्न हुआ। वसुदेवजीकी परम सौभाग्यशालिनी सती पत्नियोंसे जो पुत्र उत्पन्न हुए, उनके नाम बतलाए हैं, सुनें। हान्तिदेवके भोज और विजय, सुभद्राके बृकदेव और गद तथा त्रिगर्तराजकन्या बृकदेवीके महात्मा अगाध नामक पुत्र हुए।

क्रोधुके एक और पुत्र महायज्ञस्वी बुधिनवान् हुए। उनके पुत्र स्मृति थे। स्मृतिके पुत्र राजा उषहु हुए, जिन्होंने प्रचुर दक्षिणवासो अनेक महायज्ञोंका अनुष्ठान किया था। उषहुके पुत्र विश्रवण हुए, विश्रवणके सराबिन्दु, सराबिन्दुके पृथुश्रवा, पृथुश्रवाके अन्तर, अन्तरके सुपन्न तथा सुपन्नके उषहु हुए। उषहुका अपने धर्मके प्रति बड़ा आदर था। उषहुके पुत्र तिनेषु, तिनेषुके वस्तु, वस्तुके कम्बलवर्हिषु, कम्बलवर्हिषुके रुक्मकवच, रुक्मकवचके परशित तथा परशितके पाँच पुत्र हुए—उक्नेषु, पृथुरक्म, ज्योमय, पालित तथा हरि। पालित और हरिको पिछले विदेह प्रान्तकी रथार्ये नियुक्त कर दिया। उक्नेषु पृथुरक्मकी सहायतासे राजा हुए। इन दोनों भद्रोंने राजा ज्योमयको घरसे निकाल दिया। तब वे वनमें आश्रम बनाकर रहने लगे। उस समय शान्तिपरायण राज्यको साहसोंने बहुत कुछ समझा था। तब वे धनुष लेकर रथपर आरुढ़ हो दूसरे देशमें गये। अकेले ही नर्मदके तटपर जाकर उन्होंने मेकला, मृत्तकवती तथा ब्रह्मवन् पर्यंतको जीतकर सुक्तिम्बी नगरीमें निवास किया। ज्योमयकी पत्नी सौम्य थी, जो पतिव्रता होनेके साथ ही बड़ी प्रबल थी। यद्यपि राजाको कोई पुत्र नहीं था, तथापि उन्होंने

पत्नीके भक्तसे दूसरी स्त्रीसे विवाह नहीं किया। एक बार किलो युद्धमें विजयी होनेपर उन्हें एक कन्या मिली। उसे तत्पर बैठी देखा स्त्रीने पूछा—‘यह कौन है?’ तब वे डरकर बोले—‘यह तुम्हारी पुत्रवधू है।’ यह सुनकर रानी बोली—‘मेरे तो



कोई पुत्र नहीं, फिर यह किसकी पत्नी होनेसे पुत्रवधू हुई?’ यह सुनकर ज्योमयने कहा—‘तुम्हें जो पुत्र उत्पन्न होगा, उसके लिये यह पत्नी प्रस्तुत की गयी है।’ उत्पन्न हो रानी सौम्यने कठोर तपस्या करके एक विदर्भ नामक पुत्र उत्पन्न किया। इसका विवाह उक्त राजकन्यासे हुआ। उसके गर्भसे क्रव और कौशिक नामक पुत्र उत्पन्न हुए। वे दोनों बड़े ही शूर तथा युद्धविस्मरद थे। उसके बाद विदर्भके भीम नामक पुत्र हुआ। उसके पुत्रका नाम कुन्ति हुआ। कुन्तिसे धृष्टका जन्म हुआ, जो संग्राममें घृष्ट और प्रतापी था। धृष्टके आश्वत्थ, दशार्ह तथा विशहर नामक तीन पुत्र हुए, जो बड़े धर्मात्मा और शूरवीर थे। दशार्हके ज्योमय और ज्योमयके पुत्र जीमूत बतलाये

जते हैं। जीमूतके विकृति, विकृतिके भीमरथ, भीमरथके नवरथ और नवरथके पुत्र दशरथ हुए। दशरथके पुत्रका नाम शकुनि था। शकुनिसे करम्भ तथा करम्भसे देवराजका जन्म हुआ। देवराजके पुत्र देवक्षत्र तथा देवक्षत्रके महायशस्वी वृद्धक्षत्र हुए। वे देवकुमारके समान कानिमान् थे। इनके सिया मधुरभाषी राजा मधुका भी जन्म हुआ, जो मधुवंशके प्रवर्तक थे। मधुके उनकी पत्नी वैदर्भीसे नरश्रेष्ठ पुस्तान्की उत्पत्ति हुई। मधुकी दूसरी पत्नी श्वसुवन्तकी कन्या थी। उससे सर्वगुणसम्पन्न सत्त्वान् हुए, जो सात्वत कुलकी कीर्तिको बढ़ानेवाले थे।

सत्त्वान्से सत्त्वगुणसम्पन्न कौसल्याने भजमान, देवावध, अन्धक तथा कृष्णि नामक पुत्र उत्पन्न किये। इनके चार कुल यहाँ विस्तारपूर्वक बतलाये गये हैं। भजमानके दो स्त्रियाँ थीं। एकका नाम था आहकसुञ्जयी और दूसरीका उपनामकसुञ्जयी। उन दोनोंके गर्भसे बहुत-से पुत्र हुए। क्रिधि, क्रमण, धृष्ट, शूर तथा पुरञ्जय—ये भजमानके आहकसुञ्जयीसे उत्पन्न हुए पुत्र थे। अयुताजित्, सहस्राजित्, शताजित् और दासक—ये भजमानद्वारा उपनामकसुञ्जयीके गर्भसे उत्पन्न हुए पुत्र थे। राजा देवावध यज्ञपरायण रहते थे। उन्होंने सर्वगुणसम्पन्न पुत्र होनेके उद्देश्यसे भारी तपस्या की। तपस्यामें संलग्न होकर वे पर्णाशके अलक्ष आचमन करते थे। सदा ऐसा ही करनेके कारण उस नदीने उनका प्रिय करना चाहा। कस्त्राणमय नरेश देवावधके अभीष्टकी सिद्धि कैसे हो—इस चिन्तामें देरतक पड़ी रहनेपर भी पर्णाशा स्मरत किसी निश्चयपर न पहुँच सकी। उसे ऐसी कोई स्त्री नहीं मिली, जिसके गर्भसे वैसा सुयोग्य पुत्र उत्पन्न हो सके। तब उसने यह निश्चय किया कि मैं स्वयं ही चलकर इनकी सहधर्मिणी बनूँगी। यह विचारकर पर्णाशाने एक परम सुन्दरी कुम्भरीका

रूप धारण करके राजाको पतिरूपमें वरण किया। राजा ने भी उसकी कामना की। तदनन्तर उन उदारवृद्धि नरेशने उसमें एक तेजस्वी गर्भकी स्थापना की। तत्पश्चात् दसवें महीनेमें पर्णाशाने देववधके सर्वगुणसम्पन्न पुत्र बभ्रुकु को जन्म दिया। इस वंशके विषयमें पुराणोंके ज्ञाता देवावधके गुणोंका बखान करते हुए निम्नांकित प्रसिद्ध गाथाका गान करते हैं। 'हम जैसे आगे देखते हैं, वैसे ही दूर और निकट भी देखते हैं। हमारी दृष्टिमें बभ्रु सब मनुष्योंमें श्रेष्ठ हैं और देवावध तो देवताओंके तुल्य हैं। बभ्रु और देवावधके सम्पर्कमें आकर एक हजार चौदहतर मनुष्य अमृतत्वको प्राप्त हो चुके हैं।'

बभ्रुकु वंश बहुत बड़ा था। उसमें सब-के-सब यज्ञपरायण, महादान, बुद्धिमान, ब्राह्मणभक्त तथा सुदृढ़ आधुन धारण करनेवाले थे। मृत्तिकावती-पुरीमें भोजवन्शके क्षत्रिय रहते थे। अन्धकसे कश्यपकी कन्याने चार पुत्र प्राप्त किये—कुकुर, भजमान, सप्तक और बलबर्हिष्। कुकुरके पुत्र वृष्टि, वृष्टिके कपोतरोषा, कपोतरोषाके तित्तिरि, उसके पुनर्वसु, पुनर्वसुके अभिजित् तथा अभिजित्के आहुक एवं ग्राहुक नामक दो जुड़वाँ पुत्र हुए। इनके विषयमें ऐसी गाथा प्रसिद्ध है—'आहुक किशोरवस्थाके समान आकृतिवाले थे। वे अस्सी कवच धारण किये हुए अपने श्वेतवर्णवाले परिवारके साथ पहले यात्रा करते थे। जो भोजवन्शी आहुकके दोनों ओर चलते थे, उनमेंसे कोई ऐसा नहीं था, जो पुत्रवान् न हो। सौसे कम दान करता हो, हजार वा सौसे कम आयुवाला हो, अशुद्ध कर्म करता हो अथवा यज्ञ न करता हो। भोजवन्शी आहुककी पूर्व दिशामें इक्कीस हजार हाथी चलते थे, जिनपर सोने चोंदोंके हौदे बसे होते थे। उत्तर दिशामें भी उनकी उतनी ही संख्या होती थी।

भोजवंशी प्रत्येक भूपालकी भुजामें अनुष्की प्रत्यक्षके पिङ्ग होते थे। अन्धकवंशियोंने अपनी बहिन आहुकीका विवाह अमन्तीनरेशसे किया था। आहुकके काश्याके गर्भसे देवक और उग्रसेन नामक दो पुत्र हुए। देवकके चार पुत्र थे—देववान्, उपदेव, संदेव तथा देवरक्षक। इनके सिवा सप्त कन्याएँ भी थीं, जिनका विवाह वसुदेवजीके साथ हुआ। इनके नाम इस प्रकार हैं—देवकी, शन्तिदेवा, सुदेवा, देवरक्षिता, वृकदेवी उपदेवी और सुवर्षी। उग्रसेनके नौ पुत्र थे, जिनमें कंस बड़ा था। उससे छोटे अग्रोध, सुनाभ, कङ्क, सुभूषण, वृष्णस, सुस्तु, अन्नवृद्धि तथा पुष्टिम्न थे। इनकी पाँच बहिनें थीं—कंस, कंसवती, सुस्तु, वृष्णवती तथा कङ्का। यहाँ तक कुन्तुसंती उग्रसेन और इनकी संतानोंका वर्णन हुआ।

भजमान्के पुत्र विदूरथ हुए, जो रथियोंमें प्रधान थे। विदूरथके शूरवीर राजाभिदेव हुए। राजाभिदेवके पुत्र बड़े पराक्रमी थे। उनके नाम इस प्रकार हैं—दत्त, अतिदत्त, शोणाक्ष, श्वेतवहन्, शमी, दण्डशर्मा, वनराज तथा सगुजिह्। इन सबकी दो बहिनें थीं, जो ब्रजज और क्षत्रियके नामसे विख्यात हुईं। समीके पुत्र प्रतिशत्रु थे। प्रतिशत्रुके पुत्र स्वयम्भोज, स्वयम्भोजसे इदीक हुए। इदीकके बहुत-से पुत्र हुए, जो भयानक पराक्रम करनेवाले थे। इनमें कुतवर्मा सबसे ज्येष्ठ और सतधन्वा मध्यम था। शेष भाइयोंके नाम इस प्रकार हैं—देवान्त, नरान्त, भिन्न, वैतरण, सुपन्त, अतिदन्त, निकाश्व और कामदम्भक। देवान्तके पुत्र विद्वान् कम्बलनर्हिष् हुए। उनके दो पुत्र थे—असमीज तथा तामसीजा। असमीजाके कोई पुत्र नहीं हुआ, उन्हें सुदेव, सुधान और कृष्ण—ये पुत्र गोदमें प्राप्त हुए। इस प्रकार अन्धकवंशी क्षत्रियोंका वर्णन किया गया।

ऊपर कह आये हैं कि क्रोड्हेके दो पत्नियाँ

थीं—सन्धारी और मादी। सन्धारिने महाबली अन्नभित्रको जन्म दिया और मादीने युधाजित्को। अन्नभित्रके निष्ठ हुए। निष्ठके दो पुत्र थे—प्रसेन और सत्राजित्। वे दोनों ही सन्धारीनाको परास्त करनेवाले थे। भगवान् सूर्य सत्राजित्के प्राणोपसक्त थे। एक दिन रात्रि बीतनेपर रथियोंमें श्रेष्ठ सत्राजित् रथपर आरुढ़ हो स्नान एवं सूर्योपसक्त करनेके लिये जलके किनारे गये। वहाँ पहुँचकर जब वे सूर्योपस्थान करने लगे, उस समय भगवान् सूर्य तेजोमण्डलसे धुल स्पष्ट दिखायी देनेवाला रूप धारण करके उनके आगे प्रकट हो गये। तब राजा सत्राजित्ने सामने खड़े हुए सूर्यदेवसे कहा—'ब्रह्मे? आप जिसके द्वारा सदा सम्पूर्ण लोकोंको प्रकाशित करते हैं, वह मणिरत्न मुझे देनेकी कृपा करें।' उनके यह कहनेपर भगवान् भ्रातृकरने उन्हें दिव्य स्वप्नसकम्पि प्रदान की। सत्राजित्ने उसे गलेमें पहनकर अपने नगरमें प्रवेश किया। उन्हें देखकर सब लोग घी कहते हुए दौड़ने लगे—'यह देखो, सूर्य का रहे हैं।' इस प्रकार नगरके लोगोंको



आश्चर्यमें डालकर वे जन्तु-पुरमें पहुँचे। सज्जनित्ने यह उत्तम मणि अपने छोटे भाई प्रसेनजित्को दे दी, क्योंकि उसको वे बहुत प्यार करते थे। यह मणि अन्यजन्तुओं की आँखोंके धरमें सुवर्ण उत्पन्न करती थी। यह जहाँ रहती, उसके निकटवर्ती जनपदोंमें मेघ समकपर वर्षा करता तथा किसीकी रोगका भय नहीं रहता था। एक बार भगवान् श्रीकृष्णने प्रसेनके सम्मुख यह स्वयन्ताक जम्बू मणिरत्न लेनेकी इच्छा प्रकट की, किन्तु उसे वे नहीं पा सके। समय होनेपर भी भगवान्ने उसका बलपूर्वक अपहरण नहीं किया।

एक दिन प्रसेन उस मणिरत्नसे विभूषित हो घनमें शिकार खेलनेके लिये गये। वहाँ स्वयन्ताकके लिये ही एक सिंहके हाथसे मारे गये। सिंह उस मणिको मुखमें दबाये भागा जा रहा था। इसने ही महाबली अक्षराज जम्बवान् उभर आ निकले। वे सिंहकी माँकर मणिरत्न ले अपनी गुफामें चले गये। इधर बुद्धि और अन्यजन्तुओंके लोग यह संदेह करने लगे कि हो-न-हो श्रीकृष्णने ही मणिके लिये प्रसेनका बंध किया है, क्योंकि उन्होंने एक बार यह मणि प्रसेनसे माँगी थी। भगवान् श्रीकृष्णने यह कार्य नहीं किया था तो भी उनपर संदेह किया गया, अतः अपने कलहपूर्ण मार्जन करनेके लिये वे मणिको हँड लानेकी प्रतिज्ञा करके वनमें गये। कुछ विश्वसनीय पुरुषोंके साथ प्रसेनके चरण-चिह्नोंका पत्त लगाने हुए वे उस स्थानपर गये, जहाँ प्रसेन शिकार खेल रहे थे। गिरिधर अक्षवान् तथा उत्तम पर्वत विन्ध्यपर उनका अवलोकन करते हुए वे लोग बक मये। अन्तमें श्रीकृष्णने एक स्थानपर घोड़ेसहित मौ हुए प्रसेनकी सख देखी, किन्तु वहाँ मणि नहीं मिली। तदनन्तर बोड़ी ही दूरपर अश्वके द्वारा मारे गये सिंहका शरीर दिखायी पड़ा। अश्व अपने

चरण-चिह्नोंसे पहचान गया। उन्हीं चिह्नोंके द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण जम्बवान्की गुफाके द्वारपर पहुँचे। वहाँ उन्हें बिलके भीतरसे किसी धाँधकी कही हुई यह वाणी सुनयी ही—'मेरे सुकुमार बच्चे! तू मर रहे। सिंहने प्रसेनको मारा और सिंह जम्बवान्के हाथसे मारा गया। अब यह स्वयन्ताक-मणि तेरी ही है।'



यह अश्वाज सुनकर भगवान् श्रीकृष्णने उस गुफाके द्वारपर जलजम्बीरके साथ अन्य जन्तुओंको बिठा दिया और स्वयं उन्होंने गुफाके भीतर प्रवेश किया। बिलके भीतर जम्बवान् दिखायी दिये। भगवान् वासुदेवसे लगातार इक्कीस दिनोंतक उनके साथ वाहुयुद्ध किया। इसी बीचमें बलदेव आदि बन्धु द्वारा काँट लगे और सबको श्रीकृष्णके मारे जानेकी सूचना दे दी। इधर भगवान् वासुदेवने महाबली जम्बवान्को परास्त करके उनकी कन्या जम्बवतीको उन्हींके अनुरोधसे ग्रहण किया। साथ ही अपनी सफाई देनेके लिये वह स्वयन्ताक-मणि भी ले ली। तत्पश्चात् अक्षराजकी अभ्यर्चना

करके वे बिलसे निकलें और विनोत सेवकोंके साथ द्वारकामें गये। वहाँ सब कदवोंसे भरी हुई सभामें श्रीकृष्णने वह मणि सत्राजित्को दे दी।



इस प्रकार मिथ्या कलङ्क लगनेपर भगवान् श्रीकृष्णने स्वयन्तकम्पनि को ईद निकाला और उसे देकर अपने ऊपर आये हुए कलङ्क का मार्ज्य किया। सत्राजित्के दस पत्नियाँ थीं। उनके गर्भसे उन्हें सी पुत्र प्राप्त हुए, जिनमें तीन अधिक प्रसिद्ध थे— भोष्कार, कतपति और वसुमेध। सत्राजित्के तीन कन्यारें भी थीं, जो सब दिशज्योंमें विकसत थीं—सत्यभामा, कतिनी तथा प्रस्थपित्री। इनमें सत्यभामा सबसे उत्तम थी। उसका बिल्कल पिताने श्रीकृष्णके साथ कर दिया, जो भगवान् श्रीकृष्णके इस मिथ्य कलङ्क का श्रवण करता है, उसे मिथ्य कलङ्क कभी स्पर्श नहीं करते।

श्रीकृष्णने सत्राजित्को को स्वयन्तकम्पनि दी थी, उसका अङ्कुरने भोज्यरसो रतधन्वाके द्वारा अपहरण कर दिया। महाबली रतधन्वा सत्राजित्को मारकर वह मणि ले आया तथा अङ्कुरको दे दी।

अङ्कुरने उस उत्तम रत्नको लेते हुए रतधन्वासे प्रविष्टा करा ली कि 'मेरा मम न बताना।'

पिताके मारे जानेपर मनविघ्नी सत्यभामा दुःखसे अङ्कुर हो उठी और रथपर आरुढ़ हो बलवन्त स्पर्शमें गयी। वहाँ अपने स्वामी श्रीकृष्णको रतधन्वाकी सती करतूतें बरसकर उनके पास खड़ी हो आँसु बहाने लगी। तब भगवान् श्रीकृष्ण वृत्त हो द्वारका आ पहुँचे और अपने बड़े भाई कलराजजीसे बोले—'प्रभो! प्रसेनको तो सिंहने मार डाला और सत्राजित्को रतधन्वाने। अब स्वयन्तकम्पनि मेरे अधिकारमें आनेवाली है। अब मैं ही उसका उत्तराधिकारी हूँ, इसलिए सौत्र हो रथपर बैठिये और महाबली रतधन्वाको मारकर मणि छीन लीजिये। महाबाहो! अब स्वयन्तक हमलोहोंका ही होगा।' सदनकर रतधन्वा और श्रीकृष्णमें घोर युद्ध हुआ। रतधन्वा सब ओर अङ्कुरके आगेकी जाट देखने लगा। वह और भगवान् श्रीकृष्ण दोनों ही एक-दूसरेपर कुपित हो रहे थे। तब अङ्कुरने आज नहीं दिया, तब रतधन्वाने भयभीत हो भगवान् को विचार किया। उसके पास हृदय नमकी एक घोड़ी थी, जो ली जोवन चलती थी। वह उसीपर आरुढ़ हो श्रीकृष्णसे युद्ध कर रहा था। ली जोवनकी भारी वेगसे ही करनेके कारण वह घोड़ी भग्नकर विध्वस्त हो गयी। यह देख भगवान् श्रीकृष्णने कलराजजीसे कहा—'महाबाहो! आप वहाँ जाइएँ। मैंने उस घोड़ीकी कमजोरी देखा ली है। अब तो मैं पैदल ही जाकर अभिरत स्वयन्तकको छीन लाऊँगा।' वह बड़कर भगवान् पैदल ही रतधन्वाके पास गये और मिथिलाके समीप उन्होंने उसका बंध कर डाला, परंतु उसके पास स्वयन्तक नहीं दिखायी दिया। महाबली रतधन्वाको मारकर जब श्रीकृष्ण लौटे, तब कलराजजीने कहा—'भणि

मुझको दे दो।' भगवान् श्रीकृष्णने उत्तर दिया—'मणि नहीं मिली।' कुछ दिनोंके बाद नरमेष्ठ अक्षर अन्यकर्मोंकी चीजोंके साथ द्वारकामें लौट आये। भगवान् श्रीकृष्णने योगोंके द्वारा यह जान लिया कि मणि वास्तवमें अक्षरके ही पास है। तब उन्होंने सभामें बैठकर अक्षरसे कहा—'आर्य! मणिमेष्ठ स्वयन्तः आपके हृदय लग गया है। उसे मुझे दे दीजिये। उसकी प्रसीधमें बहुत समय व्यतीत हो चुका है।' सम्पूर्ण सादवोंकी सभामें श्रीकृष्णके जो कहनेपर महामति अक्षरजीने बिना किसी कहके यह मणि दे दी। सरलतासे उसकी प्राप्ति हो जानेपर भगवान् श्रीकृष्ण बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने यह मणि फिर अक्षरको ही लौटा दी। भगवान् श्रीकृष्णके हाथसे प्राप्त हुए मणिसे स्वयन्तःकी गलेमें पहनकर अक्षर सूर्यकी



भाँति प्रकाशित होने लगे।

जम्बुद्वीप तथा उसके विभिन्न वर्षोंसहित भारतवर्षका वर्णन

मुनिजीने कहा—अहो! आपने समस्त भारतवर्षी राजाओंका यह बहुत बड़ा इतिहास कह सुनया। अब हमें समस्त भूमण्डलका वर्णन सुनना चाहते हैं। जितने समुद्र, द्वीप, वर्ष, पर्वत, वन, नदियाँ तथा पवित्र देवताओंके स्थान हैं, समस्त भूतलका मान जितना बड़ा है, जिसके अन्धकारपर यह टिका हुआ है तथा जो इसका उपपादान कारण है, वह सब यथार्थरूपसे बतलाइये।

स्नेहवर्णजी बोले—मुनिवरो! सुनो, मैं इस भूमण्डलका वृत्तान्त संक्षेपमें सुनता हूँ। जम्बु, प्लक्ष, शाल्मल, कुश, क्रौञ्च, शाक तथा पुष्कर—ये सात द्वीप हैं, जो क्रमशः—स्वर्ण, इमुरस, सुरा, वृत्, दधि, दुग्ध तथा अलक्ष्म सात समुद्रोंसे घिरे

हुर हैं। इन सबके बीचमें जम्बुद्वीपकी स्थिति है। उसके मध्यभागमें सुवर्णपर्व मेरुपर्वत है, जिसकी ऊँचाई चौतरसी हजार योजन है। यह पृथ्वीके भीतर सोलह हजार योजनतक खला गया है तथा उसके शिखरकी चौड़ाई बत्तीस हजार योजन है, उसके मूलका विस्तार सोलह हजार योजन है। यह पर्वत पृथ्वीरूपी कमलकी कर्णिकके रूपमें स्थित है। उसके दक्षिणमें हिमवान्, हेमकूट और निषध पर्वत हैं तथा उत्तरमें नील, शैल और नृक्षवान् गिरे हैं। मध्यके दो पर्वत (निषध और नील) एक-एक लाख योजन लंबे हैं। शेष पर्वत क्रमशः दस-दस हजार योजन छोटे होते गये हैं। उन सबकी ऊँचाई और चौड़ाई दो-दो हजार

योजन है। मेरुके दक्षिणमें भारतवर्ष है। उससे उत्तर किम्बुरुषवर्ष तथा उससे भी उत्तर हरिकर्ष है। इसी प्रकार मेरुके उत्तर भागमें सबके अन्तमें रम्यकवर्ष, उससे दक्षिण हिरण्यवर्ष तथा उससे भी दक्षिण उत्तरकुश है। इन चारों वर्षोंके बीचमें इलावृतवर्ष है, जिसके मध्यभागमें सुवर्णमय कैला मेरुपर्वत खड़ा है। यह वर्ष मेरुके चारों ओर नौ हजार योजनतक फैला हुआ है। उसमें मेरुसे पूर्व मन्दराचल, दक्षिणमें गन्धमादन, पश्चिममें विपुल तथा उत्तरमें सुपादपर्वतकी स्थिति है। इन चारों पर्वतोंपर क्रमशः—कदम्ब, जम्बू, पीपल और बट—ये चार वृक्ष हैं, जो ग्यारह-ग्यारह सौ योजन विस्तारके हैं। ये वृक्ष इन पर्वतोंकी ध्वजाके रूपमें सुशोभित हैं। यह जम्बू-वृक्ष ही इस द्वीपके जम्बूद्वीप नाम पड़नेका कारण है। उसके फल विशाल मषराजके बराबर होते हैं। वे गन्धमादनपर्वतपर सब ओर गिरकर फूट जाती हैं। उनके रससे वहाँ जम्बू नाथकी नदी बहती है। वहकि विवासी इसी नदीका जल पीते हैं। उसके पीनेसे लोगोंके शरीर और मन स्वस्थ रहते हैं। उन्हें खेद नहीं होता। उनके शरीरमें दुर्गन्ध नहीं होती तथा उनकी इन्द्रियो कभी क्षीण नहीं होती। जम्बूके रसको चाकर उस नदीके तटकी मिट्टी जाम्बूनद नामक सुवर्णके रूपमें परिणत हो जाती है, जो सिद्धोंके आभूषणके काम आती है। मेरुसे पूर्व भद्राक्ष और पश्चिममें केतुमालवर्ष हैं। इन दोनोंके बीचमें इलावृतवर्ष है। मेरुके पूर्वमें वैज्ररथ, दक्षिणमें गन्धमादन, पश्चिममें वैभाक्ष तथा उत्तरमें गन्दनवन है। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न दिशाओंमें अरुणोद, महारथ, असितोद तथा मानस—ये चार सरोवर हैं, जो सदा देवताओंके उपायोगमें आते हैं। शन्तवान्, चक्रकुञ्ज, कुररी, माल्यवान् तथा वैकञ्च अदि

पर्वत मेरुके पूर्वभागमें केसराचलके रूपमें स्थित हैं। त्रिकूट, शिशिर, पतञ्ज, रुचक तथा निवध आदि दक्षिणभागके केसर-पर्वत हैं। शिखिवास, वैदूर्य, कपिल, गन्धमादन और जारुधि आदि पश्चिमभागके केसराचल हैं। शङ्खकूट, श्रवण, इंस, नाग तथा कालज्वर आदि अन्य पर्वत उत्तरभागके केसराचल हैं। मेरुगिरिके ऊपर चौदह हजार योजनके विस्तारवाली एक विशाल पुरी है, जो ब्रह्माजीकी सभा कहलाती है। उसमें सब ओर आठों दिशाओं और विदिशाओंमें इन्द्र आदि लोकपालोंके विश्वस्त नगर हैं।

जम्बू विष्णुके चरणोंसे निकलकर चन्द्रमण्डलके अन्तर्लक्षित करनेवाली यज्ञा ब्रह्मपुरीके चारों ओर गिरती है। वहाँ गिरकर ये चार भागोंमें बँट जाती हैं। उस समय उनके क्रमशः—सीता, अलकनन्दा, जम्बू और भद्रा नाम होते हैं। पूर्व ओर सीता एक पर्वतसे दूसरे पर्वतपर होती हुई पूर्ववर्ती भद्राक्षवर्षके मार्गसे समुद्रमें जा मिलती है। इसी प्रकार अलकनन्दा दक्षिण-पश्चिमसे भारतवर्षमें आती और वहाँ सब भेदोंमें विभक्त होकर समुद्रमें मिल जाती है। जम्बूकी भारा पश्चिमके सम्पूर्ण पर्वतोंकी लीककर केतुपासवर्षमें आती और समुद्रमें मिल जाती है। इसी प्रकार भद्रा उत्तरगिरि तथा उत्तरकुम्भके लीककर उत्तरसमुद्रमें मिलती है। माल्यवान् और गन्धमादनपर्वत नीलगिरिसे लेकर निवधपर्वततक फैले हुए हैं। उन दोनोंके मध्यभागमें मेरु कर्णिकारके आकारमें स्थित है। भारत, केतुमाल, भद्राक्ष तथा कुश—ये द्वीप लोककपी कमलके पत्र हैं। जठर और देवकूट—ये दो मर्यादा-पर्वत हैं। ये नीससे निवध पर्वततक उत्तर-दक्षिण फैले हुए हैं। ये दोनों मेरुके पश्चिमभागमें पूर्ववर्त्त स्थित हैं। त्रिशुङ्ग और अरुधि—ये उत्तर-दिशाके वर्षपर्वत हैं जो पूर्वसे पश्चिमी ओर समुद्रके भीतरतक चले गये हैं।

ब्राह्मणों! इस प्रकार मैंने मरुतपर्वतोंका वर्णन किया, जो मेरुके चारों ओर दो-दो करके स्थित हैं। मेरुपर्वतके सब ओर जो केसरपर्वत बहस्रपर्वत हैं, उनकी गुफाएँ बड़ी मनोहर हैं, जिनमें सिद्ध और चारण निवास करते हैं। वहाँ सुरम्य वन और नगर हैं। लक्ष्मी, विष्णु, अग्नि, सूर्य तथा इन्द्र आदि देवताओंके बड़े-बड़े मन्दिर हैं, जो कितनेसे सेवित हैं। उन पर्वतोंकी रमणीय गुफाओंमें गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, ऐतन् और दानव दिन-रात बिहार किया करते हैं। वे पर्वत इस पृथ्वीके स्वर्ग माने गये हैं। वहाँ धर्मात्माओंका निवास है, जहाँ मनुष्य सैकड़ों जन्म धारण करनेपर भी वहाँ नहीं जा सकते। भारद्वाजधर्म भगवान् विष्णु हयग्रीवरूपसे विराजमान हैं। केतुपालमें चारुह, भारतवर्षमें कच्छप तथा उत्तरकुशमें मात्सरूप धारण करके रहते हैं। सर्वेश्वर भगवान् श्रीहरि सर्वस्वरूप हैं तथा विश्वरूपमें वे सर्वत्र सुशोभित होते हैं। अक्षिल जगरत्वरूप भगवान् विष्णु सबके आधारभूत हैं। किम्बुरुष आदि जो आठ वर्ष हैं, उनमें शोक, आयास, उद्वेग तथा क्षुधाका भय आदि दोष नहीं हैं। वहाँकी प्रजा सब प्रकारसे स्वस्थ, निर्भय तथा सब प्रकारके दुःखोंसे रहित है। उन सबकी स्थिर आयु दस-चारह हजार वर्षोंतककी होती है। इन स्थानोंमें पृथ्वीके क्षुधा, पिप्पसा आदि अन्य दोष भी नहीं प्रकट होते। इन सभी जगोंमें साल-साल कुल-पर्वत हैं, जिनसे सैकड़ों नदियाँ प्रकट हुई हैं।

समुद्रके उत्तर और हिमालयके दक्षिणका जो देश है, उसका नाम भारतवर्ष है। उसीमें राजा भरतकी संतान तथा प्रजा रहती है। उसका विस्तार नौ हजार योजन है। भारतवर्ष कर्मभूमि है वहाँ इच्छानुसार साधन करनेवालोंको स्वर्ग तथा मोक्ष प्राप्त होते हैं। भारतमें महेन्द्र, मलय,

सुह्र, सुकिमान्, श्रेष्ठ, विन्ध्य और पारिखत्र—ये सात कुलपर्वत हैं। वहाँ सकाम साधनसे स्वर्ग प्राप्त होता है, निष्काम साधनसे मोक्ष मिलता है तथा वहाँके लोग पाप करनेपर तिर्यग्योनि और नरकोंमें भी पड़ते हैं। भारतके सिवा अन्यत्र मनुष्योंके सिवा कर्मभूमि नहीं है। इस भारतवर्षके नौ भेद हैं—इन्द्रद्वीप, कसेतुमान्, ताम्रवर्ण, नभस्तिमान्, पाण्ड्वीप, सौम्यद्वीप, मन्वर्वद्वीप, बाह्वद्वीप तथा समुद्रसे घिरा हुआ यह नवौं द्वीप भारत। यह नवम द्वीप दक्षिणसे उत्तरतक एक हजार योजन संवा है। इसके अंदर पूर्व-दिशामें किरात तथा पश्चिम-दिशामें यवन रहते हैं; मध्यमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र जातिके लोग रहते हैं, जिनकी क्रमशः—यज्ञ, पुत्र, नाशिव्य तथा सेवा—ये चार वृत्तियाँ हैं। समुद्र (सातलज) और चन्द्रभागा (चनाब) आदि नदियाँ हिमालयकी शाखाओंसे निकली हैं। वेदस्मृति आदि संहिताओंका उद्गम पारियात्र-पर्वत है। नर्मदा और सुरम्मा आदि नदियाँ विन्ध्यपर्वतसे प्रकट हुई हैं। तापी, यमोष्णी, निर्मन्ध्या तथा कावेरी आदि संहिताएँ श्रेष्ठकी शाखासे निकली हैं। इनका नाम व्रज करनेवात्रसे ये सब पापोंको हर लेती हैं। गोदावरी, भीमरथी तथा कृष्णवेणी आदि पापनाशिनी नदियाँ सह्यपर्वतकी संतानें हैं। कृतमाला, ताम्रपर्णी आदिका उद्गमस्थान मलयपर्वत है। त्रिसंध्य, अधिकुल्य आदि नदियाँ महेन्द्रपर्वतसे प्रकट हुई हैं। अधिकुल्य और कुम्भार आदि नदियाँ सुकिमान्के शाखापर्वतोंसे निकली हैं। इन नदियोंकी शाखाभूत सहस्रों उपनदियाँ भी हैं इनके मध्यमें कुरु, खड्गाक्ष, मध्यदेश, पूर्वदेश, कामरूप (आसाम), वैण्ड्य, कलिङ्ग (उड़ीसा), मगध, दक्षिणके प्रदेश, अपरान्त, खैराट (काठियावाड़), शुद्र,

आभीर, अर्बुद (आबू), मठ (मरवाड़), मल्लवा, पारियात्र, स्वामी, सिंध, सारण्य, साकन्य, मरु, अम्बष्ठ तथा पारसीक आदि प्रदेश और वहाँके निवासी रहते हैं। वे उपर्युक्त नदियोंके जल पीते तथा समभावसे रहते हैं। उक्त प्रदेशोंके लोग बड़े सौभाग्यशाली एवं दृढ़-पुष्ट हैं। इन सबका निवास भारतवर्षमें ही है। महामुने। सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग—ये चार युग इस भारतवर्षमें ही होते हैं, अन्यत्र कहीं नहीं होते। यहीं पारलौकिक लाभके लिये यति तपस्या करते, पञ्चकर्ता अग्निमें आहुति डालते तथा दास्य अदरपूर्वक दान देते हैं। जम्बूद्वीपमें मनुष्य सदा अनेक यज्ञोंद्वारा यज्ञमय यज्ञपुठक भगवान् विष्णुका भजन करते हैं। अन्य द्वीपोंमें दूसरे प्रकारकी उपासगार्य है। महामुने। जम्बूद्वीपमें भी भारतवर्ष सबसे बड़ा है; क्योंकि यह कर्मभूमि है और अन्य देश भोगभूमि हैं। यहाँ लाखों जन्म धारण करनेके बाद बहुत बड़े पुण्यके

संचयसे जीव कभी मनुष्य-जन्म प्राप्त है। देवता यह भीत गते हैं कि 'जो जीव स्वर्ग और मोक्षके हेतुभूत भारतवर्षके भूभागमें चारबार मनुष्यरूपमें अवतार होते हैं और फलेश्चरसे रहित कर्मका अनुष्ठान करके उन्हें परमात्मस्वरूप श्रीविष्णुको अर्पण कर देते हैं, वे धन्य हैं।' जो इस कर्मभूमिमें उत्पन्न हो सकर्मोंद्वारा अपने अन्तःकरणको शुद्ध करके भगवान् अनन्तमें लीन होते हैं, उनका जीवन धन्य है। हमें पता नहीं, इस स्वर्गलोककी प्राप्ति करनेवाले पुण्यलोकके क्षीण होनेपर हम फिर कहीं रहे चरण करेंगे। वे मनुष्य, जो भारतवर्षमें जन्म लेकर सम्पूर्ण इन्द्रियोंसे सम्पन्न हैं, धन्य हैं।' विष्णुदेव। यह नै कहींसे कुछ जम्बूद्वीपका वर्णन किया गया। उसका विस्तार एक लाख योजन है तथापि वहाँ संक्षेपसे ही बताया गया। जम्बूद्वीपको गोलाकारमें चारों ओरसे घेरकर खारे पानीका समुद्र स्थित है। उसका विस्तार भी एक लाख योजन है।



प्लक्ष आदि छः द्वीपोंका वर्णन और भूमिका मान

सोमहर्षज्योति कहते हैं—जिस प्रकार जम्बूद्वीप खारे पानीके समुद्रसे घिरा हुआ है, उसी प्रकार उस समुद्रकी भी घेरकर प्लक्षद्वीप स्थित है। जम्बूद्वीपका विस्तार एक लाख योजन बताया गया है। प्लक्षद्वीपका विस्तार उससे दुगुण है। प्लक्षद्वीपके स्वामी राजा मेधातिथिके सात पुत्र हुए। उनमें ज्येष्ठ पुत्रका नाम रत्नसमय है। उससे छोटे क्रमशः शिशिर, सुखोदय, अन्नन्द, सिन्ध,

क्षेपक तथा ध्रुव हैं। ये सभी प्लक्षद्वीपके राजा हुए। इन्हींके नामपर उस द्वीपके सात वर्ष हैं। उनकी स्त्रीय बन्नेवाले सात ही वर्षपर्वत हैं। उनके नाम बरहस्पति हैं, सुनो। गोमेद, चन्द्र, नारद, दुन्दुभि, सोमक, सुमना तथा वैभाज—ये सात वर्षपर्वत हैं। इन रथजीय पर्वतोंपर देवताओं और धन्वंतरीसहित बर्होंकी प्रजा निवास करती है। उन सबमें पवित्र जनपद हैं, वीर पुरुष हैं। वहाँ

* अत्रापि भारतं ब्रह्मं जम्बूद्वीपे स्थानुः। भजे हि कर्मपूरेण फलोऽप्यत्र भोगभूमयः।
अत्र जन्ममृत्युसाक्षात् ब्रह्मसंस्पर्शः सत्यम्। कदाचित्काले जन्तुर्मानुष्यं पुण्यसङ्ग्रहात्।
वाच्यं देवाः किं गौरवमिदं भगवान्। ये प्लक्षभूमिके। स्वर्गलोकस्य हेतुभूते भवन्ति भूयः पुण्या मनुष्याः।
कर्मजपसंस्कारादप्यत्राहं संनश्य विष्णो परमात्मने।

किसीकी मृत्यु नहीं होती। प्लनसिक चित्तार्थ तथा व्याधियों भी नहीं सताती। वहाँ हर समय सुख मिलता है। प्लक्षद्वीपके वर्षोंमें सप्त ही ऐसी नदियाँ हैं, जो समुद्रमें जा मिलती हैं। अनुतप्ता, शिखा, विप्राशा, त्रिदिवा, क्रमु, अमृता तथा सुकृता—ये सात वहाँकी नदियाँ हैं। इस प्रकार प्लक्षद्वीपके प्रधान-प्रधान पर्वतों और नदियोंका वर्णन किया गया। छोटी-छोटी नदियाँ और छोटे-छोटे पहाड़ तो वहाँ हजारों हैं। उन वर्षोंमें युगोंकी व्यवस्था नहीं है। वहाँ सदा ही प्रेतायुगके समान समय रहता है। प्लक्षद्वीपसे लेकर शाल्मलद्वीपके लोग पाँच हजार वर्षोंतक नीरोग जीवन व्यतीत करते हैं। उन द्वीपोंमें वर्षाक्रम-विभागपूर्वक चार प्रकारका धर्म है तथा वहाँ चार ही वर्ष हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—आर्यक, कुल, विविध तथा भावी। ये क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रकी कोटिके हैं। उस द्वीपके मध्यभागमें प्लक्ष (पाकड़) नामका बहुत बिताल वृक्ष है, जो जम्बूद्वीपमें स्थित जम्बू (जामुन) वृक्षके ही बराबर है। उसीके नामपर उस द्वीपका प्लक्षद्वीप नाम रखा गया है। प्लक्षद्वीपमें आर्यक आदि वर्षोंके लोग जगत्पट्टा सर्वेश्वर भगवान् श्रीहरिको चन्द्रमण्डलके रूपमें यज्ञ करते हैं। प्लक्षद्वीप अपने ही कारण विस्तारवाले मण्डलाकार इक्षुरसके समुद्रसे घिरा हुआ है। अब शाल्मलद्वीपका वर्णन सुनो।

शाल्मलद्वीपके स्वामी चीर वपुष्मान् हैं। उनके सात पुत्र हैं और उनके नामपर वहाँ सप्त वर्ष स्थित हैं। जिनके नाम इस प्रकार हैं—केत, हरित, जीमूत, रोहित, वैद्युत, मानस तथा सुप्रभ। इक्षुरसका जो समुद्र बताया गया है, वह अपने दुगुने विस्तारवाले शाल्मलद्वीपके द्वारा सब ओरसे घिरा हुआ है। वहाँ भी सात ही वर्षपर्वत हैं, जहाँ रत्नोंकी खानें हैं। नदियाँ भी सात ही हैं। पहले

पर्वतोंके नाम सुनो। कुमुद, उन्नत, वलाहक, द्रोण, कज्जु, महिष तथा पर्वतश्रेष्ठ ककुद्यान्—ये सात पर्वत हैं। इनमें द्रोणपर्वतपर कितनी ही महीबधियाँ हैं। नदियोंके नाम इस प्रकार हैं—श्रीणी, तोया, वितुम्बा, चन्द्रा, सुकर, विमोक्षनी तथा भिद्वति। वहाँ छेत् अग्नि सात वर्ष हैं, जिनमें चारों वर्षोंके लोग निवास करते हैं। शाल्मलद्वीपमें कपिल, अरुण, पीत तथा कृष्ण वर्षोंके लोग होते हैं, जो क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र माने जाते हैं। ये सब लोग यज्ञपरायण हो सबके आत्मा, अभिन्नरथी एवं यज्ञमें स्थित भगवान् विष्णुकी वायुरूपमें आराधना करते हैं। इस अत्यन्त मनोहर द्वीपमें देवताओंका सांनिध्य बना रहता है। वहाँ शाल्मलि नामका महान् वृक्ष है, जो उस द्वीपके नामकरणका कारण बना है। यह द्वीप अपने समान विस्तारवाले सुराके समुद्रसे घिरा हुआ है और वह सुराका समुद्र शाल्मलद्वीपसे दुगुने विस्तारवाले कुसद्वीपद्वारा सब ओरसे आवृत है। कुसद्वीपमें ज्योतिष्मान् राजा हैं, अब उनके पुत्रोंके नाम बताताये जाते हैं, सुनो—उदित, वेजुमान्, सुरध, रम्भन्, धृति, प्रभाकर और कपिल। इन्हेंकि ज्योंपर कहेंकि सात वर्ष प्रसिद्ध हैं। वहाँ मनुष्योंके साथ-साथ दैत्य, दानव, देवता, गन्धर्व, वक्ष और किन्नर आदि भी निवास करते हैं। वहकि मनुष्योंमें भी चार ही वर्ष हैं, जो अपने-अपने कर्तव्यके पालनमें तत्पर रहते हैं। उन वर्षोंके नाम इस प्रकार हैं—दमी, शुष्मी, जेह तथा मन्देह। ये क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रकी व्रेणीमें बताये गये हैं। ये सांस्तोत्र कर्मोंका ठीक-ठीक पालन करते और अपने अधिकारके आरम्भक कर्मोंका श्रव्य होनेके लिये कुराद्वीपमें ब्राह्मणकी भगवान् जनार्दनको यज्ञ करते हैं। विहुम, हेमसैल, सुतिष्ठन्, पुष्टिष्ठन्, कुलेश्वर, हरि और मन्दवर्चल—ये

सात उस द्वीपके वर्षर्षवर्ष हैं। नदियाँ भी सात हो
 हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—धृतपाव, सिन्ध,
 पवित्र, सम्पति, विष्णु, अम्भस् तथा गङ्गा। ये
 सब पापोंका अपहरण करनेवाली नदियाँ हैं।
 इनके अतिरिक्त भी वहाँ बहुत-सी छोटी-छोटी
 नदियाँ और पर्वत हैं। कुशद्वीपमें कुशोंका बहुत
 बड़ा वन है, अतः उसीके नामपर उस द्वीपकी
 प्रसिद्धि हुई है। वह द्वीप अपने ही कारण
 विस्तारवाले घीके समुद्रसे घिरा हुआ है।

भूमिधरो! उपर्युक्त घीका समुद्र क्रीडद्वीपसे घिरा
 हुआ है। उसका विस्तार कुशद्वीपसे दुगुण है।
 क्रीडद्वीपके राजा धृतिमान् हैं। महात्म्य धृतिमान्के
 सात पुत्र हैं। महात्म्य धृतिमान्ने अपने पुत्रोंके ही
 नामसे क्रीडद्वीपके सात विभाग किये, जिनके नाम
 ये हैं—कुशाग, मन्दग, उष्ण, पौवर, अन्धकारक,
 पुनि और दुन्दुभि। क्रीडद्वीपमें भी बड़े ही मनोरम
 सात वर्षर्षवर्ष हैं, जिनपर देवता और गन्धर्व निवास
 करते हैं। उनके नाम ये हैं—क्रीड, वायव्य,
 अन्धकारक, देवव्रत, धर्म, पुण्डरीककान् तथा दुन्दुभि।
 ये एक-दूसरेसे दुगुने बड़े हैं। जितने द्वीप हैं, द्वीपोंमें
 जितने पर्वत हैं तथा पर्वतोंद्वारा सीमित जितने वर्ष
 हैं, उन सभी रमणीय प्रदेशोंमें देवताओंसहित
 समस्त प्रजा वेशटोंके निवास करती है। क्रीडद्वीपमें
 पुष्कल, पुष्कर, धन्य तथा समस्त—ये चार वर्ण हैं,
 जो क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रकी
 कोटिके माने गये हैं। वहाँ छोटी-बड़ी सैकड़ों
 नदियाँ हैं, जिनमें सत्त प्रधान हैं—गौरी, कुम्भद्वी,
 संख्या, रात्रि, पञ्चजम्ब, खगति तथा पुण्डरीक।
 क्रीडद्वीपके निवासे इन्हीं नदियोंका जल पीते हैं।
 वहाँ पुष्कर आदि वर्षोंके लोग बड़ेके सम्येय
 ध्यानयोगके द्वारा स्रस्वरूप भगवान् जनार्दनका
 पूजन करते हैं। क्रीडद्वीप अपने समस्त परीक्षकवाले
 दधियन्त्रोद नामक समुद्रसे घिरा हुआ है तथा वह

समुद्र भी साकट्टीपसे आवृत है। साकट्टीपका
 विस्तार क्रीडद्वीपसे दून् है। उसके स्वामी महात्म्य
 भव्य हैं। उनके सात पुत्र हैं, जिन्हें राजने उस
 द्वीपके सात विभाग करके वहाँका राज्य दिया है।
 उसपुत्रोंके नाम ये हैं—जम्ब, कुमार, सुकुमार,
 मन्तेरक, कुसुमोद, गोदाकि तथा महामुन। इन्हींके
 नामोंका वहकि सात वर्ष प्रसिद्ध हुए हैं। वहाँ भी
 सात पर्वत हैं, जो जम्ब आदि वर्षोंकी सीमा
 निर्धारित करते हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—उदयगिरि,
 जलधर, रैचतक, स्वाम्, अम्भोगिरि, आस्तिकेय
 तथा केसरी। वहाँ एक (सामान्य) का बहुत बड़ा
 बुध है, वहाँ सिद्ध और गन्धर्व निवास करते हैं।
 उसके पक्षोंको छूकर बहनेवाली वायुका स्पर्श
 होनेसे बड़ा आनन्द मिलता है वहकि पवित्र
 जनपद चार वर्षोंके लोगोंसे सुसंरक्षित है। साकट्टीपमें
 महात्म्य पुरुष निर्धम एवं वीरोंका होकर निवास करते
 हैं। वहाँकी नदियाँ भी परम पवित्र तथा सब
 पापोंका नाश करनेवाली हैं। उनके नाम ये हैं—
 सुकुम्भरी, कुमारी, नलिनी, रेणुका, इक्षु, धेनुका तथा
 गन्धर्व। इनके अतिरिक्त वहाँ छोटी-छोटी हजारों
 नदियाँ हैं। पर्वत भी सहस्रोंकी संख्यामें हैं।
 जम्बद्वीप वर्षोंके निवासी बड़ी प्रसन्नताके भाव
 पूर्वक नदियोंका जल पीते हैं। माग, मागध, मानस
 तथा मन्दग—ये ही वहाँके चार वर्ण हैं। माग
 ब्राह्मण, मागध क्षत्रिय, मानस वैश्य तथा मन्दग शूद्र
 जानने चाहिये। साकट्टीपमें रहनेवाले लोग अपने
 मन और इन्द्रियोंको संयममें रखकर तत्पर
 साकट्टीपके द्वारा सूर्यरूपधारी भगवान् विष्णुका
 पूजन करते हैं। साकट्टीप अपने ही कारण विस्तारवाले
 औरस्यगरद्वारा सब ओरसे घिरा हुआ है।

औरस्यगरको पुष्करद्वीपने चारों ओरसे घेर
 रखा है। उसका विस्तार साकट्टीपसे दुगुना है।
 पुष्करके महाराज जवनको दो पुत्र हुए—महावीर

और धातकि। उन्हीं दोनोंके नामपर उस द्वीपके दो विभाग हुए हैं एकका नाम महावीतधर्ष और दूसरेका धातकिधर्ष है। उस द्वीपमें एक ही वर्ष-पर्वत है, जो मानसोत्तरके नामसे विख्यात है। यन्मसोत्तरपर्वत पुष्करद्वीपके मध्यभागमें बसायाकर स्थित है। उसकी ऊँचाई पचास हजार योजनकी है, चौड़ाई भी उतनी ही है। वह उस द्वीपके चारों ओर मण्डलाकार स्थित है। वह पुष्करद्वीपको बीचसे चीरता हुआ सा खड़ा है। इसीसे विभक्त होकर उस द्वीपके दो खण्ड हो गये हैं। प्रत्येक खण्ड गोलाकार है और उन दोनों खण्डोंके बीचमें वह महापर्वत स्थित है। वहाँके मनुष्य दस हजार वर्षोंतक जीवित रहते हैं। वे सब लोग रोग-शोकसे वर्जित तथा रोग-द्वेषसे मुक्त होते हैं। उनमें कैच-बीचका कोई भेद नहीं है। वहाँ न कोई वाय्व है, न अधिक। वहाँके लोगोंने ईर्ष्या, अहंता, भय, रोष, दोष और लोभ आदि नहीं होते, महावीतधर्ष मानसोत्तरपर्वतके ऊपर है और धातकिधर्ष भीतर, उसमें देवता और दैत्य आदि सभी निवास करते हैं। पुष्करद्वीपमें सूर्य और असाध्य नहीं हैं। उसके दोनों खण्डोंमें न कोई नदी है न दूसरा पर्वत। वहाँके मनुष्य देवताओंके सम्मान रूप और बेषवाले होते हैं। उन दोनों वर्गोंमें वर्ण और आश्रमका आचार नहीं है। वहाँ किसीके धर्मका अपहरण नहीं होता, वेदत्रयी, शास्त्र (कर्म-वाणिज्य आदि), दण्डनीति तथा सुश्रूषा आदिक व्यवहार भी नहीं देखा जाता; अतः उक्त दोनों वर्ग भूमण्डलके उत्तम स्वर्ग समझे जाते हैं। वहाँका प्रत्येक समय सबके लिये सुखद होता है। किसीको जरा-अवस्था या रोगका कष्ट नहीं होता। पुष्करद्वीपमें एक बरगदका विशाल वृक्ष है जो ब्रह्माजीका उत्तम स्थान माना गया है। उसके नीचे देवता और असुरोंसे पूजित भगवान् ब्रह्म निवास करते हैं।

पुष्करद्वीप अपने समान विस्तारवाले मीठे जलके समुद्रसे घिरा है। इस प्रकार सातों द्वीप सात समुद्रोंसे आवृत हैं। एक द्वीप और समुद्रका विस्तार समान माना गया है। उसकी अपेक्षा दूसरे समुद्र और द्वीप दुगुने बड़े हैं। सब समुद्रोंमें सदा समान जल रहता है। उसमें कभी न्यूनता या अधिकता नहीं होती। जैसे बटलोईमें रखा हुआ जल आगक संयोग होनेसे उफन उठता है, वही प्रकार चन्द्रमाकी वृद्धि होनेपर समुद्रके जलमें चार आता है। उसका जल बढ़ता है और फिर घट जाता है; तथापि उसमें न्यूनता या अधिकता नहीं होती। शुक्ल और कृष्णपक्षमें चन्द्रमाके उदय और अस्त होनेपर समुद्रके जलका उन्धाव पंद्रह सौ अंगुल ऊँचेतक देखा गया है। उन्धानके बाद जल पुनः उतारमें आ जाता है। पुष्करद्वीपमें सबके लिये भोजन स्वतः उपस्थित हो जाता है, वहाँकी सम्स्त प्रजा सदा चरसमुक्त भोजन करती है। स्वर्दिष्ट जलवाले समुद्रके दोनों तटोंपर लोकोंकी स्थिति देखी जाती है। उसके आगेकी भूमि सुवर्णमयी है, जिसका विस्तार पुष्करद्वीपसे दुगुना है। वहाँ किसी भी जीव-जन्तुका निवास नहीं है। उसके आगे लोकालोकपर्वत है, जो दस हजार योजनतक फैला हुआ है। उसकी ऊँचाई भी उतने ही योजनोंकी है। लोकालोक-पर्वतके बाद अन्यकार है, जो उस पर्वतको सब ओरसे आच्छादित करके स्थित है। अन्यकार भी अण्डकटाहके द्वारा सब ओरसे घिरा है। इस प्रकार अण्डकटाह, द्वीप तथा पर्वतोंसहित इस सम्पूर्ण पृथ्वीका विस्तार पचास करोड़ योजन है। वह भूमि सबका धारण-पोषण करनेवाली है। इसमें सब भूतोंकी अपेक्षा अधिक गुण हैं। वह सम्पूर्ण जगत्की आधारभूता है।

पाताल और नरकोंका वर्णन तथा हरिनाम-कीर्तनकी महिमा

लोकमहर्षणजी कहते हैं—मुनिवरों! इस प्रकार यह पृथ्वीका विस्तार बतलाया गया। इसकी ऊँचाई भी सत्तर हजार योजन है। पृथ्वीके भीतर सात तल हैं, जिनमेंसे प्रत्येककी ऊँचाई दस-दस हजार योजनकी है। उन सातों तलोंके नाम ये हैं—अतल, वितल, मितल, सुतल, तलवत्सल, रसातल तथा पाताल। इनकी भूमि क्रमशः काली, सफेद, लाल, पीली, कैंकरीली, पथरीली तथा सुवर्णभूमी है। सातों ही तल बड़े-बड़े महलोंसे सुशोभित हैं। उनमें दानव और दैत्योंकी ऐकहों जातियाँ निवास करती हैं। विशालकाय नागोंके कुटुम्ब भी उनके भीतर रहते हैं। एक समय पातालसे लींटे हुए देवर्षि नारदजीने स्वर्गलोककी सभामें कहा था—‘पाताललोक स्वर्गलोकसे भी रमणीय है। वहाँ सुन्दर प्रभायुक्त चमकीली मणियाँ हैं, जो परम आनन्द प्रदान करनेवाली हैं। वे नागोंके अलंकारों एवं आभूषणोंके काम आती हैं। भस्त्रा, पातालकी तुलना किससे हो सकती है। वहाँ सूर्यकी किरणों दिनमें केवल प्रकाश फैलाती हैं, धूप नहीं। इसी प्रकार चन्द्रमाकी किरणें रातमें केवल उजाला करती हैं, मर्दों नहीं फैलाती। वहाँ सर्प और दैत्य आदि भक्ष्य, भोग्य तथा सुरापानके मदसे उन्मत्त होकर यह नहीं जान पाते कि कब कितना समय बीता है। वहाँ वन, नदियाँ, रमणीय सरोवर, कमलवन तथा अन्य मनोहर वस्तुएँ हैं, जो बड़े सौभाग्यसे भोगनेको मिलती हैं। पाताल-निवासी दानव, दैत्य तथा सर्पगण सदा ही उन सबका उपभोग करते हैं। सब फलफलोंके नीचे भगवान् विष्णुका तपोमय विग्रह है, जिसे सोचनाग कहते हैं। दैत्य और दानव उनके गुणोंका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हैं।

सिद्ध पुरुष उन्हें अनन्त कहते हैं, देवता और देवर्षि उनकी पूजा करते हैं। वे सहस्रों मस्तकोंसे सुशोभित हैं। स्वस्तिकाकार निर्मल आभूषण उनकी शोभा बढ़ाते हैं। वे अपने फणोंकी सहस्रों मणियोंसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित करते हैं तथा संसारका कल्याण करनेके लिये सम्पूर्ण असुरोंकी शक्ति हर लेते हैं। उनके कानोंमें एक ही कुण्डल शोभा पाता है। मस्तकपर किरीट और गलेमें मणियोंकी माला धारण किये भगवान् अनन्त अग्निकी ज्वालासे प्रकाशमान श्वेत पर्वतकी भाँति शोभा पाते हैं। वे नील वस्त्र धारण करते, मदसे मत्त रहते और क्षेत हारसे ऐसे सुशोभित होते हैं, माने आकाशगङ्गाके प्रपातसे युक्त उत्तम कैलास पर्वत शोभा पा रहा हो। उनके एक हाथका अग्रभाग हलपर टिका रहता है और दूसरे हाथमें वे उत्तम मूसल धारण किये हुए हैं। प्रलयकालमें विषाग्निकी ज्वालाओंसे युक्त संकर्षणात्मक रुद्र उन्हींके मुखोंसे निकलकर तीनों लोकोंका संहार करते हैं, सम्पूर्ण देवताओंसे युक्त वे भगवान् शेष पातालके मूलभागमें स्थित हो अपने मस्तकपर समस्त भूगण्डलको धारण किचे रहते हैं। उनके वीर्य, प्रभाव, स्वरूप तथा रूपका वर्णन देवता भी नहीं कर सकते। जिनके मस्तकपर रखी हुई सम्पूची पृथ्वी उनके फणोंकी मणियोंके प्रकाशसे लाल रंगकी फूलमाला-सी दिखायी देती है, उनके पराक्रमका वर्णन कौन कर सकता है? भगवान् अनन्त जब जैभाई लेते हैं, उस समय पर्वत, समुद्र और वनोंसहित यह सारी पृथ्वी झेलने लगती है। गन्धर्व, अप्सरा, सिद्ध, किन्नर और सर्प—काँई भी उनके गुणोंका अन्त नहीं पाते, इसीलिये उन अविनाशी प्रभुको

अनन्त कहते हैं। जिनके ऊपर नागवधुओंके हाथोंसे चढ़ाया हुआ हरिचन्दन कांकर लस-वाधुके लगनेसे सम्पूर्ण दिशाओंको सुवासित करता रहता है, प्राचीन ऋषि गर्गने जिककी आराधना करके सम्पूर्ण ज्योतिष-शास्त्रका यथार्थ ज्ञान प्राप्त किया था, उन्हीं नागश्रेष्ठ भगवान् सेवने इस पृथ्वीको धारण कर रखा है और वे ही देवता, असुर तथा मनुष्योंके सहित समस्त लोकोंका धरण-पोषण करते हैं।

ब्राह्मणों! पातालके अनन्तर रौरव अग्नि नरक हैं जिनमें पापियोंको गिराया जाता है। उन नरकोंके नाम बतलाता हूँ, सुनो। रौरव, शौकर, रोध, तान, विशसन, महाज्वाल, तप्तकुम्भ, महालोध, विमोहन, रुधिरान्ध, वसातप्त, कृमीश, कृमिधोवन, अक्षिपत्रवन, लालाभक्ष, पूयवह, वह्नियाल, अधः-शिरा, संदंश, कुष्णामूत्र, तप्त, रुध्रेवन, अप्रतिष्ठ तथा अर्धोष्णि इत्यादि बहुत-से नरक हैं, जो अस्पन्न भयंकर हैं वे सब घमके राज्यमें हैं। शस्त्र, अग्नि और विषके द्वारा घातना देनेके कारण वे सभी नरक अत्यन्त भयंकर हैं। जो मनुष्य पापकर्मोंमें लगे रहते हैं, वे ही उन नरकोंमें गिरते हैं जो झूठी गवाही देता, पक्षपातपूर्वक बोल्ता तथा असत्य भाषण करता है, वह मनुष्य रौरव-नरकमें पड़ता है। जो गर्भके बच्चेकी हत्या करता, गुरुके प्राण लेता, गायको मारता तथा दूसरोंके खास ऐककर मार डालता है, वे सभी घोर रौरव नरकमें गिरते हैं। सराबी, बड़ाहत्याग्रा, सुवर्णकी चोरी करनेवाला तथा इन पापियोंसे संसर्ग रखनेवाला मानव शौकर नरकमें जाता है। जो क्षत्रिय और वैश्यकी हत्या करता, गुरुपत्नीसे संसर्ग रखता, बहनके साथ व्यभिचार करता तथा राजदूतके प्राण लेता है, वह तप्तकुम्भ नामक नरकमें पड़ता है। जो सराब तथा सिंहको बेचता

और अपने भक्तका त्याग करता है, वह तप्तलोह नामक नरकमें गिरता है। पुत्री और पुत्र-वधुके साथ सम्प्राप्त करनेवाला पापी महाज्वाल नामक नरकमें गिराया जाता है। जो नीच अपने गुरुजनोंका अपमान करता, उन्हें गालियों देता, वेदोंको दूषित करता, उन्हें बेचता तथा अग्र्या स्त्रियोंके साथ सम्प्राप्त करता है, वे सभी शबल नामक नरकमें जाते हैं। चोर तथा मर्यादामें कसकू लगानेवाला मनुष्य विमोह नामक नरकमें गिरता है। देवताओं, द्विजों तथा पितरोंसे द्वेष रखनेवाला एवं रक्तको दूषित करनेवाला मनुष्य कृमिधक्ष नामक नरकमें पड़ता है। जो दूषित यज्ञ करता और देवताओं, पितरों एवं अतिथियोंको दिये बिना ही स्वयं खा लेता है, वह लालाभक्ष नामक भयंकर नरकमें जाता है। बाण बनानेवाला वैधवा नामके नरकमें गिरता है। जो कर्णों नामक बाण तथा खड्ग अदि आयुधोंका निर्माण करता है। वह अस्पन्न भयंकर विशसन नामक नरकमें गिराया जाता है। जो द्विज नीच प्रतिग्रह स्वीकार करता है। यज्ञके मन्त्रधिकारियोंसे यज्ञ करवाता है तथा केवल नक्षत्र बताकर जीविका चलाता है, वह अधोमुख नामक नरकमें जाता है। जो अकेला ही मिठाई खाता है, वह मनुष्य कृमिपूय नामक नरकमें जाता है। लाख, मोस, रस, तिल और नमक बेचनेवाला ब्राह्मण भी ठसी नरकमें पड़ता है। बिल्ली, भुर्गी बकरा, कुत्ता, सूअर तथा चिड़िया पालनेवाला भी कृमिपूयमें ही गिरता है। जो ब्राह्मण रक्षमक्षपर नचकर जीविका चलाता, नाव चलाता, जारज मनुष्यका अन्न खाता, दूसरोंको जहर देता, जुगली खाता, पैससे जीविका चलाता, पर्वक दिन स्त्रीसम्भोग करता, दूसरोंके घरमें आग लगाता, मित्रोंकी हत्या करता, मनुज बताकर पैस लेता, गाँवधरकी पुरोहिती करता तथा सोमरस बेचता है वह

रुधिरान्ध नामक नरकमें गिरता है। भईको मारनेवाला और समूचे गाँवको नष्ट करनेवाला मनुष्य वैतरणी नदीमें जाता है। जो बोर्य पान करते, मर्यादा तोड़ते, अपवित्र रहते और कबजोगरोसे जीविका चलाते हैं, वे कृच्छ्र नामक नरकमें गिरते हैं। जो अकारण ही जंगल कटवाता है, वह अक्षिपत्रवन नामक नरकमें जाता है। भेड़के व्यापारसे जीविका चसनेवाले और मृगोंका वध करनेवाले बह्मिष्वात नामक नरकमें गिराये जाते हैं। जो व्रतका लोप करनेवाले तथा अपने आश्रमसे भ्रष्ट हैं, वे दोनों ही संदत्त-भरकको मातनामें पड़ते हैं। जो मनुष्य ब्रह्मचारी होकर दिनमें सोते और स्वप्नमें बोर्यपात करते हैं तथा जो लोग अपने पुत्रोंद्वारा पकड़े जाते हैं, वे शर्भजिन नामक नरकमें गिरते हैं। वे तथा और भी सहस्रों नरक हैं जिनमें पापी मनुष्य सततमें डालकर पीड़ित किये जाते हैं। ऊपर जो पाप गिनाये गये हैं, उनके अतिरिक्त दूसरे भी सहस्रों प्रकारके पाप हैं, जिनका फल नरकमें पड़े हुए पापी जीव भोगते हैं।

जो लोग मन, वाणी और क्रियद्वारा अपने वर्ण और आश्रमके विपरीत आचरण करते हैं, वे नरकोंमें पड़ते हैं। नरकमें पड़े हुए जीव नीचे मुँह करके लटक कर दिये जाते हैं और उसी अवस्थामें वे स्वर्गमें सुख भोगनेवाले देवताओंको देखते हैं। इसी प्रकार देवता भी उक्त अवस्थामें पड़े हुए नरकके जीवोंको देखते रहते हैं। ऐसा होनेसे

बढ़ती है। स्थावर, कीट, जलचर पक्षी पशु, मनुष्य, धर्मरत्न, देवता तथा मोक्षप्राप्त महात्मा—ये क्रमशः एकसे दूसरे सहस्रगुने श्रेष्ठ हैं। महर्षियोंने पापोंके अनुरूप प्रायश्चित्त भी बतलाये हैं। स्वयम्भुव मनु आदि स्मृतिकारोंने बड़े पापके लिये बड़े और छोटे पापके लिये छोटे प्रायश्चित्त बतलाये हैं। वे सब तपस्कारूप हैं। तपस्कारूप जो सप्तसप्त प्रायश्चित्त हैं, उन सबमें भगवान् श्रीकृष्णका निरन्तर स्मरण श्रेष्ठ है। पाप कर लेनेपर जिस पुरुषको उसके लिये पक्षघात होता है, उसके लिये एक बार भगवान् श्रीहरिका स्मरण कर लेना ही सर्वोत्तम प्रायश्चित्त है। प्रातःकाल, रात्रि, संध्या तथा मध्याह्न आदिमें भगवान् नारायणका स्मरण करनेवाला मनुष्य तत्काल पापमुक्त हो जाता है। भगवान् विष्णुके स्मरण और कीर्तनसे सप्तसप्तशतारिहिके क्षीण हो जानेपर मनुष्य मुक्त हो जाता है। विप्रवरो। जप, होम और अर्चन आदिके समय जिसका मन भगवान् वासुदेवमें लगा होता है, वह तो मोक्षका अधिकारी है। उसके लिये फलरूपसे इन्द्र आदिके पदको प्राप्ति विनिश्चय है। कहीं तो जहाँसे पुनः लौटना पड़ता है, ऐसे स्वर्गलोकमें जाना और कहीं मोक्षके सर्वोत्तम जोज वासुदेवमन्त्रका जप! इनमें कोई तुलना ही नहीं है।* इसलिये जो पुरुष रत्न-दिन भगवान् विष्णुका स्मरण करता है, वह अपने सप्तसप्तशतकोंका नाश हो जानेके कारण कभी नरकमें

* प्रायश्चित्तान्दरीषाणि तपःकामात्मकानि च। यानि तेनमतेषां कृष्णानुस्मरणं परम्॥
कृते पापेऽनुतापो वै यस्य पुनः प्रकाशते। प्रायश्चित्तं तु तस्यैकं हरिर्धर्मस्मरणं परम्॥
प्रातर्निशि तथा संध्यामध्याह्नादिषु संस्मरन्। नरावप्यस्यप्रोति सद्यः पापसर्वं नर॥
विष्णुसंस्मरणं श्रीनारायणस्तोत्रसंक्षेपः। मुक्तिं इच्छति भो विद्या विष्णोस्तस्मान्मुक्तोर्त्तनात्॥
वासुदेवे मनो यस्य यपहोमार्चनादिषु। तस्मान्मरणे विप्रेन्द्रा देवेन्द्रत्वादिके फलम्॥
यस्य यत्कृत्वागमनं पुनरावृत्तिर्नाभयः। यः यजे वासुदेवेति मुक्तिर्भोजयनुष्यम्॥

नहीं पड़ता एक ही वस्तु समय समयपर दुःख सुख, ईर्ष्या और क्रोधका कारण बनती है। अतः केवल दुःखरूप वस्तु कहाँसे आयी? वही वस्तु पहले प्रसन्नताका कारण होकर फिर दुःख देनेवाली बन जाती है। फिर वही क्रोध और प्रसन्नताका भी हेतु बनती है। इसलिये कोई भी वस्तु न तो दुःखरूप है न सुखरूप। वह सुख और दुःख आदि तो मनका विकारमात्र है।*

ज्ञान ही परब्रह्मका स्वरूप है और अज्ञान बन्धनका कारण है। यह सम्पूर्ण विश्व ज्ञानस्वरूप है। ज्ञानसे बढ़कर कुछ भी नहीं है। ब्राह्मणों विद्या और अविद्याको भी ज्ञानरूप ही समझो। इस प्रकार मैंने तुमसे समस्त भूमण्डल, पाताल नरक, समुद्र, पर्वत, द्वीप, वर्ष तथा नदियोंका संक्षेपसे वर्णन किया। अब और क्या सुनना चाहते हो?



ग्रहों तथा भुवः आदि लोकोंकी स्थिति, श्रीविष्णुशक्तिका प्रभाव तथा शिशुमारचक्रका वर्णन

मुनिपौत्रे कहा—महाभाग लोमहर्षजजी! अब हम भुवः आदि लोकोंका, ग्रहोंकी स्थितिका तथा उनके परिमाणका यथार्थ वर्णन सुनना चाहते हैं। आप कृपापूर्वक बतलावें।

लोमहर्षजजी बोले—सूर्य और चन्द्रमाकी किरणोंसे समुद्र, नदी और पर्वतोंसहित जितने भागमें प्रकाश फैलता है उतने भागको पृथ्वी कहते हैं। पृथ्वी विस्तृत होनेके साथ ही गोलाकार है। पृथ्वीसे एक लाख योजन ऊपर सूर्यमण्डलकी स्थिति है और सूर्यमण्डलसे लाख योजन दूर चन्द्रमण्डल स्थित है। चन्द्रमण्डलसे लाख योजन ऊपर सम्पूर्ण नक्षत्रमण्डल प्रकाशित होता है। नक्षत्रमण्डलसे दो लाख योजन ऊँचे बुधकी स्थिति है। बुधसे दो लाख योजन शुक्र स्थित है। शुक्रसे दो लाख योजन मङ्गल, तथा मङ्गलसे दो लाख योजन ऊँचे देवगुरु बृहस्पति स्थित हैं।

बृहस्पतिसे दो लाख योजन ऊपर शनैश्चर हैं और उनसे एक लाख योजन ऊँचे सप्तर्षिमण्डल स्थित हैं। सप्तर्षियोंसे लाख योजन ऊपर ध्रुव हैं जो समस्त ज्योतिर्मण्डलके केन्द्र हैं। ध्रुवसे ऊपर महर्लोक है, जहाँ एक ब्रह्मपति जीवित रहनेवाले महात्मा पुरुष निवास करते हैं। उसका विस्तार एक करोड़ योजन है। उसके ऊपर जनलोक है, जिसका विस्तार दो करोड़ योजन है। वहीं शूद्र अन्तःकरणवाले ब्रह्मकुमार सनन्दन आदि महात्मा निवास करते हैं। जनलोकसे ऊपर उससे चौगुने विस्तारवाला तपोलोक स्थित है जहाँ शरीररहित वैराज आदि देवता रहते हैं। तपोलोकसे ऊपर सत्यलोक प्रकाशित होता है, जो उससे छ गुना बड़ा है। वहीं सिद्ध आदि एवं मुनिजन निवास करते हैं। वह पुनर्वन्म एवं पुनर्मृत्युका निवारण करनेवाला लोक है। अहर्भूतक पैरोंसे जाने योग्य

* कल्पत्रैकमेव दुःखाय सुखायैर्व्येष्टाय च । कोपय च कास्तस्माद् वस्तु दुःखात्मकं कुतः ॥
तदेव प्रीतयं भूत्या पुनर्दुःखाय जायते । तदेव कोपय वतः प्रसादाय च जायते ॥
तस्माद्दुःखात्मकं नास्ति न च किञ्चित्सुखान्मकम् । फलतः परिणामोऽयं सुखदुःखादिलक्षणः ॥

पार्थिव वस्तु है, उसे भूलोक कहा गया है; उसका विस्तार पहले बताया जा चुका है। भूमि और सूर्यके बीचमें जो सिद्ध एवं सुनिश्चित क्षेत्र प्रदेश है, वह भुवलोक कहा गया है। यही दूसरा लोक है। भुव और सूर्यके बीचमें जो चौदह लाख योजन विस्तृत स्थान है, उसे लोक-स्थितिका विचार करनेवाले पुरुषोंने स्वर्गलोक बतलाया है। भू- भुवः और स्वः—इन्हीं तीनोंको त्रैलोक्य कहते हैं। विद्वान् ब्राह्मण इन तीनों लोकोंको कृतक (नाशवान्) कहते हैं। इसी प्रकार ऊपरके जो जल, तप और सत्य नामक स्तोक हैं, वे तीनों अकृतक (अविनाशी) कहलाते हैं। कृतक और अकृतकके बीचमें महलोक है, जो कृतककृतक कहलाता है। यह कल्पवृक्षमें जनशून्य हो जाता है, किंतु यह नहीं होता। ब्राह्मणे! इस प्रकार ये सप्त महलोक बतलाये गये हैं। फलाल भी सत्य ही हैं। यही सम्पू्ण ब्रह्माण्डका विस्तार है।

यह ब्रह्माण्ड ऊपर, नीचे तथा किनारेकी ओरसे अण्डकटाहद्वारा घिरा हुआ है—ठीक उसी तरह, जैसे कैथक बीज सब ओर छिन्नकेसे ढका रहता है। उसके बाद सम्पू्ण अण्डकटाहसे दसगुने विस्तारवाले जलके आवरणद्वारा यह ब्रह्माण्ड आवृत है। इसी प्रकार जलका आवरण भी बाहरकी ओरसे अग्निमय आवरणद्वारा घिरा हुआ है। अग्नि वायुसे, वायु आकाशसे और आकाश महत्तत्त्वसे आवृत है। इस प्रकार ये सातों आवरण उत्तरोत्तर दसगुने बड़े हैं। महत्तत्त्वको आवृत करके प्रधान—प्रकृति स्थित है। प्रधान अनन्त है। उसका अन्त नहीं है और न उसके मापकी कोई संख्या ही है। यह अनन्त एवं अर्संख्यत बतलाया गया है। यही सम्पूर्ण जगत्का उपादान है। उसे ही परा प्रकृति कहा गया है। उसके भीतर ऐसे-ऐसे कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड स्थित हैं। जैसे लकड़ीमें

अग्न और तिलमें तेल व्याप्त रहता है, उसी प्रकार प्रधान अर्थात् प्रकृतिमें जेठन पुरुष व्याप्त है। ये प्रकृति और पुरुष एक-दूसरेके आश्रित हो भगवान् विष्णुकी शक्तिके दिके हुए हैं। श्रीविष्णुकी शक्ति ही प्रकृति और पुरुषके पृथक् एवं संयुक्त होनेके कारण है। विप्रवरुण! यही सृष्टिके समय प्रकृतिमें लोभका कारण होती है। जैसे वायु जलके कर्णोंमें रहनेवाली सीतस्ताकासे धारण करती है, उसी प्रकार भगवान् विष्णुकी शक्ति प्रकृति-पुरुषरूप सम्पूर्ण जगत्को धारण करती है। जैसे प्रथम बीजसे मूल, तने और शाखा आदिसहित विशाल वृक्ष उत्पन्न होता है, फिर उस वृक्षसे अन्यान्य बीच प्रकट होते हैं और उन बीजोंसे भी पहले ही-जैसे वृक्ष उत्पन्न होते रहते हैं, उसी प्रकार पहले अव्यक्त प्रकृतिसे महत्तत्त्व आदि उत्पन्न होते हैं, फिर उनसे देवता आदि प्रकट होते हैं। देवताओंसे उनके पुत्र और उन पुत्रोंके भी पुत्र होते रहते हैं। जैसे एक वृक्षसे दूसरा वृक्ष उत्पन्न होनेपर पहले वृक्षकी कोई हानि नहीं होती, उसी प्रकार नूतन भूतोंकी सृष्टिके भूतोंका हान नहीं होता। जैसे समीपवर्ती होनेमात्रसे आकाश और कलश आदि भी वृक्षके कारण हैं, उसी प्रकार भगवान् श्रीहरि स्वयं विकृत न होते हुए ही सम्पूर्ण विश्वके कारण होते हैं। जैसे धानके बीजमें बड़, माल, पत्ते, अङ्गुर, कागड़, कोप, फूल, दूध, चावल, भूसी और कन—सभी रहते हैं तथा अङ्कुरित होनेके योग्य कारण-साधनी फलक प्रकट हो जाते हैं, उसी प्रकार भिन्न-भिन्न कर्मोंमें देव आदि सभी शरीर स्थित रहते हैं तथा कर्मभूत श्रीविष्णुशक्तिका सहारा लेकर प्रकट हो जाते हैं।

ये भगवान् विष्णु परब्रह्म हैं, उन्हींसे यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ है, वे ही जगत्स्वरूप हैं।

तथा उन्हींमें इस जगत्का लय होता। वे परब्रह्म और परम धामस्वरूप हैं, सत् और असत् भी वे ही हैं, वे ही परम पद हैं। यह सम्पूर्ण ब्रह्मचर जगत् उनसे भिन्न नहीं है। वे ही अष्ठाक्षर मूल प्रकृति और व्याकृत जगत्स्वरूप हैं। यह सब कुछ उन्हींमें लय होता और उन्हींके उच्चारणपर स्थित रहता है। वे ही क्रियाओंके कर्त्ता (यजमान) हैं, उन्हींका यज्ञोंद्वारा यजन किया जाता है, यज्ञ और उसके फल भी वे ही हैं। सुग आदि सब कुछ उन्हींसे प्रवृत्त होता है। उन ग्रीहरीसे भिन्न कुछ भी नहीं है।"

लोमहर्षणजी कहते हैं—आकाशमें शिशुमार (गोह)—के आकारमें जो भगवान्का तारामय स्वरूप है, उसके पुच्छभागमें भुवकी स्थिति है। भुव स्वयं अपनी परिधिमें घूमने लगे हुए सूर्य, चन्द्र आदि अन्य ग्रहोंको भी घुमाते हैं। भुवके घूमनेपर इनके साथ ही समस्त नक्षत्र चक्रकी भाँति घूमने लगते हैं। सूर्य, चन्द्रमा, तारे, नक्षत्र और ग्रह—ये सभी वायुमयी झोरीसे भुवमें बँधे हुए हैं। शिशुमारके आकारका आकाशमें जो तारामय रूप बताया गया है, उसके आधार परम धामस्वरूप सभ्रष्ट भगवान् नारायण हैं, जो शिशुमारके हृदय-देशमें स्थित हैं। देवता, असुर और मनुष्योंसहित यह सम्पूर्ण जगत् भगवान् नारायणके ही आधारपर टिका हुआ है। सूर्य अग्नि महीनोंमें अपनी किरणोंद्वारा रसात्मक जलका संग्रह करते हैं और उसे वर्षाकालमें बरसा देते हैं। उस वृष्टिके जलसे जन्म पैदा होता है और

अससे सम्पूर्ण जगत्का भरण-पोषण होता है। सूर्य अपनी तीखी किरणोंसे जगत्का जल लेकर उसके द्वारा चन्द्रमाकी पुष्टि करते हैं। धूम, अग्नि और वायुरूप मेघोंमें स्थापित किया हुआ जल वर्षावृष्ट नहीं होता, अतएव मेघोंको अग्न कहते हैं। वायुकी प्रेरणासे मेघस्व जल पृथ्वीपर गिरता है। नदी, समुद्र, पृथ्वी तथा प्राणियोंके शरीरसे निकलता हुआ—ये चार प्रकारके जल सूर्य अपनी किरणोंद्वारा ग्रहण करते हैं और उन्हींको समयपर बरसाते हैं। इसके सिवा वे आकाशगङ्गाके जलको भी लेकर उसे बादलोंमें स्थापित किये बिना ही पृथ्वीपर बरसा देते हैं। उस जलका स्पर्श होनेसे मनुष्योंके पाप-पङ्क धुल जाते हैं, जिससे वह नरकमें नहीं चढ़ता। यह दिव्य स्नान माना गया है। कृत्तिका आदि विषम नक्षत्रोंमें सूर्यके दिखायी देते हुए आकाशसे जो जल गिरता है, उसे दिग्गजोंद्वारा पैंका हुआ आकाशगङ्गाका जल संग्रहण चाहिये। इसी प्रकार भारती आदि सप्त संख्याजाले नक्षत्रोंमें सूर्यके दिखायी देते हुए आकाशसे जो जल गिरता है, वह भी आकाशगङ्गाका ही जल है, जिसे सूर्यकी किरणें सफ़ाई ले आकर बरसाती हैं। वह दोनों ही प्रकारका जल अपना पवित्र और मनुष्योंका पाप दूर करनेवाला है। आकाशगङ्गाके जलका स्पर्श दिव्य स्नान है। बादलोंके द्वारा जो जलकी वर्षा होती है, वह प्राणियोंके जीवनके लिये सब प्रकारके अन्न आदिकी पुष्टि करती है। अतः वह जल अमृत माना गया है। उसके द्वारा अत्यन्त पुष्ट हुई सब

• स च दिष्णुः परं ब्रह्म वा- सर्वमिदं जगत् । जगत्तु चो वयं केदं ब्रह्मन् विस्मयेम्यते ॥

तद् ब्रह्म परमं धाम सदासत्तत्तमं पदम् । यच्च सर्वमधोदेव जगदेतच्चराचरम् ॥

स एव मूलप्रकृतिर्व्यवहारी कालम् सः । श्रीमन्नेव सर्वं सर्वं यद्विद्यं यच्च च विद्यते ॥

कदां क्रियन्ते स च इन्द्रो ज्यः स एव तत्त्वमसि यं तत्त्वम् क्व । पुनर्दि कालम् चन्द्रो ज्यो ह्येनं विद्विद् व्योमिन्द्रो ज्योतिरसि तत् ॥

प्रकारकी ओषधियाँ फलती, पकती एवं प्रजाके उपयोगमें आती हैं। उन ओषधियोंसे शास्त्रदत्तों मनुष्य प्रतिदिन विहित यज्ञोंका अनुष्ठान करके देवताओंको तृप्त करते हैं। इस प्रकार यज्ञ, वेद, ब्राह्मण आदि वर्ण, सम्पूर्ण देवता, पशु, भूतगण तथा स्थावर-जङ्गमरूप सम्पूर्ण जगत्—ये सब वृष्टिके द्वारा ही धारण किये गये हैं। वृष्टि सूर्यके

द्वारा होती है। सूर्यके आधार स्रुव, ध्रुवके शिशुमारचक्र तथा शिशुमारचक्रके आश्रय साक्षात् भगवान् नारायण हैं। वे शिशुमारचक्रके हृदय-देशमें स्थित हैं। वे ही सम्पूर्ण भूतोंके आदि, प्रसक्त तथा सन्ततन प्रभु हैं। मुनिवरो! इस प्रकार मैंने पृथ्वी, समुद्र आदिसे युक्त ब्रह्माण्डका वर्णन किया। अब और क्या सुनना चाहते हो?

तीर्थ-वर्णन

मुनियोंने कहा—वर्मके ज्ञाता सूतजी! पृथ्वीपर जो-जो पवित्र तीर्थ और मन्दिर हैं, उनके वर्णन कीजिये। इस समय इन्हीं धर्ममें उन्हींका वर्णन सुननेकी इच्छा है।

सौमहर्षण्यजी बोले—जिसके हाथ, पैर और मन काबूमें हों तथा जिसमें विद्या, तप और कीर्ति हो, वह मनुष्य तीर्थके फलका भागी होता है। पुरुषका शुद्ध मन, शुद्ध वाणी तथा वशमें की हुई इन्द्रियाँ—ये शारीरिक तीर्थ हैं, जो स्वर्गका मार्ग सूचित करती हैं। भीतरका दूषित चित्त तीर्थज्ञानसे शुद्ध नहीं होता। जिसका अन्तःकरण दूषित है, जो दम्भमें लक्ष्मि रखता है तथा जिसकी इन्द्रियाँ चञ्चल हैं, उसे तीर्थ, दान, व्रत और आश्रम भी पवित्र नहीं कर सकते। मनुष्य इन्द्रियोंको अपने वशमें करके जहाँ-जहाँ निवास करता है, वही-वहीं कुरुक्षेत्र, प्रयाग और पुष्कर आदि तीर्थ कास करने लगते हैं। द्विजवरो! अब मैं पृथ्वीके पवित्र तीर्थों और मन्दिरोंका संक्षेपसे वर्णन आरम्भ करता हूँ, सुनो। पुष्कर, नैमिषारण्य, प्रयाग, धर्मारण्य, धेनुक, चाम्यकारण्य, सैन्धवारण्य, मगधारण्य, दण्डकारण्य, गया, प्रभास, त्रीतीर्थ, कनखल, भृगुतृण, हिरण्यक, भीमरारण्य, कुलस्वली, लोहाकुल, केदार, मन्दरारण्य, महाबल, कोटितीर्थ,

रुपतीर्थ, शृकर, चक्रतीर्थ, योगतीर्थ, सोमतीर्थ, सखेटक, कोकमुख, बदरीसैल, तुङ्गकूट, स्कन्दाश्रम, अग्निपद, पञ्चशिख, कर्पेन्द्र, कन्धप्रमोचन, गङ्गाधर, पञ्चकूट, पद्मकेसर, चक्रप्रभ, मातङ्ग, कुरादण्ड, रंक्षकुण्ड, विष्णुतीर्थ, सार्वकामिकतीर्थ, मत्स्यतिल, ब्रह्मकुण्ड, बह्मिकुण्ड, सत्यपद, चतुःस्रोत, चतुःशृङ्ग, द्वादशधर, भानस, स्थूलशृङ्ग, स्थूलदण्ड, उर्वरी, लोकजल, मनुवर, सोमसैल, सदाप्रभ, मेरुकुण्ड, सोपाधिषेचनतीर्थ, महास्रोत, कोटरक, पञ्चधर, त्रिधर, सप्तधर, एकधर, अमरकण्डक, शालग्राम, कोटिद्रुम, विल्वप्रभ, देवहृद, विष्णुहृद, सप्तशृङ्ग, देवकुण्ड, ब्रह्मायुध, अग्निप्रभ, पुनरा, देवप्रभ, विद्याधरतीर्थ, गान्धर्वतीर्थ, मणिपूर गिरि, पञ्चहृद, विण्ढारक, मलय, गोप्रभाव, गोवर, वटमूल, ज्ञानदण्ड, विष्णुपद, कन्याश्रम, वायुकुण्ड, जम्बूगन्धर्व, गभस्तितीर्थ, यजातिपतन, भद्रकट, महाकालकन, नर्मदातीर्थ, तीर्थवप्र, अर्जुन, पिङ्गतीर्थ, वासिष्ठतीर्थ, पृथुसंगम, दौर्वासिक, पिङ्गरक, श्रुषितीर्थ, ब्रह्मतृण, वसुतीर्थ, कुमारिक, शक्रतीर्थ, पञ्चनद, रेवुकातीर्थ, पैतामह, विमलतीर्थ, रुद्रपाद, मणिमान, कामाख्य, कृष्णतीर्थ, कुलिङ्गक, यजनतीर्थ, कञ्जतीर्थ, ब्रह्मालोक, पुष्पस्थस, पुण्डरीक, मणिपूर, दीर्घसत्र, हयपद, अनशनतीर्थ, गङ्गोद्भेद, शिवोद्भेद,

नर्मदोद्भेद, वस्त्रापद, दाहबल, छायारोहण, सिद्धेश्वर,
धिरबल, कर्षितकाश्रम, वटावट, भद्रवट, कोरकाम्बी,
दिवाकर, सारस्वतद्वीप, विजयतीर्थ, कामदत्तेश्वर,
रुद्रकोटि, सुमनसतीर्थ, समन्तपञ्चक, सदाशिव,
सुदर्शनतीर्थ, परिणाम, पूरुदक, दत्तात्रेयेश्वर, स्वर्णेश्वर,
विजय, पञ्चनद, काण्ड, यक्षिणीहर, पुण्डरीक,
सोमतीर्थ, मुञ्जवट, बदरीवन, राममूलक, स्वर्णकटार,
पञ्चतीर्थ, कपिलेश्वर, सूर्यतीर्थ, सखिनीतीर्थ,
गोभवनतीर्थ, यक्षराजतीर्थ, ब्रह्मरूप, कामेश्वर, मातृतीर्थ,
मातावनतीर्थ, कान्तसोमनाथ, महासंसारक, केदार,
ब्रह्मेन्द्रेश्वर, सप्तार्चिकुण्ड, देवीतीर्थ, कामुकतीर्थ,
ईशान्यद, कोटिकूट, किंदा, किंदा, किरणेश्वर,
अवेध्य, त्रिविहप, पाणिशाला, मित्रक, मधुवट,
मनोजय, कौशिकीतीर्थ, देवतीर्थ, शङ्खवेदनतीर्थ,
वृषभूम, अमरहर, श्रीकुञ्ज, हारिलीतीर्थ, वैशिवेश्वर,
ब्रह्मरूप, कन्यातीर्थ, मनसातीर्थ, कामेश्वरतीर्थ,
सौगन्धिकजन, यक्षिणीतीर्थ, सरस्वतीतीर्थ, ईशान्यद,
पाण्डविकतीर्थ, त्रिमूलधार, महेश्वर, देवस्थान, कृष्णस्थान,
साकम्परी, देवतीर्थ, सुवर्णतीर्थ, कलिहर, श्रीराम,
विष्णुवत्स, भुवतीर्थ, कुम्भेश्वरतीर्थ, ब्रह्मेन्द्र, नीलकण्ठ,
कुम्भेश्वर, करिण्यद, स्वर्णेश्वर, प्रबलेश्वर, कलिभक्त,
रुद्रेश्वर, सुमन्तद, कपिलेश्वर, भक्तेश्वर, सुवर्णेश्वर,
सातसरस्वत, औशनसतीर्थ, कपिलेश्वर, अमरेश्वर,
काम्यक, चतुःसामुद्रिक, शक्तिक, सहस्रिक, रेणुक,
पञ्चकटक, विष्णुवन, स्वर्णपुत्रेश्वर, कुस्तीर्थ, कुसुमेश्वर,
विद्येश्वर, मानककुम्भ, नारायणेश्वर, गङ्गाहर, बदरीवन,
इन्द्रमूर्ति, एकरात्र, श्रीरामेश्वर, दधीच, कुलतीर्थ,
कोटितीर्थस्थली, भक्तेश्वरीहर, अरुन्धतीवन, ब्रह्मरूप,
अश्वमेदी, कुम्भावन, मधुकरान्न, श्रीर, प्रमोद,
सिन्धुतथ, श्रविकुस्थ, कृत्तिका, उर्वरसंक्रमण,
मायाविद्योद्भव, महाश्रम, वेतसिका, सुन्दरिकाश्रम,
बाहतीर्थ, चारुन्दी, विमलारोहक, भक्तेश्वरतीर्थ,

सिरोद, मस्त्योदरो, सूर्यप्रभ, अशोकवन, अरुणास्पद, मुक्ततीर्थ, वास्तुकर्मीर्थ, पिप्पलचमोवन, सुभाद्राद, विलसदब्जकुण्ड, चण्डेश्वरीर्थ, ओष्ठद्वयनद, ब्रह्मसर, कैलेकम्पगुह्य, इस्किरावन, अञ्जमुखासर, चण्डकर्णद, कर्कोटककपी, सपर्णास्योदधान, छेततीर्थद, पक्षीरककुण्ड, शम्भुकूप, चन्द्रिकातीर्थ, लम्बनलम्बकूप, विन्धकद, सिन्धूरककूप, ब्रह्मसर, सज्जस, नगतीर्थ, पुलोमतीर्थ, भठद, शीरसर, प्रेताधार, कुमारतीर्थ, कुरुवर्त, दधिकर्णोदधानक, मृन्मतीर्थ, यक्षतीर्थ, गङ्गानदी, नक्षतीर्थ, अक्षपद, कपिलाद, गृध्रवट, सावित्रीद, प्रभासन, शीतवन, योद्धार, धनक, केशिकातीर्थ, मत्तद, पितृकूप, सतकुण्ड, मजिराद, कौशिक्यतीर्थ, भरतीर्थ, ज्येष्ठारिकातीर्थ, कल्पसर, कुमारधार, शीघार, कैलेसिद्ध, मुनिकुण्ड, नन्दितीर्थ, कुमारसर, श्रीवास, कुम्भकर्णद, कौशिकीद, धर्मतीर्थ, कामतीर्थ, ठरानवनीर्थ, लम्बतीर्थ, लोहितार्णव, शोणोद, बलकुण्ड, लम्ब, कलतीर्थ, पुष्पवर्षिद, बदलिकुण्ड, उम्बतीर्थ, पितृवन, विराजतीर्थ, कुम्भतीर्थ, कुम्भवट, रोहिणीकूप, इन्द्रधनुसरोवर, सानुगर्त, माहेन्द्र, शीनद, इन्दुतीर्थ, चर्चभतीर्थ, कालेरोद, गोकर्ण, गादश्रीस्थान, बदरीद, भवस्थान, विकर्षक, जातीद, देवकूप, कुलप्रवन, समदिव्यद, कन्यालम्बद, बालाहिलम्बद तथा अष्टपिंडाद—ये सब धर्म तीर्थ हैं। जो मनुष्य इन तीर्थों में ठहरा ब्रह्मसे सम्पन्न हो ठपवास एवं इन्द्रियसंयमपूर्वक विधिबद्ध स्नान, देवता, ऋषि, मनुष्य तथा पितरोंका वर्णन, देवताओंका पूजन एवं तीन उचितक निष्कस करता है, वह प्रत्येक तीर्थके पृथक् पृथक् फलस्मरे अक्षयेध-यज्ञका पुण्य प्राप्त करता है—इसमें शक भी संदेह नहीं है। जो प्रतिदिन इस ठर तीर्थ-यज्ञस्मरे सुख, फल अथवा सुख है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

भारतवर्षका वर्णन

मुनिधोंने कहा—वकाओंमें श्रेष्ठ सूतजी! इस पृथ्वीपर धर्म, अर्थ, कर्म एवं मोक्ष प्रदान करनेवाली जो उत्तम भूमि एवं देश क्षेत्र हो, उसे बतालाइये।

श्लोमहर्षणजी बोले—बाह्यजो! पूर्वकालमें महर्षियोंने मेरे गुरु व्यासजीसे यही प्रश्न पूछा था। मैं यही प्रसंग कहता हूँ। कुरुक्षेत्रकी बात है, बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ व्यासजी, जो सब शास्त्रोंके विद्वान्, महाभारतके रचयिता, अध्यात्मनिष्ठ, सर्वज्ञ, सब भूतोंके हितमें संलग्न, पुराण और आगमोंके वक्ता तथा वेद-वेदाङ्गोंके परंगत पण्डित हैं, अपने परम पवित्र आश्रममें बैठे हुए थे। धीति-भीतिके पुण्य इस आश्रमकी शोभा बढ़ा रहे थे। उसी समय उत्तम व्रतका पालन करनेवाले अनेक महर्षि उनके दर्शनके लिये आये। कश्यप, जमदग्नि, भरद्वाज, गौतम, ऋषिभृ, वैशम्पति, भीष्म, मार्कण्डेय, कल्कीकि, विश्वामित्र, सतानन्द, वात्स्य, गार्ग्य, आसुरि, सुमन्तु, भार्गव, कण्व, मेघतिथि, माण्डूक्य, अ्यवन, बृद्ध, अशित, देवस्य, भीदस्य, तृणयज्ञ, पिप्पलाद, अकृतवचन, संवर्त, कौशिक, रैभ्य, मैत्रेय, हरित, शण्डिल्य, विधान्व, दुर्वास, लोमह, नारद, पर्वत, वैशम्पत्यन, गारुड, भस्करि, पूरण, सूत, पुलस्त्य, कपिल, पुलह, देवस्थान, सनत्कुमार, पैल, कृष्ण तथा कृष्णनुभीतिक—ये तथा और भी बहुत-से मुनिवर सत्यवतीनन्दन व्यासकी घेरकर बैठ गये। उनके बीचमें व्यासजी नक्षत्रोंसे घिरे हुए चन्द्रमाकी भाँति शोभा पाते थे। कुछ बातचीतके बाद उन्होंने व्यासजीसे अपना सन्देह इस प्रकार पूछा।

मुनि बोले—मुने! आप वेद, शास्त्र, पुराण, तन्त्रशास्त्र, महाभारत, भूत, वर्तमान, भविष्य तथा



सम्पूर्ण ब्राह्मणका ज्ञान रखते हैं। यह संसार एक समुद्रके समान है। इसमें दुःख-ही-दुःख भरा है। यह कहमय एवं निःस्तर है। इस भ्रमणक भ्रमसगरमें रागकपी ग्राह रहते हैं। यह विषयकपी जलसे भरा रहता है। इन्द्रियों ही इसमें भँवर हैं। यह बुधा, पिप्पला आदि सैकड़ों कर्मियोंसे व्याप्त है। इसे मोहरूपी कीचड़ने मलिन बना रखा है। शोभकी गहराईके कारण इसके पार जाना अत्यन्त कठिन है। हम देखते हैं कि सम्पूर्ण जगत् इसमें डूबकर कोई सहारा न पा सकनेके कारण अचेत बड़ा जा रहा है। अतः आपसे पूछते हैं, इस भ्रमण संसारमें कौन-सा साधन कल्याणकारी है? इस बातका उपदेश देकर आप सम्पूर्ण लोकोंका उद्धार कीजिये। इस पृथ्वीपर भी परम दुर्लभ मोक्षदायक क्षेत्र एवं कर्मभूमि है, उसे बतालाइये। हम उसका अवलोकन करना चाहते हैं।

व्यासजीने कहा—पूर्वकालमें महर्षियोंका

ब्रह्माजीके साथ जो संवाद हुआ था, उसे आप सब लोग सुनें। नाग राजोंसे विभूषित मेरुगिरिके विशाल शिखरपर भगवान् ब्रह्मजी विराजमान थे। देवता, दानव, गन्धर्व, वन, विद्याधर, नाग, मुनि तथा सिद्ध उनकी सेवामें उपस्थित थे। उस समय भृगु आदि महर्षिजोंने पितृमहको प्रणम्य करके इस प्रकार प्रश्न किया—'भगवन्! इस पृथ्वीपर कर्मभूमि कौन है तथा दुर्लभ मोक्ष-क्षेत्र कौन है? यह बतानेकी कृपा करें।'।



ब्रह्माजी बोले—मुनिकरो! सुनो, इस पृथ्वीपर भारतवर्षको कर्मभूमि बतलाया गया है। यह परम प्राचीन, वेदोंसे सम्बन्ध रखनेवाला तथा भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला उत्तम क्षेत्र है। यहाँ किये हुए कर्मोंके फलरूपसे स्वर्ग और नरक प्राप्त होते हैं। भारतवर्षमें पाप या पुण्य करके मनुष्य निश्चय ही उसके अशुभ अथवा शुभ फलका भागी होता है। यहाँ ब्रह्मण आदि वर्ष जलोर्ध्वत संयमपूर्वक रहते हुए अपने-अपने कर्मोंका अनुष्ठान करके उत्तम सिद्धिको प्राप्त होते हैं। भारतवर्षमें

संयमशील पुरुष धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—सब कुछ प्राप्त करता है। इन्द्र आदि देवताओंने भारतवर्षमें शुभ कर्मोंका अनुष्ठान करके देवत्व प्राप्त किया है। इनके सिवा अन्य जितेन्द्रिय पुत्रोंने भी भारतवर्षमें सन्त, वीतराग एवं महासंपरीक्षित जीवन बिताते हुए मोक्ष प्राप्त किया है। देवता सदा इस बातकी अभिप्रेक्षा करते हैं कि हम लोग कम स्वर्ग एवं मोक्ष प्रदान करनेवाले भारतवर्षमें जन्म लेकर निरन्तर उसका दर्शन करेंगे।

इसके पूर्वमें किरात और पहिलमें पवन रहते हैं। मध्यफलमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रोंका निवास है। ये क्रमशः यज्ञ, युद्ध और व्यापार आदि विशुद्ध कर्मोंके द्वारा अपनेको पवित्र करते हैं। उनका जीवन-निर्वाह भी इन्हीं कर्मोंसे होता है। यहाँ किया हुआ पुण्य लक्ष्मण होनेपर स्वर्ग आदिकर तथा निष्काम होनेपर मोक्षका साधक होता है। इसी प्रकार पाप भी अपना फल प्रदान करता है। महेन्द्र, भस्म, शुक्तिमान्, श्रद्धाधर्षित, विन्ध्य और पारियात्र—ये ही सात यहाँ कुल-पर्वत हैं। उनके आस-पास और भी हजारों पर्वत हैं। ये सभी विस्तृत, ऊँचे और रमणीय हैं। उनके शिखर शक्ति-भक्तिके और सुन्दर हैं। कोलाहल, वैजान्त, मन्दर, दुर्दराचल, जलधरा, वैद्युत, मैनाक, सुरस, तुङ्गप्रस्थ, नगगिरी, गोधन, पाण्डुराचल, पुष्पगिरी, वैजयन्त, शैल, अर्बुद, ऋष्यमूक, गोमन्त, कृतकैल, कुशाक्षल, श्रीपर्वत, चकोर तथा अन्य अनेक पर्वत ऐसे हैं, जिनसे मिले हुए म्लेच्छ आदि जनपद पृथक्-पृथक् बसे हुए हैं। यहाँकि लोग जिन ग्रीह नदियोंका जल पीते हैं, उनके नाम इस प्रकार बानो—गङ्गा, सरस्वती, सिन्धु, चन्द्रभागा (चनाब), यमुना, रावहु (सतलज), विपासा (व्यास), शितस्ता (झेलम) हरावती (रावी), कुहू (गोमती), भूतपापा, बाहुदा, इषहती, देविका,

पद्म, शिखर, गण्डकी तथा नर्मदा। ये हिमालयकी छाटीसे निकली हुई नदियाँ हैं। देवस्मृति, देवकी, वातापी, सिन्धु, येष्वा, चन्द्रा, सदासीरा, मही, चर्मण्वती (चंबल), घृषी, विदिशा, वेदकी, क्षिप्र तथा अवन्ती—ये पारियात्रपर्वतका अनुसरण करनेवाली नदियाँ हैं। शोण (सोन), ग्वाणदी, नर्मदा, सुरष्वा, त्रिया, मन्दकिनी, दक्षार्ण, चित्रकूट, शिखरपला, वेङ्गती (वेङ्ग), कर्मोदा, पिताचिका, अतिलक्ष्मणी, विषण्वा, शैल्ला, सधेरुण्ड, सिकम्ती, शकुनी, त्रिदिवा, क्रमु तथा वेगकाहिनी—ये नदियाँ अक्षपर्वतकी संतामें हैं। चित्रा, पयोष्णी, त्रिभिन्वा, तापी, वेणा, वैतरणी, सिनोवाली, कुमुदती, तोवा, महागौरी, दुर्गा तथा अन्तरिक्ष—ये पुष्पसलिला सरिताएँ हिन्वाचलकी छाटियोंसे निकली हैं। गोदावरी, भीमरवी, कृष्णवेण, तुङ्गभद्रा, सुप्रयोज तथा पापनाशिनी—ये क्रेड नदियाँ सह्यागिरिकी शाखासे प्रकट हुई हैं। कृतमात्र, ताप्रणी, पुष्पवती, उत्पलावती—ये खैतल कलकली पवित्र नदियाँ भलपाचलसे निकली हैं। त्रिकुल्या, शेषकुल्या, त्रिभुल्या, बकुल्या, त्रिदिका, लक्ष्मिली तथा वंशाकरा—इन्का प्राकट्य महेंद्रपर्वतसे हुआ है। मुषिकाला, कुमारी, भनुष, मन्दगाभिनी, क्षया और पक्षशिनी—ये शुक्तिमान्पर्वतसे निकली हैं।

समुद्रमें मिलनेवाली सभी नदियाँ पुष्पसलिला सरस्वती तथा गङ्गाके सम्पन्न हैं। सभी इस विश्वकी जनने एवं पापहारिणी मानी गयी हैं। इनके अतिरिक्त भी सहस्रों छोटी-छोटी नदियाँ बहायी गयी हैं, जिनमेंसे कुछ तो केवल वर्षा-कालमें बहती हैं और कुछ सदा ही जलसे पूर्ण रहती हैं। मत्स्य, मुकुटकुल्या, कुन्तल, फासी, खोसल, अन्नाक, कलिङ्ग, समक तथा शुक्र—ये ज्ञयः मध्यदेशके जनपद बताये गये हैं। सह्य पर्वतके उत्तरका प्रदेश, जहाँ गोदावरी नदी बहती है, सम्पूर्ण भूमण्डलमें सर्वाधिक मनोरम है।

वायव्य और संन्यास-आश्रमके धर्मोका पालन करनेसे जो फल होता है, कुर्मी, चाकली आदि खूदवाने, कपड़े लगाने, यज्ञ करने तथा अन्य शुभ कर्मोंके अनुष्ठानसे जो फल मिलता है, वह सब केवल भारतवर्षमें ही सुलभ है ब्राह्मणों। भारतवर्षके समस्त भूजोका वर्णन करनेमें कौन समर्थ हो सकता है? इस प्रकार मैंने भारतवर्षका वर्णन किया। यह सबसे उत्तम, सब पापोंका नाश करनेवाला, पवित्र, अन्य तथा बुद्धिको बढ़ानेवाला है। जो सदा अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखाकर इस प्रसंगका पाठ या श्रवण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है।

कोणादित्यकी महिमा

ब्रह्माजी कहते हैं—भारतवर्षमें दक्षिणसमुद्रके किनारे ओण्ड्र देशके नामसे विद्यमान एक प्रदेश है, जो स्वर्ग एवं मोक्ष देनेवाला है। समुद्रसे उत्तर शिरज मण्डलतकका प्रदेश पुण्यात्माओंके सम्पूर्ण गुणोंद्वारा सुशोभित है। उस देशमें उत्पन्न जो जितेन्द्रिय ब्रह्मण तपस्या एवं स्वाध्यायमें संलग्न रहते हैं, वे सदा ही वन्दनीय एवं पूजनीय हैं। उस

देशके ब्राह्मण ब्राह्म, दान, विवाह, यज्ञ अथवा व्याचार्यकर्म—सभी कर्मोंके लिये उत्तम हैं। वे चतुर्वर्णपरायण, भेदोंके पारंगत विद्वान्, इतिहासवेत्ता, पुण्यार्थविश्वास्त, सर्वशस्त्रार्थकुशल, यज्ञशाल और रण-द्वेषसे रहित होते हैं। कोई वैदिक अग्निहोत्रमें लगे रहते और कोई स्मार्त अग्निकी उपसना करते हैं। वे स्त्री, पुत्र और धनसे सम्पन्न, दानी और

सत्यवादी होते हैं तथा ब्रह्मेसवसे विभूषित पवित्र उत्कल देशमें निवास करते हैं। वहाँ अत्रिब अहदि अन्य तीन वर्णोंके लोग भी परम संयमी, स्वकर्मपरायण, शान्त और धार्मिक होते हैं। उक्त प्रदेशमें भगवान् सूर्य कोणार्द्धिकके नामसे विख्यात होकर रहते हैं। उनका दर्शन करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

मुनियोंके कथा—सुरग्रेह। पूर्वोक्त ओण्ड देशमें जो सूर्यका क्षेत्र है, वहाँ भगवान् जलकर निवास करते हैं, उसका वर्णन कीजिये। इस समय हम उसे ही सुनना चाहते हैं।

ब्रह्माजी बोले—मुनियोगे! सत्यसमुद्रका उत्तरतट आत्यन्त मनोहर और पवित्र है। वह सब ओर बालुकशालिने आच्छादित है। उस सर्वजन्मसम्पन्न प्रदेशमें चम्प, अलक, मीलमिली, करबीर (कनेर), गुल्म, नागकेसर, जाड़, सुपाटी, खैरफल, केच और अन्य प्राण प्रकारके वृक्ष घातों और शेष रहते हैं। वहाँ भगवान् सूर्यका पुण्यक्षेत्र है, जो सम्पूर्ण जगत्में विख्यात है। उसका विस्तार सब ओरसे एक योजनसे अधिक है। वहाँ सहस्र किरणोंसे सुशोभित साक्षात् भगवान् सूर्य निवास करते हैं, वे 'कोणार्द्धिक' के रूपसे विख्यात एवं भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं। वहाँ माघमासके शुक्ल पक्षकी सप्तमी तिथिके इन्द्रिय-संक्रमपूर्वक उभवास करे। फिर प्रातःकाल सौच आदिसे विवृत एवं विशुद्धचित्त हो सूर्यदेवका स्मरण करते हुए विधिपूर्वक समुद्रमें आग करे। देवता, ऋषि और मनुष्योंका तर्पण करे। तत्पश्चात् जलसे बाहर आकर दो स्वच्छ वस्त्र धारण करे। फिर आचमन करके पवित्रतापूर्वक सूर्योदयके समय समुद्रके तटपर पूर्वाभिमुख होकर बैठे। लाल चन्दन और जलसे ताँबेके पात्रमें एक अष्टदल कमलकी आकृति बनाये, जो केसरयुक्त और

गोस्तकार हो। उसकी कर्णिका ऊपरकी ओर उठी हो। फिर तिल, जवला, बस, लाल चन्दन, लाल फूल और कुसुम उस पात्रमें रख दे। ताँबेका वर्तन न मिले तो मन्दारके पत्तेका दोना बनाकर उसीमें तिल आदि रखे। उस पात्रको एक दूसरे पात्रसे टककर रखे। इसके बाद हृदय आदि अङ्गोंके क्रमसे अङ्गन्यास और करन्यास करके पूर्ण ब्रह्मके साथ अपने आत्मसम्बन्ध भगवान् सूर्यका ध्यान करे, पूर्वोक्त अष्टदल कमलके मध्यभागमें तत्त्व अग्नि, नैऋत्य, वायव्य और ईशान कोणोंके दलोंमें एवं पुनः मध्यभागमें क्रमशः प्रभूत, विमल, सार, आराध्य, परम और सुखकण सूर्यदेवका पूजन करे। इसके अनन्तर वहाँ आकाशसे सूर्यदेवका अववाहन करके कर्णिकाके ऊपर उनकी स्थापना करे। तत्पश्चात् हाथोंसे सुमुख-संपुट आदि मुद्राएँ दिखाने। फिर देवताका ज्ञान आदि करके एकप्रविष्ट हो इस प्रकार ध्यान करे—भगवान् सूर्य क्षेत्र कमलके अक्षरान्तर तेजोमण्डलमें विराजमान हैं। उनकी आँखें पीली और शरीरका रंग लाल है। उनके दो भुजाएँ हैं। उनका वस्त्र कमलके समान लाल है। वे सब प्रकारके शुभ लक्षणोंसे युक्त और सभी तरहके आपूषणोंसे विभूषित हैं। उनका रूप सुन्दर है। वे बार देनेवाले, शान्त एवं प्रभुपुत्रसे देदीप्यमान हैं। तदनन्तर उदयकालमें सिन्धु सिन्दूरके समान अलग वर्णवाले भगवान् सूर्यका दर्शन करके अर्घ्यपात्र ले। उसे सिरके पास लाने और पुण्यीपर घुटने टेककर मीन हो एकप्रविष्टसे प्रकर-मन्त्रका उच्चारण करते हुए सूर्यको अर्घ्य दे। जिस पुण्यको दीक्षा नहीं दी गयी है, वह प्रावयुक्त ब्रह्मके साथ सूर्यका नाम लेकर ही अर्घ्य दे; क्योंकि भगवान् सूर्य भक्तिके द्वारा ही वशमें होते हैं।

अग्नि, नैऋत्य, वायव्य एवं ईशान कोण,

मध्यभाग तथा पूर्व आदि दिशाओंमें क्रमशः इदम्, सिर, शिख, कंच, नेत्र और अस्त्रकी पूजा करे।* फिर अर्घ्य दे, गन्ध, धूप, दीप और नैवेद्य निवेदन कर जप, स्तुति, नमस्कार तथा मुद्रा करके देवताका विसर्जन करे। जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, स्त्री और गृह अपनी इन्द्रियोंके बशमें रहते हुए सदा संयमपूर्वक भक्तिमत्त्व और विसृष्ट भित्तसे भगवान् सूर्यको अर्घ्य देते हैं, वे भक्तोर्वाञ्छित भोगोंका उपभोग करके परम भक्तिको प्राप्त होते हैं। जो मनुष्य तीनों लोकोंको प्रकाशित करनेवाले आकाशविहारी भगवान् सूर्यकी शरण लेते हैं, वे सुखके भागी होते हैं। जबतक भगवान् सूर्यको विधिपूर्वक अर्घ्य न दे लिया जाय, तबतक श्रीविष्णु, शङ्कर अधिक इन्द्रका पूजन नहीं करना चाहिये अतः प्रतिदिन पवित्र हो प्रणम करके मनोहर फूलों और चन्दन आदिके द्वारा सूर्यदेवको अर्घ्य देना चाहिये इस प्रकार जो सप्तमी तिथिको जान करके शुद्ध एवं एकाग्रचित्त हो सूर्यको अर्घ्य देता है, उसे मनोवाञ्छित फल प्राप्त होता है। रोगी पुरुष रोगसे मुक्त हो जाता है, धनकी इच्छा रखनेवालेको धन मिलता है, विद्यार्थीको विद्या प्राप्त होती है और पुत्रकी कामना रखनेवाला मनुष्य पुत्रवान् होता है।

इस प्रकार समुद्रमें स्नान करके सूर्यको अर्घ्य दे, उन्हें प्रणाम करे, फिर हाथमें फूल लेकर घूम हो सूर्यके मन्दिरमें जाय। मन्दिरके भीतर प्रवेश करके भगवान् कोकदित्यकी तीन बार प्रदक्षिणा करे और अत्यन्त भक्तिके साथ गन्ध, धूप, धूप,

दीप, नैवेद्य, सहाय्य प्रणम, जप-जपकार तथा स्तोत्रोंद्वारा उनको पूजा करे। इस प्रकार सहस्र किरणोंद्वारा मण्डित जगदीश्वर सूर्यदेवका पूजन करके मनुष्य दस अश्वमेध-यज्ञोंका फल प्राप्त है। इतना ही नहीं, यह सब पापोंसे मुक्त हो दिव्य सरीर धारण करता है और अपने आगे-पीछेकी सप्त-सप्त पीढ़ियोंका उद्धार करके सूर्यके समान वैजम्भी एवं इच्छानुसार गमन करनेवाले विमानपर बैठकर सूर्यके लोकमें जाता है। उस समय गन्धर्वगण उसका वस्त्रोत्पन्न करते हैं। वहाँ एक कल्पक श्रेष्ठ भोगोंका उपभोग करके पुण्य क्षीण होनेपर वह पुनः इस संसारमें जाता और योगियोंके उत्तम कुलमें जन्म ले चारों वेदोंका विद्वान्, स्वधर्मपरम तथा पवित्र ब्राह्मण होता है। तदनन्तर भगवान् सूर्यसे ही योगकी शिक्षा प्राप्त करके मोक्ष पा लेता है। चैत्र मासके शुक्लपक्षमें भगवान् कोकदित्यकी यात्रा होती है। यह यात्रा दधनभक्तिमत्त्वके फलसे विख्यात है। जो मनुष्य यह यात्रा करता है, उसे भी पूर्वोक्त फलकी प्राप्ति होती है। भगवान् सूर्यके सप्पन और जागरणके समय, संक्रान्तिके दिन, विषुव योगमें, उत्तरायण या दक्षिणायन आरम्भ होनेपर, रविवारकी, सप्तमी तिथिको अथवा पर्वके समय जो जितेन्द्रिय पुरुष वहाँकी ब्रह्मापूर्वक यात्रा करते हैं, वे सूर्यकी ही भाँति तेजस्वी विष्णुके द्वारा उनके लोकमें जाते हैं। वहाँ (पूर्वोक्त क्षेत्रमें) समुद्रके तटपर रामेश्वर नामसे विख्यात भगवान् महादेवकी विराजमान हैं, जो समस्त अभिस्तमित फलोंके देनेवाले हैं। जो

* पूजक वाक्य इस प्रकार हैं—'हो इदमय नमः, अत्रिकेने। हो सिरसे नमः, वैश्वसे। हो शिखसे नमः, वाय्वसे। हो कंचाय नमः, ऐश्वसे। हो नेत्रकाय नमः, मध्यभावे। हो अस्त्राय नमः, चतुर्दिशु' इति।

† वे अर्घ्य सम्पन्नकृति सूर्यय निर्वर्तेन्द्रवः। ब्राह्मणः क्षत्रियः वैश्यः स्त्रीयः गृहस्थः संवतः॥ भक्तिभावेन सत्तं विसृष्टेनान्तरात्मनः। वे मुक्त्यर्थं भगवान् कामन् प्रभुवन्ति परं गतिम्॥

समुद्रमें जान करके वहाँ श्रीरामेश्वरका दर्शन करते और गन्ध, पुष्प, धूप, दौप, नैवेद्य, ममस्कार, स्तोत्र, गीत और मनोहर वाजोंद्वारा

उनकी पूजा करते हैं, वे महत्त्वा पुरुष राजसूय तथा अश्वमेध-यज्ञोंका फल पाते और परम सिद्धिमें प्राप्त होते हैं।

भगवान् सूर्यकी महिमा

भुक्तियोंके फल—सुरक्षेष्ट। अपने योग और मोक्ष प्रदान करनेवाले भगवान् भस्करके उसम क्षेत्रका जो वर्णन किया है, यह सब हम लोगोंमें सुना। अब यह कहइये कि उनकी भक्ति कैसे की जाती है और वे किस प्रकार प्रसन्न होते हैं? इस समय यही सब सुननेकी इच्छा है।

ब्रह्माजी बोले—मनके द्वारा इष्टदेवके प्रति जो भावना होती है, उसे ही भक्ति और ब्रह्मा कहते हैं। जो इष्टदेवकी कथा सुनता, उनके भक्तोंकी पूजा करता तथा अंग्रिकी उपस्थानमें संलग्न रहता है, वह सन्नतन भक्त है। जो इष्टदेवका चिन्तन करता, इन्हींमें मन लगता, इन्हींकी पूजामें लग रहता तथा इन्हींके लिये कार्य करता है, वह निश्चय ही सन्नतन भक्त है। जो इष्टदेवके लिये किन्से जानेवाले कर्मोंका अनुमोदन करता, उनके भक्तोंमें दोष नहीं देखता, अन्य देवत्वकी निन्दा नहीं करता, सूर्यके व्रत रखता तथा व्रतसे, फिरते, ठहरते, सोते, सुँघते और आँख खोलते-पीचते समय भगवान् भस्करका स्मरण करता है, वह मनुष्य अधिक भक्त माना गया है। विज्ञ पुरुषको सदा ऐसी ही भक्ति करनी चाहिये। भक्ति,

समाधि, स्तुति और मनसे जो निष्पन्न किया जाता और जो ब्राह्मणको दान दिया जाता है, उसे देवता, मनुष्य और पितर—सभी ग्रहण करते हैं। पत्र, पुष्प, फल और जल—जो कुछ भी भक्तिपूर्वक अर्पण किया जाता है, उसे देवता ग्रहण करते हैं; परंतु वे नासिकोंकी दी हुई वस्तु नहीं स्वीकार करते। निष्पन्न और आचारके साथ भावशुद्धिका ही उपयोग करना चाहिये। इष्टदेवके भावको शुद्ध रखते हुए जो कुछ किया जाता है, वह सब सफल होता है। भगवान् सूर्यके स्तवन, जप, उच्चार-समर्पण, पूजन, उपवास (व्रत) और भजनसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो पृथ्वीपर परतक रखकर भगवान् सूर्यको नमस्कार करता है, वह तत्काल सब पापोंसे छूट जाता है, इसमें शंका भी संदेह नहीं है। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक सूर्यदेवकी प्रदक्षिणा करता है, उसके द्वारा सातों द्वीपोंपरिहत पृथ्वीकी परिक्रमा हो जाती है। जो सूर्यदेवको अपने हृदयमें धारण करके केवल अन्धकारकी प्रदक्षिणा करता है, उसके द्वारा निश्चय ही सम्पूर्ण देवताओंकी परिक्रमा हो जाती है।* जो बप्ती या सधमीको एक समय भोजन

* भावशुद्धिः प्रत्येकस्य निमग्नस्यैव । भक्त्युद्धा किन्ते यत्तत्सर्वं सफलं भवेत् ॥
स्तुतिर्वाप्योपहारेण पूजयति किञ्चित् । उपवासं भस्मस्य च सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥
प्रतिपद्य शिरो पुष्पां नमस्कारं करोति च । कथञ्चनसर्वपापेभ्यो मुच्यते नत्र संशयः ॥
भक्तिपुत्रो नो खेडती रवेः कुर्वन्प्रदक्षिणम् । प्रदक्षिणीकृत्य देव रज्ज्वीयं वस्तुधरा ॥
सूर्यं भजति यः कुर्यात् कुर्याद् ज्योतिर्प्रदक्षिणम् । प्रदक्षिणीकृत्यस्तेन सर्वं देव भजति हि ॥

करके नियम और सतका फलन करते हुए सूर्यदेवका भक्तिपूर्वक पूजन करता है, उसे अभ्येय-यज्ञका फल मिलता है। जो अच्छी अथवा सतमीको दिन-रात उपवास करके भगवान् भक्तिकर पूजन करता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है।

जब शुक्लपक्षकी सतमीको रविवार हो, उस दिन विजयासतमी होती है। उसमें दिया हुआ दान महान् फल देनेवाला है। विजयासतमीको किया हुआ ज्ञान, दान, तप, होम और उपवास—सब कुछ बड़े-बड़े पातकोंका नश करनेवाला है। जो मनुष्य रविवारके दिन वाद करके और फलसेकस्यो सूर्यका पूजन करते हैं, उन्हें अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है। जिनके समस्त धार्मिक कार्य सदा भगवान् सूर्यके उद्देश्यसे होते हैं, उनके कुलमें कोई दण्ड अथवा रोगी नहीं होता। जो सफेद, लाल अथवा पीली मिट्टीसे भगवान् सूर्यके मन्दिरको लीपता है, उसे मनोवाञ्छित फलकी प्राप्ति होती है। जो गिराहार रहकर भीति-भीतिके सुगन्धित पुष्पोंद्वारा सूर्यदेवका पूजन करता है, उसे अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है। जो भी अथवा तिलके तेलसे दीपक जलाकर भगवान् सूर्यकी पूजा करता है, वह कभी अंधा नहीं होता। दीप-दान करनेवाला मनुष्य सदा ज्ञानके प्रकाशसे प्रकाशित रहता है। जो सदा देव-मन्दिरों, चौकों और सबकोंपर दीप-दान करता है, वह रूपवान् तथा सौभाग्यशाली होता है। दीपकी शिक्षा सदा ऊपरकी ही ओर उठती है, उसकी गति कभी नीचेकी ओर नहीं होती। इसे प्रकार दीप-दान करनेवाला पुरुष भी दिव्य तेजसे प्रकाशित होता

है। वह कभी तिर्यग्योनिमें नहीं पड़ता। जलते हुए दीपकको न कभी चुराये, न नष्ट करे। दीपहता मनुष्य बन्धन, जल, क्रोध एवं लोभमय नरकको प्राप्त होता है। उदयकालमें प्रतिदिन सूर्यको अर्घ्य देनेसे एक ही वर्षमें सिद्धि प्राप्त होती है। सूर्यके उदयसे लेकर अस्त तक ठण्डी ओर मुँह करके खड़ा हो किसी मन्त्र अथवा स्तोत्रका जप करना आदिष्कृत कहलाता है। यह बड़े-बड़े पातकोंका नश करनेवाला है। सूर्योदयके समय ब्रह्मापूर्वक अर्घ्य देकर सब कुछ साहोपाङ्ग दान करे। इससे सब पापोंसे मुक्तकरा मिल जाता है।* अग्नि, जल, माकस, पवित्र भूमि, प्रतिष्ठा तथा पिण्डों (प्रतिष्ठाकी केटी)—ये भगवत्पूर्वक सूर्यदेवको अर्घ्य देना चाहिये†। उत्तरायण अथवा दक्षिणायनमें सूर्यदेवका विशेषरूपसे पूजन करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। इस प्रकार जो यानत्र प्रत्येक बेलामें अथवा भुजेलामें भी भक्तिपूर्वक श्रीसूर्यदेवका पूजन करता है, वह उन्हींके लोकमें प्रतिष्ठित होता है। जो तीर्थोंमें पवित्र हो भगवान् सूर्यको स्नान करानेके लिये एकाग्रतापूर्वक जल भरकर लाता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है। इन्द्र, भवना, चँदोना, फलन और चौर आदि वस्तुएँ सूर्यदेवको ब्रह्मापूर्वक समर्पित करके मनुष्य अभीष्ट गतिको प्राप्त होता है। मनुष्य जो-जो पदार्थ भगवान् सूर्यको भक्तिपूर्वक अर्पित करता है, उसे वे लाखगुना करके उस पुरुषको देते हैं। भगवान् सूर्यकी कृपासे मार्गसिक, जाधिक तथा शरीरिक समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। सूर्यदेवके एक दिनके पूजनसे भी जो फल प्राप्त होता है, वह साम्प्रोक्त दक्षिणासे पुक्त सैकड़ों

* अर्घ्येण सहितं चैव सर्वं साङ्गं ब्रह्मणेः । उदये ब्रह्मण्युक्तं सर्वकपैः प्रमुञ्चते ॥

(२९। ४४)

† अपनी स्त्रियेऽन्तरिक्षे च पुत्री भूमौ लील च । प्रतिष्ठायां जलं पिण्डार्घ्यं देयमर्घ्यं प्रयत्नतः ॥

(२९। ४८)

यज्ञोंके अनुष्ठानसे भी नहीं मिलता।

मुनिगणोंने कहा—अगस्त्यो! भगवान् सूर्यजी यह अद्भुत माहात्म्य हमने सुन लिया। अब पुनः हम जो कुछ पूछते हैं, उसे बताइये। गृहस्थ, ब्रह्मचारी, ज्ञानप्रस्थ और संन्यासी—जो जो मोक्ष प्राप्त करना चाहते, उसे किस देवताका पूजन करना चाहिये? कैसे उसे अक्षय स्वर्गकी प्राप्ति होगी? किस उपवाससे वह उत्तम मोक्षका भागी होगा तथा वह किस स्तवनका अनुष्ठान करे, जिससे स्वर्गमें जानेपर उसे पुनः नीचे न गिरना पड़े?

ब्रह्माजी बोले—द्विजवरों! भगवान् सूर्य उदय होते ही अपनी किरणोंसे संसारका अन्धकार दूर कर देते हैं। अतः उनसे बढ़कर दूसरा कोई देवता नहीं है। वे आदि-अन्तसे रहित, सत्त्वगुण एवं अधिवासी हैं तथा अपनी किरणोंसे प्रचण्ड रूप धारणकर तीनों लोकोंको तप देते हैं। सम्पूर्ण देवता इन्हींके स्वरूप हैं। वे तपनेवालोंमें श्रेष्ठ, सम्पूर्ण जगत्के स्वामी, साक्षी तथा पालक हैं। ये ही वायुधार जीवोंकी सृष्टि और संभार करते हैं तथा ये ही अपनी किरणोंसे प्रकाशित होते, वफे और वर्षा करते हैं। वे ज्ञाता, विधाता, सम्पूर्ण भूतोंके आदि कारण और सब जीवोंको उत्पन्न करनेवाले हैं। ये कभी क्षीण नहीं होते। इनका मण्डल सदा अक्षय बना रहता है। ये पितरोंके भी पिता और देवताओंके भी देवता हैं। इनका स्थान ध्रुव माना गया है, जहाँसे फिर नीचे नहीं गिरना पड़ता। सृष्टिके समय सम्पूर्ण जगत् सूर्यसे ही उत्पन्न होता है और प्रलयके समय अत्यन्त तेजस्वी भगवान् भास्करमें ही उसका सब होता है। असंख्य योगिजन अपने कसेवरका परित्याग करके वायुस्वरूप हो तेजोराशि भगवान् सूर्यमें ही प्रवेश करते हैं। राजा जनक आदि गृहस्थ योगी, बालखिल्य आदि ब्रह्मवादी महर्षि, ऋषि आदि

जनप्रस्थ ऋषि तथा कितने ही संन्यासी योगका अश्रय से सूर्यमण्डलमें प्रवेश कर चुके हैं। अतःसमुच्च श्रीमान् शुक्रदेवजी भी योगधर्म प्राप्त करनेके अनन्तर सूर्यकी किरणोंमें पहुँचकर ही मोक्षपदमें स्थित हुए। इसलिये आप सब लोग सदा भगवान् सूर्यको आराधना करें; क्योंकि वे सम्पूर्ण जगत्के माता, पिता और गुरु हैं।

अप्यक्त भस्मात्पञ्च सयस्त प्रजापतियों और नाना प्रकारकी प्रजाओंकी सृष्टि करके अपनेको बरह कर्षोंमें विभक्त करके आदित्यरूपसे प्रकट होते हैं। इन्द्र, धात, पर्वन्ध, त्वहा, पूषा, अर्यमा, मरु, विवस्वान्, विष्णु, अशुमान्, धरणि और मित्र—इन बरह मूर्तियोंद्वारा परमात्मा सूर्यने सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त कर रखा है। भगवान् आदित्यकी जो प्रथम मूर्ति है, उसका नाम इन्द्र है। वह देवराजके पदपर प्रतिष्ठित है। वह देवराजोंका उन्नत करनेवाली मूर्ति है। भगवान्के दूसरे विग्रहका नाम धात है, जो प्रजापतिके पदपर स्थित हो नाना प्रकारके प्रजावर्गकी सृष्टि करते हैं। सूर्यदेवकी तीसरी मूर्ति पर्वन्धके नामसे विख्यात है, जो ज्वालनोंमें स्थित हो अपनी किरणोंद्वारा वर्षा करती है। उनके चतुर्थ विग्रहको त्वहा कहते हैं। त्वहा सम्पूर्ण जनप्रसृतियों और ओषधियोंमें स्थित रहते हैं। उनकी पाँचवीं मूर्ति पूषाके नामसे प्रसिद्ध है, जो अन्नमें स्थित हो सर्वदा प्रजाजनोंकी पुष्टि करती है। सूर्यकी जो छठी मूर्ति है, उसका नाम अर्यमा कहलाता है। वह वायुके सहारे सम्पूर्ण देवताओंमें स्थित रहती है। भानुका सातवाँ विग्रह भगवत्के नामसे विख्यात है। वह ऐश्वर्य तथा देहधारीयोंके शरीरोंमें स्थित होता है। सूर्यदेवकी आठवीं मूर्ति विवस्वान् कहलाती है, वह अग्निमें स्थित हो जीवोंके छाये हुए अन्नको पचाती है। उनकी नवीं मूर्ति विष्णुके नामसे विख्यात है, जो

सदा देवशत्रुओंका मारा करनेके लिये अवतार लेती है। सूर्यकी दसवीं मूर्तिको नाम अंशुमान् है, जो वायुमें प्रतिष्ठित होकर समस्त प्रत्यक्षों को आनन्द प्रदान करती है। सूर्यका ग्यारहवाँ स्वरूप वरुणके नामसे प्रसिद्ध है, जो सदा बलमें स्थित होकर प्रजाका पोषण करता है। भानुके बारहवें विग्रहका नाम मित्र है, जिसने सम्पूर्ण लोकोंका हित करनेके लिये चन्द्र नदीके तटपर स्थित होकर तपस्वी की। परमात्मा सूर्यदेवने इन बारह मूर्तियोंके द्वारा सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त कर रखा है। इसलिये भक्त पुरुषोंको इच्छित है कि वे भगवान् सूर्यमें मन लगाकर पूर्वोक्त बारह मूर्तियोंमें जनक भ्याम और नमस्कार करें। इस प्रकार मनुष्य बारह अर्द्धित्योंको नमस्कार करके उनके नामोंका प्रतिदिन पाठ और श्रवण करनेसे सूर्यस्त्रोत्रमें प्रतिष्ठित होता है।

भुविर्द्योने पूछा—यदि ये सूर्य सनातन अर्द्धदेव हैं तो इन्होंने जर पानेकी इच्छासे प्राकृत मनुष्योंकी भीति तपस्या क्यों की?

ब्रह्माजी बोले—ब्राह्मणे। यह सूर्यका परम गोपनीय रहस्य है। पूर्वकालमें मित्र देवताने महात्मा भरदक्षों को भक्त बतलायी थी, वही मैं तुम लोगोंसे कहता हूँ। एक समयकी बात है, अपनी इन्द्रियोंको यत्नमें रखनेवाले महायोगी भरदक्षी मेरुगिरिके शिखरसे मन्थमादन नामक पर्वतपर बतारे और सम्पूर्ण लोकोंमें विचरते हुए उस स्वानपर आये, जहाँ मित्र देवता तपस्वी करते थे। उन्हें तपस्यामें संलग्न देख भरदक्षीके मनमें कौतूहल हुआ। वे सोचने लगे, 'जो अश्व, अधिकारी, व्यक्ताव्यकस्वरूप और सनातन पुरुष हैं, जिन महात्माने तीनों लोकोंको धारण कर रखा है, जो सब देवताओंके पिता एवं परोंसे भी पर हैं, वे किन देवताओं अथवा पितरोंका कर्जन करते

रहे हैं और करेंगे?' इस प्रकार मन-ही-मन विचार करके भरदक्षों मित्र देवतासे बोले—'भगवन्! अज्ञेयज्ञोंसहित सम्पूर्ण वेदों एवं पुराणोंमें आपकी महिमाका गाव किन्ना जाता है। आप अजन्मा, सनातन, भक्त तथा उत्तम अधिष्ठान हैं। भूत, भविष्य और वर्तमान—सब कुछ आपमें ही प्रविष्टित हैं। गृहस्थ आदि चारों आश्रम प्रतिदिन आपका ही यजन करते हैं। आप ही सबके पिता, माता और सनातन देवता हैं। फिर भी आप किस देवता अथवा पितरकी आराधना करते हैं, वह हमारी समझमें नहीं आता।'

मित्रने कहा—ब्रह्मन्। यह परम गोपनीय सनातन रहस्य कहने योग्य हो नहीं है; परंतु आप भक्त हैं, इसलिये आपके सामने मैं उसका वधावत् वर्णन करता हूँ। वह जो सूक्ष्म, अविशेष, अव्यक्त, अक्षय, शुद्ध, इन्द्रियरहित, इन्द्रियोंके विषयोंसे रहित तथा सम्पूर्ण भूतोंसे वृषत् है, वही समस्त जीवोंका अन्तरात्मा है; उसीको क्षेत्रज्ञ भी कहते हैं। वह तीनों गुणोंसे धिक् पुरुष कहा गया है, उसीका नाम भगवान् हिरण्यगर्भ है। वह सम्पूर्ण विश्वका आत्मा, सर्व (संहारकर्त्री) और अक्षर (अविनाशी) माना गया है। उसने इस एकसमक त्रिलोकीको अपने आत्माके द्वारा धारण कर रखा है। वह स्वयं शरीरसे रहित है, किंतु समस्त शरीरोंमें निवास करता है। शरीरमें रहते हुए भी वह उसके कर्मोंसे लिप्त नहीं होता। वह घेरा, तुम्हारा तथा अन्य जितने भी देहधारी हैं, उनका भी आत्मा है। सबका साक्षी है, कोई भी उसका ग्रहण नहीं कर सकता। वह सागुण, निर्गुण, विश्वरूप तथा ज्ञानगम्य भक्त गम्य है। उसके सब ओर हाथ-पैर हैं, सब ओर नेत्र, सिर और मुख हैं तथा सब ओर कान हैं, वह संसारमें सबको व्याप्त करके

स्थित है।* सम्पूर्ण मस्तक उसके मस्तक, सम्पूर्ण भुजाएँ उसकी भुजा, सम्पूर्ण पैर उसके पैर, सम्पूर्ण नेत्र उसके नेत्र एवं सम्पूर्ण भासिकाएँ उसके नासिका हैं। वह स्वेच्छाजाली है और अनेक ही सम्पूर्ण क्षेत्रों सुखपूर्वक विचारता है। यहाँ जितने सरोर हैं, वे सभी क्षेत्र कहलाते हैं। उन सबको वह योगरत्ना जानता है, इसलिये क्षेत्रज्ञ कहलाता है। अन्धकार पुरमें सपन करता है, अतः उसे पुरुष कहते हैं। विश्वको ज्योति है बहुविध, वह परमात्मा सर्वत्र वसताया जाता है, इसलिये बहुविधरूप होनेके कारण वह विश्वरूप माना गया है। एकमात्र वही महान् है और एकमात्र वही पुरुष कहलाता है; अतः वह एकमात्र सत्त्व परमात्मा ही महापुरुष नाम धारण करता है। वह परमात्मा स्वयं ही अपने-आपको सौ, हजार, लाख और करोड़ों रूपोंमें प्रकट कर लेता है। जैसे अन्धकारसे गिरा हुआ जल भूमिके रसविशेषसे दूसरे स्वरूपका हो जाता है, उसी प्रकार गुणमय रसके सम्पर्कसे वह परमात्मा अनेक रूप प्रतीत होने लगता है। जैसे एक ही वायु समस्त सरीसोंमें चौबे रूपोंमें स्थित है, उसी प्रकार अन्तरमाकी भी एकता और अनेकता मानी गयी है। जैसे अग्नि दूसरे स्वरूपकी विशेषतासे अन्य नाम धारण करती है, उसी प्रकार वह परमात्मा स्वयं आदिके रूपोंमें भिन्न-भिन्न नाम धारण करता है। जैसे एक दीप हजारों दीपोंको प्रकट करता है, वैसे ही वह एक ही परमात्मा हजारों रूपोंको दर्शक करता है। संसारमें जो चराचर भूत हैं, वे नित्य नहीं हैं; परंतु वह परमात्मा अक्षय, अप्रमेय तथा सर्वव्यापी कहा जाता है। वह ब्रह्म सदसत्स्वरूप है। लोकमें देवकार्य तथा

भित्तिकार्यके अवसरपर उसीकी पूजा होती है। उससे बहुत दूरात कोई देवता या पितर नहीं है। उसका ज्ञान अपने अन्तराके द्वारा होता है। अतः मैं उसी सर्वोत्कृष्टका पूजन करता हूँ। देवमें स्वर्गमें भी जो जीव उस परमेश्वरके गमस्वरूप करते हैं, वे उसीके द्वारा दिये हुए अभीष्ट गतिको प्राप्त होते हैं। देवता और अपने-अपने आश्रमोंमें स्थित मनुष्य पण्डितपूर्वक उसके आदिभूत उस परमात्माका पूजन करते हैं और वे उन्हें सद्गति प्रदान करते हैं। वे सर्वार्थ, सर्वगत और निर्गुण कहलाते हैं। मैं भगवान् सूर्यको ऐश्वर्य मानकर अपने ज्ञानके अनुसार उनका पूजन करता हूँ, नरदजी! वह गोपनीय उपदेश मैंने अपनी भक्तिके कारण आपको बता दिया है। आपने भी इस उद्यम का स्वयंको बलवर्धनीय संपन्न लिया। देवता, मुनि और पुरुष—सभी उस परमात्माकी शरदात्मक मानती हैं और इसी भयसे सब लोग भगवान् दिवाकरका पूजन करते हैं।

नरदजी कहते हैं—इस प्रकार निम्न देवताके पूर्वकालमें नरदजीको वह उपदेश दिया था। भानुके उपदेशको मैंने भी आप लोगोंसे कहा सुनाया। जो सूर्यका भक्त है, उसे इसका उपदेश नहीं देना चाहिये। जो मनुष्य प्रतिदिन इस प्रसंगको सुनाता और जो सुनता है, वह निःसंदेह भगवान् सूर्यमें प्रवेश करता है। अरुणसे ही इस कथाको सुनकर रोषी मनुष्य रोगसे मुक्त हो जाता है और जिज्ञासुको उत्तम ज्ञान एवं अभीष्ट गतिकी प्राप्ति होती है। मुनियो! जो इसका पठ करता है, वह जिस-जिस वस्तुकी ध्यान करता है, उसे निश्चय ही प्राप्त कर लेता है।



* यस्यापि शरीरेऽयं स शिष्योऽर्चयति। यस्यावतारस्य तत्र च ये ज्ञाने देहसंस्थिताः। सर्वेऽपि सतिभूतेऽसीं च ब्रह्मः केतवित् कर्तव्यः। मनुष्ये निर्जुषे विष्णो ज्ञानगम्ये ह्यसीं श्रुतः। सर्वतः पण्डितपादकः। सर्वतः उचितशरोमुखः। सर्वतः कुविन्मौनेकः सर्वमात्मन्य तिष्ठति॥

सूर्यकी महिमा तथा अदितिके गर्भसे उनके अवतारका वर्णन

ब्रह्माजी कहते हैं—भगवान् सूर्य सबके अग्रज, सम्पूर्ण लोकोंके ईश्वर, देवताओंके भी देवता और प्रजापति हैं। ये ही तीनों लोकोंकी जड़ हैं, परम देवता हैं। अग्रिमें विधिपूर्वक डाली हुई अहुति सूर्यके पत्र ही पहुँचती है। सूर्यसे वृष्टि होती, वृष्टिसे अन्न पैदा होता और अन्नसे प्रजा जीवन-निर्वाह करती है। धन, मुहूर्त, दिन, रात, पक्ष, मास, संवत्सर, ऋतु और युग—इनकी कल्प-संख्या सूर्यके बिना नहीं हो सकती। कल्पका ज्ञान हुए बिना न कोई निष्पन्न चल सकता है और न अग्रिहोत्र आदि ही हो सकते हैं। सूर्यके बिना ऋतुओंका विभाग भी नहीं होगा और उसके बिना वृक्षोंमें फल और फूल कैसे लग सकते हैं? खेती कैसे फल सकती है और नाना प्रकारके अन्न कैसे उत्पन्न हो सकते हैं? इस दशममें स्वर्गलोक तथा भूलोकमें जीवोंके व्यवहारका भी लोप हो जायगा। आदित्य, सविता, सूर्य, मिहिरे, अर्क, प्रभाकर, मार्तण्ड, भास्कर, भानु, चित्रभानु, दिवाकर तथा रवि—इन बारह सामान्य नामोंके द्वारा भगवान् सूर्यका ही बोध होता है। विष्णु, धन्तर, भग, पूष, मित्र, इन्द्र, वरुण, अर्यमा, विवस्वान्, अंशुमान्, त्वष्टा तथा पर्जन्य—ये बारह सूर्य वृषक्-पूषक् माने गये हैं। चैत्र मासमें विष्णु, वैशाखमें अर्यमा, ज्येष्ठमें विवस्वान्, आषाढ़में अंशुमान्, श्रावणमें पर्जन्य, भादोंमें वरुण, आश्विनमें इन्द्र, कार्तिकमें धन्तर, अगहनमें मित्र, पौषमें पूषा, माघमें भग और फाल्गुनमें त्वष्टा नामक सूर्य तपते हैं। इस

प्रकार यहाँ एक ही सूर्यके बीबीस नाम बताये गये हैं। इनके अतिरिक्त और भी हजारों नाम विस्तारपूर्वक कहे गये हैं।

मुनियोंने पूछा—प्रजापते! जो एक हजार नामोंके द्वारा भगवान् सूर्यकी स्तुति करते हैं, उन्हें क्या पुण्य होता है? तथा उनकी कैसी गति होती है?

ब्रह्माजी बोले—मुनिवरों! मैं भगवान् सूर्यका कल्पवृक्षमय सनातन स्तोत्र कहता हूँ, जो सब स्तुतियोंका सारभूत है। इसका पाठ करनेवालेको तबका जन्मोंकी आवश्यकता नहीं रह जाती। भगवान् भास्करके जो मित्र, शुभ एवं गोपनीय नाम हैं, उनकी वर्णन करता हूँ, सुनो। विकर्तन, विवस्वान्, मार्तण्ड, भास्कर, रवि, लोकप्रकाशक, श्रीमान्, लोकचक्षु, महेश्वर, लोकसाक्षी, त्रिलोकेश, कर्तृ, इर्त, तमिस्रज, तपन्, तपन्, हृषि, सताध्याहन, गभस्तिहस्त, ब्रह्म और सर्वदेवनमस्कृत—इस प्रकार इक्कीस नामोंका यह स्तोत्र भगवान् सूर्यको सदा प्रिय है।* यह शरीरको नीरोग बनानेवाला, धनकी वृद्धि करनेवाला और सब फैलानेवाला स्तोत्राचार्य है। इसकी तीनों लोकोंमें प्रसिद्धि है। द्विजवरों! जो सूर्यके उदय और अस्तकालमें—दोनों संध्योंके समय इस स्तोत्रके द्वारा भगवान् सूर्यकी स्तुति करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। भगवान् सूर्यके समीप एक बार भी इसका जप करनेसे धार्मिक, जायिक, शारीरिक तथा कर्मजनित सब पाप नष्ट हो जाते हैं। अतः ब्राह्मणों, आप लोग कल्पपूर्वक सम्पूर्ण अभिलषित फलोंके देनेवाले

* विकर्तनो विवस्वान् मार्तण्डो भास्करो रविः । लोकप्रकाशकः श्रीमान् लोकचक्षुर्नृपः ॥
लोकसाक्षी त्रिलोकेशः कर्ता इर्त तमिस्रजः । तपस्तपन् हृषिः सताध्याहनः ॥
गभस्तिहस्तो ब्रह्म च सर्वदेवनमस्कृतः । एकविंशतिभिस्तैः स्तुतः इहः सदा त्वेः ॥

भगवान् सूर्यका इस स्तोत्रके द्वारा स्तवन करें।

मुनियोंने पूछा—भगवन्! आपने भगवान् सूर्यको निर्गुण एवं सनातन देवता कहालाका है; फिर आपके ही मुंहसे हमने यह भी सुना है कि वे बारह स्वरूपोंमें प्रकट हुए। वे तेजकी राशि और महान् तेजस्वी होकर किसी स्त्रीके गर्भमें कैसे प्रकट हुए, इस विषयमें हमें बड़ा संदेह है।

ब्रह्माजी बोले—प्रजपति दक्षके सब कन्यहों हुई, जो श्रेष्ठ और सुन्दरी थीं। उनके नाम अदिति, दिति, दनु और विनता आदि थे। उनमेंसे तेरह कन्याओंका विवाह दक्षने कश्यपजीसे किया था। अदितिने तीनों लोकोंके स्वामी देवताओंको जन्म दिया। दितिसे दैत्य और दनुसे वसाभिष्मकी भयंकर शपथ उत्पन्न हुए। विनता अर्द्धि अन्य स्त्रियोंने भी स्थावर-जङ्गम भूतोंको जन्म दिया। इन दक्षसुताओंके पुत्र, पौत्र और दौहित्र आदिके द्वारा यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त हो गया। कश्यपके पुत्रोंमें देवता प्रधान हैं, वे सार्वभौम हैं; इनके अतिरिक्त दैत्य आदि राजस और तामस हैं। देवताओंकी बड़का छागी बनया मन्त्र है। परन्तु दैत्य और राजस उनसे शत्रुता रखते थे, अतः वे मिलाकर उन्हें बड़े पहुँचाने लगे। माता अदितिने देखा, दैत्यों और राजसोंने धीरे पुत्रोंको अपने स्थानसे हटा दिया और सारी त्रिलोकी नष्टग्राम कर दी। तब उन्होंने भगवान् सूर्यकी आराधनाके लिये महान् प्रयत्न किया। वे निर्यन्त्र अन्धकार

करके कक्षेर नियमका पालन करती हुई एकाग्रचित्त हो आकाशमें स्थित तेजोराशि भगवान् भास्करका स्तवन करने लगीं।

अदिति बोली—भगवन्! आप अत्यन्त सूक्ष्म, परम पवित्र और अनुपम तेज धारण करते हैं। तेजस्वियोंके ईश्वर, तेजके आधार तथा सनातन देवता हैं। आपको नमस्कार है। गोपते! जगत्का उपकार करनेके लिये मैं आपकी स्तुति—आपसे प्रार्थना करती हूँ। प्रचण्ड रूप धारण करते समय आपकी वैसी आकृति होती है उसको मैं प्रणम करती हूँ। क्रमशः आठ भासतक पृथ्वीके जलरूप रसको ग्रहण करनेके लिये आप जिस अत्यन्त तीव्र रूपको धारण करते हैं, उसे मैं प्रणम करती हूँ। आपका वह स्वरूप अग्नि और सोमसे संयुक्त होता है। आप गुणात्माको नमस्कार है। विश्वामस्तो! आपका जो रूप शङ्ख, घण्टा और सामकी एकतासे त्रयीसंज्ञक इस विश्वके रूपमें तपता है उसकी नमस्कार है। सनातन! उससे भी परे जो 'ॐ' नामसे प्रतिपादित स्थूल एवं सूक्ष्मरूप निर्मल स्वरूप है, उसको मेरा प्रणम है।*

ब्रह्माजी कहते हैं—इस प्रकार बहुत दिनोंतक अन्धराध करनेपर भगवान् सूर्यने दक्षकन्या अदितिको अपने तेजोमय स्वरूपका प्रत्यक्ष दर्शन कराया।

अदिति बोली—जगत्के आदि कारण भगवान् सूर्य! उक्त मुझपर प्रसन्न हों। गोपते! मैं आपको

* नमस्तुभ्यं परं सूक्ष्मं सुपुष्पं विश्वोद्भूतम् । यान् धामकाशीनां चान्यथारं च साकतम् ॥
यगतामुपकाराय त्वमहं स्तुयिष्ये गोपते । जगद्वन्द्यं यद्वत् तीक्ष्णं तस्मै नमाम्यहम् ॥
प्रहीणुष्वन्तरात्नं कालेनाभ्युपगच्छं रसम् । विप्रतस्तु यदुपमसिद्धिं नरास्मि तत् ॥
समेतयप्रिसोमाभ्यां नमस्तस्मै गुणतस्मै । यदुपकृत्यमुःसाप्रापिष्येन तपते तव ॥
विश्वमेतत्त्रयीसंज्ञं नमस्तस्मै विश्वामस्तो । यत् तस्मत्परं रूपमोधिपुक्त्वाभिसंहितम् ॥
अस्मूर्तां स्मृताभ्यस्तं नमस्तस्मै सनातन ॥

भलीभाँति देख नहीं पाती। दिवाकर! आप ऐसी कृपा करें, जिससे मुझे आपके रूपका भलीभाँति दर्शन हो सके। भक्तोंपर दया करनेवाले प्रभे। मेरे पुत्र आपके भक्त हैं, आप उनपर कृपा करें।

तब भगवान् भास्करने अपने सामने पड़ी हुई देवीको स्पष्ट दर्शन देकर कहा—‘देवि! आपकी ओ इच्छा हो, उसके अनुसार मुझसे कोई एक वर माँग लें।’



अदिति बोली—देव! आप प्रसन्न हों। अधिक बलवान् दैत्यों और दानवोंने मेरे पुत्रोंके हाथसे त्रिलोकीका राज्य और यहभाग छीन लिये हैं। गोप्ते! उन्हींके लिये आप मेरे ऊपर कृपा करें। अपने अंशसे मेरे पुत्रोंके भाई होकर आप उनके शत्रुओंका नाश करें।

भगवान् सूर्यने कहा—देवि! मैं अपने हजकल अंशसे तुम्हारे गर्भका बालक होकर प्रकट होऊँगा और तुम्हारे पुत्रके शत्रुओंका नाश करूँगा।

यों कहकर भगवान् भास्कर अन्तर्धान हो गये और देवी अदिति भी अपना समस्त मनोरथ

सिद्ध हो जानेके कारण तपस्यासे निवृत्त हो गयीं। तपश्चात् वर्षके अन्तमें देवमाता अदितिकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये भगवान् सविताने उनके गर्भमें निवास किया। उस समय देवी अदिति यह सोचकर कि मैं पवित्रतापूर्वक हो इस दिव्य गर्भको धारण करूँगी, एकप्रवृत्ति होकर कृष्ण और चाम्पायन आदि व्रतोंका फलन करने लगीं। उनका यह कठोर नियम देखकर कश्यपजीने कुछ कुपित होकर कहा—‘तु निश्च तपसास करके गर्भके बच्चेको क्यों मारे डालती है।’ तब वे भी रह होकर बोलीं—‘देखिये, यह रहा गर्भका बच्चा। मैंने इसे नहीं मारा है, यही अपने शत्रुओंका मारनेवाला होगा।’ यों कहकर देवमाताने उसी समय उस गर्भका प्रसव किया। वह उदयकालीन सूर्यके समान तेजस्वी अण्डाकार गर्भ सहसा प्रकणित हो उठा। उसे देखकर कश्यपजीने वैदिक वाणीके द्वारा आदरपूर्वक उसका स्तवन किया। स्तुति करनेपर उस गर्भसे बालक प्रकट हो गया। उसके श्रीअङ्गोंकी आभा पद्मपत्रके समान स्थाय थी। उसका तेज सम्पूर्ण दिशाओंमें व्याप्त हो गया। इसी समय अन्तरिक्षसे कश्यप भुनिको सम्बोधित करके सजल मेघके समान गम्भीर स्वरमें आकाशवाणी हुई—‘भुने! तुमने अदितिले कहा था—‘त्वया धारितम् अण्डम्’ (तूने गर्भके बच्चेको मार डाला), इसलिये तुम्हारा यह पुत्र पर्यगृहके नामसे विख्यात होगा और वज्रभाग्य अघोरण करनेवाले अपने शत्रुघ्न असुरोंका संहार करेगा।’ यह आकाशवाणी सुनकर देवताओंको बड़ा हर्ष हुआ और दानव हतोत्साह हो गये। तपश्चात् देवताओंसहित इन्द्रने दैत्योंको युद्धके लिये ललकारा। दानवोंने भी आकर उनका सामना किया। उस समय देवताओं और असुरोंमें बड़ा मयानक युद्ध

हुआ। उस युद्धमें भगवान् मर्त्यजने दैत्योंकी ओर देखा, अतः वे सभी महान् असुर उनके तेजसे चलकर भस्म हो गये। फिर तो देवताओंके हर्मकी सीमा नहीं रही। उन्होंने अदिति और मर्त्यजका स्तवन किया। तदनन्तर देवताओंको पूर्ववत् अपने-अपने अधिकार और वज्रमाण प्राप्त हो गये। भगवान् मर्त्यज भी अपने अधिकारका पालन करने लगे। ऊपर और नीचे सब ओर किरणें फैली होनेसे भगवान् सूर्य कदम्बपुष्पकी भाँति शोभा पाते थे। वे आगमें तपते हुए गोलेके सदृश दिखायी देते थे। उनका बिज्र अधिक स्पष्ट नहीं जान पड़ता था।



श्रीसूर्यदेवकी स्तुति तथा उनके अष्टोत्तरशत नामोंका वर्णन

मुनिर्घोषे ब्रह्म—भगवान्! आप पुनः हमें सूर्यदेवसे सम्बन्ध रखनेवाली कथा सुनाइये।

ब्रह्मकी बोले—स्वर्गर-जन्म समस्त प्राणिमूर्ति नष्ट हो जानेपर जब समस्त लोक अन्धकारमें विलीन हो गये थे, उस समय सबसे पहले प्रकृतिसे गुणोंकी हेतुभूत समष्टि बुद्धि (महत्तत्त्व)—का आविर्भाव हुआ। उस बुद्धिसे पञ्चमहाभूतोंका प्रकीर्ण अहंकार प्रकट हुआ। अकार, रज, अग्नि, जल और पृथ्वी—ये पाँच महाभूत हुए। तदनन्तर एक अण्ड उत्पन्न हुआ। उसमें वे सखें लोक प्रतिष्ठित थे। सातों द्वीपों और समुद्रोंसहित पृथ्वी भी उसमें थी। उसीने रौं, विष्णु और महादेवकी भी वे। वहाँ सब लोग तमोगुणसे अधिभूत एवं विमूढ़ थे और परमेश्वरका ध्यान करती थे। तदनन्तर अन्धकारको दूर करनेवाले एक महादेवस्वी देवता प्रकट हुए। उस समय हम लोगोंने ध्यानके द्वारा जाना कि ये

भगवान् सूर्य हैं। उन परमात्माको जानकर हमने दिव्य स्तुतियोंके द्वारा उनका स्तवन उद्गम्य किया—'भगवान्! तुम अदितेय हो। ऐश्वर्यसे सम्पन्न होनेके कारण तुम देवताओंके ईश्वर हो। सम्पूर्ण भूतोंके आदिकर्त्ता भी तुम्हीं हो। तुम्हीं देवाधिदेव दिव्यकर हो। सम्पूर्ण भूतों, देवताओं, गन्धर्वों, उक्षसों, मुनिवृक्षों, किन्नरों, सिद्धों, जगें तथा पक्षियोंका जीवन तुमसे ही चलता है। तुम्हीं ब्रह्म, तुम्हीं महादेव, तुम्हीं विष्णु, तुम्हीं प्रजापति तथा तुम्हीं वायु, इन्द्र, सोम, विष्णुस्वर्ण एवं वरुण हो। तुम्हीं काल हो। सृष्टिके कर्त्ता, भर्त्ता, संकर्त्ता और प्रभु भी तुम्हीं हो। नदी, समुद्र, पर्वत, विजली, इन्द्र-धनुष, प्रलय, सृष्टि, मृत्यु, अमृत एवं सन्तान पुत्र भी तुम्हीं हो। सहस्र परमेश्वर तुम्हीं हो। तुम्हारे हाथ और पैर सब ओर हैं। नेत्र, घस्तक और मुख भी सब ओर हैं। तुम्हारे सहस्रों किरणें, सहस्रों मुख, सहस्रों चरण

और सहस्रों नेत्र हैं। तुम सम्पूर्ण भूतोंके आदिकारण हो। भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः और सत्य—ये सब तुम्हारे ही स्वरूप हैं। तुम्हारा जो स्वरूप अत्यन्त तेजस्वी, सबका प्रकाशक, दिव्य, सम्पूर्ण लोकोंमें प्रकट होकर फैला हुआ और देवोंके द्वारा भी कठिनतासे देखे जाने योग्य है, उसको हमारा नमस्कार है। देवता और सिद्ध जिसका सेवन करते हैं, भृगु, अग्नि और पुलाह आदि महर्षि जिसकी स्तुतिमें संलग्न रहते हैं तथा जो अत्यन्त अव्यक्त है, तुम्हारे उस स्वरूपको हमारा प्रणाम है। सम्पूर्ण देवताओंमें उत्कृष्ट तुम्हारा जो रूप वेददेता पुरुषोंके द्वारा जानने योग्य, निर्य और सर्वज्ञानसम्पन्न है, उसको हमारा नमस्कार है। तुम्हारा जो स्वरूप इस विश्वकी सृष्टि करनेवाला, विश्वम्भ, अग्नि एवं देवताओंद्वारा पूजित, सम्पूर्ण विश्वमें व्यापक और अचिन्त्य है, उसे हमारा प्रणाम है। तुम्हारा जो रूप यज्ञ, वेद, लोक तथा सुलोकसे भी परे परमात्मा नामसे विख्यात है, उसको हमारा नमस्कार है। जो अविज्ञेय, अलम्ब्य,

अचिन्त्य, अव्यक्त, अनग्नि और अनन्त है, तुम्हारे उस स्वरूपको हमारा प्रणाम है। प्रभो, तुम कारणके भी कारण हो, तुम्हको बारम्बार नमस्कार है। जपोंसे मुक्त करनेवाले तुम्हें प्रणाम है, प्रणाम है। तुम दैत्योंको पीड़ा देनेवाले और रोगोंसे मुक्तकार दिलानेवाले हो। तुम्हें अनेकानेक नमस्कार हैं। तुम सबको धर, सुख, धन और उत्तम बुद्धि प्रदान करनेवाले हो। तुम्हें बारम्बार नमस्कार है।*

इस प्रकार स्तुति करनेपर तेजोमय रूप धारण करनेवाले भगवान् भास्करने कल्याणमयी वाणीमें कहा—‘आप लोगोंको कौन-सा धर प्रदान किया जाय?’

देवताओंने कहा—‘प्रभो! आपका रूप अत्यन्त तेजोमय है, इसका ताप कोई सह नहीं सकता। अतः जागृके हितके लिये यह सबके सहने योग्य ही जाय।’

तब ‘एवमस्तु’ कहकर आदिकर्ता भगवान् पूर्व सम्पूर्ण लोकोंके कार्य सिद्ध करनेके लिये समय-समयपर गर्मी, सर्दी और वर्षा करने लगे।

* अग्निदेवोऽसि देवतामैश्वर्यम् त्वमीश्वरः । अदिकर्तासि भूतानां देवदेवो दिव्यकरः ॥
 जीवधः सर्वभूतानां देवगणेश्वरकर्मन् । बुधिकिञ्चिद्विद्वान् त्वैवोरागपक्षिणम् ॥
 त्वं ब्रह्म त्वं महादेवस्त्वं विष्णुस्त्वं ब्रह्मर्षिः । कपूरिन्द्राय नमः शिवस्मिन् कर्मस्तथा ॥
 त्वं कालः सृष्टिकर्ता च इती भर्ता त्वया प्रभुः । सरितः सागराः सैला विष्णुर्दिग्भूषि च ॥
 प्रलयः प्रभवश्चैव चक्रवर्त्तकः समन्वयः । ईश्वरपरो विद्या विद्यायाः परतः शिवः ॥
 शिवात्परमार्थो देवस्त्वमेव परमेश्वरः । सर्वतः भविष्यद्विद्वान् सर्वतोऽभितोषिमुखः ॥
 सहस्रांशुः सहस्राक्षः सहस्रचरणेश्वरः । भूतर्षिर्भूषणः स्वस्व महः सत्यं तपो जनः ॥
 इदीशं दीप्यं दिव्यं सर्वलोकप्रकटकम् । दुर्निरीक्षं सुन्दरान् शङ्खं शस्त्रं ते नमः ॥
 सुरसिद्धगर्भजुष्टं ब्रह्मविष्णुसहस्रनामम् । सुखं परमव्यक्तं चक्षुषं शस्त्रं ते नमः ॥
 वेद्यं वेदविदां शिष्यं सर्वज्ञानसमीपकम् । सर्वदेवार्पितेभ्यस्त्वं पाहूषं शस्त्रं ते नमः ॥
 विष्णुर्दिग्भूतं च वैष्णवरसुखं विद्वान् । विष्णुस्त्वन्मन्त्रिणं च चक्षुषं शस्त्रं ते नमः ॥
 परं यज्ञात्परं वेदात्परं लोकान्तरं दिवः । परमेश्वरैश्वर्यशालं चक्षुषं शस्त्रं ते नमः ॥
 अविज्ञेयमालम्ब्यमभ्यगतामन्त्रकम् । अनादिनिधनं चैव शङ्खं शस्त्रं ते नमः ॥
 नमो नमः कल्यणकारकं नमो नमः । कर्मो नमस्तेति नमो नमो रोगविशेषकम् ॥
 नमो नमः सर्वव्यवसायं नमो नमः । सर्वसुखप्रदायं नमो नमः । सर्वधनप्रदायं नमो नमः । सर्वमतिप्रदायं ॥

तदनन्तर ज्ञानी, योगी, ध्यात्री तथा अन्यान्य मोक्षाभिलाषी पुरुष अपने हृदय-प्रतिरूपमें स्थित भगवान् सूर्यका ध्यान करने लगे। समस्त शुभ लक्षणोंसे हीन अथवा सम्पूर्ण फलकोंसे मुक्त ही क्यों न हो, भगवान् सूर्यकी शरण लेनेसे मनुष्य सब फलोंसे तर जाता है। अग्निहोत्र, वेद तथा अधिक दक्षिणावासे यज्ञ भगवान् सूर्यकी पत्नि एवं नमस्कारकी सोलहवीं कस्ताके बराबर भी नहीं हो सकते। भगवान् सूर्य तीर्थोंमें सर्वोत्तम तीर्थ, मङ्गलोंमें परम मङ्गलमय और पवित्रोंमें परम पवित्र हैं। अतः विद्वान् पुरुष उनकी शरण लेते हैं। जो इन्द्र अदिके द्वारा प्रलम्बित सूर्यदेवकी नमस्कार करते हैं, वे सब फलोंसे मुक्त हो सूर्यलोकमें जाते हैं।

सुनिर्णय कहे—ब्रह्मन्। हमारे मनमें धिरकलसे यह इच्छा हो रही है कि भगवान् सूर्यके एक ही आठ नामोंका वर्णन सुनें। आप उन्हें कठानेकी कृपा करें।

ब्रह्माजी बोले—ब्रह्मणो! भगवान् भस्करके परम गोपनीय एक ही आठ नाम, जो स्वर्ग और मोक्ष देनेवाले हैं, बतलाता हूँ सुने। ॐ सूर्य, अर्यमा, भग, त्वष्टा, पूषा (चोरक), अरु, सविता, रवि, राधस्तिमान् (धिरर्षीवाले), अज (अजन्म), काल, मृत्यु, भक्त (धारण करनेवाले), प्रभकर (प्रकासक राजा), पृथ्वी, आप (जल), तेज, ख (आकाश), वायु, परावण (शरण देनेवाले),

सोम, बृहस्पति, शुक्र, बुध, अङ्गाटक (मङ्गल), इन्द्र, विवस्वान्, दीर्घाशु (प्रज्वलित किरणोंवाले), सुवि (पवित्र), सौरि (सूर्यपुत्र मनु), जनैश्वर, ब्रह्म, विष्णु, रुद्र, स्कन्द (कार्तिकेय), वैश्रवण (कुबेर), यम, वैधुत (बिजलीमें रहनेवाली) अग्नि, जातराग्नि, ऐश्वर्य (ईश्वरमें रहनेवाली) अग्नि, तेजःपति, धर्मध्वज, वेदकर्ता, वेदज्ञ, वेदवाहन, कृत (सत्यपुत्र), त्रेता, द्वापर, कल, सर्वामराश्रय, कल्ह, कल्हा, मुहूर्ध, क्षण (रात्रि), याम (पहर), क्षय, संवत्सरकर, अक्षय, कालचक्र, विभावसु (अग्नि), पुरुष, साक्षी, योगी, ध्येताध्यक्ष, सनातन, कासाध्यक्ष, प्रजाध्यक्ष, विश्वकर्मा, तमोनुद (अन्धकारको भगानेवाले), वरुण, सागर, अंश, जीमूत (मेघ), जीवन्, अरिहा (राक्षसोंका नाश करनेवाले), भूताक्षय, पूतपति, सर्वलोकनमस्कृत, ब्रह्म, सर्वज्ञ (प्रत्यक्षस्त्रेन) अग्नि, सर्वदि, अलोत्प (भिल्लेष), अनन्त, कपिल, भानु, कामद (कामकर्मोंको पूर्ण करनेवाले), सर्वतोमुख (सब ओर मुखवाले), जय, विनायक, वरु, सर्वभूतान्निर्धेय, मन, सुपर्ण (गरुड), भूतादि, शीघ्रग (शीघ्र चलनेवाले), प्रणधारण, भन्वन्तरि भूमकेतु अग्निदेव, अग्निपुत्र, द्वादशरत्न (बारह स्वरूपोंवाले), रवि, दक्ष, पिता, यज्ञा, पितामह, स्वर्गद्वार, प्रजाद्वार, मोक्षद्वार, त्रिविष्टप (स्वर्ग), देहकर्ता, प्रसन्नतात्मा, विशदम्ब, विश्वतोमुख, चरचरत्मा, सुक्ष्मात्मा, मैत्रेय तथा करुणान्वित (दयालु)*—ये अमित

* ॐ सूर्योऽर्थता मगस्यष्टा। सूर्यकः स्तुति रविः। नक्षत्रानामजः काली मृत्युर्वाता प्रभकरः॥
पृथिव्यापान तेजश्च खं वायुश्च परावणम्। सोमो बृहस्पतिः शुक्रो बुधोऽङ्गाटक एव च॥
इन्द्रो विवस्वान्दीर्घाशुः शुविः सौरिः जनैश्वरः। ब्रह्म विष्णुश्च रुद्रश्च स्कन्दो वैश्रवणो यमः॥
वैधुते जातराग्निर्नैश्वर्यदेवता पतिः। धर्मध्वजो वेदकर्ता वेदज्ञो वेदवाहन॥
कृतं त्रेता द्वापरश्च कलिः सर्वामराश्रयः। कल्हकल्हामुहूर्धश्च क्षणं यामास्ताम क्षयः॥
संवत्सरकरोऽक्षयः कालचक्रो विभावसुः। पुरुषः साक्षी योगो ध्येताध्यक्षः सनातनः॥
कासाध्यक्षः प्रजाध्यक्षो विश्वकर्मा तमोनुदः। वरुणः सागरोऽक्षश्च जीमूतं जीवन्नेऽरिहा॥

तेजस्वी एवं कीर्तन करने योग्य भगवान् सूर्यके एक सी आठ सुन्दर नाम मैंने बताये हैं। जो मनुष्य देवश्रेष्ठ भगवान् सूर्यके इस स्तोत्रका सुद्ध

एवं एकत्र चित्तसे कीर्तन करता है, वह शोकरूपी दुःख-मलके समुद्रसे मुक्त हो जाय और मनोवाञ्छित योगोंको प्राप्त कर लेता है।

पार्वतीदेवीकी तपस्या, वरदान-प्राप्ति तथा उनके द्वारा ब्राह्मके मुखसे ब्राह्मण-बालकका उद्धार

मुनिवर्ग पूछा—प्रभे! दक्षकन्या सतीने ब्रह्मवत् पूर्वशरीरका परि त्याग करके फिर गिरिराज हिमालयके चरमों कैसे जन्म लिया? महादेवजीके साथ उनकी संयोग कैसे हुआ? तथा उस दम्पतिमें पार्वत्याग किस प्रकार हुआ?

ब्रह्मजी बोले—मुनिवरो! पार्वती और महादेवजीकी पवित्र कथा सगोत्रों का नाश करनेवाली और सम्पूर्ण ब्रह्मण्डजनोंको देनेवाली है, उसे कहता हूँ, सुनो। एक समयकी बात है, महर्षि कश्यप हिमवान्‌के घरपर पधारे। उस समय हिमवान्‌ने पूछा—‘मुने! किस उपायसे मुझे अक्षय लोक प्राप्त होंगे, मेरी अधिक प्रसिद्धि होगी और सत्पुरुषोंमें मैं पूजनीय समझा जाऊँगा?’

कश्यपने कहा—महन्महो! उत्तम संतान होनेसे यह सब कुछ प्राप्त हो जाता है। ब्रह्म और ऋषियोंसहित मेरी प्रसिद्धि तो केवल संतानके ही कारण है। अतः गिरिराज! तुम जोर तपस्या करके गुणवान् संतान—श्रेष्ठ कन्या उत्पन्न करो।

ब्रह्मजी कहते हैं—कश्यपजीके जो कहनेपर गिरिराज हिमालयने नियममें स्थित होकर हेतो,

तपस्या की, जिसकी कहीं तुलना नहीं है। उस तपस्यासे मुझे बड़ा संतोष हुआ। तब मैंने उनके पास जाकर कहा—‘उत्तम व्रतके पालन करनेवाले गिरिराज! अब मैं तुम्हारी इस तपस्यासे संतुष्ट हूँ। तुम इच्छानुसार करोगे।’

हिमालयने कहा—भगवन्! मैं सब गुणोंसे सुतोषित संतान कहता हूँ। यदि आप मुझपर संतुष्ट हैं तो ऐसा ही कर दीजिये।

गिरिराजकी यह बात सुनकर मैंने उन्हें मनेर्बलित्त वर देते हुए कहा—‘शैलेन्द्र! इस तपस्याके प्रभावसे तुम्हारे कन्या उत्पन्न होगी, जिससे तुम सर्वत्र उत्तम कीर्ति प्राप्त करोगे। तुम्हारे चर्चा-कोटि-कोटि तीर्थ प्राप्त करेंगे। तुम सम्पूर्ण देवताओंसे पूजित होंगे तथा अपने पुण्यसे देवताओंके भी समान बनओगे। तदनन्तर गिरिराजने समानुसार अपनी पत्नी पित्तके गर्भसे अपनी कन्या एक कन्या उत्पन्न की। अपनी बहुत सम्पत्तिक निराहार रही, उसे उपवाससे रोकते हुए भातने कहा—‘बेटो! ‘ठ मा’ (ऐसा मत करो)।’ उस समय वे मरुत्सोहसे दुःखित हो रही थीं।

भूतलवधो भूतपतिः सर्वलोकनयस्कृतः । सदा सर्वत्रको बहिः सर्वस्थदिरत्वेनपु० ॥
अनन्धः कमिच्छे चानुः कामदः सर्वलोमुखः । जगते विश्रुतो वरदः सर्वभूतनिवेधितः ॥
मनः सुषणी भूतपतिः सौम्यः प्रणमः । धन्यनामिभूमकेतुरादिदेवोऽदितेः सुतः ॥
हृदयान्तथा रविर्दशः पित्रा मया विनाम्यः । स्वर्गद्वारं प्रवृत्तं योऽद्वारं त्रिविधपम् ॥
देहकर्ता प्रज्ञानात्मक विश्रुता विश्रुतोमुखः । यत्तवरात्तव सुधर्मश्च मेधेन करुणान्वितः ॥

माताके यों कहनेपर कठोर तपस्या करनेवाली पार्वतीदेवी उमा नामसे ही संसारमें प्रसिद्ध हुई। पार्वतीकी तपस्यासे तीनों लोक संतप्त हो उठे। तब मैंने उससे कहा—'देवि! क्यों इस कठोर तपस्यासे तुम सम्पूर्ण लोकोंको संतप्त दे रही हो? कल्याण! तुम्होंने इस सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि की है। स्वयं ही इसे रचकर अब इसका विनाश न करो। जगन्माता! तुम अपने तेजसे सम्पूर्ण लोकोंको धारण करती हो, फिर कौन ऐसी वस्तु है, जिसे तुम इस समय तपस्याद्वारा प्राप्त करना चाहती हो? यह हमें बतलाओ।'



देवीने कहा—पितामह! मैं जिसके लिये यह तपस्या करती हूँ, उसे आप भलीभाँति जानते हैं। फिर मुझसे क्यों पूछते हैं?

तब मैंने पार्वतीसे कहा—'शुभे! तुम जिनके लिये तप करती हो, वे स्वयं ही तुम्हारा वारण करेंगे। भगवान् शङ्कर ही सर्वश्रेष्ठ पति हैं। वे सम्पूर्ण लोकेश्वरोंके भी ईश्वर हैं। हम सदा ही उनके अधीन रहनेवाले किङ्कूर हैं। देवि! वे

देवताओंके भी देवता, परमेश्वर और स्वयम्भू हैं। उनका स्वरूप बहुत ही उदार है। उनकी समानता करनेवाला कहीं कोई भी नहीं है।'

तपस्या देवताओंने आकर परम सुन्दरी पार्वतीसे कहा—'देवि! भगवान् शङ्कर थोड़े ही दिनोंके आपके स्वामी होंगे। अब इसके लिये तपस्या न कीजिये।' यों कहकर देवताओंने गिरिराजकुमारीकी प्रदक्षिणा की और वहाँसे अन्तर्धान हो गये। पार्वती भी तपस्यासे निवृत्त हो गयी, किंतु अपने आश्रममें ही रहने लगीं। एक दिन जब वे अपने आश्रमपर उगे हुए अशोक-वृक्षका सहारा लेकर खड़ी थीं, देवताओंकी पीड़ा दूर करनेवाले भगवान् शङ्कर पधारे। उनके सरलाटमें चन्द्राकार तिलक लगा था, वे चौहके बराबर नाटा एवं विकृत रूप धारण करके आये थे। उनकी नाक कटी हुई थी, कूबड़ निकल आया था और केसोंका अन्तिम भाग पीला पड़ गया था। उनके मुखकी आकृति भी बिगड़ी हुई थी। उन्होंने पार्वतीसे कहा—'देवि! मैं तुम्हारा वारण करता हूँ।' उमा खेगसिद्ध हो गयी थी। अन्तरिक भयकी शक्तिसे उनकी अन्तःकरण तुड़ हो गया था। वे समझ गयीं कि साक्षात् भगवान् शङ्कर पधारे हैं। तब उनकी कृपा प्राप्त करनेकी इच्छासे पार्वतीने अर्घ्य, पाद और मधुपर्कके द्वारा उनका पूजन करके कहा—'भगवन्! मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ। घरमें मेरे पिता मग्निक हैं। वे ही मुझे देनेमें समर्थ हैं। मैं तो उनकी कन्या हूँ।' यह सुनकर देवाधिदेव भगवान् शङ्करने उस विकृत रूपमें ही गिरिराज हिमालयके पास जाकर कहा—'सैलेन्द्र! मुझे अपनी कन्या दीजिये।' उस विकृत रूपमें अचिन्तशी स्त्रको ही आया जिन गिरिराजको सापसे भय हुआ। उन्होंने उदास होकर कहा—'भगवन्, ब्राह्मण इस पृथ्वीके देवता हैं, मैं उनका अनादर नहीं करता; किंतु मेरे मनमें

पहलेसे जो कामना है, उसे सुनिये। मेरी पुत्रीका स्वयंवर होगा। उसमें वह जिसको वरण करेगी, वही उसका पति होगा।' हिमालयकी यह बात सुनकर भगवान् शङ्करने देवीके पास जाकर कहा—'तुम्हारे पिताने स्वयंवर होनेकी बात कही है। उसमें तुम जिसका वरण करोगी, वही तुम्हारा पति होगा। उस समय किसी रूपकांको छोड़कर तुम मुझ-जैसे अयोग्यका वरण कैसे करोगी?'

उनके यों कहनेपर पार्वतीने उनकी बातोंपर विचार करते हुए कहा—'महाभाग! आपको अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये। मैं आपका ही वरण करूँगी। इसमें कोई अनेकी बात नहीं है। अथवा यदि आपको मुझपर संदेह है तो मैं यहाँ आपका वरण करती हूँ।' यों कहकर पार्वतीने अपने हाथोंसे अशोकका गुच्छा लेकर भगवान् शङ्करके कंधेपर रखा और कहा—'देव! मैंने आपका वरण कर लिया। भगवती पार्वतीके इस प्रकार वरण करनेपर भगवान् शङ्करने उस अशोक-वृक्षको अपनी बाजीसे सजीव करते हुए-से कहा—'अशोक! तुम्हारे परम पवित्र गुच्छेसे मेरा वरण हुआ है, इसलिये तुम जराबन्धासे रहित एवं अमर रहोगे। तुम जैसा चाहोगे, वैसा रूप धारण कर सकोगे। तुममें इच्छानुसार फूल लगेंगे। तुम सब कामनाओंको देनेवाले, सब प्रकारके आपूजनका फूल और फलोंसे सम्पन्न एवं मेरे अत्यन्त प्रिय होगे। तुममें सब प्रकारकी सुगन्ध होगी तथा तुम देवताओंके अधिक प्रिय बने रहोगे।'

यों कहकर भगवती सृष्टि और सम्पूर्ण भूतोंका पालन करनेवाले भगवान् शङ्कर हिमालयकुमारी उमासे विदा ले वहीं अन्तर्धान हो गये। उनके चले जानेपर पार्वतीदेवी भी वहाँकी ओर मन लगाये एक शिखापर बैठ गयीं, इसी समय देवाधिदेव शिव स्वयं सीला करनेके लिये ब्रह्म-

वासकका रूप धारणकर निकटवर्ती सरोवरमें प्रकट हुए। उस समय उन्हें ग्राहने पकड़ रखा था। वे बोले—'हाय! ग्राहसे पकड़े जानेके कारण मैं अथर्व हो रहा हूँ। कोई हो तो मुझे आकार दिलावे।' पीड़ित ब्राह्मणकी यह पुकार सुनकर कल्पवृक्षसे देवी पार्वती सहसा उठ खड़ी हुईं और उस स्थानपर गयीं, जहाँ वह ब्राह्मण-वासक खड़ा था। वहाँ पहुँचकर चन्द्रमुखी देवीने देखा, एक बहुत सुन्दर बालक ग्राहके मुखमें पड़ा धरधर करीब रहा है। ग्राहके छाँबनेपर वह तेजस्वी बालक बड़ा आर्तव्य करता था। उस ग्राहग्रस्त बालकको देखकर देवी उमा दुःखासे आतुर हो उठीं और बोलीं—'ग्राहराज! यह अपने पिता-माताका एक ही बालक है, इसे सीत्र छोड़ दो।'

ग्राहने कहा—'देवि! कठे दिनपर जो सबसे पहले मेरे पास आ जाता है, उसीको विधाताने मेरा आहार निश्चित किया है। महाभाग! यह बालक आज कठे दिन ब्रह्मजीसे प्रेरित होकर ही मेरे पास आया है, अतः मैं इसे किसी प्रकार न छोड़ूँगा।'

देवी बोलीं—'ग्राहराज! मैं हिमालयके शिखरपर जो उत्तम तपस्वी की है, उसका पुण्य लेकर इस बालकको छोड़ दो। मैं तुम्हें नमस्कार करती हूँ।'

ग्राहने कहा—'देवि! अपने छोटी या ठकम जो कुछ भी तपस्वी की है, वह सब मुझे दे दें तो भी मैं यह ब्रह्मराज न चाँगा।'

देवी बोलीं—'महाग्राह! मैंने जन्मसे लेकर अबतक जो पुण्य किया है, वह सब तुम्हें समर्पित है। इस बालकको छोड़ दो।'

देवीके इतना कहते ही उनकी तपस्यासे विभूषित हो वह ग्राह दीपहरके सूर्यकी भाँति तेजसे प्रज्वलित हो उठा। उस समय उसकी ओर देखना कठिन हो रहा था। ग्राहने संतुष्ट होकर विष्णुको वरण करनेवाली देवीसे कहा—'महाव्रते!

तुमने यह क्या किया? भलीभाँति सोचकर देखो तो सही। तपस्याका उपार्जन बड़े कष्टसे होता है, अतः उसका परित्याग अच्छा नहीं माना गया है। तुम अपनी तपस्या ले लो। साथ ही इस बालकको भी मैं छोड़ देता हूँ।'

देवीने कहा—ग्राह! मुझे अपना स्तन देकर भी यज्ञपूर्वक ब्राह्मणकी रक्षा करनेसे चाहिये। तपस्या तो मैं फिर भी कर सकती हूँ, किंतु यह ब्राह्मण पुनः यहाँ मिल सकता। महाराज! मैंने भलीभाँति सोचकर तपस्याके द्वारा बालकको छुड़ाया है। तपस्या ब्राह्मणोंसे श्रेष्ठ नहीं है। मैं ब्राह्मणोंकी ही श्रेष्ठ मानती हूँ। ग्राहराज! मैं तपस्या देकर फिर यहाँ लौंगी। कोई मनुष्य भी अपनी ही हुई वस्तुको वापस नहीं लेता। अतः यह तपस्या तुममें ही सुशोभित हो। इस बालकको छोड़ दो।

पार्वतीके सौं कहनेपर सूर्यके समान प्रकाशित होनेवाले ग्राहने उनकी प्रशंसा की, उस बालकको छोड़ दिया और देवीको नमस्कार करके यहाँ अन्तर्धान हो गया। अपनी तपस्याकी हानि समझकर पार्वतीने पुनः नियमपूर्वक तपका आरम्भ किया। उन्हें पुनः तपस्या करनेके लिये उत्तुंग ज्ञान



सम्प्राप्त भगवान् शङ्करने प्रकट होकर कहा—'देवि! अब तपस्या न करो। तुमने अपना तप मुझे ही समर्पित किया है। अतः यही सहस्रगुना होकर तुम्हारे लिये अक्षय हो जायगा।'

इस प्रकार तपस्याके अक्षय होनेका उत्तम वरदान पाकर उमादेवीकी बड़ी प्रसन्नता हुई और वे स्वयंवरकी प्रतीक्षा करने लगीं।

पार्वतीजीका स्वयंवर और महादेवजीके साथ उनका विवाह

ब्रह्माजी कहते हैं—तदनन्तर समयानुसार हिमालयके विशाल पृष्ठभागपर पार्वतीका स्वयंवर रचाया गया। उस समय वह स्थान सैकड़ों विमानोंसे घिर रहा था। गिरिराज हिमवान् किसी बातको सोचने-विचारनेमें बड़े निपुण थे। पुत्रोंने देवाधिदेव महादेवजीके साथ जो मन्त्रण की थी, वह उन्हें ज्ञात हो गयी थी, अतः उन्होंने सोचा, यदि मेरी कन्या सम्पूर्ण लोकोंमें निवास करनेवाले देवता, दानव तथा सिद्धोंके समक्ष महादेवजीका

वरण करे तो वही वाञ्छनीय पुण्य होगा। उसीमें मेरा अभ्युदय निहित है। मैं विचारकर शैलराजने मन-ही-मन महेश्वरका स्मरण करके रत्नोंसे मण्डित प्रदेशमें स्वयंवर रचाया। गिरिराजकुमारीके स्वयंवरकी घोषणा होते ही सम्पूर्ण लोकोंमें निवास करनेवाले देवता आदि सुन्दर वेश-भूषा धारण करके वहाँ आने लगे। हिमवान्की सूचना पाकर मैं भी देवताओंके साथ वहाँ उपस्थित हुआ। मेरे साथ सिद्ध और योगी भी थे। इन्द्र, विवस्वान्, भग,

कृतान्त (यम), वायु, अग्नि, कुबेर, चन्द्रमा, दोनों अश्विनीकुमार तथा अन्यन्त्र देवता, गन्धर्व, यक्ष, नाग और किन्नर भी मनोहर वेष बनाये वहाँ आये थे। शचीपति इन्द्र उस सम्मेलनमें अधिक दर्शनीय जान पड़ते थे। वे अप्रतिहत आकाश, बल और ऐश्वर्यके कारण हर्षमान हो स्वयंवरकी सोभा बढ़ा रहे थे।

जो तीनों लोकोंकी उत्पत्तिमें कारण, जगत्के जन्म देनेवाली तथा देवता और असुरोंकी मरता हैं, जो परम बुद्धिमान् आदिपुरुष भगवान् शिवकी पत्नी मानी गयी हैं तथा पुराणोंमें पार प्रकृति बताया गया है, वे ही भगवती सती दक्षर कुम्भ से देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये हिमवान्के घरमें अवतीर्ण हुई थीं। वे जिस विमानपर बैठी थीं, उसमें सुवर्ण और रत्न बड़े हुए थे। उनके दोनों ओर चँवर कुल्लये जा रहे थे। वे सभी ऋषियोंमें खिलनेवाले सुगन्धित पुष्पोंकी माला हाथमें लिये स्वयंवर-सभामें जानेके प्रस्थित हुईं।

इन्द्र आदि देवताओंसे स्वयंवर-मण्डप पर हुआ था। भगवती उमा माला हाथमें लिये देव-सभामें खड़ी थीं। इसी समय देवीकी परीक्षा लेनेके लिये भगवान् शङ्कर भीच सिद्धाचलसे शिशु बनकर सहसा उनकी गोदमें आकर सो गये। देवीने उस पंडितसिद्ध बालकको देखा और ध्वनिके द्वारा उसके स्वरूपको जानकर बड़े प्रेमके साथ उसे अङ्गुमें ले लिया। पार्वतीका संकल्प शुद्ध था। वे अपना मनोव्यान्वित पति च गयीं, अतः भगवान् शङ्करको हृदयमें रखकर स्वयंवरसे स्वीकृति पड़ी। देवीके अङ्गुमें सोये हुए उस शिशुको देखकर देवता आपसमें सलाह करने लगे कि यह कौन है। कुछ पता न लगनेसे अत्यन्त मोहमें पड़कर वे बहुत कोलाहल करने लगे और युत्रासुरको मारनेवाले इन्द्रने अपनी एक बौद्ध कैचे उठाकर उस बालकपर जत्रभ प्रहार करनेकी

चेष्टा की; किंतु शिशुरूपधारी देवाधिदेव शङ्करने उन्हें स्तम्भित कर दिया। अब वे न तो यत्र चल सकें और न हिस-डुल सकें। तब भगवन्मयासे कलकल आदिपुत्रने एक तेजस्वी सत्त्व चलाना चाहा, किंतु भगवान्ने उनकी धीहको भी जड़मा बना दिया। साथ ही उनका बल, तेज और योगशक्ति भी शून्य हो गयी। उस समय मैंने परमेश्वर शिवको पहचाना और सीधे उठकर उनके चरणोंमें आदरपूर्वक मस्तक झुकाया। इसके बाद मैंने उनकी स्तुति करते हुए कहा—'भगवान्! आप जगन्मा और अजर देवता हैं; आप ही जगत्के सृष्टा, सर्वव्यापक, परावरत्नरूप, प्रकृति-पुरुष तथा भोजन करनेयोग्य अविनाशी हैं। अमृत, परमेश्वर, ईश्वर, महान् कारण, मेरे भी उत्पादक, प्रकृतिके सृष्टा, सबके रक्षक और प्रकृतिसे भी परे हैं। वे देवी पार्वती भी प्रकृतिरूप हैं, जो सदा ही आपके सृष्टिकर्ममें सहायक होती हैं। ये प्रकृतिदेवी पञ्चिकर्ममें प्रकट होकर जगत्के कारणभूत भोजन करनेवाली प्राण हुई हैं। महर्देव! देवी पार्वतीके साथ आपको नवम्भार है। देवेश्वर! आपके ही प्रसाद और आदेशसे मैंने इन देवता आदि प्रजाओंकी सृष्टि की है। ये देवगण आपकी योगशक्तिके मोहित हो रहे हैं। आप इनपर कृपा कीजिये, जिससे ये पहले-जैसे हो जायें।'

उदन्तर मैंने सम्पूर्ण देवताओंसे कहा—'अरे! तुम सब लोग कितने मूढ़ हो। इन्हें नहीं जानते? वे साक्षात् भगवान् शङ्कर हैं। अब सीधे इन्हींकी सरणमें जाओ।' तब वे सब जड़मात् बने हुए देवता मुद्घचित्तसे मन-ही-मन महर्देवजीको प्रणाम करने लगे। इससे देवाधिदेव महेश्वरने प्रसन्न होकर उनका सरोर पहले-जैसा कर दिया। तबसात् देवेश्वर शिवने परम अद्भुत त्रिनेत्रधारी विश्रह धारण किया। उस समय उनके तेजसे

त्रिस्कन्ध हो सम्पूर्ण देवताओंने नेत्र बंद कर लिये। तब उन्होंने देवताओंको दिव्य दृष्टि प्रदान की, जिससे वे उनके स्वरूपको देख सकते थे। यह दृष्टि फकर देवताओंने परब देवेश्वर भगवान् शिवका दर्शन किया। उस समय पार्वतीदेवीने अत्यन्त प्रसन्न हो समस्त देवताओंके देखते देखते अपने हावकी माला भगवान्के पाँचोंमें कड़ा दी।



यह देखा सब देवता समु-समु कहने लगे। फिर उन लौगोंने पुष्पीपर भस्त्रक टेककर देवीसहित महादेवजीको प्रणाम किया। इसके बाद देवताओंमेंसे मैंने हिमवान्से कहा—'सैलराज! तुम सबके लिये स्पृहणीय, पूजनीय, चन्दनीय तथा महान् हो, क्योंकि सभाया महादेवजीके साथ तुम्हारा सम्बन्ध हो रहा है। यह तुम्हारे लिये महान् अभ्युदयकी बात है। अब शीघ्र ही कन्याका विवाह करो, किलम्ब क्यों करते हो?'

येरी बात सुनकर हिमवान्ने नमस्कारपूर्वक मुझसे कहा—'देव! मेरे सब प्रकारके अभ्युदयमें आप ही कारण हैं। पितृमह! अब जिस विधिसे

विवाह करना ठकित हो, वह सब आप ही करायें।' तब मैंने भगवान् शिवसे कहा—'देव! अब उपाके साथ विवाह करें।' उन्होंने उत्तर दिया—'जैसी आभारी इच्छा।' फिर तो हम लौगोंने महादेवजीके विवाहके लिये तुरंत ही एक पण्डित तैयार किया, जो नान प्रकारके रत्नोंसे सुसज्जित था। बहुत-से रत्न-चित्र-विचित्र मणियाँ, सुवर्ण और मोती आदि द्रव्य स्वयं ही मूर्तिमान् होकर उस पण्डितको सजाने लगे। परकत-मणिकर सब द्रव्य चर्त विचित्र दिखायी देने लगा। सोनेके झुम्भोंसे बसकी शोभा और भी बढ़ गयी थी। स्मृतिकर्मिणीकी बनी हुई दीवार चमक रही थी। छतर मोतियोंकी झूलतें लटक रही थीं। चन्द्रकान्त और सूर्यकान्तमणि सूर्य और चन्द्रकीके प्रकाश पाकर चिखल रहे थे। वायु मनेहर सुगन्ध लेकर भगवान् शिवके प्रति अपने भक्तिपरिचय देती हुई पन्ध गतिलें बहने लगी। अमल्य स्वर्ण सुखद घान पड़ता था। चर्तें समुद्र, इन्द्र आदि के देवता, देवनदियाँ, महानदियाँ, सिद्ध, मुनि, गन्धर्व, अप्सराएँ, नाग, यक्ष, राक्षस, असुर, कोषा, किन्नर तथा चारुगण्य भी इस विवाहोत्सवमें (मूर्तिमान् होकर) सम्मिलित हुए थे। तुम्बुरु, नारद, ब्राह्म और हूँ आदि सामान्य करनेवाले मन्त्रार्थ मनेहर बाजे लेकर इस विशाल पण्डितमें आये थे। ऋषि कथारें कहते, तपस्वी वेद पढ़ते तथा मन-ही-मन प्रसन्न होकर वे पवित्र वैवाहिक मन्त्रोंका उच्चारण करते थे। सम्पूर्ण जगन्महाराएँ और देवकन्धारें हर्षमग्न हो मङ्गलगाय कर रही थीं। भगवान् समुद्रका विवाह ही रहा है, यह जानकर भीति-भीतकी सुगन्ध और सुखमय विस्तार करनेवाली कठों मसुरी वहाँ साकार होकर उपस्थित थीं।

इस प्रकार अब सम्पूर्ण भूत वहाँ एकत्रित हुए और सब प्रकारके गाने बजने लगे, उस

समय मैं पार्वतीको योग्य वस्त्राभूषणसे विभूषित
करकर स्वर्ण ही मण्डपमें ले आया। फिर मैंने
भगवान् शङ्करसे कहा—‘देव! मैं आपका अहर्चर्य
जनकर अग्निमें हवन करूँगा। यदि आप मुझे
आज्ञा दें तो विधिपूर्वक इस कार्यका अनुष्ठान



आरम्भ हो।’ तब देवाधिदेव शङ्करने मुझसे इस

प्रकार कहा—‘ब्रह्मन्! जो भी शास्त्रोक्त विधान
हो, उसे इच्छानुसार कीजिये; मैं आपकी प्रत्येक
अज्ञात प्रशंसा करूँगा।’ यह सुनकर मैंने मनमें
बड़ी प्रसन्नता हुई और मैंने तुरंत ही कुश हाथमें
लेकर महादेवजी तथा पार्वतीदेवीके हाथोंको
योगबन्धसे युक्त कर दिया। उस समय वहाँ
अग्निदेव स्वर्ण ही हाथ जोड़कर उपस्थित हो गये।
श्रुतिवर्णके गीत और महामन्त्र भी मूर्तिमान् होकर
आ गये थे। मैंने शास्त्रीय विधिसे अमृतस्वरूप
घृतका होम किया और उस दिव्य दम्पतिके द्वारा
अग्निकी प्रदक्षिणा करायी। उसके बाद उनके
हाथोंको योगबन्धसे मुक्त किया। इस प्रकार
कर्मतः वैवाहिक विधि पूर्ण करी गयी। इस कार्यमें
सम्पूर्ण देवताओं, मेरे यजन पुत्रों तथा सिद्धोंका
भी सहयोग था। विवाह समाप्त होनेपर मैंने
भगवान् शङ्करको प्रणाम किया। योगशक्तिके ही
पार्वती और परमेश्वरका उत्तम विवाह सम्पन्न
हुआ। ब्रह्मणो! इस प्रकार मैंने तुम सब लोगोंसे
पार्वतीजीके स्वयंवर और महादेवजीके उत्तम
विवाहकी कथा कह सुनायी।

देवताओंद्वारा महादेवजीकी स्तुति, कामदेवका दाह तथा महादेवजीका मेरुपर्वतपर गमन

ब्रह्मजी कहते हैं—अभिमत लेखनी महादेवजीकी
विवाह हो जानेपर इन्द्र आदि देवताओंके हर्षकी
सीमा न रही। उन्होंने भगवान् शङ्करको प्रणाम
किया और इस प्रकार स्तुति आरम्भ की।

देवता जोले—पर्वत जिनका सिद्धमय स्वरूप
है, जो पर्वतोंके स्वामी हैं, जिनका वेग पवनके
समान है, जो विकृत रूप धारण करनेवाले तथा
अपराजित हैं, जो क्लेशोंका नाश करके शुभ

सम्पत्ति प्रदान करते हैं, उन भगवान् शङ्करको
नमस्कार है। नीले रंगकी चोटी धारण करनेवाले
अम्बिकापतिको नमस्कार है; वायु जिनका स्वरूप
है और जो लैकड़ों रूप धारण करनेवाले हैं, उन
भगवान् शिवको प्रणाम है। दैत्योंके योगका नाश
करनेवाले तथा योगियोंके गुरु महादेवजीको प्रणाम
है। सूर्य और चन्द्रमा जिनके नेत्र हैं तथा जो
ललाटमें भी नेत्र धारण करते हैं, उन भगवान्

सङ्करको नमस्कार है। जो रमस्तनमें लीला करते और वर देते हैं, जिनके खीन नेत्र हैं, उन देवेश्वर शिवको प्रणाम है। जो गृहस्थ होते हुए भी साधु हैं, वित्त जटा एवं ब्रह्मचर्य धारण करनेवाले हैं, उन भगवान् सङ्करको नमस्कार है। जो जलमें तपस्या करते, योगजनिष्ठ ऐश्वर्य देते, मनको सन्त रखते, इन्द्रियोंका दमन करते तथा जलमय और सृष्टिके कर्ता हैं, उन महादेवजीको प्रणाम है। अनुग्रह करनेवाले भगवान्को नमस्कार है। जलन करनेवाले शिवको प्रणाम है। ऋतु, वसु, आदित्य और अधिपतीकुमारोंके रूपमें कर्मात्मक भगवान् सङ्करको नमस्कार है। जो सबके पिता, संसारवर्णित पुरुष, विश्वेश्वर, सर्व, उग्र, शिव, ब्रह्म, भीम, सेनानी, पशुपति, शुचि, वैरिहन्ता, सद्योजात, महादेव, विश्व, विश्वित्र, प्रधान, अप्रमेय, कार्य और कारण नामसे प्रतिपादित होते हैं, उन भगवान् शिवको प्रणाम है। भगवान्। पुरुषरूपमें आपको नमस्कार है। पुरुषमें इच्छा उत्पन्न करनेवाले आपको प्रणाम है। आप ही पुरुषका प्रकृतिके साथ संयोग करते हैं और आप ही प्रकृतिमें गुणोंका आकषण करनेवाले हैं। आपको नमस्कार है। आप प्रकृति और पुरुषके प्रवर्तक, कार्य और कारणके विधायक तथा कर्मफलोंकी प्राप्ति करानेवाले हैं। आपकी नमस्कार है। आप कालके ज्ञाता, सबके निबन्ता, गुणोंकी विषमताके उत्पादक तथा प्रजावर्णको जीविका प्रदान करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। देवदेवेश्वर। आपको प्रणाम है। भूतभावन। आपको नमस्कार है। कल्याणमय प्रभो! आप हमें दर्शन देनेके लिये प्रसन्नमुख एवं सौम्य हो जायें।

इस प्रकार देवताओंके द्वारा अपनी स्तुति होनेपर सम्पूर्ण जगत्के स्वामी भगवान् उभापतिने कहा—'देवताओ! मैं तुम्हें दर्शन देनेको सदा ही प्रसन्नमुख और सौम्य हूँ। तुम शीघ्र कोई वर

माँगे। मैं निश्चय ही उसे दूँगा।'

देवता बोले—भगवान्! वह वर आपके ही हाथमें रहे। जब अवसरयकता होगी, तब हम माँग लेंगे। उस समय आप हमें मनोवांछित वर दीजियेगा।

'एकमस्तु' कहकर महादेवजीने देवताओं तथा अन्य लोगोंको विदा किया और स्वयं प्रमथगणोंके साथ अपने धामको चले गये। ब्राह्मणों। जो इस स्तोत्रका ज्ञान का पाठ करता है, वह सम्पूर्ण लोकोंमें जानेकी रतिक प्राप्त करता और देवराज इन्द्रकी भीति देवताओंद्वारा पूजित होता है।

महादेवजी अपने धाममें प्रवेश करके जब सुन्दर अस्तनपर विश्राममान हुए, तब एक स्वभक्तवाले क्रूर कामदेवने उन्हें अपने बाणोंसे बाँधनेका विचार किया। वह अनायासी, वृक्षमय और कुलाभमय सब लोकोंको पीड़ित करनेवाला है। वह नियम तथा ज्ञातोंका पालन करनेवाले ऋषियोंके कार्यमें विघ्न उत्पन्न करता है। उस दिन कलजाकका रूप धारण करके अपनी पत्नी रतिके साथ इसका आगमन हुआ था। देवताओंके स्वामी भगवान् सङ्करने अपनेकी बाँधनेकी इच्छा रखनेवाले आततायी कामदेवको तीसरे नेत्रसे अवहेलनापूर्वक देखा। फिर तो उसके नेत्रसे प्रकट हुई आग सहस्रों लम्पटोंके साथ प्रन्वसित हो उठी और रतिके स्वामी मदनको उसके साथ-भूतारके साथ सहसा दग्ध करने लगी। उस समय जलज हुआ कामदेव बड़े करुण स्वरमें अर्तनाद करने लगा और भगवान् शिवको प्रसन्न करनेके लिये धरतीपर गिर पड़ा। इतनेमें उसके सब अङ्गोंमें आग फैल गयी और सब लोकोंको तप देनेवाला काम स्वयं ही पृथ्वीपर गिरकर क्षणधरमें वृक्षित हो गया। उसकी पत्नी रति अत्यन्त दुःखित हो करुणामय विस्ताप करने लगी। उस दुःखिनीने महादेवजी

तथा पार्वतीदेवीसे अपने पतिके लिये वाचना की। उसके दुःखको जानकर दयलु दम्पतिने उसे सान्त्वना देते हुए कहा—'कल्याणी! कामदेव तो अब निश्चय ही दण्ड हो गया, अब यहाँ इसकी उत्पत्ति नहीं हो सकती; परंतु शरीररहित होते हुए भी यह तुम्हारे सब कार्य सिद्ध करता रहेगा। तुम्हें। जब भगवान् विष्णु वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णके रूपमें इस पृथ्वीपर अवतर लेंगे, उस समय उन्हींके पुत्ररूपमें तुम्हारे पतिके जन्म होगा। इस प्रकार वरदान पाकर कामपत्नी रति सौंदररहित एवं प्रसन्न हो अपने अभीष्ट स्वामिको चली गयी। इधर भगवान् शङ्कर कामदेवको शपथ करनेके पश्चात् भगवती उभाके साथ हिमालयपर प्रसन्नवर्णक रमण करने लगे।

पार्वतीजीने कहा—भगवन्! देवदेवेश्वर! अब मैं इस पर्वतपर नहीं रहूँगी। अब मेरे लिये दूसरा कोई निवासस्थान बनाइये।



महादेवजी बोले—देवि। मैं तो सदा तुमसे अन्यत्र रहनेको कहता था, किंतु तुम्हें कभी अन्य किसी स्थानका निवास पसन्द नहीं आया। आज स्वयं ही तुम अन्यत्र रहनेकी इच्छा क्यों करती हो? इसका कारण बताओ।

देवीने कहा—देवेश्वर! आज मैं अपने महात्मा पितृके घर गयी थी। वहाँ पत्नाने मुझे एकान्त स्थानमें देखा उत्तम आसन आदिके द्वारा बेरा सम्मान किया और कहा—'उमे। तुम्हारे स्वामी दरिद्र हैं, इसलिये सदा छिस्तीनोंसे छेला करते हैं। देवताओंकी छोड़ा ऐसी नहीं होती।' महादेव। आप जो मात्र प्रकारके गर्वोंके साथ बिहार करते हैं, वह मेरी पत्निकी पसन्द नहीं है।

यह सुनकर महादेवजी हँस पड़े और देवीको हँसाते हुए बोले—'प्रिये! बात तो ऐसी ही है, इसके लिये तुम्हें दुःख क्यों हुआ? मैं कभी हज़ीके चमड़े लपेटता, कभी दिग्गजर बना रहता, समस्तपृथिवीमें निवास करता, किन्तु घर-द्वारका होकर जंगलोंमें और पर्वतकी कन्दराओंमें रहता तथा अपने गर्वोंके साथ घूमता-फिरता हूँ। इसके लिये तुम्हें यात्रापर क्रोध नहीं करना चाहिये। तुम्हारी पत्नाने सब ठीक ही कहा है। इस पृथ्वीपर प्राणिमोक्ष मत्ताके समान हितकारी कोई बन्धु-बन्धन नहीं है।'

देवीने कहा—सुरेश्वर। मुझे अपने बन्धु-बन्धनोंसे कोई प्रयोजन नहीं है। आप वही करें, जिससे मुझे सुख हो।

देवीका यह वचन सुनकर देवेश्वर महादेवजीने उन्हें प्रसन्न करनेके लिये उस पर्वतको छोड़ दिया और पत्नी तथा पार्वतीको साथ ले देवताओं और सिद्धोंसे संविद्य सुमेरुपर्वतके लिये प्रस्थान किया।

दक्ष-यज्ञ-विध्वंस

महर्षियों ने कहा—ब्रह्मन्! तैवस्तथा मन्वन्तरमें प्रचेताओंके पुत्र प्रजापति दक्षका अश्वमेध-यज्ञ कैसे गष्ट हुआ?

ब्रह्माजी बोले—ब्राह्मणे! महादेवजीने सती-देवीका प्रिय करनेकी इच्छासे जिस प्रकार दक्षके यज्ञका विध्वंस किया था, उसका वर्णन करता हूँ। पूर्वकालकी बात है, महादेवजी पेरुगिरीके प्लेतिस्थल नामक निखरपर, जो सब प्रकारके रत्नोंसे विभूषित और पलंगकी भाँति फैला हुआ था, विराजमान थे। गिरिराजकुमारी चर्चती सदा उनके पार्श्वभागमें बैठी रहती थीं। अदित्य, चन्द्र, अधिनीकुम्हार, गुह्यकर्मसहित कुनेर, महापुनि कुम्हारक तथा सनाकुमार आदि महर्षि उनकी सेवामें उपस्थित रहते थे। अत्यन्त भयंकर राक्षस एवं महाबली पिशाच, जो अनेक रूप धारण करनेवाले तथा नामा प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित थे, भगवान् शिवके समीप रहा करते थे। भगवान् के पार्श्व भी वहाँ मौजूद थे। वे सब आग्निके समान तेजस्वी जल पड़ते थे। महादेवजीकी इच्छासे भगवान् नदीश्वर भी वहाँ खड़े रहते थे। नदियोंमें श्रेष्ठ गङ्गाजी घृतिधती होकर उनकी सेवामें संलग्न रहती थीं। इस प्रकार परम सौभाग्यवाली देवर्षियों और देवताओंसे पूजित होकर भगवान् शङ्कर वहाँ सदा निवास करने लगे। कुछ कालके बाद प्रजापति दक्षने शास्त्रोक्त विधिके अनुसार यज्ञ करनेकी तैयारी की। उनके उस यज्ञमें इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता स्वर्गसे आकर एकत्रित होने लगे। वे अग्निके सामान्य तेजस्वी देवता दक्षके अनुरोधसे प्रकाशमान विमानोंपर बैठकर गङ्गाश्वरको गये। पृथ्वी, आकाश तथा स्वर्गलोकमें खड़ेवाले सभी देवता प्रजापतिके पास हाथ जोड़कर उपस्थित

हुए। अदित्य, चन्द्र, राक्षस तथा मरुद्वन्—ये सब यज्ञमें भाग लेनेके लिये भगवान् विष्णुके साथ वहाँ पधारे थे। रुक्मर, धूमर, आम्बर तथा स्तेमर नामवाले देवता भी अधिनीकुमारोंके साथ वहाँ उपस्थित थे। वे तथा और भी अनेक भूत-जानियोंका समुदाय वहाँ एकत्रित हुआ था। जराचुम्ब, अम्बुम्ब, स्वेदम्ब तथा इन्द्रिम्ब भी उस यज्ञमें सम्मिलित थे। देवतास्त्रोग अपनी स्त्रियों तथा महर्षियोंके साथ वहाँ पधारे थे।

देवताओंको वहाँ जाते देख गिरिराजकुमारी चर्चतीने भगवान् शङ्करसे पूछा—'भगवान्! वे इन्द्र आदि देवता कहाँ जाते हैं?'



ब्रह्मादेवजी बोले—महाभाग! प्रजापति दक्ष अश्वमेध-यज्ञ करते हैं। उसीमें सब देवता जा रहे हैं। देवीने पूछा—महाभाग! आप इस यज्ञमें क्यों नहीं जाते? ऐसी बहिन-सौ रुक-वट है, जिससे आपका वहाँ जाना नहीं होता?

महादेवजी बोले—महाभाग! देवताओं ने ही यह सब किया है। उन्होंने किसी भी यज्ञ में मेरा भाग नहीं रखा है। पहले से जो मार्ग चला आ रहा है, उसी से अपने को भी चलना चाहिये।

उमामे कहा—भगवन्! आप सब देवताओं में श्रेष्ठ हैं। आपके गुण और प्रभाव सबसे अधिक हैं। आप अपने तेज, वरा और श्री के द्वारा अजेय एवं अधृष्य हैं। महाभाग! यज्ञ में आपके नाम का जो यह निषेध है, इससे मुझे बड़ा दुःख हुआ है। मेरे शरीर में काँप उठा गया है।

महादेवजी बोले—देवि! क्या तुम मुझे नहीं जानती! आज तुम्हें जो मोड़ हुआ है, उससे इन्द्र आदि देवताओं सहित सम्पूर्ण प्रितोक्षी यह हो सकती है। मैं ही यज्ञ का स्वामी हूँ। मेरी ही सब लोग निन्तर स्तुति करते हैं। मेरी ही संतोष के लिये सब लोग रथान्तर सम्पन्न गान करते हैं। ब्राह्मण वेदमन्त्रों से मेरा ही यजन करते हैं तथा अध्वर्यु लोग यज्ञ में मेरी ही लिये भागों की कल्पना करते हैं।

प्राणों के समान प्रियतम पत्नी से जो कहकर



भगवान् शङ्कर ने अपने मुख से क्रोधाग्निजनित एक महाभूत को सृष्टि की। फिर उससे कहा—‘तुम मेरी आज्ञा से दक्ष के यज्ञ में जाओ और उसका शीघ्र विनाश करो।’ तब उसने रुद्र की आज्ञा से सिंह का वेध धारण करके दक्ष के यज्ञ का विनाश कर डाला। उसने अपने कर्मका सखी बनने के लिये अत्यन्त भयंकर भद्रकाली को भी साथ ले लिया था। भगवान् का यह क्रोध वीरभद्र के जन्म से विख्यात हुआ, जो रमरानधूमि में निवास करता है। उसने पर्वतों के खेदक निष्करण किया था। वीरभद्र ने अपने रोमकूपों से अनेक रुद्रगण उत्पन्न किये, जो रुद्र के समान ही वीर्यवान् और पराक्रमी थे। वे सब सेकड़ों और हजारों की संख्या में झुंड बनाकर उस यज्ञमण्डप में गये। उनकी किलकिस्ताहट से समस्त अक्षयस नृज उठा। अग्नि और सूर्य का प्रकाश मन्द पड़ गया। चारों ओर अन्धकार छा गया। उस समय वे समस्त रुद्रगण यज्ञमण्डप में आग लगाने लगे; किसीने बूँतों को तोड़ डाला, किसीने उन्हें उखाड़ दिया, कोई सिंहनाद करता और कोई वहाँ की सब वस्तुओं को लहस-लहस कर डालता था। कितने ही वायु के समान वेग से इधर-उधर दौड़ लगाने लगे। यज्ञपात्र चूर-चूर हो गये। वहाँ कि मण्डप डह गये। ऐसा जान पड़ता था, आकाश से तारे टूटकर गिर रहे हैं। कोई यज्ञ में रखे हुए भोज्य पदार्थों को खाते और सब ओर लोगों को डराते फिरते थे। कितने ही पर्वतों पर भूत देवाङ्गणों की उठकर फेंक देते थे। ऐसे गजों के साथ प्रतापी वीरभद्र ने पहुँचकर देवताओं द्वारा सुरक्षित यज्ञ की भद्रकाली के सामने ही वस्य कर डाला। अन्य रुद्रगण सबको भय उपजाने वाली गर्जना करने लगे। कुछ लोगोंने यज्ञ का मस्तक काटकर भयंकर नाद किया। तब इन्द्र आदि देवताओं और प्रजापति दक्ष ने हाथ जोड़कर पूछा—‘बताइये, आप कौन हैं?’

वीरभद्रने कहा—मैं न देवता हूँ, न दैत्य हूँ। न इस यज्ञमें भोजन करने आया हूँ और न कौतूहलवश इसे देखनेको ही मेरा आग्रह हुआ है। मैं इस यज्ञका विध्वंस करनेके सिन्हे आया हूँ। मेरा नाम वीरभद्र है। मैं रुद्रके कोपसे प्रकट हुआ हूँ। ये भद्रकाली हैं इनका प्रादुर्भाव पार्वती-देवीके क्रोधसे हुआ है। ये देवाधिदेव महादेवजीके भोजनसे यज्ञके समीप आयी हैं। राजेन्द्र! तुम देवदेव भगवान् उमापतिकी शरणमें जाओ। उनका क्रोध भी वरदानके ही तुल्य है।

तब प्रजापति दक्ष मन-ही-मन भगवान् शङ्करकी शरणमें गये। उन्होंने प्राण और अपानको हृदयमें रोककर यज्ञपूर्वक इनका ध्यान किया। तब भगवान् शिव प्रकट हुए और उन्होंने मुस्कराकर पूछा—'कहो, तुम्हारा कौन-सा कार्य सिद्ध करके?' तब दक्षने हाथ जोड़कर कहा—'भगवन्! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं अथवा यदि मैं आपका प्रिय एवं कृपापात्र हूँ तो मुझे यह वरदान दें—'जो भी भोजन-सामग्री यहाँ खा-पी ली गयी, वह कर दी गयी, यज्ञका जो सामान चूर-चूर करके फैका दिया गया, वह



सब बहुत दिनोंसे यज्ञ करके संचित किया गया था। यहै वर! आपको कृपासे यह व्यर्थ न जाय।

दक्षजीने कहा—भगवान् शङ्करने 'तथास्तु' कहकर दक्षकी कामना पूर्ण की। प्रजापति दक्षने भगवान्से वरदान पाकर पृथ्वीपर घुटने टेक दिये और भगवान् शिवका स्तवन आरम्भ किया।

दक्षद्वारा भगवान् शिवकी स्तुति

दक्ष बोले—देवदेवेश! आपको नमस्कार नेत्र, भस्तक और मुख भी सब ओर हैं आपके हैं। अन्धकारमुरको मारनेवाले रुद्र! आपको प्रणम है। देवेन्द्र! आप बलमें श्रेष्ठ और देवता तथा दानवींद्वारा पूजित हैं।* आप सहस्राक्ष^१, विरूपाक्ष^२ और त्र्यक्ष^३ कहलाते हैं। यशराज कुबेरके उग्र इष्टदेव हैं आपके हाथ और पैर सब ओर हैं।

नेत्र, भस्तक और मुख भी सब ओर हैं आपके सब ओर कान हैं। आप संसारमें सबको व्याप्त करके स्थित हैं। शक्रकर्ण^४, महाकर्ण^५, कुम्भकर्ण^६, अर्णवालय^७, गजेन्द्रकर्ण^८, गोकर्ण^९, शतकर्ण^{१०}, शतोदर^{११}, शतावर्त^{१२}, शतजिह्व^{१३}, और सनातन हैं। आपको नमस्कार है। गायत्रीके उपासक आपका

* दक्ष उवाच—अपस्ते देवदेवेश नमस्तेऽन्धकसूदन। देवेन्द्र त्वं बलश्रेष्ठ देवदानवपूजित॥

१. सहस्रों नेत्रोंवाले, २. विचराल नेत्रोंवाले, ३. तीन नेत्रोंवाले, ४. बलश्रेष्ठ के समान मुखवाले कानोंवाले, ५. बड़े बड़े कानोंवाले, ६. घड़ेके समान कानोंवाले, ७. समुद्र विजय विजयस्थान है ये, ८. हाथोंके समान कानोंवाले, ९. गायके समान कानोंवाले, १०. सैकड़ों कानोंवाले, ११. सैकड़ों उदरवाले, १२. सैकड़ों भँवरवाले, १३. सैकड़ों जिह्वावाले।

ही गान करते हैं। सूर्यके पक्ष आपकी ही सूर्यरूपसे अर्चना करते हैं। आप देवता और दानवोंके रक्षक, ब्रह्मा तथा इन्द्र हैं। आप मूर्तिभक्त, महामूर्ति और चलके बंदाररूप समुद्र हैं। जैसे गोल्लतामें गौर रहती है, उसी प्रकार आपमें सम्पूर्ण देवता निवास करते हैं। आपके सरीरमें मैं चन्द्रमा, अग्नि, यरुण, सूर्य, विष्णु, ब्रह्मा तथा बृहस्पतिको देखता हूँ क्रिया, करण, कार्य, कर्ता, कारण, असत्, सदसत्, उत्पत्ति तथा प्रलय भी आप ही हैं। भव (सृष्टिकर्ता), सर्व, रुद्र (उलानेवाले), वरद, पराशर, अन्धकामुरफती, त्रिजट, त्रिशूल, त्रिशूलधारी, त्र्यम्बक, त्रिनेत्र और त्रिपुरनाशक आप भगवान् शिवको नमस्कार है।

आप चण्ड (अत्यन्त क्रोधी), मुण्ड (तिर मुँढ़ाये हुए), प्रचण्ड विश्वको धारण करनेवाले, दण्डी, शङ्खकर्ण तथा दण्डिदण्ड (दण्डधारियोंको भी दण्ड देनेवाले) हैं। आपको नमस्कार है। आप अर्धचण्डिकेश (अर्धनारीश्वर), शुष्क, विकृत, विलोहित, भृश और नीलप्राय हैं। आपको नमस्कार है। आप अप्रतिरूप हैं—आपके समान दूसरा कोई

नहीं है। आपको नमस्कार है। आप विरूप (विकराल रूपवाले) होते हुए भी शिव (कल्याणमय) हैं। आप ही सूर्य और उनके स्वामी हैं। आपको ध्वजा और पताकामें सूर्यके चिह्न हैं। आपको नमस्कार है। प्रमथानोंके स्वामी आपको नमस्कार है। आपको कंधे कुम्भके कंधेके समान मांसल है। आपको नमस्कार है। आप हिरण्यगर्भ एवं हिरण्यकवच हैं। आपको नमस्कार है। आप हिरण्य (सुवर्ण)—की चूड़ा धारण करनेवाले और हिरण्यपति हैं। आपको नमस्कार है। आप सत्रुओंके घातक, अत्यन्त क्रोधी तथा पतोंके समूहपर शयन करनेवाले हैं। आपको नमस्कार है। आपकी स्तुति की गयी है, इस समय भी आपकी स्तुति की जाती है तथा आप ही स्तुतिमकर हैं। आपको नमस्कार है। आप सर्वसकल, सर्वभक्षी एवं सब भूतोंके अनाश्रय हैं। आपको नमस्कार है।*

आप ही होम और मन्त्र हैं आपकी ध्वजा-पताका केत रंगकी है, आपको नमस्कार है आप ही अन्वय और आप ही भग्न करनेके योग्य हैं। आप कुर्वन्मन्त्र होकर किस्मकारिणीं भरनेवाले हैं।

* सहस्राक्ष विक्रपाक्ष प्रभो महाधिपतिवः । सर्वतःशक्तिपादस्त्वं सर्वतोऽभिरामोमुखः ॥
सर्वतः श्रुतिमीशोके सर्वमन्त्राद्य विद्वति । शङ्खकर्णो पञ्चकर्णः कुम्भकर्णोऽर्णवालवः ॥
गणेश्वरकर्णो गोकर्णः शङ्खकर्णो नमोऽस्तु ते । ततोवरः सततवर्तः सज्जिह्वः सनातनः ॥
यावन्ति त्वां नावन्ति अर्धचण्डिकेशकिन्वः । देवदानवगणैश्च च ब्रह्मा च त्वं सत्सन्तुः ॥
महामूर्तिः समुद्रः भस्म निधिः । त्वन्नि चर्च देवता हि नास्ति गेह इव्यसते ॥
त्वत्तः तस्मिन् पश्यामि सोमानीनदरीकरम् । अद्विष्टमय विष्णुं च ब्रह्मार्णवम् बृहस्पतिम् ॥
क्रिया करणकार्यं च कर्ता कारणमेव च । अन्धश्च सदसश्चैव तथैव प्रथमात्मयी ॥
नमो भवाय शर्वाय उदाय वरदाय ॥ पराशरं पशुं च त्वं नमोऽस्त्यन्धकामातिने ॥
त्रिजटाश्च त्रिशूलश्च त्रिशूलधारिणि । त्र्यम्बकश्च त्रिनेत्रश्च त्रिपुरनाश वी भवः ॥
मण्डपान् मुण्डान् विश्वचण्डिधराय च । दण्डिने शङ्खकर्णश्च दण्डिदण्डाय वी नमः ॥
नमोऽर्धचण्डिकेशाय शुष्काय विकृताय च । विलोहिताय भृशाय नीलप्रायाय वी नमः ॥
नमोऽस्त्यप्रतिरूपाय विक्रपाय शिवाय च । सूर्याय सूर्यपत्नये सूर्यध्वजपतकिने ॥
नमः प्रमथनास्त्राय कुम्भकन्धाय वी नमः । नमो हिरण्यगर्भाय हिरण्यकवचाय च ॥
हिरण्यकूतचूडाय हिरण्यपतये नमः । सत्रुकराय चण्डाय पर्यसत्रुशयाय च ॥
नमः स्तुताय स्तुतये स्तुतयश्च वी नमः । सर्वाय सर्वभक्षाय सर्वभूतानाश्रयने ॥

आपको नमस्कार है। सोते हुए, सोये हुए, सोकर उठे हुए, खड़े हुए और दौड़ते हुए आपको नमस्कार है। कुबड़े और कुटिलरूपमें आपको नमस्कार है। आप सदा ताण्डव नृत्य करनेवाले और मुखसे खज खजानेवाले हैं। आपको नमस्कार है। आप कण्डा पियारण करनेवाले, लुब्ध एवं गान्ध-भजन करनेवाले हैं। आपको नमस्कार है। ज्येष्ठ और श्रेष्ठरूपमें आपको नमस्कार है। बलका भक्त्य करनेवाले आपको नमस्कार है। उग्र रूपवाले आपको सदा भक्त्य है। दस भुजाओंवाले आपको नित्य प्रणाम है। हाथमें कपाल धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। श्वेत भस्म आपको अधिक प्रिय है। आप भयभीत करनेवाले, भयंकर एवं कठोर उग्र धारण करनेवाले हैं। आपको नमस्कार है।

आपका मुख नाना प्रकारसे विकृत है, जिह्वा तलवारके समान है और दाँत बड़े भयंकर हैं। पक्ष, मास और लघार्च आदि कालके वेद आपके ही स्वरूप हैं। आपको दूँबी और चीन्हा बहुत ही प्रिय है। आपको नमस्कार है। आपका रूप घोर और अघोर दोनों ही है, आप घोर और अघोरतर हैं; ऐसे होते हुए भी आप शिव, शान्त तथा अत्यन्त शान्त हैं, आपको नमस्कार है। शुद्ध बुद्धिरूप आपको नमस्कार है। सबको बौद्धता आप अधिक पसन्द करते हैं। आप पवन, सूर्य

एवं सांख्यपरायण हैं। आप एक प्रचण्ड घण्टा धारण करनेवाले और घण्टा-ज्वनिके समान बोलनेवाले हैं। आपके पास बरतार घण्टा रहा करता है। आप लखों घण्टेवाले हैं। घण्टोंकी माला आपको अधिक प्रिय है। मैं आपको प्रणाम करता हूँ। आप प्राणोंको दण्ड देनेवाले, नित्य एवं स्नेहितरूप हैं। आपको नमस्कार है। आप हूँ-हूँ करनेवाले। सदा एवं भगवत्प्रिय हैं। आपको नमस्कार है। आपका कहीं पार नहीं है। आप सदा पर्वतीय कूर्शोंको अधिक पसन्द करते हैं। आपको नमस्कार है। बड़ोंके अधिपतिरूपमें आपको नमस्कार है। आप भूत एवं प्रभुत (वर्तमान)-रूप हैं। आपको नमस्कार है। आप यज्ञवाहक, जितेन्द्रिय, सत्यस्वरूप, भग, तट, तटपर होने योग्य तथा तटिनीपति (समुद्र) हैं। आपको नमस्कार है। आप अमदाता, अमपति और अमके भोगी हैं। आपको नमस्कार है। आपके सहस्रों मस्तक और सहस्रों चरण हैं। आप सहस्रों मूल ढंढाये रहनेवाले और सहस्रों नेत्रोंवाले हैं। आपको नमस्कार है। आपका कर्ण उदयकश्चीन सूर्यके समान लाल है। आप बालकरूप धारण करनेवाले हैं। आपको नमस्कार है। आप वास्तवसूर्यस्वरूप हैं और काल आपका खिलावा है। आपको नमस्कार है। आप शुद्ध, बुद्ध, क्षोभण तथा क्षयरूप हैं। आपको नमस्कार है।*

* नमो होमाय मन्त्राय सुकृत्स्नभक्त्यक्तिके। नमोऽनन्तराय नम्यन्त नमः किलकिलाय च॥
नमस्तवा सधर्मनाथ शक्तिरप्येतिभक्तय च। शिवताय कान्तताय बुद्ध्याय कुटिलाय च॥
नमो कर्तनशीलाय मुखवदिरक्तरीणे। कण्ठप्रदाय लुब्धाय गीतवादिप्रकारिणे॥
नमो ज्येष्ठाय श्रेष्ठाय अस्त्रप्रयन्त्राय च। उग्राय च नमो नित्यं नमस्त दशबाहवे॥
नमः कपालहस्ताय शिखरभयप्रिक्तय च। विभीषकाय भीमाय भीष्मप्रतपराय च॥
नानाविकृतवक्त्राय सहस्रगण्डेन्द्रदीप्तये। चक्षुःशस्त्राकार्यं दुष्प्रीवीणाप्रियय च॥
अघोरघोररूपाय भेराघोरतराय च। नमः शिवाय शान्ताय नमः शान्तशान्तय च॥
नमो बुद्धाय शुद्धाय संविभक्तप्रिक्तय च। कवचाय चक्रहाय नमः सांख्यपराय च॥
नमश्चण्डिकाघण्टाय घण्टाजन्ताय चण्डिने। सहस्रसततघण्टाय घण्टाभालाप्रियाय च॥
प्राम्दण्ड्याय नित्याय नमस्तो स्नेहिताय च। हृदंकराय सदाय भगवत्प्रियाय च॥

आपके केश गङ्गाजीकी तरङ्गोंसे अङ्कित रहते हैं। आप अपने मस्तकके बाल खुले रखते हैं। आप [संध्यादि] छः कर्मोंमें निष्ठा रखनेवाले हैं तथा [सृष्टि आदि] तीन कर्मोंका निरन्तर पालन करनेवाले हैं। आपको नमस्कार है। आप वर्षों और आश्रमोंके पुथक्-पुथक् धर्मकी विधिपूर्वक प्रवृत्ति करनेवाले हैं। आपको नमस्कार है। आप श्रेष्ठ, श्रेष्ठ तथा पश्चिमोंके समान कलकल लहक करनेवाले हैं। आपको नमस्कार है। आपके चेहरे श्वेत, पीले, काले और साक्ष रंगवाले हैं। आप धर्म, काम, अर्थ, मोक्ष, क्रोध (संहार), क्रोधन (संहारकर्ता), सांख्य, सांख्यप्रधान और योगके अधिपति हैं। आपको नमस्कार है। आप रथ-संचारयोग्य सड़कसे रथपर बैठकर चलते हैं। चौराहा आपको घात है। आपको नमस्कार है। आप काला मृगचर्म ओढ़ते और सर्पकर यज्ञोपवीत पहनते हैं। ईशान! आप तदसमुद्रायक्य हैं। इक्ष्वाकु (पीले केशवाले)। आपको नमस्कार है। व्यवसायकस्वरूप अम्बिकननाथ, आप त्रिनेत्रधारीको नमस्कार है। काल और कामदेवके मदके इच्छानुरूप पूर्ण करनेवाले तथा दुष्टों और उद्दण्डोंका नश करनेवाले महाेश्वर! आपको नमस्कार है। सबके द्वारा निन्दित और सबके संहारक सद्योजित! आपको नमस्कार है। दूसरोंकी उन्नत बनानेवाले सैकड़ों अवतारोंसे युक्त शिव! आपके मस्तकके

बाल भङ्गजीके बालसे भीगे रहते हैं। आपको नमस्कार है। चन्द्रार्धसंयुगावर्त और मेघावर्त नामसे पुकारे जानेवाले! आपको नमस्कार है। आप अन्न-खन करनेवाले, अन्नदाताओंके प्रभु, अन्नभोक्ता और रक्षक हैं। आपको नमस्कार है। आप ही प्रसक्तकालीन अग्नि हैं। देवदेवेश्वर! आप ही चराचर, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज—ये चार प्रकारके जीव हैं। चराचर जगत्की सृष्टि और संहार करनेवाले भी आप ही हैं।

विश्वेश्वर! आप ही ब्रह्म हैं। जलमें स्थित जो ब्रह्म है, उसे आपका ही स्वरूप बतलाते हैं। आप ही सबकी परम योगि हैं। चन्द्रमा और ज्योतिर्के भंडार भी आप ही हैं। ब्रह्मवादी महात्मा आपको ही शक्, सत्य तथा अकार कहते हैं। सामान्य करनेवाले ब्रह्मवेत्ता तथा श्रेष्ठ देवता 'ह्यधि ह्यधि हरे ह्यधि हुवा ह्यधि' आदि साम-श्रवणोंका निरन्तर उच्चारण करते हुए आपका ही परागान करते हैं। आप ही बज्रवेद, अथर्ववेद, सामवेद तथा अधर्ववेदनम हैं। ब्रह्मवेत्ता कल्प और उपनिषद्वादि के समूहोंसे आपके ही स्वरूपका अभ्ययन करते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि जो-जो वर्ण और आश्रम हैं, वह सब आप ही हैं। विजलीकी चमक, मेघकी गर्जना, संकलर, शत्रु, मत्स्य, पक्ष, कल्प, कच्छ, निमेष, नक्षत्र और युग—सब आपके ही स्वयम् हैं। बैलोंके ककुद (चूहे) और परंतोंके शिखर भी आप ही हैं।^१ आप

गणेश्वरको विरथ गिरिवृक्षप्रियम्	च। नमो महाविष्णवे भूतान् प्रमुखाय च॥
यज्ञाक्षरं दामास्य तन्मय च कल्प यः	नमस्तस्य इत्यस्य सतिनीकते नमः॥
अत्रायासपश्ये नमस्तत्राभुवम्	च। नमः सप्तसतीर्षय सङ्कलरूपम् च॥
सहजीघातसूताय सहस्रनयनम्	च। नमो कालार्कचर्चय बालकल्पधराय च॥
नमो वास्तवर्कस्याय कालाङ्गीडनकाय	च। नमः सुदाम सुदाम क्षोभकाल अक्षय च॥
* तरङ्गाङ्कितकेताय मुक्तकेतव्य वी नमः॥	नमः चट्कर्मनिष्ठाय त्रिकर्मविमलम् च॥
धर्माश्रमाणां विधिकल्पवाचर्मप्रवर्तिने	नमः तेषां ज्योत्स्नय नमः कलकलाय च॥
क्षेपिङ्गलैत्राय कृष्णरतेक्षणाय	च। धर्मकल्पवृक्षेक्षाय कृषाय कृषयाय च॥
श्रीकृष्णाय श्रीकृष्णमुष्णाय योगाधिकृतये नमः॥	नमो रण्यधिरण्याय अनुपधधयय च॥

मूर्तोंमें भृगराज सिंह, सर्पोंमें लक्षक और सेनाना, समुद्रोंमें क्षीरसागर, मन्त्रोंमें व्रणव, शस्त्रोंमें वज्र और द्रव्योंमें सत्य हैं। आप ही इच्छा, राग, द्वेष, मोह, शान्ति, क्षमा, व्यवसाय (दृढ़ निश्चय), धैर्य, लोभ, काम, क्रोध, जय और पराजय हैं। आप गदा, बाण, धनुष, छद्वाङ्ग और मुद्गर धारण करनेवाले हैं। आप ही छेदन, भेदन और प्रहार करनेवाले हैं। नेता और मन्त्रा (आदर देनेवाले) भी आप ही माने गये हैं। [मनुक्त] इस लक्षणोंवाला धर्म, अर्थ एवं काम भी आपके ही स्वरूप हैं। चन्द्रमा, समुद्र, पर्वी, छोटा तालाब, सरोवर, लता, बेल, चास, अन्न, पशु, मृग और पक्षी भी आप ही हैं। द्रव्य, कर्म और गुणोंका आरम्भ भी आपसे ही होता है। आप ही समयपर फूल और फल देनेवाले हैं। आदि, अन्त, मध्य, गायत्री और अक्षर भी आप ही हैं।

हरा, लाल, काला, नीला, पीला, अरुण, पित्तकवरा, कपिल, शङ्खु (धूरा), फरकल और श्याम आदि रंग भी आप ही हैं। आप सुवर्णीत (अग्नि)-के नामसे विख्यात हैं। आप ही सुवर्ण माने गये हैं। सुवर्ण आपका नाम है और सुवर्ण आपको प्रिय है। आप ही इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर, वायु, प्रज्जलित अग्नि, स्वर्भानु (रज्जु) और भानु

(सूर्य) हैं। होता (हवन करनेवाले), होत्र (हवन), होम्य (हवनद्वारा पूज्य), हुत (हवि) और प्रभु भी आप ही हैं। त्रितोषर्ण श्रद्धा और यजुर्वेदका शतसंक्षिप्त आपका ही स्वरूप है। आप पवित्रोंमें पवित्र तथा मङ्गलोंके भी मङ्गल हैं। आप ही प्राण, रजोगुण, तमोगुण तथा सत्त्वगुण हैं। प्राण, अपान, सम्पन्न, उदान, व्यान, उन्मेष-निमेष (आँखका खोलना-पीचना), भूख, ध्यास तथा वृम्भा (जैभाई) हैं। आप स्नेहिताङ्ग (सात शरीरवाले), देष्ट्री (दर्शकवाले), महावक्त्र (बड़े मुखवाले), महोदर (बड़े पेटवाले), सुषिरमेघा (पवित्र रोयेवाले), हरिन्धूम्रु (पीली दाढ़ी-मूँछवाले), ऊर्ध्वकिञ्च (ऊपर उठे हुए केशवाले) तथा चलाचल (स्थावर-चक्रवर्त्य) हैं। गीत, वाद्य और नृत्य आपके ही अङ्ग हैं। गान-बजाना आपको बहुत प्रिय है। आप ही मरत्य, उसे जीवन देनेवाले जल और उसे पैनायेवाले जल हैं। आपको कोई जीत नहीं सकता। आप जलस्थल (पानीमें रहनेवाले सौंप) और कुटीचर (एकान्तवासी गृहस्थ) हैं। आप ही विकाल (विपरीत काल), सुकाल, दुष्काल तथा कालनाशक हैं। मृत्यु, अमृत एवं अन्त भी आप ही हैं। आप क्षमा, माक्ष एवं किरणोंका प्रसार करनेवाले हैं।

कृष्णविनेतरीयाय	आलकरोपवीतिने ।	इतिग अदत्तयत हरिकेश मयोऽस्तु ते ॥
ज्योत्स्नाय नमोऽस्तु ते ।	कालकाम्यदकामय	दुष्टोद्भूतनिवृत्तन ॥
सर्वगर्हित सर्वज्ञ साधोक्ता नमोऽस्तु ते ।	उन्मत्तनस्तवर्ष	गङ्गाशोफर्दमूर्धज ॥
चन्द्रार्धसंयुगाकर्त मेधावती नमोऽस्तु ते ।	नमोऽप्रदानकर्त	च अनन्दप्रभवे नमः ॥
अन्नभोक्त्रे च गोत्रे च त्वमेव ब्रतपालन ।	चरायुज्यङ्गमक्षीव	स्वेदजोद्विज एव च ॥
त्वमेव देवदेवेश भूतज्जलजतुर्विधः ।	चराचरस्य सहा त्वं प्रतिज्ञां त्वमेव च ॥	
त्वमेव ब्रह्मा विश्वेष्ट अयुः सद्य कदन्ति ते ।	सर्वस्य परमा वेदि सुधाश्रे ण्योतिषां निधिः ॥	
श्रेष्ठसमाप्ति तथोक्तारमाहुरसर्वं ब्रह्मर्षिभिः ।	हस्ति हस्ति इरे हस्ति हुवा हावेति वासकृत् ॥	
यावन्ति त्वां सुरग्रेहाः सामान्य ब्रह्मर्षिभिः ।	यजुर्वेद ब्रह्मस्य	सामर्थ्यंयुतस्तथा ॥
पृथग्से ब्रह्मविद्भिस्तर्ष कल्पौषधिनिकर्त गणैः ।	ब्रह्मः क्षत्रिय वैश्याः शूद्रा वर्णश्रमयः	दे ॥
त्वमेवाश्रमसंघाश्च विद्वत्सन्निभेय च ।	सर्वस्यस्तुत्युक्तो	मासा मासाधमेव च ॥
कला काष्ठ निमेषाश्च नक्षत्राणि बुधनि च ।	वृषाणां ककुदं त्वं हि गिरीणां शिखराणि च ॥	

आप संवर्त (प्रलयकाल), वर्तक (नित्य विद्यमान), संवर्तक (प्रलयकालीन) और क्लाहक (मेघ) हैं। आप घण्टा धारण करनेके कारण घण्टाकी, घण्टकी और घण्टी कहलाते हैं। मस्तकपर जोटी धारण करते हैं। छोटे पानीका समुद्र आपका ही स्वरूप है।* आप ब्रह्म हैं। आपके मुखमें कालाग्रिका निवास है। दण्ड धारण करनेवाले, सिर मुँहाये रहनेवाले तथा विदण्ड धारण करनेवाले यति आपके ही स्वरूप हैं। चारों मुख, चारों वेद, चार प्रकारके होता और चौराहा आप ही हैं। चारों आश्रयोंके नेता और चारों बर्णोंकी उत्पत्ति करनेवाले भी आप ही हैं। धर (विन्द्यतो), अन्धर (अविन्द्यतो), प्रिय, धूर्त, गणोंद्वारा गणनीय एवं गणपति भी आप ही हैं। आप स्वप्न रंगको माला और वस्त्र धारण करते हैं। पर्वत एवं घाणीके स्वामी हैं। पार्वतीजीके प्रियतम हैं। शिल्पकारोंके स्वामी, शिल्पियोंमें श्रेष्ठ तथा समस्त शिल्पकारोंके प्रवर्तक हैं। आपने ही भगवत् नेत्रोंका विनाश किया है। आप अत्यन्त क्रोधी हैं। पूषाके दाँत भी आपने ही

तोड़े हैं। स्वाहा, स्वधा, वषट्कार और नमस्कार—सब आप ही हैं। आपको नमस्कार है आपके व्रत गूढ़ रहता है। आप स्वयं भी गूढ़ हैं तथा गूढ़ व्रतका आचरण करनेवाले महापुरुष सदा आपकी सेवामें रहते हैं। आप ही उरने और वारनेवाले हैं। सब भूतोंमें आप ही संवाल्करूपसे स्थित हैं। धात (धारण करनेवाले), विधाता (विधान करनेवाले), संभता (जोड़नेवाले), विधाता (बीज दासनेवाले), धारण, धर, तप, ब्रह्म, सत्य, ब्रह्मचर्य तथा अश्वत्थ (सरलात) आपके ही नाम हैं। आप सम्पूर्ण भूतोंके आत्मा, सब भूतोंको उत्पन्न करनेवाले, भूतस्वरूप, भूत, भविष्य तथा वर्तमानके उद्भासक, भूतोंक, भुवलीक, स्वलीक, भूत, अग्नि और महेधर हैं। ब्रह्मवर्त, सुरुक्त और कामावर्त आपके ही नाम हैं। आपको नमस्कार है। आप कामदेवके विप्रभको दण्ड करनेवाले हैं। कर्मिकर (कनेर) पुष्पोंकी माला आपको अधिक प्रिय है। आप गौओंके नेता, गोत्रधारक (इन्द्रियोंके संचालक) तथा गौओंके स्वामी नन्दीपर सवारी करनेवाले हैं।

* सिंहो मृगालं च यस्मिन्सकलैऽभ्यन्तरेणिवन् । क्षीरोदो ह्युदधीर्न च यन्त्राणां प्रणवस्तथा ॥
वर्षं प्रहरणानां च क्रान्तिं संप्रयेव च । तमेवेष्टानं च द्वेषश्च राजे मोहः शमः क्षमा ॥
व्यवसायो युक्तिलोपः कल्पलोकी कवाचकी । त्वं गदी त्वं सरी चापी खट्वाङ्गी मुद्री तथा ॥
छेता येन प्रहतां च नेता क्ताग्निर्नै यतः । दत्तस्तत्त्वमसंयुक्तो धर्मोऽर्थः काम एव च ॥
इन्द्रः समुद्रः सरितः पत्न्यस्तनि संपत्तिश्च । तत्त्वमस्तत्त्वसुखैवध्वः परावो भृगुपतिश्च ॥
द्रव्यकर्मगुणारम्भः कालगुणफलशब्दः । अदिरक्षतश्च यन्त्रश्च गात्रजोद्धार एव च ॥
इतितो लोहितः कुम्भो नीलः पीतस्तत्त्वस्थः । कटुश्च कपिलश्च बभ्रुः कपिलो मेघकस्तथा ॥
सुवर्णरत्न विद्युच्छतः सुवर्णश्यामश्च यतः । सुवर्णवज्रश्च तथा सुवर्णप्रिय एव च ॥
त्वयिन्द्रश्च यमश्चैव यत्नो धनदोऽनिसः । उत्पुस्तश्चित्रभानुश्च स्वर्भानुर्भानुरेव च ॥
होत्र होतश्च होमश्च दुर्ज जेत त्वश्च बभ्रुः । विशीर्षस्तश्च ब्रह्मन् यक्षुर्वा शतश्रियम् ॥
पवित्रश्च पवित्राणां यज्ञस्तानां च यज्ञसम् । प्रणवश्च त्वं रजश्च त्वं तपः सत्त्वयुतस्तथा ॥
प्राणोऽपानः संपानश्च उदरो व्यान एव च । उन्मेषश्च निमेषश्च क्षुब्धश्च कृष्ण तथैव च ॥
लोहितान्नश्च रंही च मज्जकश्चो माहेश्वरः । सुषिरोमश्च हरिश्चक्षुर्भुक्कर्म्यकेशश्चतापतः ॥
गीत्वादिप्रकृपाङ्गो पीतकदनकप्रियः । भरवो चालो कालोऽयश्चो कलव्यास्तः कुटीचरः ॥
विकालश्च सुकालश्च दुष्कालः कालकालः । मृत्युर्लैवाश्चोऽन्ताश्च कर्म माय करोतकरः ॥
संवर्तो वर्तकश्चैव संवर्तकस्तद्वर्तकः । घण्टाकी घण्टाकी घण्टी चूडालो लवणोदधि ॥

तीनों लोकोंकी रक्षा आपके ही हाथोंमें है। गोविन्द (गोरक्षक), गोपालक और गौओंके धर्म भी आप ही हैं। आपका मुख पूर्ण चन्द्रके समान आकाशदक है। आप सुन्दर मुखवाले हैं। किन्तु मुख सुन्दर नहीं है, जो मुखसे रहित है, जिनके चार या अनेक मुख हैं तथा जो सदा युद्धमें सम्मुख डटे रहते हैं, वे सब भी आपके ही स्वरूप हैं। आप हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा), सकुनि (वायु), धन्व (धन देनेवाले), धन्वके स्वामी, विराट्, अधर्मका नाश करनेवाले, महादध, दण्डधारी तथा युद्धके प्रेमी हैं। बड़े रहनेवाले, निर, स्वानु, निष्कम्प, अत्यन्त निष्ठ, दुर्लभ (कठिनतासे निवारण किये जाने योग्य), दुर्बिषह (असह्य), दुस्तह और दुरतिक्रम (दुर्लभ्य) हैं। आपको धारण करना या बरायें लाना कठिन है। उज्ज्वल निष्प दुर्दम्प (कठिनतासे दमन करने योग्य), विजय एवं जय हैं। आप शम्भु (खरगोश)-रूप हैं। चन्द्रमा आपके नेत्र हैं। आप एक ही साथ शीत और उष्ण दोनों ही धारण करते हैं। शुभ,

दुष्क, नुदाय, आधि (मानसिक पीड़ा) और व्यर्थ भी आप ही हैं। व्याधिके नाशक और फलक भी आप ही हैं। आप सहन करने योग्य, यज्ञस्थी मृगके मारनेवाले व्याध, व्याधियोंके आकर (भंडार) तथा अकर (कुछ भी न करनेवाले) हैं। आप सिखण्डी (भोरपंखधारी), पुण्डरीक (कमलरूप) तथा पुण्डरीकलोचन हैं। दण्डधृक्*, चक्रदण्ड* तथा रौद्रभागविनाशन*— ये सब आपके ही नाम हैं।* आप विष्, अमृत, देवदेव, दुग्ध, स्नेह, मधु, जल तथा सब कुछ पान करनेवाले हैं। कल और अवल सब आप ही हैं।

आप धर्ममय बृहत्के शरीरपर सवार होने योग्य हैं, बृहत्स्वरूप हैं। आपके नेत्र बृहत्के नेत्रोंके समान हैं। आप बृहत्के कण्ठसे लोकमें विद्यमान हैं। सम्पूर्ण लोक आपके संस्कार (पूजन और अभिषेक) करता है। शिव, चन्द्रमा और सूर्य आपके नेत्र, ब्रह्माजी हृदय, अग्निष्टोम शरीर और धर्मकर्म नृत्तार हैं। ब्रह्मा, विष्णु तथा प्राचीन ऋषि भी आपके माहात्म्यको पथार्थरूपसे जाननेमें

१. दण्डधारी, २. चक्रदण्ड दण्ड देनेवाले, ३. उसके धनका नाश न होने देनेवाले।

* ब्रह्म कालान्तरवत्तु दण्डो मुण्डभित्तदधृक् । चतुर्भुजचतुर्दंशतुष्टोमचतुर्भुजः ॥
 चतुर्भुजचतुर्दंशतुष्टोमचतुर्भुजः ॥ चतुर्भुजचतुर्दंशतुष्टोमचतुर्भुजः ॥
 रक्तपातकप्रवर्धनी विरीलो गिरिनीवः । सिंहैः सिंहैः केतुः सर्वशक्तिप्रवर्धकः ॥
 भानेशान्तकण्डः पूज्यैः दक्षिणतः । स्वर्गा स्वर्गा वरदकरो वयस्कर नयेऽस्तु ते ॥
 गुरुतत्त्व गुरुः गुरुवर्जनिर्दिष्टः । जगत्सारवर्धन सर्वभूतेषु तापः ॥
 पात्र विधाया संघात निघात करणे धरः । तपे ब्रह्म च सत्यं च ब्रह्मचर्यं तथाऽऽर्जवत् ॥
 भूतारम्भा भूतान्भूतो भूतान्भवकोद्भवः । भूर्भुवः स्वरितवीच भूतो ह्यग्निर्देवाः ॥
 ब्रह्मावर्तः सुरवर्तः कामावर्तः कयोऽस्तु ते । कामकिञ्चिन्निर्दिष्टः कर्मिकारकजप्रियः ॥
 गोविता गोप्रपन्नः । गोपुत्रैश्चवाहनः । त्रैलोक्यगणेश गोविन्दो गोता गोमार्ग एव च ॥
 अखण्डचन्द्राभिमुखः सुमुखो दुर्मुखोऽमुखः । चतुर्मुखो बहुमुखो रणेष्वाभिमुखः सदा ॥
 हिरण्यगर्भः । सकुनिर्धन्वोऽर्धशक्तिविह्वलः । अर्धशक्ति महादधो दण्डधरो रणप्रियः ॥
 तिष्ठन् स्थिरश्च स्वाचरन् निष्कम्पश्च सुनिष्ठः । दुर्वारो दुर्बिषहो दुःसहो दुरतिक्रमः ॥
 दुर्गो दुर्वरो निष्ठो दुर्दंशे विजयो जयः । जयः जयज्जयजयः त्रैलोक्यः सुमुख जयः ॥
 आपयो व्याधपदोऽवधिहो व्यधिपन्न वः । बहो बहूभुजयो व्याधीनामकरोऽकरः ॥
 सिखण्डी पुण्डरीकः पुण्डरीककमेकनः । दण्डधृक् चक्रदण्डश्च रौद्रभागविनाशनः ॥

समर्थ नहीं हैं। भगवन्! आपकी कल्पवृक्षमयी एवं सूक्ष्म जो मूर्तियाँ हैं, उनका भूले दर्शन हो। आप उन मूर्तियोंके द्वारा मेरी सब ओरसे रक्षा करें—तबके बैठे ही, जैसे पिता अपने औरस पुत्रकी रक्षा करता है। अनय। आपको नमस्कार है। मैं रक्षा करने योग्य हूँ। आप मेरी रक्षा करें। आप भक्तोंपर कृपा करनेवाले भगवन् हैं और मैं सदा ही आपमें भक्ति रखता हूँ।

जो छोटी दृष्टि रखनेवाले अनेक सहस्र पुस्तकोंको अपनी मायासे आवृत करके अकेले ही समुद्रके भीतर निवास करते हैं, वे भगवान् प्रतिदिन मेरी रक्षा करें। मित्रासे रहित, प्राणीभ्यो वशमें रखनेवाले, अस्वगुणमें स्थित, सम्प्रदर्शी योगिजन योगाभ्यास करते समस्त जिनके ज्योतिर्मय स्वरूपका दर्शन करते हैं, उन योगात्मकोंको नमस्कार है। जो प्रत्यक्षरूप उपस्थित होनेपर सम्पूर्ण भूतोंको अपना प्राप्त बनाकर जलके भीतर शयन करते हैं, उन भगवान् जलासायीकी मैं शरण लेता हूँ। जो रात्रिमें छद्मके मुखमें प्रवेश करके चन्द्रमाका अप्सर पीते हैं और केतु बनकर सूर्यको भी प्राप्त लेते हैं तथा जो अग्नि और सोमस्वरूप हैं, उन भगवान्की मैं शरण लेता हूँ। समस्त देहधारियोंकी देहोंमें स्थित, औष्ठ्यके

बतबर आकारवाले कितने भी जीवात्मक हैं, वे सब आपके ही स्वरूप हैं; अतः वे सदा मेरी रक्षा करें और सदा मुझे कृत बनाये रखें। जो अभी उत्पन्न नहीं हुए हैं तथा जो जलके भीतर स्थित हैं, उन सब गर्भोंको जिनसे स्वप्ना (पुष्टि) प्राप्त होती है तथा जिनकी कृपासे उन्हें स्वाध (स्वादिष्ट रस)—का आस्वादन सुलभ होता है, जो सरोवरके भीतर रहकर स्वयं नहीं खेले और प्राणिमंडलोंके अन्तर्गत हैं, जो सबको हर्ष प्रधान करते, किंतु स्वयं हर्षका अनुभव नहीं करते, उन सबको शिवरूपमें सदा-सर्वदा नमस्कार है।

जो समुद्र, नदी, दुर्गम स्थान, पर्वत, गुफा, वृक्षोंकी अङ्ग, गोताला, अगम्य पथ, गहन वन, चौराहा, लङ्का, सभ्य, गजराज, अश्वराजा, रथराजा, प्राचीन वाटिका, पुराने घर, पाँचों भूत, दिक्क, विद्विक्क, इन्द्र और सूर्यके मध्य, चन्द्रमा और सूर्यकी किरण तथा रसातलमें जो शिवस्वरूप जीव रहते हैं और उन स्थानोंसे घरे जिनकी विभक्ति है, उन सबको सब प्रकारसे नमस्कार है, नमस्कार है, नमस्कार है।* भगवन्! आप सर्वस्वरूप, सर्वव्यापी देवता, सम्पूर्ण भूतोंके स्वामी, सबकी उत्पत्तिके कारण तथा सम्पूर्ण भूतोंके अन्तरात्मा

* विषयोऽभूतपक्षेण सुरावः क्षीरलोमयः। कपुष्पपत्रपक्षेण सर्वपद्म जलाधरः॥
 वृषाङ्गबाहो वृषधस्तवा वृषमनोभवः॥ वृषधस्तैव विज्ज्वाले लोकानां लोकतत्त्वकृतः॥
 चन्द्रादित्यौ कपुषी ते इदमं च निरुद्धः॥ अग्निहोमस्तथा देवो धर्मकर्मप्रसाधितः॥
 न ब्रह्मा न च सोमिनः॥ पुराणव्याख्यो न च॥ भद्रास्त्यं वेदितुं सदा यथाज्ञानेन ते शिवः॥
 तिस्रं च मूर्त्यः सुकमले महां कम्पु दर्शनम्॥ तन्निर्मलं सर्वत्र रक्ष पितृ पुत्रपितृवरसम्॥
 रक्ष मां रक्षणेनोऽहं ब्रह्मण्य नमोऽस्तु ते॥ भक्तमुक्त्या ही भगवन् भक्त्याहं सदा त्वयि॥
 यः सहस्राब्दनेकानि पुंस्यकृत्यं दुर्दृष्टान्॥ निरलेकः समुद्रान्ते स मे भोदास्तु शिष्याः॥
 र्वं विनिद्रा जितवाताः सत्त्वन्धः सम्प्रदर्शनः॥ ज्योतिः पश्यन्ति पुत्रान्भारती योगात्मने नमः॥
 सम्यक् सर्वभूतानि पुत्राके समुपविष्टे॥ नः सेते कलामध्यस्थस्तं प्रपद्येऽम्बुराशिनम्॥
 प्रविश्य बदनं राहोर्वः सोमं पिबते निद्रि॥ प्रसन्नकी च स्वर्णानुभूत्य खेपप्रिरेव च॥
 अङ्गुहस्तजः पुरुषा देहस्थः सर्वदेहिनाम्॥ रहन्तु ते च मां शिवं नित्यं चाप्यामयन्तु माम्॥
 वेनाप्युत्पादितं गर्भं अपो धमनज्ज नै॥ केकं स्वहृदा स्वका पौव अन्तुवन्ति स्वदन्ति च॥
 ये न रोदन्ति देहस्थाः प्राप्तिनो रोदन्ति च॥ हर्षवन्ति च हृष्यन्ति कमस्तेष्वस्तु शिष्याः॥
 ये समुद्रे नदीदुर्गे पर्वतेषु मुह्यन्तु च॥ कृकमूलेषु भोदेषु कान्तराहनेषु च॥

हैं। इसीलिये आपको पृथक् निमन्त्रित नहीं किया गया। देव! भाँति-भौतिकी दक्षिणावासे यज्ञोद्गरा आपका ही यजन किया जाता है। अन्न ही सबके कर्ता-धर्ता हैं, इसलिये आपको मैंने निमन्त्रित नहीं किया। अबवा देव! आपकी सुख-दुःखों का मयासे मैं मोहित था। इसी कारण आपको निमन्त्रण नहीं दिया। देवेश्वर! मुझपर प्रसन्न होइये। आप ही मुझे करण देनेवाले हैं। आप ही मेरी गति और प्रतिष्ठा हैं, दूसरा कोई नहीं है। ऐसा मेरा दुःख विनाश है।*

इस प्रकार महादेवजीकी स्तुति करके प्रजापति दक्ष चुप हो गये। तब भगवान् शिवने कहा—‘उत्तम अन्न पालन करनेवाले दक्ष! मैं तुम्हारे इस स्तोत्रसे बहुत प्रसन्न हूँ। अधिक कहनेसे क्या लाभ, तुम्हें मेरा सामीप्य प्राप्त होगा।’ यों कहकर देवेश्वर महादेवजी अपनी पत्नी और पार्वतीके साथ अमित सौजस्यी दक्षकी दृष्टिसे ओझल हो गये। जो मनुष्य दक्षद्वारा किये हुए इस स्तोत्रका जपण या कीर्तन करता है, उसका तनिक भी अपमूल्य नहीं होता। उसे दीर्घ आयुकी प्राप्ति होती है। जैसे

सम्पूर्ण देवताओंमें भगवान् शिव श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार सब स्तोत्रोंमें यह दक्षनिर्मित स्तोत्र श्रेष्ठ है जो लोग यज्ञ, स्वर्ग, देवताओंका ऐश्वर्य, धन, विजय और विद्या आदिकी अभिलाषा रखते हैं, उन्हें परपूर्वक भक्तिके साथ इस स्तोत्रद्वारा भगवान् शिवकी स्तुति करनी चाहिये। रोगों, दुःखों, दीप, यज्ञ आदिसे प्रसन्न तथा राज-काजमें निपुण मनुष्य इस स्तोत्रके प्रभावसे महान् भयसे मुक्त हो जाता है तथा भगवान् शिवसे इस लोकमें सुख पाकर उसी शरीरसे गणोंका स्वामी बन जाता है। यक्ष, पिशाच, नाग और विषाणक उस मनुष्यके घरमें कित्त नहीं डालते, जिसके यहाँ भगवान् शिवकी स्तुति होती है। दक्षद्वारा किये हुए इस स्तोत्रका पठ करनेवाला मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है और परमेश्वर देवताओंद्वारा पूजित होता है। इस पञ्च गोपनीय स्तोत्रका जपण करके पापयोगिवाले मनुष्य तथा वैश्य, स्त्री एवं शूद्र भी स्वर्गलोक प्राप्त करते हैं। जो द्विज प्रत्येक पर्वमें ब्राह्मणोंको सदा इस स्तोत्रका जपण कराता है, वह निःसंदेह भगवान् शिवके लोकमें जाता है।

एकाग्रकक्षेत्र तथा पुरुषोत्तमक्षेत्रकी महिमा

सौमहर्षणजी कहते हैं—‘महर्षिये! ब्रह्मजीकी कही हुई पवित्र कथा सुनकर उन महर्षियोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। उनके शरीरमें रोमका हो

आया। उन्होंने कहा—‘ब्रह्मन्! अब आप एकाग्रकक्षेत्रका वर्णन कीजिये।’

ब्रह्मजी बोले—पुनिवर्णे। यह क्षेत्र सब पापोंको

पशुपतेषु रथ्यासु जम्बरेषु सपत्नसु च। इत्येवमरुचरुचसु जीर्णैरानालयेषु च॥
ये तु पञ्चसु भूतेषु दिशसु विदिरसु च। इन्द्रार्कचोमण्यकासु ये च धन्वार्कशिषु॥
रसाकलमता ये च ये च तस्मात्परं मतः। नमस्तेभ्यो नमस्तेभ्यो नमस्तेभ्यस्तु सर्वदा॥
* सर्वस्य सर्वांगो देवः सर्वभूतपतिर्मयः। सर्वभूतान्तरात्मा च तेन त्वं न निमन्त्रितः॥
त्वमेव जेष्ठासे देव यहीनिमित्तदक्षिणैः। त्वमेव कर्ता सर्वस्य तेन त्वं न निमन्त्रितः॥
अथवा भवया देव मोहितः सुखस्य तव। तस्मात्तु अस्मद्भूयि त्वं भवा न निमन्त्रितः॥
प्रसीद मम देवेता त्वमेव शरणं मम। त्वं भवितुं प्रतिष्ठा च न चान्येऽस्तीति मे भक्तिः॥

हरनेवाला, पवित्र एवं परम दुर्लभ है। मैं उसका संक्षेपसे वर्णन करूँगा, सुनो। एकप्रकार नामसे विख्यात क्षेत्र चारणसीके समान कोटि निर्वर्तित होनेसे युक्त एवं शुभ है। उसमें आठ तीर्थ हैं। पूर्व कल्पमें वहाँ एक आनका वृक्ष था। उसीके नामसे वह एकाग्रक्षेत्रके रूपमें विख्यात हुआ। वह स्थान दृढ़-पुष्ट मनुष्योंसे भरा रहता है, वहाँ स्त्रियाँ भी रहती हैं और पुरुष भी। उस क्षेत्रमें विद्वानोंकी अधिकता है, वह धन-धान्यसे सम्पन्न स्थान है। घर और गोपुर वहाँकी शोभा बढ़ाते हैं। वहाँ अनेकों व्यवसायी घरे हुए हैं। भौति-भौतिके रत्न उस क्षेत्रकी शोभा बढ़ाते हैं। नगर, अटारी, सड़क और राजहंसोंके समान स्वेत महल आदिके द्वारा उसकी बड़ी शोभा होती है। उसके चारों ओर सफेद चहारदीवारी कभी है। तस्त्रोंद्वारा उस पुरकी रक्षा होती है। अनेकों छात्रोंसे यह क्षेत्र अलङ्कृत है। वहाँ प्रतिदिन उत्सवका आनन्द छाया रहता है। नाम प्रकारके बाजोंकी ध्वनि सुनयी पड़ती है। चहारदीवारी और बाजोंसे युक्त अनेक दिव्य देवमन्दिर सब ओर उस क्षेत्रकी शोभा बढ़ाते हैं। वह किं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र बड़े धार्मिक हैं। वे अपने-अपने धर्मोंमें संलग्न रहते हैं। उस क्षेत्रमें निर्धन, मूर्ख, दूसरोंसे द्वेष रखनेवाले, रोगी, मलिन, नीच, पापकी, रुग्ण, दुराचारी तथा परद्रोही मनुष्य नहीं हैं। वहाँ सर्वत्र सुखपूर्वक सब लोग धूमते-फिरते हैं। वह स्थान सब जीवोंके लिये सुखद है। वहाँ जना प्रकारके पक्षियोंका कलरव सुनयी पड़ता है। वह किं उद्यान नन्दनवनके समान एवं सबके सेवन करने योग्य हैं। वहाँके वृक्ष फलोंके भारसे झुके रहते हैं और सभी वस्तुओंमें वनसे फूल झड़ते रहते हैं। दीर्घिका, तड़ाग, पुष्करिणी, बापी तथा अन्यन्य जलाशय सदा कमलवनसे सुशोभित रहते हैं।

भौति भौतिके वृक्ष, नाम प्रकारके सुन्दर पुष्प तथा अनेक प्रकारके पवित्र जलाशय सब ओरसे उस स्थानकी शोभा बढ़ाते हैं।

उस क्षेत्रमें साक्षात् भगवान् शङ्कर सब लोकोंका हित करनेके लिये निवास करते हैं। वे भोग और मोक्ष दोनोंके दाता हैं। इस पृथ्वीपर जितने तीर्थ, नदियाँ, सरोवर, पुष्करिणी, तड़ाग, बापी, कूप और सागर हैं, उन सबसे पृथक्-पृथक् जलकी बूँदें संगृहीत करके देवताओंसहित भगवान् शङ्करने उस क्षेत्रमें सम्पूर्ण लोकोंके हितके लिये विन्दुसर नामक तीर्थ स्थापित किया। इसीलिये वह विन्दुसरके नामसे विख्यात है। अगहनके कृष्णपक्षकी अष्टमीको जो वहाँकी यात्रा कराता है तथा जो जितेन्द्रिय भावसे विषुवयोगमें ब्रह्माके साथ विधिपूर्वक विन्दुसरोवरमें स्नान करके तिल और जलसे पाथ-गोत्रके दधारणपूर्वक दैवताओं, श्रष्टियों, मनुष्यों एवं पितरोंका तर्पण करता है, वह अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त है। जो ग्रहण, विषुवयोग, संक्रान्ति, अयनारम्भ, छियासी शुगादि तिथि तथा अन्यान्य शुभ तिथियोंमें वहाँ ब्राह्मणोंको धन आदिका दान करते हैं, वे अन्ध तीर्थोंकी अपेक्षा सीगुना फल पाते हैं। जो विन्दुसरोवरके तटपर पितरोंको पिण्डदान देते हैं, वे उन पितरोंको अक्षय तृप्तिका सम्पन्न करते हैं।

स्नानके पश्चात् मीन एवं जितेन्द्रिय भावसे भगवान् शङ्करके मन्दिरमें प्रवेश करके उनकी पूजा करे। तीन बार शिवकी प्रदक्षिणा करे। घृत और दुग्ध आदिके द्वारा पवित्रतापूर्वक भगवान् शङ्करकी स्नान कराकर उनके सब अङ्गोंमें शुगान्ध चन्दन एवं केसर लगावे। तदनन्तर नाना प्रकारके पवित्र पुष्पों तथा बिल्वपत्र, आक और कपल आदिके द्वारा वैदिक एवं तान्त्रिक मन्त्रोंसे तथा केवल नाममय मूल मन्त्रसे गन्ध, पुष्प, चन्दन,

धूप, दीप, नैवेद्य, दण्डहार, स्तुति, दण्डवत्-प्रणाम, मनोहर गीत-वाद्य, नृत्य, जप, नमस्कार, जप-शब्द तथा प्रदक्षिणा समर्पण करते हुए महादेवजीका पूजन करे। इस प्रकार देवाधिदेवका विधिपूर्वक पूजन करनेवाला पुरुष सब पापोंसे मुक्त हो शिवलोकमें जाता है। जो उत्तम बुद्धिवाले पुरुष वहाँ हर समय महादेवजीका दर्शन करते हैं, वे भी परममुक्त होकर शिवलोकमें जाते हैं। भगवान् शिवसे पश्चिम, पूर्व, दक्षिण, उत्तर—चारों ओर डार्क-डार्क खोजनाक वह क्षेत्र भोग एवं मोक्ष प्रदान करनेवाला है। उस उत्तम क्षेत्रमें भस्करेश्वर कमसे प्रसिद्ध एक शिवस्तिब्ध हैं। जो लोग वहाँ कुछदूरमें खान करके भगवान् सूर्यद्वारा पूजित त्रिनेत्रधारी देवाधिदेव महादेवका दर्शन करते हैं, वे सब पापोंसे मुक्त हो उत्तम विमानपर बैठकर गन्धर्वोंके मुखसे अपनी स्तुति सुनते हुए शिवलोकमें जाते हैं अथवा योगियोंके घरमें वेद-वेदाङ्गोंके पारंगत, सर्वभूतहितकारी श्रेष्ठ द्विजके रूपमें उत्पन्न होते हैं। उस समय वे मोक्षसात्विके तारपथको समझनेमें कुशल और सर्वत्र समबुद्धि होते हैं तथा भगवान् साङ्गसे श्रेष्ठ योग प्राप्त करके भव-बन्धनसे मुक्ति पा जाते हैं। द्विजवरो। स्त्री भी श्रद्धापूर्वक वहाँ भगवान् शिवका पूजन करके पूर्वांत फलको प्राप्त कर सकती है। मुनिकरो। भगवान् महेश्वरके अतिरिक्त दूसरा कौन ऐसा है, जो उस उत्तम क्षेत्रके सम्पूर्ण गुणोंका वर्णन कर सके। भगवान् शिवका एकप्रकशेत्र वाराणसीके समान शुभ है। जो वहाँ खान करता है, वह निश्चय ही मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

वहाँ और भी अनेक पवित्र तीर्थ एवं मन्दिर हैं। उनका भी ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। समुद्रके उत्तर-तटपर उस प्रदेशमें एक परम मोक्षनीय मुक्तिदायक क्षेत्र है, जो सब पापोंका नाश करनेवाला है। उस परमदुर्लभ क्षेत्रका विस्तार दस खोजन है।

वहाँकी भूमिपर सब ओर बालू बिछी हुई है। वह परम पवित्र एवं सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाला है। अश्वत्थ, अर्जुन, पुनाग, मौलसिरी, सरल, कटहल, नारियल, शाख, ताड़, कैय, चम्पा, कनेर, आम, बेल, गुलाब, कदम्ब, कंचना, लकुच, नागेश्वर, पीपल, छिन्नब, महुआ, सहजन्, खैराम, औरखल, नीम तथा बहेड़ा आदिके वृक्षोंसे उसकी बड़ी शोभा होती है। वहाँ पक्षियोंके मुखसे निकले हुए अत्यन्त मधुर कलरव कानों और मनको बहुत सुख देते हैं। ऊपर बताये हुए वृक्षोंके अतिरिक्त अन्यन्त मनेहर पुष्पों, लताओं और भीति-भीतोंके जलारोंसे वह क्षेत्र सुशोभित है। अनेकानेक बड़ाछोटी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी तथा स्वधर्मपरायण ब्राह्मणादि वर्णोंमें इस क्षेत्रकी शोभा होती है। वह इष्ट-पुष्ट भगुणों तथा अनेक नर-नारियोंसे भरा हुआ है। वह सम्पूर्ण विद्याओंका स्थान तथा समस्त धर्मों एवं गुणोंका आकर है। इस प्रकार वह परम दुर्लभ क्षेत्र सर्वगुणसम्पन्न है। मुनिकरो! वहाँ भगवान् श्रीकृष्ण पुरुषोत्तम नामसे विख्यात हैं। उत्कल प्रान्तकी सीमा समुद्रकी ओर बहाँतक बतानी मधी है, वह सब स्थान श्रीकृष्णके प्रसन्नसे अत्यन्त पवित्र हैं। उस देशमें विद्यात्मा चक्रवान् पुरुषोत्तम निवास करते हैं। वे जगद्व्यापी जगन्नाथ हैं। वहाँमें सब कुछ प्रतिष्ठित है। मैं, भगवान् शिव, इन्द्र तथा अग्नि आदि देवता सदा उस देशमें निवास करते हैं। गन्धर्व, अप्सरा, पितर, देवता, मनुष्य, यक्ष, विद्याधर, सिद्ध, उत्तम कृतवाले मुनि, बालगिरि आदि ऋषि, कश्यप आदि प्रजापति, गरुड, किन्नर, नाग, अन्यन्त स्वर्गवासी, अक्षौसहित चारों वेद, नाना प्रकारके शास्त्र, इतिहास-पुराण, उत्तम दक्षिणावाले यज्ञ, अनेक पवित्र नदियाँ, पुण्यतीर्थ, मन्दिर, समुद्र तथा पर्वत—सब उस देशमें स्थित हैं। इस प्रकार

देवताओं, ऋषियों तथा पितरोंद्वारा सेवित उस पवन प्रदेशमें, जहाँ सब प्रकारके उपभोग सुलभ हैं, निवास करना किसको रुचिकर नहीं प्रतीत होगा। भला, उसके सिवा कौन देश श्रेष्ठ है, उससे बढ़कर दूसरा कौन स्थान है, जहाँ मुक्तिदाता भगवान् पुरुषोत्तम स्वयं ही निराजमान हैं। वे मनुष्य, जो उत्कलदेशमें निवास करते हैं, देवताओंके समान और भव्य हैं। जो सम्स्त तीर्थोंके राज्य समुद्रमें स्नान करके भगवान् पुरुषोत्तमका दर्शन करते हैं, वे मनुष्य स्वर्गमें बसते हैं, यमलोकमें नहीं जाते।

जो उत्कलदेशीय पवित्र पुरुषोत्तमक्षेत्रमें निवास करते हैं, उन श्रेष्ठ बुद्धिवाले मनुष्योंका जीवन सफल है; क्योंकि वे देवश्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णके मुख्यकर्मलक्ष्य दर्शन करते हैं। भगवान्का मुखकमल तीनों लोकोंको आनन्द प्रदान करनेवाला है। उनके नेत्र व्रसभ एवं विशाल हैं। उनकी भीड़ें, केश तथा मुकुट सुन्दर हैं, कानोंमें मनोहर कुण्डल लोभ्य पाते हैं। उनकी मुसकान् मनोहर और दन्तपङ्क्ति सुन्दर है। वे सुन्दर नाक, सुन्दर कपोल, सुन्दर ललाट और उत्तम लक्षणोंवाले हैं।



अवन्तीके महाराज इन्द्रद्युम्नका पुरुषोत्तमक्षेत्रमें जाना तथा वहाँकी इन्द्रनीलमयी प्रतिमाके गुप्त होनेकी कथा

ब्रह्माजी कहते हैं—प्राचीन सत्ययुगकी बात है, इन्द्रद्युम्न नामसे विख्यात एक राजा थे, जो इन्द्रके समान पराक्रमी थे। वे सत्यवादी, पवित्र, दक्ष, सर्वशास्त्रविशारद, रूपवान्, सौभाग्यशाली, शूरवीर, दानी, उपभोगमें समर्थ, प्रिय बचन बोलनेवाले, समस्त यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाले, ब्राह्मणभक्त, सत्यप्रतिज्ञ, अनुवेद और वेद-शास्त्रमें निपुण, विद्वान् तथा पूणिष्ठाके चन्द्रमाकी भाँति सब स्त्री-पुरुषोंके प्रेमपात्र थे। सूर्यकी भाँति उनकी ओर देखना कठिन था। वे तनुसमुदायके लिये भयंकर, विष्णुभक्त, सत्त्वगुणसम्पन्न, क्रोधको जीतनेवाले, जितेन्द्रिय, अभ्यात्मविद्याके प्रेम्मी, मुमुक्षु और धर्मपरायण थे। इस प्रकार वे सर्वगुणसम्पन्न राजा इन्द्रद्युम्न समूची पृथ्वीका पालन करते थे। एक समय उनके मनमें भगवान् श्रीहस्तिके आराधनका विचार उत्पन्न हुआ। वे सोचने लगे, 'मैं किस क्षेत्रमें, किस तीर्थमें, किस नदीके तटपर अथवा किस आश्रममें देवाधिदेव भगवान् जनार्दनको

आराधना करूँ।' इस चिन्तामें पड़कर उन्होंने मन-ही-मन समस्त पृथ्वीपर दृष्टिपात किया, समस्त तीर्थों, क्षेत्रों और नगरोंकी ओर देखा; परंतु सबको छोड़कर वे विश्वविख्यात मोक्षदायक पुरुषोत्तमक्षेत्रमें गये। वहाँ उन्होंने बहुत कैचा मन्दिर बनवाकर उसमें बलराम, श्रीकृष्ण और सुभद्राकी स्थापना की तथा विधिपूर्वक स्नान, दान, तप, होम और देव-दर्शनरूप पञ्चतीर्थोंका अनुष्ठान करके प्रतिदिन भक्तिपूर्वक श्रीपुरुषोत्तमकी आराधना की और उन्हींकी कृपासे मोक्ष प्राप्त किया।

मुनियोंने पूछा—सुरश्रेष्ठ! राजा इन्द्रद्युम्न मुक्तिदायक पुरुषोत्तमक्षेत्रमें किसलिये गये? और वहाँ जाकर उन्होंने वह त्रिभुवनविख्यात प्रासाद किस प्रकार बनवाया? प्रजापते! उन्होंने श्रीकृष्ण, बलराम और सुभद्राकी स्थापना कैसे की? ये सब बातें विस्तरपूर्वक बतानेकी कृपा करें।

ब्रह्माजी बोले—द्विजवरो! तुम लोग जो प्राचीन वृत्तान्त पूछ रहे हो, वह सब पापोंको दूर

करनेवाला, पवित्र, भोग और मोक्ष देनेवाला तथा शुभ है। इस प्रश्नके लिये तुम्हें साधुवाद देता हूँ। तुम जितेन्द्रिय एवं विशुद्धचित्त होकर सुनो। मैं सत्ययुगके राजा इन्द्रद्युम्नका चरित्र बतलाता हूँ। इस पृथ्वीपर मालवामें अवनती (ठञ्जैन) नामकी नगरी विख्यात है। वही राजा इन्द्रद्युम्नकी राजधानी थी। अवनती इस पृथ्वीके मुकुटके समान थी। वहाँ हृष्ट-पुष्ट मनुष्य भरे थे। उसकी चहारदीवारी और दरवाजे दृढ़ बने हुए थे। दरवाजोंपर मजबूत किंवाड़ और सुदृढ़ यन्त्र लगे थे। नगरके चारों ओर अनेकों छाहरियाँ बनी हुई थीं। नगरमें बहुत-से व्यापारी बसते थे। अन्न प्रकारके बर्तनोंकी अच्छी विक्री होती थी। रथ चलने स्वयं सड़कें और बाजार सुन्दर थे। चौराहोंसे चारों ओर जानेके लिये मार्गोंका अच्छी प्रकार विभाग हुआ था। अनेकों घर और गोपुर बने हुए थे। बहुत-सी गलियाँ उस नगरकी शोभा बढ़ाती थीं। राजहंसोंके समान श्वेत और मनोहर महल लाखोंकी संख्यामें बने हुए थे, जो उस पुरीकी श्रियृष्टि कर रहे थे। अनेकों यज्ञमन्त्रालयी उत्सवोंके कारण उस नगरमें आनन्द छाया रहता था। गाने और बजावैकी ध्वनि गूँजती रहती थी। भौति-भौतिकी ध्वजा और पताकाओंसे वह पुरी सुशोभित थी। हाथी, भेड़ें, रथ और पैदलोंकी सेना सब ओर व्यस्त थी। अनेक प्रकारके सैनिक वहाँ भरे थे। अनेकों जनपदोंके लोग वहाँ बसे हुए थे। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा विद्वान् पुरुषोंसे वह नगरी सुशोभित थी। वहाँ मस्तिन, मूर्ख, निर्धन, रोमी, अङ्गहीन तथा जुकरी मनुष्योंका अभाव था। वहाँके स्त्री-पुरुष सदा प्रसन्नचित्त दिखायी देते थे। वे सब रत्नोंके दाता तथा सब प्रकारकी सम्पत्तियोंको भोगनेवाले थे। वहाँकी कुल्लुकी स्त्रियाँ सब गुणोंमें आचार्य थीं। वे पतिव्रत,

सौभाग्यवतीनी तथा सम्पूर्ण गुणोंसे सम्पन्न थीं। उस नगरमें अनेकों वन, उपवन, पवित्र एवं मनोरम उद्यान, भौति-भौतिके पुष्पोंसे सुशोभित दिव्य देवमन्दिर, शाल, ताल, तमाल, बकुल, नागकेसर, पीपल, कनेर, चन्दन, अगर, चम्पा तथा अन्यन्त मनोहर वृक्ष, लता-गुल्म आदि लगे पड़े थे। अनेकों जलाशय उस महापुरीकी शोभा बढ़ा रहे थे। अवनतीपुरीमें त्रिनेत्रधारी त्रिपुरसत्रु भगवान् शिव महाकाल नामसे प्रसिद्ध होकर रहते हैं। वे समस्त कामनाओंके पूर्ण करनेवाले हैं। वहाँ एक शिवकुण्ड है, जो सब पापोंका नाश करनेवाला है। उसमें विधिपूर्वक स्नान करके देवताओं, ऋषियों और पितरोंका तर्पण करे। फिर शिवालपमें जाकर भगवान् शिवकी तीन बार प्रदक्षिणा करे। तत्पश्चात् स्नान, पुष्प, गन्ध, रूप और दीप आदिके द्वारा भक्तिपूर्वक महाकासका विधिपूर्वक पूजन करे। ऐसा करनेवाला मनुष्य एक इन्धर अक्षमेघ-वज्रोंका फल पाता है। वह सब पापोंसे मुक्त हो समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाले विष्णुओंद्वारा भगवान् शिवके परम धाममें जाता है।

अवनतीमें शिवा नामसे प्रसिद्ध पवित्र नदी है। उसमें विधिपूर्वक स्नान करके देवताओं और पितरोंका तर्पण करनेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता और श्रेष्ठ विमानपर आरुढ़ हो स्वर्गलोकमें अन्न प्रकारके भोग भोगता है। वहाँ देवाधिदेव भगवान् जनार्दन भी निवास करते हैं, जो गोविन्दस्वामीके नामसे प्रसिद्ध हैं। वे भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं। उनका दर्शन करके मनुष्य अपनी इच्छासिद्धियोंसहित मुक्त हो जाता है। उनके सिवा वहाँ विक्रमस्वामीके नामसे भी भगवान् विष्णुका निवास है। स्त्री अथवा पुरुष, कोई भी उनका दर्शन करके पूर्वोक्त फल प्राप्त कर

सेता है। वहीं इन्द्र आदि देवता और समस्त कायनाई पूर्ण करनेवाली देवियाँ भी निवास करती हैं। इन सबकी भक्तिपूर्वक पूजा और प्रणाम करके मनुष्य सब जगहोंसे मुक्त हो स्वर्गलोकमें जाता है। इस प्रकार राजाओंमें सेइ इन्द्रपुत्रके द्वारा प्रसारित यह रमणीय पुरी इन्द्रकी अमरत्वकीके सम्पन्न निवास अस्सवके अन्न-दसे परिपूर्ण रहती थी। वहीं दिन-रात इतिहास-पुराण, ज्ञान प्रकारके समस्त तथा काम्यधर्म सुनी जाती थी। इस तरह यह दुर्लभ पुरी सब गुणोंसे सम्पन्न बतानी गयी है, जिसमें पूर्वकालमें परम बुद्धिमत् राजा इन्द्रधुस हुए थे।

उस भारतीयों अपने उन्नत राज्यका उपभोग करते हुए राजा इन्द्रधुस औरस पुरुषोंकी भीति प्रजाका चालन करते थे। वे सत्यवादी, परम बुद्धिमत्, शूरवीर, समस्त गुणोंके अन्तर, प्रतिभान्, धर्मात्मा तथा सम्पूर्ण सत्यचरित्रोंमें सेहू थे। उनमें सत्य, नीति और इन्द्रिय संयमके गुण थे। इन, यज्ञ और तपस्यामें उनकी सम्पन्नता करनेवाला दूसरा कोई राजा नहीं था। वे अपने इन्द्रके बड़ों ब्रह्म ब्राह्मणोंको सोना, मणि, मोती, इन्दी और मोड़े दान किया करते थे। उनके पास अच्छे-अच्छे हाथी, घोड़े, रथ, कम्बल, मृगचर्म, वस्त्र, रत्न और धन-धान्यका कभी अन्त नहीं होता था। इस प्रकार समस्त वैभवसे युक्त और सम्पूर्ण गुणोंसे अलंकृत राजा इन्द्रधुस निष्कण्टक राज्यका उपभोग करते थे। एक बार उनके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि मैं भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले सर्वयोगेश्वर श्रीहरिकी अवराधना किस प्रकार करूँ। उन्होंने समस्त साम्राज्य, राज्य, आनय, इतिहास, पुराण, वेदाङ्ग, कर्मसम्बन्ध, ऋषियोंके बताये हुए नियम तथा सम्पूर्ण विद्यास्वातंत्र्यका विचार किया। यज्ञपूर्वक गुरुजनोंकी सेवा की और वेदोंके अरणायी ब्राह्मणोंका सत्संग किया।

किन्तु ऋषियोंकी वशमें करके मोक्षको इन्द्रसे विचार किया—'मैं देवाधिदेव सनातन पुरुष श्रीकृष्णधारी अनुभूज सङ्ख-वक्रगदाधर वन्याताविभूषित कर्मसन्मन श्रीवासरोभिष और मुकुट-अङ्गद आदि अवधूतोंसे अलंकृत श्रीहरिकी अवराधना किस प्रकार करूँ? यह विचारकर वे बहुत बड़ी सेन्धकी साथ ही पुरोहित और भृत्योंके साथ अपनी गली दुर्लभनीसे बाहर निकले। उनके पीछे रथाङ्गद सैनिक इधिवर हाथमें लिये



अस्थित हुए। उनके रथ विभनके सम्पन्न धान बढ़ते थे। उनपर खज्ज-पताकाएँ पहारा रही थीं। रथियोंके पीछे गजपुङ्खकी विद्यामें निपुण असंख्य पैदल भी चले, जिनके हाथोंमें धनुष, प्रास और खड्ग लोभा पा रहे थे। वे सब प्रकारके अस्त्र-सम्बन्धोंको चलानेमें कुशल, शूरवीर तथा सर्वदा संग्रामको अधिष्ठाता रहनेवाले थे। अन्त-पुरकी सब स्त्रियाँ भी वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत हो महाराजके साथ चलीं। उनके नेत्र पद्मपत्रके सम्पन्न विशाल थे और शस्त्रधारी सैनिक उन्हें घेरकर चलते थे।

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंने भी राजाका अनुसरण किया। अनेक भक्तोंके निवासी व्यापारी भी बन, रत्न, सुवर्ण, स्त्री तथा अन्य उपकरणोंके साथ प्रस्थित हुए। अस्त्र, सस्य, ताप्लूत, रुन, कान्त, तेल, वस्त्र, फल और पत्र आदिको बिक्री करनेवाले लोग अपनी-अपनी दूकान लेकर राजाके साथ चले। घसियारे, धोबी, ग्वाले, नई और दर्जी भी हजारोंकी संख्यामें साथ-साथ चल रहे थे। मङ्गल-पाठ करनेवाले, पुराणोंका अर्थ करनेमें प्रवीण कथावाचक, कव्य-रचयिता कवि, विद्वद्वाङ्मनेवाले, गरुड-विघ्नाके नान्तकार, भीति-भीतिके रोगोंकी परीक्षा करनेवाले, गन्ध-विहिरसक, मनुष्य-विहिरसक, वृद्ध-विहिरसक, गौ-विहिरसक तथा समस्त पुरवासी राजाके पीछे-पीछे चलने लगे। जैसे दूसरे गाँवको जाते हुए पिताके पीछे पुत्र भी उत्सुक होकर जाने लगते हैं, उसी प्रकार समस्त पुरवासियोंमें भी राजा इन्द्रधनुषका अनुसरण किया।

इस प्रकार हाथी, घोड़े, रथ और पैदलसहित महान् जनसमुदायके साथ धीरे-धीरे धना करते हुए महाराज इन्द्रधनुष दक्षिण समुद्रके तटपर पहुँचे। वहाँ उन्होंने रमणीय समुद्रका दर्शन किया, जो लाखों ठण्डा सरझोंसे व्याप्त होनेके कारण नृत्य करता-सा प्रतीत होता था। उसमें जल प्रकारके रत्न और भीति-भीतिके प्राणी भरे थे। उसमें बड़े जोरका शब्द हो रहा था। वह अगाध समुद्र अत्यन्त भयंकर, अपार तथा मेघमालाके समान श्याम दिखायी देता था। उसीमें भगवान् श्रीहरिके शयनका स्थान है। तबसे पानीसे बरा हुआ वह नदियोंका स्वामी सिन्धु परम पवित्र, सब पापोंको दूर करनेवाला तथा सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलतेज देनेवाला है। ऐसे समुद्रको देखकर राजाओंमें क्रोध इन्द्रधनुषको बढ़ा विस्मय हुआ। उन्होंने समुद्रके तटपर पहुँचकर एक मन्दिर प्रदेशमें, जो सर्वजन्मसम्पन्न

एवं पवित्र था, निवस किया।

पुनर्विने पूज्य—ब्रह्मन्! भगवान् विष्णुके उस परम पवित्र पुरुषोत्तमक्षेत्रमें क्या पहलते भगवान्की कोई प्रतिमा नहीं थी, जो राजाने सेना और सन्ध्याखेके साथ वहाँ जाकर श्रीकृष्ण, बलराम तथा सुभद्राजीकी स्थापना की?

ब्रह्माजी बोले—भगविन्दो! इस विषयमें समस्त पार्श्वका विनिरा करनेवाली प्राचीन कथा सुनो। मैं उसे संक्षेपसे कहूँगा। एक समय समस्त लोकोंकी सृष्टि करनेवाले अभिजाती भगवान् वासुदेवको प्रणाम करके भगवती लक्ष्मीने सब लोकोँके हितके लिये इस प्रकार प्रणय किया—‘भगवन्! आज समस्त लोकोंके स्वामी हैं। मेरे हृदयमें एक संदेह खड़ा हुआ है, उसका इस समय निवारण कीजिये। अत्यन्त आकर्षक मत्पल्लोकको, जो परम दुर्लभ कर्मभूमि है, लोभ और मोहरूपी ग्रहने ग्रस लिया है। वहाँ काम और क्रोधका महासागर लहराता है। देशशः उस संसार-सागरसे जिस प्रकार भुक्ति भिल सके, वह उपाय बतलाइये।’



इस संसारमें मेरे सदेहका निवारण करनेके लिये आपको छोड़कर दूसरा कोई वक्ता नहीं है।’

देवीका यह वचन सुनकर देवाधिदेव भगवान् जनार्दनने बड़ी प्रसन्नताके साथ यह स्मरभूत अमृतमय वचन कहा—‘देवि! समस्त तीर्थोंमें श्रेष्ठ पुरुषोत्तमक्षेत्र विख्यात तीर्थ है। यह बहुत ही सुन्दर, सुखपूर्वक सेवन करनेयोग्य, अनायास-साध्य तथा उत्तम फल देनेवाला है। तीनों लोकोंमें उसके समान कोई तीर्थ नहीं है। देवेश्वर! पुरुषोत्तमतीर्थका नाम लेनेपात्रसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। उसे सम्पूर्ण देवता, दैत्य, दानव तथा मरीचि आदि मुनिवर भी भलीभाँति नहीं जानते। उसको मैंने अव्यक्त गुप्त ही रखा है। इस समय उस तीर्थराजकी महिमाका वर्णन करता हूँ, तुम एकचिन्त होकर सुनी

‘दक्षिणसमुद्रके तटपर जहाँ एक बटकवा यहाँ वृक्ष खड़ा है, वह अत्यन्त दुर्लभ क्षेत्र है। उसका बिस्तार इस योजनका है। वह बट कल्पका संहार होनेपर भी नष्ट नहीं होता। इस बटवृक्षके दर्शनसे तथा उसकी छायाके नीचे चले जानेसे ब्रह्महत्या भी छूट जाती है, फिर अन्य पापोंकी तो बात ही क्या है। जिनोंने इसकी परिक्रमा की है, उसे मस्तक झुकाना है, वे सब पापरहित होकर भगवान् विष्णुके धामको पहुँच गये हैं। उस बटवृक्षके उत्तर और भगवान् कैलाशके कुछ दक्षिण जो बहुत बड़ा महल खड़ा है, वह धर्ममय पद है। वहाँ स्वयं भगवान्की बनायी हुई प्रतिमाका दर्शन करके पृथ्वीके सब मनुष्य अनायास ही मेरे धाममें चले जाते हैं। प्रिये, इस प्रकार सब लोगोंको वैकुण्ठधाममें जाते देख एक दिन चर्मराज मेरे पास आये और मुझे प्रणाम करके इस प्रकार बोले।’

यमराजने कहा—भगवान्! आपको नमस्कार है। देव! आप सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी और

समस्त विश्वके फलक हैं। आपको नमस्कार है। उक्त क्षेत्र सागरके निवासी और जेवनागके शरीरकी शय्यपर शयन करनेवाले हैं। आप सबसे श्रेष्ठ, करेण्य और बरदाता हैं। सबके कर्ता होते हुए भी स्वयं अकृत हैं। आपको किसी दूसरेने नहीं बनाया है। आप प्रभु शक्तिसे सम्पन्न, सम्पूर्ण विश्वके ईश्वर, अजन्मा, सर्वव्यापी, सर्वज्ञ तथा किसीसे परास्त न होनेवाले हैं। आपका त्रिविग्रह नील कमलदलके समान रसमय है, नेत्र धिले हुए कमलकी रोभा धारण करते हैं। आप सबके ज्ञाता, निर्गुण, शान्त, जगदाधार, अविनाशी, सर्वलोकनाथ तथा सबको सुख देनेवाले हैं। जानने योग्य पुराणपुराण, ध्येयार्थस्वरूप सनातन परमेश्वर, कार्य-कारणके उत्पादक, लोकनाथ एवं जगद्गुरु हैं। आपको बसःस्थल श्रीवत्सविहसे सुरोभिता है। आप बनमालासे विभूषित हैं। आपका वस्त्र पीले रंगका है। आपकी चार बाँहें हैं। आप शङ्ख, चक्र, गदा, डार, कैपूर, मुकुट और अङ्गद धारण करनेवाले हैं। सब लक्षणोंसे



सम्पन्न, समस्त इन्द्रियोंसे रहित, कूटस्थ अविचल, सूक्ष्म, ज्योतिःस्वरूप, सत्कृत, भाव और अध्वरसे मुक्त, व्यापक तथा प्रकृतिसे परे हैं। सबको सुख देनेवाले सामर्थ्यशाली ईश्वर हैं। आप भगवान् जगन्नाथको ये नमस्कार करता हूँ।

भगवान् विष्णु कहते हैं—महाभाग! यमराजको हाथ जोड़े मस्तक झुकावे खड़ा देख मैंने उनसे स्तोत्र कहनेका कारण पूछा—‘महाबाहु सूर्यनन्दन! तुम सब देवताओंमें श्रेष्ठ हो। तुमने इस समय मेरी स्तुति किस लिये की है? संक्षेपसे बताओ।’

धर्मराज बोले—भगवान्! इस विख्यात पुरुषोत्तम-तीर्थमें जो इन्द्रनील मणिकी बनी हुई केश प्रतिमा है, वह सब कामनाओंको देनेवाली है। उसका अन्व

भाव तथा श्रद्धासे दर्शन करके सभी मनुष्य कामनासहित हो आपके श्रोतधर्ममें चले जाते हैं। अतः अब मैं अपना व्यग्रता नहीं चला सकता। प्रभो! आप कृपा करके उस प्रतिमाको समेट लीजिये।

धर्मराजका यह बचन सुनकर मैंने ठकते रुका—‘यम! मैं सब ओरसे बालूके द्वारा उस प्रतिमाको छिपा दूँगा।’ तदनन्तर वह प्रतिमा छिपा दी गयी। अब उसे मनुष्य नहीं देख पाते थे। उसे छिपा देनेके बाद मैंने यमराजको दक्षिण दिशामें भेज दिया।

जगन्नाथ कहते हैं—पुरुषोत्तमतीर्थमें इन्द्रनीलमयी प्रतिमाके लुप्त हो जानेपर आगे चलकर जी-ओ बायें हुई, उन सबको भगवान् विष्णुने लक्ष्मीदेवीसे विस्तारपूर्वक कह सुनाया।

राजा इन्द्रधनुषके द्वारा अश्वमेध-यज्ञ तथा पुरुषोत्तम-प्रासाद-निर्माणका कार्य

मुनियोंने कहा—‘भगवान्! अब हम राजा इन्द्रधनुषका शेष वृत्तान्त सुनना चाहते हैं। उस श्रेष्ठ तीर्थमें आकर उन्होंने क्या किया?’

जगन्नाथ बोले—मुनिवरों सुनो, मैं उस क्षेत्रके दर्शन और राजाके कृत्यका संक्षेपसे वर्णन करता हूँ। उस त्रिभुवनविख्यात पुरुषोत्तमक्षेत्रमें आकर महाराज इन्द्रधनुषने रमणीय स्थानों और नदियोंका दर्शन किया। वहाँ एक बड़ी पवित्र नदी बहती है, जो विन्ध्याचलकी घाटीसे निकलती है। वह स्वित्रोत्पलाके नामसे विख्यात, सब पापोंको दूर करनेवाली तथा कल्याणमयी है। उसका सोव बहुत बड़ा है। उसकी महत्ता गङ्गाजीके समान है वह दक्षिणसमुद्रमें मिलती है। वह पुण्यसरिता सरित् महाकेशके नामसे भी विख्यात है। उसके दोनों किनारोंपर अनेकों गाँव और नगर बसे हुए

हैं। वे सभी गाँव अच्छी फसल होनेके कारण



मंडे मनोहर दिखायी देते हैं। वहस्के लोग बड़े छट-पुट होते हैं और वहाँ रहनेवाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा सूद्र शान्तभावसे पृथक्-पृथक् अपने भूमिमें उत्तर दिखायी देते हैं। ब्राह्मणोंके मुखसे कहीं अङ्ग, पद और क्रमसे कुछ वैदिक वाणी निकलती रहती है। कोई अग्निहोत्रमें लगे रहते हैं और कोई उपासनामें। वे समस्त शास्त्रोंके अर्थ समझनेमें कुतूहल, यत्नकर्ता एवं प्रचुर दक्षिण देनेवाले होते हैं। वहाँ बभूत्यों, सङ्गर्षों, कर्णों, उपवनों, सभामण्डपों, बहलों और देवमन्दिरोंमें महान् जनसमुदाय एकत्रित होकर इतिहास, पुराण, वेद, वेदाङ्ग, काव्य एवं शास्त्रोंकी कथा सुनते रहते हैं। इस देशकी स्त्रियोंको अपने रूप और जीवनपर गर्व होता है। वे सभी उत्तम लक्षणोंसे सम्पन्न होती हैं। उस क्षेत्रमें संन्यासी, वनप्रस्थ, सिद्ध, स्नातक, ब्रह्मचारी, मन्त्रसिद्ध, तपस्वसिद्ध और घञसिद्ध पुरुष निवास करते हैं। इस प्रकार राजाके उस क्षेत्रको परम शोभायमान देखा, इसलिये मनमें वह निश्चय किया कि वहाँ रहकर परम देव, परम अपार, परमपद, अनन्त, अपरान्त, सर्वेश्वरेश्वर, जगद्गुरु, सनातन भगवान् श्रीविष्णुकी आराधना करूँगा। यही भगवान्का भावस तीर्थ पुरुषोत्तमक्षेत्र है, यह बात मुझे मालूम हो गयी, क्योंकि यहाँ कल्पवृक्षस्वरूप विशाल वटवृक्ष खड़ा है। यही इन्द्रनीलमणिकी बनी हुई मणिमयी प्रतिमा है, जिसे भगवान्ने स्वयं स्थापित किया है। क्योंकि यहाँ दूसरी कोई प्रतिमा नहीं दिखायी देती। मैं ऐसा प्रयत्न करूँगा, जिससे सत्त्वराज्यमें जगदीश्वर भगवान् विष्णु मुझे प्रत्यक्ष दर्शन दें। मैं अनन्य भावसे भगवन्में मन लगाकर वहाँ यज्ञ, दान, तपस्या, होम, घञ्ज, पूजन तथा उपवास आदिके द्वारा विधिपूर्वक उत्तम व्रतका पालन करूँगा। साथ ही यहाँ श्रीविष्णु भगवान्के मन्दिर

जननेका कार्य भी प्रारम्भ करूँगा।

द्विजवर! यह शोचकर महाराज इन्द्रधुमने यहाँ भगवान्का मन्दिर बनवानेके लिये कार्य प्रारम्भ किया। उन्होंने ज्योतिषशास्त्रके पारंगत समस्त आचार्योंको बुलाकर बड़ी प्रसन्नताके साथ वज्रपूर्वक भूमिका शोधन कराया। इस कार्यमें ज्ञानसम्पन्न ब्राह्मणों, वेद-शास्त्रके पारंगत अमात्यों, मन्त्रियों तथा वास्तुविदोंके विद्वानोंका भी सहयोग प्राप्त था। उन सबके साथ भलीभाँति विचार करके शुभ दिन और शुभ मुहूर्तमें, जब कि उत्तम चन्द्रमा और नक्षत्रोंका योग था तथा ग्रहोंकी भी अनुकूलता थी, स्थाने ब्रह्मपूर्वक अर्घ्य दिया। उस समय जय-जयकार तथा मङ्गलमय शब्द हो रहे थे, भाँति-भाँतिके बाछोंकी मनोहर ध्वनि गूँज रही थी। वेद-मन्त्रोंके गम्भीर घोष और मधुर संगीत हो रहे थे। फूल, लता, अक्षत, चन्दन, भरे हुए कलश तथा दीपक आदिके द्वारा पूजा-कार्य सम्पन्न किया गया था। इस प्रकार अर्घ्य-दान दे महाराज इन्द्रधुमने सुरवीर कलिङ्गराज, उत्कलराज और कोसलराजको बुलाकर कहा—
‘राजाओ! तुम सब लोग एक ही साथ मन्दिरके विभिन्न शिल्प ले आनेके लिये जाओ। अपने साथ प्रधान-प्रधान शिल्पियोंकी भी, जो शिल्प खोदनेके काममें निपुण हो, ले लो। विन्ध्याचल बहुत विस्तृत पर्वत है। वह अनेकों कन्दरामोंसे सुशोभित है। उसके सभी शिल्पियोंको भलीभाँति देखकर सुन्दर सुन्दर शिलारें कटवाओ और उन्हें छकड़ों तथा नावोंपर लादकर ले आओ, विलम्ब न करो।’

इस प्रकार राजाओंको शिल्पोंके लिये जानेकी आज्ञा दे महाराजने अमात्यों और पुरोहितोंसे कहा—‘सर्वत्र शीघ्रगामी दूत भेजे जायें और वे पृथ्वीके समस्त राजाओंके पास जाकर मेरी यह

आज्ञा सुना दें 'राजाओं' महाराज इन्द्रचुप्रकी आज्ञाके अनुसार तुम सब लोग हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सेना तथा अश्वार्यों एवं पुरोहितोंके साथ चलो।' ऐसे आज्ञा सुनकर दूत राजाओंके पास गये और सबको महाराजकी आज्ञा सुना दी। दक्षिण, पश्चिम, उत्तर और पूर्व देशोंके राजागण, दूर और समीप निवास करनेवाले, सभी तथा भिन्न भिन्न द्वीपोंके निवासी गेले महाराज इन्द्रचुप्रका आदेश सुनकर रथ, हाथी, घोड़े और पैदल सेनाके साथ बहुत धन लेकर भारी संख्यामें एकत्रित हुए। राजाओंको अश्वार्यों और पुरोहितोंकी आया दैव महाराजकी बड़ी प्रसन्नता हुई। वे बोले—'बृषवरो, मैं आप लोगोंसे कुछ निवेदन



करना चाहता हूँ, सुनो। यह भोग और मोक्ष प्राप्त करनेवाला कल्याणमय क्षेत्र है। मैं यहाँ अश्वमेध-याग करना और भगवान् विष्णुका मन्दिर बनवाना चाहता हूँ, किंतु मैं इसे कैसे पूरा कर सकता हूँ, इस चिन्तासे मेरा चित्त व्याकुल हो रहा है। यदि आप लोग भलीभाँति मेरी सहायता करें तो

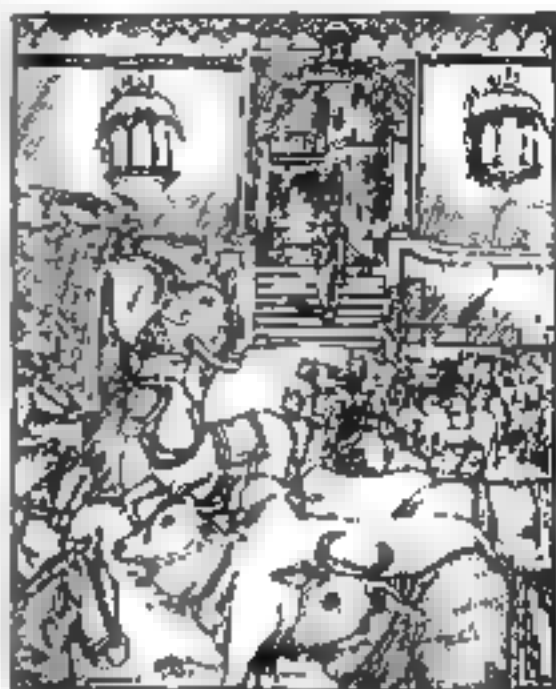
मेरा सब कार्य सम्पन्न हो सकता है।'

महाराज इन्द्रचुप्रके यों कहनेपर सब राजाओंकी बड़ा हर्ष हुआ। उन्होंने महाराजकी आज्ञासे धन, रथ, सुवर्ण, मणि, मोती, कम्बल, मृगचर्म, सुन्दर विलीने, हरि, पुष्कराज, मणिमय, तात्, नीलमय, हथी, घोड़े, रथ, हथिन, भीति-भीतिके हथ, भक्ष, भोज्य तथा अनुलेप आदि पदार्थोंकी बर्षा की। राजा इन्द्रचुप्रने देखा, बड़की सब सामग्री एकत्रित हो गयी है और बड़कर्मके ज्ञाता, वेद-वेदज्ञोंमें चारंगत, संस्कारागमें विपुल तथा सब कर्मोंमें कुशल ऋषि, महर्षि, देवर्षि, तपस्वी, ब्रह्मचारी, ब्रह्म, ब्रह्मप्रस्थ, संन्यासी, जातक तथा अग्निहोत्रपरायण ब्राह्मण भी उपस्थित हैं; तथा उन्होंने अपने पुरोहितसे कहा—'ब्रह्मन्! कुछ विद्वान् ब्राह्मण, जो वेदोंके चारंगत पण्डित हों, आकर अश्वमेध-बड़की सिद्धिके लिये उत्तम स्था देवें।' उनके यों कहनेपर विद्वान् पुरोहितने बड़कर्ममें कुशल ब्राह्मणोंकी आगे करके शिल्पियोंके साथ प्रस्थान किया और बड़ा देशमें, जहाँ धीवरोंका गौरव था, विधिपूर्वक पञ्चाशत्पन्न बनवायी। उसमें काली कुबे और छतरिनी भी बनवायी गयी थीं। सैकड़ों महल बनये गये थे। सारा ब्रह्मभूय सुवर्ण, रथ तथा सैकड़ मणिनोंसे विभूषित हो इन्द्रभवनके समान रमणीय दिखायी देता था। सभीपर सुवर्णसे चित्रकारी की गयी थी। दरवाजे बहुत बड़े बड़े बने हुए थे। बड़के प्रत्येक भवनमें सुन्द सुवर्णका उपकोन किया गया था। धर्मरत्न पुरोहितने भिन्न भिन्न देशोंके निवासी राजाओंके लिये अन्तःपुर भी बनवाये थे। अन्तःपुरोंसे आये हुए ब्राह्मणों और वैश्योंके लिये भी उन्होंने अनेक खलारें बनवायी थीं। महाराज इन्द्रचुप्रका प्रिय करनेके लिये समस्त राजा अनेक प्रकारके रत्न लेकर यहाँ आये थे। सब ही उनकी स्त्रियाँ भी

उत्सवमें सम्मिलित हुई थीं। महाराजने उन समस्त सभागत अतिथियोंके लिये उठरनेके स्थान, सम्यक, भोजि-भोजिके भोज्य पदार्थ, महान चावल, ईखका रस और गौरस आदि प्रदान किये। उस महायज्ञमें जो भी श्रेष्ठ ब्राह्मण पधारे, उन सबको राजावे स्वागतपूर्वक ग्रहण किया। महादेवकी नरेशने दम्भ छोड़कर स्वयं ही सब ब्राह्मणोंका सब तरहसे स्वागत-सत्कार किया। तत्पश्चात् शिल्पियोंने अपने शिल्प-रचनाकार कार्य पूरा करके राजाको यज्ञमण्डप तैयार हो जानेकी सूचना दी। यह सुनकर मन्त्रियोंसहित राजा बहुत प्रसन्न हुए। उनके शरीरमें रोषाञ्ज हो गया। यज्ञमण्डप तैयार हो जानेपर महाराजने ब्राह्मण-भोजनका कार्य आरम्भ कराया। प्रतिदिन जब एक लाख ब्राह्मण भोजन कर सेंते, तब करंकर वेधजर्जनके समान गम्भीर स्वरमें दुन्दुभिकी ध्वनि होने लगती थी। इस प्रकार राजाके यज्ञकी बृद्धि होने लगी। इसमें अन्नका इतना दान किया गया, जिसकी कहीं उपमा नहीं थी। लोगोंने देखा वहाँ दूध, दही और जीकी नदियाँ बह रही हैं। भिन्न-भिन्न जनपदोंके सब समूचे जम्बूद्वीपके लोग वहाँ जुटे थे। वहाँ कितने ही सहस्र पुरुष बहुत-से पात्र लेकर इधर-उधरसे एकत्र हुए थे। राजाके अनुगामी पुरुष ब्राह्मणोंको तरह-तरहके अनुष्ठान और राजाओंके उपभोगमें आनेवाले भोज्य पदार्थ परोसते थे। यज्ञमें आये हुए वेदवेत्ता ब्राह्मणों तथा राजाओंका महाराजने पूर्ण स्वागत-सत्कार किया। इसके बाद उन्होंने राजकुमारोंसे कहा।

राजा बोले—राजपुत्री! अब समस्त सुभ लक्षणोंसे युक्त श्रेष्ठ अश्व ले आओ और उसे समूची पृथ्वीपर घुमाओ। विद्वान् और धर्मवान् ब्राह्मण यहाँ होम करें और वह ब्रह्म उस समयतक चालू रहे जबतक कि भगवान् इसके समीप

प्रकट होकर मुझे प्रत्यक्ष दर्शन न दें।



घों रहकर राजाओंमें श्रेष्ठ इन्द्रसुभने बहुत-सा सुवर्ण, करोड़ोंके आभूषण, लाखों हाथी-घोड़े, अरबों बैल तथा सुवर्णमय सींगोंवाली पुष्कर नीई, जिनके सब काँसेके दुग्धपात्र थे, वेदवेत्ता ब्राह्मणोंको दान किये। इसके सिवा बहुमूल्य वस्त्र, हरिणके बालोंसे बने हुए बिछौने, मृगा, मणि तथा हीरा, पुष्कराज, मणिक और मोती आदि भोजि-भोजिके रत्न भी दिये उस अध्वनेध-यज्ञमें चाकरों और ब्राह्मणोंको भोजि-भोजिके भोज्य-भोज्य पदार्थ प्रदान किये गये। पीठे पूरे तथा स्वादिष्ट अन्न सब जीवोंकी सुतिके लिये करंकर दिये जाते थे। वहाँ दिये गये तथा दिये जानेवाले वस्तु कभी अन्त नहीं होता था। इस प्रकार उस महायज्ञको देखकर देवता, दैत्य, चारण, भन्धव, अप्सरा, सिद्ध, ऋषि और प्रजापति—सब-के-सब बड़े विस्मयमें पड़ गये। उस श्रेष्ठ यज्ञकी सफलता देख पुरोहित, मन्त्री तथा राजा—सबको बड़ी प्रसन्नता हुई। वहाँ कोई भी

मनुष्य मलिन, दीन अथवा भूखा नहीं रहा। उस कष्ट नहीं हुआ। इस प्रकार राजा ने अश्वमेध-यज्ञ यज्ञमें किसी प्रकार उपद्रव, ग्लानि, अग्नि, व्यर्थ, तथा पुरुषोत्तमप्रासाद-निर्माणका कार्य विधिपूर्वक अकाल-मृत्यु, देशन, ग्रहपीडा अथवा विषका पूर्ण किया।



राजा इन्द्रद्युम्नके द्वारा भगवान् श्रीविष्णुकी स्तुति

राजाजी कहते हैं—अश्वमेध-यज्ञके अनुष्ठान और प्रासाद-निर्माणका कार्य पूर्ण हो जानेपर राजा इन्द्रद्युम्नके मनमें दिन-रात प्रतिमाके लिये चिन्ता रहने लगे। वे सोचने लगे—कौन सा उपवास करूँ, जिससे सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले लोकपाल भगवान् पुरुषोत्तमका मुझे दर्शन हो। इसी चिन्तामें निमग्न रहनेके कारण उन्हें न रातमें नींद आती न दिनमें। वे न तो भौतिक भोग भोगते और न ज्ञान एवं भृङ्गन ही करते थे। बाध, सुगन्ध, संगीत, अङ्गराग, इन्द्रनील, महानील, पद्मराग, सोना, चाँदी, हीरा, स्पर्शक आदि धनियाँ, राग, अर्थ, काम, वन्य पदार्थ अथवा दिव्य वस्तुओंसे भी उनके मनको संतोष नहीं होता था। पत्थर, मिट्टी और लकड़ीमेंसे इस पृथ्वीपर सर्वोत्तम वस्तु कौन है? किससे भगवान् विष्णुकी प्रतिमाका निर्माण ठीक हो सकता है? इस प्रकारकी चिन्तामें पड़े पड़े उन्होंने पाञ्चरात्रकी विधिसे भगवान् पुरुषोत्तमका पूजन किया और अन्तमें इस प्रकार स्तवन आरम्भ किया—

‘वासुदेव! आपको नमस्कार है। आप मोक्षके कारण हैं। आपको भेरा नमस्कार है। सम्पूर्ण लोकोके स्वामी परमेश्वर! आप इस जन्म-मृत्युचक्र

संसार-सागरसे मेरा डड्डार कीजिये। पुरुषोत्तम! आपको स्वरूप निर्मल आकाशके समान है। आपको नमस्कार है। सबको अपनी ओर खींचनेवाले संकर्षण! आपको प्रणाम है। धरणीधर! आप मेरी रक्षा कीजिये। हेमगर्भ (शालग्रामशिला) की-सी आभवाले प्रभो! आपको नमस्कार है। मकरध्वज! आपको प्रणाम है। रत्निकान्त! आपको नमस्कार है। सम्बरासुरका संहार करनेवाले प्रद्युम्न! आप मेरी रक्षा कीजिये। भगवन्! आपका श्रीअङ्ग अङ्गनके समान श्याम है। भक्तवत्सल! आपको नमस्कार है। अनिरुद्ध! आपको प्रणाम है। आप मेरी रक्षा करें और वरदायक बनें। सम्पूर्ण देवताओंके निवासस्थान! आपको नमस्कार है। देवप्रिय! आपको प्रणाम है। भारद्वाज! आपको नमस्कार है। आप मुझे शरणागतकी रक्षा कीजिये। बलवानोंमें श्रेष्ठ बलराम! आपको प्रणाम है। हलायुध! आपको नमस्कार है। चतुर्मुख! जगद्धाम! प्रणितामह! मेरी रक्षा कीजिये। नील मेघके समान आभावाले घनश्याम! आपको नमस्कार है। देवपूजित परमेश्वर! आपको प्रणाम है। सर्वव्यापी जगज्जगत्प्रभ! मैं भवसागरमें डूबा हुआ हूँ, मेरा डड्डार कीजिये।’

* वासुदेव नमस्तेऽस्तु नमस्ते मोक्षकारण । अहि मां सर्वलोकेषु जन्मसंसारात्परात् ॥
निर्मलाम्बरसंकाश नमस्ते पुरुषोत्तम । संकर्षण नमस्तेऽस्तु प्राहि मां धरणीधर ॥
नमस्ते हेमगर्भव नमस्ते मकरध्वज । रत्निकान्त नमस्तेऽस्तु प्राहि मां सम्बरान्तक ॥
नमस्तेऽङ्गनसंकाश नमस्ते भक्तवत्सल । अनिरुद्ध नमस्तेऽस्तु प्राहि मां वरदो भव ॥
नमस्ते विबुधवत्स नमस्ते विबुधप्रिय । नारायण नमस्तेऽस्तु प्राहि मां शरणागतम् ॥

प्रलयप्रिये के समान तेजस्वी तथा दहकते हुए
नेत्रोंवाले महापराक्रमी दैत्यशत्रु नृसिंह ! आपको
नमस्कार है। आप मेरी रक्षा कीजिये। पूर्वकालमें
महावाराह रूप धारणकर आपने जिस प्रकार इस
पृथ्वीका रसातलसे उद्धार किया था, उसी प्रकार
मेरा भी दुःखके समुद्रसे उद्धार कीजिये। कृष्ण !
आपके इन वारदायक स्वरूपोंका मैंने स्तवन किया
है। ये बलदेव आदि, जो पृथक् रूपसे स्थित
दिखायी देते हैं, आपके ही अङ्ग हैं। देवेश !
प्रभो ! अभ्युत ! गरुड़ आदि पार्श्व, अक्षयधेसहित
दिवपाल तथा केशव आदि जो आपके अन्य भेद
मनीषियोंद्वारा बतावाये गये हैं, उन सबका मैंने
पूजन किया है। प्रसन्न तथा विराट् नेत्रोंवाले
जगन्नाथ ! देवेश्वर ! पूर्वोक्त सब स्वरूपोंके साथ
मैंने आपको स्तवन और चन्दन किया है। आप
मुझे धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष देनेवाला वर
प्रदान करें। हरे ! संकर्षण आदि जो आपके भेद
बताये गये हैं, वे सब आपको पूजाके लिये ही
प्रकट हुए हैं, अतः वे आपके ही अभिन्न हैं।
दैवेश ! वस्तुतः आपमें कोई भेद नहीं है। आपके
जो अनेक प्रकारके रूप बताये जाते हैं, वे सब

उपचारसे ही कहे गये हैं, आप तो अद्वैत हैं। फिर
कोई भी मनुष्य आपको द्वैतरूप कैसे कह सकता
है। हरे ! आप एकमात्र व्यापक, चित्स्वभाव तथा
निरञ्जन हैं। आपका जो परम स्वरूप है, वह भाव
और अभावसे रहित, निर्लेप, निर्गुण, श्रेष्ठ
कूटस्थ, अचल, ध्रुव, समस्त उपाधियोंसे निर्मुक्त
और सत्तामात्र रूपसे स्थित है। प्रभो ! उसे देवता
भी नहीं जानते, फिर मैं ही कैसे उसे जान सकता
हूँ। इसके सिवा आपका जो अपर स्वरूप है, वह
पोताम्बरधारी और चार भुजाओंवाला है। उसके
हाथोंमें सङ्ख, चक्र और गदा सुशोभित हैं वह
मुष्ट और अक्रुद्ध धारण करता है। उसके वक्षः-
स्थल त्रीलोकविहारे युक्त है तथा वह अपमालासे
विभूषित रहता है। उसीकी देवता तथा आपके
अन्यान्य समानागत भक्त पूजा करते हैं। देवदेव !
आप सब देवताओंमें श्रेष्ठ एवं भक्तोंको अभिन्न
देनेवाले हैं। कमलनयन ! मैं विषयोंके समुद्रमें
डूबा हूँ। आप मेरी रक्षा कीजिये। लोकेश ! मैं
आपके सिवा और किसीको नहीं देखता, जिसकी
रत्नमय आर्ति। कमलाक्षर ! धधुसूदन ! मुत्तपर
प्रसन्न होइये।*

नमस्ते बलिनां श्रेष्ठ नमस्ते स्वर्गस्वपुत्रः कर्मुक्त जगद्गज गति मां प्रशिताम्ह ॥

नमस्ते नीलमेघाभ नमस्ते त्रिदशभिः । आदि विष्णो जगन्नाथ भगवं मां धवसागरे ॥

(४९। १-७)

* प्रलयानलसंकाश नमस्ते दितिजन्तक । नृसिंह महावीर्य गति मां दीपलोचन ॥
यथा रसातलदुर्वी त्वया दंष्ट्रापुंक्त दुष्टः तथे भ्वावरजसर्वं त्रिभिर्भं दुःखसागरात् ॥
तवीत मूर्त्यः कृष्ण वरदाः सक्षुद्र मया । उक्तेषु बलदेवतः पृथग्रूपेण संस्थिताः ॥
अङ्गानि तव देवेश वस्तुतस्तथा प्रभो । दिव्यास्तः सायुधास्तेव केशवतस्तथाभ्युत ॥
ये ज्ञान्ये तव देवेश भेदाः श्रेष्ठा मनीषिभिः । तेषां सर्वे जगन्नाथ प्रसन्नमतलोचन ॥
मयाभिताः स्तुताः सर्वे तथा पूर्वं नमस्कृताः । प्रपञ्चत त्वं गदा धर्मकामार्थमोक्षदम् ॥
भेदास्ते कीर्तिता ये तु हरे संकर्षणदयः तव पूजार्थसम्भूतास्तवस्त्वयि समर्पिताः ॥
न भेदस्तव देवेश विद्यते परमार्थतः । विविचं तव यदुपमुक्तं तदुपचारतः ॥
अद्वैतं त्वां कथं द्वैतं वक्तुं सम्मोहि मन्दः । एकस्त्वं हि हरे पक्षे चित्स्वभावो निरञ्जनः ॥
परमं तत्र यद्वत् भवाभावविनिर्दिष्टम् । निर्लेप निर्गुण श्रेष्ठं कूटस्थमवर्तं ध्रुवम् ॥

मैं बुढ़ापे और सैकड़ों व्यर्थधर्मोंसे चुक हो भौति-भौतिके दुःखोंसे पीड़ित हूँ तथा अपने कर्मपाशमें बँधकर हर्ष-शोकमें मग्न हो कितनेकान्य हो गया हूँ। अत्यन्त चयकर और संस्कार समुद्रमें गिरा हुआ हूँ। यह विषयरूपी जलरश्मिके कहरण दुस्तर है। इसमें राग-द्वेषरूपी भस्म भरे पड़े हैं। इन्द्रियरूपी भँवरोंसे यह बहुत गहरा प्रतीत होता है। इसमें तुष्णा और शोकरूपी लहरे व्यक्त हैं। यहाँ न कोई आश्रय है, न कोई अवसन्ध। यह खरहीन एवं अत्यन्त बड़बड़ है। प्रभो! मैं मानससे मोहित होकर इसके भीतर धिरकालसे फटक रहा हूँ। हजारों भिन्न-भिन्न योनियोंमें बारम्बार जन्म लेता हूँ। जनार्दन! मैंने इस संसारमें मान्य प्रकारके हजारों अन्य धारण किये हैं। अङ्ग्रेहसहित वेद, नाना प्रकारके शास्त्र, इतिहास-पुराण तथा अनेक शिल्पोंका अध्ययन किया है। यहाँ मुझे कभी असंतोष मिला है, कभी संतोष। कभी धनका संग्रह किया है, कभी हानि उठायी है और कभी बहुत खर्च किये हैं। जगन्नाथ! इस प्रकार मैंने हास-वृद्धि, उदय और अस्त अनेक बार देखे हैं; स्त्री, शत्रु, मित्र तथा बन्धु-बान्धवोंके संयोग और वियोग भी देखनेको मिले हैं। मैंने अनेक पित्त

देखे हैं और अनेक माताओंका दर्शन किया है। अनेक प्रकारके जो दुःख और सुख हैं, उनके अनुभवका भी मुझे अवसर मिला है। भाई, बन्धु, पुत्र और कुटुम्बी भी प्राप्त हुए हैं। विद्या और मूककी कोंचसे भरे हुए स्त्रियोंके गर्भशयमें भी मैंने निवास किया है। प्रभो! गर्भवासमें जो महान् दुःख होता है, उसका भी मैंने अनुभव किया है। बाल्यवस्था, युवावस्था और वृद्धावस्थामें जो अनेक प्रकारके दुःख होते हैं, उनसे भी मैं बञ्चित नहीं रहा। मृत्युके समय, यमलोकके मार्गमें तथा यमराजके घरमें जो दुःख प्राप्त होते हैं, उनको तथा नरकोमें होनेवाली पातनाओंको भी मैंने भोगा है। कृषि, कौट, वृक्ष, हाथी, भोढ़े, भुग, पक्षी, भैंसे, ऊँट, नाथ तथा अन्य जनजाती जन्तुओंकी योनियों में मुझे जन्म लेना पड़ा है। समस्त द्विजातियों और मूर्खोंके यहाँ भी मेरा जन्म हुआ है। देव, धनी क्षत्रियों, दरिद्र तपस्वियों, राजाओं, राजाके सेवकों तथा अन्य देहधारियोंके घरोंमें भी मैं अनेक बार उत्पन्न हो चुका हूँ। नाथ! मुझे अनेकों बार ऐसे मनुष्योंका दास होना पड़ा है, जो स्वयं दूसरोंके दास हैं। मैं दरिद्र, धनी और स्थायी भी रह चुका हूँ।*

सर्वोपाधिभिर्निर्मुक्तं सत्त्वमाश्रय्यस्मिन् । तरेकञ्च न भवन्ति कर्षं जानाम्यहं प्रभो ॥
अपरं त्वं च पूर्णं पीतवस्त्रं चतुर्भुजम् । तद्भक्तकण्ठपाणिमुकुटाङ्गदधरिणम् ॥
श्रीचतसोत्सुकसंदुर्लभं कमलरश्मिभूषितम् । सर्वार्थं विमुक्त्यै चान्ये त्वं संश्रयः ॥
देवदेव सुरश्रेष्ठ ब्रह्मन्मन्मथम् । जडि मां चरपत्रञ्च मम विषयसारे ॥
नान्यं पश्यन्नि लोकेन पश्यन् हर्षं त्वमे । त्वामृते कमलकान्त प्रसीद मधुसूदन ॥

(४९। ८-२२)

* जगत्कथितसर्वभूतं जगद्गुरुनिर्पोहितः । हर्षशोकान्वितो मूढ कर्मधारी सुयन्त्रिता ॥
पठितोऽहं महारथे और संसारसगरे । विषयसंकुटुभारे रागद्वेषपाकुले ॥
इन्द्रियकर्तृगम्भीरे तुष्णश्लोकमिसंकुले । निराश्रये निराश्रये निःसारेऽत्यन्तबलले ॥
मम तथा मोहितस्तत्र ध्यामि सुचिरं प्रभो । जगत्पतिसहस्रेषु जायमानः पुनः पुनः ॥
मया जन्मान्वनेकानि सहस्राण्यकुशानि च । विविधजन्तुभूषाणि संसारेऽस्मिज्जनार्दन ॥
वेदाः साङ्गा मयापीताः शास्त्राणि विविधानि च । इतिहासपुराणानि तथा शिल्पचन्दनेकसः ॥

मुझे दूसरोंने मारा और मेरे हाथसे दूसरे मारे गये। मुझे दूसरोंने मरवाया और मैंने भी दूसरोंकी हत्या करवायी। मुझे दूसरोंने और मैंने दूसरोंको अनेकों बार दान दिये हैं। जनार्दन। पिता, माता, सुहृद्, भाई और पत्नीके लिये मैंने तन्का छोड़कर धनियों, श्रोत्रियों, दरिद्रों और तपस्वियोंके सामने दीनतासे भरी बातें की हैं। प्रभो! देवता, पशु, पक्षी, मनुष्य तथा अन्य स्थावर-जङ्गम भूतोंमें ऐसा कोई स्थान नहीं है, जहाँ मेरा जाना न हुआ हो। जगत्पते! कभी नरकमें और कभी स्वर्गमें मेरा निवास रहा है। कभी मनुष्यलोकमें और कभी तिर्यग्योनियोंमें जन्म लेना पड़ा है। सुरकेतु! जैसे रहटमें रस्सीसे बँधी हुई चंटी कभी ऊपर जाती, कभी नीचे गिरती और कभी बीचमें ठहरती रहती है, उसी प्रकार मैं कर्मरूपी रज्जुमें बँधकर दैवयोगसे ऊपर, नीचे तथा मध्यवर्ती लोकमें भटकता रहता हूँ। इस प्रकार यह संसार-चक्र बड़ा ही भयानक एवं तोमाञ्जकारी है। मैं इसमें दीर्घकालसे घूम रहा हूँ, किंतु कभी इसका अन्त नहीं दिखायी देता। समझमें नहीं आता, अब क्या करूँ हरे। हमारी सम्पूर्ण इन्द्रियाँ व्याकुल हो गयी हैं। मैं शोक और तुष्णासे आक्रान्त होकर अब कहाँ जाऊँ। मेरी चेतना लुप्त हो रही है।

देव। इस समय व्याकुल होकर मैं आपकी शरणमें आया हूँ। कृप्य। मैं संसार-समुद्रमें डूबकर दुःख भोगता हूँ। मुझे बचाइये। जगन्नाथ! यदि आप मुझे अपना भक्त मानते हैं तो मुझपर कृपा कीजिये। आपके सिवा दूसरा कोई ऐसा बन्धु नहीं है, जो मेरी चिन्ता करेगा। देव। प्रभो! आप-जैसे स्वामीकी शरणमें आकर अब मुझे जीवन, मरण अथवा योगक्षेमके लिये कहीं भी भय नहीं होता। देव। जो अराधन आपकी विधिपूर्वक पूजा नहीं करते, उनको इस संसार-बन्धनसे मुक्ति एवं सद्गति कैसे हो सकती है। जगदाधार भगवान् केसवमें जिनकी भक्ति नहीं होती, उनके कुल, लीला, विद्या और जीवनसे क्या लाभ है। जो अस्मुरी प्रकृतिका आश्रय से धिक्केतरुण्य हो आपकी विन्दा करते हैं, वे बारम्बार जन्म लेकर घोर नरकमें पड़ते हैं तथा उस नरक-समुद्रसे उनका कभी उद्धार नहीं होता। देव जो दुराचारी नीच पुरुष आपपर दोषारोपण करते हैं, वे कभी नरकसे छुटकारा नहीं पाते। हरे। अपने कर्मोंमें बँधे रहनेके कारण मेरा कहाँ कहीं भी जन्म हो, वहाँ सर्वदा आपमें मेरी दृढ़ भक्ति बनी रहे। देव। आपकी आराधना करके देवता, दैत्य, मनुष्य तथा अन्य संपत्ती पुरुषोंने परम सिद्धि प्राप्त की है फिर

असंतोषाद्भक्तैः संवत्सराय च यथाः । भक्तं प्रसादात् जगन्नाथं शययन्मुमुक्षुः ।
 धार्याग्निरिवधूमृच्छं विभोः । सङ्गम्यमान् । फिलो विविधं दृष्ट्वा मातरं तथा मया ॥
 दुःखानि अनुभूतानि यानि सीत्तवान्येकतः । प्रसादात् कथञ्चाः पुनः प्रापते ज्ञातवस्तथा ॥
 मयोपितं तथा स्वीयां कोटिं विष्णुर्ग्रहयति । गर्भवासे महादुःखानुभूतं तथा प्रभो ॥
 दुःखानि मान्मनेकानि कल्पयौवनगोधरे । वार्षके च इषिकेत तानि प्रसादि मे मया ॥
 मया यद्दिनं दुःखानि यथार्थं यज्जसरे । मया जन्मनुभूतानि नरके यतवस्तथा ॥
 कृमिकीटदुष्पणं च इत्येकमुपसिद्धम् । मत्तिसौख्यं चैव तन्मन्वेद्यं वनीकसम् ॥
 द्विजातीनां च सर्वेषां मृगाणां चैव खेकम् । वानि शत्रिणां च दरिद्राणां तपस्विणम् ॥
 नृपाणां नृपभूतानां तथान्येषां च देहिनाम् । नृदेवु देवामुत्पत्तो देव चाहं पुनः पुनः ॥
 गतोऽस्मि दासतां नाम भूत्यान्ते बहुशो नृपम् । दर्शित्वं चेद्वरत्वं स्वामित्वं च तथा गतः ॥

कौन आपकी पूजा न करेगा। भगवन्! ब्रह्मा आदि देवता भी आपकी स्तुति करनेमें समर्थ नहीं हैं, फिर मानव-बुद्धि लेकर मैं आपकी स्तुति कैसे कर सकता हूँ। क्योंकि आप प्रकृतिसे परे परमेश्वर हैं। प्रभो! मैंने अज्ञानके भावसे आपकी स्तुति की है। यदि आपकी मुझपर दया हो तो मेरे इस अपराधको क्षमा करें। हरे! साधु पुरुष अपराधीपर भी क्षमाभाव ही रखते हैं, अतः देवेश्वर! आप भक्तस्नेहके वशीभूत होकर मुझपर प्रसन्न होइये। देव! मैंने भक्तिभावित चित्तसे आपकी जो स्तुति की है, वह साङ्गोपाङ्ग सफल हो। वासुदेव! आपको नमस्कार है।”

ब्रह्माजी कहते हैं—राजा इन्द्रसुप्तके इस प्रकार

स्तुति करनेपर भगवान् गरुडध्वजने प्रसन्न होकर उनका सब मनोरथ पूर्ण किया। जो मनुष्य भगवान् जगन्नाथका पूजन करके प्रतिदिन इस स्तोत्रसे उनका स्तवन करता है, वह बुद्धिमान् निश्चय ही मोक्ष प्राप्त कर लेता है। जो विद्वान् पुरुष तीनों संध्याओंके समय पवित्र हो इस श्रेष्ठ स्तोत्रका जप करता है, वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पाता है। जो एकाग्रचित्त हो इसका पाठ या श्रवण करता अथवा दूसरोंको सुनाता है, वह पापहित हो भगवान् विष्णुके सनातन धाममें जाता है। वह स्तोत्र परम प्रशंसनीय, पापोंको दूर करनेवाला, भोग एवं मोक्ष देनेवाला, कल्याणमय, गोपनीय, अत्यन्त दुर्लभ तथा पवित्र है। इसे जिस किसी मनुष्यको नहीं देना चाहिये। नास्तिक,

“ हतो मया हताश्वान्ये पावितो वदितस्तथा । हतं मयान्धमेभ्यो मया दत्तमनेकतः ॥
 पितृमनुसुहृद्भातुकलात्राणां कृतेन च । क्षिपितां क्षेत्रिणाम् च हरिशर्णां तपस्विनाम् ॥
 इत्थं दैन्यं च विविधं त्यक्त्वा सज्जं जगद्दन । देवतिर्पद्मनुष्येषु स्थावरेषु चरेषु च ॥
 न विद्वते तथा स्थानं यत्राहं न गतः । ब्रह्मे । कदा मे परके वासः कदा स्वर्गे जगन्पते ॥
 कदा मनुष्यलोकेषु कदा तिर्यग्लोकेषु च । जलकने तथा चक्रे घटी रज्जुनिबन्धना ॥
 पावि चोर्ध्वमधोऽथ कदा मध्ये च विवृतिः । तथा चाहं सुरश्रेष्ठ कर्मरक्षुसमावृतः ॥
 अधस्तोर्ध्वं तथा मध्ये जगत् न चक्षामि योगतः । एवं संस्तरकलेऽस्मिन् धीरे रोमहर्षणे ॥
 भ्रमापि सुधिरं ज्ञातं भावं पश्चापि कर्हिचित् । न ज्ञाने किं करोम्यहं हरे क्वाकुलितेन्द्रियः ॥
 शौकतृष्णापिभूतोऽहं सर्वदिशीकी विभेजः । इदानीं स्वाम्हां देव विद्वतः स्मरयं गतः ॥
 अहि मां दुःखितं कुन्व मग्नं संस्तरस्तनये । कुर्वं कुर्वं जगत्ताम इत्थं मां यदि मन्यसे ॥
 त्वदुते नास्ति मे कन्युयोऽसी धिन्तां कनिष्पतिः । देव त्वां नमस्तस्माच्च न मयं मेऽस्ति कुत्रचित् ॥
 जीविते मरणे चैव योगधेयेऽथवा ब्रह्मे । मे दुःखं विधिवद्देव नार्चयन्ति परोधमाः ॥
 सुगतस्तु कथं तेषां भवेत्संस्तरधनस्य । किं तेषां कुलशीलेन विद्याया जीवितेन च ॥
 देवा न जायते भक्तिर्वैकट्यादिरि केनचि । प्रकृतिं स्वसुतिं प्राप्य मे त्वां निन्दन्ति मोहिताः ॥
 पतन्ति नरके धीरि जगत्पथः पुनः पुनः । न तेषां निष्कृतिस्तस्माद्विद्वतो नरकारणकाः ॥
 ये दूषयन्ति दुर्वृत्तास्त्वां देव पुण्यधमा । यत्र यत्र जवेज्जन्म मम कर्मनिबन्धनात् ॥
 तत्र तत्र हरे भक्तिस्तव्यि चास्तु इच्छा सदा । आराध्य त्वां सुरा दैव्या नराश्वान्येऽपि संयताः ॥
 अवापु परमा सिद्धिं कस्त्वा देव न पूजयेत् । न जन्नुवन्ति ब्रह्माद्याः स्तोत्रं त्वां त्रिदशा हरे ॥
 कथं मानुषबुद्ध्याहं स्तोमि त्वां प्रकृतेः परम् । तथा ज्ञानभावेन संस्तुतोऽसि मया प्रभो ॥
 तत्समस्वापराधं मे यदि तेऽस्ति दया मयि । कृत्वापराधेऽपि हरे क्षमां कुर्वन्ति साधवः ॥
 तस्मात्प्रसीद देवेश भक्तस्नेहं सपरिश्रितः । स्तुतोऽसि यन्मया देव भक्तिभावेन चेतसा ॥

मूर्ख, कृतघ्न, मानी, दुष्टबुद्धि तथा अभक्त मनुष्यको कभी इसका उपदेश न दे। जिसके हृदयमें भक्ति हो, जो गुणवान्, शीलवान्, विष्णुभक्त, ज्ञान तथा श्रद्धापूर्वक अनुष्ठान करनेवाला हो, उसीको इसका उपदेश देना चाहिये।

जो निर्मल हृदयवाले मनुष्य उन परम सूक्ष्म तथा पुराणपुरुष भुरारि श्रीविष्णुभगवान्का ध्यान करते हैं, वे मुक्तिके भागी हो भगवान् विष्णुमें प्रवेश कर जाते हैं—ठीक ठसी तरह, जैसे भन्त्रोंद्वारा यज्ञाग्निमें हवन किया हुआ हविष्य भगवान् विष्णुको प्राप्त होता है। एकमात्र वे देवदेव भगवान् विष्णु ही संसारके दुःखोंका, और सत्पवादी है।”

नश करनेवाले तथा परोंसे भी पर हैं। उनसे भिन्न किसी भी वस्तुको सत्ता नहीं है। वे ही सबकी सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले हैं। वे ही समस्त संसारमें सारभूत हैं। मोक्ष-सुख देनेवाले जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्णमें यहाँ जिनकी भक्ति नहीं होती, उन्हें विद्यासे, अपने गुणोंसे तथा यज्ञ, दान और कठोर तपस्यासे क्या लाभ हुआ। जिस पुरुषकी भगवान् पुरुषोत्तमके प्रति भक्ति है, वही संसारमें भन्त्र, पवित्र और विद्वान् है। वही, यज्ञ, तपस्या और गुणोंके कारण ब्रह्म है तथा वही ज्ञानी, दानी और सत्पवादी है।”



राजाको स्वप्नमें और प्रत्यक्ष भी भगवान्का दर्शन, भगवत्प्रतिमाओंका निर्माण, स्थापन और यात्राकी महिमा

ब्रह्माजी कहते हैं—मुनिवरो! इस प्रकार स्तुति करके राजाने समस्त कामन्त्रोंको पूर्ण करनेवाले सनातन पुरुष जगन्नाथ भगवान् वासुदेवको प्रणाम किया और चिन्तनमग्न हो पृथ्वीपर कुत्त और वस्त्र बिछाकर भगवान्का चिन्तन करते हुए वे उसीपर सो गये। सोते समय उनके मनमें यही संकल्प था कि सबकी पीड़ा दूर करनेवाले देवाधिदेव भगवान् जनार्दन कैसे मुझे प्रत्यक्ष दर्शन देंगे। सो जानेपर देवाधिदेव जगद्गुरु भगवान् वासुदेवने राजाको

स्वप्नमें अपने शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले स्वरूपका दर्शन करवाया। राजा इन्द्रशुभ्रने बड़े प्रेमसे भगवान्का दर्शन किया। वे शङ्ख और चक्र धारण किये हुए थे। उन्होंने शार्ङ्ग नामक धनुष और बाण भी धारण कर रखे थे। उनका स्वरूप प्रलम्बकालीन सूर्यके समान देदीप्यमान हो रहा था। वे प्रग्वलित तेजके विशाल मण्डल प्रतीत होते थे। उनका जोअङ्ग नीले पुष्कराजके समान श्याम था। वे गरुड़के कंधेपर विराजमान थे और

“ये सः सुखस्य विमला सुरारि भ्याचमि त्वत्त्वं पुराणम्। वे मुक्तिभावः प्रविवर्तित विष्णुं सर्वैर्यथाऽप्यं हुतमभ्यरात्रीम्। एकः स देवो भवदुःखहन्ता परं परैर्धनं न हतोऽपि न जन्मदः। सदा स पञ्च स तु नाशकः विष्णुः समस्तविघ्ननाशकः। किं विद्यायां किं स्वर्गस्य तेनं यद्विद्या तन्नेह तपोविनी। वेदं न भक्तिर्भक्त्यैव कृत्वा जनदगुरो मोक्षसुखप्रदं च। सोके स धर्मः स शुचिः स विद्वान्नीललोचनः स गुणैर्विभक्तः। ज्ञात स ज्ञात स तु भक्तवत्सलः सदास्थित भक्तिः पुण्यैश्चर्याम्।”

उनके आठ भुजाएँ खोले पड़े रही थीं। दर्शन देकर भगवान् ने उनसे कहा—'राजन्! तुम्हें साधुवाद है। तुम्हारे इस दिव्य यज्ञसे, पक्षिसे और मृदासे



में बहुत संतुष्ट हैं। महीपाल! तुम क्यों सोचमें पड़े हो। राजन्! यहाँ जो जगद्गुरु सनत्कुमार की प्रतिमा है, उसकी प्राणिक्रिया ठपक चुकी है। आजकी रात जीतदेकर निर्मल प्रभातमें जब सूर्योदय हो, उस समय अनेक प्रकारके वृक्षोंसे सुशोभित समुद्रके अलप्रांतमें, जहाँ तरङ्गोंसे प्रेरित महान् जलकी राशि दिखायी देती है, वहीं एक बहुत बड़ा वृक्ष खड़ा है, जिसका कुछ भाग तो जलमें है और कुछ स्थलमें है। वह समुद्रकी लहरोंसे आहत होनेपर भी कम्यित नहीं होता। तुम हाथमें कुसुमाक्षरी लेकर लहरोंके बीचसे अकेले ही वहाँ चले जाना। तुम्हें वह वृक्ष दिखायी देगा। मेरे बताये अनुसार उसको पहचानकर निःशङ्कभावसे उस वृक्षको काट डालना। उसे काटते समय तुम्हें कोई अद्भुत वस्तु दिखायी देगी। इसीसे सोच-

विचारकर तुम दिव्य प्रतिपात्ता निर्माण करो। मोहमें डालनेवाली चिन्ता छोड़ दो।'

यों कहकर महाभाग श्रीहरि अदृश्य हो गये। वह स्वप्न देखकर राजाको बड़ा विस्मय हुआ। उस रात्रिको देखते हुए वे भगवान् में भक्त लग्न ठठ बैठे और वैष्णव मन्त्र एवं विष्णुसूक्तका जप करने लगे। प्रातःकाल उठे और भगवत्स्मरण करते हुए विधिपूर्वक उन्होंने समुद्रमें स्नान किया। फिर ब्राह्मणोंको नगर और गाँव आदि रातमें दे पूर्वाह्न-कृत्य करके समुद्रके तटपर गये। वहाँ अकेले ही महापूजने समुद्रकी महामेलामें प्रवेश किया और उस मेलास्थली महावृक्षको देखा। वह बहुत ऊँचा था और उससे बड़ी-बड़ी चटाई लटक रही थीं। उसे देखकर राजा इन्द्रधनुष बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने तीखे चरसेसे उस वृक्षको काट गिराया और उसके दो टुकड़े करनेका विचार किया। फिर उन्होंने जब काष्ठका भलीभाँति निरीक्षण किया, तब एक अद्भुत बात दिखायी दी। विश्वकर्मा और भगवान् विष्णु दोनों ब्राह्मणका रूप धारण करके वहाँ आये। उनके कण्ठमें दिव्य हार और शरीरमें दिव्य अङ्गारण खोले पड़े थे। वे दोनों अपने तेजसे प्रज्वलित हो रहे थे। राजाके पास आकर उन्होंने पूछा—'महापूज! आप यहाँ कौन-सा कार्य करेंगे? किसलिये इस वनस्पतिको काट गिराया है?'

उन दोनोंकी बात सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने मोड़ी बाणीमें उत्तर दिया—'मैं यहाँ आदि-अन्तसे रहित देवाधिदेव जगदीश्वर भगवान् विष्णुकी आराधनाके लिये प्रतिमा बनवाना चाहता हूँ। इसके लिये स्वर्ग भगवान् ने ही मुझे स्वप्नमें प्रेरित किया है।' राजाकी यह बात सुनकर भगवान् जगन्नाथने हँसकर कहा—'महापूज! आपका विचार बड़ा ठीक है। इसके लिये आपको

साधुवाद है। यह भयंकर संसार-सागर कैसेके पत्तेको भौंति सारहीन है। इसमें दुःखकी ही अधिकता है। काम क्रोध इसमें पूर्णरूपसे व्याप्त है। इन्द्रियरूपी भँवर और कोषइके कारण यह दुस्तर है। नाना प्रकारके सैकड़ों रोग यहाँ भँवरके समान हैं। यह संसार पापीके बुलबुलेको भौंति क्षणभङ्गुर है। इसमें रहते हुए जो आपके मनमें भगवान् विष्णुकी आराधनाका विचार उत्पन्न हुआ, यह बहुत ही उत्तम है। महाभाग! आइये, इस वृक्षकी शीतल छायामें हम दोनोंके साथ बैठिये। ये मेरे साथी एक श्रेष्ठ शिल्पी हैं। ये सब प्रकारके शिल्प-कर्ममें साक्षात् विधकर्मोंके समान निपुण हैं। आप किनारा छोड़कर चले आइये। ये मेरे बताये अनुसार प्रतिमा तैयार कर देंगे।'

ब्राह्मणकी बात सुनकर राजा इन्द्रधुम्र समुद्रका तट छोड़ उनके पास चले गये और वृक्षकी शीतल छायामें बैठे। तदनन्तर ब्राह्मणरूपधारी विधात्रया भगवान् शिल्पियोंमें प्रधान विधकर्मोंके अग्रज दी—'तुम प्रतिमा बनओ। भगवान् श्रीकृष्णका रूप परम शान्त हो। उनके नेत्र पद्मपत्रके समान विशाल होने चाहिये। ये वक्षःस्थलपर श्रीवत्सच्छिद्र तथा कौस्तुभमणि और हाथोंमें शङ्ख, चक्र एवं गदा धारण किये हुए हों। दूसरी प्रतिमाका विग्रह दुग्धके समान गौरवर्ण हो। उसमें स्वस्तिकका चिह्न होना चाहिये। ये अपने हाथमें हल धारण किये हुए हों, उनका नाम महाबली अनन्त (बलरामजी) होगा। देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष, विद्वधर और नग—कोई भी उनका अन्त नहीं जानते; इसलिये वे भगवान् अनन्त कहलाते हैं। तीसरी प्रतिमा भगवान् वामुदेवकी बहन सुभद्रादेवीकी होगी। उनके शरीरका रंग सुवर्णके समान गौर एवं सुन्दर शोभासे युक्त होना चाहिये। उनमें समस्त सुध लक्षणोंका सम्मिश्र होना आवश्यक है।'

भगवान्का यह कथन सुनकर उत्तम कर्म करनेवाले विश्वकर्माने तत्काल उत्तम शक्षणोंसे युक्त प्रतिमाएँ तैयार कर दीं। पहले उन्होंने बलभद्रजीको मूर्ति बनायी। उनका वर्ण शरत्कालके चन्द्रमाको भौंति ह्वेत' था। नेत्रोंमें कुछ-कुछ लालिमा थी। उनका शरीर विशाल और मस्तक कण्ठाकार होनेसे विभट जान पड़ता था। वे पील वस्त्र धारण किये बलके अभिमानसे उद्धत प्रतीत होते थे; उन्होंने एक कुण्डल धारण कर रखा था। उनके हाथोंमें गदा और मूसल शोभा पाते थे। उनका स्वरूप दिव्य था। द्वितीय विग्रह साक्षात् भगवान् वामुदेवका था। उनके नेत्र कमलके समान प्रफुल्लित थे। शरीरकी कान्ति नील मैयके समान श्याम थी। उनकी श्याम आभा तीसीके पूम्पकी-सी प्रतीत होती थी। बड़े-बड़े नेत्र कमल-पत्रकी उपमा धारण करते थे। शरीरपर पीताम्बर लम्बा प्य रहा था। वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न तथा हाथमें चक्र था। इस प्रकार वे सर्वपापहारी श्रीहरि बड़े दिव्य दिखायी देते थे। तीसरी प्रतिमा सुभद्राकी थी, जिनके देहकी दिव्य कान्ति सोनेकी-सी दमक रही थी। नेत्र कमलपत्रके समान विशाल थे। उनका अङ्ग विचित्र वस्त्रसे आच्छादित था। वे हार और केयूर आदि विचित्र आभूषणोंसे सुसौभित थीं। गलेमें रत्नमय हार लटक रहा था। इस प्रकार विधकर्मोंने उनको बड़ी रमणीय प्रतिमा बनायी। राजा इन्द्रधुम्रने यह सबो ही अद्भुत बात देखी। सब प्रतिमाएँ एक ही क्षणमें बन गयीं। सभी दो दिव्य चरित्रोंसे आच्छादित थीं। सबका भौंति-भौतिके रत्नोंसे भूझार किया गया था और सभी अत्यन्त मनोहर एवं समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न थीं। उन्हें देखकर राजा अत्यन्त आश्चर्यमग्न होकर बोले—'आप दोनों ब्राह्मणके रूपमें साक्षात् देवता तो नहीं पधारे हैं? आप

दोनोंके कर्म अद्भुत हैं। आपके व्यवहार देवताओंके-
से हैं। निश्चय ही आप मनुष्य नहीं जान पड़ते।
आप देवता हैं या मनुष्य? यक्ष हैं अथवा
विद्याधर! आप ब्रह्मा और विष्णु तो नहीं हैं?
दोनों अश्विनोकुम्भर तो नहीं हैं? आप मायामयरूपसे
स्थित हैं। अतः आपके धर्माय स्वरूपको मैं नहीं
जानता। अब आप ही दोनोंकी शरणमें आया हूँ।
मेरे सामने अपने स्वरूपको प्रकाशित कीजिये।’

श्रीभगवान् बोले—‘मैं देवता, यक्ष, दैत्य,
देवराज इन्द्र, ब्रह्म अथवा रुद्र नहीं हूँ। मुझे
पुरुषोत्तम समझो। मैं समस्त लोकोंकी पीछा दूर
करनेवाला अनन्त बल-वीर्यसे सम्पन्न और सम्पूर्ण
भूतोंका आराध्य हूँ। मेरा कभी अन्त नहीं होता।
जिसका सब शास्त्रोंमें उल्लेख किया जाता है,
वेदान्त-ग्रन्थोंमें वर्णन मिलता है, जिसे योगीजन
ज्ञानगम्य एवं वासुदेव कहते हैं, वह परमात्म मैं
ही हूँ। स्वयं मैं ही ब्रह्मा, मैं ही विष्णु, मैं ही
शिव, मैं ही देवराज इन्द्र तथा मैं ही जगत्का
नियन्त्रण करनेवाला यम हूँ। पृथ्वी आदि पाँच
भूत, त्रिविध अग्नि, जलाधिप वरुण, धरती और
पर्वत भी मैं ही हूँ। संसारमें जो कुछ भी जानीसे
कहा जानेवाला स्यावर-जङ्गम भूत है, वह मेरा
ही स्वरूप है। यह चराचर विश्व मेरे अतिरिक्त
कुछ भी नहीं है। नृपश्रेष्ठ! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न
हूँ, सुखतः! मुझसे बर माँगो। तुम्हारे इष्टमें जो
अभीष्ट वस्तु हो, वह तुम्हें दूँगा। जो पुण्यवान्
नहीं है, उनको स्वप्नमें भी मेरा दर्शन नहीं होता।
तुम्हारी तो मुझमें दृढ़ भक्ति है, इसलिये तुमने मेरा
प्रत्यक्ष दर्शन किया है।

भगवान् वासुदेवका यह वचन सुनकर राजाके
शरीरमें रोमाञ्च हो आया। वे इस प्रकार स्तोत्र-
गान करने लगे—‘लक्ष्मीकान्त! आपको नमस्कार
है। श्रीपते! आपके दिव्य चिग्रहपर चोत कस्व

लोभ्र पाठा है। आप लक्ष्मी प्रदान करनेवाले और
लक्ष्मीके स्वामी हैं। त्रीनिवास! आप स्वामीके
धाम हैं, आपको नमस्कार है। आप आदिपुरुष,
ईशान, सबके ईश्वर, सब ओर मुखवाले, निष्कल
एवं सनतान परम देव हैं, आपको मेरा प्रणाम है।
आप सन्ध और गुणोंसे उत्तीत, भाव और अभावसे
रहित, निर्लेप, निर्गुण, सूक्ष्म, सर्वज्ञ तथा सबके
रक्षक हैं। आपका स्वरूप वर्षाकालके मेघके
समान इष्टाम है। आप गी तथा ब्राह्मणोंके हितमें
संलग्न रहते हैं। सबकी रक्षा करते हैं। सर्वत्र
व्यापक और सबको उत्पन्न करनेवाले हैं। आप
तक्षक, चक्र, गदा और भूसल धारण करनेवाले
देवता हैं। आपके वीर्यशक्ति सुषम्न नील कमलदलके
सम्यन स्थान है। आप क्षीरस्मरारके भीतर शेषनागकी
सदृशा साधन करनेवाले हैं। इन्द्रियोंके नियन्त्रा,
सर्वपापहारी श्रीहरि हैं। आपको नमस्कार करता
हूँ। आप देवदेवेश्वर, परदाता, व्यापक, सर्वलोकेश्वर,
मोक्षके साधक तथा अविनाशी भगवान् विष्णु हैं,
आपको पुनः मेरा प्रणाम है।’

इस प्रकार भगवान्‌का स्तवन करके राजा ने
हाथ जोड़कर प्रणाम किया और धरतीपर मस्तक
टोककर कहा—‘नाम! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं
तो मैं यह उत्तम वर माँगता हूँ—देवता, असुर,
गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, महानाग, सिद्ध, विद्याधर,
साध्व, किन्नर, गुह्यक, महाभाग ऋषि, नाना
शस्त्रोंके प्रवीण विद्वान्, संन्यासी, योगी, वेदवत्त्वका
विचार करनेवाले तथा अन्यान्य मोक्षमार्गके ज्ञाता
मनीषी पुरुष जिस निर्गुण, निर्मल, एवं ज्ञान परम
पदका ध्यान करते हैं, उस परम दुर्लभ पदको मैं
आपके प्रसादसे प्राप्त करना चाहता हूँ।’

श्रीभगवान् बोले—‘राजन्, तुम्हारा कल्याण
हो, सब कुछ तुम्हारी इच्छाके अनुसार होगा। मेरे
प्रसादसे तुम्हें अभिलषित वस्तुकी प्राप्ति होगी।

नृपश्रेष्ठ! तुम दस हजार नौ सौ वर्षोंतक अपने अखण्ड साम्राज्यका उपयोग करो। इसके बाद उस दिव्य पदको प्राप्त होओगे, जो देवता और असुरोंके लिये भी दुर्लभ है, जिसे खर सन मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं। जो शान्त, गूढ़, अखण्ड, अघ्न्य, परसे भी पर, सूक्ष्म, निर्लेप, निष्कल, ध्रुव, धिन्ता और शोकसे मुक्त तथा कार्य और कारणसे वर्जित ड्रेय नामक परम पद है, उसका तुम्हें साक्षात्कार करकेगा। उस परमनन्दमय पदको पाकर तुम परम पद—मोक्षको प्राप्त हो जाओगे। राजेन्द्र! इस पृथ्वीपर जयतक बादल पानी बरसाते रहेंगे, जबतक आकाश, चन्द्रमा, सूर्य और तारे दीखते रहेंगे, जबतक सप्त सम्पद तथा मेरु आदि पर्वत मौजूद रहेंगे तथा जबतक सुप्तोक्तमें देखतओंकी सत्ता बनी रहेगी, तबतक इस भूतलपर सर्वत्र तुम्हारी अधिपत्ती छापी रहेगी तुम्हारे यज्ञाहुतसे प्रकट होनेवाला तालाब इन्द्रधनुसरोवरके नामसे प्रसिद्ध तीर्थ होगा, जिसमें एक धार सन करके भी मनुष्य इन्द्रलोक प्राप्त कर सकते हैं। जो इस सरोवरके सुन्दर तटपर पिण्डदान करेगा, वह अपनी इक्कीस पीढ़ियोंका उद्धार करके इन्द्रलोकमें जायगा और वहीं विमानपर बैठकर अम्बराओंसे पुजित हो गन्धर्वोंके गीत सुनता हुआ चौदह इन्द्रोकी आयुपर्यन्त निवास करेगा। सरोवरके दक्षिण भागमें नैऋत्य कोणकी ओर जो बरादका वृक्ष खड़ा है, उसके समीप केवड़ेके वनसे आच्छादित एक मण्डप है, जो नाना प्रकारके वृक्षोंसे व्याप्त है। आषाढ़के शुक्ल पक्षकी पञ्चमीको महानक्षत्रमें हमारे इन प्रतिमाओंको ले आकर लोग सप्त दिनोंतक मण्डपमें स्थापित रखेंगे। उस समय बड़ा उत्सव होगा। सोनेके दण्ड लगे हुए चंवर तथा रत्नभूषित व्यज्रोंद्वारा सब लोग हमें हवा करेंगे। इस प्रकार मङ्गलपूजापूर्वक हमारी स्थापना होगी ब्रह्मचारी, मन्त्रमयी, स्नातक,

वनप्रस्थ, गृहस्थ, सिद्ध तथा अन्य ब्राह्मण नाना प्रकारके पदोंवाले स्तोत्रों तथा श्रद्धा, यजु एवं सामवेदकी ध्वनिसे बलराम और श्रीकृष्णकी स्तुति करेंगे। उस समय जो मनुष्य भक्तिपूर्वक मेरा स्तवन, दर्शन अथवा नमन करेगा, वह श्रीहरिदेव सोभामय भागमें विराजेगा।

इस प्रकार राजाको वरदान दे विश्वकर्मासहित भगवान् विष्णु वहाँसे अन्तर्धान हो गये राजाके हर्षकी सीमा न रही। उनका शरीर रोमाञ्चित हो गया। उन्होंने भगवान्‌के दर्शनसे अपनेको कृतकृत्य माना। तत्पश्चात् श्रीकृष्ण, बलराम और बरदायिनी सुभद्राको धर्मकाष्ठानजटित विमानाकार रथोंमें बिठकर वे बुद्धिमान् नरेश अमरस्य और मन्त्रियोंसहित मङ्गलपाठ तथा भाजे-गाजेके साथ ले अग्र्ये और उनके परम मनोहर पवित्र स्थानमें पधराया। फिर शुभ तिथि, शुभ समय, शुभ नक्षत्र और शुभ मुहूर्तमें ब्राह्मणोंके द्वारा उनकी प्रतिष्ठा करायी। उत्तम प्रासादमें वेदोक्त विधिपूर्वक प्रतिष्ठा करके उन सब विग्रहोंको स्थापित किया, फिर भक्ति-



भौतिके सुगन्धित पुष्पोंसे विधिवत् पूजा करके सुवर्ण, मणि, मोती और नाना प्रकारके सुन्दर वस्त्र अर्पण किये। विविध प्रकारके दिव्य रत्न, आसन, ग्राम, नगर, राज्य तथा पुर आदि भी दान किये। इस तरह अनेक प्रकारका दान करके राजाने समुचित रीतिसे राज्य किया और भौति-भौतिके यज्ञ करके अनेक बार दान दिये। फिर कृतकृत्य होकर राजाने समस्त परिग्रहोंका त्याग कर दिया और अत्यन्त ठट्कट स्थान—भगवान् विष्णुके परम पदको प्राप्त कर लिया।

मुनियोंने पूछा—सुरश्रेष्ठ! किस समय पुरुषोत्तम-तीर्थकी यात्रा करनी उचित है और प्रभू! किस विधिसे पञ्चतीर्थोंका सेवन करना चाहिये। स्नान-दानरूप एक-एक तीर्थका और देव-दर्शनका जो पृथक्-पृथक् फल हो, वह सब बताइये।

ब्रह्माजी बोले—जो कुरुक्षेत्रमें अपनी इन्द्रियों और क्रोधको जीतकर बिना खाये-पीये सत्तर हजार वर्षोंतक एक पैरसे खड़ा होकर वपस्था करता है तथा जो ज्येष्ठ शुक्ल द्वादशीको उपवासपूर्वक भगवान् पुरुषोत्तमका दर्शन करता है, वह पहलेकी अपेक्षा अधिक फलका भागी

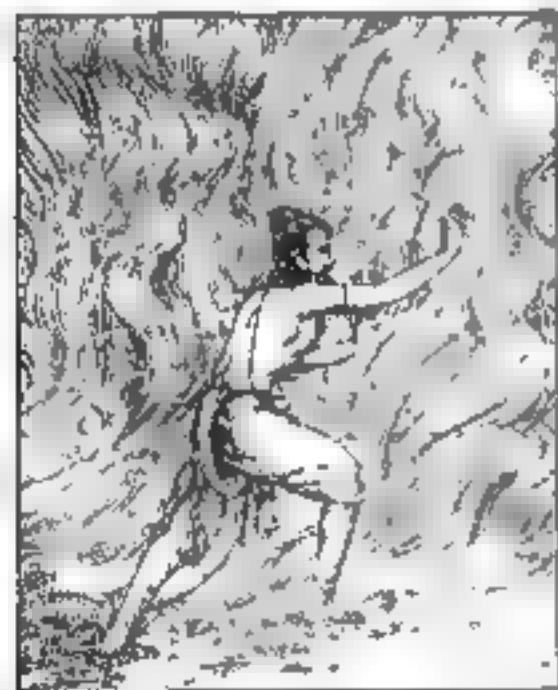
होता है। अतः मुनिवरो! स्वर्गलोककी इच्छा रखनेवाले ब्राह्मण आदिको चाहिये कि वे ज्येष्ठ मासमें प्रयत्न करके इन्द्रिय-संयमपूर्वक भगवान् पुरुषोत्तमका दर्शन करें। श्रेष्ठ मनुष्यको उचित है कि ज्येष्ठ मासमें शुक्ल पक्षकी द्वादशीको विधिपूर्वक पञ्चतीर्थोंका सेवन करके श्रीपुरुषोत्तमका दर्शन करे। जो ज्येष्ठकी द्वादशीको अविनाशी देवता भगवान् पुरुषोत्तमका दर्शन करते हैं, वे विष्णुलोकमें पहुँचकर कभी वहाँसे नीचे नहीं गिरते। अतः ज्येष्ठमें प्रयत्नपूर्वक वहाँकी यात्रा करनी चाहिये और वहाँ पञ्चतीर्थ सेवनपूर्वक पुरुषोत्तमका दर्शन करना चाहिये। जो अत्यन्त दूर होनेपर भी प्रतिदिन भक्तिपूर्वक भगवान् पुरुषोत्तमका कीर्तन करता है, वह शुद्धचित्त हो भगवान् विष्णुके धाममें जाता है। जो श्रद्धापूर्वक एकग्रचित्त हो श्रीकृष्णके दर्शनार्थ यात्रा करता है, वह सब जगत्से मुक्त हो भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है। जो दूरसे भगवान् पुरुषोत्तमके प्रासाद-शिखरपर स्थित नीलचक्रका दर्शन करके उसे भक्तिपूर्वक प्रणाम करता है, वह मनुष्य सहसा पापसे मुक्त हो जाता है।

मार्कण्डेय मुनिको प्रलयकालमें बालमुकुन्दका दर्शन और उनका वरदान प्राप्त होना

ब्रह्माजी कहते हैं—मुनिवरो! कल्पके अन्तमें जब महासंहार आरम्भ हुआ, चन्द्रमा, सूर्य और वायुका नाश हो गया, स्थावर-जङ्गम समस्त प्राणी नष्ट होने लगे, उस समयकी बात बतलाता हूँ। पहले प्रलयकालीन प्रचण्ड सूर्यका उदय होता है, फिर मेघोंकी घोर गर्जना होने लगती है। बिजली गिरती है, जिससे वृक्ष और पर्वत टूट-फूट जाते हैं। सारे जगत्का संहार हो जाता है।

उत्पन्नपात होता रहता है, सरोवरों और नदियोंका सारा जल सूख जाता है। फिर वायुका सहारा पाकर संवर्तक नामक अग्नि समस्त विश्वमें फैल जाती है। ऊपरसे आरह सूर्य तपने लगते हैं वह आग पृथ्वीको भेदकर रसातलमें भी पहुँच जाती है और देवता, दानव तथा यक्षोंकी अत्यन्त भय देने लगती है। पृथ्वीपर जो कुछ रहता है, वह सब जलाकर नागलोकको भी दग्ध करती है और

फिर क्रमशः नीचेके समस्त लोकोंको तस्कृत नष्ट कर देती है। बीस लाख योजनतक फैलो हुई वायु और संवर्तक-अग्नि देवता, असुर, गन्धर्व, यक्ष, नाग और राक्षस—सबको भस्म कर हासती है। ऐसे घोर महाप्रलयके समय परम धर्मरूप मार्कण्डेय मुनि अकेले ध्यानस्थ होकर बैठे थे। प्रलयान्धकी लपट उनके पास भी पहुँची। उनके कण्ठ, तालु और ओठ सूख गये। उस महाभयानक अग्निध्वे देखकर वे भयसे विह्वल हो उठे और कोतं तक न जा सकनेके कारण इधर-उधर भागने लगे। उन्हें कहीं भी शान्ति नहीं मिली। वे सोचने लगे—क्या करूँ, समझमें नहीं आता; किसकी



शरणमें जाऊँ? किस प्रकार सनातन देव पुरुषोत्तम दर्शन करूँ? इस प्रकार एकाम्रभावसे चिन्तन करते करते वे महाप्रलयके कारणभूत सनातन दिव्य पद पुरुषेश नाभक बटराजके पास पहुँच गये। उस दिव्य बटको सामने देख मुनि बड़ी उतावलीके साथ डमके निकट गये और उसकी जड़पर जा बैठे। वहाँ न तो कालाग्रिकी भय वा

न अँगाठोंकी बर्बाद। न वहाँ संवर्तक अग्नि आ सकतो भी और न वज्रपत आदिका ही डर था। तदनन्तर विद्युन्मस्ताओंसे विभूषित गजराजोंके समूहान् कान्तिवासे महामेघ आकाशमें झुमड़ आये। उन्होंने समूचे आकाशको ढक लिया और इतनी वृष्टि की कि पर्वत, बन और आकड़ोंसहित समस्त पृथ्वी जलराशिमें डूब गयी। सम्पूर्ण दिशाएँ पानीसे भर गयीं। मूलतः वृष्टि करके वसुंधराको डुबोनेवाले मेघोंने उस भयंकर संवर्तकाग्रिकी मुद्रा दिया। इस प्रकार बारह बर्षतक भारी वृष्टि होती रही। समुद्रने अपनी पर्यंटा छोड़ दी, पर्वत गल-गलकर बह गये और पृथ्वी पानीमें डूब गयी। तापश्चात् प्रचण्ड अर्थो उठी। उस प्रचण्ड प्रभञ्जनके वेगसे सारे मेघ क्षिप्त-भित्त हो गये। इसके बाद भगवान् विष्णु उस भयंकर वायुको पीकर एककर्षणमें शयन करने लगे। उस समय समस्त स्वर्ग जङ्गमकर अभव हो गया था। देवता, असुर, मनुष्य, यक्ष और राक्षस भी नष्ट हो गये थे। उस समय मार्कण्डेय मुनिने विश्रामके अनन्तर त्रीपुत्रोत्तमका ध्यान करनेके पश्चात् जब आँखें खोलीं, तब पृथ्वीको जलमें निमग्न पाया वह बटवृक्ष, पुष्पी, दिश आदि, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु, देवता, असुर और नाग आदि कोई भी दिखायी नहीं देते थे। मुनिवर मार्कण्डेय भी स्वर्ग जलमें गहरे खाने लगे तब उन्होंने तैना आरम्भ किया। वे अतर्भावसे इधर-उधर तैरते हुए भटकने लगे। उन्हें कोई अपना रक्षक नहीं मिलता था। उनके ध्यान करनेसे भगवान् पुरुषोत्तमकी प्रसन्नता हुई थी। अतः मुनिको भयसे व्याकुल देख वे कृपापूर्वक बोले—‘उत्तम उतका पालन करनेवाले चेष्टा मार्कण्डेय! तू अभी बालक हो। शक गये होगे। आओ, आओ। सीढ़ में पास चले आओ। अब तुम्हें डरनेकी आवश्यकता नहीं है। मेरे सामने आ गये हो।’

भगवान्को यह बात सुनकर मुनि चिन्तामें निमग्न हो गये। सोचने लगे, क्या मैंने स्वप्न देखा है अथवा मुझपर यह मोह छा गया है? यह विचार आते ही उनके मनमें दुःखनाशक बुद्धिको उदय हुआ। उन्होंने यह निश्चय किया कि मैं भक्तिपूर्वक भगवान् पुरुषोत्तमकी शरणमें जाऊँगा। इस निश्चयके अनुसार मार्कण्डेय मुनि मन-ही-मन भगवान्की स्मरण करते हुए उनकी शरणमें गये तब उन्होंने जलके ऊपर पुनः उस विशाल वटवृक्षको देखा। उसके ऊपर सुन्दर दिव्य फलमय बिछा हुआ था, जिसपर बालरूपधारी भगवान् श्रीकृष्ण विराजमान थे। वे कोटि-कोटि सूर्योके समान तेजस्वी शरीरसे देदीप्यमान हो रहे थे। चार भुजा, सुन्दर अङ्ग, पद्मपत्रके समान विस्तृत नेत्र, श्रीवत्सचिह्नसे विभूषित वक्षःस्थल और हाथोंमें शङ्ख, चक्र एवं गदा थे। हृदय वनमालामें आवृत था। वे दिव्य कुण्डल धारण किये हुए थे। गलेमें बहुत-से हार शोभा पाते थे। दिव्य रत्नोंसे उनका भूझा किया गया था। भगवान्को इस



रूपमें देखकर मार्कण्डेय मुनिके नेत्र आश्चर्यसे खिल उठे। उनका शरीर रोमाञ्चित हो गया। वे भगवान्को प्रणाम करके बोले—अहो! इस भयानक एकाग्रधर्में यह बालक कैसे निर्भय रहता है! इस प्रकार विचार करते हुए वे इधर-उधर बह रहे थे उनकी चेतना सुप्त होती जा रही थी। वे अपने उदरके लिये व्याकुल हो गये। उस समय उन्हें बड़ा खेद हुआ। इधर वटवृक्षपर सोया हुआ बालक बालसूर्यके समान प्रकाशित हो रहा था। वह अपनी महिमामें ही स्थित था। मार्कण्डेय मुनि उस सम्पूर्ण तेजोमय बालककी ओर देखनेमें भी असमर्थ हो गये। मुनिको अपनी ओर आते देख बालकने हँसते हुए पेचके समान गम्भीर आँखोंमें कहा—'बेटा! जानता हूँ, तुम बहुत थक गये हो और अपनी रक्षाके लिये मेरे पास आये हो। अब शीघ्र ही मेरे शरीरमें प्रवेश कर जाओ। यहाँ तुम्हें पूर्ण विश्राम मिलेगा।' बालककी बात सुनकर मार्कण्डेय मुनि कुछ बोल न सके। वे भगवान्की भाषसे मोहित हो विवश होकर बालकके खुले हुए मुँहमें प्रवेश कर गये। उसके उदरमें प्रवेश करनेपर उन्होंने वहाँ अनेक जनपदोंसे घिरे हुई समुची पृथ्वी देखी। छोटे पानी, ईखके रस, घी, दही और मोठे जलके समुद्रोंको देखा। जम्बू, प्लाक्ष, शाल्मल, कुश, क्रीड, शक्र और पुष्कर नामक द्वीपोंका अवलोकन किया। भारत आदि सम्पूर्ण वर्ष और पर्वतोंका निरीक्षण किया। सब रत्नोंसे सम्पन्न सुवर्णमय मेरुशिखरों भी देखा, जहाँ अनेक प्रकारके रत्नमय शिखरोंमें विभूषित, अनेक कन्दराओंसे युक्त, नाना मुनिजनोंसे व्याप्त, भौति-भौतिके वृक्षों और वनोंसे परिपूर्ण, अनेक जाँव-जन्तुओंसे सेवित, अनेकअनेक आह्वयोंसे युक्त, बाघ, सिंह, सूअर, चँवरों गाय, भैंसे, हाथी, हरिन, यानर तथा अन्य

जीव-जन्तुओंसे सुशोभित एवं अत्यन्त मनोहर था। इन्द्र आदि अनेक देवता, सिद्ध, चरण, नाग, मुनि, यक्ष, अप्सरा तथा अन्व स्वर्गवासियोंसे उस पर्वतकी पूर्ण शोभा हो रही थी। इस प्रकार शोभामय सुमेरु पर्वतको देखते हुए वे कलकके उदरमें भ्रमण करने लगे। उन्होंने क्रमशः हिमवान्, हेमकूट, निषध, गन्धमादन, श्वेत, दुर्धर, नील, कैलास, मन्दरागिरि, महेन्द्र, मलय, विन्ध्य, पारियात्र, अबुद, सध, शुक्तिमान् तथा मैनाक आदि बहुत-से पर्वतोंको देखा उन्होंने इस लोकमें जितने भी चराचर भूत देखे थे, वे सब उन्हें भगवान्की कृषिमें दृष्टिगोचर हुए। अथवा बहुत कहनेकी क्या आवश्यकता, ब्रह्मसे लेकर कीटपर्वत सम्पूर्ण स्थावर-जङ्गम जगत्—भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक, सत्यलोक, अस्तल, कितल, सुतल, पाताल, रसातल और महातलरूप ब्रह्माण्डको उन्होंने बालरूपधारी भगवान्के उदरमें देखा। उस समय मार्कण्डेयजीकी सर्वत्र बेरोकटोक गति थी। भगवान्की कृपासे उनकी स्मरण-शक्तिका लोप नहीं होता था। वे भगवान्के उदरमें सम्पूर्ण जगत्का अवलोकन करते हुए घूमते फिरे, किंतु उनके शरीरका कहीं अन्त नहीं मिला। तब वे वरदायक देवता श्रीहरिकी शरणमें गये। इसी समय सहसा वे वायुके वेगसे खिंचकर भगवान्के खुले हुए मुखसे बाहर निकल आये।

बाहर निकलनेपर उन्हें पुनः मनुष्योंसे शून्य सारी पृथ्वी एकार्णवके जलमें निमग्न दिखायी दी। साथ ही बटवृक्षकी शाखापर पलंगके ऊपर विराजमान शिशुरूपधारी भगवान्का भी दर्शन हुआ, जो सम्पूर्ण जगत्को अपने उदरमें लेकर विराजमान थे। उनका यक्ष-स्थल श्रीवत्सचिह्नसे सुशोभित, नेत्र पद्मपत्रके समान विस्तार और श्रीअङ्ग पीताम्बरसे आच्छादित था। उनकी चार

भुजाएँ शोभा पा रही थीं भगवान्ने देखा मार्कण्डेय मुनि मुखसे निकलकर जलमें तैरते हुए अचेत-से हो रहे हैं। तब उन्होंने हैसकर कहा—'बेटा! क्या तुमने मेरे उदरमें रहकर विश्राम कर लिया? वहाँ घूमते समय तुमने क्या-क्या आश्चर्य देखा? मुनिश्रेष्ठ! एक तो तुम मेरे भक्त, दूसरे वक्के-मँदि और तीसरे मेरे शरणागत हो। अतः तुम्हारा उपकार करनेके लिये मैं तुमसे बातचीत करता हूँ। इधर मेरी ओर देखो तो सही।' भगवान्का यह वचन सुनकर मार्कण्डेय मुनिका रोम-रोम हर्षसे खिल उठा। वरुण दिव्य रत्नोंसे असंकृत तेजोमय भगवान्की ओर देखकर अत्यन्त कठिन था उसे भी उन्होंने उनको देखा। भगवान्की कृपासे उन्हें क्षणभरमें नूतन, प्रसन्न एवं निर्मल दृष्टि प्राप्त हो गयी। तब मार्कण्डेयजीने भगवान्के देवचन्द्रित चरणोंको, जिनकी अँगुलियाँ औ तलवे लाल-लाल थे, प्रसन्न हुकाकर प्रणाम किया। हर्षसे युक्त और विस्मित होकर बाग्वार उनकी ओर देखा तथा हाथ जोड़कर हर्षगद्गद वाणीमें उन परमात्माका स्तवन आरम्भ किया।

मार्कण्डेयजी बोले—मायासे बाल-रूप धारण करदेवासे देवदेव जगन्नाथ! कमलके समान सुन्दर नेत्रोंवाले सुरश्रेष्ठ पुरुषोत्तम! मैं दुःखित होकर आपकी शरणमें आया हूँ। मेरी रक्षा कीजिये। संवर्तक नामक अग्निने मुझे संतप्त कर रखा है। मैं अँगरोंकी चर्चसे भयभीत हो रहा हूँ, मेरी उद्धार कीजिये। देवेश! पुरुषोत्तम! मैंने आपके उदरमें चराचर जगत्का अवलोकन किया है। इससे मुझे बड़ा विस्मय हुआ है मैं विषादग्रस्त तो हूँ ही। मेरी रक्षा कीजिये। पुरुषोत्तम! इस अवलम्बशून्य संसारमें आपके सिवा दूसरा कोई सहाय देनेवाला नहीं है। मुझपर प्रसन्न होइये। सुरश्रेष्ठ! प्रसन्न होइये विबुधप्रिय! प्रसन्न

होइये। देवताओंके नाथ! प्रसन्न होइये। देवताओंके निवासस्थान! प्रसन्न होइये। जगत्के कारणोंके भी कारण सर्वलोकेश्वर! मुझपर प्रसन्न होइये। सबकी सृष्टि करनेवाले देव! प्रसन्न होइये। घरणीधर! मुझपर प्रसन्न होइये। जलमें निवास करनेवाले परमेश्वर मुझपर प्रसन्न होइये। मधुसूदन मुझपर प्रसन्न होइये। कमलाकरन्त, प्रसन्न होइये। त्रिशूलेश्वर! प्रसन्न होइये। कंस और केशीका नाश करनेवाले श्रीकृष्ण! प्रसन्न होइये। अरिष्टमुरका नाश करनेवाले गोविन्द! प्रसन्न होइये। दैत्यनाशक श्रीकृष्ण! प्रसन्न होइये। दानवोंका अन्त करनेवाले वासुदेव! प्रसन्न होइये। मथुरावासी हरे! प्रसन्न होइये। यदुनन्दन! प्रसन्न होइये। इन्द्रके छोटे भाई वपेन्द्र! प्रसन्न होइये। वरदायक अविनाशी देव! प्रसन्न होइये। भगवन्, आप ही पृथ्वी आप ही जल, आप ही अग्नि और आप ही वायु हैं। जगत्पते! आकाश, मन, अहंकार, बुद्धि, प्रकृति तथा सत्त्वादि गुण भी आप ही हैं। आप सम्पूर्ण विश्वमें व्यापक पुरुष हैं। पुरुषसे भी उत्तम पुरुषोत्तम हैं। प्रभो आप ही सम्पूर्ण इन्द्रियों और उनके शब्द आदि विषय हैं। आप ही दिक्पाल, धर्म, वेद, दक्षिणसहित यज्ञ, इन्द्र, शिव, देवता, हविष्य और अग्नि हैं। वसु, रुद्र, आदित्य और ग्रह भी आपके ही स्वरूप हैं और जितनी भी अतियाँ हैं, जो कुछ भी जीव-नामधारी पदार्थ हैं, वह सब आप ही हैं। अधिक कहनेकी क्या आवश्यकता, ब्रह्मासे लेकर तिनकेतक जो कुछ भी भूत, भविष्य और वर्तमान बराबर जगत् है वह आप ही हैं। देव! आपका जो परमस्वरूप है, वह कूटस्थ, अचल एवं ध्रुव है। उसे ब्रह्मा आदि देवता भी नहीं जान पाते। फिर हम-जैसे छोटी बुद्धिवाले मनुष्य कैसे उसका तत्त्व समझ सकते हैं? भगवन् आप शुद्धस्वभाव, नित्य, प्रकृतिसे परे, अव्यक्त, शाश्वत, अनन्त एवं

सर्वव्यापी महेश्वर हैं। आप ही आकाशस्वरूप, परम शान्त, अजन्मा, व्यापक एवं अविनाशी हैं। इस प्रकार आपके निर्गुण एवं निरञ्जन (मायाहित शुद्ध) रूपकी स्तुति कौन कर सकता है। देव, अविनाशी देवदेवश्वर! मैंने जो विकल एवं अल्पज्ञान होनेके कारण आपके स्तवनकी गृह्यता की है, उसे आप क्षमा करनेकी कृपा करें।

मार्कण्डेयके इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवान् बहुत प्रसन्न हुए और मेघके समान गम्भीर वाणीमें बोले—‘मुनिश्रेष्ठ तुम्हारे मनमें जो अभिलाषा हो, उसे कहो। ब्रह्मर्षे! तुम मुझसे जो कुछ चाहोगे, वह सब तुम्हें दूँगा।’

मार्कण्डेयजी बोले—देव! मैं आपको और आपकी मायाको जानना चाहता हूँ। देवेश, आपकी कृपासे मेरी स्मरणशक्ति लुप्त नहीं हुई है। पुण्डरीकाक्ष! आप अव्यय हैं, मैं आपके तत्त्वको समझना चाहता हूँ। इस सम्पूर्ण जगत्की पीछर आप साक्षात् परमेश्वर यहाँ बालरूपसे क्यों रहते हैं? ये सब बातें बतानेकी कृपा करें।

मुनिके इस प्रकार पूछनेपर परम कान्तिमान् देवाधिदेव श्रीहरिने उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा—“ब्रह्मन्! देवता भी मुझे ठीक-ठीक नहीं जानते; किंतु तुमपर प्रेम होनेके कारण मैं अपना रहस्य बतलाऊँगा कि कैसे इस जगत्की सृष्टि करता हूँ। ब्रह्मर्षे! तुम पितृभक्त हो और मेरी शरणमें आये हो, इसीलिये तुम्हें मेरे स्वरूपका प्रत्यक्ष दर्शन हुआ है। तुम्हारा ब्रह्मचर्य महान् है। पूर्वकालमें मैंने जलको ‘नारा’ नाम दिया था, उस ‘नारा’ में मेरा सदा अचल (निवास) रहता है; इसलिये मैं ‘नारायण’ कहलाता हूँ। द्विजोत्तम! मैं नारायण ही सबकी उत्पत्तिका कारण, सनातन, अविनाशी, सम्पूर्ण भूतोंका स्रष्टा और संहर्ता हूँ। मैं ही विष्णु, मैं ही ब्रह्मा और मैं ही देवराज इन्द्र

हैं। यक्षराज कुबेर और प्रेतराज यम भी वहीं ही हैं। मैं ही शिव, चन्द्रमा, प्रजापति कश्यप, धाता, विभ्रता और यज्ञ हैं। अग्नि मेरा मुख, पृथ्वी चरण, चन्द्रमा और सूर्य नेत्र, झुलोक मस्तक, आकाश और दिशाएँ कान तथा जल स्वेद हैं। दिशाओंसहित आकाश मेरा शरीर और वायु मेरे मनमें स्थित है। मैंने पर्याप्त दक्षिणावाले अनेकों यज्ञोंका अनुष्ठान किया है। पृथ्वीपर वेदके विद्वान् देवयज्ञमें स्थित मुझ विष्णुका ही यजन करते हैं। स्वर्गकी इच्छा रखनेवाले मुख्य-मुख्य क्षत्रिय और वैश्य भी यज्ञके द्वारा मेरी आराधना करते हैं। मैं ही शेषनाग होकर चारों ओरके समुद्रों और मेरुपर्वतसहित समस्त पृथ्वीको अकेला ही धारण करता हूँ। पूर्वकालमें वाराहरूप धारण करके मैंने ही जलमें डूबी हुई इस पृथ्वीका अपनी शक्तिसे उद्धार किया था द्विअग्नेह! मैं ही बड़बान्त होकर समुद्रका जल पीता और मेघरूपसे उसकी वर्षा करता हूँ। ब्राह्मण मेरा मुख, क्षत्रिय मेरी भुजाएँ, वैश्य जाँघ और शूद्र चरण हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद मुझसे ही प्रकट होते और फिर मुझमें ही प्रवेश कर जाते हैं। ज्ञानपरायण संन्यासी संयमशील जिज्ञासु तथा काम, क्रोध एवं द्वेषसे रहित, अनामक, निष्पाप, सत्यस्थ, अहंकारशून्य तथा अध्यत्मतत्त्वके ज्ञाता ब्राह्मण सदा मेरा ही चिन्तन करते हुए उपासना करते हैं। मैं ही संवर्तक न्योति, मैं ही संवर्तक अग्नि, मैं ही संवर्तक सूर्य और मैं ही संवर्तक वायु हूँ। आकाशमें जो ये तारे दिखायी देते हैं, इन सबको मेरे ही रोम कूप समझो। रत्नोंसे भरे हुए समुद्र और चारों दिशाओंको मेरे ही स्वरूप जानो। मनुष्य जिस कर्मका अनुष्ठान करके कल्याणके

भाग्ये होते हैं, वह भी मेरा ही स्वरूप है। सत्य, दान, उग्र तपस्या और अहिंसा—ये मेरे बनाये हुए विधानके अनुसार ही विहित माने जाते हैं और मेरे ही स्वरूपमें इनकी स्थिति है। जिनकी ज्ञानशक्ति मेरे द्वारा अभिभूत हो जाती है, वे इच्छानुसार वेष्टा नहीं कर पाते। वेदोंका सम्यक् स्वाध्याय करके भौति-भौतिके यज्ञोंद्वारा यजन करनेवाले शतचित्त एवं क्रोधपर विजय पानेवाले ब्राह्मण मुझे प्राप्त करते हैं। पापाचारी, लोभी, कृपण, अनार्य तथा मनको बशमें न रखनेवाले मनुष्योंको मैं कभी नहीं मिल सकता। जिनके अन्तःकरण शुद्ध हैं उन्हें प्राप्त होनेवाला महान् फल मुझे ही समझो। कुयोगसेवी बूढ़ मनुष्योंके लिये मैं अत्यन्त दुर्लभ हूँ। संतशिरोमणे! जब-जब धर्मकी हानि और अधर्मका उत्थान होता है तब-तब मैं अपनेको प्रकट करता हूँ।* हिंस्रपरायण दैत्य तथा भयंकर राक्षस, जो बड़े-बड़े देवताओंके लिये भी अवध्य हैं, जब इस संसारमें जन्म लेते हैं, तब मैं पुण्यवात्मा पुरुषोंके घरोंमें अवतार लेता हूँ। मनुष्य-देहमें प्रवेश करके समस्त बाधाओंका शमन करता हूँ। देवता, मनुष्य, गन्धर्व, ऋग तथा राक्षसों और स्वावर भूतोंकी अपनी धामासे सृष्टि करके मैं पुनः उनका संहार करता हूँ। फिर कर्मफलमें उनके योग्य शरीरका विचार करके सृष्टि करता हूँ। मेरा स्वरूपभूत धर्म सत्ययुगमें खेत रहता है, त्रेतामें ख्याम होता है, द्वापर आनेपर सात हो जाता है और कलियुगमें काला पड़ जाता है। प्रलयकाल आनेपर मैं ही अत्यन्त दारुण कालरूप हो अकेला ही समस्त त्रिलोकिका नाश करता हूँ। उत्पत्ति, पालन और संहार—ये तीन मेरे ही धर्म हैं। मैं सम्पूर्ण विश्वका आत्मा और

सब लोकोंको सुख पहुँचानेवाला हूँ। मेरा किसीसे पार्षक्य नहीं है। मैं सर्वव्यापी, अमर और इन्द्रियोंका नियन्ता हूँ। मेरे ङग बहुत बड़े हैं। मैं अकेला ही काल-चक्रका संकलन करता हूँ। जो ब्रह्मका रूप है, वह मेरा ही है। वही सम्पूर्ण भूतोंको शान्ति देनेवाला है। उसका उद्यम सम्पूर्ण भूतोंके हिलके लिये ही होता है। मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार मेरा आत्मा सम्पूर्ण भूतोंमें संनिहित है। फिर भी मुझे कोई नहीं जानता। भक्तगण सब लोकोंमें सर्वथा मेरा पूजन करते हैं। ब्रह्मन्! मुझमें तुमने जो कुछ भी क्लेशका अनुभव किया है, वह सब तुम्हारे सुखके उदय और कल्याणकी प्रतीका कारण है। तुमने लोकमें स्थावर-जङ्गमरूप जो कुछ भी देखा है, वह सब सम्पूर्ण भूतोंको उत्पन्न करनेवाला मेरा आत्मा ही है, जिसे मैंने उस रूपमें प्रकट किया है। मैं ही जङ्गल, चक्र और गदा धारण करनेवाला शरयण हूँ। जबतक एक हजार महायुगोंका समय नहीं बीत जाता, तबतक सम्पूर्ण विश्वको मोहित करके यहाँ जलमें शयन करता हूँ। मुनिश्रेष्ठ! जबतक ब्रह्म सोकर उठ नहीं जाते, तबतक मैं हर समय यहाँ शिशुरूपमें निवास करता हूँ। विप्रेन्द्र! मुझ ब्रह्मरूपी परमात्माने अनेक बार संतुष्ट होकर तुम्हें वरदान दिया है। समस्त चराचर जगत्का नाश होकर सब कुछ एकार्णवमें मग्न हो जानेपर तुम मेरी ही आज्ञासे यहाँ आ निकले हो। फिर जब मेरे शरीरके भीतर प्रविष्ट हुए हो तब मैंने तुम्हें सम्पूर्ण जगत्का अवलोकन कराया है। जहाँ सम्पूर्ण लोकोंको देखकर तुम विस्मयमें पड़ गये और मुझे समझ नहीं पाये तब तुरंत ही मैंने तुम्हें अपने मुखसे बाहर निकाल दिया और जो देवता और असुरोंके लिये दुर्ज्ञेय है, उस अपने आत्मतत्त्वका तुमसे वर्णन किया है। ब्रह्मर्षे! जबतक महात्तपस्वी

जहाँको आपसे नहीं तबतक तुम यहीं निर्भय होकर सुखपूर्वक विचरो। उनके जानेके बाद मैं अकेला ही समस्त भूतों और उनके शरीरोंकी सृष्टि करूँगा।”

इतना कहकर भगवान्ने मुनिवर मार्कण्डेयजीसे पूछा—‘मुने! तुमने जिस अभिप्रायसे मेरी स्तुति की है, उसे कहो। मैं तुम्हें शीघ्र ही उत्तम वरदान दूँगा।’ भगवान्का यह कल्याणमय वचन सुनकर मार्कण्डेय मुनि सहसा उनके चरणोंमें गिर पड़े और इस प्रकार बोले—‘देवेश! मैंने आपके उत्कृष्ट स्वरूपका दर्शन किया, इससे मेरा सारा मोह दूर हो गया। नाथ! अब मैं आपकी कृपासे यह कहता हूँ कि सम्पूर्ण लोकोंके हित, भिन्न-भिन्न भावनाओंकी पूर्ति तथा हीव और वैष्णवोंके विवाद-विचारणके लिये मैं इस परम ब्रह्म पवित्र पुरुषोत्तमस्त्रीधर्ममें भगवान् शिवका बहुत बड़ा मन्दिर बनवाऊँ और उसमें शंकरजीकी प्रतिष्ठा करूँ। इससे संसारके लोग यह जान लेंगे कि विष्णु और शिव एकरूप ही हैं।’ यह सुनकर भगवान् जगन्नाथने पुनः महामुनि मार्कण्डेयजीसे कहा—‘ब्रह्मन्! तुम मेरी आज्ञासे शीघ्र ही एक मन्दिर बनवाओ और उसमें नाना भावोंकी पूर्ति एवं अज्ञानके लिये परम करणभूत भुवनेश्वर-सिद्धकी स्थापना करो। उनके प्रभावसे तुम्हारा भगवान् जिवके लोकमें अक्षय निवास होगा। शिवकी स्थापना करनेपर मेरी ही स्थापना होती है। हम दोनोंमें तनिक भी अन्तर नहीं है। हम एक ही तत्त्व दो रूपमें व्यक्त हुए हैं जो रुद्र हैं वहीं विष्णु हैं; जो विष्णु हैं वही महादेव हैं। वायु और अकालकी भाँति हम दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है। जो अज्ञानसे मोहित है, वह इस बातको नहीं जानता कि जो गरुडध्वज हैं, वही वृषभध्वज हैं; अतः ब्रह्मन्! तुम अपने नामसे शिवालय बनवाओ

और देवाधिदेव भगवान्‌से उत्तरकी ओर एक सुन्दर तीर्थ (सरोवर) का निर्माण करो। वह तीर्थ मनुष्य-लोकमें मार्कण्डेयहृदके नामसे विख्यात होगा। उसमें

ज्ञान करनेसे सब पापोंका नाश हो जायगा।'

मार्कण्डेय भुनिसे यों कहकर सर्वव्यापी जनार्दन वहीं अन्तर्धान हो गये।

मार्कण्डेयेश्वर शिव, वटवृक्ष, श्रीकृष्ण, बलभद्र एवं सुभद्राके दर्शन-पूजनका माहात्म्य

ब्रह्माजी कहते हैं—ब्राह्मणो! अब मैं पञ्चतौर्यकी विधि बतलाऊँगा तथा ज्ञान, दान और देव-दर्शनसे जो फल होता है, उसका वर्णन करूँगा। मार्कण्डेयहृदमें जाकर मनुष्य उत्तराभिमुख हो तीन बार दुबकी लगाये और निम्नाङ्कित मन्त्रका उच्चारण करे—

संसारसागरे मग्नं पापप्रस्तमचेतनम् ।
बाहि मां भगनेवृक्ष त्रिपुरारे नमोऽस्तु ते ॥
नमः त्रिधात्रे हाननाय सर्वपाप्मनाय च ।
ज्ञानं करोमि देवेश मम मन्त्रेण पतकम् ॥

'भगने' नेत्रोंका नाम करनेवाले त्रिपुरस्तु भगवान् शिव। मैं संसार-सागरमें निमग्न, पापग्रस्त एवं अचेतन हूँ। आप मेरे रक्षक कीजिये। आपको नमस्कार है। सम्स्त पापोंको दूर करनेवाले शत्रुनाशक शिवको नमस्कार है। देवेश्वर! मैं यहाँ ज्ञान करता हूँ। मेरा सागं पतक गढ़ हो जाय।'

यों कहकर बुद्धिमान् पुरुष नाभिके बरतार जलमें स्नान करनेके पश्चात् देवताओं और ऋषियोंका विधिपूर्वक तर्पण करे। फिर तिल और जल लेकर पितरोंकी भी वृत्ति करे। उसके बाद आचमन करके शिव-मन्दिरमें जाय। उसके भीतर प्रवेश करके तीन बार देवताकी परिक्रमा करे। तदनन्तर 'मार्कण्डेयेश्वराय नमः' इस मूलमन्त्रसे अथवा अघोर-मन्त्रसे शंकरजीकी पूजा करके उन्हें प्रणाम करे और निम्नाङ्कित मन्त्र पढ़कर

उन्हें प्रसन्न करे—

शिवोऽयं नमोऽस्तु कस्त्ये तसिभूषण ।

शक्ति मां सर्वं विकल्पं महादेव नमोऽस्तु ते ॥

'तीन नेत्रोंवाले शंकर! आपको नमस्कार है। चन्द्रमाको भूषणरूपमें धारण करनेवाले! आपको नमस्कार है। विकट नेत्रोंवाले शिवजी! आप मेरी रक्षा कीजिये। महादेव! आपको नमस्कार है।'

इस प्रकार मार्कण्डेयहृदमें स्नान करके भगवान् शंकरका दर्शन करनेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो शिवके लोकमें जाता है।

वहाँसे कल्पान्तस्थायी वटवृक्षके पास जाकर उसकी तीन परिक्रमा करे। फिर निम्नाङ्कित मन्त्रद्वारा बड़ी शक्तिके साथ उस वटकी पूजा करे—

ॐ नमोऽस्त्यक्तस्वरूप महाप्रलयकारिणे ।

नमोऽस्त्यक्तस्वरूप महाप्रलयकारिणे ।

अमरसर्वं सदा कल्पे इरेरचायत्नं वट ।

नमोऽस्त्यक्तस्वरूप महाप्रलयकारिणे ।

'अव्यक्तस्वरूप महाप्रलयकारी एवं महान् रससे युक्त आप वटवृक्षको नमस्कार है। हे वट! आप प्रत्येक कल्पमें अमर हैं। आपपर भगवान् श्रीहरिका निवास है। नमोऽस्त्यक्तस्वरूप महाप्रलयकारी! मेरे पाप हर कीजिये। कल्पवृक्ष! आपको नमस्कार है।'

इसके बाद शक्तिपूर्वक परिक्रमा करके उस कल्पान्तस्थायी वटकी नमस्कार करे। ऐसा करनेवाला

मनुष्य केंचुलसे छूटे हुए सर्पकी भाँति मरता पापोंसे मुक्त हो जाता है। उस वृक्षकी छायामें पहुँच जानेपर मनुष्य ब्रह्मत्वासे भी मुक्त हो जाता है, फिर अन्य पापोंकी जे बात ही क्या है। भगवान् श्रीकृष्णके अग्रसे प्रकट हुए ब्रह्मदेवकी वरदानरूपी विष्णुकी प्रणाम करके मनन रजसुष और असुष-यज्ञसे भी अधिक फल पाता है और अपने कुरूपता उद्धार करके विष्णुलोकमें जाता है। भगवान् श्रीकृष्णके सामने खड़े हुए गड़ड़की ओ नमस्कार करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो श्रीविष्णुके वैकुण्ठधाममें जाता है। चतुर्विध और गड़ड़की दर्शन करनेके पश्चात् जो पुण्योत्तम श्रीकृष्ण, बलभद्र और सुभद्रदेवीका दर्शन करता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है। जगन्नाथ श्रीकृष्णके मन्दिरमें प्रवेश करके तीन बार प्रदक्षिण करे। फिर नमस्कृतसे बलभद्रदेवीका भक्तिपूर्वक पूजन करके निम्नाङ्कित रूपसे प्रार्थना करे—

नमस्ते हलधुप्राय नमस्ते मुसलपुष्प।
नमस्ते रेवतीरमण नमस्ते भक्तवत्सल॥
नमस्ते चतुर्विध भो नमस्ते धनजीवन।
प्रलम्बारे नमस्तेऽस्तु चाहि मां कुम्भपूजक॥
'हलधारण करनेवाले राम। आपको नमस्कार है। मुसलको आयुष रूपमें रखनेवाले। आपको नमस्कार है। रेवतीरमण! आपको नमस्कार है। भक्तवत्सल! आपको नमस्कार है। बलभद्रोंमें श्रेष्ठ, आपको नमस्कार है। पृथ्वीको मस्तकपथ धारण करनेवाले शेषजी! आपको नमस्कार है। प्रलम्बराश्री! आपको नमस्कार है। श्रीकृष्णके अग्रज! मेरी रक्षा कीजिये।'

इस प्रकार कैलासशिखरके समान अकार और चन्द्रमासे भी कमनीय मुखवाले, चैत्यवत्पद्म, देवपूजित, अमृत, अजेय, एक कुण्डलसे विभूषित, फर्पक द्वारा विकट मस्तकवाले, मङ्गलती हलधरको प्रसन्न करे। बलरामजीकी पूजाके पश्चात् विष्णु

पुरुष एकाग्रचित्त हो द्वादशाक्षर-मन्त्र (३० नमो भगवते वासुदेवाय) से भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा करे। जो द्वादशाक्षर-मन्त्रके द्वारा भक्तिपूर्वक सदा भगवान् पुरुषोत्तमकी पूजा करते हैं, वे मोक्षको प्राप्त होते हैं। देवता, योगी तथा सोमपान करनेवाले याज्ञिक भी जिस गतिको नहीं पाते, उसीको द्वादशाक्षर-मन्त्रकी जप करनेवाले पुरुष प्राप्त कर लेते हैं। अतः इसी मन्त्रसे भक्तिपूर्वक गन्ध-पुष्प आदि सामग्रियोंद्वारा जगद्गुरु श्रीकृष्णकी पूजा करके उन्हें प्रणाम करे। फिर इस प्रकार प्रार्थना करे—'जगन्नाथ श्रीकृष्ण! आपकी जय हो। सब पापोंका नाश करनेवाले प्रभो! आपकी जय हो। जम्पूर और केहीके नरक! आपकी जय हो। कंसनारक! आपकी जय हो, कमललोचन! आपकी जय हो। चक्रगदाधर! आपकी जय हो। नील मेघके समान श्यामवर्ण! आपकी जय हो। सबको सुख देनेवाले परमेश्वर! आपकी जय हो। जगत्पूज्य देव! आपकी जय हो। संसारसंहारक! आपको जय हो। लोकपते पाद! आपकी जय हो। मनोवामिकृत फल देनेवाले देवता! आपकी जय हो। वह भयङ्कर संसारसागर सर्वथा निःसार है। इसमें दुःखमय फेज भरा हुआ है। यह ओषधरूपी ग्राहसे पूर्ण है। इसमें विषयरूपी जलराशि भरी हुई है। भीति-भीतिके रोग ही इसमें उठती हुई सहों हैं। मोहरूपी भँवरोंके कारण यह अत्यन्त दुस्तर जान पड़ता है। सुरश्रेष्ठ! मैं इस घोर संस्काररूपी समुद्रमें डूबा हुआ हूँ। पुरुषोत्तम! मेरी रक्षा कीजिये।' इस प्रकार प्रार्थना करके जो देवेश्वर, वरदायक, भक्तवत्सल, सर्वपापहारी, समस्त अभिलषित फलोंके दाता, मोटे कंचे और दो भुजकूर्छवाले, श्यामवर्ण, कमलपत्रके समान विशाल नेत्रवाले, चौड़ी छाती, विशाल भुजा पीत वस्त्र और सुन्दर मुखवाले, शङ्ख-चक्र-गदाधर

मुकुटाङ्गदभूषित, समस्त शुभ लक्षणोंसे युक्त और वनमालाविभूषित भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन और उन्हें प्रणाम करता है, वह हजारों अक्षमेध-यज्ञोंका और सब तीर्थोंमें स्नान और दान करनेका फल पाता है। सम्पूर्ण वेद, समस्त यज्ञ, सारे ज्ञान, व्रत, नियम, उप तपस्या और ब्राह्मचर्यके सम्यक् पालनसे जो फल मिलता है, वही भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन और बन्दरसे प्राप्त होता है। शास्त्रोक्त आभारका पालन करनेवाले गृहस्थको, वनवासके नियमोंका पालन करनेसे वानप्रस्थको और शास्त्रोक्त रीतिसे संन्यास-धर्मका पालन करनेपर संन्यासीको जो फल प्राप्त होता है, वही श्रीकृष्णका दर्शन और उन्हें प्रणाम करनेवाला मनुष्य प्राप्त कर लेता है। भगवद्दर्शनके माहात्म्यके सम्बन्धमें अधिक कहनेकी क्या आवश्यकता, भगवान् श्रीकृष्णका भक्तिपूर्वक

दर्शन करके मनुष्य दुर्लभ मोक्षतक प्राप्त कर लेता है।

उत्पन्नात् भक्तोंपर खेद रखनेवाली सुभद्रादेवीका भी आभयनजसे पूजन करके उन्हें प्रणाम करे और हाथ जोड़कर निम्नलिखित रूपसे प्रार्थना करे—

‘नमस्ते सर्वदे देवि नमस्ते शुभसौख्यदे।

ब्रह्मि च कृपयशक्तिं कारुण्यमपि नमोऽस्तु ते॥

‘देवि! तুম सर्वत्र व्याप्त रहनेवाली और शुभ सौख्य प्रदान करनेवाली हो तुम्हें बारंबार नमस्कार है। कृपयशक्ति के समस्त विशाल नेत्रोंवाली कारुण्यमपि! मेरी रक्षा करो। तुम्हें नमस्कार है।’

इस प्रकार सम्पूर्ण जगत्को धारण करनेवाली, लोकहितकारिणी, वरदायिनी एवं कल्याणमयी कलभद्वयभगिनी सुभद्रादेवीको प्रसन्न करके मनुष्य इच्छानुसार गतिसे चलेनेवाले विमानके द्वारा श्रीविष्णुके वैकुण्ठधाममें जाता है।



पुरुषोत्तमक्षेत्रमें भगवान् नृसिंह तथा श्वेतमाधवका माहात्म्य

ब्रह्माजी कहते हैं—इस प्रकार कनराम, श्रीकृष्ण और सुभद्राको प्रणाम करके भगवान्के मन्दिरसे बाहर निकले। उत्पन्नात् जगन्नाथजीके मन्दिरको प्रणाम करके एकाग्रचित्त हो उस स्थानपर जाय, वहाँ भगवान् विष्णुकी इन्द्रनीलमयी प्रतिमा बालूके भीतर छिपी है। वहाँ अदृश्यरूपसे स्थित भगवान्को प्रणाम करके मनुष्य श्रीविष्णुके धाममें जाता है। ब्राह्मणों! जो भगवान् सर्वदेवमय हैं, जिन्होंने आधा शरीर सिंहका बनाकर असुरराज हिरण्यकशिपुका वध किया था, वे भगवान् नृसिंह भी पुरुषोत्तमतीर्थमें निवास करते हैं। जो भक्तिपूर्वक उनका दर्शन करके प्रणाम करता है, वह समस्त पातकोंसे निश्चय

ही मुक्त हो जाता है। जो मानव इस पृथ्वीपर भगवान् नृसिंहके भक्त होते हैं, उन्हें पाप कभी सू नहीं सकते और मनोवाञ्छित फलकी प्राप्ति होती है। अतः सब प्रकारसे प्रयत्न करके भगवान् नृसिंहकी शरण ले, क्योंकि वे धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप फल प्रदान करते हैं।

भुविर्धो कश्च—इस पृथ्वीपर भगवान् नृसिंहका माहात्म्य सुखदायक और दुर्लभ है। हम उनका प्रभक्त विस्तारके साथ स्तुतिना चाहते हैं। इसके लिये हमें बड़ी उत्कण्ठा है।

ब्रह्माजी बोले—ब्राह्मणों! मैं अजित, अप्रमेय तथा भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले भगवान्

नृसिंहका प्रभाव बतलाता है, सुनो। उनके समस्त गुणोंका वर्णन कौन कर सकता है, अतः मैं भी संक्षेपसे ही बतलाऊँगा। इस लोकमें जो कोई ऐसी अथवा मानुषी सिद्धिची सुनी जाती है, वे सब भगवान्‌के प्रसादसे ही सिद्ध होते हैं। स्वर्ग, मर्त्यलोक, पाताल, दिता, जल, गीव तथा पर्वत—इन सब स्थानोंमें भगवान्‌के प्रसादसे मनुष्यकी अबाध गति होती है। इस ब्रह्मरज्जुमें कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है, जो भक्तवत्सल भगवान् नृसिंहके लिये असाध्य हो। मुनिवरों! सनत्कुमार कल्पराज (पूजाकी सर्वश्रेष्ठ विधि) एवं नृसिंहका तत्त्व, जिसे देवता या असुर भी नहीं जानते, तुम्हें बतलाता है, सुनो। उक्त साधकको चाहिये कि सग, जीकी लपसी, भूल, फल, खली अथवा सरसोंसे भोजनकी आवश्यकता पूर्ण करे अथवा दूध पीकर रहे। इन्द्रियोंकी कान्छमें रक्तकर धर्मपरायण रहे। वन, एकान्त प्रदेश, पर्वत, नदी-संगम, जल, सिद्धक्षेत्र अथवा नृसिंहके चन्दिरमें जाकर या स्वयं स्थापना करके भगवान्‌की विधिपूर्वक पूजा करे। शुक्ल पक्षकी द्वादशीको उपवास करके जितेन्द्रियभावसे बीस लाख भगवन्मन्त्रों का जप करे। ऐसा करनेवाला साधक उपवासक और महापातकोंसे मुक्त होनेपर भी मुक्त हो जाता है। पहले भगवान् नृसिंहकी प्रदक्षिणा करके चन्दन और धूप आदिके द्वारा उनकी पूजा करे। मस्तक झुकाकर प्रभुकी प्रणाम करे तथा उनके माथेपर कपूर और चन्दन मिला हुए चमेलीके फूल चढ़ावे। इससे सिद्धि प्राप्त होती है। किसी भी कार्यमें भगवान्‌की गति कुण्ठित नहीं होती। ब्रह्म, रुद्र आदि देवता भी उनके तेजको नहीं सह सकते, फिर संसारमें सिद्ध, गन्धर्व, यक्ष, दानव, विद्याधर, यक्ष, किन्नर और महानरोंकी जो कत ही क्या है। अन्य साधक जिन असुरोंका नश

करनेके लिये यन्त्र-जप करते हैं, वे सब नृसिंहभक्तोंके सूर्यके समान तेजस्वी देखकर तत्क्षण नष्ट हो जाते हैं। श्वेतश्यामी भगवान् नरसिंह सदा अपने भक्तोंकी रक्षा करते हैं। अतः मुनीश्वरो! समस्त अभिलषित फलोंके दाता महापराक्रमी भगवान् नरसिंहका सदा भक्तिपूर्वक पूजा करनी चाहिये। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, स्त्री, शूद्र और अन्त्यज भी सुरश्रेष्ठ नृसिंहका भक्तिपूर्वक पूजन करके कौटिल्य-भक्ति पाप और दुःखोंसे मुक्त हो जाते हैं। मनोषाम्भित फल पते हैं। देव, गन्धर्व एवं इन्द्रका पद भी प्राप्त कर लेते हैं। एक बार भी भगवान् नरसिंहका भक्तिपूर्वक दर्शन करनेसे करोड़ों जन्मोंके पापों और दुःखोंसे छूटकर पितृ जाता है। संग्राम, संकट, दुर्गमस्थान, चोर-व्याध आदिकी भीड़ा, प्रणयसंशय, विष, अग्नि, जल, राजपक्ष, समुद्रपक्ष तथा छह-पेग आदिजनित कष्ट प्राप्त होनेपर जो पुत्र भगवान् नरसिंहका स्मरण करता है वह सब प्रभुत्वकी अवस्थितमें छूटकरा च जाता है। जैसे सूर्योदय होनेपर महान् अन्धकार दूर हो जाता है, उसी प्रकार भगवान् नरसिंहका दर्शन होनेपर सभी दुःख नष्ट हो जाते हैं।

अनन्त समयका वासुदेवका भक्तिपूर्वक दर्शन और उन्हें चन्दन करनेपर मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो परम पदको प्राप्त होता है। मैंने, इन्द्रने तथा विभीषणने भी उनकी आराधना की है फिर भी मनुष्य उनकी आराधना न करेगा। जो मनुष्य श्वेतश्याममें स्नान करके श्वेतपाथक तथा मस्तकभक्तिकी दर्शन करता है, वह श्वेतद्वीपमें जाता है।

मुनिवरोंने कहा—भगवान्! आप श्वेतश्यामके भक्तत्वमन्त्र पूर्वरूपसे वर्णन कीजिये। साथ ही भगवान्‌की प्रतिमाका वृक्षान्त भी विस्तारके साथ बतलाइये। भूतलमें विद्यमान भगवान्‌के पवित्र क्षेत्रमें श्वेतश्यामकी स्थापना किसने की थी?

कहाजो बोले—सत्ययुगमें श्वेत नामके एक

बलवान् राजा थे। वे बड़े बुद्धिमान्, धर्मात्मा, शूरवीर, सत्यप्रतिज्ञ और दृढ़तापूर्वक व्रतका फलान करनेवाले थे। उनके राज्यमें दस हजार वर्षोंतक मनुष्योंकी आयु होती थी और किसी वास्तवकी मृत्यु नहीं होती थी। इस प्रकार राजा श्वेतके राज्यमें कुछ काल व्यतीत होनेके पश्चात् एक घटना घटित हुई। कपालगौतम नामक एक परम धर्मात्मा ऋषि थे। उनके एक पुत्र हुआ, जो कालवदश दाँत निकलनेके पहले ही चल बसा। उसे गोदमें लेकर बुद्धिमान् ऋषि राजाके निकट आये। राजाने ऋषिकुमारको अकेले अवस्थायें सोया देखा उसको जीवित करनेके लिये प्रतिज्ञा की।

राजा बोले—यदि स्वर्लोकमें गये हुए इस बालकको मैं सात दिनोंके भीतर न ला सकूँ तो जलती हुई शितापर चढ़ जाऊँगा।

यों कहकर राजाने लाख नीलकमलोंसे महादेवजीको पूजा करके उनके मन्त्रका जप आरम्भ किया। जगदीश्वर भगवान् किन्तु राजाकी अत्यन्त भक्तिका विचार करके पार्वतीजीके स्वरूप उनके सामने प्रकट हुए और बोले—'राजन्! मैं तुझपर बहुत प्रसन्न हूँ।' महादेवजीका यह वचन सुनकर राजा श्वेतने सहसा उनकी ओर देखा। वे सब अङ्गोंमें भस्म रमाये हुए थे। उनके तर्जनीकी कान्ति शरत्कालीन चन्द्रमा और कुन्दके समान थी। उनके नेत्र चिह्न थे। व्याघ्रचर्मका वस्त्र और ललाटमें चन्द्रमाकी रेखा थी। उनपर दृष्टि पड़ते ही राजाने सहसा पृथ्वीपर गिरकर उन्हें प्रणम्य किन्तु और कहा—'प्रभो! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं, यदि आपकी मुझपर दया है तो कालके वस्त्रमें पड़ा हुआ यह ब्राह्मण-बालक पुनः जीवित हो जाय। यहाँ मेरी प्रतिज्ञा है। महेश्वर! आप इसे यक्षकैय आत्मसे युक्त और कल्याणका भागी बनायें।' श्वेतकी यह बात सुनकर महादेवजीकी बड़ी



प्रसन्नता हुई। उन्होंने सब भूतोंको भय देनेवाले कालको आह्वा दी और कालने भूस्थुके मुखमें पड़े हुए उस बालकको जीवित कर दिया। इसके बाद वे पार्वतीदेवीके स्वरूप अन्तर्धान हो गये।

तदनन्तर राजाने हजारों वर्षोंतक एकाग्रचित्त होकर राज्य किया। फिर लौकिक धर्मों और वैदिक नियमोंका विचार करके भगवान् केशवकी आराधनाका निश्चित व्रत ग्रहण किया। इसके बाद वे दक्षिणसमुद्रके पुष्पकोटमण्डपमें गये और जगन्नाथजीके पास ही सुन्दर रमणीय प्रदेशमें एक सुन्दर मन्दिर बनवाया और श्वेतशिलाके द्वारा भगवान् श्वेतमाधवकी प्रतिमा बनवाकर विधिपूर्वक उसकी प्रतिष्ठा की। उस समय ब्राह्मणों, दीनों, अनाथों और तपस्वियोंको दान दे राजाने भगवान् माधवके समीप पृथ्वीपर गिरकर साष्टाङ्ग प्रणाम किया। फिर एक मासतक यौन एवं निराहार रहकर द्वादशाक्षर-मन्त्रका जप किया। जप सम्पन्न होनेपर भगवान् देवेश्वरकी इस प्रकार स्तुति आरम्भ की।

श्वेत बोले—ॐ वासुदेवको नमस्कार है।

सबको अपनी ओर खींचनेवाले संकर्षणको नमस्कार है। अत्यन्त ह्युतिमान् प्रधान, कभी रुद्ध न होनेवाले अनिरुद्ध तथा नारायणको नमस्कार है। जिनके अनेक रूप हैं, जो विश्वरूप, विष्णुरूप, निर्गुण, अतर्क्य, शुद्ध एवं उज्ज्वल कर्मवाले हैं, उनको नमस्कार है। जिनकी नाभिमें कमल है, जो पद्मगर्भ ब्रह्माजोकी उत्पत्तिके कारण हैं, उनको नमस्कार है। जिनका वर्ण कमलके समान है, जो हृदयमें भी कमल लिये रहते हैं, उनको नमस्कार है। जिनके नेत्र कमलके समान हैं, जो सहस्रों नेत्रोंसे युक्त और शिवस्वरूप हैं, उन्हें नमस्कार है। जिनके सहस्रों पैर और सहस्रों भुजाएँ हैं, उन मन्थुरूप परमेश्वरको नमस्कार है। ॐ वराहरूपधारी भगवान्को नमस्कार है। जो वर देनेवाले, उत्तम बुद्धिसे युक्त, बरिष्ठ, वरेण्य, सरस्वातरक्षक और अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले हैं, उन भगवान्को प्रणाम है। ॐ बालरूपधारी, बाल-कमलके समान कान्तिमान्, बालसुख और चन्द्रमाकूप नेत्रोंवाले, मनोहर केशोंसे सुशोभित, बुद्धिमान् भगवान् विष्णुको प्रणम है। केशवको नमस्कार है, नारायणको नित्य नमस्कार है। सर्वश्रेष्ठ माधव एवं गोविन्दको नमस्कार है। ॐ विष्णुको नमस्कार है। हिरण्यवरेता अग्निदेवकी नित्य नमस्कार है। मधुसूदनको प्रणाम है। शुद्ध स्वरूप एवं किरणोंको धारण करनेवाले भगवान्को नमस्कार है। अनन्तको नमस्कार है। सूक्ष्मस्वरूप एवं त्रीवस्वधारीको प्रणाम है। तीन बड़े-बड़े ङगोंवाले तथा दिव्य पीतम्बर धारण करनेवाले वामनको नमस्कार है। भगवन्! आप सृष्टिकर्ता हैं। आपको नमस्कार है। आप ही सृष्टिके कारण-पोषण करनेवाले हैं। आपको बाल्यार नमस्कार है। गुणस्वरूप एवं निर्गुणको नमस्कार है। वामनरूप भगवान्को नमस्कार है। वामनकर्मा श्रीहरिको प्रणम है। वामननेत्र प्रभुको

नमस्कार है और वामनवाहन माधवको प्रणाम है। रम्यशेष, पूज्य तथा अम्बकस्वरूप भगवान्को नमस्कार है। अतर्क्य, शुद्ध एवं भयहारी हरिको प्रणम है, जो संसाररूपी समुद्रसे तारनेके लिये नौकाके समान हैं, जो परम शान्त एवं चैतन्यस्वरूप हैं, शिव, सौम्यरूप, रुद्र तथा उद्धारकर्ता हैं, उन भगवान्को नमस्कार है। जो संसारका संहार करनेवाले और उसे भोग प्रदान करनेवाले हैं, समस्त विश्व जिनका स्वरूप है और जो समस्त विश्वकी सृष्टि करनेवाले हैं, उन भगवान्को नमस्कार है। ॐ दिव्यरूप सोम, अग्नि और वायुस्वरूप भगवान्को नमस्कार है। चन्द्रमा और सूर्यकी किरणें जिनके केश हैं, जो गौओं तथा ब्राह्मणोंका हित करनेवाले हैं, उन भगवान्को प्रणाम है। ॐ शङ्खस्वरूप पद और क्रमरूप भगवान्को प्रणाम है। शङ्खदेके मन्त्रोंद्वारा जिनकी स्तुति होती है, शङ्खाओंका जप जिनकी प्रातिक्रिया साधन है, उन भगवान्को नमस्कार है। ॐ यजुर्वेदको धारण करनेवाले और यजुर्वेदरूपधारी भगवान्को प्रणाम है। जिनका यजुर्वेदके मन्त्रोंसे यजन किया जाता है, जो सबसे सेवित और यजुर्वेदके मन्त्रोंके अधिपति हैं, उन परमात्माको नमस्कार है। ॐ देव श्रीपते! आपको नमस्कार है। सर्वश्रेष्ठ श्रीधरको प्रणाम है जो लक्ष्मीके शिष्यतम, मन और इन्द्रियोंको संयममें रखनेवाले, योगियोंके ध्येय और योगी हैं, उन भगवान्को प्रणम है। ॐ सामस्वरूप परमात्माको नमस्कार है। जो श्रेष्ठ स्वधर्मवि हैं, साम (ज्ञानभाव) के कारण जो सौम्य प्रतीत होते हैं तथा जो सामयोगके ज्ञाता हैं, उन भगवान्को प्रणाम है। जो साक्षात् सामवेद, सामगान और सामवेदको धारण करनेवाले हैं, जिन्हें सामवेदोक्त यज्ञोंका ज्ञान है, जो सामवेदको करतलगत किये हुए हैं, उन भगवान्को नमस्कार

हैं जो अथर्वशीर्ष, अथर्वस्वरूप, अथर्वपाद और अथर्वकर हैं अर्थात् जिनका सिर आदि सब कुछ अथर्वमय है, उन परमेश्वरको प्रणाम है। ॐ वज्रशीर्ष (वज्रके समान मस्तकवाले) प्रभुको नमस्कार है। जो मधु और कैटभके भक्त, महास्रगरके जलमें शयन करनेवाले और कैदोंका उद्धार करके लानेवाले हैं उन भगवान्को प्रणाम है जिनके स्वरूप अत्यन्त दीप्तिमान् हैं, उन भगवान्को नमस्कार है। इन्द्रियोंके निम्ना इन्द्रोक्तको प्रणाम है। प्रभो आप भगवान् वासुदेवको बारम्बार नमस्कार है, नारायण आपको प्रणाम है। लोकहितकारी श्रीहरिको नमस्कार है। ॐ षोडशक तथा विश्वसंहारकारी प्रभुको प्रणाम है। जो उत्तम गतिके दाता और बन्धनका अपहरण करनेवाले हैं, त्रिलोकीमें तेजका आविर्भाव करनेवाले और तेज-स्वरूप हैं, उन भगवान्को नमस्कार है। जो योगियोंके ईश्वर, शुद्धस्वरूप, सबके भीतर रमण करनेवाले तथा जगत्को पार वतारनेवाले हैं, सुख ही जिनका स्वरूप है जो सुखरूप नेत्रोंवाले तथा सुकृत धारण करनेवाले हैं, उन भगवान्को प्रणाम है वासुदेव, चन्दनीय और वामदेवको नमस्कार है जो देहधारियोंके देहकी उत्पत्ति करनेवाले तथा भेददृष्टिको भङ्ग करनेवाले हैं उन भगवान्को नमस्कार है देवगण जिनके श्रीअङ्गकी वन्दना करते हैं, जो दिव्य मुकुट धारण करनेवाले हैं, उन श्रीविष्णुको प्रणाम है। जो निवासके भी निवास हैं तथा निवासस्थानको व्यवहारमें लाते हैं, उन परमात्माको नमस्कार है। ॐ जो वसु (धन) की उत्पत्ति करनेवाले और वसुको स्थान देनेवाले हैं, उन्हें प्रणाम है। यज्ञस्वरूप, यज्ञेश्वर एवं योगी भगवान् विष्णुको नमस्कार है। आप संयमों पुरुषोंको योगकी प्राप्ति करानेवाले ईश्वर हैं, आपको प्रणाम है। यज्ञरूप शरीर धारण करनेवाले

भगवान् बराहको नमस्कार है। प्रलम्बसुरको मारनेवाले भगवान् संकर्षणको प्रणाम है। जिनकी बाणों में धेनुके समान गम्भीर है, जो प्रचण्ड वेगयुक्त हल धारण करते हैं, उन बलरामको नमस्कार है। सबको शरण देनेवाले नारायण आप ही ज्ञानियोंके ज्ञान हैं आपको नमस्कार है। प्रभो! आपके सिवा नरकसे उद्धार करनेवाला मेरा कोई बन्धु नहीं है। शरणागतवत्सल! मैं सम्पूर्ण भावसे आपके चरणोंमें पड़ा हूँ। केशव! अच्युत! मेरा जो शारीरिक और मानसिक मल है, उसे धोनेवाला आपके सिवा दूसरा कोई नहीं है। भगवन्! मैंने समस्त सङ्ग त्यागकर आपकी शरण ली है। केशव! अब आपके ही साथ मेरा सङ्ग हो। इससे मुझे आत्मलाभ होगा। मुझे यह संसार कह एवं आपत्तियोंका घर तथा दुस्तर जान पड़ता है। मैं आध्यात्मिक आदि तीनों तापोंसे छिन्न हूँ इसलिये आपकी शरणमें आया हूँ। आपकी कृपासे यह समस्त जगत् नामा प्रव्वरकी कर्मनाओंद्वारा मोहित हो रहा है इसमें लोभ आदिका पूरा आकर्षण है। अतः मैंने आपकी शरण ली है। विष्णो! संसारी जीवको तनिक भी सुख नहीं है। यज्ञेश्वर! मनुष्यका मन जैसे-जैसे आपमें लगता जाता है, वैसे-वैसे निष्काम होकर वह परमानन्दको प्राप्त होता रहता है। मैं विवेकशून्य होकर नष्ट हो गया हूँ। सारा जगत् मुझे दुःखी दिखायी देता है। गोविन्द! मेरी रक्षा कीजिये आप ही संसारसे मेरा उद्धार कर सकते हैं, यह संसार-समुद्र मोहरूपी जलसे परिपूर्ण है इसके पार जाना असम्भव है। मैं इसमें गलेतक डूबा हुआ हूँ। पुण्डरीकाक्ष! आपके सिवा दूसरा कोई ऐसा नहीं है, जो इससे मेरा उद्धार कर सके।

उस विख्यात दिव्य पुरुषोत्तमक्षेत्रमें राजा क्षेत्रके इस प्रकार स्तुति करनेपर देवाधिदेव जगद्गुरु



श्रीहरि उनकी भक्तिका विचार करके सम्पूर्ण देवताओंके साथ राजाके सामने आये। नील मेघके समान रत्नामयवर्ण, कमल-पत्रके समान बड़ी-बड़ी आँखें, हाथोंमें देदीप्यमान सुदर्शन, जायें हाथमें पादअन्य शङ्ख तथा अन्य हाथोंमें गदा, शार्ङ्गधनुष और खड्ग—यही उनकी झँकी थी। भगवान्ने कहा—‘राजन्! तुम्हारी बुद्धि बड़ी उत्तम है। तुममें पापका लेश भी नहीं है। मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। तुम अपनी इच्छाके

अनुसार कोई उत्तम कर माँगो।’

देवधिदेव भगवान्का यह अमृतमय वचन सुनकर महाराज श्वेतने मस्तक भलाकर उन्हें प्रणम किया और उन्होंने मन लगाये हुए कहा—‘भगवन्! यदि मैं आपका भक्त हूँ तो मुझे यह उत्तम वरदान दीजिये। ब्रह्मलोकसे भी ऊपर जो अविनाशो वैकुण्ठधाम है, जिसे निर्मल, रजोगुण-रहित, शुद्ध एवं संसारको आसक्तिसे शून्य बताया गया है, मैं उसेको प्राप्त करना चाहता हूँ। जगत्पते! आपकी कृपासे मेरा यह मनोरथ सफल हो।’

श्रीभगवान् बोले—‘श्वेन्द्र! सम्पूर्ण देवता, मुनि, सिद्ध और योगी भी जिस रमणीय और योग-शोकरहित पदको नहीं प्राप्त होते, उसे ही तुम प्राप्त कर्होगे। सम्पूर्ण लोकोंको लाँघकर मेरे लोकमें आओगे। यहाँ तुमने जो कीर्ति प्राप्त की है, वह तोनों लोकोंमें फैलेगी और मैं सदा ही यह निवास करूँगा। इस तीर्थको देवता और दानव आदि सब लोग श्रेयस्फला कहेंगे। जो कुशाके अग्रभागसे भी श्रेयस्फलाका जल अपने ऊपर छिड़केगा, वह स्वर्गलोकमें जायगा। जो यहाँ स्थापित श्वेतमाधव नामकी प्रतिमाका दर्शन और उसे प्रणाम करेगा, वह देह त्यागकर भगवान्का स्मरण करते हुए सन्न पदको प्राप्त होगा।



मत्स्यमाधवकी महिमा, समुद्रमें मार्जन आदिकी विधि, अष्टाक्षर-मन्त्रकी महत्ता, स्नान, तर्पण-विधि तथा भगवान्की पूजाका वर्णन

ब्रह्माजी कहते हैं—श्वेतमाधवका दर्शन करके उनके समीप ही मत्स्यमाधवका दर्शन करे। जो भगवान् पहले एकांशवर्णके जलमें मत्स्यरूप धारण करके खेदोंका उद्धार करनेके लिये रसतलमें स्थित थे, वे ही मत्स्यमाधव कहलाते हैं। वे

भगवान्के आदि अवतार हैं। पहले पृथ्वीका चिन्तन करके उसपर प्रतिष्ठित हुए भगवान्को प्रणाम करे। ऐसा करनेसे मनुष्य सब दुःखोंसे मुक्त हो जाता है और उस वैकुण्ठधाममें जाता है, जहाँ साक्षात् भगवान् श्रीहरि विश्रमण रहते हैं।

मुनिवरो। इस प्रकार मैंने भस्मभोग्यवके माहात्म्यका वर्णन किया।

मुनिज्योने कहा—भगवान्! समुद्रमें जो ध्वजन और स्नान-दान आदि किया जाता है, उसका फल बतलाइये।

ब्रह्माजी बोले—मुनिवरो! मार्जनकी विधि सुनो। मार्कण्डेयहृदका ज्ञान पूर्वाह्नकालमें उत्तम माना गया है। विशेषतः चतुर्दशीको उसमें किया हुआ स्नान सब पापोंका नाश करनेवाला है। समुद्रका ज्ञान सब समय उत्तम होता है, विशेषतः पूर्णिमाको उसमें स्नान करनेसे अक्षय-वृद्धका फल मिलता है। मार्कण्डेयहृद, अक्षयवट, श्रीकृष्ण-बलराम, समुद्र तथा इन्द्रद्युम्न—ये पुरुषोत्तमपक्षके पाँच तीर्थ हैं। जब ज्येष्ठ मासकी पूर्णिमाको ज्येष्ठ नक्षत्र हो सब विशेषरूपसे तीर्थराज समुद्रकी यात्रा करनी चाहिये। उस समय मन, कर्मा और शरीरसे शुद्ध हो भगवान्में मन लगाने रहे और कहीं मनको न ले जाय। सब प्रकारके दुन्दुओंसे मुक्त रहे, राग और द्वेषको दूर कर दे। कल्पवृक्ष-वट बहुत रमणीय स्थान है, वहीं स्नान करके एकाग्र चित्तसे तीन बार भगवान् जनार्दनकी परिक्रमा करे। उसके दर्शनसे स्रक्त जन्मोंके पापोंसे छुटकारा मिल जाता है। प्रभुर पुण्य तथा अभीष्ट गतिभी प्राप्ति होती है। प्रत्येक युगके अनुसार घटके नाम और प्रमाण बतलाये जाते हैं। घट, घटेक्षर, कृष्ण तथा पुराणपुरुष—ये सत्य आदि युगोंमें क्रमशः घटके नाम कहे गये हैं। सत्ययुगमें घटका विस्तार एक योजन, त्रेतामें तीन योजन, द्वापरमें आधा योजन और कलियुगमें चौथाई योजनका माना गया है। पहले बतये हुए मन्त्रसे घटको नमस्कार करके वहीं तीन सौ अनुष्ठी दूरीपर दक्षिण दिशाकी ओर जाय। वहीं भगवान् विष्णुका दर्शन होता है। उसे भगवन् स्वर्गद्वार

कहते हैं। वहाँ समुद्रके जलसे आकृष्ट सर्वगुणसम्पन्न काष्ठ है, उसे ग्रहण करके पूजन करनेपर मनुष्य सम्पूर्ण रोगों तथा पापग्रह आदिकी पीड़ासे मुक्त हो जाता है।

स्वर्गद्वारसे समुद्रपर जाकर आघमन करे तथा पवित्र पादसे भगवान् नारायणका ध्यान करके उसके अष्टाक्षर-मन्त्रसे अङ्गन्यास और करन्यास करे। मनको भुक्तमेवें डालनेवाले अन्य बहुत-से मन्त्रोंकी क्या आवश्यकता है 'ॐ नमो नारायणाय'—यह अष्टाक्षर-मन्त्र ही सब भगवत्प्रेमियोंको सिद्ध करनेवाला है। नरसे प्रकट होनेके कारण जलको नार कहते हैं। यह पूर्वकालमें भगवान् विष्णुका अवयव (विवासस्थान) रहा है, इसलिये उन्हें नारायण कहते हैं। सप्तस्र केदोंका तात्पर्य भगवान् नारायणमें ही है। सम्पूर्ण द्विज नारायणकी ही उपसन्नामें तत्पर रहते हैं। यज्ञों और क्रियाओंकी संप्रति भी नारायणमें ही है। पृथ्वी नारायणपरक है। जल नारायणपरक है। अग्नि नारायणपरक है और आकाश भी नारायणपरक है। वायु और मनके आश्रय भी नारायण ही हैं। अहंकार और बुद्धि दोनों नारायणस्वरूप हैं। भूत, वर्तमान तथा आनेवाले सभी जीव, स्थूल और सूक्ष्म—सब कुछ नारायणस्वरूप हैं। राक्षस आदि विषय, श्रवण आदि इन्द्रिय, प्रकृति और पुण्य—सभी नारायणस्वरूप हैं। जल, स्थूल, पाताल, स्वर्गलोक, आकाश तथा पर्वत—इन सबको व्याप्त करके भगवान् नारायण स्थित हैं। अधिक कहनेकी क्या आवश्यकता, ब्रह्म आदिसे लेकर तुल्यपर्यन्त सप्तस्र चराचर जगत् नारायणस्वरूप है। ब्राह्मणे। मैं नारायणसे बढ़कर वहाँ कुछ नहीं देखता। यह दूरव-अदृश्य, चर अचर—सब उन्हींके द्वारा व्याप्त है। जल भगवान् विष्णुका चर है और विष्णु ही जलके स्वामी हैं। अतः जलमें सर्वदा प्रपहारी नारायणको

स्मरण करना चाहिये। विशेषतः स्नानके समय जलमें उपस्थित हो पवित्रभावसे नारायणका ध्यान करे और हाथ तथा शरीरमें नमःशर्तोंका न्यास करे। ओंकार और नकारका दोनों हाथोंके अंगूठोंमें तथा शेष अक्षरोंका तर्जनी आदिके क्रमसे करतल और करपृष्ठोंतक न्यास करे। 'ॐ' करका बायें और 'न' करका दायें चरणमें न्यास करे। कटिके बायें भागमें 'मो' का और दायें भागमें 'ना' का न्यास करे। 'ए' का चभिदेसमें, 'य' का बायीं भुजामें, 'जा' का दाहिनी भुजामें और 'य' का मस्तकपर न्यास करे। नीचे ऊपर, इदममें, पार्श्वभागमें, पोटकी और तथा अग्रभागमें श्रीनारायणका ध्यान करके विद्वान् पुरुष कवचकी पाठ आरम्भ करे। 'पूर्वमें गोविन्द, दक्षिणमें मधुसूदन, पश्चिमकी ओर श्रीभर, उत्तरमें केशव, अग्रिकोणमें विष्णु, वैश्वदेवमें अविनाशी माधव, बाय्यमें हृषीकेश, ईशानमें व्यापन, नीचे वाराह और ऊपर भगवान् त्रिविक्रम मेरी रक्षा करें।'।

इस प्रकार कवचकी पाठ करके मिश्राङ्कित मन्त्रोंका उच्चारण करे—

त्वमग्निर्दिपही पाथ तैत्थः कामदीपः।
प्रधानः सर्वभूतानां जीवनां प्रभुरव्ययः॥
अमृतस्यामृतोत्तमं हि देवकोधिरयां यतः।
बुद्धिं हर मे सर्वं तैर्धराय नमोऽस्तु मे॥
'माथ! आप अग्नि हैं, मनुष्य आदि सब जीवोंके जीविका आधान और कामका दीपन करनेवाले हैं। सम्पूर्ण भूतोंमें प्रधान हैं तथा जीवोंके अविनाशी प्रभु हैं। समुद्र! आप अमृतकी उत्पत्तिके स्थान तथा देवताओंकी योनि हैं। तीर्थराज! आप मेरे सब पाप हर दें। आपको

नमस्कार है।'

इस प्रकार विधिवत् उच्चारण करके स्नान करना चाहिये, अन्यथा वह स्नान उत्तम नहीं माना जाता। वैदिक मन्त्रोंसे अभिषेक और मार्जन करके जलमें दुधकी लगा तीन बार अघमर्षण-मन्त्रका जप करे। वैसे अक्षमेध पत्र सब पापोंको दूर करनेवाला है, वैसे ही अघमर्षण-सूक्त सब पापोंका नाशक है। स्नानके पश्चात् जलसे निकलकर दो निर्मल वस्त्र धारण करे। फिर प्राणायाम, आचमन एवं संध्योपासन करके ऊपरकी ओर फूल और जल डालकर सूर्योपस्थान करे। उस समय अपनी दोनों भुजाएँ ऊपरकी ओर उठाये रखे। तदनन्तर गायत्री-मन्त्रका एक सौ आठ बार जप करे। गायत्रीके अतिरिक्त सूर्यदेवतासम्बन्धी अन्य मन्त्रोंका भी एकप्रवृत्तिसे खड़ा होकर जप करे फिर सूर्यको प्रदक्षिणा और उन्हें नमस्कार करके पूर्वाभिमुख बैठकर स्वाध्याय करे। उसके बाद देवता और ऋषियोंका तर्पण करके दिव्य मनुष्यों और पितरोंका भी तर्पण करे मन्त्रवेत्ता पुस्तकसे चाहिये कि चित्तको एकत्र करके तिलमिश्रित जलसे द्वारा नामगोत्रोच्चारणपूर्वक पितरोंकी तृप्ति करे। पहले देवताओंका तर्पण करनेके पश्चात् ही द्विज पितरोंके तर्पणका अधिकारी होता है। श्राद्ध और हवनके समय एक हाथसे सब वस्तुएँ अर्पित करे, परन्तु तर्पणमें दोनों हाथोंका उपयोग करना चाहिये। यही सदाकी विधि है। बायें और दायें हाथको सम्मिलित अङ्गुलिसे नाम-गोत्रके साथ 'तृप्यताम्' बोलकर मीनभावसे जल दे।* अपने अङ्गुलिमें स्थित तिलके द्वारा देवताओं और पितरोंका तर्पण न करे। वैसे तिलोंके साथ दिया हुआ जल

* श्राद्धे हवनकाले च पार्जनैकेन विवर्षेत्। तर्पणे तृप्यतं कुर्यादेव एव विधिः सदा॥
अन्वारब्धेन सज्जेन पक्षिणा दक्षिणेन हु। तृप्यतामिति सिद्धं तु नामगोत्रेण काव्यतः॥

रुधिरके तुल्य होता है। उसे देनेवाला पापका भागी होता है। मुनिवरो! यदि दातृ जलमें स्थित होकर पृथ्वीपर जल दे तो वह व्यर्थ होता है, किसीके पास नहीं पहुँचता। जो मनुष्य स्वयंमें खड़ा होकर जलमें जल देता है, उसका दिया हुआ जल भी पितरोंको नहीं मिलता, व्यर्थ जाता है। अतः जलमें कदापि पितरोंको जल न दे, बल्कि वहाँसे निकलकर पवित्र देशमें जलद्वारा तर्पण करना चाहिये। न जलमें, न पात्रमें, न कुपित होकर और न एक हाथसे ही जल दे; जो पृथ्वीपर नहीं दिया जाता, वह जल पितरोंक नहीं पहुँचता। मैंने पितरोंके लिये अक्षय स्थानके रूपमें पृथ्वी ही दी है अतः उनकी प्रीति चाहनेवाले पुरुषोंको पृथ्वीपर ही जल देना चाहिये। पितर भूमिपर ही उत्पन्न हुए, भूमिपर ही रहे और भूमिमें ही उनके शरीरका स्रव हुआ। अतः भूमिपर ही उनके लिये जल देना चाहिये। अग्रभागसहित कुशोंको छिन्नकर उसपर मन्त्रोंद्वारा देवताओं और पितरोंका आवाहन करना चाहिये। पूर्वग्र कुशोंपर देवताओंका और दक्षिणग्र कुशोंपर पितरोंका आवाहन करना उचित है।

देवताओं और अन्यान्य पितरोंका तर्पण करनेके पश्चात् भीमभावसे आचमन करके समुद्रके तटपर एक हाथका चौकोर मण्डल बनाये। उसमें चार दरवाजे रहें उसके भीतर कर्णिकासहित अष्टदल कमलकी आकृति बनाये इस प्रकार मण्डल बनाकर उसमें अष्टाक्षर-मन्त्रकी विधिसे अजन्मा भगवान् नारायणका पूजन करे। अब शरीर शुद्धिकी उत्तम विधि बतलाता हूँ। चक्ररेखासहित अक्षरका हृदयमें ध्यान करे। वह तीन शिखाओंसहित प्रज्वलित हो पापोंका दाह करता है और सब

पापोंका नाश करनेवाला है, ऐसी भावना करनेके बाद मस्तकमें 'रा' का चिन्तन करना चाहिये। वह चन्द्रमण्डलके मध्यभागमें स्थित और शुक्लवर्णका है तथा अमृतकी वर्षा करके पृथ्वीको आप्लावित कर रहा है, इस प्रकार चिन्तन करनेसे पाप धुल जाते और साधकका शरीर दिव्य हो जाता है। तदनन्तर अपने बायें पैरसे आरम्भ करके क्रमशः सब अङ्गोंमें अष्टाक्षर-मन्त्रका न्यास करे। वैष्णव-पञ्चाङ्गन्यास तथा चतुर्ध्वज-न्यास भी करे। साधकको मूलमन्त्रके द्वारा कर-शुद्धि भी करनी चाहिये। इसकी विधि यों है। दोनों हाथोंकी आठ अँगुलियोंमें अँगूठोंद्वारा एक-एक अक्षरका न्यास करना चाहिये। पहले बायें हाथमें, फिर दायें हाथमें। ॐकारसहित शुक्लवर्णा पृथ्वीका बायें पैरमें न्यास करे नकारका वर्ण श्याम और देवता शम्भु हैं उसका न्यास दक्षिण पैरमें है। योकारको कालस्वरूप माना गया है। इसका न्यास कटिके बायंभागमें होता है। नाकार सर्वबीजस्वरूप है। उसकी स्थिति कटिके दक्षिणभागमें है। राकार तेजका स्वरूप बताया गया है। उसका स्थापनाभिग्रदेशमें होता है। यकारका देवता वायु है, उसका न्यास बायें कंधेमें है। णकारको सर्वव्यापी समझना चाहिये। उसकी स्थिति दायें कंधेमें है। यकारकी स्थिति सिरमें है, जहाँ सम्पूर्ण लोक प्रतिष्ठित हैं। तात्पर्य यह कि यकारका न्यास मस्तकमें करना चाहिये।

वैष्णव-पञ्चाङ्गन्यास

'ॐ विष्णवे नमः शिरः', 'ॐ जलनाथ नमः शिखा', 'ॐ विष्णवे नमः कवचम्', 'ॐ विष्णवे नमः स्फुरन् दिग्गोचरान्ध्रम्', 'ॐ हुं फट् अस्वम्'।*

* उक्त मन्त्रोंमेंसे पहले तीन मन्त्रोंको पढ़कर हाथकी अँगुलियोंसे क्रमशः मस्तक, शिखा तथा दोनों बाहु मूलोंका स्पर्श करे। चौथेसे सब ओर घुटकी बजाये और चौथेको पढ़कर ताली बजाये।

चतुर्व्यूहन्यास

'ॐ शिरसि शुक्लो वासुदेव इति', 'ॐ अं ललाटे रक्तः संकर्षणो गुरुत्मान् वह्निस्तेज आदित्य इति', 'ॐ अं ग्रीवायां पीतः प्रद्युम्नो ज्योतिष इति', 'ॐ अं हृदये कृष्णोऽनिरुद्धः सर्वज्ञश्चिन्मय इति'।*

इस प्रकार अपने आत्माका चतुर्व्यूहरूपसे चिन्तन करके कार्य आरम्भ करे।

'मेरे अग्रे भगवान् विष्णु और पीछे केशव हैं। दक्षिणभागमें तैविन्द और वामभागमें मधुसूदन हैं। ऊपर वैकुण्ठ और नीचे वाराह हैं। बीचकी सम्पूर्ण दिशाओंमें माधव हैं। चलते, खड़े होते, जागते अधवा सोते समय भगवान् त्रिसिंह घेरी रक्षा करते हैं। मैं वासुदेवस्वरूप हूँ।' इस प्रकार विष्णुपद होकर पूजन आरम्भ करे। अपने शरीरकी भाँति भगवान्‌के विग्रहमें भी सम्पूर्ण तत्त्वोंका न्यास करे। प्रणवका उच्चारण करके शरीरपर जलके छींटे दे। 'ॐ कद्' का उच्चारण सब विग्रहोंका निवारण करनेवाला और शुभ माना गया है। वहाँ सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु और आकाशमण्डलका चिन्तन करे। कमलके मध्यभागमें विष्णुका न्यास करे फिर हृदयमें ज्योतिःस्वरूप ॐकारका चिन्तन करके कमलकी कर्णिकामें ज्योतिःस्वरूप सनातन विष्णुकी स्थापना करे।

फिर क्रमशः प्रत्येक दलमें अष्टाधर मन्त्रके एक-एक अधरका न्यास करे। एक-एक अधरके द्वारा तथा समस्त मन्त्रके द्वारा भी पूजन करना अत्यन्त उत्तम माना गया है। सनातन परमात्मा विष्णुका द्वादशाधर-मन्त्रसे पूजन करे। इसके बाद भगवान्‌का

पहले हृदयमें ध्यान करके बाहर कर्णिकामें भी उनकी भावना करे। उनके ध्यानका स्वरूप इस प्रकार है। भगवान्‌की चार भुजाएँ हैं। वे महान् सत्त्वमय हैं, कोटि-कोटि सूर्योंके समान उनके श्रीयज्ञोंकी प्रभा है और वे महायोगस्वरूप, ज्योतिःस्वरूप एवं सनातन हैं इसके बाद मन-ही मन भगवान्‌का स्मरण करते हुए मन्त्रोच्चारणपूर्वक उनकी आवाहन आदि करे।

आवाहन-मन्त्र

वीनरूपे वराहश्च नरसिंहोऽथ वामनः।

अजित देवो वरदो मम नारायणोऽग्रतः॥

ॐ नमो नारायणाय नमः

'मीन, वराह, नरसिंह एवं वामन-अक्षतारभारी वस्तुयुक्त देवता भगवान् नारायण मेरे सम्मुख पधारें। सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीनारायणको नमस्कार है।'

आसन-मन्त्र

कर्णिकयां सुपीठेऽथ पद्मकल्पितासनाम्।

सर्वसत्त्वहितायैव तिष्ठ त्वं मधुसूदन॥

ॐ नमो नारायणाय नमः

'यहाँ कमलकी कर्णिकामें सुन्दर पीठपर कमलका आसन बिछा हुआ है। मधुसूदन! सब प्राणियोंका हित करनेके लिये आप इसपर विराजमान हों। सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीनारायणको नमस्कार है।'

अर्घ्य-मन्त्र

ॐ वीलेख्यपतीनां पतये देवदेवाय हृषीकेशाय विष्णवे नमः। ॐ नमो नारायणाय नमः।

'त्रिभुवनपतियोंकी भी पति, देवताओंकी भी देवता, इन्द्रियोंकी स्वामी भगवान् विष्णुको नमस्कार है। सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीनारायणको नमस्कार है।'

* उक्त चार वाक्योंमेंसे एक-एकका उच्चारण करके क्रमशः मस्तक, ललाट, ग्रीवा और हृदयका स्पर्श करे। इनका भावार्थ संक्षेपसे इस प्रकार है- शुक्लवर्ण वासुदेव मस्तकमें हैं रक्तवर्ण वल्लभाजी, गुरु, अग्नि, तेज और सूर्य ललाटमें स्थित हैं। पीतवर्ण प्रद्युम्न तथा वासुदेवित गेव ग्रीवामें हैं। कृष्णवर्ण अनिरुद्ध सम्पूर्ण शक्तियोंके साथ हृदयमें निवास करते हैं।

ॐ चक्षुः पदयोर्देहं ध्वजम् समस्तम् ।

विष्णो कपलपत्राक्ष गृहाण मधुसूदन ॥

ॐ नमो नारायणाय नमः

‘देव चक्षुषाभ! सन्तान विष्णो!! कमस्तनयन मधुसूदन!!! आपके चरणोंमें यह पाद्य (पवि
धूलानेके लिये जल) समर्पित है, आप इसे
स्वीकार करें। सञ्चिदानन्दस्वरूप श्रीनारायणको
नमस्कार है।’

मधुपर्क-मन्त्र

मधुपर्कं महादेव चक्षाटीः कल्पितं तव ।

मया निवेदितं भक्त्या गृहाण युक्त्योत्तम ॥

ॐ नमो नारायणाय नमः

‘महादेव। पुरुषोत्तम! ब्रह्म आदि देवताओंने
आपके लिये जिसकी व्यवस्था की थी, वही
मधुपर्क मैं भक्तिपूर्वक आपको निवेदन करता हूँ,
कृपया स्वीकार कीजिये। सञ्चिदानन्दस्वरूप
श्रीनारायणको नमस्कार है।’

आचमनीय-मन्त्र

मन्दाकिन्याः स्निग्धं चारि स्पर्शच्छदं विन्दन् ।

गृहाणाचमनीयं त्वं मया भक्त्या निवेदितम् ॥

ॐ नमो नारायणाय नमः

‘भगवन्! मैंने गङ्गाजीका स्पर्श जल, जो
सब पापोंको दूर करनेवाला तथा कल्याणमय है,
आचमनके लिये भक्तिपूर्वक आपको अर्पित किया
है, कृपया ग्रहण कीजिये। सञ्चिदानन्दस्वरूप
श्रीनारायणको नमस्कार है।’

स्नान-मन्त्र

साम्रपः पृथिवीं चैव ज्योतिर्मयं आपोमय च ।

लोकेषु स्निग्धजलेन शरीरेण स्नानपाण्डुरम् ॥

ॐ नमो नारायणाय नमः

‘लोकेश्वर! आप ही जल, पृथ्वी तथा अग्नि
और वायुरूप हैं। मैं जीवनरूप जलके द्वारा

आपको स्नान करता हूँ। सञ्चिदानन्दस्वरूप
श्रीनारायणको नमस्कार है।’

वस्त्र-मन्त्र

देवतारत्नसमयुक्तं यज्ञवर्णसमन्वितम् ।

स्पर्शस्पर्शजले देव वाससी तव केसरम् ॥

ॐ नमो नारायणाय नमः

‘देवतत्वसमायुक्त, यज्ञवर्णसमन्वित केसर!
मैं तुम्हारे रंगके दो वस्त्र आपकी सेवामें
समर्पित करता हूँ। सञ्चिदानन्दस्वरूप श्रीनारायणको
नमस्कार है।’

विलेपन-मन्त्र

स्तीरं हे व जानकी चेष्टां वीर्यं व केसरम् ।

कञ्च निवेदितो यन्मः प्रीतिगुणं विलिप्यताम् ॥

ॐ नमो नारायणाय नमः

‘केसर! मुझे आपके शरीर और चेष्टाका ज्ञान
नहीं है, मैंने जो यह गुण (रोली-चन्दन आदि)
निवेदन किया है, इसे लेकर अपने अङ्गमें लगा
लें। सञ्चिदानन्दस्वरूप श्रीनारायणको नमस्कार है।’

यज्ञोपवीत-मन्त्र

अन्यतुःसमयमेव त्रिभुतं पञ्चधोविना ।

सावित्री-प्रस्थितं युक्तं यज्ञोपवीतं तवापये ॥

ॐ नमो नारायणाय नमः

‘भगवन्! ब्रह्मजीने ब्रह्म, यज्ञ, और सागवेदके
मन्त्रोंसे जिसको त्रिवृत् (त्रिगुण) बनाया है, वह
सावित्री-प्रस्थित युक्त यज्ञोपवीत मैं आपकी सेवामें
अर्पित करता हूँ। सञ्चिदानन्दस्वरूप श्रीनारायणको
नमस्कार है।’

अर्चन-मन्त्र

दिव्यरत्नसमयुक्तं चक्षुष्यानुसमप्रभम् ।

वायसि तव शोभन्तु सार्वकराणि कथम् ॥

ॐ नमो नारायणाय नमः

‘अग्नि और सूर्यके समान प्रभावसे,
दिव्यरत्नविभूषित माधव! इन अर्चनार्योंको धारण

करके आपके श्रीअङ्ग सुशोभित हों। सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीनारायणको नमस्कार है।'

'ॐ नमः' यह अष्टाक्षर-मन्त्रके प्रत्येक अक्षरके साथ लगाकर पृथक्-पृथक् पूजा करे अथवा समस्त मूल-मन्त्रका एक ही साथ उच्चारण करके पूजन करे।

धूप-मन्त्र

वचस्पतिरसो दिव्यो रुधास्यः सुरधिः ॥

मया भिवेदितो भक्त्या धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥

ॐ नमो नारायणाय नमः

'भगवन्' यह धूप सुगन्धद्रव्योंसे मिश्रित वचस्पतिकी दिव्य रस है, अतएव अत्यन्त सुगन्धित है; मैंने भक्तिपूर्वक इसे आपकी सेवामें अर्पित किया है, आप इसे स्वीकार करें। सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीनारायणको नमस्कार है।'

दीप-मन्त्र

सूर्यचन्द्रास्तेजोतिर्विद्युदम्बोस्तथैव ॥

त्वमेव ज्योतिर्वा देव दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥

ॐ नमो नारायणाय नमः

'देव! आप ही सूर्य और चन्द्रमाकी, बिजली और अग्निकी तथा ग्रहों और नक्षत्रोंकी ज्योति हैं। यह दीप ग्रहण कीजिये। सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीनारायणको नमस्कार है।'

नैवेद्य-मन्त्र

अहं क्षतुर्विमं शैव रसिः कक्षिः सपत्निकम् ॥

मया भिवेदितं भक्त्या नैवेद्यं तव केशव ॥

ॐ नमो नारायणाय नमः

'केशव! मैंने [मधुर अग्नि] छः रसोंसे कुछ चार प्रकारका (भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य) अन्न आपको भक्तिपूर्वक समर्पित किया है। आप यह नैवेद्य ग्रहण करें। सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीनारायणको नमस्कार है।'

पूर्वोक्त अष्टदल कमलके पूर्वदलमें वामुदेवका,

दक्षिणदलमें संकर्षणका, पश्चिमदलमें प्रद्युम्नका, उत्तरदलमें अनिरुद्धका, अग्रिकोणवाले दलमें वराहका, नैऋत्यकोणमें नरसिंहका, वायव्यकोणमें गन्धर्वका तथा ईशानमें भगवान् त्रिविक्रमका न्यास करे। फिर अष्टाक्षरदेवके सम्मुख गरुड़की स्थापना करे। भगवान्के वामभागमें चक्र और दक्षिणभागमें शङ्खकी स्थापना करे। इसी प्रकार उनके दक्षिणभागमें महागज कीमोदकी और वामभागमें शार्ङ्ग चमक भनुषकी स्थापित करे। दक्षिणभागमें दो दिव्य तरकस और वामभागमें खड्गका न्यास करे। दक्षिणभागमें श्रीदेवी और वामभागमें पुष्टिदेवीकी स्थापना करे। भगवान्के सामने वामभाला, श्रीवत्स और कीस्तुभ रखे। फिर पूर्व आदि चारों दिशाओंमें इन्द्र आदिका न्यास करे। कोणमें देवदेव विष्णुके अस्त्रका न्यास करे। पूर्व आदि आठ दिशाओंमें तथा ऊपर और नीचे तान्त्रिक मन्त्रोंसे क्रमशः इन्द्र, अग्नि, वायु, निर्रति, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान, अनन्त तथा ब्रह्मजीका पूजन करे। इस प्रकार मण्डलमें स्थित देवेश्वर जनार्दनका पूजन करके मनुष्य निम्न ही मनोबान्धित धीगोंको प्राप्त करता है। इसी विधिसे पूजित मण्डलस्थ भगवान् जनार्दनका जो दर्शन करता है, वह भी अविनाशी विष्णुमें प्रवेश करता है। जिसने उपर्युक्त विधिसे एक बार भी श्रीकेशवका पूजन किया है, वह जन्म-मृत्यु और जरा अवस्थाको लौकिक भगवान् विष्णुके पदको प्राप्त होता है। 'नमः' सहित ॐकार जिसके अर्धमें और 'नमः' जिसके अन्तमें है, वह 'ॐ नमो नारायणाय नमः' यह तेजस्वी मन्त्र सम्पूर्ण तत्त्वोंका मन्त्र कहलाता है। इसी विधिसे प्रत्येकको गन्ध, पुष्प आदि वस्तुएँ क्रमशः निवेदन करनी चाहिये। इसी तरह क्रमशः आठ मुद्राएँ बाँधकर दिखाये। फिर मन्त्रवेत्ता पुरुष 'ॐ नमो नारायणाय' इस मूलमन्त्रका एक सौ

आठ या अट्ठाईस अथवा आठ बार जप करे। किसी कामनाके लिये जप करना हो तो उसके लिये शास्त्रोंमें जितना बताया गया हो, उतनी संख्यामें जप करे। अथवा निष्कामभावसे जितना हो सके, उतना एकाग्रचित्तसे जप करे। पद्य, मूलमन्त्रसे ही सदा भगवान् अच्युतका पूजन करें।



भगवान् पुरुषोत्तमकी पूजा और दर्शनका फल, इन्द्रद्युम्नसरोवरके सेवनकी विधि एवं महिमाका वर्णन तथा ज्योष्ठकी पूर्णिमाको दर्शनका माहात्म्य

ब्रह्माजी कहते हैं—उपर्युक्त प्रकारसे भक्तिपूर्वक भगवान् पुरुषोत्तमकी पूजा करके उनके चरणोंमें मस्तक झुकावे। इसके बाद समुद्रसे प्रार्थना करे—‘सरिताओंके स्वामी तीर्थराज! आप सम्पूर्ण भूतोंके प्राण और मोनि हैं। आपको नमस्कार है। अच्युतप्रिय! मेरी रक्षा कीजिये।’ इस प्रकार उत्तम क्षेत्र समुद्रमें स्नान करके तथा तटपर अविनाशी नारायणकी विधिपूर्वक पूजा करके बसन्त, श्रौकम्प और सुभद्राको प्रणाम करे। ऐसा करनेवाला पुरुष सब पापोंसे मुक्त हो सब प्रकारके दुःखोंसे छुटकारा पा जाता है और अन्तमें सूर्यके समान तेजस्वी विमानपर, जहाँ दिव्य गन्धर्वोंकी संगीतध्वनि होती रहती है, बैठकर अपनी इच्छीस पीढ़ियोंको उठान करके श्रीविष्णुके लोकमें जाता है। ग्रहण, संक्रान्ति, अयनारम्भ, विषुवदोष, युगादि तिथियाँ, ज्योष्ठा, तिथिक्षय, आषाढ़, कार्तिक तथा फागुकी भूर्जिष्य और अन्य शुभ तिथियोंमें जो वहाँ ब्राह्मणोंको दान देते हैं, वे अन्य तीर्थोंकी अपेक्षा हजारगुण फल पाते हैं। जो लोग वहाँ विधिपूर्वक पितरोंको पिण्डदान करते हैं, उनके पितर अक्षय दृष्टि लाभ करते हैं। इस प्रकार मैं समुद्रमें स्नान करनेका उत्तम फल बतलाऊँ। वह सब पापोंको दूर करनेवाला, पवित्र तथा इच्छानुसार सब फलेंका दाता है। यह पुराण-रहस्य नास्तिकको नहीं बतलाना चाहिये। भूतलमें जितने तीर्थ, नदियाँ और सरोवर हैं, वे सब समुद्रमें प्रवेश करते हैं। इसलिये वह सबसे श्रेष्ठ है। सरिताओंका स्वामी समुद्र सधस्ता तीर्थोंका राजा है। वह सब तीर्थोंमें श्रेष्ठ और समस्त इच्छित फलार्थको देनेवाला है। जैसे सुकैदय होनेपर अन्धकारका नाश हो जाता है, उसी प्रकार तीर्थराज समुद्रमें स्नान करनेपर सब पापोंका क्षय हो जाता है। जहाँ सकल भगवान् नारायणका निवासस्थान है, उस तीर्थराज समुद्रके गुणोंका वर्णन कौन कर सकता है। जहाँ निन्यानबे करोड़ तीर्थ रहते हैं, उसकी श्रेष्ठताके विषयमें क्या कहा जा सकता है। इसलिये वहाँ स्नान, दान, होम, जप और देवपूजन आदि जो कुछ भी कर्म किया जाता है, वह अव्यय होता है। वहीसे उस तीर्थमें जाय, जो अक्षयैव—वज्रके अङ्गसे उत्पन्न हुआ है। उसका नाम है इन्द्रद्युम्नसरोवर। वह पवित्र एवं शुभ तीर्थ है। बुद्धिमान् पुरुष वहाँ जाकर पवित्र भयसे आचमन करे और मन-ही-मन श्रीहरिका ध्यान करके जलमें डूबे। उस समय इस मन्त्रका उच्चारण करे—

अक्षयैवाहसम्भूत तीर्थ सर्वाचनाराम।
स्नानं स्नानं करोम्यहं यथं हर भजेऽस्तु ते॥

'अधमेध-यज्ञके अङ्गसे प्रकट हुए तथा सम्पूर्ण पापोंके विनाशक तीर्थ। आज मैं तुम्हारे जन्ममें जान करता हूँ। मेरे पाप हर लो: तुम्हारे नमस्कार है।'

इस प्रकार उच्चारण करके विधिपूर्वक स्नान करे और देवताओं, ऋषियों, पितरों तथा अन्योन्य लोगोंका तिल-जलसे तर्पण करके आचमन करे। फिर पितरोंको पिण्डदान दे, पुरुषोत्तमका पूजन करे। ऐसा करनेवाला मनुष्य दस अधमेध-यज्ञोंका फल प्राप्त करता है। वह सात पीढ़ी ऊपर और सात पीढ़ी नीचेके पुरुषोंका उद्धार करके इच्छानुसार गतिवाले विमानके द्वारा विष्णुलोकमें जाता है। इस प्रकार पाँच तीर्थोंका सेवन करके एकादशीको उपवास करे। जो मनुष्य ज्येष्ठकी पूर्णिमाको भगवान् पुरुषोत्तमका दर्शन करता है, वह पूर्वोक्त फलका भागी होकर परम ज्ञानको जाता है, वहाँसे पुनः उसका लौटना नहीं होता।

मुनियोंने पूछा—पितामह! आप यज्ञ आदि महीनोंको छोड़कर ज्येष्ठ मासकी इतनी प्रशंसा क्यों करते हैं? प्रभो। इसका कारण बतलाइये।

ब्रह्माजी बोले—मुनिवरों! सुनो। अन्य यज्ञोंकी अपेक्षा जो ज्येष्ठ मासकी बारम्बार प्रशंसा करता हूँ, उसका कारण संक्षेपसे बतलाता हूँ। पृथ्वीपर जो-जो तीर्थ, नदियाँ, सरोवर, पुष्करिणी, तट्याग, खाड़ी, कुप, हृद और समुद्र हैं, वे सब ज्येष्ठके कुम्भलपक्षकी दशमीसे लेकर पूर्णिमातक एक सप्ताह प्रत्यक्षरूपसे पुरुषोत्तमतीर्थमें जाकर रहते हैं। यह उनका सदाका नियम है। इसलिये वहाँ आन-दान, देवदर्शन आदि जो कुछ पुण्य कर्म उस समय किया जाता है, वह अक्षय होता है। द्विजवरों! ज्येष्ठ मासके शुक्लपक्षकी दशमी तिथि दस पापोंको हरती है, इसलिये उसे दशहरा कहा गया है। उस दिन जो लोग अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखते हुए श्रीकृष्ण, बलराम और

सुभद्राका दर्शन करते हैं, वे सब पापोंसे मुक्त हो विष्णुलोकमें जाते हैं। उत्तरायण और दक्षिणायनके आरम्भके दिन श्रीपुरुषोत्तम, बलराम और सुभद्राका दर्शन करनेवाला मानव वैकुण्ठ-धाममें जाता है। जो मनुष्य फल्गुनकी पूर्णिमाके दिन एकचित्त हो पुरुषोत्तम श्रीगोविन्दको धूलैपर विराजमान देखता है, वह उनके धाममें जाता है। विषुवयोगके दिन विधिपूर्वक पञ्चतीर्थविधिका पालन करके जो श्रीकृष्ण, बलराम तथा सुभद्राका दर्शन करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो विष्णुलोकमें जाता है। जो वैशाख-कृष्ण तृतीयाको चन्दन-चर्चित श्रीकृष्णका दर्शन करता है, वह विष्णु-धाममें जाता है। ज्येष्ठा नक्षत्रसे युक्त ज्येष्ठमासकी पूर्णिमाके दिन जो श्रीपुरुषोत्तमका दर्शन करता है, वह अपनी इच्छीस पीढ़ियोंका उद्धार करके श्रीविष्णुलोकमें जाता है।

जिस दिन राशि और नक्षत्रके योगसे महाज्येष्ठी (ज्येष्ठकी पूर्णिमा) हो, उस दिन यज्ञपूर्वक श्रीपुरुषोत्तमतीर्थमें पहुँचना चाहिये। महाज्येष्ठी-पक्षके दिन श्रीकृष्ण, बलराम तथा सुभद्राका दर्शन करके मनुष्य बारह यात्राओंसे भी अधिक फलका भागी होता है। प्रयाग, कुम्भेश्वर, नैमिषारण्य, पुष्कर, गया, हरिद्वार, कुम्भकर्त, गङ्गा-सागर-संगम, महाभरी, वैतरणी तथा अन्य जितने तीर्थ हैं, अधिकाधिक कहनेकी क्या आवश्यकता, पृथ्वीतलके सब तीर्थ, सब मन्दिर, सब समुद्र, सब पर्वत, सब नदी और सब सरोवरोंमें ग्रहणके समय स्नान-दानसे जो फल होता है, वही महाज्येष्ठीको श्रीकृष्णका दर्शन करनेमात्रसे मनुष्य पा लेता है। अतः महाज्येष्ठीको सर्वथा प्रयत्न करके पुरुषोत्तमतीर्थकी यात्रा करना चाहिये। सुभद्राके साथ श्रीकृष्ण और बलरामका दर्शन करनेवाला मनुष्य अपने समस्त कुलक उद्धार करके भगवान् विष्णुके धाममें जाता है।

ज्येष्ठपूर्णिमाको श्रीकृष्ण, बलराम और सुभद्राके स्नानका उत्सव तथा उनके दर्शनका माहात्म्य

मुनियोंने पूछा—ब्रह्मजी! भगवान् श्रीकृष्णका स्नान किस समय और किस विधिसे होता है? विधिज्ञोंमें श्रेष्ठ! हमें उसकी विधि बताइये।

ब्रह्माजी बोले—मुनियो! श्रीकृष्ण, बलराम और सुभद्राका स्नान परम पुण्यमय और सब पापोंका नाशक है। मैं उसकी विधि आदिकय वर्णन करता हूँ, सुनो। ज्येष्ठ मासमें पूर्णिमाको ज्येष्ठा नक्षत्र आनेपर वहाँ हर समय श्रीहरिका स्नान होता है। वहाँ सर्वतीर्थमय कूप है, जो अत्यन्त निर्मल और पवित्र माना गया है। उस पूर्णिमाको उसमें भावली गङ्गा प्रत्यक्षरूपसे प्रकट होती है। अतः ज्येष्ठकी पूर्णिमाको सुवर्णमय कलशोंसे श्रीकृष्ण, बलभद्र और सुभद्राके स्नानके लिये उस कूपसे जल निकाला जाता है। इसके लिये एक सुन्दर मङ्ग बनवाकर उसे पत्थरका आदिसे अलंकृत किया जाता है। वह सुदृढ़ और सुखपूर्वक चलने योग्य बना होता है। बस्य और फुलोंमें उसे सजाया जाता है। वह सूख विस्तृत होता है और धूपसे सुवासित किया जाता है। उसपर श्रीकृष्ण और बलरामको स्नान करानेके लिये श्वेत वस्त्र बिछाया जाता है। उसे सजानेके लिये मोतीके हार लटकाने जाते हैं। भौति-भौतिके वादोंकी ध्वनि होती रहती है। उस मङ्गपर एक ओर भगवान् श्रीकृष्ण और दूसरी ओर भगवान् बलराम विराजते रहते हैं। बीचमें सुभद्रादेवीको पधरकर जय-जयकार और मङ्गलश्लोकके साथ स्नान कराया जाता है। उस समय ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा अन्य जातिके लाखों स्त्री-पुरुष वहाँ घेरे रहते हैं। गृहस्थ, ब्राह्मण, संन्यासी और ब्रह्मचारी—सभी मङ्गपर विराजमान भगवान्

श्रीकृष्ण और बलरामको स्नान करते हैं। पूर्वोक्त सम्पूर्ण तोर्थ अपने पुण्यमिश्रित जलोंमें धुंधक्-धुंधक् भगवान्को स्नान कराते हैं। फिर राक्षस, भेरी, मृदङ्ग, झाँझ और घण्टा आदि वाद्योंकी तुमुल ध्वनिके साथ स्त्रियोंके मङ्गलगीत, स्तुतियोंके मन्त्रर सन्ध, जय-जयकार, यौगस्व तथा वेणुमन्दका महान् शब्द समुद्रकी गर्जनाके समान आन पड़ता है। उस समय मुनिसंग वेद-पाठ और मन्त्रोच्चारण करते हैं। सम्मानके साथ भौति-भौतिकी स्तुतियोंके पुण्यमय शब्द होते रहते हैं। यति, ब्राह्मण, गृहस्थ और ब्रह्मचारी स्नानके समय बड़ी प्रसन्नताके साथ भगवान्का स्तवन करते हैं। श्रीकृष्ण और बलरामके ऊपर राज-दण्डविधूषिता चँवर डुलाये आते हैं। आकाशमें कण, विद्याधर, सिद्ध, किन्नर, अप्सराएँ, देव, गन्धर्व, चारण, आदित्य, जसु, रुद्र, साध्य, विश्वदेव, महर्षि, लोकपाल तथा अन्य लोग भी भगवान् पुरुषोत्तमकी स्तुति करते हैं—‘देवदेवेश्वर। पुराणपुरुषोत्तम! आपको नमस्कार है। जगत्पालक भगवान् जगन्नाथ। आप सृष्टि, स्थिति और संहार करनेवाले हैं। जो त्रिभुवनको धारण करनेवाले, ब्रह्मणभक्त, मोक्षके कारणभूत और समस्त मनोवाञ्छित फलोंके दाता हैं, उन भगवान्को हम प्रणाम करते हैं।’ इस प्रकार आकाशमें खड़े हुए देवता श्रीकृष्ण, महाबली बलराम तथा सुभद्रादेवीकी स्तुति करते, गन्धर्व गाते और अप्सराएँ नृत्य करती हैं। देवताओंके जाने बजते और शीतल वायु चलती है। उस समय आकाशमें खड़े हुए मेघ पुण्यमिश्रित जलकी वर्षा करते हैं। मुनि, सिद्ध और चारण जय-जयकार करते हैं।

तत्पश्चात् देवतागण मङ्गल सामग्रियोंके साथ विधि और मन्त्रयुक्त अभिषेकोपयोगी द्रव्य लेकर भगवान्‌का अभिषेक करते हैं। इन्द्र, सूर्य, चन्द्रमा, धाता, विधाता, वायु, अग्नि, पूषा, भग, अर्यमा, त्वष्ठा, दोनों पत्नियोंसहित विवस्वान्, मित्र, वरुण, रुद्र, वसु, आदित्य, अश्विनीकुमार, विश्वदेव, मरुद्गण, साध्य, पितर, विद्याधर, पितामह पुलस्त्य, पुलह, अङ्गिरा, कश्यप, अत्रि, मरीचि, भृगु, क्रतु, हर, प्रचेता, मनु, दक्ष, धर्म काल, यम, मृत्यु, वन्द्यत तथा अन्य अनेकों देवता भगवान्‌का अभिषेक करनेके लिये इधर-उधरसे आते हैं और सुवर्णभय कलशोंमें रखे हुए पुष्प-मिश्रित आकलगाङ्गाके जलसे श्रीकृष्ण, सुभद्रा तथा बलरामजीको ज्ञान कराते हैं तथा प्रसन्नतापूर्वक इस प्रकार उनकी स्तुति करते हैं—

सम्पूर्ण लोकोंका पालन करनेवाले अभिषेक! आपकी जय हो, जय हो आप भक्तोंके रक्षक तथा शरणागतवात्सल्य हैं। सम्पूर्ण भूतोंमें व्यापक आदिदेव! आपकी जय हो नानात्वके करणभूत वासुदेव! आप असुरोंके संहारक, दिव्य मत्स्यरूप धारण करनेवाले, समस्त देवताओंमें श्रेष्ठ तथा समुद्रमें शयन करनेवाले हैं। योगिवर! आपकी जय हो, जय हो सूर्य आपके नेत्र हैं तथा आप देवताओंके राजा हैं। वेदोंमें आप ही सर्वश्रेष्ठ बताया गये हैं। आपने कच्छप अवतार धारण किया था। आप श्रेष्ठ यज्ञस्वरूप हैं। आपकी नाभिसे कमल उत्पन्न हुआ था, इसलिये आप पद्मनाभ कहलाते हैं आप महाद्वीप विचरनेवाले तथा योगशायी हैं। आपकी जय हो, जय हो। महान् योग धारण करनेवाले विश्वमूर्ते! चक्रधर! भूतनाथ! धरणीधर! शेषशायिन्! आपकी जय हो, जय हो। आप पीताम्बरधारी, चन्द्रमाके समान कान्तिमान्, योगमें वास करनेवाले, अग्निमुख,

धर्मके अज्ञासम्मान, गुणोंके भंडार, लक्ष्मीके निवासस्थान और गरुडवाहन हैं। आपकी जय हो, जय हो। आप आनन्दनिकेतन, धर्मध्वज, पृथ्वीके आश्रयस्थान और दुर्बोध चरित्रवाले हैं। योगी पुरुष हो आपको ज्ञान पाते हैं आप यज्ञोंमें निवास करनेवाले तथा वेदोंके वेद्य हैं। शान्ति प्रदान करनेवाले और योगिज्येके ध्येय हैं। आपकी जय हो, जय हो। आप ही सबका पालन-पोषण करते हैं। ज्ञान आपका स्वरूप है। आप लक्ष्मीनिधि हैं। पाव-भक्तिसे ही आपका ज्ञान होना सम्भव है। मुक्ति आपके हाथमें है। आपका शरीर निर्मल है। आप सत्त्वगुणके अधिष्ठान, समस्त गुणोंसे समृद्धिशाली, यज्ञकर्ता, निर्गुण तथा मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं। धूमण्डलको शरण देनेवाले परमेश्वर! आपकी जय हो, जय हो। आप दिव्य कान्तिसे सम्पन्न, समस्त लोकोंको शरण देनेवाले, भगवती लक्ष्मीसे संयुक्त, कमलके-से नेत्रोंवाले, सृष्टिकारक, योगयुक्त, अलसोंके पूजनकी भीति इयाम अङ्गोंवाले, समुद्रके भीतर शयन करनेवाले, लक्ष्मीरूपी कमलके भ्रमर तथा भक्तोंके अधीन रहनेवाले हैं। लोककान्त! आपकी जय हो, जय हो। आप परम शान्त, परम स्मरभूत, चक्र धारण करनेवाले, सर्पोंके साथ रहनेवाले, नीलवस्त्रधारी, शान्तिकारक, मोक्षदायक तथा समस्त पापोंको दूर करनेवाले हैं। आपकी जय हो, जय हो। बलरामजीके छोटे भाई जगदीश्वर श्रीकृष्ण! आपकी जय हो, पद्मपत्रके समान नेत्रोंवाले तथा इच्छानुसार फल देनेवाले प्रभो! आपकी जय हो। चक्र और गदा धारण करनेवाले नारायण! आपका वक्षःस्थल वनमालासे आच्छादित है। आपकी जय हो लक्ष्मीकान्त विष्णो आपको नमस्कार है। आपकी जय हो।

इस प्रकार श्रीकृष्ण, बलराम और सुभद्राका स्तवन, दर्शन और वन्दन करके देवतासंग अपने

अपने स्थानको चले जाते हैं। उस समय जो मनुष्य मण्डप पर विराजमान पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण, बलभद्र और सुभद्राका दर्शन करते हैं, वे अविनाशी पदको प्राप्त होते हैं। सहस्र गो-दान, विधिवत् भूमि-दान, अर्घ्य और अतिथ्यपूर्वक अन्न-दान, विधिवत् कुशोत्सर्ग, द्रौपदीकृत्य जल-दान, चन्द्रगन्धकके अनुष्ठान तथा शास्त्रोक्त विधिसे एक मासका उपवास करनेसे जो फल होता है, वही मण्डप पर विराजमान श्रीकृष्णका दर्शन करनेसे मिल जाता है अथवा अधिक कहनेकी क्या आवश्यकता, सम्पूर्ण तीर्थोंमें व्रत और दानका जो फल बटलता गया है, वह मण्डप पर श्रीकृष्ण, सुभद्रा और बलरामका दर्शन करनेमात्रसे प्राप्त हो जाता है। अतः स्त्री हो या पुरुष, सबको उस समय पुरुषोत्तमका दर्शन करना चाहिये। इससे सब तीर्थोंमें स्नान आदि करनेका फल मिलता है। भगवान्‌के कृत्य किये हुए सेवा जलको अपने शरीरपर छिड़कना चाहिये। इससे पुत्रकी इच्छा

करनेवालों स्त्रीको पुत्रकी प्राप्ति होती है। सुख चाहनेवालोंको स्त्रीभरण मिलता है। रोगार्त नारी रोगसे मुक्त हो जाती है और धनको अभिलषा रखनेवाली स्त्रीको धन मिलता है। अतः भगवान् श्रीकृष्णके स्नानावरोध जलको अपने अङ्गोंपर छिड़कना चाहिये। यह सम्पूर्ण अभिलषित वस्तुओंको देनेवाला है। जो स्नानके पश्चात् दक्षिणाभिमुख जलसे हुए भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन करते हैं, वे निश्चय ही ब्रह्महत्या आदि पापोंसे मुक्त हो जाते हैं। रामत्रयीमें पृथ्वीकी तीन परिक्रमा करनेका जो फल बताया गया है, वही दक्षिणाभिमुख भाग्य करते हुए श्रीकृष्णका दर्शन करनेसे प्राप्त होता है। अधिक क्या कहा जाय—वेद, रामायण, पुराण, महाभारत तथा समस्त धर्मशास्त्रोंमें पुण्यकर्मका जो कुछ भी फल बताया गया है, वह सब सुभद्राके साथ दक्षिणाभिमुख यात्रा करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामका दर्शन करनेमात्रसे मिल जाता है।



गुण्डिचा-यात्राका माहात्म्य तथा द्वादश यात्राकी प्रतिष्ठा-विधि

ब्रह्माजी कहते हैं—भूमियो! भगवान् श्रीकृष्ण, बलभद्र और सुभद्रा—ये रथपर विराजमान होकर जब गुण्डिचा—मण्डपकी यात्रा करते हैं, उस समय जिनमें उनका दर्शन प्राप्त होता है तथा जो लोग एक सप्ताहक उक्त मण्डपमें विराजमान श्रीकृष्ण, बलभद्र और सुभद्राकी झाँकी करते हैं, वे विष्णुलोकमें जाते हैं।

भूमिधोषि वृद्धा—जगत्पते! इस यात्राका आरम्भ किसने किया? तथा उसमें सम्मिलित होनेवाले मनुष्योंको क्या फल मिलता है?

ब्रह्माजी बोले—ब्राह्मणो! पूर्वकालमें राजा इन्द्रद्युम्ने भगवान्‌से प्रार्थना की कि 'मेरे सरोवरके उत्तर एक सप्ताहके लिये आपकी यात्रा हो।'।

श्रीभगवान् बोले—राजन्। तुम्हारे सरोवरके उत्तर सात दिनोंके लिये मेरी यात्रा होगी, वह यात्रा गुण्डिचा नामसे विख्यात और समस्त अभिलषित फलोंको देनेवाली होगी। जो लोग वहाँ मण्डपमें स्थित होनेपर मेरी, बलरामजीकी और सुभद्राकी एकाग्रचित्तसे व्रद्धापूर्वक पूजा करेंगे तथा जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, स्त्री और

* गुण्डिचा नामक ठगान-मन्दिर जो पुरीमें इन्द्रद्युम्नसरोवरके उत्तर स्थित है। इसके गुण्डिचा, गुण्डिया आदि नाम भी मिलते हैं।

सूद, पुष्प, गन्ध, धूप, दीप, मैसूर, धौत-धौतिके उपहार, नमस्कार, परिक्रम, जप-जपकार, स्तोत्र-गीत तथा मनोहर वाद्योंके द्वारा आराधना करेंगे, उन्हें पेरी कृपासे कोई भी मनोरथ दुर्लभ नहीं होगा।

मैं कहकर भगवान् यहीं अन्तर्धान हो गये और वे महात्म्य इन्द्रसुप्त कृतकृत्य हो गये। अतः सब प्रकारसे प्रयत्न करके गुण्डिका-मण्डपमें समस्त अभिलषित वस्तुओंको देनेवाले भगवान् पुरुषोत्तमका दर्शन करना चाहिये। वहाँ पुरुषोत्तमका दर्शन करके स्त्री या पुरुष जिन-जिन भोगोंको चाहें, उन्हें प्राप्त कर सकते हैं।

मुनियोंने पूछा—भगवान्! गुण्डिकाकी एक-एक यात्राका पृथक्-पृथक् क्या फल है? उसे करनेसे नर या नारीको कौन-सा फल मिलता है?

ब्रह्माजी बोले—ब्राह्मणो! सुनो! मैं प्रत्येक यात्राका फल बताता हूँ। गुण्डिकामें प्रवेशिनी एकादशोंके दिन, भस्मजुनकी पूर्णिमाको तथा विषुवयोगमें विधिपूर्वक यात्रा करके श्रीकृष्ण, बलराम और सुभद्राका दर्शन करनेसे मनुष्य वैकुण्ठ-धाममें जाता है। क्षेत्रोंमें श्रेष्ठ पुरुषोत्तमकी सेवा ही पवित्र, रमणीय, मनुष्योंको भोग और मोक्षका दाता तथा सब जीवोंको सुख पहुँचानेवाला है। जो किसीद्वारा स्त्री या पुरुष ज्येष्ठमासमें वहाँ शास्त्रोक्त विधिके अनुसार बारह यात्राएँ करके एकाग्रचित्तसे उनकी प्रतिष्ठा करता है और उस समय धन हर्ष करनेमें कृपणता नहीं करता, वह भीति-भीतिके भोगोंका उपभोग करके अन्तमें मोक्ष-पदको प्राप्त होता है।

मुनियोंने कहा—देव! जगत्पते! हम आपके मुहसे द्वादश यात्राकी प्रतिष्ठाकी विधि, पूजा, दान और फल सुनना चाहते हैं।

ब्रह्माजी बोले—ब्राह्मणो! जब बारह यात्राएँ पूरी हो जायें, तब विधिपूर्वक उनकी प्रतिष्ठा करे।

यह सब पापोंका नाश करनेवाली है। ज्येष्ठमासके शुक्लपक्षमें एकादशी तिथिको एकाग्रचित्तसे किसी पवित्र जलप्रपातपर जाकर आचमन करे और इन्द्रिमसंयमपूर्वक पवित्र भावसे सब तीर्थोंका आवाहन करके भगवान् नारायणका ध्यान करे। हुए विधिवात् स्नान करे। ऋषियोंने स्नान-कर्ममें जिसके लिये जैसी विधि बतलायी है, उसको ठीकी विधिसे स्नान करना चाहिये। स्नानके पश्चात् नम, शोत्र और विधिकी अथ पुरुष शस्त्रोक्त विधिसे देवताओं, ऋषियों, पिताओं तथा अन्य जीवोंका हर्षण करे। फिर जलसे निकलकर दो स्वच्छ वस्त्र पहने और विधिपूर्वक आचमन करके एक ही आठ बार गायत्रीका मानसिक जप करे। गायत्री सब वेदोंकी माता, सम्पूर्ण पापोंको दूर करनेवाली तथा परम पवित्र है। इसके सिवा अन्यत्र सर्वसम्बन्धी मन्त्रोंका भी ब्रह्मापूर्वक जप करना चाहिये। उपरन्तः तीन बार परिक्रम करके सूर्यदेवको प्रणम करे। ब्रह्मण, अग्नि और वैश्य—इन तीन वर्गोंका ज्ञान और जप वैदिक विधिके अनुसार कर्त्तव्य गया है; किन्तु स्त्री और शूद्रोंके ज्ञान और जपमें वैदिक विधिके निषेध हैं।

इसके बाद मीन होकर घरमें जल और हाथ-पैर धोकर विधिवात् आचमन करके श्रीपुरुषोत्तमकी पूजा करे। पहले भगवान्को सीसे ज्ञान कराये। फिर दूधसे, उसके बाद मधु, गन्ध और जलसे; फिर तीर्थके चन्दन और जलसे ज्ञान कराये। तदनन्तर भक्तिपूर्वक दो उत्तम वस्त्र पहनाये, फिर चन्दन, अगर, कपूर और केसर भगवान्के अङ्गोंमें लगाये। पुनः परार्धिकके साथ कमलसे तथा विष्णुदेवतासम्बन्धी मलिका आदि अन्य पुष्पोंसे श्रीपुरुषोत्तमकी पूजा करे। भोग और मोक्षके दाता जगदीश्वर श्रीहरिको इस प्रकार पूजा करके उनके समक्ष अगर, गुग्गुलु तथा अन्य सुगन्धित पदार्थोंके

साथ घूप खलाये। अपनी शक्तिके अनुसार धीसे दीपक जलाकर रखे, धी अथवा तिलके तेलसे अन्य बारह दीपक जलाकर रखे। नैवेद्यके रूपमें खीर, पूजा, पूड़ी, बड़ा, लह्दु, खाँड़ और फल निवेदन करे। इस प्रकार पञ्चोपचारसे श्रीपुरुषोत्तमका पूजन करके 'ॐ नमः पुरुषोत्तमाय' इस मन्त्रका एक सौ आठ बार जप करे इसके बाद भक्तिपूर्वक भगवान् पुरुषोत्तमसे इस प्रकार प्रार्थना करे—

नमस्ते सर्वलोकेश भक्त्यासक्तधर्मद।
संसारसागरे मग्नं शशि चं पुरुषोत्तम॥
धाम्ने मया कृता यज्ञा इन्द्राण्येव जगज्जो।
प्रसादात्तव गोविन्द सम्पूर्णस्ता भवन्तु मे॥

'भक्तोंको अभय प्रदान करनेवाले सर्वलोकेश्वर पुरुषोत्तम आपको नमस्कार है। मैं इस संसार-सागरमें डूबा हुआ हूँ। केश उद्धार कीजिये। जगत्पते! गोविन्द! आपके दर्शनके लिये मैंने जो करहों करवाई की हैं, वे सब आपके प्रसादसे मेरे लिये परिपूर्ण हों।'

इस प्रकार भगवान्को प्रसन्न करके सहाज दण्डवत् करे। तत्पश्चात् पुष्प, चन्द और चन्दन अदिसे भक्तिपूर्वक गुरुकी पूजा करे। क्योंकि गुरु और भगवान्में कोई अन्तर नहीं है। तदनन्तर भीति-भीतिके पुच्छसे भगवान्के ऊपर एक सुन्दर पुष्प-मण्डप बनाये, फिर श्रद्धा और एकप्रज्ञापूर्वक रात्रिमें जागरण करे। भगवान् वासुदेवकी कथा और गीतकी व्यवस्था रखे। इस प्रकार विद्वान् पुरुष ध्यान, पाठ और स्तुति करते हुए रात्रि व्यतीत करे। तत्पश्चात् निर्मल प्रभक्त होनेपर इन्द्राण्येव बारह ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे। वे ब्राह्मण छात्रक, वैद्योंमें परंगत, इतिहास-पुण्यके ज्ञाता, श्रेष्ठिय और ज्ञेय-द्रिय होने चाहिये। इसके बाद स्वयं भी विधिपूर्वक स्नान करके धुला हुआ वस्त्र पहने और इन्द्रियसंयमपूर्वक पहले भगवान्को स्नान कराकर उनकी पूजा करे।

भगवान्की पूजाके बाद ब्राह्मणोंको भी पूजा करे। उनके लिये बारह गौर् दान करके श्रद्धा और भक्तिपूर्वक सुवर्ण, छतरी और जूते, घन तथा घल्ल अदि समर्पित करे। सद्गुरुसे पूजित होनेपर भगवान् गोविन्द संतुष्ट होते हैं। आचार्यको भी भक्तिपूर्वक गौ, वस्त्र, सुवर्ण, छतरी, जूते तथा काँसेका पात्र अर्पित करे। तदनन्तर ब्राह्मणोंको खीर, पकवान, गुह और बीमें बने हुए पदार्थ भोजन कराये। जब वे भोजन करके तृप्त हो जायें, तब उनके लिये बारह कलसे भरे हुए घट दान करे। उन चढ़ाईके साथ लह्दु और चथासक्ति दक्षिणा भी होनी चाहिये। आचार्यको भी कलश और दक्षिणा निवेदन करे। इस तरह ब्राह्मणोंकी पूजा करके विष्णुतुल्य ज्ञानदाता गुरुको भी पूर्ण भक्तिके साथ पूजा करे। पूजनके पश्चात् नमस्कार करके यह मन्त्र पढ़े—

सर्वव्यापी जगन्नाथः शङ्खचक्रगदाधरः।

जगदिनिधने देवः प्रीयतां पुरुषोत्तमः॥

'शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले सर्वव्यापी, जगन्नाथ एवं आदि-अन्तसे रहित भगवान् पुरुषोत्तम मुझपर प्रसन्न हों।'

जों कहकर ब्राह्मणोंकी तीन बार प्रदक्षिण करे। इसके बाद यस्तक झुक्कर आचार्यको भक्तिपूर्वक प्रणाम करे। प्रणामके पश्चात् उन्हें विदा करे। फिर अन्य ब्राह्मणोंको भी गौवकी सीमातक पहुँचा दे। अन्तमें सबको नमस्कार करके लौट आये। फिर स्वजनों, बन्धुवों, अन्य उपासकों, दीनों, भिखमंगों और अन्न चाहनेवाले अन्य लोगोंको भोजन कराकर फिर मौन होकर भोजन करे। ऐसा करके समस्त नर-नारी एक हजार अश्वमेध तथा सौ राजसूय-यज्ञोंका फल पाते हैं और ऐसा करनेवाला बुद्धिमान् पुरुष सूर्यके समान तेजस्वी और इच्छानुसार चलनेवाले विमानके द्वारा भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है।

तीर्थोंके भेद, यामनका बलिसे भूमिदान-ग्रहण तथा गङ्गाजीका महेश्वरकी जटामें गमन

ब्रह्माजी कहते हैं—द्विजवरों! सब सीधों और क्षेत्रोंमें जो जप, होम, व्रत और तपस्या तथा दानके फल प्राप्त होते हैं, उनमेंसे कोई ऐसा नहीं दिखायी देता, जो पुरुषोत्तमक्षेत्रमें रहनेके फलकी समानता कर सके। अब बारंबार अधिक कहनेकी क्या आवश्यकता, वह पुरुषोत्तमक्षेत्र सबसे प्यारा है—यह बात सत्य है, सत्य है, सत्य है। समुद्रके जलसे घिरे हुए पुरुषोत्तमतीर्थका एक बार भी दर्शन कर लेनेपर तथा ब्रह्मविद्याका एक बार बोध हो जानेपर धनुष्य फिर गर्भमें नहीं आता। जहाँ भगवान् विष्णुका संनिभान है, उस उत्तम पुरुषोत्तमक्षेत्रमें एक वर्ष अथवा एक मास तक भगवान्की उपासना करे। ऐसा करनेवाले पुरुषने जप, होम तथा भारी तपस्या की है। वह उस परम धाममें जाता है, जहाँ साक्षात् योगेश्वर श्रीहरि विराजमान रहते हैं।

मुनिजनोंने कहा—भगवन्! हमें तीर्थकी महिम्नाका विस्तारपूर्वक श्रवण करनेपर भी तुमि नहीं होती। आप पुनः किसी गोपनीय तीर्थका वर्णन करें।

ब्रह्माजी बोले—श्रेष्ठ ब्राह्मणों! पूर्वकालमें देवर्षि नारदने मुझसे यही प्रश्न पूछा था। उस समय मैंने प्रयत्नपूर्वक जो कुछ उनसे कहा था, वही तुम्हें भी बतलाता हूँ।

नारदजीने पूछा—जगत्पते स्वर्गलोक, मर्त्यलोक और रसातलमें कुल कितने तीर्थ हैं तथा सब तीर्थोंमें सदा कीन सबसे बढ़कर है?

ब्रह्माजी बोले—देवर्षे! स्वर्गलोक, मर्त्यलोक और रसातलमें चार प्रकारके तीर्थ हैं—दैव, आसुर, आर्ष और पानुष। ये तीनों लोकोंमें विख्यात हैं। जम्बूद्वीपमें भारतवर्ष तीर्थभूमि है।

वह तीनों लोकोंमें विख्यात हैं। बेटा। वह कर्मभूमि है, इसलिये उसे तीर्थ कहते हैं। पहले मैंने तुम्हें जो बताया है वे सब तीर्थ भारतवर्षमें ही हैं। हिमालय और विन्ध्यपर्वतके बीचमें छः ऐसी नदियाँ हैं, जिनका प्राकट्य ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव—इन देवताओंसे हुआ है। इसी प्रकार दक्षिणसमुद्र तथा विन्ध्यपर्वतके बीचमें भी छः देवसम्पन्न नदियाँ हैं। ये बारह नदियाँ प्रधानरूपसे व्रतस्थायी गयी हैं। गोदावरी, भीमरथी, तुङ्गभद्रा, कृष्णवेणी, ताप्ती और पयोधनी—ये विन्ध्यपर्वतके दक्षिणकी नदियाँ हैं। भागीरथी, नर्मदा, यमुना, सरस्वती, विशोक और चितस्ता—ये विन्ध्याचल और हिमालय पर्वतसे सम्बन्ध रखनेवाली नदियाँ हैं। इन पुण्यययी नदियोंको देवतीर्थ बताया गया है। गन्ध, कोणसुर, वृत्, त्रिपुर, अन्धक, हयमूर्धा, सवण, नमुषि, मृङ्गक, यम, पातालकैतु, मय तथा पुष्कर—इनके द्वारा आवृत तीर्थ आसुर कहलाते हैं। प्रभास, भार्गव, अगस्ति, नर-नारायण, वसिष्ठ, भरद्वाज, गौतम और कश्यप—इन ऋषि-मुनियोंद्वारा सेवित तीर्थ ऋषितीर्थ हैं। अम्बरीष, हरिश्चन्द्र, मान्यस्ता, मनु, कुरु, कनखल, भद्राक्ष, सगर, अक्षयूप, नजिकेत्य, वृषाकर्षि तथा अरिन्दम आदि मानवोंद्वारा निर्मित तीर्थ मानुष कहलाते हैं। ये सब यश तथा उत्तम फलकी सिद्धिके लिये निर्मित हुए हैं। तीनों लोकोंमें कहीं भी जो स्वतः प्रकट हुए दैव तीर्थ हैं, उन्हें पुण्यतीर्थ कहा गया है। इस प्रकार मैंने तीर्थ भेद बतलाये हैं।

महादैत्य राजा बलि देवताओंके अजेय शत्रु हुए; उन्होंने धर्म, यश, प्रजापालन, गुरुभक्ति, सत्वभावण, क्ल, पराक्रम, त्याग और क्षमाके

द्वारा वह सम्मान प्राप्त किया, जिसकी तीनों लोकोंमें कहीं उपमा नहीं है। उनकी बढ़ती हुई समृद्धि देखकर देवताओंको बड़ी चिन्ता हुई। वे आपसमें सलाह करने लगे कि हम बलिको कैसे जीतें। राजा बलिके शासनकालमें तीनों लोक निष्कण्टक थे कहींपर आधि-व्याधि अथवा शत्रुओंकी बाधा नहीं थी। अनावृष्टि और अधर्मका तो नाम भी नहीं था। स्वप्नमें भी किसीकी दुष्ट पुरुषका दर्शन नहीं होता था। देवताओंको उनकी उपरि याणकी तरह चुभती थी बलिकी कीर्तिरूपी तलवारसे ये टुकड़े टुकड़े हुए जाते थे तथा उनके शासनरूपी हाकिमसे देवताओंके समस्त अङ्ग विदीर्ण हो रहे थे। अतः उन्हें कभी शान्ति नहीं मिलती थी। देवता उनसे द्वेष करने लगे। उनके यशरूपी अग्निसे जलने लगे अतः वे व्याकुल होकर भगवान् विष्णुकी शरणमें गये।



देवता बोले—शत्रु, चक्र और गदा धारण करनेवाले जगन्नाथ! हम पीड़ित हैं। हमारी सत्ता छिन गयी है। आप हमारी ही रक्षकके लिये आसन्न-

शस्त्र धारण करते हैं। आप जैसे स्वामीके होते हुए हमपर ऐसा दुःख आ पड़ा है हमारी जो चाणी आपको प्रणाम करती थी, वही एक दैत्यको कैसे नमस्कार करेगी। सुरेश्वर! आपके ऐश्वर्यसे पुष्ट हो अपने ही पराक्रमसे तीनों लोकोंको जीतकर हम स्थिर होंगे। दैत्यको कैसे नमस्कार करें।

देवताओंका यह वचन सुनकर दैत्योंका संहार करनेवाले भगवान्ने देवकायकी सिद्धिके लिये इस प्रकार कहा—

श्रीभगवान् बोले—देवताओ बलि मेरा भक्त है, उसे देवता और असुर कोई भी नहीं मार सकते। जैसे तुमलोग मेरे द्वारा पालन-पोषणके योग्य हो, वैसे बलि भी है मैं बिना युद्धके ही स्वर्गमें बलिको राज्य छीन लूँगा और बलिको जीधकर तुम्हारा राज्य तुम्हें लौटा दूँगा।

ब्रह्माजी कहते हैं—'बहुत अच्छा' कहकर देवता स्वर्गमें चले गये। इधर देवताओंके स्वामी भगवान् विष्णुने अदितिके गर्भमें प्रवेश किया। उनके जन्मके समय अनेक प्रकारके उत्सव होने लगे। यज्ञेश्वर यज्ञपुरुष स्वयं ही वामनरूपमें अवतीर्थ हुए। इसी समय बलवानोंमें श्रेष्ठ बलिके अश्वमेध यज्ञको दीक्षा ली प्रधान-प्रधान ऋषि तथा वेद-वेदाङ्गोंके ज्ञाता पुरोहित शुक्राचार्यने उस यज्ञका आरम्भ कराया। स्वयं शुक्र ही यज्ञके आचार्य थे। उस यज्ञमें हविष्यका भाग लेनेके लिये जब सब देवता निकट आये 'दान दो,' 'भोजन करो', सबका सत्कार करो, 'पूर्ण हो गया', 'पूर्ण हो गया' इत्यादि शब्द यज्ञमण्डपमें गूँजने लगे, उसी समय विचित्र कुण्डल धारण किये साम-गान करते हुए वामनजी धीरे धीरे यज्ञशालामें आये। आनेपर वे यज्ञकी प्रशंसा करने लगे। शुक्राचार्यने उन्हें देखते ही समझ लिया कि

ये ब्राह्मणरूपधारी वायन देवता वास्तवमें दैत्योंके विनाशक, यज्ञ और तपस्याके फल देनेवाले और राक्षसकुलका संहार करनेवाले साक्षात् विष्णु हैं। यज्ञवानोंमें श्रेष्ठ महतेजस्वी राजा बलि क्षत्रिय-धर्मके अनुसार विजयी होकर भक्तिपूर्वक धनका दान करते हुए अपनी पत्नीके साथ यज्ञकी दीक्षा लेकर बैठे थे और हविष्यका हवन करते हुए यज्ञपुरुषका ध्यान कर रहे थे। शुक्राचार्यजीने वायनजीको पहचानकर तुरंत ही राजा बलिसे कहा—‘राजन्! ये जो बौने करीरवाले ब्राह्मण तुम्हारे यज्ञमें आये हैं, ये वास्तवमें ब्राह्मण नहीं, यज्ञवाहन यज्ञेश्वर विष्णु हैं। प्रभो! इसमें तनिक संदेह नहीं कि ये देवताओंका हित करनेके लिये वास्तवरूप धारणकर तुमसे कुछ खाचना करने आये हैं अतः पहले मुझसे सलाह लेकर पीछे उन्हें कुछ देना चाहिये।’

यह सुनकर शत्रुविजयी बलिने अपने पुरोहित शुक्राचार्यसे कहा—‘मैं भन्व हूँ, जिसके घरपर साक्षात् यज्ञेश्वर मूर्तिमान् होकर पधारते और कुछ याचना करते हैं। अब इसमें सलाह लेनेके योग्य कौन-सी बात रह जाती है।’ यों कहकर पत्नी और पुरोहित शुक्राचार्यके साथ राजा बलि उस स्थानपर आये, जहाँ अद्वैतनन्दन वायनजी विराजमान थे। राजाने हाथ जोड़कर पूछा—‘भगवन्! बताइये, आप क्या चाहते हैं?’ तब वायनजीने कहा—‘महाराज! केवल तीन पग भूमि दे दीजिये और किसी धनकी मुझे आवश्यकता नहीं है।’ ‘बहुत अच्छा’ कहकर राजा बलिने रजःशटित कसबासे जल लिया और वायनजीको भूमि संकल्प करके दे दी सभी महर्षि और शुक्राचार्य चुपचाप देखते रहे। वायनजीने धीरेसे कहा—‘राजन्! स्वस्ति, आप सुखी रहें। मुझे मेरी नापी हुई तीन पग भूमि दे दीजिये।’ बलिने ‘तथास्तु’ कहकर ज्यों ही

वायनजीकी ओर देखा, वे विराट्-रूप हो गये। चन्द्रमा और सूर्य उनकी छात्रोंके सामने आ गये। उन्हें इस रूपमें देखकर स्तब्धसहित दैत्यराज बलिने विनयपूर्वक कहा—‘जगन्मय विष्णो! आप अपनी शक्तिपर पैर बढ़ाइये।’

विष्णु बोले—‘दैत्यराज! देखो, मैं पैर बढ़ा रहा हूँ। बलिने कहा—‘बढ़ाइये, अवश्य बढ़ाइये।’

तब भगवान्ने पृथ्वीके नीचे स्थित कच्छपकी पीठपर पैर रखकर पहला पग बलिके यज्ञमें रखा, किन्तु उनका दूसरा पग ब्रह्मलोकतक जा पहुँचा। उस समय उन्होंने बलिसे कहा—‘दैत्यराज! मेरा तीसरा पग रखनेके लिये तो स्थान ही नहीं है, कहाँ रखूँ? स्वाम्ये।’

यह सुनकर बलिने हँसते हुए कहा—‘जगन्मय देवेन्दर! आपने ही तो जगत्की सृष्टि की है, मैं तो इसका भ्रष्टा नहीं हूँ। यदि यह छोटा या थोड़ा हो गया तो इसमें आपका ही दोष है, मैं क्या करूँ। केसव! फिर भी मैं कभी असत्य नहीं बोलता, अतः मेरे सत्यकी रक्ष करतें हुए आप अपना तीसरा पग मेरी पीठपर ही रखिये।’

बलिके यह वचन सुनकर वेदत्रयीरूप देवपूजित भगवान् प्रसन्न होकर बोले—‘दैत्यराज! मैं तुम्हारी भक्तिसे बहुत प्रसन्न हूँ। तुम्हारा कल्याण हो, कोई खर माँगो।’ तब बलिने भगवत्के स्वामी भगवान् त्रिविक्रमसे कहा—‘अब मैं आपसे याचना नहीं करूँगा।’ तब भगवान्ने स्वयं ही प्रसन्न होकर उन्हें मनोवाञ्छित खर दिया। वर्तमान समयमें रसातलका उज्य, पविष्यमें इन्द्रपद, स्वतन्त्रता तथा अधिनाशी यश आदि प्रदान किये। इस प्रकार दैत्यराज बलिको यह सब कुछ देकर भगवान्ने उन्हें पुत्र और पत्नीसहित रसातलमें भेज दिया और इन्द्रको देवताओंका राज्य अर्पित किया। इसी बीचमें उनका जो दूसरा पग मेरे लोकमें पहुँचा



धा, उसे देखकर मैंने सोचा, 'यह मेरे अन्तर्यामि भगवान् विष्णुका चरण है, जो सौभाग्यवश मेरे चरण पर आ पहुँचा है। इसके लिये मैं क्या करूँ, जिससे मेरा कल्याण हो? मेरे पास जो यह श्रेष्ठ कमण्डलु है, इसमें भगवान् शंकरका दिव्य हुआ पवित्र जल है। यह जल उत्तम, वरदायक,

शान्तिकरक, सुभद्र, भोग और मोक्षका दाता, विश्वके लिये मन्त्रस्य, अमृतमय, पवित्र औषध, फलन, पूज्य, ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, गुणमय तथा स्मरणपात्रसे लोकोंको पवित्र करनेवाला है। यह जल मैं अपने पिताको अर्घ्यरूपसे अर्पित करूँगा।' यह सोचकर मैंने जो जल भगवान् के चरणोंमें अर्घ्यरूपसे चढ़ा दिया। वह मन्त्रमुक्त अर्घ्यजल भगवान् विष्णुके चरणोंमें गिरकर घेरुपर्यन्तपर पड़ा और फिर भागोंमें बँटकर पूर्व, दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर दिशामें पृथ्वीपर आ पहुँचा। दक्षिणमें गिरे हुए जलको भगवान् शंकरने जटाओंमें रखा लिया। पश्चिममें जो जल गिरा, वह फिर कमण्डलुमें ही चला आया। उत्तरमें गिरे हुए जलको भगवान् विष्णुने ग्रहण किया तथा पूर्वमें जो जल गिरा, उसे देवताओं, पितरों और लोकपालोंमें ग्रहण किया; अतः वह जल अत्यन्त श्रेष्ठ कहा जाता है। भगवान् विष्णुके चरणोंसे निकलकर दक्षिण दिशामें गया हुआ जल, जो भगवान् शंकरकी जटामें स्थित हुआ, वर्षके समय सुभोदय करनेकरा है। उसके प्रभावका स्मरण करनेसे सम्पन्न अर्थश्रद्धादि वस्तुओंकी प्राप्ति होती है।

गौतमके द्वारा भगवान् शंकरकी स्तुति, शिवका गौतमको जटासहित गङ्गाका अर्पण तथा गौतमी गङ्गाका याहातम्य

ब्रह्माजी कहते हैं—महाश्वे! भगवान् शंकरको जटामें जो दिव्य जल आकर स्थित हुआ, उसके दो भेद हुए, क्योंकि उसे पृथ्वीपर उतारनेकाले दो व्यक्ति थे। उस जलके एक भागको जो ब्रत, दान और समाधिमें लतपर रहनेवाले गौतम नामक ब्राह्मणने भगवान् शिवकी आराधना करके भूतलतक पहुँचाया, जो सम्पूर्ण लोकमें विद्यमान हुआ; तथा दूसरा भाग बलवान् क्षत्रिय राजा भगोरथने इस

पृथ्वीपर उतारा। इसके लिये उन्हें नियमोंका पालन करते हुए तपस्याद्वारा भगवान् शंकरकी आराधना करनी पड़ी थी। इस प्रकार एक ही वज्रके दो स्वरूप हो गये।

एक समयको बात है, महर्षि गौतम कैलासपर्वतपर गये और मौनभावसे कुशा बिछाकर उसपर बैठे; फिर ध्वनि होकर इस स्तोत्रका गान करने लगे।

यौतम जोले—भोगकी अभिलाषा रखनेवाले जीवोंको मनोवाञ्छित भोग प्रदान करनेके लिये पार्वतीसहित भगवान् शंकर उत्तम गुणोंसे युक्त आठ विराट् स्वरूप धारण करते हैं। इस प्रकार विद्वान् पुरुष प्रतिदिन भगवान् महादेवजीकी स्तुति किया करते हैं। महेश्वरका जो पृथ्वीमय शरीर है, वह अपने विषयोंद्वारा सुख पहुँचाने, समस्त चराचर जगत्का भरण पोषण करने, उसकी सम्पत्ति बढ़ाने तथा सबका अभ्युदय करनेके लिये है। शान्तिमय शरीरवाले भगवान् शिवने जगत्की सृष्टि, कलन और संहार करनेके लिये पृथ्वीके आधारभूत जलका स्वरूप धारण किया है। उनका यह लोक-प्रतिष्ठित रूप सब लोगोंको सुख पहुँचाने तथा धर्मकी मिट्टि करनेका भी हेतु है। महेश्वर! आपने समयकी व्यवस्था करने, अनृतका खोल बहाने, जीवोंकी सृष्टि, पालन और संहार करने तथा प्रजाको मोह, सुख एवं उन्नतिका अवसर देनेके लिये सूर्य, चन्द्रमा तथा अग्निका शरीर धारण किया है। ईश! आपने जो वायुका रूप ग्रहण किया है, उसमें भी एक रहस्य है। सब लोग प्रतिदिन बहें, चलें, फिरे, शक्तिका उपार्जन करें, अधरोंका उच्चारण कर सकें, जीवन कायम रहे और अनेक प्रकारके आमोद-प्रमोदकी सृष्टि हो, इसीलिये आपको यह रूप है। भगवन्! इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि अपने-आपको आप ही ठीक-ठीक जानते हैं। भेद (अवकाश) के बिना न कोई क्रिया हो सकती है न धर्म हो सकता है, न अपने या परार्थका बोध होगा न दिशा, अन्तरिक्ष, द्युलोक, पृथ्वी तथा भोग और मोक्षका ही अन्तर जान पड़ेगा, अतः महेश्वर! आपने यह आकाशरूप ग्रहण किया है। धर्मकी व्यवस्था करनेका निश्चय करके आपने ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, उनकी शाखाओं और शास्त्रोंका विभाग किया है तथा

लोकमें भी इसी उद्देश्यसे गाथाओं, स्मृतियों और पुराणोंका प्रसार किया है। ये सब शब्दस्वरूप ही हैं। सम्भो! यजमान, यज्ञ, यज्ञोंके साधन, ऋत्विक् यज्ञका स्थान, फल, देव और काल—ये सब आप ही हैं। आप ही परमार्थतत्त्व हैं। विद्वान् पुरुष आपके शरीरको यज्ञसमय बतलाते हैं। केवल ऋग्विज्ञास करनेसे क्या साध—कर्ता, दाता, प्रतिनिधि, दान, सर्वज्ञ, सक्षी, परम पुरुष, सबका अन्तरात्मा तथा परमार्थस्वरूप सब कुछ आप ही हैं। भगवन्! वेद, सास्त्र और गृह भी आपके तत्त्वका भलीभाँति उपदेश नहीं कर सकें हैं। निश्चय ही आपका बुद्धि आदिकी भी पहुँच नहीं है। आप अजन्म, अप्रमेय और शिव-शब्दसे वाच्य हैं। आप ही सत्य हैं। आपको नमस्कार है। किसी समय भगवान् शिवने अपनी प्रकृतिको इस भावसे देखा कि वह मेरी सम्पत्ति है, उसी समय वे एकसे अनेक हो गये, विश्वरूपमें प्रकट हो गये। वास्तवमें उनका प्रभाव अतर्क्य और अचिन्त्य है। भगवान् शिवकी प्रिया शिवा देवी भी नित्य हैं। भव (भगवान् शंकर)—वे उनका भाव (हार्दिक अनुगम) पूर्णरूपसे बढ़ा हुआ है, वे इस भव (संसार)—की उत्पत्तिये स्वयं कारण हैं तथा सर्वकारण महेश्वरके आश्रित हैं। शिवा समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न तथा विश्वविघात शिवकी विलक्षण शक्ति हैं। संसारकी उत्पत्ति, स्थिति, अन्नकी वृद्धि तथा लय—ये सन्नतन भाव जहाँ होते रहते हैं, वह एकमात्र पार्वतीदेवीका ही स्वरूप है। वे भगवान् शंकरकी प्राणव्यवस्था हैं। उनके लिये कुछ भी असाध्य नहीं है। समस्त जीव जिनके लिये अन्नदान देते और तपस्या करते हैं, वे जगज्जननी माता पार्वती ही हैं। उनकी उत्तम कीर्ति बहुत बढ़ी है। वे शिवकी प्रियतमा हैं। इन्द्र भी जिनकी कृपादृष्टि चाहते हैं, जिनका नाम लेनेसे मङ्गलकी प्राप्ति

होती है, जो सम्पूर्ण विश्वमें व्याप्त हो इसे निर्मल बनाती हैं, वे भावच्छेद तथा ही हैं। उनकी रूप सदा चन्द्रमाके समान ही मन्दोदर है। जिनके प्रसादसे ब्रह्म आदि चराचर जीवोंकी बुद्धि, नेत्र, चेतना और मनमें सदा सुखकी प्राप्ति होती है, वे जगद्गुरु शिवकी सुन्दरी शक्ति शिवा माताकी अधोक्षरी हैं। आज ब्रह्माजीका भी मन मलिन हो रहा है, फिर अन्य जीवोंकी तो कत ही क्या—यह सोचकर जगन्माता उमाने अनेक उपायोंसे सम्पूर्ण जगत्को पवित्र करनेके लिये गङ्गाका अवतार धारण किया है। श्रुतियोंको देखकर तथा सब प्रमाणोंसे भगवान् शंकरकी प्रभुत्वपर विश्वास करके लोग जो धर्मोंका अनुष्ठान करते और उनके फलस्वरूप जो उत्तम भोग भोगते हैं, यह भगवान् सदाशिवकी ही विभूति है। वैदिक अधवा लौकिक कार्य, क्रिया कारक और साधनोंका जो सबसे उत्तम एवं प्रिय साधन है, वह अग्निदि कर्षा शिवकी प्राप्ति ही है। जो सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म, परप्रधान, सारभूत और उपासनाके योग्य है, जिसका ध्यान तथा जिसकी प्राप्ति करके श्रेष्ठ योगी पुरुष मुक्त हो जाते—पुनः संसारमें जन्म नहीं लेते, वे भगवान् उमापति ही मोक्ष हैं। माता मावर्ती! भगवान् शंकर जगत्का कल्याण करनेके लिये जैसे-जैसे अपार मायामय रूप धारण करते हैं, वैसे-ही-वैसे तुम भी उनके योग्य रूप धारण करती हो। इस प्रकार तुममें पतिव्रत्य जाग्रत रहता है।

गीतपत्रोंके इस प्रकार स्तुति करनेपर वृषभाङ्कित ध्वजावाले सक्षत् भगवान् शिव उनके सामने प्रकट हुए और प्रसन्न होकर बोले—'नैतय! तुम्हारी भक्ति, स्तुति तथा उत्तम व्रतसे मैं बहुत संतुष्ट हूँ। माँगो, तुम्हें क्या दूँ? जो वस्तु देवताओंके लिये भी दुर्लभ हो, वह भी तुम माँग सकते हो।'

गीतमने कहा—जगदीश्वर! समस्त लोकोंकी



पवित्र करनेवाली इन पवन देवोंको, जो आपकी जटायु स्थित और आपके परम प्रिय हैं, ब्रह्मगिरिपर छोड़ दीजिये। वे समुद्रमें मिलनेतक सबके लिये तीर्थरूप होकर रहें। इनमें ज्ञान करनेमात्रसे मन, कान्ती और शरीरद्वारा किये हुए ब्रह्महत्या आदि समस्त पाप नष्ट हो जायें। चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण, अयनारम्भ, विषुवयोग, संक्रान्ति तथा वैभूतियोग आनेपर अन्य पुण्यतोर्योंमें ज्ञान करनेसे जो फल मिलता है, वह इनके स्मरणमात्रसे ही प्राप्त हो जाय। वे समुद्रमें पहुँचनेतक जहाँ-जहाँ जायें, जहाँ-जहाँ आप अवस्थ रहें। यह श्रेष्ठ कर मुझे प्राप्त हो तब इनके तटसे एक योवनसे लेकर दस योवनतककी दूरीके भीतर आये हुए महापातकी मनुष्य भी यदि ज्ञान किये बिना ही मृत्युको प्राप्त हो जायें तो वे भी मुझके भगी हों।

ब्रह्माजी कहते हैं—गीतभकी यह बात सुनकर भगवान् शंकर बोले—'इससे बढ़कर दूसरा कोई तीर्थ न तो हुआ है न होगा; यह बात सत्य है, सत्य है, सत्य है और वेदमें भी निश्चित की गयी

है कि गौतमी गङ्गा (गोदावरी) सब तीर्थोंसे अधिक पवित्र है।' यों कहकर वे अन्तर्धान हो गये। श्लोकपूजित भगवान् शिवके चले जानेपर गौतमने उनकी आज्ञासे जटासहित सरिताओंमें श्रेष्ठ गङ्गाको साथ ले देवताओंसे घिरकर ब्रह्मगिरिमें प्रवेश किया। उस समय महाभाग महर्षि, ब्राह्मण तथा शत्रिय भी आनन्दमग्न होकर जब-जबकर करते हुए ब्रह्मर्षि गौतमकी प्रशंसा करने लगे।

पवित्र एवं संयत चित्तवाले गौतमने जटाओं ब्रह्मगिरिके शिखरपर रखा और भगवान् शंकरका स्मरण करते हुए गङ्गाजीसे हाथ जोड़कर कहा—'तब त्रेत्रोंवाले भगवान् शिवकी जटासे प्रकट हुई मत्ता गङ्गा। तुम सब अभीष्टोंको देनेवाली और शान्त हो। मेरा अपराध क्षमा करो और सुखपूर्वक कहोंसे प्रवाहित होकर जगत्का कल्याण करो देवि! मैं तीनों लोकोंका उपकार करनेके लिये तुम्हारी याचना की है और भगवान् शंकरने भी इसी उद्देश्यकी सिद्धिके लिये तुम्हें दिया है अतः इमका यह मनोरथ असफल नहीं होना चाहिये,'

गौतमका यह वचन सुनकर भगवती गङ्गाने उसे स्वीकार किया और अपने-आपको तीन स्वरूपोंमें विभक्त करके स्वर्गलोक, मर्त्यलोक एवं रसातलमें फैल गयीं। स्वर्गलोकमें उनके चार रूप हुए, मर्त्यलोकमें वे सात धाराओंमें बहने लगीं तथा रसातलमें भी उनकी चार धाराएँ हुईं। इस प्रकार एक ही गङ्गाके पंद्रह अक्षर हो गये। गङ्गा देवी सर्वत्र है, सर्वभूतस्वरूपा है, सब पापोंका नाश करनेवाली तथा सम्पूर्ण अभ्यष्ट वस्तुओंको देनेवाली है। वेदमें सदा उनकी यशका गात किया जाता है। जिनकी बुद्धि अज्ञानसे मोहित है, वे मर्त्यलोकके निवासि समझते हैं कि गङ्गा केवल मर्त्यलोकमें ही है, पाताल अथवा स्वर्गमें नहीं है। भगवती गङ्गा

जहाँतक पहुँचकर समुद्रमें मिली हैं, वहाँतक वे देवमन्त्रे मानी गयी हैं। महर्षि गौतमके छोड़नेपर वे पूर्वसमुद्रकी ओर चली गयीं। उस समय देवर्षिबैद्यनासेवित कल्याणमयी जगन्माता गङ्गाकी भुविश्रेष्ठ गौतमने परिक्रमा की। इसके बाद उन्होंने देवेश्वर भगवान् श्रवणकका पूजन किया। उनके स्मरण करते ही करुणासिन्धु भगवान् शिव वहाँ प्रकट हो गये। पूजा करके महर्षि गौतमने कहा—'देवदेव महेश्वर! आप सम्पूर्ण लोकोंके हितके लिये भूमे इस तीर्थमें स्नान करनेकी विधि बताइये।'

भगवान् शिव बोले—'महर्षे! गोदावरीमें स्नान करनेकी सम्पूर्ण विधि सुनो। पहले नान्दीमुख श्रद्धा करके सरीरकी शुद्धि करो, फिर ब्राह्मणोंको भोजन करावे और उन्हें स्नान करनेकी आज्ञा से। तदनन्तर ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए गोदावरी नदीमें स्नान करनेके लिये जाय। उस समय पतित मनुष्योंके साथ वार्तालाप न करो। जिसके हाथ, पैर और मन भलीभाँति संयममें रहते हैं, कहीं तीर्थका पूरा फल पाता है। भवदोष (दुर्भावना) का परित्याग करके अपने धर्ममें स्थिर रहे और धर्म-मार्ग पीड़ित मनुष्योंकी सेवा करते हुए उन्हें यथायोग्य अन्न दे। जिनके पास कुछ नहीं है, ऐसे साधुओंको वस्त्र और कम्बल दे। भगवान् विष्णुकी तथा गङ्गाजीके प्रकट होनेकी दिव्य कथा सुने। इस विधिसे यात्रा करनेवाला मनुष्य तीर्थके उत्तम फलस्वरूप प्राप्ति होता है।

गौतम! गोदावरी नदीमें दो-दो हाथ भूमिपर तीर्थ होंगे। उनमें मैं स्वयं सर्वत्र रहकर सबकी सबसे कामन्त्रोंको पूर्ण करता रहूँगा। सरिताओंमें श्रेष्ठ नर्मदा अमरकण्टकपर्वतपर अधिक उत्तम मानी गयी हैं। यमुनाका विशेष महत्त्व उस स्थानपर है, जहाँ वे गङ्गासे मिली हैं। सरस्वती नदी प्रभासतीर्थमें श्रेष्ठ बतायी गयी हैं। कृष्णा,

भीमरथी और तुङ्गभद्रा—इन तीन नदियोंका जहाँ समागम हुआ है, वह तीर्थ मनुष्योंको मुक्ति देनेवाला है। इसी प्रकार पयोज्नी नदी भी जहाँ तपती (ताप्ती) में मिली है, वह तीर्थ मोक्षदाक है, परंतु ये गौतमी गङ्गा घेरी आज्ञासे सर्वत्र सर्वदा और सब मनुष्योंको ज्ञान करनेपर मोक्ष प्रदान करेंगी। कोई-कोई तीर्थ किसी विशेष समयमें देवताका शुभागमन होनेपर अधिक पुण्यमय माना जाता है, किंतु गोदावरी नदी सदा ही सबके लिये तीर्थ है। मुनिश्रेष्ठ! दो स्त्री योजनके भीतर गोदावरी नदीमें सब्दे तीन करोड़ तीर्थ होंगे। ये गङ्गा निष्प्राङ्कित नाथोंसे प्रसिद्ध होंगी—माहेबरी, नङ्गा, गौतमी, वैष्णवी, गोदावरी, नन्दा, सुनन्दा, काम्पदाम्पिनी, महातेजःसमानीता तथा सर्वपापघ्नप्रहरिणी। गोदावरी

मुझे सदा ही प्रिय है। ये स्मरणमात्रसे पाप-राशिका विनष्ट करनेवाली है। पाँचों भूतोंमें जल श्रेष्ठ है! जलमें भी जो तीर्थका जल है, वह सर्वश्रेष्ठ माना गया है। तीर्थ-जलमें भी भागीरथी गङ्गा श्रेष्ठ है और उनसे भी गौतमी गङ्गा उत्कृष्ट मानी गयी है, क्योंकि ये भगवान् शंकरकी जटाके स्पर्श लायी गयी थीं। अतः इनसे बढ़कर कल्याणकारी तीर्थ दूसरा कोई नहीं है। मुने! स्वर्ग, पृथ्वी और फलालमें भी गङ्गा सब मनोरथोंको पूर्ण करनेवाली है।

बाह्याजी कहते हैं—नारद! इस प्रकार साक्षात् भगवान् संकरने संतुष्ट होकर महात्मा गौतमको गोदावरीका जो माहात्म्य बतलाया था। वही मैंने तुमको सुनाया है।

भागीरथी गङ्गाके अवतरणकी कथा

नारदजीने कहा—सुरश्रेष्ठ! एक ही गङ्गाके आपने दो भेद बतलाये हैं। एक तो वह है, जो गौतम नाथक ब्राह्मणके द्वारा स्थापित गम्भ और दूसरा अंश भगवान् शंकरकी जटायें ही रह गया, जिसे क्षत्रिय राजा भागीरथ से आये। अतः इसीका प्रसङ्ग मुझे सुनाइये।

बाह्याजी बोले—देवर्षे! वैवस्वत मनुके वंशमें राजा इक्ष्वाकुके कुलमें सगर नाथके एक अत्यन्त धार्मिक राजा हो गये हैं। वे यज्ञ करते, दान देते और सदा धार्मिक आचार विचारसे रहते थे। उनके दो पत्नियाँ थीं। ये दोनों ही पतिभक्ति-परायणा थीं, किंतु उनमेंसे किसीको भी संतान न हुई। इसलिये राजाके मनमें बड़ी चिन्ता थी। एक दिन उन्होंने महर्षि वसिष्ठको अपने घर बुलाया और विधिपूर्वक उनकी पूजा करके पूछा—'किस

उपायसे मुझे संतान होगी?' उनकी यह बात सुनकर महर्षि बसिष्ठने कुछ कालतक ध्यान किया। उसके बाद राजासे कहा—'राजन्! तुम पत्नीसहित सदा ऋषि-महर्षियोंका सेवन करते रहो।' यों कहकर महर्षि वसिष्ठ अपने आश्रमको चले गये। एक समयकी बात है—राजर्षि सगरके घरपर एक तपस्वी महात्मा पधारे। राजाने उन महर्षिका पूजा किया। इससे संतुष्ट होकर वे बोले—'महामुनि! वर माँगो।' यह सुनकर राजाने पुत्र होनेके लिये प्रार्थना की। मुनि बोले—'तुम्हारी एक पत्नीके गर्भसे एक ही पुत्र होगा, किंतु वह वंशधर होगा, और दूसरी स्त्रीके गर्भसे साठ हजार पुत्र उत्पन्न होंगे।' घरदान देकर जब मुनि चले गये, तब उनके कथनानुसार यथासमय राजाके हजारों पुत्र हुए। राजा सगरने उत्तम दक्षिणासे

युक्त बहुतेरे अश्वमेध-यज्ञ किये। फिर एक अश्वमेध-यज्ञके लिये उन्होंने विधिपूर्वक दीक्षा ग्रहण की और अश्वकी रक्षाके लिये सेनासहित अपने पुत्रोंको नियुक्त किया। अश्व पृथ्वीपर भ्रमण करने लगा। इसी बीचमें कहीं अक्सर जाकर इन्द्रने उस अश्वको हर लिया और रक्षकोंको सोंप दिया। राजकुमार जोड़ेको इधर उधर ढूँढ़ने लगे, परंतु कहीं भी वह उन्हें दिखायी न दिया। तब उन्होंने देवलोकमें जाकर ढूँढ़ा, पर्वतों और सरोवरोंमें खोजा और कितने ही जङ्गल छान डाले; मगर कहीं भी उसका पता न लगा। इसी समय आकाशवाणी हुई—‘सगरपुत्रे! तुमरा चेला रसातलमें बँधा है और कहीं नहीं है।’ यह सुनकर वे रसातलमें जानेके लिये सब ओरसे पृथ्वीको छोड़ने लगे। सुधासे पीड़ित होनेपर वे सूखी मिट्टी खाते और दिन-रात भूमि छोड़ते रहते। इस प्रकार वे शीघ्र ही रसातलमें जा पहुँचे। सगरके बालवान् पुत्रोंको वहाँ आया सुनकर रक्षक बर्ष उठे और उनके बचका उपाय करने लगे। वे बिना कुछ किये ही भयभीत हो उस स्थानपर आये, जहाँ महामुनि कपिल सो रहे थे। कपिलजीका क्रोध बड़ा प्रचण्ड था। रक्षकोंने यह सोझा ले जाकर मुरंत कपिलजीके सिरहाथकी ओर बाँध दिया और स्वयं चुपचाप दूर खड़े होकर देखने लगे कि अब क्या होता है। इतनेमें ही सगरके पुत्र रसातलमें घुसकर देखते हैं कि घोड़ा बँधा है और फास ही कोई पुरुष खे रहा है। उन्होंने कपिलजीको ही अश्व चुराकर यज्ञमें विघ्न डालनेवाला माना और यह निश्चय किया कि इस महापापीको मारकर हमलोग अपना अश्व महाराजके निकट से चले। कोई बोले—‘अपना पशु बँधा है, इसे ही खोलकर ले चलें। इस सोये हुए पुरुषको मारनेसे क्या लाभ।’ यह सुनकर दूसरे बोल उठे—‘हम

सूरखोर राजा हैं, शासक हैं। इस पापीको ठठायें और खत्रियोचित ठेगसे इसका वध कर डालें।’ फिर क्या था, वे मुनिको कटु वचन सुनते हुए लातोंसे मारने लगे।

इससे मुनिब्रह्म कपिलकी बड़ा क्रोध हुआ उन्होंने सगरपुत्रोंकी ओर रोषपूर्ण दृष्टिसे देखा और भस्म कर डाला। वे सब-के-सब जलकर राख हो गये। नरद! बड़में दीक्षित महाराज सगरको इन सब बातोंका पता न लगता। उस समय तुमने ही जाकर सगरको यह सब समाचार सुनाया। इससे राजाकी बड़ी चिन्त हुई। अब क्या करना चाहिये, यह बात उनकी समझमें न आयी। राजा सगरके एक दूसरा पुत्र भी था, जिसका नाम असमञ्ज था। वह मूर्खतावश नगरके बालकोंको उठकर पानीमें केंक देता था। तब पुरोहितोंने



एकत्रि होकर राजा सगरको इस बातकी सूचना दी। पुत्रका यह अन्याय जानकर महाराजको बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने अपने अमात्योंसे कहा—‘यह असमञ्ज बालकोंकी हत्या करनेवाला तथा

क्षत्रियधर्मका त्यागी है। अतः यह इस देशका त्याग कर दे।' महाराजका यह आदेश सुनकर अमात्योंने राजकुमारको तुरंत देसनिकाला दे दिया। असमझा वनमें चला गया। अब राजा सगर चिन्ता करने लगे कि 'हमारे सब पुत्र ब्राह्मणके शापसे रसातलमें नष्ट हो गये। एक बच्चा था, वह भी वनमें चला गया। इस समय मेरी क्या गति होगी?'

असमझाके एक पुत्र था, जो अंशुमान् नामसे विख्यात हुआ। यद्यपि अंशुमान् अभी बालक था तो भी राजाने उसे बुलाकर अपना कार्य बतलाया। अंशुमान्ने भगवान् कपिलको आराधना की और घोड़ा ले आकर राजा सगरको दे दिया। इससे यह यज्ञ पूर्ण हुआ। अंशुमान्के तेजस्वी पुत्रका नाम दिलीप था। दिलीपके पुत्र परम बुद्धिमान् भीररथ हुए। भीररथने जब अपने समस्त पितृमहोंकी दुर्गतिका हाल सुना, तब उन्हें बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने नृपश्रेष्ठ सगरसे किनयपूर्वक पूछा—'महाशय! उन सबका उद्धार कैसे होगा?' राजाने उत्तर दिया—'बेटा! यह तो भगवान् कपिल ही जानते हैं।' यह सुनकर बालक भीररथ रसातलमें गये और कपिलको वयस्कार करके अपना सब मनोरथ उन्हें कह सुनाया। कपिल मुनि बहुत देरतक ध्यान करके बोले—'राजन्! तुम तपस्याद्वारा भगवान् शंकरकी आराधना करो और उनकी जटायें स्थित गङ्गाके जलसे अपने पितरोंकी भस्मको आप्लावित करो। इससे तुम तो कृतार्थ होगे ही, तुम्हारे पितर भी कृतकृत्य हो जायेंगे।' यह सुनकर भीररथने कहा 'बहुत अच्छा, मैं ऐसा ही करूँगा। मुनिश्रेष्ठ! बताइये, मैं कहाँ जाऊँ और कौन सा कार्य करूँ?'

कपिलजी बोले—नरश्रेष्ठ! कैलासपर्वतपर जाकर महादेवजीकी स्तुति करो और अपनी शक्तिके

अनुसार तपस्या करते रहो। इससे तुम्हारे अभीष्टकी सिद्धि होगी।

मुनिके यह वचन सुनकर भीररथने उन्हें प्रणम किया और कैलासपर्वतकी यात्रा की। वहाँ पहुँचकर पवित्र हो बालक भीररथने तपस्याका निश्चय किया और भगवान् शंकरको सम्बोधित करके इस प्रकार कहा—'प्रभो! मैं बालक हूँ, मेरी बुद्धि भी बालककी ही है और आप भी अपने वस्त्रकपर बाल चन्द्रमाको धारण करते हैं। मैं कुछ भी नहीं जानता। आप मेरे इस अनजानपनसे ही प्रसन्न होइये। अमरेश्वर! जो लोग खाणीसे मनसे और क्रियासे कभी मेरा उपकार करते हैं तथा हितसाधनमें संलग्न रहते हैं, उनका कल्याण करनेके लिये मैं उमासहित आपको प्रणाम करता हूँ। अथ देवता आदिके लिये भी पूज्य हूँ। जिन पूर्वजोंने मुझे अपने सगोत्र और समानधर्मके रूपमें उत्पन्न किया और पाल-पोसकर बड़ा बनाया, भगवान् शिव उनका अभीष्ट मनोरथ पूर्ण करें। मैं बालचन्द्रका मुकुट धारण करनेवाले भगवान् शंकरको नित्य प्रणाम करता हूँ।'

भीररथके यों कहते ही भगवान् शिव उनके सामने प्रकट हो गये और बोले—'महापते! तुम निर्भय होकर कोई डर पाँगे। जो वस्तु देवताओंके लिये भी सुलभ नहीं है, वह भी मैं तुम्हें निश्चय ही दे दूँगा।' यह आश्वासन पाकर भीररथने महादेवजीको प्रणाम किया और प्रसन्न होकर कहा—'देवेश्वर! आपकी जटायें जो सरिताओंमें श्रेष्ठ गङ्गाजी विराजमान हैं, उन्हें ही मेरे पितरोंका उद्धार करनेके लिये दे दीजिये। इससे मुझे सब कुछ मिल जायगा।' तब महेश्वरने हँसकर कहा—'बेटा! मैंने तुम्हें गङ्गा दे दी अब तुम उनकी स्तुति करो।' महादेवजीका वचन सुनकर भीररथने गङ्गाजीकी प्राप्तिके लिये भारी तपस्या

की और भनकरे समयमें रखकर भक्तिपूर्वक गङ्गाका स्तवन किया। बास्वक होनेपर भी भगीरथने शम्भालकोचित पुरुषार्थ करके गङ्गाजीकी भी कृपा प्राप्त की। महादेवजीसे प्राप्त हुई गङ्गाको पकन



उन्होंने उनकी परिक्रमा की और हाथ जोड़कर कहा—‘देवि! महामुनि कपिलके तपसे मेरे

पितर दुर्गतिमें पड़े हुए हैं। माता! आप उनका उद्धार करें।’

देवनदी गङ्गा सबका उपकार करनेवाली हैं। ये स्मरणमात्रसे सब पापोंका नाश कर देती हैं। उन्होंने भगीरथकी प्रार्थना सुनकर ‘तथास्तु’ कहा और लोकोंका उपकार एवं पितरोंका उद्धार करनेके लिये भगीरथके कथनानुसार सब कार्य किया। राजा सगरके ओ पुत्र भस्म होकर रसातलमें पड़े थे, उन्हें अपने जलसे आप्लावित करके गङ्गाजीने उनके छोड़े हुए गहड़ेको भर दिया। महामुने। इस प्रकार तुम्हें शत्रिया गङ्गाका वृत्तान्त सुनाया। ये माहेश्वरी, वैष्णवी, ब्राह्मी, पावनी, भगीरथी, देवनदी तथा हिमगिरिशिखराश्रया (हिमालयकी चोटीपर रहनेवाली) आदि नामोंसे पुकारी जाती हैं। इस प्रकार महादेवजीकी जटामें स्थित गङ्गाका जल दो स्वरूपोंमें विभक्त हुआ। विन्ध्यगिरिके दक्षिणभागमें जो गङ्गा है, उन्हें गीतमी (गोदावरी) कहते हैं और विन्ध्यगिरिके उत्तरभागमें स्थित गङ्गा भगीरथी कहलाती हैं।



वाराहतीर्थ, कुशावर्त, नीलगङ्गा और कपोततीर्थकी महिमा; कपोत और कपोतीके अद्भुत त्यागका वर्णन

महादेवीने कहा—भगवन्! आपके मुखसे कुछ सुनते-सुनते मेरे मनको तृप्ति नहीं होती। पहले गौतम ब्राह्मणके द्वारा लायी हुई गङ्गाका वर्णन कीजिये। उनके पृथक्-पृथक् तीर्थोंके फल, पुण्य तथा इतिहासपर भी क्रमशः प्रकाश डालिये।

ब्रह्माजी बोले—भरद! गोदावरीके पृथक्-पृथक् तीर्थों, फलों और महातत्त्वोंके पूरा-पूरा वर्णन न तो मैं कर सकता हूँ और न तुम सुननेमें

ही समर्थ हो; तथापि कुछ बतलाता हूँ। जहाँ भगवान् श्रम्भक गीतमके सामने प्रत्यक्ष प्रकट हुए थे, वह तीर्थ श्रम्भकके नामसे प्रसिद्ध है (वही गीतमी गङ्गाका उद्गमस्थान है)। वह भोग और भोग देनेवाला है दूसरा वाराहतीर्थ है, जो तीनों लोकोंमें विख्यात है। उसका स्वरूप बतलाता हूँ। पूर्वकातकी बात है, सिन्धुसेन नामक राक्षस देवताओंको परास्त करके यज्ञ छीनकर रसातलमें

जा पहुँचा। यज्ञके रसातल चले जानेपर पृथ्वीपर उसका सर्वथा अभाव हो गया। देवताओंने सोचा, यज्ञके बिना न तो यह लोक रह जायगा और न परलोक ही, अतः अपने शत्रुके पीछे उन्होंने रसातलमें भी घावा किया। परंतु इन्द्र आदि देवता सिन्धुसेवकी जीत न सके। तब उन्होंने पुण्यपुरुष भगवान् विष्णुके पास जाकर यज्ञरक्षण अर्द्धि राक्षसकी सब करतूत कह सुनायी। भगवान्ने उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा—‘मैं वाराहरूप धारण करके शङ्ख, चक्र और गदा हाथमें ले रसातलमें आऊँगा और मुख्य-मुख्य राक्षसोंका संहार करके पुण्यमय यज्ञको लौटा लाऊँगा। देवताओ! तुम सब लोग स्वर्गमें जाओ दुम्हारी मानसिक चिन्ता दूर हो जानी चाहिये।’

गङ्गाजी जिस मार्गसे रसातलमें गयी थीं, उसी मार्गसे पृथ्वीको छेदकर चक्रपाटी भगवान् भी रसातलमें पहुँच गये। उन्होंने वाराहरूप धारण करके रसातलवासी राक्षसों और दानवोंका वध किया तथा महायज्ञको मुखमें रखकर रसातलमें निकल आये। इस समय देवता ब्रह्मगिरिपर श्रीहरिकी प्रतीक्षा करते थे। इस मार्गसे निकलकर भगवान् गङ्गास्रोतमें आये और रक्तसे लथपथ हुए अपने अङ्गोंको गङ्गाजीके जलसे धोया। उस स्थानपर वाराह नामक कुण्ड हो गया। इसके बाद भगवान्ने भूतमें रखे हुए महायज्ञको दे दिया। इस प्रकार उनके मुखसे यज्ञका प्रादुर्भाव हुआ, इसलिये वाराहतीर्थ परम पवित्र और सम्पूर्ण अभिलषिता वस्तुओंको देनेवाला है। वहाँ किया हुआ ज्ञान और दान सब यज्ञोंका फल देता है। जो पुण्यदाता पुरुष वहाँ रहकर अपने पितरोंका स्मरण करता है, उसके पितर सब पापोंसे मुक्त हो स्वर्गमें चले जाते हैं। त्र्यम्बकमें एक कुलावर्त नामक तीर्थ है, उसके स्मरणपात्रसे मनुष्य कृतार्थ हो जाता है।

यह सम्स्त अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाला है। कुलावर्त उस खेचक नाम है, वहाँ महात्मा गौतमने गङ्गाका कुलसे आकर्षण किया था। वे वहाँ गङ्गाको कुलसे लौटाकर ले आये थे। कुलावर्तमें किया हुआ ज्ञान और दान पितरोंको तृप्ति देनेवाला है। वहाँ नदियोंमें ब्रह्म गङ्गा नीलपर्वतसे निकली है, वहाँ वे नीलगङ्गाके नामसे विख्यात हैं। मनुष्य सुदृढचित्त होकर नीलगङ्गामें स्नान आदि जो कुछ भी शुभ कर्म करता है, वह सब अक्षय जानना चाहिये। उससे पितरोंको बड़ी तृप्ति होती है।

गौदावरीमें परम उत्तम कपोततीर्थ भी है, जिसकी खीन लोकोमें प्रसिद्धि है। मुने! मैं उस तीर्थका स्वस्व और महान् फल बतलाता हूँ, सुनो। ब्रह्मगिरिपर एक बड़ा भयंकर व्याध रहता था। वह जालजनों, साधुओं, यतियों, गौओं, पक्षियों तथा मृगोंकी हत्या किया करता था। वह पापसाया बड़ा ही क्रोधी और अमान्यवादी था। उसके हाथमें सदा पाश और धनुष मीजुद रहते थे। उस महापापी व्याधके मनमें सदा पापके ही संकल्प उठते थे। उसकी स्त्री और पुत्र भी उसी स्वभावके थे। एक दिन अपनी पत्नीकी प्रेरणासे वह बने जङ्गलमें धुस गया। वहाँ उस पापीने अनेक जङ्गलके मृगों और पक्षियोंका वध किया। कितनोंको जीवित ही पकड़कर पिंजड़ेमें डाल दिया। इस प्रकार बहुत दूरतक भूमि-फिरकर वह अपने घरकी ओर लौटा। लौटेरे पहरका समय था। चैत्र और वैशाख बीत चुके थे। एक ही क्षणमें भिक्खी कीधने लगी और आन्ध्रतममें गेहोंको घटा का गयी। इसका चली और पानोंके साथ पत्थरोंकी वर्षा होने लगी। मूसलाधार वर्षा होनेके कारण बड़ी भयंकर अवस्था हो गयी। व्याध राह चलते-चलते बह गया था। जलकने अधिकताके

कारण मार्गका ज्ञान नहीं हो पाता था। जल, घस, और गड़देकी पहचान असम्भव हो गयी थी। उस समय वह छोटी सोचने लगा, 'कहाँ जाऊँ, कहाँ ठहरूँ, क्या करूँ? मैं यमराजकी भौति सब प्राणियोंके प्राण लिया करता हूँ। आज मेरा भी प्राणान्त कर देनेवाली पत्थरोंकी बृष्टि हो रही है। आसपास कोई ऐसी जगह अथवा वृक्ष नहीं दिखायी देता, जहाँ मेरी रक्षा हो सके।'।

इस प्रकार भौति-भौतिकी चिन्तामें पड़े हुए व्याधने थोड़ी ही दूरपर एक उच्च वृक्ष देखा, जो जल और पत्थरोंसे सुरक्षित हो रहा था। वह उसीकी छायामें आकर बैठ गया। उसके सब वस्त्र धीरे धीरे उड़ गये थे। वह इस चिन्तामें पड़ा था कि ये स्त्री-बच्चे जीवित होंगे या नहीं। इसी समय सूर्यास्त भी हो गया। उसी वृक्षपर एक कबूतर अपनी स्त्री और पुत्र-पौत्रोंके साथ रहता था। वह वहाँ सुखसे निर्वहण होकर पूर्व रुह और प्रसन्न था। उस वृक्षपर रहते हुए उसके कई वर्ष बीत चुके थे। उसकी स्त्री कबूतरी बड़ी पतिव्रता थी। वह अपने पतिके साथ उस वृक्षके छोरसेमें रहा करती थी। वहाँ हवा और पानीसे पूरा बचाव था। उस दिन दैववश कलह और कपोती दोनों ही बाघ चुगनेके शिकारे गये थे, किन्तु केवल कपोत ही लौटकर उस वृक्षपर आया। भाग्यवश कपोती भी वहाँ व्याधके पिंजड़ेमें पड़ी थी। व्याधने उसे पकड़ लिया था, परन्तु अभीतक उसके प्राण नहीं लगे थे। कपोत अपनी संतानोंको मातृहीन देखकर विन्दित हुआ। भयानक वर्षा हो रही थी। सूर्य दृढ़ चुका था, फिर भी वह वृक्षका खोलला कपोतीसे छानने हो रहा था—यह विचारकर कपोत विलाप करने लगा। उसे इस बातका पता नहीं था कि कपोती वहाँ पिंजड़ेमें बँधी पड़ी है। कपोतने अपनी प्रियके गुणोंका वर्णन आरम्भ किया—'हाय! मेरे हृदयके

बहनेवाली कल्याणमयी कपोती न जाने क्यों अभीतक नहीं आयी। वही मेरे धर्मकी जननी है—उसके सहयोगसे ही मैं धर्मका सम्पादन कर पाता हूँ। मेरे इस शरीरकी स्वाभिनी भी वही है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षको सिद्धिमें वही सर्ववश मेरी सहायता करती है। मुझे प्रसन्न देखकर वह हैसतो है और खिन्न बनकर मेरे दुःखोंका निवारण करती है। उचित सत्कार देनेमें वह मेरी सखी है और सदा मेरी आज्ञाके ही पालनमें संलग्न रहती है। सूर्य अस्त हो गया तो भी वह कल्याणकी अभीतक नहीं आयी। वह पतिके सिवा दूसरा कोई सत्, मन्त्र, देवता, धर्म अथवा अर्थ नहीं जानती। वह पतिव्रता है। पतिमें ही उसके प्राण बसते हैं। पति ही उसका मन्त्र और पति ही उसका प्रियतम है। मेरी कल्याणमयी भार्या अभीतक नहीं आयी। क्या करूँ, कहाँ जाऊँ? मेरा यह घर उसके बिना आज बर्बाद हो दिखायी देता है। उसके रहनेपर भयंकर स्थान भी शोभासम्पन्न और सुन्दर दिखायी देता है। जिसके रहनेपर यह घर वास्तवमें घर कहलगा है, वह मेरी प्रिय भार्या अवसक नहीं आयी। मैं उसके बिना जीवित नहीं रह सकूँगा। अपने प्रिय शरीरको भी त्याग दूँगा। किन्तु ये बच्चे क्या करेंगे। ओह! आज मेरा धर्म लुप्त हो गया है।'।

इस प्रकार विलाप करते हुए स्वामीके वचन सुनकर पिंजड़ेमें पड़ी हुई कपोती बोली—'छात्रेण! मैं वहाँ पिंजड़ेमें बँधी हुई बेबस हो गयी हूँ। यहगते। यह व्याध मुझे जालमें फँसाकर ले आया है। आज मैं धन्य हूँ और अनुगृहीत हूँ। क्योंकि पतिदेव मेरे गुणोंका ज्ञान करते हैं। मुझमें जो गुण हैं और जो नहीं हैं, उन सबका मेरे पतिदेव गान कर रहे हैं। इससे मैं निस्संदेह कृतार्थ हो गयी। पतिके संतुष्ट होनेपर स्त्रियोंपर सम्पूर्ण देवता संतुष्ट हो जाते हैं। इसके विपरीत यदि

पति असंतुष्ट हो तो स्त्रियोंका अवश्य नष्ट हो जाता है। प्राणनाथ! तुम्हीं मेरे देवता, तुम्हीं प्रभु, तुम्हीं सुहृद, तुम्हीं शरण, तुम्हीं व्रत, तुम्हीं स्वर्ग, तुम्हीं परब्रह्म और तुम्हीं मोक्ष हो।" आर्य! मेरे लिये किन्ता न करो। अपनी बुद्धिको धर्ममें स्थिर करो। तुम्हारी कृपासे मैंने बहुतों भोग भोग लिये हैं।*

अपनी प्रिय कपोतीका यह वचन सुनकर कपोत उस वृक्षसे उतर आया और पिंजड़ेमें पड़ी हुई कपोतीके पास गया वहाँ पहुँचकर उसने देखा, मेरी प्रिय जीवित है और व्याध भूतकाली भीति निक्षेप्त हो रहा है। तब उसने उसे बन्धनसे मुक्तनेका विचार किया। कपोतीने देखते हुए कहा — 'महाभाग! संसारका बन्धन स्थिर रहनेवाला नहीं है, ऐसा जानकर मुझे बन्धनसे मुक्त न करो। इसमें मुझे व्याधका अपराध नहीं जान पड़ता। तुम अपनी धर्ममयी बुद्धिको दृढ़ करो। ब्राह्मणोंके गुरु अग्नि हैं। सब धर्मोंका गुरु ब्राह्मण है। स्त्रियोंका गुरु उसका पति है और सब लोगोंने गुरु अप्यगत है। जो लोग अपने घरपर अग्र्य हुए अतिथिको बचनेका संतुष्ट करते हैं, उनके इन वचनोंसे यात्रीकी

अधीश्वरी सरस्वती देखी तृप्त होती हैं। अतिथिको अन्न देनेसे इन्द्र तृप्त होते हैं। उसके पैर धोनेसे पितर, उसके भोजन करनेसे प्रजापति, उसकी सेवा-पूजासे लक्ष्मीसहित श्रीविष्णु तथा उसके सुखपूर्वक ग्रहण करनेपर सम्पूर्ण देवता तृप्त होते हैं। अतः अतिथि सबके लिये परम पूजनीय है। यदि सुवासिके बाद शक्य-मौदा अतिथि घरपर आ जाय तो उसे देवता समझे, क्योंकि वह सब धर्मोंका परमरूप है। दूके हुए अतिथिके साथ गृहस्थके घरपर सम्पूर्ण देवता, पितर और अग्नि भी पधारते हैं। यदि अतिथि तृप्त हुआ तो उन्हें भी बड़ी प्रसन्नता होती है और यदि वह निराश होकर चला गया तो वे भी निराश होकर ही लौटते हैं।† अतः प्राणनाथ! अपने सर्वका दुःख छोड़कर शान्ति धारण कीजिये और अपनी बुद्धिको सुधमें लगाकर धर्मका सम्पादन कीजिये। दूसरोंके हानि किये हुए उपकार और अपकार दोनों ही साधु पुरुषोंके विचारसे शून्य हैं। उपकार करनेवालोंपर तो सब उपकार करते हैं। अपकार करनेवालोंके साथ जो शत्रुता बर्ताव करे, वही पुण्यका भागी बताया गया है।‡

* तुष्टे भर्तारि नारीणं गृहाः स्मृ. सर्वदेवताः। विपर्यये तु नारीभ्यामवश्यं नाशमाप्नुयात्॥
तत् देवं त्वं प्रभुर्गृहं त्वं सुहृत्वं पराचलम्। त्वं व्रतं त्वं परं ब्रह्म स्वर्गं मोक्षसन्नेभ्य च॥

(८०१ ४०-४१)

† गुरुमिहिंवासीनां वचनं ब्रह्मणो गुरुः॥

पतिरेव गुरुः स्त्रीणां सर्वस्वव्यागतो गुरुः। अप्यगतमनुग्रहं वचनैस्तोषयति ये॥
तेषां बहोव्रीरी देवी तृता वयसि निश्चितम्। जयजयत्येव प्रदमेन लज्जस्तुमिमवाप्नुयात्॥
पितरः पादशीलेन अजातेन प्रजापतिः। तन्मन्त्रेणारहो लक्ष्मीविष्णुना प्रीतिमाप्नुयात्॥
शयने सर्वदेवास्तु तस्मात्पूज्यतामोऽतिथिः॥ अप्यगतमनुग्रहं सर्वोऽपि गृहमागतम्॥

‡ विद्यारोचकमेव सर्वकृतकले ह्यसौ।

अप्यगतं लज्जामनुव्रजति दीपाद्य सर्वे पितरोऽग्रयम्॥

अस्मिन् किं कृते मुदवाचुर्वाचि पते पितरोऽपि च से निराशः॥

(८०१ ४०-४२)

‡ उपकारोऽपकारश्च प्रवृत्तिरिति सम्मती। उपकारिषु सर्वोऽपि करोन्पुनर्कृतिं पुनः॥

अपकारिषु चः साधुः पुण्यपाक् स वदद्गतः॥

(८०१ ४४-४५)

कपोत बोला—सुमुख! तुमने हम दोनोंके योग्य ही उत्तम बात कही है; किन्तु इस विषयमें मुझे कुछ और भी कहना है, उसे सुनो। कोई एक हजार प्राणियोंका धरण पोषण करता है। दूसरा दसका ही निर्वाह करता है और कोई ऐसा है, जो सुखपूर्वक केवल अपनी जीविकका काम चला लेता है; किन्तु हमलोग ऐसे जीवोंमेंसे हैं, जो अपना ही पेट बड़े कष्टसे भर पाते हैं। कुछ लोग खाई खोदकर उसमें अन्न भरकर रखते हैं। कुछ लोग कोठेभर धानके धनी होते हैं और कितने ही पड़ोंमें धान भरकर रखते हैं; परंतु हमारे पास तो उतना ही संग्रह होता है, जितना अपने चोंचमें आ जाए। शुभे! तुम्हीं बताओ, ऐसी दशाएँ इस धके-बूँद अतिधिक्रम आदर-सत्कार में किस प्रकार करें?

कपोतीने कहा—नाथ! अग्नि, जल, घोंदी, वाणी, तृण और काष्ठ आदि जो भी सम्पन्न हो, वह अतिधिक्रम देना चाहिये। यह व्यास सदीसे कह पा रहा है *

अपनी प्यारी स्त्रीका कथन सुनकर पक्षिराज कपोतने पेड़पर बैठकर सब ओर देखा तो कुछ दूरीपर उसे आग दिखायी दी। वहाँ जाकर वह चोंचसे एक जलती हुई लकड़ी उठा लाया और व्यासके आगे रखकर अग्निको प्रज्वलित किया; फिर सूखे काठ, पत्ते और तिनके बार-बार आगमें डालने लगा। आग प्रज्वलित हो उठी। उसे देखकर सदीसे दुःखी व्यासने अपने बड़बूत बने हुए अङ्गोंको तपाया इससे उसको बड़ा आराम मिला। कपोतीने देखा व्यास क्षुधाकी आगमें जल रहा है, तब उसने अपने स्वामीसे

कहा—'महाभाग! मुझे आगमें डाल दीजिये। मैं अपने शरीरसे इस दुःखी व्यासको तृप्त करूँगी। सुकृत! ऐसा करनेसे तुम अतिधिक्रम-सत्कार करनेवाले पुण्यात्मकोंके लोकमें जाओगे।'

कपोत बोला—शुभे! मेरे जीते-जी यह तुम्हारा धर्म नहीं है। मुझे ही आज्ञा दो। मैं ही आज अतिधिक्रम-सत्कार करूँगा।

यों कहकर कपोतने सबको शरण देनेवाले भक्तवत्सल विश्वरूप चतुर्भुज महाविष्णुका स्मरण करते हुए अग्रिकी तीन बार परिक्रमा की, फिर व्याससे यह कहते हुए अग्रिमें प्रवेश किया कि 'मुझे सुखपूर्वक उपयोगमें लाओ।' कपोतने अपने जीवनको अग्रिमें होम दिया यह देख व्यास कहने लगा—'अहो! मेरे इस मनुष्य-शरीरका जीवन धिक्कार देने योग्य है, क्योंकि मेरे ही लिये पक्षिराजने यह साहसपूर्ण कार्य किया है।' यों कहते हुए व्याससे कपोतीने कहा—'महाभाग! अब मुझे छोड़ दो। देखो, मेरे ये पतिदेव मुझसे दूर चले जा रहे हैं।' उसकी बात सुनकर व्यास सहम गया और तुरंत ही पिंजड़ेमें पड़ी हुई कपोतीको उसने छोड़ दिया। तब उसने भी पति और अग्रिकी परिक्रमा करके कहा—'स्वामीके साथ चितामें प्रवेश करना स्त्रियोंके लिये बहुत बड़ा धर्म है वेदमें इस मार्गका विधान है और लोकमें भी सबने इसकी प्रशंसा की है। जैसे सौम्य पकड़नेवाला मनुष्य सौंपको बिलसे बलपूर्वक निकाल लेता है, उसी प्रकार पतिका अनुगमन करनेवाली नारी पतिके साथ ही स्वर्गलोकमें जाती है।†

एतदप्यग्निं देवे सीतायां लुण्ठकस्तथाम्॥

(८०, ६०)

† स्त्रीणाप्यग्निं परो धर्मो बद्धवृत्तुवेत्यम्। वेदे च विहितो मार्गः सर्वलोकेषु पूजितः।
व्यासब्रह्मी यथा व्यासं बिलादुद्धरते वत्सम्। एवं त्वनुगम्य नारी सह भर्ता दिवं व्रजेत्॥

यों कहकर कपोतीने पृथ्वी, देवता, गङ्गा तथा जनस्पतियोंको नमस्कार किया और अपने बच्चोंको सान्त्वना देकर व्याधसे कहा—‘महाभाग! तुम्हारी ही कृपासे मेरे लिये ऐसा सुभ अवसर प्राप्त हुआ है। मैं पतितके साथ स्वर्गलोकमें जाती हूँ।’ यों कहकर वह पतितव्रत कपोती आगमें प्रवेश कर गयी। इसी समय आकाशमें जब-जबकसकी ध्वनि गूँज उठी तत्काल ही सूर्यके समान तेजस्वी अत्यन्त सुन्दर विमान उतर आया। दोनों दम्पति देवताके समान दिव्य शरीर धारण करके उसपर आरुढ़ हुए और आकाशमें पड़े हुए व्याधसे प्रसन्न होकर बोले—‘महामते! हम देखतेकरमें जाते हैं और तुम्हारी आज्ञा चाहते हैं। तुम



अतिथिके रूपमें हम दोनोंके लिये स्वर्गकी सीढ़ी बनकर आ गये। तुम्हें नमस्कार है।’

उन दोनोंको श्रेष्ठ विमानपर बैठे देख व्याधने अपना धनुष और पिंजड़ा फेंक दिया और हाथ जोड़कर कहा—‘महाभाग! मेरा त्याग न करो। मैं अज्ञानी हूँ। मुझे भी कुछ दो। मैं तुम्हारे लिये अक्षरन्तरे अतिथि होकर आया था, इसलिये मेरे दण्डारका उपाय बतलाओ।’

उन दोनोंने कहा—व्याध! तुम्हारा कल्याण हो। तुम भगवत्प्री गोदावरीके तटपर जाओ और उन्हींको अपना पाप भेंट कर दो। वहाँ पंद्रह दिनोंतक बुझकी लग्नसे तुम सब कपोतोंसे मुक्त हो जाओगे। जपमुक्त होनेपर जब पुनः गीतमी गङ्गामें जान करोगे, तब अक्षमेघ-चक्रका फल पाकर अत्यन्त पुण्यवान् हो जाओगे। नदियोंमें श्रेष्ठ गोदावरी ब्रह्मा, विष्णु तथा महादेवजीके अंशसे प्रकट हुई हैं। उनके भीतर पुनः गोले लग्नकर जब तुम अपने मलिन शरीरको त्याग दोगे, तब निश्चय ही श्रेष्ठ विमानपर आरुढ़ हो स्वर्गलोकमें पहुँच जाओगे।

उन दोनोंको बात सुनकर व्याधने वैसा ही किया, फिर वह भी दिव्य रूप धारण करके एक श्रेष्ठ विमानपर जा बैठा। कपोत, कपोती और व्याध—तीनों ही गीतमी गङ्गाके प्रभावसे स्वर्गमें चले गये। उन्हींसे वह स्थान कपोततीर्थके नामसे विख्यात हुआ। वहाँ ज्ञान, दान, पितरोंकी पूजा, जप और यज्ञ आदि कर्म करनेपर ये अक्षय फलसकते देनेवाले होते हैं।

दशाश्वमेधिक और वैशाखतीर्थका माहात्म्य

ब्रह्मजी कहते हैं—गोदावरी गङ्गामें कस्तिनियजीका भी एक तीर्थ है, जो बहुत उत्तम है। वह कैलाश-तीर्थके नामसे भी प्रसिद्ध है। उसका नाम सुनेम्ब्रको

पनुष कुत्तोन और रूपवान् होक है। उसके आगे कृत्तिकातीर्थ है, जिसके श्रवणमात्रसे सोमपानका फल मिलता है। महामुने! अब दशाश्वमेधिक

तीर्थका महात्म्य सुने। उसके श्रवणमन्त्रसे अश्वमेध-यज्ञके फलकी प्राप्ति होती है। विश्वकर्माके पुत्र महाबली विश्वरूप हुए। विश्वरूपके प्रथम जन्मक पुत्र हुआ। उसके पुत्रका नाम भीष्म हुआ। महाबाहु भीष्म सार्वभौम राजा हुए। उनके पुरोहित कश्यप थे, जो सब प्रकारके ज्ञानमें निपुण थे। एक दिन महाबाहु भीष्मने अपने पुरोहितसे पूछा—‘मुने! मैं एक ही साथ दस अश्वमेध-यज्ञ करना चाहता हूँ। वह यज्ञ कहाँ करें?’ कश्यपने प्रयागका नाम लिया और उन-उन स्थानोंपर यज्ञ करनेकी बताया, जहाँ ऋषि द्विजोंने पूर्वकालमें बड़े-बड़े यज्ञोंका अनुष्ठान किया था। राजाके यज्ञमें बहुत-से ऋषि श्रित्विज हुए। पुरोहितने एक ही साथ दस अश्वमेध-यज्ञ आरम्भ किये, किंतु उनमेंसे एक भी पूर्ण न हुआ। यह देखकर राजाको बड़ी विनम्र हुई। उन्होंने प्रयाग छोड़कर अन्य स्थानोंमें उन यज्ञोंका आरम्भ किया, किंतु वहाँ भी विघ्न-दोष आ पहुँचे। इस प्रकार अपने यज्ञोंको अपूर्ण देख राजाने पुरोहितसे कहा—‘देव और कालके दोषसे अथवा मेरे और आपके दोषसे हमारे दस अश्वमेध-यज्ञ पूर्ण नहीं हो पाते।’ यह कहकर दुःखी हुए राजा भीष्म अपने पुरोहित कश्यपके साथ बृहस्पतिजीके ज्येष्ठ भ्राता संवर्तके पास गये और इस प्रकार बोले—‘भगवन्! मुझे ऐसा कोई उत्तम प्रदेश बतलाइये, जहाँ एक ही साथ आरम्भ किये हुए दस अश्वमेध-यज्ञ पूर्ण हो जायें।’ तब मुनिऋषि संवर्तने कुछ कास्तक ध्यान करके महाराज भीष्मसे कहा—‘ब्रह्माजीके पास जाओ। वे ही उत्तम प्रदेश बतावेंगे।’

महाबुद्धिमान् भीष्म महात्मा कश्यपको साथ

ले मेरे पास आ पहुँचे और मुझसे भी उत्तम देश आदिके विषयमें प्रश्न करने लगे। उस समय मैंने भीष्म और कश्यपसे कहा—‘ऋषेन्द्र! तुम गोदावरीके तटपर जाओ। वही यज्ञके लिये पुण्यवान् प्रदेश है। वेदोंके पारंगामी विद्वान् ये महर्षि कश्यप ही ऋषि गुरु हैं। इनकी कृपा और गौतमी गङ्गाके प्रसादसे एक ही अश्वमेधसे अथवा वहाँ ज्ञान करनेमात्रसे तुम्हारे दस अश्वमेध-यज्ञ सिद्ध हो जायेंगे।’ यह सुनकर राजा भीष्म कश्यपजीके साथ गौतमीके तटपर आये और वहाँ अश्वमेध-यज्ञकी दीक्षा ग्रहण की। वह महायज्ञ आरम्भ होकर जब पूर्ण हो गया, तब राजा इस पृथ्वीका दान करनेको उत्सुक हुए। उसी समय आकाशवाणी हुई—‘राजन्! तुमने पुरोहित कश्यपजीको पर्वत, वन और कननसहित पृथ्वी देनेकी कामना करके सब कुछ दान कर दिया। अब भूमिदानकी अभित्याग छोड़कर अन्नदान करो। वह महान् फल देनेवाला है। तीनों लोकोंमें अन्नदानके समाप्त दूसरा पुण्यकर्म नहीं है। विशेषतः गङ्गाजीके तटपर ब्रह्माके साथ किये हुए अन्नदानकी महिमा अकल्पनीय है।’

तुमने जो प्रचुर दक्षिणासे युक्त यह अश्वमेध-यज्ञ किया है, इससे तुम कृतार्थ हो गये। अब इस विषयमें तुम्हें अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये। विल, गौ, धन, भान्य—जो कुछ भी गोदावरीके तटपर दिया जाता है, वह सब अक्षय्य हो जाता है।

यह सुनकर सम्राट् भीष्मने ब्राह्मणोंको बहुत-सा अन्नदान किया। तबसे वह तीर्थ दशरूपमेधिकाके नामसे विख्यात हुआ। वहाँ ज्ञान करनेसे दस अश्वमेध-यज्ञोंका फल प्राप्त होता है।

* भूमिदानस्युक्तं त्यक्त्वा अन्नं देहि महर्षिनाम् । नमस्तनयस्य पुण्यं त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥

कितोदत्तस्यु ब्रह्माणाः ऋद्धिं भुविने मुनेः ॥

उससे आगे पैशाचतीर्थ है, जो ब्रह्मवादी महर्षियोंद्वारा सम्मानित है। वह गोदावरीके दक्षिण-तटपर स्थित है। अब मैं उसका स्वरूप बतलाता हूँ, सुनो। मुनिश्रेष्ठ नारद, ब्रह्मगिरिके पार्श्वभागमें अञ्जन नामसे प्रसिद्ध एक पर्वत है। वहाँ एक सुन्दरी अप्सरा शापग्रस्त होकर उत्पन्न हुई। उसका नाम अञ्जना था। उसके सब अङ्ग बहुत सुन्दर थे, किंतु मुँह वानरीका था। केसरी नामक व्रेश बानर अञ्जनाके पति थे। केसरीके एक दूसरी भी स्त्री थी, जिसका नाम अद्रिका था। वह भी शापग्रस्त अप्सरा ही थी। उसके भी सब अङ्ग सुन्दर थे। किंतु मुँह बिल्लीके समान था। अद्रिका भी अञ्जन पर्वतपर ही रहती थी। एक समय केसरी दक्षिणसमुद्रके तटपर गये थे। इसी बीचमें महर्षि आगस्त्य अञ्जन पर्वतपर आये। अञ्जना और अद्रिका दोनोंने महर्षिआगस्त्यको प्रार्थना की। इससे प्रसन्न होकर महर्षिने कहा—‘तुम दोनों घर चलो।’ वे बोलीं—‘धुनीधर। हमें ऐसे पुत्र दोजिये, जो सबसे बलवान्, श्रेष्ठ और सब लोगोंका उपकार करनेवाले हों।’ ‘तथास्तु’ कहकर मुनिश्रेष्ठ आगस्त्य दक्षिण दिशामें चले गये कुछ कालके बाद अञ्जनाने वायुके अंशसे हनुमान्जीको जन्म दिया

और अद्रिकाके गर्भसे निरृतिके अंशसे पिशाचोंका जन्म यदि उत्पन्न हुआ। इसके बाद उन दोनों स्त्रियोंने उक्त देवताओंसे कहा—‘हमें मुनिके वरदानसे पुत्र तो प्राप्त हुए, किंतु इन्द्रके शापसे हमारा मुख कुरूप होनेके कारण सब शरीर ही विकृत हो गया है। इसे दूर करनेके लिये हम क्या उपाय करें—इसे आप दोनों बतायें।’ तब भगवान् वायु और निरृतिने कहा—‘गोदावरीमें स्नान और दान करनेसे तुम्हें शापसे छुटकारा मिल जायगा।’ वे कहकर वे दोनों वहीं अन्तर्धान हो गये। तब पिशाचरूपधारी अद्रिने अपने भाई हनुमान्जीको प्रसन्न करनेके लिये माता अञ्जनाको लाकर गोदावरीमें नहलाया। इसी प्रकार हनुमान्जी भी अद्रिकाको लेकर बड़ी उतावलीके साथ गीतमी गङ्गाके तटपर आये। तबसे वह पैशाच और आज्ञानतीर्थके नामसे विख्यात हुआ। वह समस्त अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाला सुभ तीर्थ है। ब्रह्मगिरिसे तिरपन योजन पूर्वकी ओर मार्जार-तीर्थ है। मार्जार-तीर्थसे आगे हनुमन्-तीर्थ और वृक्षकपि-तीर्थ है। उसके आगे केना-संगमतीर्थ बताया गया है, जो समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है। उसका स्वरूप और फल उसीके प्रसङ्गमें बताया जायगा



सुधातीर्थ और अहल्या-संगम-तीर्थका माहात्म्य

ब्रह्मजी कहते हैं—नारद! अब सुधातीर्थका वर्णन करता हूँ, एकप्रार्थित होकर सुनो। यह परम पुण्यमय तीर्थ मनुष्योंकी समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है। पूर्वकालमें कण्व नामसे प्रसिद्ध एक ऋषि थे। वे वेदवेदाङ्गोंमें श्रेष्ठ और तपस्वी थे। महर्षि कण्व भूखसे पीड़ित होकर अनेक आश्रमोंपर घूमा करते थे। एक दिन वे गीतमके पवित्र आश्रमपर आये। वह आश्रम अन्न

और जलसे सम्पन्न था। अपनेको सुधासे पीड़ित और गीतमको वैभवशाली देख कण्वका मन चिरकित्से भर गया। वे सोचने लगे—‘गीतम भी एक श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं और मैं भी उन्हींकी भाँति तपोनिष्ठ हूँ। बराबरवालेके पास याचना करना कदापि उचित नहीं है। अतः यद्यपि मैं भूखसे व्याकुल हूँ और भैंरे शरीरमें पीड़ा भी हो रही है, तथापि गीतमके घरमें भोजन नहीं करूँगा। इस

समय गीतमी गङ्गाके तटपर चर्तु और ऊन्हीसे सम्पत्ति पाँऊँ।' ऐसक निश्चय करके महर्षि कण्व परम पावन गङ्गाजीके तटपर गये और स्नान करके पवित्र एवं संयतचित्त हो कुशासनपर बैठकर गीतमी गङ्गा तथा शुधादेवीकी स्तुति करने लगे।

कण्व बोले—भारी पीड़ाओंको हरनेवाली भगवती गङ्गा! तुम्हें नमस्कार है तथा सब लोगोंको पीड़ा देनेवाली शुधादेवी! तुम्हको भी नमस्कार है। महादेवजीकी जटासे प्रकट हुई कल्याणमयी गीतमी! तुम्हें नमस्कार है तथा महामृत्युके मुखसे निकली हुई शुधादेवी! तुम्हें भी नमस्कार है। देवि! तुम्हीं पुण्यात्माओंके लिये शान्तिरूपा और दुरात्माओंके लिये क्रोधस्वरूपा हो। पदोंके रूपसे सबके पाप-तप डर लेती हो और शुभाकर्ममें आकर सबको पाप-तप देती रहती हो। कल्याणकारिणी देवी! तुम्हें नमस्कार है। पापोंका दमन करनेवाली गङ्गा! तुम्हें प्रणाम है। भगवती शान्तिकरी! तुम्हें नमस्कार है। दरिद्रताका विनाश करनेवाली देवी! तुम्हें प्रणाम है।

कण्वके इस प्रकार स्तुति करनेपर उनके सामने दो रूप प्रकट हुए—'एक तो गङ्गाका मनोहर स्वरूप और दूसरी शुधाकी भयानक मूर्ति। द्विजश्रेष्ठ कण्वने पुनः हाथ जोड़कर नमस्कार करते हुए कहा—'देवि गोदावरी! तुम सम्पूर्ण मङ्गलोंके लिये भी मङ्गलमयी हो। शुभे! ज्ञाही, माहेन्दरी, वैष्णवी और अश्वत्थ—ये सब तुम्हारे ही नाम हैं। तुम्हें नमस्कार है। भगवान् अश्वत्थकी जटासे प्रकट होकर महर्षि गीतमका पाप नष्ट करनेवाली गोदावरी! तुम सत्त धराओंमें विभक्त होकर समुद्रमें मिलती हो। तुम्हें नमस्कार है।

शुधादेवी! तुम समस्त पापियोंके लिये पापमयी, दुःखमयी और लोभमयी हो। धर्म, अर्थ और कामका नाश करनेवाली भी तुम्हीं हो। तुम्हें बारंबार नमस्कार है।'



कण्वका यह वचन सुनकर गङ्गा और शुधा दोनों ही बहुत प्रसन्न हुई और बोलीं—'सुव्रत! तुम मनोवर्जित कर पाँगे।' तब कण्वने गङ्गाजीको प्रणाम करके कहा—'देवि। मुझे मनके अनुकूल चेन, वैभव, अशु, धन और मोक्ष प्रदान कीजिये।' गङ्गासे यों कहकर द्विजश्रेष्ठ कण्वने शुधादेवीसे कहा—'शुभे! तुम तुष्णा एवं दरिद्रतारूपिणी, अश्वत्थ पापमयी तथा रुद्र स्वभाववाली हो। मेरे अश्वत्थ मेरे चरजोंके यहाँ तुम कभी न रहना। जो शुधातुर मनुष्य इस स्तोत्रसे तुम्हारी स्तुति करें, उसके दरिद्र्य और दुःखका नाश हो जाय।' जो लोग इस परम पुण्यमय तीर्थमें भक्तिपूर्वक स्नान,

* यदि मईमासे चापि शुभे एवमे दत्तिविधि। यदि पाप्मने रुद्धे न भूपासने कदाचन॥
अनेन स्तवेन ये वै त्वां सुवर्चस्व शुधवुराः। तेषां दरिद्रदुःखानि न भवेन्मूर्खोऽप्यरः॥

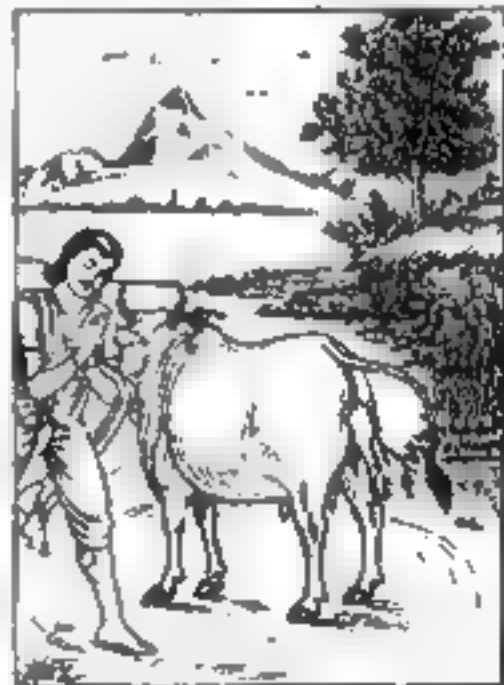
दान और जप आदि करें, ये घन सम्पत्तिके भागी हों। जो तीर्थ अथवा अपने घरमें इस स्तोत्रका पठ करे, उसे दरिद्रता और दुःखसे कभी भय न हो।

‘श्वधरस्तु’ कहकर गङ्गा और शुभ्र दोनों अपने-अपने स्थानको चली गयीं। तबसे उस तीर्थके तीन नाम हो गये—काश्वतीर्थ, गङ्गातीर्थ और शुभ्रतीर्थ। नारद! यह तीर्थ सब पापोंको दूर करनेकला और पितरोंकी प्रसन्नताको बढ़ानेकला है।

गोदावरीमें अहल्यासंगम नामक एक तीर्थ है, जो तीनों लोकोंको पवित्र करनेवाला है। भुनिश्रेष्ठ! उस तीर्थकी उत्पत्तिको वृत्तान्त सुनो। पूर्वकालकी बात है, मैंने अत्यन्त कौतुहलवश कुछ सुन्दरी कन्याओंकी सृष्टि की। उनमेंसे एक कन्या सबसे श्रेष्ठ और उच्चम लक्षणोंसे युक्त थी। उसके सब अङ्ग बड़े मनोहर तथा रूप और गुणोंसे सम्पन्न थे। उस समय मेरे मनमें यह विचार हुआ कि तीन पुरुष इस कन्याका पालन-पोषण करनेमें समर्थ हैं। सोचनेपर महर्षि गौतम ही मुझे समस्त गुणोंमें श्रेष्ठ, तपस्वी, बुद्धिमान्, समस्त गुण लक्षणोंसे सुसज्जित और वेद वेदाङ्गोंके ज्ञान प्रतीत हुए। अतः ‘उन्हींको मैंने यह कन्या दे दी और कहा—‘भुनिश्रेष्ठ! जबतक यह युवती न हो जाय, तबतक तुम्हीं इसका पालन-पोषण करना। युवावस्था होनेपर पुनः इस साध्वी कन्याको मेरे पास ले आया।’ मैं कहकर मैंने गौतमको यह कन्या समर्पित कर दी। गौतम अपने तपोबलसे निष्पाप हो चुके थे। उन्होंने विधिपूर्वक उस कन्याका पालन-पोषण किया और युवती होनेपर उसे वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित करके मेरे पास ले आये। उस समय इनके मनमें कोई विकार नहीं था। अहल्याको देखकर इन्द्र, अग्नि और वरुण आदि सब देवता भारी-भारीसे मेरे पास आये और कहने लगे—‘सुरेश्वर! यह कन्या मुझे दे

दीजिये।’ इन्द्रका तो उसके लिये विशेष आग्रह था। महर्षि गौतमकी महत्ता, गम्भीरता और धीरताका विचार करके मुझे बड़ा विस्मय हुआ। मैंने सोचा—‘यह सुमुखी कन्या गौतमको ही देने योग्य है और किसीको नहीं। अतः ‘उन्हींको दूँगा।’ ऐसा निश्चय करके मैंने देवताओं और ऋषियोंसे कहा—‘यह सुन्दरी कन्या उसीको दी जायगी, जो सारी पृथ्वीकी परिक्रम्य करके सबसे पहले यहाँ उपस्थित हो जाय; दूसरे किसीको नहीं मिलेगी।

मेरी बात सुनकर सब देवता अहल्याकी प्राप्ति के लिये पृथ्वीकी परिक्रम्य करने चले गये। इसी बीचमें कामधेनु सुरभि बच्चा देने लगी। अभी बच्चेका आधा शरीर ही बाहर निकला था। उसी अवस्थामें गौतमने उसे देखा और उसीकी पृथ्वीभ्रमसे देखते हुए उसकी परिक्रमा की। साथ ही उन्होंने शिवसिङ्गकी भी प्रदक्षिणा की। इसके



बद सोचा, सम्पूर्ण देवताओंने अभी पृथ्वीकी एक परिक्रम्य भी पूरा नहीं की और मेरे द्वारा दो परिक्रमाएँ पूरी हो गयीं। ऐसा निश्चय करके ये मेरे

सभीप आये और मुझे प्रणाम करके बोले—
'कमलासन! विश्वाम्भु! आपको बारंबार वन्द्यकर
है। ब्रह्मन्! मैंने सारी वसुधाकी प्रदक्षिणा कर
ली।' मैंने ध्यानके द्वारा सब बातें जानकर गीतमसे
कहा—'ब्रह्मर्षे! तुम्हींको यह सुन्दरी कन्या दी
जाती है। वास्तवमें तुमने पृथ्वीकी परिक्रमा पूरी
कर ली। जो वेदोंके लिये भी दुर्बोध है, उस
धर्मका स्वरूप तुम जानते हो। जो गाय आधा
प्रसन्न कर चुकी हो, वह सात द्वीपोंवाली पृथ्वीके
मुल्य है। उसकी परिक्रमा कर ली जय तो समूची
पृथ्वीकी परिक्रमा हो जाती है। स्थितिरङ्गकी
प्रदक्षिणाका भी यही फल है। अतः उपाय कृतका
पालन करनेवाले गीतम्! मैं तुम्हारे धर्म, ज्ञान और
तपस्यासे बहुत संतुष्ट हूँ।' यों कहकर मैंने
गीतमको अहल्या सौंप दी। उन दोनोंका विवाह
हो जानेपर देवतासंग पृथ्वीकी परिक्रमा करके
धीरे-धीरे आने लगे। अनेपर सबने अहल्याके
साथ गीतमका विवाह हुआ देखा। इससे उन्हें
बड़ा आश्चर्य हुआ। अन्तमें सब देवता स्वर्गमें
चले गये, परंतु इन्द्रके मनमें इससे बड़ी ईर्ष्या
हुई। मैंने प्रसन्न होकर महारथा गीतमको रहनेके
लिये ब्रह्मगिरि प्रदान किया, जो चरम पवित्र,
सर्वस्त अभिलषित वस्तुओंकी देवैश्वर्य तथा
यज्ञसमय है। मुनिश्रेष्ठ गीतम वहाँ अहल्याके
साथ विहास करने लगे,

इन्द्रने स्वर्गमें भी गीतमकी पवित्र कथा सुनी।
अतः मुनिको, उनके आश्रमको और उनकी
सुन्दरी पत्नीको देखनेके लिये वे ब्राह्मणका वेष
धारण करके आये। वहाँ आनेपर उन्होंने मनमें
फफकी भावना लेकर अहल्याको देखा। उस
समय वे अपने-आपको भी भूल गये। देश-
कालकी भी सुध न रही और जड़के स्वरूप भय
भी उन्होंने भुला दिया। उनका हृदय कामके

वशोभूत हो रहा था। एक समय महर्षि गीतम
मन्त्राहसे पहलेकी क्रिया समाप्त करके शिष्योंके
साथ आश्रमसे बाहर गये। उस समय अवसर
देखकर इन्द्रने अपने मनके अनुकूल कार्य किया।
वे गीतमका रूप धारण करके आश्रममें आये और
सर्वाङ्गसुन्दरी अहल्यासे बोले—'प्रिये! मैं तुम्हारे
गुणोंसे आकृष्ट हूँ। तुम्हारे रूपका स्मरण करके
मेरा मन विचलित हो गया है। प्रायः लड़खड़ा रहे
हूँ।' यों कहकर ईसते ईसते उन्होंने अहल्याका
हाथ पकड़ लिया और आश्रमके भीतर चले गये।
अहल्याने उन्हें गीतम ही समझा। वह कोई चार
पुरुष है—यह बात उसके ध्यानमें नहीं आयी।
वह इन्द्रके साथ सुखपूर्वक रमण करने लगी।
इतनेमें ही महर्षि गीतम पुनः अपने शिष्योंके साथ
लौट आये। प्रतिदिनका ऐसा नियम था कि जब
वे बाहरसे आश्रमपर आते तब प्रियवादिनी अहल्या
अगले कदम उनका स्वागत करती, प्रिय लगनेवाली
बातें कहती और अपने सद्गुणोंसे उन्हें संतुष्ट
करती थी। उस दिन अहल्याको न देखकर परम
बुद्धिमान् गीतमको ऐसा जान पड़ा मानो कोई
बड़ी अद्भुत बात हो गयी। मुनिश्रेष्ठ गीतम द्वारपर
खड़े हैं और सब लोग उनकी ओर देखते हैं।
अग्निहोत्र और श्रालाके रक्षक तथा घरमें कामकाज
करनेवाले अनुषा उन्हें देखकर बड़े विस्मयमें
पड़े और भयभीत होकर बोले—'भगवन्! यह
कैसी विचित्र बात है कि आप भीतर और बाहर
दोनों जगह देखे जाते हैं। आहो! आपकी तपस्याका
ही यह प्रभाव है कि आप अनेक रूप धारण
करके विचारते हैं।'

वह सुनकर गीतमके मनमें बड़ा आश्चर्य
हुआ। वे सोचने लगे—आश्रमके भीतर कौन गया
है। उन्होंने पुनः—'प्रिये! अहल्ये! आज तुम
मुझसे बोलती क्यों नहीं?' महर्षिका वचन सुनकर

अहल्याने उस आरसे कहा—'अरे! तू कौन है, जो मुनिका रूप धारण करके तुने मेरे साथ यह पापकर्म किया है?' यह कहती हुई वह भयके भाव शय्यासे सहसा उठकर खड़ी हो गयी। पाप्माचारी इन्द्र भी मुनिके भयसे बिस्मय बन गया। अहल्या घर-घर कौप रही थी। उसके बंध-भूषा बिगाड़ चुके थे। अपनी प्यारी पत्नीको वस्त्रविकृत हुई देख महर्षिने क्रोधमें आकर कहा—'तुम्हें यह दुःसाहस कैसे किया?' उनके इस प्रकार पृच्छनेपर देवी अहल्याने सच्चावस्य कोई उत्तर नहीं दिया। तब मुनि उस आरसी खोज करने लगे। इतनेमें इस विस्मावपर उनकी दृष्टि पड़ी। अरे, ठीक-ठीक बता, तू कौन है? यदि सच बोलेंगे तो मैं तुझे अभी भस्म कर दूँगा।'

इन्द्र हाथ जोड़कर खड़ा हो गया और बोला—'तपोधन! मैं शचीका स्वामी इन्द्र हूँ,



मुझसे ही यह पाप हो गया है। मैंने जो कुछ कहा है, वह सत्य है। अहन्! कर्मदेवके आश्विनसे जिनका हृदय विदीर्ण हो चुका है, वे कौन-सा

दुष्कर्म नहीं करते। आप करुणके सागर हैं, मुझ महापापीको क्षमा करें। साधु पुरुष अपराधीपर भी कठोरता नहीं दिखाते।'

गीतम बोले—इन्द्र! तुने स्त्रीकी योनिमें आसक्त होकर यह पापकर्म किया है, अतः तेरे शरीरमें योनिके सहस्रों चिह्न हो जायेंगे।

इसके बाद मुनिने अहल्यासे भी कुपित होकर कहा—'तू सूखी नदी हो जा।'

अहल्या बोली—भगवन्! जो पापिनी स्त्रियाँ मनसे भी दूसरे पुरुषकी कामना करती हैं, वे तथा उनके समस्त पूर्वज भी अधम्य नरकोंमें पड़ते हैं। आप कृपा करके मेरी बातोंपर ध्यान दें। यह इन्द्र आपका रूप धारण करके मेरे पास आया था। वे सब लोग इस बातके साक्षी हैं।

रक्षकोंने कहा—'ऐसी ही बात है। अहल्या ठीक कहती है।' मुनिने भी ध्यानके द्वारा सच्ची बातको जान लिए और सन्त होकर अपनी भक्तिमय पत्नीसे कहा—'कल्याणी! नदी होनेपर जब तुम सरिताओंमें श्रेष्ठ गीतमी गङ्गासे मिलोगी, उस समय पुनः अपने स्वरूपको प्राप्त कर लोगी।' महर्षिका वचन सुनकर वसिष्ठा अहल्याने वैसा ही किया। गीतमी गङ्गासे मिलनेपर पुनः उसका वही स्वरूप हो गया, जैसा मैंने बनाया था। तत्पश्चात् देवराज इन्द्रने हाथ जोड़कर महर्षि गीतमसे कहा—'मुनिश्रेष्ठ! अपने घरपर आये हुए मुझ पण्डितकी रक्षा कीजिये।' यों कहकर इन्द्र उनके चरणोंमें गिर पड़े। यह देख महर्षिने कृपापूर्वक कहा—'भुरंदर! तुम्हारा कल्याण हो। तुम खोजवारीके तटपर जाओ और उसमें स्नान करो। इससे तुम्हारे सारे पाप क्षणभरमें धुल जायेंगे। तुम्हारे शरीरमें योनिके जो सहस्रों चिह्न हैं, वे नेत्रोंके रूपमें परिणत हो जायेंगे। तुम सहस्राक्ष हो जाओगे। अरुद! गीतमीके प्रभावसे ये

दो आश्चर्यजनक बातें मैंने देखी हैं—अहल्या नदी, अहल्या-संगमके जग्यसे विकसित हुआ, उसे होकर पुनः अपने स्वरूपको प्राप्त हुई और इन्द्रतीर्थ भी कहते हैं। यह मनुष्योंकी समस्त शरीरपति इन्द्र सहस्राक्ष हो गये। तबसे वह तीर्थ कर्मनाओंको पूर्ण करनेवाला है।

जनस्थान, अश्वतीर्थ, भानुतीर्थ और अरुणा-वरुणा-संगमकी महिमा

ब्रह्माजी कहते हैं—उसके बाद विश्वविक्रम जनस्थान नामक तीर्थ है, जिसका विस्तार चार योजनका है। वह स्मरभयाग्रसे मनुष्योंको मुक्ति देनेवाला है। पूर्वकालकी बात है, वैवस्वत मनुके वंशमें जनक नामसे प्रसिद्ध एक राजा हुए। उन्होंने वरुणकी पुत्री गुणार्जवाके साथ विवाह किया था। गुणार्जवा धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी सिद्धि करनेवाली थी। जनकमें भी ये ही गुण थे, अतः राजाको अपने गुणोंके अनुरूप सुयोग्य भार्या मिली। विप्रवर सज्जवत्स्य राजा जनकके पुरोहित थे। एक दिन राजाने अपने पुरोहितसे पूछ—‘द्विजश्रेष्ठ! बड़े-बड़े मुनियोंने यह निर्णय किया है कि भोग और मोक्ष दोनों श्रेष्ठ हैं; अन्तर इतना ही है कि भोग अन्तमें ध्वस्त हो जाता है और मुक्ति पितृ एवं निर्विकार है। अतः भोगसे भी मुक्तिके ही श्रेष्ठ माना गया है। आप बतायें, भोगसे भी मुक्तिकी प्राप्ति कैसे होती है? सब प्रकारकी आसक्तिर्षोंका त्याग करनेसे जो मुक्ति प्राप्त होती है, वह तो अत्यन्त दुःखसाध्य है, अतः जिस उपायसे अत्यन्त सुखपूर्वक मुक्ति हो सके, वह बताइये।

याज्ञवल्क्य जीने—राजन्! साधात् भगवान् वरुण तुम्हारे गुरुजन, धनुर और हितवन्नी हैं। तन्हींके पास चत्वर पृष्ठे। वे तुम्हें हितका उपदेश देंगे।

तदनन्तर याज्ञवल्क्य और जनक दोनों राजा

वरुणके पास गये और वहाँ उन्होंने मुक्तिका मार्ग पूछा।



वरुणने कहा—दो प्रकारसे मुक्ति प्राप्त होती है—एक तो कर्म करनेसे और एक कर्म न करनेसे। वेदमें यह मार्ग निश्चित किया गया है कि कर्म न करनेकी अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चारों पुरुषार्थ कर्मसे बँधे हुए हैं। नृपश्रेष्ठ! कर्मद्वारा सब प्रकारके साध्योंकी सिद्धि होती है, इसलिये मनुष्योंको सब तरहसे वैदिक कर्मका अनुष्ठान करना चाहिये। इससे वे इस लोकमें भोग और मोक्ष दोनों प्राप्त करते हैं। अकर्मसे कर्म पवित्र है कर्म भिन्न-

भिन्न आश्रमों और वर्षोंके अनुसार अनेक प्रकारके होते हैं। वर्षों और आश्रमोंमें भी चार आश्रम कर्मके द्वारा माने गये हैं। उनमें भी गृहस्थाश्रम अधिक पुण्यदायक है। उससे भोग और मोक्ष दोनों प्राप्त हो सकते हैं।* यही भेद मत है।†

यह सुनकर राजा जनक और बुद्धिमान याज्ञवल्क्यने वरुणका पूजन किया और पुनः यह बात पूछी—‘सुरश्रेष्ठ। आपको नमस्कार है। आप सर्वज्ञ हैं। बताइये, कौन-सा देव और तीर्थ ऐसा है जो भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाला है?’

वरुणने कहा—‘इस पृथ्वीपर भारतवर्ष और उसमें भी दण्डकवन पुण्यदायक है। इसमें किया हुआ शुभ कर्म मनुष्योंको भोग तथा मोक्ष दोनों प्रदान करता है। तीर्थोंमें गौतमी गङ्गा श्रेष्ठ हैं। वे भुक्तिदायिनी मानी गयी हैं। वहाँ यज्ञ और दान करनेसे मोक्षकी प्राप्ति होगी।

वरुणका यह उपदेश सुनकर याज्ञवल्क्य और जनक उनकी आज्ञा से अपनी पुरीमें लौट आये, फिर गङ्गातीर्थपर जाकर राजा जनकने अश्वमेध आदि यज्ञ किये और विप्रवर याज्ञवल्क्यने उन यज्ञोंमें आचार्यका कार्य किया। गौतमी गङ्गाके तटपर यज्ञ करनेसे राजाको मोक्षकी प्राप्ति हुई। तत्पश्चात् जनकवंशके बहुत-से राजा क्रमशः वहाँ आकर यज्ञ करते और गोदावरीकी कृपासे मोक्षके भागी होते रहे। सभीसे यह तीर्थ जनस्थानके नामसे विख्यात हुआ। जनकोंका यज्ञस्थान होनेसे उसका नाम जनस्थान पड़ गया। वहाँ स्नान, दान और पितरोंका तर्पण करनेसे तथा उस तीर्थका चिन्तन करने, वहाँ जाने और भक्तिपूर्वक उसका

सेवन करनेसे मनुष्य सब अभिलषित वस्तुओंको प्राप्त और मोक्षका भागी होता है।

अरुणा और वरुणा नामकी दो परम पवित्र नदियाँ हैं। उन दोनोंका गोदावरीमें संगम हुआ है, जो बहुत ही पवित्र तीर्थ है। उसकी उत्पत्तिकी कथा सब पत्नोंका जरा करनेवाली है। उसे बताता हूँ, सुनो। महर्षि कश्यपके ज्येष्ठ पुत्र अदित्य (सूर्य) समस्त लोकोंमें विख्यात हैं। वे तीनों लोकोंके नेत्र हैं। उनकी किरणें अत्यन्त दुस्सह हैं। भगवान् सूर्यके रथमें सात घोड़े जुते होते हैं। सूर्यदेव सम्पूर्ण लोकोंद्वारा पूजित हैं। उनकी पत्नीका नाम उषा है। उषा विश्वकर्माकी पुत्री और त्रिभुवनकी अद्वितीय सुन्दरी है। उसे अपने स्वामीके तीव्र तापका सहन नहीं हो पाता था। वह सदा इसी चिन्तामें पड़ी रहती कि ‘मुझे क्या करना चाहिये?’ उषाके दो बुद्धिमान् पुत्र थे—वैवस्वत मनु और यम। एक कन्या भी थी, जो परम पवित्र यमुना नदीके रूपमें विख्यात हुई। एक दिन उषाके अपने ही समान रूपवाली अपनी छाया उत्पन्न की और उससे कहा—‘तू मेरी-ही-जैसी होकर मेरी आज्ञासे पतिकी सेवा तथा मेरे पुत्रोंका पालन कर। मैं अबतक लौट न आऊँ, तबतक तूझी पतिकी प्रेयसी बनकर रहो, यह रहस्य किसीको न बताना। मेरी संतानोंपर भी यह भेद प्रकट न होने पाये।’ छायाने ‘बहुत अच्छा’ कहकर उषाकी आज्ञा स्वीकार कर ली और उषा घरसे निकल गयी। उसने तपस्याके लिये उत्तरकुल नामक देशके प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचकर उसने घोड़ीका रूप धारण करके कठोर तपस्या

* गृहस्थ आश्रममें भोगकी प्राप्ति तो स्वाभाविक है और मोक्षकी प्राप्ति निष्काम धर्मका अनुष्ठान करनेसे होती है।

† अकार्मण- कर्म पुण्यं कर्म चाप्याश्रमेषु च। जन्मवर्जितं च रागेन्द्र तत्रापि नृणु बर्धयित्॥

आश्रमाणि च चत्वारि कर्मद्वाराणि जगत् : क्षुण्णमाश्रमणं च गार्हस्थ्यं पुण्यं स्मृतम्॥

अग्रम्भ की। जब सूर्यदेवको इसका पल्ल सगा, तब वे भी खोड़ेका रूप धारण करके उसके पल्ल गये। पतिव्रता उस परपुरुषकी अज्ञाततासे भागकर भारतवर्षमें गौतमीके तटपर आयी। वहाँ उसके पतिके साथ समागम हुआ, जिससे अस्विन-रुक्मण्यकी उत्पत्ति हुई। वह स्नान अश्वतीर्थ, भानुतीर्थ और पञ्चवटी आश्रमके जगमसे विख्यात हुआ। कवी और धनुना दोनों सूर्यकी कन्यारं थीं। वे गौतमी-तटपर अपने पितासे मिसनेके लिये अरुणा-वरुणा

नामक नदियोंके रूपमें आयी थीं। उन दोनोंका जहाँ मङ्गलमें संगम हुआ है, वह बहुत उत्तम तीर्थ है। उसमें भिन्न-भिन्न देवताओं और तीर्थोंका पूजक-पूजक समागम हुआ है। उक्त संगममें सत्तईस हजार तीर्थोंका समुदाय है। वहाँ किया हुआ स्नान और दान अत्यन्त पुण्य देनेवाला है। नरद! उस तीर्थके स्मरण, कीर्तन और श्रवणसे भी मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो धर्मवान् और सुखी होता है।

गरुड़तीर्थ और गोवर्धनतीर्थकी महिमा

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! गरुड़ नामक तीर्थ सब विष्णुकी शान्ति करनेवाला है। उसके प्रभावका वर्णन करता हूँ, ध्यान देकर सुनो। जेपनगके एक भट्ठावस्त्री पुत्र था, जो यजिन्नागके जगमसे प्रसिद्ध हुआ। उसे सदा गरुड़का भय भग्न रहता था, अतः उसने अपनी भक्तिके द्वारा भगवान् शंकरको संतुष्ट किया। प्रसन्न होनेपर भगवान् मोहलसे कह्य—'नमो। कोई बार मरोगे।' नागने कहा—'प्रभो ! तुझे गरुड़से अभय-दान दीजिये।' भगवान् शिवने कहा—'ऐस ही होगे। तुम्हें गरुड़से भय न हो।' वरदान पाकर यजिन्नाग गरुड़से निर्भय हो बाहर निकला। वह क्षीरसागरके समीप, जहाँ भगवान् विष्णु स्नान करते हैं, द्वापर-उत्तर विचरने लाग्य। जहाँ गरुड़ निवास करते थे, उस स्थानपर भी वह जाया करता। गरुड़ने उस नागको निर्भय विचरते देख पकड़ लिया और अपने घरमें लाकर डाल दिया।

इसी बीचमें नन्दीने जगदीश्वर भगवान् शिवसे कहा—'देवेश्वर! अब यजिन्नाग नहीं आता है। जान पड़ता है गरुड़ने उसे खा लिया या बाँध

रखा है। यदि वह जीवित होता तो यहाँ आये बिना न रहता।' नन्दीकी बात सुनकर भगवान् शिवने जगकी अवस्थाको जान लिया और कहा—'वह नाग गरुड़के घरमें बँधा पड़ा है। तुम शीघ्र जाकर जगदीश्वर भगवान् विष्णुकी स्तुति करो और गरुड़के द्वारा बन्धनमें डाले हुए नागको मेरे कहनेसे ले आओ।' प्रभुकी बात सुनकर नन्दी स्वयं ही लक्ष्मीपतिके पास उपस्थित हुए और भगवान् शिवकी कही हुई बातें वहाँ निवेदन कीं। तब भगवान् नारदजीने प्रसन्न होकर गरुड़से कहा—'विस्तानन्दन। मेरी बात मानकर नन्दीको वह नाग लौट दो।' गरुड़ने नाग देना स्वीकार नहीं किया और गर्वसे कहा—'मैं आपका भृत्य हूँ; मैं नागको लाया, आप उसे नन्दीको दे रहे हैं। स्वामी तो सेवकोंको दिया करते हैं, परंतु आप तो मेरी प्राण्य वस्तुको छीन रहे हैं। मेरी शक्ति आप जलते ही हैं। मेरे ही बलसे तो आपने संग्राममें दैत्योंपर विजय प्राप्त की है।'

भगवान् विष्णुने गरुड़की बात सुनकर सबके सम्मने हँसकर कहा—'पक्षिराज! ठीक है, दुम्हारे

हो बलसे मैंने असुरोंपर विजय पायी है।' फिर भगवान्ने क्रोध न करके कहा—'गरुड़! मैं स्नान नहीं तुममें विलक्षण शक्ति है; पर तुम मेरी इस कनिष्ठ अँगुलीको तो बहान करो।' इतना कहकर भगवान्ने अपनी अँगुली गरुड़के मस्तकपर रख दी गरुड़ अँगुलीका भार सह नहीं सके। तब गरुड़ने दीनभावसे लजित होकर हाथ जोड़कर प्रार्थना की और कहा—'मैं आपका अपराधी सेवक हूँ। मेरा परित्राण कीजिये,' फिर उन्होंने माता लक्ष्मीसे प्रार्थना की। लक्ष्मीजीने कृपाकुसल होकर जनार्दनसे कहा—'नमः! विपन्न भूय गरुड़को रक्ष कीजिये।' तब भगवान्ने नन्दीसे कहा—'नन्दीकेधरा! तुम गरुड़के साथ ही नगको महादेवजीके पास ले आओ।' 'बहुत अच्छा' कहकर नन्दी गरुड़ और नागके साथ धीरे-धीरे शंकरजीके पास गये और सब सम्बन्ध उन्हें कह सुनाये।

तब शंकरजीने गरुड़से कहा—'मईमण्डो! तुम लोकपालनी गौतमी गङ्गाके पास आओ। वे सम्पत्ता अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाली हैं। उस शक्तिमयी सरितामें स्नान करनेसे तुम्हें सम्पत्त प्रचलित वस्तुएँ सौगुनी अथवा सहस्रगुनी होकर मिलेंगी। गरुड़! जो सब प्रकारके पापोंसे सन्तप्त है, दुर्दैवसे बिनका उद्योग नष्ट हो गया है, उन प्राणिपण्डितोंके लिये मनोवाञ्छित फल देनेवाली गोदावरी नदी ही तरण है।' भगवान् शिवकी यह बात सुनकर गरुड़ प्रणम्य करके चले गये। गोदावरीके तटपर पहुँचकर उन्होंने जलमें स्नान किया और भगवान् शिव तथा विष्णुके चरणोंमें मस्तक झुकाया। फिर उनमें पूर्ववत् वेग आ गया और वे उड़कर भगवान् विष्णुके समीप चले गये। तबसे वह सम्पत्ता अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाला तीर्थ 'गरुड़तीर्थ' के नामसे प्रसिद्ध हुआ। यत्स नारद! मनुष्य मन और इन्द्रियोंको संयममें रखते हुए वहाँ स्नान आदि जो भी कर्म करता है,

वह सब अच्छा तथा शिव और विष्णुको प्रिय लगनेवाला होता है।

उसके अग्रे सब पापोंका नाश करनेवाला गोवर्धनतीर्थ है। वह पितरोंके लिये पुण्यजनक तथा इमरजम्बूद्वीप पाप दूर करनेवाला है। नारद! मैंने उसका प्रभाव प्रत्यक्ष देखा है। पूर्वकालमें जाबालि नामसे प्रसिद्ध एक किसान ब्राह्मण रहता था। वह दोपहर हो जानेपर भी हलसे बैलोंको खोलता नहीं था। उनके दोनों बगलमें और पीठपर चाबुक मारता रहता था। उसके दोनों बैल सदा औंलोंसे औंसू बहाते रहते थे। एक दिन कामधेनु गौ जागन्माता सुरभिने नन्दीसे सब हाल कहा। नन्दीने भी खिन्न होकर भगवान् शंकरको सब बातें बतायीं। तब शंकरजीने नन्दीसे कहा—'तुम्हारी प्रत्येक बात सिद्ध हो।'

महादेवजीकी यह आज्ञा पाकर नन्दीने सम्पत्त गोवर्धनकी अपनेमें समेट लिया। स्वर्गलोक और मर्त्यलोककी सम्पत्त गीर्ण अदृश्य हो गयीं। तब देवताओंने मेरे पास आकर कहा—'भगवान्!



गौओंके बिना जीवन नहीं रह सकता।' उस समय मैंने देवताओंसे कहा—'जाओ, भगवान् शंकरसे साचना करो।' तदनन्तर उन्होंने भगवान् शंकरकी स्तुति करके उनसे सब हाल कहा। महादेवजीने भी देवताओंको उत्तर दिया—'इस विषयमें नन्दी जानते हैं।' सब सब देवता नन्दिकेश्वरके पास जाकर बोले—'हमें जगत्का उपकार करनेवासी गौएँ रोजिये।' नन्दी,

बोले—'आपलोग गो-यज्ञ कीजिये, तभी दिव्य और मानस गौएँ प्राप्त होंगी।' तत्पश्चात् गौतमी गङ्गाके तटपर देवताओंने गोयज्ञका आयोजन किया। फिर वहाँसे गौएँ बढ़ने लगीं। तभीसे यह तोर्थ 'गोवर्धन' नामसे प्रसिद्ध हुआ। यह देवताओंकी प्रीति बढ़ानेवाला है। मुनिवृन्द वहाँ किया हुआ केवल स्नान भी सहस्र गो-दानोंका फल देनेवाला है।



श्वेततीर्थ, शुक्रतीर्थ और इन्द्रतीर्थका माहात्म्य

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! श्वेततीर्थ तीनों लोकोंमें विद्यमान है उसके अवगमनसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्तकार पा जाता है। पूर्वकालमें ह्वेत नामके एक ब्राह्मण थे, जो महर्षि गौतमके प्रिय सखा थे। वे गोदावरीके तटपर रहकर अतिथियोंके स्वागत-सत्कारमें लगे रहते और मन-खशी तपः क्रियाद्वारा भगवान् शिवका भजन करते थे। वे सदा भगवान् सदाशिवकी पूजा और ध्यान करते रहते थे। शिवके भजनमें ही उनकी आयु पूरी हो गयी। तब यमराजके दूत उन्हें ले जानेके लिये आये, परंतु मरदजी ! वे ब्राह्मण-देवताके घरमें प्रवेश न कर सके। जब ब्राह्मणकी मृत्युका समय व्यतीत हो गया, तब चित्रकने मृत्युसे पूछा—'मृत्यो ! श्वेतका जीवन समाप्त हो चुका है, यह अवगतक क्यों नहीं आया? तुम्हारे दूत भी अभीतक नहीं लौटे देख होना ठीक नहीं।' यह सुनकर मृत्युको बड़ा क्रोध हुआ और वे स्वयं ही श्वेतके घरपर पधारे। उनके दूत भयभीत होकर बाहर ही खड़े थे। उन्हें देखकर मृत्युने पूछा—'दूतों ! यह क्या बात है?' दूत बोले—'श्वेत भगवान् शिवके द्वारा सुरक्षित हैं।

हम उनकी ओर भीख ठठकर देख भी नहीं सकते। जिनके ऊपर भगवान् शंकर प्रसन्न हो जायें, उन्हें भय कैसा।'

तब मृत्युने अपना फंदा हाथमें लेकर स्वयं ही ब्राह्मणके घरमें प्रवेश किया। ब्राह्मण तो भक्तिपूर्वक भगवान् शिवकी पूजा कर रहे थे। उन्हें न तो मृत्युके आनेका पता चले और न यमदूतोंके। श्वेतके समीप पासवारी मृत्युको खड़ा देख दण्डकरी भैरवने विस्मित होकर पूछा—'मृत्युदेव ! यहाँ क्या देखते हो ?' मृत्युने उत्तर दिया—'मैं श्वेतको ले जानेके लिये यहाँ आया हूँ, अतः इन्हींको देखता हूँ।' भैरवने कहा—'लौट जाओ।' मृत्युने श्वेतपर अपना फंदा फेंका। यह देखकर भैरव कुपित हो उठे। उन्होंने शिवके दिये हुए दण्डसे मृत्युपर गहरी चोट की। मृत्युदेवता पाश हाथमें लिये हुए ही धरतीपर गिर पड़े। मृत्युको मारा गया देख यमदूत भाग गये। उन्होंने मृत्युके वधका समाचार यमराजसे कहा। यह सुनकर महिषासुर यमराजको बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने अधिक बलवान् चित्रगुप्त, अपनी रक्षा करनेवाले यमदण्ड, महिष, भूत, वेताल तथा अधि-व्याधियोंको

शीघ्रतापूर्वक चलनेका आदेश दे तुरंत वहाँसे प्रस्थान किया। अपने साथियोंसहित यमराज तब स्थानपर पहुँचे, जहाँ द्विजश्रेष्ठ श्वेत भगवान् शिवकी आराधनामें संलग्न थे।

उस समय यमराज तथा भगवान् शिवके पार्षदाँमें अत्यन्त भयानक संग्राम छिड़ गया। कार्तिकेयने स्वयं ही शक्ति सैनाली और यमराजके वृत्तोंको विदीर्ण कर डाला। साथ ही दक्षिण-दिशाके स्वामी अत्यन्त चलवान् यमराजको भी पीतके घाट उतार दिया। मरनेसे बचे हुए यमदूतोंने भगवान् सूर्यको यह सब समाचार कह सुनाया। यह अद्भुत बात सुनकर सूर्य समस्त देवताओं और लोकपालोंके साथ भेरे समीप आये। फिर यै, भगवान् विष्णु, इन्द्र, अग्नि, वसुन् तत्त्व अन्य बहुत-से देवता यमराजके पास गये। वे गोदावरीके तटपर भरे पड़े थे। यमराजको सेनासहित मरा देखा देवता भयसे व्याकुल हो उठे और हाथ जोड़कर बारंबार भगवान् शिवकी प्रार्थना करने लगे।

देवता बोले—भगवन्! आपको अपने भक्त सदा ही प्रिय हैं तथा आप दुर्होंका वध किया करते हैं। संसारके आदि सृष्टा नीलकण्ठ! आपको नमस्कार है, नमस्कार है। ब्रह्माप्रिय! आपको नमस्कार है। देवप्रिय! आपको नमस्कार है। विप्रवर श्वेत आपके भक्त हैं इनको आमु क्षीण हो जानेपर भी यम आदि सब लोग इन्हें ले जानेमें समर्थ न हो सके आपका अपने भक्तोंपर ऐसा महान् प्रेम देखकर हम सबको बड़ा संतोष हुआ। नाथ! सचमुच ही आप बड़े भक्तवत्सल हैं जो लोग आप जैसे दयालु परमेश्वरकी शरणमें आ गये हैं, उन्हें यमराज भी नहीं देख सकता। यह जानकर ही सब लोग पराभक्तिके साथ आपका भजन करते हैं शंकर! आप ही इस जगत्के स्वामी हैं। क्या यह बात आप भूल गये?

आपके बिना यहाँ व्यवस्था करनेमें कौन समर्थ हो सकता है।

इस प्रकार स्तुति करनेवाले देवताओंके समक्ष भगवान् शंकर स्वयं प्रकट हो गये और बोले—‘देवताओ, तुम्हें क्या दूँ?’

देवताओंने कहा—देवेश्वर! ये सूर्यके पुत्र धर्म हैं, जो समस्त देहधारियोंका नियन्त्रण करते हैं। इन्हें धर्म और अधर्मको व्यवस्थामें नियुक्त किया गया है। ये लोकपाल हैं। अपराधी और पापी नहीं हैं। अतः इनका वध नहीं होना चाहिये। इनके बिना ब्रह्माजीका कोई कार्य नहीं चल सकता। इसलिये सेना और वाहनोंसहित यमराजको जीवित कर दीजिये नाथ! महत्प्रभाओंके सामने की हुई प्रार्थना सफल ही होती है। यह कभी व्यर्थ नहीं जाती।

भगवान् शिव बोले—देवताओ! मेरी बात सुनो—जो भेरे तथा भगवान् विष्णुके भक्त हैं, गौतमी गङ्गाका निरन्तर सेवन करनेवाले हैं, उनके स्वामी हमलोग स्वयं ही हैं। मृत्युका उनके ऊपर कोई अधिकार नहीं है। यमराजको तो कभी उनकी जातक नहीं चलानी चाहिये। व्याधि-आधिके द्वारा उनका पराभव करना कदापि उचित नहीं है। जो मेरी शरणमें आ जाते हैं, वे तत्काल मुक्त हो जाते हैं। यमराजको तो चाहिये अपने अनुचरोंसहित उन्हें प्रणाम करे।

‘बहुत अच्छा’ कहकर देवताओंने भगवान् शिवको बातका अनुमोदन किया। तब भगवान् शिवने अपने वाहन नन्दीसे कहा—‘तुम गौतमीका जल लेकर भरे हुए यमराज आदिके शरीरपर छिड़क दो!’ आज्ञा पाकर नन्दीने यम आदि सब लोगोंपर गोदावरीका जल छिड़का। इससे वे जीवित होकर उठ बैठे और दक्षिण दिशाकी ओर चले गये। गौतमीके उत्तर तटपर विष्णु आदि सब

देवता ठहर गये और देवकीदेव महेश्वरकी पूजा करने लगे। उस समय वहाँ एक लाख ब्राह्मण तीर्थ एकत्रित हुए थे। इसी प्रकार गोदावरीके दक्षिण-तटपर तीस लाख तीर्थ एकत्रित हुए। यही श्वेततीर्थका पवित्र उपलक्षण है। वहाँ मृत्यु देवता बरकर गिरे थे, यह स्थान मृत्युतीर्थ कहलाता है। वहाँ किन्हीं हुआ स्नान और स्नान सब पापोंका नाश करनेवाला है। उसके महात्म्यका श्रवण, बैठन और स्मरण अन्तःकरणके मलको धोनेवाला और सब लोगोको भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाला है।

इसके आगे शुक्तीर्थ है, जो मनुष्योंको सब प्रकारकी सिद्धि देनेवाला है। यह सब पापोंको नश्वर करनेवाला तथा सब प्रकारकी व्यथियोंका नाशक है। अङ्गिरा और भृगु—ये दो परम धर्मात्मा जन्म हुए हैं। इन दोनोंके दो-दो पुत्र हुए, जो बड़े ही विद्वान् और कम तथा बुद्धिसे सुतोषित थे। अङ्गिराके पुत्रका नाम था कवि। ये दोनों अपने यज्ञा-पिताके अधीन रहते थे। जब दोनोंका यज्ञोपवीत-संस्कार हो गया, तब उनके पिता परस्पर कहने लगे—‘हम दोनोंमेंसे एक ही इन दोनों पुत्रोंका शिक्षक हो। इससे एक ही उत्तम करेगा और दूसरा सुखसे बैठ लौगा।’ यह सुनकर अङ्गिरा ने कहा—‘मैं कविको भी अपने पुत्रके समान ही पढ़ाऊँगा। यह सुखपूर्वक मेरे यहाँ रहे।’

अङ्गिराकी बात सुनकर भृगु ने कहा—‘ठीक है’ और उन्होंने अपने पुत्र शुक्रको अङ्गिराकी सेवामें सौंप दिया। परन्तु अङ्गिरा उन दोनों बालकोंमें विषम बुद्धि रखते थे। इसलिये दोनोंको पृथक्-पृथक् पढ़ाते थे। बहुत दिनोंतक किसी प्रकार चलता रहा, तब एक दिन शुक्र ने कहा—

‘गुरुदेव! आप मुझे प्रतिदिन विषयभावसे पढ़ाते हैं। गुरुजनोंके लिये यह उचित नहीं कि वे पुत्र और शिष्यमें पेटभाव समझें, जो लोग विषम बुद्धि रखते हैं, उनके चपकी कोई गणना नहीं है। आचार्य ! अब मैंने आपको अच्छी तरह समझ लिया। आपको बारंबार नमस्कार करता हूँ। अब दूसरे किसी गुरुके यहाँ जाऊँगा। मुझे खानेकी आज्ञा दीजिये।’

इस प्रकार गुरु और गृहस्थतिसे पूछकर उनकी आज्ञा से शुद्ध चले गये। उन्होंने सोचा अब पूर्ण विद्या प्राप्त करके ही पिताके पास चलूँ। किन्तु किससे पूछूँ, कौन सबसे बड़ा गुरु हो सकता है? इन्हीं सब बातोंका विचार करते हुए शुक्र ने महाप्राज्ञ गीतमके पास जाकर पूछा—‘मुनिश्रेष्ठ ! बताइये, कौन भेद गुरु हो सकता है? जो तीर्थ लोकोका गुरु हो, उसीके पास मैं जाऊँगा।’

गीतमने कहा—‘जगद्गुरु भगवान् शंकर ही गुरु होने योग्य हैं।’

शुक्र ने पूछा—‘मैं कहीं रहकर शङ्करजीकी अराधना करूँ?’

गीतम बोले—‘गीतमी गङ्गामें स्नान करके पवित्र हो श्रोत्रोद्वार भगवान् शंकरको संतुष्ट करो। संतुष्ट होनेपर वे जगद्गुरु तुम्हें विद्या प्रदान करेंगे।’

गीतमके कहनेसे शुक्र गोदावरीके तटपर गये और वहाँ स्नान करके पवित्र हो भगवान् शिवकी स्तुति करने लगे।

शुक्र बोले—‘प्रभो ! मैं बालक हूँ मेरी बुद्धि बालककी ही है और अब बालचन्द्रमाको मस्तकपर धारण करनेवाला हूँ। मुझे आपकी स्तुति करनेका कुछ भी ज्ञान नहीं है। केवल आपकी नमस्कार करता हूँ। गुरुने मुझे त्याग दिया है। मेरा कोई सुहृद् अथवा सखा नहीं है। आप ही सब प्रकारसे मेरे प्रभु हैं। जगन्नाथ! आपको नमस्कार

है। आप गुरुवासोंके भी गुरु और बड़ोंके भी बड़े हैं। मैं छोटा बच्चा हूँ। मुझपर कृपा कीजिये। जगन्मय ! आपको नमस्कार है। सुरेश्वर ! मैं विद्याके लिये आपकी शरणमें आया हूँ। मुझे आपके स्वरूपका कुछ भी ज्ञान नहीं है। आप स्वयं ही कृपा करके मेरी ओर देखें। लोकसाक्षी शिव ! आपको नमस्कार है।

शुक्रके इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवान् शंकर प्रसन्न होकर बोले—'कत्स ! तुम्हारा कल्याण हो। तुम इच्छानुसार कर जाँगो, भले ही वह देवताओंके लिये भी दुर्लभ क्यों न हो।' उदारवृद्धि कक्षिने भी हाथ जोड़कर कहा—'नाथ ! ब्रह्मा आदि देवताओं तथा ऋषियोंको भी जो विद्या नहीं प्राप्त हुई हो, उसके लिये मैं साधन करता हूँ। आप ही मेरे गुरु और देवता हैं।'।



ब्रह्माजी कहते हैं—शुक्रने जब इस प्रकार प्रार्थना की, तब देवग्रेष्ठ भगवान् शिवने उन्हें मृतसंजीवनी विद्या प्रदान की, जिसका ज्ञान देवताओंको भी नहीं था। साथ ही उन्होंने

लौकिकी, वैदिकी तथा अन्यान्य विद्याएँ भी दीं। जब साध्यात् भगवान् शंकर ही प्रसन्न हो गये थे, तब क्या बाकी रह जाता वह महाविद्या पाकर शुक्र अपने पिता और गुरुके पास गये। अपनी विद्यासे पूजित होकर वे दैत्योंके गुरु हुए। किस समय कुछ कारणवश बृहस्पतिके पुत्र कचने शुक्राचार्यसे मृतसंजीवनी विद्या प्राप्त की। कचसे बृहस्पतिने और बृहस्पतिसे पृषक्-पृषक् देवताओंने उस विद्याको ग्रहण किया। गौतमीके उत्तरतटपर, जहाँ भगवान् महेश्वरकी आराधना करके शुक्रने विद्या चायी थी, वह स्थान शुक्रतीर्थ कहलगा है। पृथ्वी-संजीवनीतीर्थ भी उसका नाम है। वह आयु और आरोग्यकी वृद्धि करनेवाला है। वहाँ स्नान, दान आदि जो कुछ भी शुभ कर्म किया जाता है, वह अश्वय पुण्य देनेवाला होता है।

शुक्रतीर्थके बाद इन्द्रतीर्थ है। वह ब्रह्महत्याके विनाश करनेवाला है। उसके स्मरणमात्रसे पाप-राशि तप्त होतेसमयुदायका भार हो जाता है। शरद ! पूर्वकालकी बात है। जब इन्द्रने वृत्रासुरका वध किया, तब ब्रह्महत्या उनके पीछे लग गयी। उसे देखकर इन्द्रको बड़ा भय हुआ। वे इधर-उधर भागने लगे। किन्तु जहाँ-जहाँ वे जाते, ब्रह्महत्या उनका पीछा नहीं छोड़ती थी। तब वे एक बहुत बड़े सरोवरमें प्रवेश करके कमलकी नालमें छिप गये और उसमें तन्तुकी भाँति होकर रहने लगे। ब्रह्महत्या भी उस सरोवरके तटपर एक हजार दिव्य कर्वाँतक बैठी रही। इस बीचमें सब देवता बिना इन्द्रके हो गये थे। उन्होंने आपसमें संलाह की, किस प्रकार इन्द्र प्रकट हों? उस समय भैरव देवताओंसे कहा—'ब्रह्महत्याके लिये दूसरा स्थान दे दिया जाय और इन्द्रको सुदृढ़ करनेके लिये गोदावरी-नदीमें नहलाना जाय। उसमें स्नान करनेसे इन्द्र पुनः सुदृढ़ हो जायेंगे।'।

इन्द्रका प्रथम अभिषेक नर्मदा-तटपर हुआ। वहाँ उनके मलका रोधन होनेके कारण उस देशका नाम मालव पड़ा। तत्पश्चात् वे गौतमी गङ्गाके तटपर लाये गये। वहाँ पुण्या नदीके जलमें गौतमीका जल लाकर उसीसे समस्त देवता, ऋषि, मैं, विष्णु, वसिष्ठ, गौतम, अगस्त्य, अत्रि, कश्यप, अन्योन्य ऋषि, वश तथा पद्मगौने इन्द्रका अभिषेक किया। तत्पश्चात् मैंने उन्हें अपने कमण्डलुके जलसे भी अभिषिक्त किया। इस प्रकार वहाँ 'पुण्या' और 'सिन्हा' दो नदियाँ हो गयीं और वे दोनों गौतमी गङ्गामें अगकर

मिलीं। उन दोनोंके संगम मुनिर्याद्वारा सेवित विख्यात तीर्थ बन गये। तबसे उस तीर्थको पुण्यासंगम कहते हैं। सिकासङ्गमका ही नाम इन्द्रतीर्थ हो गया। वहाँ साठ हजार भङ्गलमय तीर्थ निवास करने लगे। उन तीर्थोंमें तक्ष विशेधतः संगमके जलमें जो स्नान-दान किया जाता है, वह सब अक्षय जानना चाहिये। इसमें अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। जो इस पवित्र उपाख्यानको पढ़ता अथवा सुनता है, वह मन, वाणी, शरीर और क्रियाद्वारा होनेवाले समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है।

पीलस्त्य, अग्नि और ऋणमोचन नामक तीर्थोंका याहात्म्य

ब्रह्माजी कहते हैं—इसके आगे पीलस्त्य-तीर्थ है, जो मनुष्योंको सब प्रकारकी सिद्धि देनेवाला है। मैं उसके प्रभावका वर्णन करता हूँ—जब छिने हुए राज्यकी भी प्राप्ति करता है। विश्रवा मुनिके ज्येष्ठ पुत्र कुबेर, जो ऋद्धि-सिद्धिसे सम्पन्न और उत्तर दिशाके स्वामी हैं, पहले लङ्काके राजा थे। उनके सौतेले भाई रावण, कुम्भकर्ण और विभीषण बड़े बलवान् थे। यद्यपि वे भी विश्रवाके ही पुत्र थे, तथापि लक्ष्मणपुत्री कैकसीके गर्भसे उत्पन्न होनेके कारण राक्षस कहलाते थे। वे तीनों भाई तपस्या करनेके लिये बनमें गये। वहाँ उन्होंने बड़ी भारी तपस्व्य की और मुझसे वरदान प्राप्त किया। तदनन्तर अपने मामा मारीचके तथा नाना और माताके कहनेसे रावणने कुबेरसे लङ्काकी राजधानी अपने लिये माँगी। इस बातको लेकर दोनों भाइयोंमें भारी शत्रुता हो गयी। फिर तो देवताओं और दानवोंमें भयंकर युद्ध हुआ। रावणने अपने बड़े भाई कुबेरको युद्धमें हराकर पुष्पक विमान और

लङ्कापुरीपर अधिकार जमा लिया तथा तीनों लोकोंमें घोषणा करा दी कि जो मेरे भाईको आज्ञा देगा, वह मेरे हाथसे मारा जायगा। कुबेरको कहीं आज्ञा न मिला। तब वे अपने पितृमह पुलस्त्यके पास गये और उन्हें प्रणाम



करके बोले—‘मेरे दुष्ट भ्रातृने मुझे लङ्कासे निकाल दिया। बताइये, अब क्या करूँ? अब मेरे लिये दैव अथवा तीर्थ ही आश्रय या शरण हैं।’
 पौत्रकी यह बात सुनकर पुलस्त्यने कहा—‘बेटा! तुम गौतमी गङ्गामें जाकर भगवान् शंकरकी स्तुति करो। वहाँ गङ्गाके जलमें रावणका प्रवेश नहीं हो सकता। अतः मेरे साथ वहीं चलकर कल्याणमयी सिद्धि प्राप्त करो।’

कुबेरने ‘बहुत अच्छा’ कहकर उनकी आज्ञा स्वीकार की और पत्नी, पिता, माता तथा बृद्ध महर्षि पुलस्त्यके साथ गौतमी गङ्गाके तटपर गये। वहाँ गङ्गामें स्नान करके पवित्र हो कुबेर भोग-मोक्षके दाता देवदेवेश्वर भगवान् शिवकी स्तुति करने लगे—‘हाम्भो आप ही इस चराचर जगत्के स्वामी हैं, दूसरा कोई नहीं। जो लोग आपकी भी अवहेलना करके मोहवश भ्रष्टता करते हैं वे शोकके ही योग्य हैं। आप अपनी आठ मूर्तियोंद्वारा सम्पूर्ण जगत्का भरण-पोषण करते हैं। आपकी आज्ञासे ही सब लोग चेष्टा करते हैं तथापि विद्वान् पुरुष ही आपकी महिमाको कुछ-कुछ जान पाते हैं। अज्ञानी पुरुष आप पुरातन प्रभुको कभी नहीं जान सकते। एक दिन जगदम्बा पार्वतीने अपने शरीरके मैलसे एक पुतला बनाकर रख दिया और परिहासमें आपसे कहा—‘देव ! यह आपका शूरवीर पुत्र है।’ उसपर आपकी कृपादृष्टि हुई और विष्णोका राजा गणेश बन गया। अहो, महेश्वरकी दृष्टिका कितना अद्भुत प्रभाव है! जब कामदेव भस्म हो गया और रति उसके लिये विलाप करने लगी, तब दयामयी माता पार्वतीने आँसू बहाते हुए उसकी ओर देखकर कहा—‘भगवन् ! इन बेचाराँका दाम्पत्य-सुख छिन गया!’ तब आपने उसपर भी कृपा की कामदेव मनोभव हो गये—वह रतिकी

मनोभूमिमें प्रकट हो गये। इस प्रकार उमासहित महादेवजीकी कृपासे रतिने पूर्ण सौभाग्य प्राप्त किया।”

इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवान् शंकर कुबेरके स्वप्नमें प्रकट हुए। उन्होंने चर माँगनेवे लिये कहा, किंतु हर्षातिरेकके कारण कुबेरके मुखसे कोई बात नहीं निकली। इसी समय अकालघाणी हुई। उसने धानो पुलस्त्य, विश्रवा और कुबेरके हार्दिक अभिप्रायको जानकर यह कल्याणमय वचन कहा—‘भगवन् ! ये लोग धनका प्रभुत्व प्राप्त करना चाहते हैं। इनके लिये भविष्य भूत सा बन जाय। जिस वस्तुको ये किसोके लिये देना चाहें, वह दी हुईके समान हो जाय तथा जो वस्तु ये स्वयं प्राप्त करना चाहें, वह पहले ही इनके सामने प्रस्तुत हो जाय। ये भगवान् शंकरकी आराधना करके इस बातकी अभिलाष रखते हैं कि हमारे कष्ट चरास्त हों, दुःख दूर हो जाय, दिक्कालका पद प्राप्त हो, धनका प्रभुत्व मिले, अपरिमित दान-शक्ति हो। साथ ही स्त्री और पुत्रका सुख भी बना रहे।’

कुबेरने यह अकालघाणी सुनकर त्रिशूलधारी भगवान् शंकरसे कहा—‘देव ! ऐसा ही हो।’ ‘तथास्तु’ कहकर शिवने उस दैवी वाणीका अनुमोदन किया। इस प्रकार पुलस्त्य, विश्रवा और कुबेरका वरदानसे अभिनन्दन करके भगवान् शिव अन्तर्धान हो गये। तबसे उस तीर्थके तीन नाम पड़े—पौलस्त्यतीर्थ, धनदतीर्थ और वैश्रवसतीर्थ। यह समस्त कामन्त्रओंको देनेवाला शुभ तीर्थ है। वहाँ स्नान आदि जो कुछ भी पुण्यकर्म किया जाता है, वह अधिक पुण्यदायक होता है।

पौलस्त्य तीर्थके बाद अग्नितीर्थ है। वह सब वज्रोंका फल देनेवाला और समस्त विष्णोको

ज्ञान करनेवाला है। उस तीर्थका फल सुने। अग्निके भाई जातवेदा हैं, जो देवताओंके पास इविष्य पहुँचाना करते हैं। एक दिनकी बात है—गोदावरीके तटपर ऋषियोंके यज्ञमण्डपमें यज्ञ हो रहा था। अग्निके प्रिय भाई जातवेदा देवताओंके इविष्यका कहन कर रहे थे। उसी समय दितिके बलवान् पुत्र धनुने प्रजान-प्रधान ऋषियों और देवताओंके देखते-देखते यज्ञवेद्यको मार डाला। उनके मरनेपर देवताओंको इविष्य मिलना बंद हो गया। इधर अपने प्रिय भाई जातवेदाके मारे जानेसे अग्निको बड़ा क्रोध हुआ। वे गीतमी गङ्गाके जलमें स्नान गये। अग्निके जलमें प्रवेश करनेपर देवता और धनुष्य जीवनका त्याग करने लगे, क्योंकि अग्नि ही उनकी जीवन है। अग्निदेव जहाँ जलमें प्रविष्ट हुए थे, वहाँ स्नानपर सम्पूर्ण देवता, ऋषि और पितृ अपने और यह सोचकर कि बिना अग्निके हम जीवित नहीं रह सकते, उनकी स्तुति करने लगे। ज्ञानमें ही जलके भीतर उन्हें अग्निकी दर्शन हुई। उन्हें देखकर देवता बोले—'अग्ने ! आप इविष्यके द्वारा देवताओंको, कव्य (श्राद्ध)—से पितृओंको तथा अन्नको पचाने और जीवनके गलाने अग्निदेव द्वारा धनुष्योंको जीवित कीजिये।'

अग्निने उत्तर दिया—'मेरा छोटा भाई, जो इस कार्यमें समर्थ था, मर चुका। आप लोगोंका काम करनेमें जातवेदाकी जो गति हुई है, वह मेरी भी हो सकती है। अतः मुझे आप लोगोंके कार्य-समाधानमें उत्साह नहीं है।' तब देवताओं और ऋषियोंने सब प्रकारसे अग्निकी प्रार्थना करते हुए कहा—'हव्यमाहन ! हमलोग आपको आयु, कर्म करनेमें उत्साह और सर्वत्र व्यापक होनेकी शक्ति

देते हैं। साथ ही प्रयाज और अनुयाज भी देंगे। देवताओंके आप ही श्रेष्ठ मुख होंगे। पहली आहुतिभी आपको ही मिलेगी। आप जो इच्छा हमें देंगे, वही हम भोजन करेंगे।'

इस आश्वासनसे अग्निदेव प्रसन्न हुए। तब इस लोक और परलोकमें व्यापक रहनेकी शक्ति प्राप्त हुई। वे सर्वत्र निर्धन हो गये। जातवेदा, बृहद्वाण, सप्तारिषि, नीललोहित, जलगर्भ, शयीगर्भ और यज्ञगर्भ—इन कर्मोंसे उन्होंने काय जोष होने लगे। देवताओंने अग्निको जलसे निकाला और जातवेदा तथा अग्नि दोनोंके पदपर उनकी अभिषेक किया। कार्य सिद्ध होनेपर देवता भी अपने-अपने स्थानको चले गये। तभीसे वह स्थान 'वह्नितीर्थ' कहलाता है। वहाँ सात सौ उत्तम तीर्थोंका निवास है। जो जितात्मा पुरुष इन तीर्थोंमें स्नान और दान करता है, उसे अद्यवेध-यज्ञका पूरा फल प्राप्त होता है। वहीं देवतीर्थ, अग्नितीर्थ और जातवेदस्तीर्थ भी हैं। अग्निहोत्र स्थापित अनेक वर्षोंके शिवसिद्धका भी वहाँ दर्शन होता है। उसके दर्शनसे सब यज्ञोंका फल प्राप्त होता है।

उसके बाद 'ऋणमोचन' नामक तीर्थ है। जिसके महत्त्वको वेदवेत्ता पुरुष जानते हैं। नारद ! मैं उसके स्वरूपको बतलाता हूँ, मन साग्रकर सुने। कशीयान्क ज्येष्ठ पुत्र धनुश्रवा था। वह वैराग्यके कारण न तो विवाह करता था और न अग्निहोत्र ही। कशीयान्क कनिष्ठ पुत्र भी विवाहके योग्य हो गया था तो भी उसने परिव्रित्ति* होनेके भयसे विवाह और अग्निहोत्र नहीं किये। तब पितृदेव कशीयान्कके दोनों पुत्रोंसे पृथक्-पृथक् कहा—'तुम देव-ऋण, ऋषि-ऋण और पितृ-ऋणसे मुक्त होनेके

* बड़े भाईकी अविवाहित अवस्थामें विवाह कर लेनेकरता छोटा भाई परिव्रित्ति कहलाता है। इसे शास्त्रोंमें दोष माना गया है।

लिये विवाह करो।' ज्येष्ठ पुत्रने कहा, 'नहीं, कैसा ऋण और कीन इससे मुक्त होता है।' छोटे पुत्रने उत्तर दिया, 'बड़े भाईके अविवाहित रहते मेरा विवाह करना उचित नहीं है। अन्यथा परिधिति होनेका भय है।' तब पितरोंने उन दोनोंसे कहा—'तुमलोग गौतमी गङ्गामें जाकर स्नान करो। गौतमीका स्नान सब मनोरथोंको सिद्ध करनेवाला है। गौतमी गङ्गा तीनों लोकोंको पवित्र करनेवाली है। उनके जलमें ब्रह्मापूर्वक स्नान और तर्पण करो। गौतमीका दर्शन, वन्दन और ध्यान करनेसे वे समस्त

कामनाएँ पूर्ण करती हैं। वहाँ स्नान करनेके लिये कोई देश, काल और जाति आदिका नियम नहीं है। गौतमीमें स्नान करनेसे बड़े भाईपर कोई ऋण नहीं रहता और छोटा भाई परिधिति नहीं होता '

पितरोंके आदेशसे कक्षीवान्का ज्येष्ठ पुत्र पृथुञ्जय गौतमीमें स्नान और तर्पण करके तीनों ऋणोंसे मुक्त हो गया। तबसे वह तीर्थ 'ऋणमोचन' कहलाता है। वहाँ स्नान और दान करनेसे ऋणवान् मनुष्य ब्रौत स्मार्त तथा अन्य ऋणोंसे भी मुक्त होकर सुखी होता है।



सुपर्णा-संगम, पुरूरवस्तीर्थ, पञ्चतीर्थ, शमीतीर्थ, सोम आदि तीर्थ तथा वृद्धा-संगम-तीर्थकी महिमा

ब्रह्माजी कहते हैं—इसके बाद सुपर्णा-संगम तथा कादवा-संगम नामक तीर्थ हैं, जहाँ भगवान् महाेश्वर गङ्गाके तटपर स्थित हैं। वहीं अग्निकुण्ड, रुद्रकुण्ड, विष्णुकुण्ड, सूर्यकुण्ड, सोमकुण्ड, ब्रह्मकुण्ड, कुमारकुण्ड तथा वरुणकुण्ड भी हैं। उस स्थानपर अम्बरा नामकी नदी गौतमी गङ्गामें मिली है। उस तीर्थके स्मरणमात्रसे मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है। वह सब पापोंका निवारण करनेवाला है।

उससे आगे पुरुरवस् नामक तीर्थ है। उसके दर्शनकी तो बात ही क्या, स्मरणमात्रसे ही पापोंका नाश हो जाता है। एक समय राजा पुरुरवा ब्रह्माजीकी सभामें गये। वहाँ देवन्दो सरस्वती ब्रह्माजीके पास बैठी हैंस रही थीं, उस रूपवती देवीको देखकर राजाने उर्वशीसे पूछा, 'ब्रह्माजीके पास यह रूपवती साध्वी स्त्री कौन है ? यह तो सधसे सुन्दरी युवती है और अपने स्नेहकी प्रकाशसे इस सभाको उदीप्त कर रही है।' उर्वशीने

कहा—'ये कल्याणमयी ब्रह्मकुमारी देवन्दी सरस्वती हैं। वे प्रतिदिन आती-जाती रहती हैं।' यह सुनकर राजाको बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने उर्वशीसे कहा—'इसको मेरे पास बुला लाओ।' उर्वशीने जल्द राजाके संदेश सुना दिया। सरस्वतीने स्वीकार कर लिया तथा अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार वह पुरुरवाके पास आयी। राजाने सरस्वती नदीके तटपर उसके साथ अनेक वर्षोंतक विहार किया। यह देख गैने सरस्वतीको शाप दे दिया। मेरे शापके कारण वह मृत्युलोकमें कहीं लुप्त हो गयी है और कहीं दिखाने देतो है। जहाँ सरस्वती नदी गङ्गामें मिली है, वहाँ पहुँचकर राजा पुरुरवाने तपस्या की और महादेवजीकी आराधना करके गङ्गाजीके प्रसादसे सम्पूर्ण अधीष्ट प्राप्त कर लिया। तबसे उस स्थानका नाम पुरुरवस्तीर्थ, सरस्वती-संगम और ब्रह्मतीर्थ पड़ गया। वहाँ सिद्धेश्वर नामसे प्रसिद्ध महादेवजी रहते हैं। वह तीर्थ समस्त कामनाओंको देनेवाला है।

उसके सिवा सावित्री, गायत्री, श्रद्धा, मेधा और सरस्वती ये पाँच पुण्य तीर्थ हैं। वहाँ स्नान और जलपान करनेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। ये पाँचों में तो कन्याएँ हैं, जो नदीरूपमें परिणत हो गयी हैं। जहाँ वे भगवती गङ्गासे मिली हैं, वहीं पाँच तीर्थ हैं। ये पाँच नदियाँ और सरस्वती पवित्र तीर्थ हैं। मनुष्य उनमें स्नान, दान आदि जो कुछ भी करता है वह सब अभिलक्षित वस्तुओंको देनेवाला तथा नैष्कर्म्यसे भी बहकर मोक्षका साधक माना गया है।

शमीतीर्थके नामसे जिसकी प्रसिद्धि है, वह भी सब पापोंकी शान्ति करनेवाला है। नारद ! उस तीर्थकी कथा सुनाता हूँ, सावधान होकर सुनो। पूर्वकालमें त्रियम्बक नामसे प्रसिद्ध क्षत्रिय राजा हो गये हैं। उन्होंने गोदावरीके दक्षिण-तटपर अश्वमेध-यज्ञकी दीक्षा ली। उस यज्ञके पुरोहित हुए वसिष्ठजी। एक दिन उस यज्ञमें हिरण्यक नामका दानव आया महर्षि वसिष्ठने अपने ब्रह्मदण्डसे सब दैत्योंको मार भगाया। तदनन्तर पुनः यज्ञ आरम्भ हुआ, दैत्य अपनी सेनाके साथ भाग खड़ा हुआ वहीं निष्ठाङ्कित तीर्थोंने अश्वमेध-यज्ञके फल दिये—शमीतीर्थ, विष्णुतीर्थ, अर्कतीर्थ, शिवतीर्थ, सोमतीर्थ और वसिष्ठतीर्थ। यज्ञ समाप्त होनेपर देवताओं और ऋषियोंने वसिष्ठ और त्रियम्बकसे कहा—इन तीर्थोंने अश्वमेध-यज्ञका फल दिया है, अतः इनमें स्नान-दान करनेसे मनुष्य अश्वमेध यज्ञका पुण्य-फल प्राप्त करेगा—इसमें तनिक भी मिथ्या नहीं है।

मुने ! गौतमीमें एक स्थानपर अनेक नद-नदियाँ मिली हैं। उन सबके नामपर पृथक्-पृथक् तीर्थ हैं। उन तीर्थोंके नाम ये हैं—सोमतीर्थ, गन्धर्वतीर्थ, देवतीर्थ, पूर्णतीर्थ, शाल्तीर्थ, श्रीपर्णा-संगम, स्वागता संगम, कुसुम्भ-संगम, पुष्टि संगम,

कर्णिका-संगम, वैणवी-संगम, कृशरा-संगम, वसवी-संगम, शिवशर्मा, शिखी, कुसुम्भिका, उपरथ्या, शान्तिजा, देवजा, अज, वृद्ध, सुर और भद्र आदि। ये तथा और भी बहुत-से नद-नदीगण गौतमीमें मिले हैं। पृथ्वीपर जितने तीर्थ हैं, वे सभी देवगिरिपर गये थे। फिर वे ही क्रमशः गङ्गामें आ मिले कोई नदीरूपमें या और कोई नदरूपमें किसीका रूप सरोवरके आकारमें या और किसीका स्रोतके आकारमें। वे ही सब तीर्थ पृथक्-पृथक् विख्यात हुए। उन सबमें किया हुआ स्नान, जप, होम, पितृ तर्पण आदि कर्म सबसब कामनाओंकी पूर्ति करनेवाला और मुक्तिदायक माना गया है, जो इनके नामोंका पाठ अथवा स्मरण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके भ्राममें जाता है।

वृद्धा-संगम नामक एक प्रसिद्ध तीर्थ है जहाँ वृद्धेश्वर नामक शिवका निवास है। उस तीर्थकी कथा सब पापोंका नाश करनेवाली है पूर्वकालमें एक महातपस्वी भुवि थे उनका नाम वृद्धगीतम था। वे जब बालक थे, तब किसी तरह पिताने उनकी यज्ञोपवीतयात्र कर दिया। इसके बाद वे बाहर भ्रमण करनेको चले गये। उन्हें केवल गायत्री-मन्त्र याद था। वे वेदोंका अध्ययन और शास्त्रोंका अभ्यास नहीं कर सके। केवल गायत्रीका जप और अग्निहोत्र नियमपूर्वक कर लेते थे। इतनेसे ही उनकी ब्रह्मण्य सुरक्षित था। विधिपूर्वक अग्निको टपासना और गायत्री-जप करनेसे उनकी आयु बहुत बढ़ गयी। यों ही उनकी अवस्था अधिक हो चुकी थी। किन्तु विवाह न हो सका, कोई उन्हें कन्या देनेवाला नहीं मिला।

गौतम भिक्षु भिक्षु तीर्थों, वनों और पवित्र आश्रमोंमें भ्रमण करते रहे। घूमते-घूमते शीत-गिरिपर चले गये और वहीं रहने लगे। यहाँ

उन्होंने एक रमणीय गुफा देखी, जो लकड़ों और वृक्षोंसे घिरी हुई थी। उसमें एक अत्यन्त दुर्लभ वृद्धा तपस्विनी रहती थी, उसके सब अङ्ग शिथिल हो गये थे। वह पीतराग ब्रह्मचरिणी थी और एकान्तमें रहा करती थी। उसे देख मुनिश्रेष्ठ गीतम नमस्कारके लिये खड़े हो गये।

तब वृद्धाने कहा—आप मेरे गुठ होंगे, अब मुझे प्रणाम न करें। जिसे गुरु नमस्कार करता है, उसकी आयु, विद्या, धन, कीर्ति, धर्म और स्वर्ग आदि सब बढ़ हो जाते हैं।

यह सुनकर गीतम बड़े आश्चर्यमें पड़े। वे हाथ जोड़कर बोले—'तुम वृद्धा तपस्विनी हो, गुणोंमें भी मुझसे बड़ी-बड़ी हो। मैं बहुत कम ब्या-लिया और अवस्थामें भी खेता हूँ, फिर तुम्हारा गुठ कैसे हो सकता हूँ।'



वृद्धाने कहा—आर्हिषेणके प्रिय पुत्र श्लाघ्य थे, वे बड़े गुणवान्, बुद्धिमान्, शूरवीर तथा क्षत्रिय-धर्ममें उत्थर रहनेवाले थे। एक दिन वे शिकार खेलनेके लिये वनमें जाये और इसी

गुफामें आकर विश्राम करने लगे। यहाँ उनपर एक सुन्दरी अप्सराकी दृष्टि पड़ी, उसका नाम सुरयामा था। वह नन्धर्वराजकी कन्या थी। राजाने भी उसे देखा। दोनोंके मनमें एक-दूसरेसे मिलनेकी इच्छा हुई। श्लाघ्यजने सुरयामाके साथ विहार किया। भोगेच्छा निवृत्त होनेपर राजा उसको अनुपति ले अपने घर चले गये। तदनन्तर सुरयामाके गर्भसे मेरा जन्म हुआ। जब मैं बड़ा यहाँसे चले लगी, तब मौली—'कल्याणी! जो पुरुष इस गुफामें पहले आ जाय, वही तुम्हारा पति होगा।' तबसे आजतक तुम्हीं यहाँ आये हो। दूसरा कोई पुरुष कभी यहाँ नहीं आया। ब्रह्मन्! और किसोने मेरा बरण नहीं किया है। न मेरी माता है, न पिता। मैं आप ही अपनी धालिका हूँ। अबतक ब्रह्मचर्य-व्रतमें रही। अब पुरुषकी इच्छा रखती हूँ, आप मुझे स्वीकार करें।

गीतम बोले—भद्रे! मेरी अवस्था तो अभी एक हजार वर्षकी ही है और तुम नब्बे हजार वर्षकी हो गयी हो। मैं चासक और तुम वृद्धा; वह सम्बन्ध योग्य नहीं जान पड़ता।

वृद्धाने कहा—पूर्वकालमें ही आप मेरे पति विवश कर दिये गये हैं। अब दूसरा कोई मेरा पति नहीं हो सकता, विधाताने आपको मुझे दिया है; अतः अब आप मुझे अस्वीकार न करें। मुझमें कोई दोष नहीं है। मैं आपमें भक्ति रखती हूँ; तब भी यदि आप मुझे ग्रहण करना नहीं चाहते तो आपके देखते-देखते अभी अपने प्राण त्याग दूँगी। यदि अभीष्ट वस्तुकी प्राप्ति न हो तो प्राणियेक लिये मर जान ही अच्छा है। प्रेयीजनके परित्यागसे जो फलक लगता है, उसका अन्त नहीं है।

वृद्धाकी बात सुनकर गीतमने कहा—'मुझमें न तपस्या है न विद्या। मैं कुरूप और निर्धन हूँ,

अतः तुम्हारे लिये योग्य वर नहीं हो सकता। पहले सुन्दर रूप और उत्तम विद्याकी प्राप्ति करके मुझे तुम्हारी बात माननी चाहिये।'

वृद्धाने कहा—ब्रह्मन् ! मैंने अपनी उपस्थिति सरस्वतीदेवीको संतुष्ट किया है, साथ ही रूप देनेवाले अग्नि भी मुझपर प्रसन्न हैं, अतः चाहेसरी देवी आपको विद्या देगी और रूपवान् अग्निदेव रूप प्रदान करेंगे।

यों कहकर वृद्धाने सरस्वती और अग्निकी प्रार्थना करके गीतमको विद्वान् और सुकृपवान् बना दिया। तब उन्होंने बड़ी प्रसन्नताके साथ वृद्धको अपनी पत्नी बनाया और कितने ही वर्षोंतक उसके साथ विहार किया। एक दिन बरिष्ठ और काम्यदेव आदि महर्षि पुण्यतीर्थोंमें भ्रमण करते हुए उस गुफामें आये। गीतम और उनकी पत्नीने वहाँ आये हुए ऋषि-मुनियोंका विभिन्न स्वागत-सत्कार किया।

उनमेंसे कुछ लोगोंने गीतमका उपहास करते हुए पूछा—'बूढ़ी माँ ! यह तो बताओ, ये गीतम तुम्हारे पुत्र लगते हैं या पोते? कल्याणी ! सच-सच बताना। वृद्ध पुरुषके लिये सुवती स्त्री उसके समान है और वृद्ध स्त्रीके लिये पुत्र पुरुष अमृतके समान। प्रिय और अप्रियका संयोग हमने दीर्घकालके पश्चात् यहीं देखा है।' गीतम और उनकी पत्नी दोनों इस परिहासको सुनकर चुप रह गये। आतिथ्य ग्रहण करके सब महर्षि चले गये। उनकी बातोंको याद करके ये दोनों दम्पति बहुत दुःखी हुए। एक दिन स्त्रीसहित गीतमने मुनिवर अगस्त्यजीसे पूछा—'महर्षि ! कौन-सा देव या तीर्थ ऐसा है, जहाँ जन्मेसे कल्याणकी प्राप्ति होती है?'

अगस्त्यने कहा ब्रह्मन् ! मैंने मुनियोंके मुखसे सुना है, गोदावरी नदीमें स्नान करनेसे सब कामनाएँ पूर्ण होती हैं।

अगस्त्यको यह बात सुनकर गीतम उस वृद्धके साथ गीतमी तटपर गये और कठोर तपस्व करने लगे। उन्होंने भगवान् शंकर और विष्णुका स्तवन किया तथा पत्नीके लिये गङ्गाजीको भी संतुष्ट किया।

गीतम बोले—शिव ! जिनका हृदय व्यथित है, ऐसे पुरुषोंके लिये संसारमें पार्वतीसहित आप ही शरण हैं—ठोक वैसे ही, जिस प्रकार मरुभूमिके पथिकोंके लिये वृक्ष ही आश्रय होता है। भगवान् श्रीकृष्ण ! आप ही छोटे-बड़े सब भूतोंके पापोंका सर्वथा निवारण करनेवाले हैं, जैसे सुखती हुई खेतीको पेच ही रींचकर हरा-भरा करता है। सुधामय सत्त्वोंसे सुतोषित गीतमी ! तुम वैकुण्ठरूपी दुर्गमें पहुँचनेके लिये लीढ़ी हो। हम अधोगतिमें पड़कर संतप्त हो रहे हैं, माता ! तुम हमारे लिये शरण हो जाओ।

सबको शरण देनेवाली गीतमी गङ्गा गीतमके लोचसे प्रसन्न होकर बोली—'ब्रह्मन् ! तुम मन पकते हुए मेरे जलसे अपनी पत्नीका अभिवेक करो। इससे यह रूपवती हो जल्मी। इसके सभी अङ्ग मनोहर होंगे। नेशोंमें भी सुन्दरता आ जायगी तथा यह सब प्रकारके सुभ लक्षणासे लौभा पाने लागेगी।'

गङ्गाजीके आदेशसे दोनोंने ऐसा ही किया, अतः उनकी कृपासे दोनों पति-पत्नी सुन्दर रूपवाले हो गये। उनके अभिवेकका जो जल था, वह नटोरूपमें परिणत हो गया। वृद्धा नामसे ही उस नदीकी उपाधि हुई। गीतमने जो शिवसिद्धकी स्तुति की, वह भी वृद्धके ही नामपर 'वृद्धेश्वर' कहलगा। वही मुनिश्रेष्ठ गीतमने वृद्धके साथ पूर्ण आनन्द प्राप्त किया। तबसे उस तीर्थका नाम 'वृद्ध-संगम' हो गया। वहाँ किया हुआ स्नान और दान सब मनोरथोंको सिद्ध करनेवाला है।

इलातीर्थके आविर्भावकी कथा

ब्रह्माजी कहते हैं—इलातीर्थके नामसे जिस तीर्थकी प्रसिद्धि है, वह मनुष्योंको सब प्रकारकी सिद्धि देनेवाला, ब्रह्महत्या आदि पापोंको दूर करनेवाला तथा सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है। वैवस्वत मनुके वंशमें इला नामक एक राजा हो गये हैं। वे बहुत बड़ी सेना साथ लेकर शिकार खेलनेके लिये वनमें गये। वहाँ उनकी बुद्धिमें कुछ दूसरा ही विचार हुआ। उन्होंने अश्वत्थोंसे कहा—'आप सब लोग मेरे पुत्रद्वारा वसिष्ठ नगरमें चले जायें। देश, कोश, बल, राज्य तथा मेरे पुत्रकी भी रक्षा करें। महर्षि वसिष्ठ भी हमारे लिये पिताके समान हैं। वे भी अग्निहोत्रकी अग्नियोंको लेकर मेरी पत्नियोंके साथ लौट जायें। मैं अभी इस वनमें ही निवास करूँगा।' 'बहुत अच्छा' कहकर सब लोग चले गये और राजा धीरे-धीरे उत्तमय हिमालय पर्वतपर जाकर वहाँ निवास करने लगे। एक दिन उन्होंने उस पर्वतपर एक गुफा देखी, जो जना प्रकारके रत्नोंसे विचित्र शोभा पा रही थी। उस गुफामें यक्षोंका राजा समन्तु रहता था। उसके साथ उसकी पतिव्रता पत्नी समा भी रहा करती थी। उस समय वह यक्ष मृगरूप धारण करके अपनी पत्नीके साथ विकर रहा था। भौंति-भौंतिके रत्नोंसे चित्रित, उसका वह विशाल गृह सूना पड़ा था। अतः राजा अपनी भारी सेनाके साथ वहाँ ठहर गये। वह यक्ष अधर्मके कोपसे पत्नीके साथ मृगरूप धारण करके रहता था। उसने स्वेचा—'इस राज्यने मेरा घर छीन लिया। मैं इसे जीत सकता नहीं और यह माँगनेपर देगा नहीं। अब क्या करूँ ?' इसी चिन्तार्थ पढ़कर वह मृगोरूपधारिणी अपनी पत्नीसे बोला—'कान्ते! इस राजाकर मन मृग्यत्वे

व्यसनमें आसक्त है। यह कैसे विपत्तिमें पड़े—इसके लिये कोई उपाय सोचो। मेरा विचार है कि तुम मनुहर मृगोरूप धारण करके इसके सामनेसे निकलो और इसे अपनी ओर आकृष्ट करके किसी तरह अश्विक्व-वनमें पहुँचा दो। उसके भीतर प्रवेश करते ही वह राज्य स्वो हो जायगा। भाद्रे ! यह काम तुम्हीं कर सकती हो। मेरे लिये यह उचित न होगा।'

यक्षिणीने पूछा—'नाथ ! अश्विक्व-वन तो कहा सुन्दर है। तुम उसमें क्यों नहीं जा सकते ? यदि तुम भी चले जाओ तो क्या दोष होगा ? यह हमें ठीक-ठीक बताओ।'

कहने कहा—एक समय पार्वतीने एकान्त बैठे हुए भगवान् शंकरसे कहा—'देवेश्वर ! शिवोंकी यह स्वाभाविक इच्छा होती है कि उनकी रतिह्रीड़ा सदा गुप्त रहे। इसलिये मुझे ऐसा नियत स्थान दोजिये, जो आपकी आज्ञासे सुरक्षित हो। मैं स्थान यही चाहती हूँ, जो उमावनके नामसे प्रसिद्ध है।' उसमें आप, गणेश, कार्तिकेय और नन्दीके शिवा जो कोई भी प्रवेश करे, वह स्वो हो जाय।' शंकरजीने प्रसन्न होकर कहा—'ऐसा ही हो।' इसलिये उमाके उस वनमें मुझे नहीं जानना चाहिये।

अपने स्वामीका यह वचन सुनकर इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली वह यक्षिणी विशाल नेत्रोंवाली मृगी बनकर राजाके सामने आयी। यक्ष वहाँ ठहर गया। रुच्यने मृगीको देखा। मृगयामें तो उनकी आसक्ति की ही। मृगीपर दृष्टि पड़ते ही वे अकेले छोड़ेपर आ बैठे और उसका पीछा करने लगे। वह धीरे-धीरे राजाके अश्विक्व-वनतक खींच ले गयी। जब छोड़ेपर बैठे ही-बैठे उमावनमें प्रविष्ट

हो गये, तब यक्षिणीने मृगीका रूप छोड़कर दिव्य रूप धारण कर लिया और अश्लोक वृक्षके नीचे खड़ी हो राजाको देखकर हँसने लगी। पति की कही हुई बातोंको याद करके वह राजासे बोली—'सुन्दरी इला ! तू अकेली अब्बला छोड़ेपर चढ़कर पुरुषके घेबमें कहीं जाती हो, किसके पास जाओगी ?' उसके मुखसे 'इला' शब्द सुनकर राजा क्रोधसे मूर्च्छित हो उठे और यक्षिणीको डाँटकर मृगीका पंथा पूछने लगे। यक्षिणीने पुनः कहा—'इसे ! इसे ! अपने-आपको अच्छी तरह देख तो लो, फिर मुझे भिख्यावादिनी या सत्यवादिनी कहना।' तब राजाने देखा—उनकी छातीमें दो ऊँचे-ऊँचे स्तन उभर आये थे। 'यह मुझे क्या हो गया' वह कहते हुए राजा चकित हो गये। उन्होंने यक्षिणीसे पूछा—'सुनते ! यह मुझे क्या हो गया—इस बातको आप ठीक-ठीक जानती हैं। अतः बताइये। आप क्यों हैं ? इसका भी परिचय दीजिये।'।

यक्षिणी बोली—हिमालयकी श्रेष्ठ गुफाओं में पति यक्षराज समन्वु निवास करते हैं। मैं उनकी पत्नी हूँ। जिस शीतल कन्दरायें आप ठहरे हुए हैं, वह हमारा ही घर है। मैं ही मृगी बनकर आपको यहाँ तक ले आयी हूँ। यह उमावन है। वहाँके लिये पूर्वकालमें महादेवजी यह वर दे चुके हैं कि जो पुरुष इसमें प्रवेश करेगा, वह स्त्री हो जायगा। अतः आप भी स्त्री हो गये, इससे आपको दुःखी नहीं होना चाहिये। कोई कितना ही प्रीति क्यों न हो, भवितव्यताको कोई नहीं जानता।

इस प्रकार इलाको आश्वसन दे वह सुन्दरी यक्षिणी अन्तर्धान हो गयी। उसने पतिसे स्मर हाल कह सुनाया। यक्ष भी यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ। इसर इला गती और नृत्य करती हुई उमावनमें ही रहने लगी। वह कर्मकी गतिका

स्मरण करती हुई स्त्रीस्वभावके अनुस्मर ही चेष्टा करती थी। एक दिन जब इला नृत्य कर रही थी, बुधने उसे देखा। वे अपने पिताको नमस्कार करनेके लिये जा रहे थे। इलापर दृष्टि पड़ते ही उन्होंने वज्रा स्पर्शित कर दी और उसके पास आकर कहा—'देवि ! तू स्वर्गमें रहकर मेरी प्रिया भार्य हो जा।' इलाने भक्तिपूर्वक बुधकी आज्ञाका अभिनन्दन करके उसे स्वीकार कर लिया। बुध अपने वरतम स्थानपर से जाकर इलाके साथ प्रेमपूर्वक विहार करने लगे। उसने भी सब प्रकारकी सेवाओंसे पतिको मंतुष्ट किया। इस प्रकार बहुत समय व्यतीत हो जानेपर बुधने प्रसन्न हो अपनी प्रियासे कहा—'कल्याणी ! मैं तुझे क्या दूँ ? तैरे मनमें जो प्रिय वस्तु हो, उसे माँग ले।' इला सहसा बोल उठी—'पुत्र दीजिये।'।

बुधने कहा—यह मेरा कीर्त्य अनोख तथा प्रेमसे प्रकट हुआ है। अतः तैरे गर्भसे विधविख्यात क्षत्रिय-पुत्र उत्पन्न होगा। उसके चन्द्रवंशकी वृद्धि होगी। वह तेजमें सूर्य, बुद्धिमें बृहस्पति, क्षमामें पृथ्वी, युद्धसम्बन्धी पराक्रममें भगवान् विष्णु तथा क्रोधमें अग्निके समान होगा।

समय आनेपर महात्मा बुधका पुत्र उत्पन्न हुआ। उस समय देवसोकमें सब ओर जय-जयकारका शब्द गूँब उठा। उसके जन्मोत्सवमें सभी प्रधान-प्रधान देवता आये। मैं भी बड़ी प्रसन्नताके साथ उसमें सम्मिलित हुआ। वह बालक जन्म लेते ही उच्च स्वरसे रोया था। अतः वहाँ एकत्रित हुए देवताओं तथा ऋषियोंने एक-दूसरेसे कहा—'इस बालकने पुरु (अत्यन्त उच्च स्वरसे) रव (शब्द) किया है, अतः इसका नाम पुरुखा होना चाहिये।' सबने संतुष्ट होकर यही नाम रखा तदनन्तर बुधने अपने पुत्रको क्षत्रियोचित विद्या पढ़ायी और प्रयोगसहित धनुर्वेदका ज्ञान

कराया। पुरुरवा शुक्लपक्षके चन्द्रमाको भौति शीघ्र ही बढ़कर बड़ा हो गया। उसने अपनी माताको दुःखी देख विनोद भावसे नमस्कार करके कहा—'माताजी, बुध मेरे पिता और आपके प्रियतम पति हैं। मुझ-जैसा कर्मठ पुरुष आपका पुत्र है। फिर आपके मनमें चिन्ता किस बातकी है?'

इला बोली—बेटा ! ठीक कहते हो। बुध मेरे स्वामी हैं और तुम मेरे गुणवत्कर पुत्र हो। अतः मुझे पति और पुत्रके लिये कभी चिन्ता नहीं होती। तथापि मेरे मनमें पहलेका ही कुछ दुःख है, जिसका बारंबार स्मरण हो आनेसे मैं चिन्तामें डूब जाती हूँ।

पुरूरवाने कहा—माँ ! पहले मुझे अपना वही दुःख बताओ।

तब इलाने पुरूरवाको इक्ष्वाकुवंशका परिचय देते हुए अपने जन्म, नाम, राज्यप्राप्ति, पुत्रजन्म, पुरोहित बलिष्ठ, प्रिय पत्नी, कर्ममें अग्रगमन, हिमालयकी कन्दारमें निवास, उमाजनमें प्रवेश, स्त्रीत्वकी प्राप्ति, बुधसे संगम, प्रेम तथा पुनः पुत्रजन्म आदिसे सम्बन्ध रखनेवाली सब बातें कह सुनायी। सुनकर पुरूरवाने मातासे पूछा—'यै क्या करें? क्या करनेसे शुभ परिणाम होगा?'

इला बोली—बेटा ! तुम्हारे अनुग्रहसे मैं पुरुषत्वकी प्राप्ति, उत्तम राज्य, तुम्हारा वध अन्य पुरुषोंका अभिषेक, दान देना, यज्ञ करना तथा मुक्तिके मार्गका अवलोकन करना आदि सब कुछ चाहती हूँ। तुम अपने पिता बुधके पास जाकर सब बातें यथार्थरूपसे पूछो। वे सब जानते हैं। तुम्हारे लिये हितकर उपदेश देंगे।

माताके कहनेसे पुरुरवा अपने पिताके पास गये और उन्हें प्रणाम करके उन्होंने अपनी माताकी तथा अपना कर्तव्य पूछा।

बुधने कहा—'महामते ! मैं राजा इलको

जानता हूँ। उनके इला होनेका वृत्तान्त भी मुझसे छिप नहीं है। तमाके वनमें आना और उस वनके विषयमें भगवान् शंकरकी आज्ञाका हाल भी मुझे मालूम है। बेटा ! भगवान् शिव और माता पार्वतीके प्रसादसे इलका शाप दूर हो सकता है। उन दोनोंकी आराधनाके सिवा दूसरा कोई उपाय नहीं है। तुम गोदावरी नदीके तटपर जाओ। वहाँ भगवान् शिव पार्वतीजीके साथ सदा विराजमान रहते हैं। वे ही वरदान देकर शापका नाश करेंगे।

पिताकी बात सुनकर पुरुरवा बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने माताको पुरुषत्व प्राप्त होनेकी इच्छासे हिमालय पर्वत, माता, पिता तथा गुरुको मस्तक धुकाया और तपस्या करनेके लिये दुरंत ही त्रिभुवनपावनी गौतमी गङ्गाकी ओर प्रस्थान किया। पुत्रके पीछे-पीछे इला और बुध भी गये। वे सब लगे गौतमीके तटपर पहुँचे और वहाँ स्नान करके तपस्या करते हुए भगवान्की स्तुति करने लगे। पहले बुधने, फिर इलाने, तत्पश्चात् पुरुरवाने देवी पार्वती तथा भगवान् शंकरका स्तवन किया।

बुध बोले—जो अपने शरीरकी केसरसी स्वच्छकतः सुवर्णके सदृश कान्तिमान् एवं सुन्दर दिखायी देते हैं, कार्तिकेय और गणेशजीके द्वारा जिनकी सदा अर्चना होती रहती है, वे शरणगतावस्थता उपा-महेश्वर मुझे शरण दें।'

इला बोली—संसारके विविध तापहृयी दावान्तसे दग्ध होनेवाले देहधारी जिनका चिन्तन करनेसे तत्काल परम शान्तिको प्राप्त होते हैं, वे कल्याणकारी उमा-महेश्वर मुझे शरण दें। देव ! मैं आर्त हूँ। मेरे हृदयमें बड़ी पीड़ा है। क्लेश आदिसे मेरी रक्षा करनेवाला आपके सिवा दूसरा कोई नहीं है। शरणगत्की रक्षा करनेवाले आपके जो दोनों परम पवित्र चरण हैं, वे मुझे शरण दें।

पुरुरवा बोले—जिनसे इस जगत्की उत्पत्ति

होती है तथा प्रलयकालमें यह सब जिनके ही भीतर लपको प्राप्त होता है, वे संसारको शरण देनेवाले जगदात्मा उम्मा-महेश्वर मुझे शरण दें। देवताओंके समुदायमें एक महान् उम्माके अवसरपर गिरिशजकुमारी पार्वतीने महामहेश्वरजीसे कहा था— 'ईश! आप मेरे दोनों शरण पकड़ें।' इसपर शिवजीने अत्यन्त प्रीतिवश पार्वतीके जिन दोनों सरपङ्कतफलक चरणोंको ग्रहण किया था, वे मुझे शरण दें।

मह स्तुति सुनकर उमाश्वर महेश्वर प्रकट हो गये। भगवती उमाने कहा— 'तुम लोगोंका मनोरथ क्या है? बताओ, मैं उसे पूर्ण करूँगी। तुम्हारा कल्याण हो। तुम सब लोग कृतार्थ हो गये। जो वस्तु देवताओंके लिये भी दुर्लभ हो, वह भी मैं तुम्हें दूँगी।'

पुनरुवा बोले— 'जगदम्बिके ! राजा इस अज्ञानवश आपके वनमें घुस गये थे। देखधरि ! आप उनके उस अपराधको क्षमा करें और पुनः उन्हें पुरुषत्व दें।

पार्वतीने भगवान् संकरकी सम्पत्तिके अनुसार 'तथास्तु' कहकर उन सबकी प्रार्थना स्वीकार की। इसके बाद शिवजीने कहा— 'राजा इस गौतमी गङ्गामें स्नान करनेका प्रसे पुरुष हो जायेंगे।' तब सुभकी पत्नी इलाने गङ्गामें स्नान किया। स्नानके

पश्चात् उसके शरीरसे जो बल बू रहा था, उसके साथ उसके नारीजनोचित सौन्दर्य, नृत्य और संगीत भी गङ्गाकी धारमें मिल गये। वे ही नृत्या, गीता और सौभाग्य नामकी नदियोंके रूपमें परिणत हुए। वे नदियाँ भी गङ्गामें आ मिलीं। इससे वहाँ तीन पवित्र संगम हो गये। उनमें किया हुआ स्नान और दान इन्द्रपदकी प्राप्ति करानेवाला है। शिव और पार्वतीके प्रसादसे पुरुषत्व प्राप्त करनेके पश्चात् राजा इलाने महान् अभ्युदयकी सिद्धिके लिये वहाँ अश्वमेध-यज्ञ किया। पुरोहित दक्षिण, अपनी पत्नी, पुत्र, अमात्य, सेना और कोशको भी लाकर उन्होंने वह यज्ञ सम्पन्न किया। दण्डक वनमें इलाने चतुरङ्गिणी सेनासहित राज्यकी स्थापना की। वहाँ इलके नामसे विक्रान्त उनका नगर भी है। सूर्यवंशकी परम्परामें जो उन्होंने पहले पुत्र उत्पन्न किये थे, उनको राज्यपर अभिषिक्त करने पीछे स्नेहवश पुरुषत्वका भी अभिषेक किया। वे राजा पुत्रवत् ही चन्द्रवंशके प्रवर्तक हुए। जहाँ राज्यकी पुरुषत्वकी प्राप्ति हुई, वहाँ गौतमीके दोनों तटोंपर सोलह हजार स्त्रीयोंका निवास है। वहाँ श्लेष्मर नामक भगवान् संकरकी भी स्थापना हुई है। उन स्त्रीयोंमें स्नान और दान करनेसे सम्पूर्ण यज्ञोंका फल प्राप्त होता है।



चक्रतीर्थ और पिप्पलतीर्थकी महिमा, महर्षि दधीचि, उनकी पत्नी गभस्तिनी तथा उनके पुत्र पिप्पलादके त्यागकी अद्भुत कथा

ब्रह्माजी कहते हैं—चक्रतीर्थ ब्रह्महत्या आदि पापोंका नाश करनेवाला है। वहाँ भगवान् संकर चक्रेश्वरके नामसे निवास करते हैं। उन्हींसे भगवान् विष्णुको चक्र प्राप्त हुआ था। श्रीविष्णुने वहाँ रहकर चक्रके लिये भगवान् संकरकी आराधना

की थी। इसीलिये उसे चक्रतीर्थ कहते हैं। उसके अवलम्बनसे अनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। चक्रतीर्थके बाद पिप्पलतीर्थ है। उसकी महिमाका वर्णन करनेमें शेषका भी समर्थ नहीं है। नारद, चक्रेश्वर ही पिप्पलेश्वर हैं। उनके नामका कारण

सुनो। दधीचि नामसे विख्यात एक मुनि थे। वे सभी उत्तम गुणोंसे सुसौष्ठव थे। उनकी पत्नी श्रेष्ठ वंशकी कन्या और पतिव्रता थीं। उनका नाम गर्भस्तिनी था। वे लोपामुद्राकी बहिन थीं। दधीचिकी पत्नी सदा भारी तपस्यामें लगी रहती थीं। दधीचि प्रतिदिन अग्निकी उपासना करते और गृहस्थ-धर्मके पालनमें तत्पर रहते थे। उनका आश्रम गङ्गाके तटपर था। वे देवता और अतिथियोंकी सेवा करते, अपनी ही पत्नीमें अनुराग रखते और सन्तभावसे रहते थे। उनके प्रभावसे उस देशमें शत्रुओं और दैत्य-दानवोंका आक्रमण नहीं होता था।

एक दिनकी बात है—दधीचि मुनिके आश्रमपर ब्रह्म, आदित्य, अश्विनीकुमार, इन्द्र, विष्णु, शिव और अग्नि पधारे। वे दैत्योंको परास्त करके वहाँ आये थे और उस विजयके कारण उनके हृदयमें



हर्षकी हिलेरें उठ रही थीं। मुनिवर दधीचिको देखकर सब देवताओंने प्रणाम किया। दधीचि भी

देवताओंको देखकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने सम्बन्ध पृथक्-पृथक् पूजन किया, फिर पत्नीके साथ देवताओंके लिये गृहस्थोक्ति स्वागत-सत्कारका प्रबन्ध किया। इसके बाद उन्होंने देवताओंसे कुशल पूछे और देखा भी उनसे चर्चात्थप करने लगे।

देवता बोले—मुने। आप इस पृथ्वीके कल्पवृक्ष हैं। आप-जैसा महर्षि जब हमलोगोंपर इतनी कृपा रखता है, तब अब हमारे लिये संसारमें कौन-सी वस्तु दुर्लभ होगी। मुनिश्रेष्ठ। जोचित पुत्रोंके जीवनका इतना ही फल है कि वे हीर्षीमें स्थान, समस्त प्राणियोंपर दया और आप जैसे महात्माओंका दर्शन करें। मुने। इस समय स्नेहवश हम आपसे जो कुछ कहते हैं, उसे ध्यान देकर सुनें। हम बड़े-बड़े राक्षसों और दैत्योंको जीतकर यहाँ आये हैं। इससे हम बहुत सुखी हैं। विशेषतः आपका दर्शन करके हमें बड़ी प्रसन्नता हुई है। अब हमें अस्त्र-शस्त्रोंके रखनेसे कोई लाभ नहीं दिखायी देता। हम उन अस्त्रोंका चोड़ा को भी नहीं सकते। हम स्वर्गमें जब इन अस्त्रोंको रखते हैं, तब हमारे शत्रु इनका पता लगाकर वहाँसे हड़प ले जाते हैं। इसलिये हम आपके पवित्र आश्रमपर इन सब अस्त्रोंको रख देते हैं। ब्रह्मन्। यहाँ दानवों और राक्षसोंसे तनिक भी भय नहीं है। आपकी आज्ञासे यह सारा प्रदेश पवित्र और सुरक्षित हो गया है। तपस्याद्वारा आपकी सम्मानता करनेवाला दूसरा कोई है ही नहीं। अब हम कृतार्थ होकर इन्द्रके साथ अपने-अपने स्थानको चले जाते हैं। अब इन आयुधोंकी रक्षा आपके अधीन है।

देवताओंको यह बात सुनकर दधीचिने कहा—“एवमस्तु”। उस समय उनकी प्यारी पत्नीने

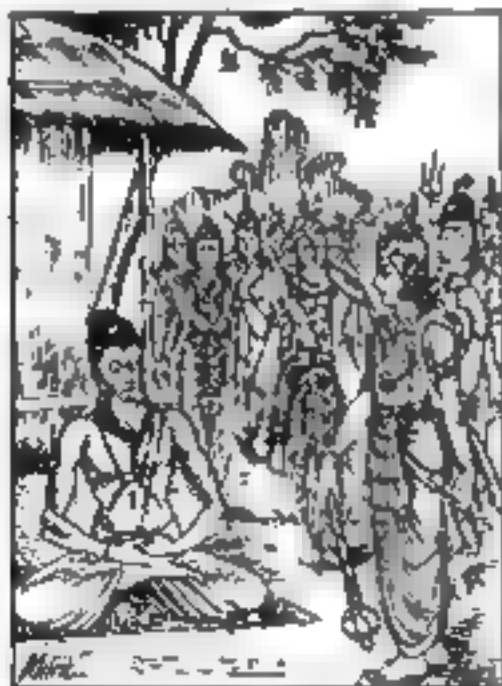
उन्हें रीझ—‘मुने । यह देवताओंका कार्य विरोध उत्पन्न करनेवाला है । अतः इसमें आपको पड़नेको क्या आवश्यकता है । जो शास्त्रोंका ज्ञान प्राप्त करके परमार्थ-तत्त्वमें स्थित हो चुके हैं, संसारके कार्योंमें जिनकी कोई आवश्यकता नहीं है, उन्हें दूसरोंके लिये ऐसा संकट मोल लेनेसे क्या लाभ, जिससे न इस लोकमें सुख है और न परलोकमें । विप्रवर । मेरी जहाँ ध्यान देकर सुने । यदि आपने इन अनुष्ठानोंको स्थापन दे दिया तो इन देवताओंके शत्रु आपसे द्वेष करेंगे । यदि इनमेंसे कोई अस्त्र नष्ट हुआ या चोरी चला गया तो ये देवता भी क्रुपित होकर हमारे शत्रु बन जाएंगे । अतः मुनीश्वर ! आप देवताओंमें श्रेष्ठ हैं । आपके लिये इस परामे इत्यर्थ में क्या खोड़ना ठीक नहीं । यदि धन देनेकी शक्ति हो तो आपको देना ही चाहिये—उसमें कुछ विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है । यदि धन देनेकी शक्ति न हो तो साधु पुरुष केवल मन, बाणी तथा शारीरिक क्रियाओंद्वारा दूसरोंका कार्य-साधन करते हैं । प्राणनाम । परम धनको अपने यहाँ धरोहरके रूपमें रखना साधु पुरुषोंने कभी स्वीकार नहीं किया है । इसका उन्होंने सदा बहिष्कार ही किया है । अतः आप यह कार्य न कीजिये ।’

अपनी प्यारी पत्नीकी यह बात सुनकर ब्राह्मणने कहा—‘भद्र ! मैं देवताओंकी प्रार्थनापर पहले ही ‘हाँ’ कह चुका हूँ अब ‘नहीं’ कर दूँ तो मुझे सुख नहीं मिलेगा ।’ पत्निका कथन सुनकर ब्राह्मणी यह सोचकर चुप हो गयी कि दैवके सिवा और किसीका किसीपर वश नहीं चल

सकता । देवतालोक अपने अत्यन्त तेजस्वी अस्त्र आश्रमपर रखकर मुनीश्वरको नमस्कार करके कुतर्क हो अपने-अपने लोकमें चले गये । देवताओंके चले जानेपर मुनि अपनी पत्नीके साथ धर्ममें तत्पर हो प्रसन्नतापूर्वक वहाँ रहने लगे । इस प्रकार एक हप्ता दिव्य वर्ष बीत गये । तब दधीचिने अपनी पत्नीसे कहा—‘देवि ! देवता यहाँसे अस्त्र ले जाना नहीं चाहते और दैत्य मुझसे द्वेष करते हैं । अब तुम्हीं ब्रह्मा—क्या करना चाहिये ?’ पत्नीने विनयपूर्वक कहा—‘श्वशुर ! मैंने तो पहले ही निवेदन किया था । अब आप ही जानें और जो ठीक हो, सो करें । दैत्योंमें जो बड़े-बड़े बोर, तपस्वी और बलवान् हैं, वे इन अस्त्र-शस्त्रोंको निजाम ही हड़प लेंगे ।’ तब दधीचिने उन अस्त्रोंकी रक्षाके लिये एक कर्म किया—उन्होंने पवित्र जलसे मन्त्र पढ़ते हुए अस्त्रोंको नहलाया । फिर वह सर्वाश्रमय परम पवित्र और तेजयुक्त जल स्वयं पी लिया । तेज निकल जानेसे वे सभी अस्त्र-शस्त्र शक्तिहीन हो गये, अतः क्रमशः समयानुसार नष्ट हो गये तदनन्तर देवताओंने आकर दधीचिसे कहा—‘मुनिवर ! हमारे ऊपर शत्रुओंका महान् भय आ पहुँचा है । अतः हमने जो अस्त्र आपके यहाँ रख दिये थे, उन्हें इस समय दे दीजिये ।’ दधीचिने कहा—‘आपलोक बहुत दिनोंतक उन्हें लेने नहीं आये । अतः दैत्योंके भयसे हमने उन अस्त्रोंको पी लिया है । अब वे हमारे शरीरमें स्थित हैं । इसलिये जो व्यक्ति हो, वह कहें ।’ यह सुनकर देवताओंने विनम्र स्वरसे कहा—‘मुनीश्वर ! इस समय तो हम

इतना ही कह सकते हैं कि अस्त्र दे दीजिये।' ब्राह्मणने कहा—'सब अस्त्र मेरी हड्डियोंमें मिल गये हैं। अतः उन हड्डियोंको ही ले जाओ।' उस समय प्रिय वचन बोलेबाले दधीचिकी कनी प्रतिध्वनी उनके पास नहीं थीं। देवता उनसे बहुत डरते थे। उन्हें न देखकर दधीचिसे बोले—'विश्वर! जो कुछ करना हो, सो प्र करो।' दधीचिने अपने दुस्स्वप्न प्राणोंका परित्याग करते हुए कहा—'देवताओं। तुम सुप्तपूर्वक मेरा शरीर ले लो। मेरी हड्डियोंसे प्रसन्न हो जाओ। मुझे इस देहसे कुछ काम है।'

यों कहकर दधीचि पचासन बांधकर बैठ गये। उनकी दृष्टि नाशिकाके अग्रभागपर स्थिर हो गयी। मुखपर प्रकाश और प्रसन्नता विराज रही थी। उन्होंने हृदयाकाशमें स्थित अग्निसंहित कायको धीरे-धीरे ऊपरकी ओर उठाकर अग्रमेघ परम पद ब्रह्मके स्वरूपमें स्थापित कर दिया। इस प्रकार महात्मा दधीचिने ब्रह्मसायुज्य प्राप्त किया। उनकी



शरीर निष्पन्न हो गया। यह देखा देवताओंने विश्वकर्मासे उतावलीपूर्वक कहा—'अब आप

अभी बहुत-से अस्त्र-सस्त्र बना डलिये।' विश्वकर्माने कहा—'देवताओं! यह ब्राह्मणका शरीर है। मैं इसका उपयोग कैसे करूँ। जब केवल इनकी हड्डियाँ रह जायेंगी, तभी उनका अस्त्रनिर्माण करूँगा।' तब देवताओंने गौओंसे कहा—'हम तुम्हारा मुख वक्त्रके समान किये देते हैं। तुम हमारे हितके लिये अस्त्र-सस्त्र निर्माण करनेके उद्देश्यसे दधीचिके शरीरको क्षणभरमें विदीर्ण कर डालो और तुम्हें हड्डियाँ निकालकर दे दो।' देवताओंके आदेशसे गौओंने वैसा ही किया। उन्होंने दधीचिके शरीरको चट-चाटकर हड्डियाँ निकाल लीं और देवताओंको दे दीं। देवता उत्सुकताके साथ अपने लोकमें चले गये और गौएँ भी अपने स्थानकी लौट गयीं।

तदनन्तर बहुत देरके बाद दधीचिकी सुशीला पत्नी हाथमें जससे भरा हुआ कलश ले कर और कुलोंसे चर्चटी देवीकी अर्चना और बन्दन करके अग्नि, पति तथा आश्रमके दर्शनकी उत्सुकतासे शीघ्रतत्पूर्वक पैर बढ़ाती हुई आयी। उस समय उनके गर्भमें बालक आ गया था। आश्रमपर पहुँचनेपर जब उन्होंने अपने 'स्वामी'की नहीं देखा, तब बड़े चिन्मयमें पढ़कर अग्निसे पूछा—'धैरे पतिदेव कहाँ चले गये?' अग्निने जो कुछ हुआ था, सब सुना दिया। पतिकी मृत्युका दुःखद समाचार सुनकर वे दुःख और उद्वेगसे पृथ्वीपर गिर पड़ीं। उस समय अग्निदेवने ही उन्हें धीरे-धीरे आश्वसन दिया।

प्रतिध्वनी बोली—'मैं देवताओंको शाप देनेमें समर्थ नहीं हूँ, अतः स्वयं ही अग्निके प्रवेश करूँगी। अब जीवन रक्षकर क्या होगा। संसारमें जो वस्तु उत्पन्न होती है, वह सब नश्वर है; अतः उसके लिये शोक नहीं होना चाहिये। परन्तु मनुष्योंमें से ही पुण्यके भागी होते हैं जो गौ,

ब्राह्मण तथा देवताओंके लिये अपने प्यारे प्राणोंका उत्सर्ग कर देते हैं।* इस परिवर्तनशील संसार-चक्रमें धर्मपरामर्श तथा शक्तिशाली शरीर फलक जो प्राणी देवताओं तथा ब्राह्मणोंके लिये अपने प्यारे प्राणोंका त्याग करते हैं, वे ही धन्य हैं। जिसने देह धारण किया है, उसके प्राण एक-एक दिन अवश्य जायेंगे—यह जानकर जो ब्राह्मण, गौ, देवता तथा दीन आदिके लिये इन प्राणोंका उत्सर्ग करते हैं, वे ईश्वर हैं।†

यों कहकर उन्होंने अग्निर्धेनु वनायत् पुत्रन किया और अपना पेट चीरकर गर्भिक बालकको हाथसे निकाल दिया; फिर गङ्गा, पुष्पती, आश्रम तथा आश्रमके वनस्पतियों और अन्न अदि ओषधियोंको प्रणाम करके पतिकी तृष्णा और स्नेह आदिके साथ पितामें प्रवेश करनेका विचार किया। उस समय वे बोलीं—‘ये गर्भका यह बालक पिता-मातासे हीन है, इसके कोई सम्पन्न वन्धु भी नहीं है; अतः सम्पूर्ण भूतगण, ओषधियाँ तथा लोकपाल इसको रक्षा करें। जो लोग मद्य-पिब्यसे होन बालकको अपने औरस पुत्रोंके सम्मान देखते और उसी भावसे रक्षा करते हैं, वे निश्चय ही ब्रह्म आदि देवताओंके भी वन्दनीय हैं।‡

यों कहकर दधीचिकी पत्नीने बालकको पीपलके समीप रख दिया और स्वामीमें चित्त लगाकर अग्निको प्रणाम किया; फिर अग्निकी चरित्रका करके यज्ञपात्रोंके साथ ही पितामें प्रवेश

किया और प्रतिस्थित दिव्यलोकको चली गयी। उस समय आश्रमके वनवासियों वृक्ष भी रोने लगे। प्रातियेयी और दधीचिने ठनका अपने पुत्रोंकी भाँति चलन किया था। मृग, पक्षी तथा वृक्ष सब रो-रोकर एक-दूसरेसे कहने लगे—‘हम पितृ दधीचि और माता प्रातियेयीके बिना जीवित नहीं रह सकते। जो लोग स्वर्गवासी माता-पिताकी संतानोंपर निरन्तर स्वाभाविक स्नेह रखते हैं, वे ही पुण्यात्मा और कृतार्थ हैं।§ दधीचि और प्रातियेयी इमें जिस स्नेहपूर्ण दृष्टिसे देखा करते थे, वैसे सब मद्य-पितृ भी नहीं देखते। हमें भिक्षार है। हम पापी हैं, जो उनके दर्शनसे वञ्चित हो गये। आजसे हम सब लोगोंका यही निश्चय होना चाहिये कि यह बालक ही हमलोगोंके लिये दधीचि और प्रातियेयी है तथा यह बालक ही हमारा सनातन धर्म है।’

यों कहकर वनस्पतियों और ओषधियोंने अपने राजा सोमके पास जाकर उसम अमृतकी वाचना की। सोमने उन्हें बहुत उत्तम अमृत दिया और वनस्पतियोंने वह लाकर बालकको दे दिया। अमृतसे तृप्त हुआ बालक शुक्लपक्षके चन्द्रमाके समान चढ़ने लगा। पीपलके वृक्षोंने उसका पालन किया था, इसलिये वह पिप्पलादके नामसे प्रसिद्ध हुआ। बड़ा होनेपर पिप्पलादने पीपलके वृक्षोंसे अत्यन्त विस्मित होकर कहा—‘लोकमें यह देखा जाता है कि मनुष्योंसे मनुष्य, पक्षियोंसे पक्षी तथा

* उदयकाले ययु विनासि रम्यं च लोकप्रसूतेति मनुष्यदेवे । गेहेतिदेवर्षीयं तपस्वि प्रजन् प्रियम् पुण्यात्मा मनुष्यः ॥ (११० : ३३)

† प्रज्जः सर्वोत्पत्तिं देहविकल्पं पश्यतो वे न च संश्रितेः । एवं ब्रह्म विप्रकोदेवदीनप्रदं चैतनुत्सृज्यदीनरासे ॥ (११० : ३५)

‡ ये बालकं मातृपितृप्रहोर्णं सन्निविशोर्णं स्वतनुप्रकटैः । चरन्ति रक्षन्ति च एव नृन् ब्रह्मदिकान्यपि वन्दनीयः ॥ (११० : ३७)

§ स्वर्गयानेदुषोः विप्रोऽसदस्येणकृत्रिम्यः । वे कुर्वन्त्यनिर्णं स्नेहं च एव कृतितो नरः ॥ (११० : ३९)

अनस्पतियोंसे अनस्पति उत्पन्न होते हैं, इसमें कहीं विषमता नहीं दिखायी देती। परंतु मैं वृक्षका पुत्र होकर हाथ-पैर आदिसे विशिष्ट जीव कैसे हो गया! उनकी बात सुनकर वृक्षोंने क्रमशः उनके पिता दधीचिकी मृत्यु और पतिव्रता माताके अग्निप्रवेशका सब समाचार कह सुनाया। सुनते ही ये दुःखसे व्यस्त होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। उस समय वृक्षोंने धर्म और अर्धयुक्त बचन कहकर उन्हें सान्त्वना दी। आश्चर्य होनेपर उन्होंने ओषधियों और अनस्पतियोंसे कहा, 'जिन्होंने मेरे पिताकी हत्या की है, उनका मैं भी लक्ष करूँगा, अन्यथा जीवित नहीं रह सकता। जो पिताके मित्र और शत्रु होते हैं, उनके साथ पुत्र भी वैसा ही बर्ताव करता है। जो ऐसा करता है, वही पुत्र है। जो इसके विपरीत व्यवहार करता है, वह पुत्रके रूपमें शत्रु माना गया है।'

तब वृक्षोंने कहा—महापुत्रे! तुम्हारी माताने परलोकमें जाते समय यह उद्गार प्रकट किया था—'जो दूसरोंके द्रोहमें लगे रहते हैं, जो अपने कल्याणकी बातें भूल जाते हैं तथा जो भ्रान्तिचित्त होकर इधर-उधर भटकते हैं, वे नरकके गह्वरोंमें गिरते हैं।' यज्ञाकी कही हुई वह बात सुनकर पिप्पलाद कुपित होकर बोले—'जिसके अन्व-करणमें अपमानकी आग प्रज्वलित हो रही हो, उसके सामने साधुत्वकी बातें व्यर्थ हैं।' फिर उन्होंने भगवान् चक्रेश्वर महादेवके स्मरणपर जाकर उनसे कहा—'मुझे तो शत्रुओंका नाश करनेके लिये कोई शक्ति दीजिये।' पिप्पलादके इतना कहते ही भगवान् संकरके नेत्रोंसे भयंकर कृत्य प्रकट हुईं। उसकी आकृति बड़वा (घोड़ी)-के समान थी, सम्पूर्ण जीवोंका विनाश करनेके लिये उसने अपने गर्भमें भयंकर अग्नि छिपा रखी थी। मृगुकी लपलपती हुई जीभके समान वह महावैद्यरूप

धीरम कृत्य पिप्पलादसे बोली—'बताओ, मुझे क्या करना है?' पिप्पलादने कहा—'देवता मेरे शत्रु हैं। उन्हें खा जा।' फिर तो उस बड़वाके गर्भसे महाभयंकर अग्नि प्रकट हुई, जो समस्त लोकोंका प्रलय करनेमें समर्थ थी। देवता ठहरे देखते ही धरं ठहरे और पिप्पलादद्वारा आराधित पिप्पलाद नामसे प्रसिद्ध भगवान् शिवकी शरणमें आये। उन्होंने भयभीत होकर शिवजीकी स्तुति करते हुए कहा—'शम्भो! आप हमारी रक्षा करें। कृपा और उससे प्रकट हुई आग हमें बड़ा कष्ट दे रही है। सर्वेश्वर! आप भयभीत मनुष्योंको अभय देनेवाले हैं शिव। जो सब ओरसे सताये हुए, पीड़ित तथा भ्रान्तचित्त प्राणी हैं, उन सबकी आप ही शरण हैं। जगन्मय! आप पिप्पलादको शान्त कीजिये।'

'बहुत अच्छा' कहकर जगदीश्वर शिवने पिप्पलादके पास आकर उससे कहा—'बेटा!



देवताओंका नाश कर दिया जाय तो भी तुम्हारे पिता सीटकर नहीं आवेंगे। उन्होंने देवताओंके

कार्यकी सिद्धिके लिये अपने प्रण दिये हैं। संसारमें उनके समान सौन-दुःखियोंका दयामय बन्धु कौन होगा। तुम्हारी पतिव्रता माता भी उन्हींके साथ दिव्यलोकमें चली गयीं। वहाँ उनकी समता करनेवाली कौन ली है। क्या लोपाभुद्र और अरुन्धती भी उनकी बराबरी कर सकती हैं ? जिनकी हड्डियोंसे सम्पूर्ण देवता सदा विजयी और सुखी बने रहते हैं, वे तुम्हारे पिता कितने लक्षितहासी थे। उन्होंने जिस उज्ज्वल सुपुत्र-राशिका उपार्जन किया है, उसे तुम्हारी माताने अपने दिव्य त्यागसे अक्षय बना दिया है। तुम उन्हींके पुत्र हो। उनसे बढ़कर तुमने अभी तक कुछ नहीं किया। तुम्हारे प्रताप और भयसे आज देवता स्वर्गसे डट हो चुके हैं। वे सोच नहीं पाते कि हम किस दिशाको भागकर जायें। तुम उन्हें बचाओ। अभयोंकी रक्षा करो। आर्त प्राणियोंकी रक्षासे बढ़कर पुण्य कहीं भी नहीं है। मनुष्यलोकमें जलतक मनोहर यश फैला रहता है, तबतक एक-एक दिग्गज बटले एक-एक बन्धक जन्मसे दीर्घकालतक स्वर्गलोकमें मनुष्य निर्बिम्बर कितने निवास करते हैं। इस जगत्में वे ही मुर्देके सम्मान हैं, जिन्होंने यशका उपार्जन नहीं किया; वे ही अंधे हैं, जिन्होंने ज्ञान नहीं पड़े। वे ही नपुंसक हैं, जो सदा पान नहीं देते तथा वे ही लोकके योग्य हैं, जो सदा धर्मपासनमें संलग्न नहीं रहते।*

देवाधिदेव महादेवजीका यह वचन सुनकर पिप्पलाद मुनि स्तब्ध हो गये। उन्होंने भगवान् शिवको नमस्कार किया और हाथ जोड़कर कहा—'ओ मन, कृष्ण और क्रियाद्वारा सदा मेरे हितमें संलग्न रहकर मेरा उपकार करते रहते हैं, उनका तथा अन्य लोगोंका हित करनेके लिये मैं

देवता आदिके पूजनीय इमामहित भगवान् संकरको प्रणम करता हूँ। जिन्होंने मेरी रक्षा की, हमें पाल-पोसकर बड़ा किया, अपना सगोत्र और सहचर्य बनाया, भगवान् शिव उनके मनोरथ पूर्ण करें। मैं कल-चन्द्रमाका मुकुट धारण करनेवाला महादेवजीको विनम्र प्रणाम करता हूँ प्रभो। जिन्होंने यज्ञ-पिताकी भौति मेरा भरण-पोषण किया है, उनके जन्मसे तीनों लोकोंके लिये यह तीर्थ हो। इससे उनका यश होगा और मैं उनके जन्मसे उद्धार हो सकूँगा। पृथ्वीपर देवताओंके जो-जो क्षेत्र और तीर्थ हैं, उन सबकी अपेक्षा इस तीर्थका अधिक माहात्म्य हो। इस बातका यदि देवतालोक अनुमोदन करें तो मैं उनके अपराध क्षमा कर सकता हूँ।'

पिप्पलादने यह बात इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवताओंके सामने कही और सबने अदरपूर्वक इसका समर्थन किया। बालक पिप्पलादकी बुद्धि, विनम्र, विद्या, शौर्य, कल, साहस, सत्यधर्म, यज्ञ-पिताके प्रति भक्ति तथा भक्त-बुद्धिको जानकर संकरजीने उनसे कहा—'बेटा। जो तुम्हारा अभीष्ट हो, उसे बताओ। वह तुम्हें अवश्य प्राप्त होगा तुम अपने मनमें अन्यथा विचार न करना।'

पिप्पलाद बोले—महेश्वर ! जो धर्मनिष्ठ पुरुष भक्तजीर्ण स्नान करके आपके चरणकमलोंका दर्शन करते हैं, उन्हें सधस्त अभीष्ट वस्तुएँ प्राप्त हो और शरीरका अन्त होनेपर वे शिवके धाममें जायें। नाब ! मेरे पिता और माता आपके चरणोंमें पड़े थे। वे पीपल और देवता भी आपके स्थानमें आकर सुखी हुए हैं। वे सब लोग सदा आपका दर्शन करें और आपके ही भाम जायें।

पिप्पलादकी यह बात सुनकर देवताओंको

* मूलतः एकत्र यहाँ न देवमन्त्रका एक अनुवर्णन है। वे उन्मत्त न नपुंसकस्ते वे धर्महीन न त एव योग्यः ॥

बड़ी प्रसन्नता हुई। वे उनके भयसे मुक्त हो इस प्रकार बोले—'ब्रह्मन् ! तुमने वही किया है, जो देवताओंको अभीष्ट था। देवाधिदेव भगवान् शिवकी आज्ञाका भी पालन किया और पहले वरदान भी दूसरोंके ही लिये माँगा, अपने लिये नहीं; इसलिये हम भी संतुष्ट होकर तुम्हें कुछ देना चाहते हैं। तुम हमसे कोई वर माँगो।'

विष्णुसाधने कहा—देवताओं ! मैं अपने माता-पिताको देखना चाहता हूँ। मैंने केवल उनका नाम सुना है। संसारमें वे ही प्राणी धन्य हैं, जो माता-पिताके अधीन रहकर उनकी सेवा-सुश्रूषा करते हैं। अपनी इन्द्रियोंको, शरीरको, कुल, सखि और बुद्धिको माता-पिताके कार्यमें लगानेकर पुत्र कुलकृत्य हो जाता है, यदि मैं उनका दर्शन भी पा सकूँ तो मेरे मन, बचन, शरीर और क्रियाओंका सत्त प्राप्त हो जायगा।

विष्णुसाध मुनिका यह कथन सुनकर देवताओंने परस्पर सलाह करके कहा—'ब्रह्मन् ! तुम्हारे माता-पिता दिव्य विमानपर आरुढ़ हो तुम्हें देखनेके लिये आते हैं। तुम भी निश्चय ही उन्हें देखोगे। विषाद छोड़कर अपने मनको स्थिर करो। देखो, देखो, वे श्रेष्ठ विमानपर बैठे आ रहे हैं। उनके दिव्य शरीरपर स्वर्णव आभूषण शोभा पाते हैं।' विष्णुसाधने भगवान् शिवके समीप अपने माता-पिताको देखकर प्रणाम किया। उस समय उनके नेत्रोंमें आनन्दके आँसू भर आये थे। वे किसी तरह गद्गद कण्ठसे बोले—'अन्ध कुलीन पुत्र अपने माता-पिताको तलाते हैं; किंतु मैं ऐसा भ्रम्यहीन हूँ, जो अपनी माताके उदरको विदीर्ण करनेमें कतरा बना।'

उस समय उसके माता-पिताने कहा—'पुत्र ! तुम धन्य हो, जिसकी कीर्ति स्वर्गलोकतक फैली है। तुमने भगवान् शंकरका प्रत्यक्ष दर्शन किया

और देवताओंको सन्तुष्ट दी। तुम-जैसे पुत्रसे पितरोंके उत्तम स्तोक कभी शीघ्र नहीं होते।' इसी समय विष्णुसाधके मस्तकपर आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी। देवताओंने जय-जयकार किया। परमेश्वर दधीचिने भी पुत्रको आशीर्वाद दिया और संकर गङ्गा तथा देवताओंको ममस्कार करके विष्णुसाधसे कहा—'बेटा ! विवाह करके भगवान् शिवकी भक्ति और गङ्गाजीका सेवन करो। पुत्रोंकी उत्पत्ति करके विधिपूर्वक दक्षिणासहित यज्ञोक्त अनुष्ठान करो और सब प्रकारसे कृतार्थ हो दीर्घकालके लिये दिव्यलोकमें स्थान प्राप्त करो।'

विष्णुसाधने कहा—शिवजी ! मैं ऐसा ही करूँगा। तदनन्तर परमेश्वर दधीचि पुत्रको बारम्बार सान्त्वना दे देवताओंकी आज्ञा से पुनः दिव्यलोकमें चले गये। इसके बाद देवताओंने भगवान् शिवसे कहा—'जगदीश्वर ! अब दधीचिकी हठियोंकी, हमारी तथा इन गौओंकी पवित्रताके लिये कोई उपवास बताइये।' शिवने कहा—'गङ्गाजीमें स्नान करके सम्पूर्ण देवता और गौर्ष पापमुक्त हो सकती हैं। इसी प्रकार दधीचिके शरीरकी हठियाँ भी गङ्गाजीके जलमें डोनेसे पवित्र हो जायँगी।' शिवजीकी आज्ञाके अनुसार देवता स्नान करके मुक्त हो गये और हठियाँ धोनेमात्रसे पवित्र हो गयीं। जहाँ देवता पापमुक्त हुए, वह 'पापनाशन' तीर्थ कहलाया है। वहाँका स्नान और दान ब्रह्महत्याका नाश करनेकला है। जहाँ गौर्ष पवित्र हुई, उस स्थानका नाम 'गौ-तीर्थ' हुआ। जहाँ दधीचिकी हठियाँ पवित्र की गयीं, उसे 'पितृतीर्थ' जानना चाहिये। वह पितरोंकी प्रसन्नताको बढ़ानेवाला है। जिस किसी प्राणीके, वह कितना ही पापी क्यों न हो, शरीरकी राख, हड्डी, नख और रोएँ उस तीर्थमें पड़ जाते हैं, वह तबतक स्वर्गलोकमें निवास करता है जबतक कि चन्द्रमा, सूर्य और

तलोंका अस्तित्व बना रहता है। इस प्रकार उस तीर्थसे तीन तीर्थ प्रकट हुए। उस समय देवताओं और गौओंने पवित्र होकर भगवान् संकरसे कहा—'हमलोग अपने-अपने स्थापकों जायेंगे। यहाँ सूर्यदेवकी प्रतिष्ठा की गयी है। इनके प्रतिष्ठित होनेसे सब देवता प्रतिष्ठित हो जायेंगे। इसलिये आप हमें आज्ञा दें। सनातन सूर्यदेव स्थावर-जन्मरूप जगत्के आत्मा हैं। यहाँ जगज्जन्ती गङ्गा और स्रग्भात् भगवान् त्र्यम्बक विराज रहे हैं, यहाँ प्रतिष्ठान नमस्क तीर्थ भी हो।'।

यों कहकर देवताओंने पिप्पलादसे भी अनुमति ली और अपने-अपने निवासस्थानको चले गये। यहाँ जितने पीपल थे, कालान्तरमें अमय स्वर्गको प्राप्त हुए। प्रतापी पिप्पलादने उस क्षेत्रके अधिष्ठाता देवताके रूपमें भगवान् संकरकी स्थापना करके उनकी पूजन किया। फिर गौतमकी कन्यका पत्नीरूपमें प्राप्त करके कई पुत्र उत्पन्न किये,

लक्ष्मी और यज्ञका उपार्जन किया तथा अन्तमें वे सुहृद्योंके साथ स्वर्गलोकको चले गये। उससे यह क्षेत्र पिप्पलेश्वरतीर्थ कहलाने लगा। यह सब यज्ञोंका फल देनेवाला पवित्र तीर्थ है। उसके स्मरणभात्रसे सर्पोंका नाश हो जाता है। फिर स्नान, दान और सूर्यके दर्शनसे जो लाभ होता है, उसके लिये तो कहना ही क्या है। यहाँ देवाधिदेव महादेवजीके दो नाम हैं—चक्रेश्वर और पिप्पलेश्वर। इस रहस्यको जानकर मनुष्य सब अभीष्ट वस्तुओंको प्राप्त कर लेता है। देवमन्दिरमें सूर्यकी प्रतिष्ठा होनेसे यह क्षेत्र प्रतिष्ठान कहलाया, जो देवताओंको भी बहुत प्रिय है। यह उपालयान अत्यन्त पवित्र है। जो मनुष्य इसका पाठ अच्छा श्रवण करता है, वह दीर्घजीवी, धनवान् और धर्मात्मा होता है तथा अन्तमें भगवान् संकरका स्मरण करके उन्हींको प्राप्त कर लेता है।

नागतीर्थकी महिमा

ब्रह्मजी कहते हैं—नागतीर्थके नामसे जो प्रसिद्ध क्षेत्र है, वह सब अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाला तथा मङ्गलमय है। यहाँ भगवान् नागेश्वर निवास करते हैं। उनके माहात्म्यकी विस्तृत कथा भी सुनो। प्रतिष्ठानपुरमें चन्द्रवंशी राजा शूरसेन राज्य करते थे। वे समस्त गुणोंके सागर और बुद्धियान् थे। उन्होंने अपनी पत्नीके साथ पुत्र उत्पन्न होनेके लिये बड़े-बड़े यत्न किये। दोषकायके पक्षात् उन्हें एक पुत्र हुआ, किन्तु वह भयानक आकारवाला सर्प था। राजाने उस पुत्रको बहुत छिपाकर रखा। किसीको इस बातका पता न लगा कि राजाका पुत्र सर्प है। अन्तःपुर अकवा बाहरका मनुष्य भी इस भेदसे परिचित न हो

सका। पत्नी-पिताके सिवा भाव, अमात्य और पुरोहित भी यह बात नहीं जानते थे। उस भयंकर सर्पको देखकर फनीसहित राजाको प्रतिदिन बड़ा संतप होत था। वे सोचते, सर्पकप पुत्रकी अपेक्षा तो पुत्रहीन रहना ही अच्छा है। वह था तो बहुत बड़ा सर्प, किन्तु बातें मनुष्योंकी-सी करता था। उसने फिरसे कहा—'मेरे बुद्धाकरण, उपनयन तथा वेदाध्ययन-संस्कार कराइये। द्विज जबतक वेदका अध्ययन नहीं करता, तबतक शूद्रके समान रहता है।'।

पुत्रको यह बात सुनकर शूरसेन बहुत दुःखी हुए। उन्होंने किसी ब्राह्मणको बुलाकर उसके संस्कार आदि कराये। वेदाध्ययन समाप्त करके

सर्पने अपने पितासे कहा—‘नृपश्रेष्ठ! मेरा विवाह कर दीजिये। मुझे स्त्री प्राप्त करनेकी इच्छा हो रही है। मेरा विश्वास है, ऐसा किये बिना आपका कोई भी कार्य सिद्ध न हो सकेगा। पुत्रका यह निश्चय जानकर राजाने अमात्योंको बुलाया और उसके विवाहके लिये इस प्रकार कहा—‘मेरा पुत्र युवराज नागेश्वर सब गुणोंकी खान है। यह बुद्धिमान, शूर, दुर्जय तथा लघुओंको संक्रान्त देनेवाला है। उसका विवाह करना है। मैं बड़ा हुआ। अब पुत्रको राज्यका भार सौंपकर निश्चिन्त होना चाहता हूँ। आपलोग मेरे हित-साधनमें तत्पर हो उसके विवाहके लिये प्रयत्न करें।’

राजाकी बात सुनकर अमात्यगण हाथ जोड़कर बोले—‘महाराज ! आपके पुत्र सब गुणोंमें श्रेष्ठ हैं और अत्य भी सर्वत्र विख्यात हैं। फिर आपके पुत्रका विवाह करनेके लिये क्या मन्त्रणा करनी है और किस बातकी चिन्ता।’ अमात्योंके ये कहनेपर नृपश्रेष्ठ शूरसेन कुछ गम्भीर हो गये। वे उन अमात्योंको यह बताना नहीं चाहते थे कि मेरा बेटा सर्प है, तथा वे भी इस बातसे अपरिचित ही रहे। राजाने फिर कहा—‘कौन कन्या गुणोंमें सबसे अधिक है तथा कौन राजा ऊँचे कुलमें उत्पन्न, श्रीमान् और उत्तम गुणोंके आश्रय हैं?’ राजाका यह कथन सुनकर अमात्योंमेंसे एक परम बुद्धिमान् पुलह, जो महाराजके संकेतको समझनेवाले थे, उनकी विचार जानकर बोले—‘महाराज! पूर्वदेशमें विजय नायके एक राजा हैं। उनके पास घोड़े, हाथी और रत्नोंकी गिनती नहीं है। महाराज विजयके आठ पुत्र हैं, जो बड़े धनुर्धर हैं। उनकी बहिन भोगवती साक्षात् लक्ष्मीके समान है। राजन्! वह आपके पुत्रके लिये सुयोग्य पत्नी होगी।’

बड़े अमात्यकी बात सुनकर राजाने उत्तर दिया—‘राजा विजयकी वह कन्या मेरे पुत्रके

लिये कैसे प्राप्त हो सकती है, बताओ।’

बड़े अमात्यने कहा—‘महाराज। आपके मनमें जो बात है, मैं उसे समझ गया। अब आप मुझे कार्य-सिद्धिके लिये जानेकी आज्ञा दें।’ महाराज शूरसेनने भूषण, कश्यप तथा मधुर वाणीसे बड़े मन्त्रीका सत्कार करके उन्हें बहुत बड़ी सेनके साथ भेजा। वे पूर्वदेशमें जाकर महाराज विजयसे मिले और जना प्रकरके वचनों तथा नीतिजनित उपदेशोंसे राजाको संतुष्ट किया। मन्त्रीने राजकुमारी भोगवती और युवराज नागका विवाह तय करा दिया। राजा विजयने कन्या देन स्वीकार कर लिया। बड़े मन्त्री लौट आये और शूरसेनसे उन्होंने विवाह निश्चित होनेका सब वृत्तान्त सुना दिया। तदनन्तर बहुत समय व्यतीत हो जानेपर वृद्ध मन्त्री अन्य सब सचिवोंको साथ लेकर सहस्र राज विजयके चर्चा पहुँचे और इस प्रकार बोले—‘राजन्! महाराज शूरसेनके राजकुमार नाग बड़े ही बुद्धिमान् और गुणोंके समुद्र हैं। वे स्वयं यहाँ आना नहीं चाहते। क्षत्रियोंके विवाह अनेक प्रकारसे होते हैं। अतः यह विवाह रास्त्रों द्वारा हो ज्ञाय तो अच्छा है।’

वृद्ध मन्त्रीकी बात सुनकर राजा विजयने उसे सत्य ही माना और भोगवतीका विवाह रास्त्रके साथ ही सास्त्र-विधिके अनुसार सम्पन्न हुआ। विवाहके पश्चात् महाराजने बड़े हर्षके साथ बहुत-सी गीर्ह, सुवर्ण और अन्य आदि सामग्री दहेजमें देकर कन्याको विदा किया। साथ ही अपने अमात्योंको भी भेजा। बड़े मन्त्री आदि सचिवोंने प्रतिहानमें आकर महाराज शूरसेनको उनकी पुत्रवधू समर्पित कर दी। राजा विजयने जो विनयपूर्ण वचन कहे थे, उनकी भी सुनाया और उनकी दो हुई दहेजकी सामग्री—विचित्र आभूषण, दासियाँ तथा वस्त्र आदि निवेदन किये। इन सब

कन्याका सम्पन्न करने के लोभ कृतकृत्य हो गये। राजकुमारी भोगवतीके साथ जो विजयके अमात्य पधारे थे, उनका महाराज शूरसेनने बड़े सम्मानके साथ स्वागत-सत्कार किया। जिसे सुनकर राजा विजयको प्रसन्नता हो, ऐसा बर्ताव करके सबको बिदा किया। राजा विजयकी कन्या रूपवती थी। वह सुन्दरी सदा अपने सास-ससुरकी सेवामें संलग्न रहती थी। भोगवतीका पति अत्यन्त भीषण महानाग रत्नोंसे सुरोभित एकान्त गृहमें सुगन्धित पुष्पोंसे बिलो हुई सुन्दर शय्यापर आराम करता था। उसने अपने माता-पितासे बार-बार कहा, 'मेरी पत्नी राजकुमारी मेरे समीप क्यों नहीं आती?' पुत्रकी यह बात सुनकर उसकी माताने धावसे कहा—'तुम भोगवतीसे जाकर कहो, 'तुम्हारा पति एक सर्प है। देखो, इसपर क्या कहती है।' 'बहुत अच्छा' कहकर धाव भोगवतीके पास गयी और एकान्तमें विनीत भावसे बोली—'कल्याणी! मैं तुम्हारे पतिको जानती हूँ, वे देवता हैं। किंतु यह बात किसीपर प्रकट न करना—वे मनुष्य नहीं, सर्पके रूपमें हैं।' धावकी बात सुनकर भोगवतीने कहा—'मनुष्य-कन्याको सामान्यतः मनुष्य ही पति मिलता करता है; यदि देवजातिका पुरुष पतिरूपमें प्राप्त हो, तब तो क्या बहम्ब। वह तो बड़े पुण्यसे मिलता है।' धावने भोगवतीकी बात सर्पसे, उसकी मातासे और महाराज शूरसेनसे भी कही। भोगवतीने भी धावको बुलाकर कहा—'तुम्हारा कल्याण हो, मुझे मेरी स्वामीका दर्शन तो कराओ।'।

तब धावने उसे ले जाकर अत्यन्त भयानक सर्पका दर्शन कराया। वह सुगन्धित फूलोंसे आच्छादित पलंगपर विराजमान था। एकान्त गृहमें रत्नोंसे विभूषित भयानक सर्पके आकारमें बैठे हुए अपने स्वामीको देखकर भोगवतीने हाथ

जोड़कर कहा—'मैं धन्य और अनुगृहीत हूँ, जिसके पति देवता हैं। पति ही स्त्रीकी गति है।' यह सुनकर नागको बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने हँसकर कहा—'सुन्दरी। मैं तुम्हारी भक्तिसे संतुष्ट हूँ। बोलो, तुम्हें क्या अभीष्ट वरदान है? तुम्हारे अनुग्रहसे मेरी सम्पूर्ण स्मरणशक्ति जाग उठी है। मुझे पिनाकधारी देवाधिदेव भगवान् शंकरने स्त्राय दिया है। शेषनागका पुत्र महाबलवान् नाग जो भगवान् शंकरके हाथका कङ्कण बना रहता है, वही मैं तुम्हारा पति हूँ और तुम भी वही पूर्वजन्मकी मेरी पत्नी भोगवती हो। एक दिन भगवान् शंकर एकान्तमें पार्वतीजीके साथ बैठे थे। वहाँ पार्वतीजीने एक बात कही, जिसे सुनकर भगवान् शिव डटकर हँस पड़े। उस समय मुझे भी हँसी आ गयी। इससे कुपित होकर भगवान्ने मुझे यह शाप दिया—'तू मनुष्य-योनिमें स्वरूपसे जन्म लेकर जानी होगी।' कल्याणी! यह शाप सुनकर तुमने और मैंने भी भगवान्को प्रसन्न करनेकी चेष्टा की। तब उन्होंने कहा—'जब तुम गीतमीके तटपर मेरा पूजन करोगे और मैं तुम्हारे अन्तःकरणमें ज्ञानका आधान करूँगा, उस समय तुम भोगवतीके प्रसादसे शापमुक्त हो जाओगे।' इसीलिये मुझपर यह संकट आया है। तुम मुझे गीतमीके तटपर ले चलो और मेरे साथ ही भगवान्की पूजा करो। इससे मेरा शाप छूट जायगा और हम दोनों पुनः भगवान् शिवका स्तनिध्व प्राप्त करेंगे। कहमें पड़े हुए समस्त प्राणियोंके लिये सदा भगवान् शिव ही परम गति हैं।' पतिके यह बात सुनकर भोगवती उन्हें स्त्राय ले गीतमी-तटपर गयी और वहाँ गीतमीमें स्नान करके उसने शिवका पूजन किया। इससे प्रसन्न होकर भगवान्ने उस सर्पको दिव्य रूप प्रदान किया। तब वह अपने माता-पितासे पूछकर



शिवलोकमें जानेको उद्यत हुआ। यह जानकर

पिताने कहा—'बेटा ! तুম एक ही घरे पुत्र और पुत्रराज हो, इसलिये इस समस्त राज्यका पालन कर्तो और बहुत-से पुत्र उत्पन्न करके मैं स्वर्गलोकमें पछात् शिवलोकमें जाओ।' पिताकर यह कथन सुनकर नगलजने कहा—'अच्छ, ऐसा ही करूँगा।' फिर वे इच्छानुसार रूप धारण करके अपनी पत्नीके साथ रहने लगे। पिता, माता और पुत्रोंके साथ उन्होंने उस विशाल राज्यका उपभोग किया और जब पिता स्वर्गलोकमें चले गये, तब अपने पुत्रोंको राज्यपर बिठाकर वे पत्नी और क्षमात्य आदिके साथ शिवपुरमें गये। तबसे वह तीर्थ नगतोर्थके क्रमसे विख्यात हुआ। वहाँ भोगवलीके द्वारा स्थापित भगवान् नागेश्वर निवास करते हैं; उस तीर्थमें किया हुआ स्नान और दान सब तीर्थोंका फल देनेवाला है।

मातृतीर्थ, अविघ्नतीर्थ और शेषतीर्थकी महिमा

ब्रह्माजी कहते हैं—गीतमीके तटपर मातृतीर्थके नामसे विख्यात जो उत्तम तीर्थ है, वह मनुष्योंको सब प्रकारकी सिद्धि देनेवाला है। जोव इसके स्मरण करनेवाचसे समस्त मनसिद्ध चिन्ताओंसे मुक्त हो जाता है। पूर्वकालमें देवताओं और असुरोंके बीच बड़ा भयंकर संग्राम छिड़ा था। उस समय देवतालोग दानवोंको परास्त न कर सके। तब वे सब देवताओंकि साथ शूलपाणि भगवान् शंकरके पास गया और हाथ जोड़कर नाना प्रकारके वाक्योंद्वारा उनका स्तवन करने लगा—'महेश जिस समय सम्पूर्ण देवताओं और असुरोंने एक-दूसरेसे सलाह करके समुद्रका मन्थन किया और उसमेंसे एक कालकूट पर्व निकला, उसे छा लेनेमें आपके सिवा दूसरा कौन

समर्थ हो सकता था। जिसके सामने दूसरे देवता भस्मक झुकाते हैं तथा जो केवल फूलोंकी मारसे तीनों लोकोंको अपने अधीन करनेमें समर्थ है। वही कामदेव जब आपपर आक्रमण करने चला, तब स्वयं ही नष्ट हो गया। अतः आपसे बड़कर शक्तिशाली दूसरा कौन है।'

यह स्तुति सुनकर भगवान् शंकर प्रसन्न हो गये और बोले—'देवताओ ! वतलाओ, क्या चाहते हो ? मैं तुम्हें अभीष्ट वरदान दूँगा।' देवता बोले—'वृषभध्वज ! हमपर दानवोंकी ओरसे बड़ा भारी भय उपस्थित हुआ है। आप वहाँ चलकर शत्रुओंका संहार और देवताओंकी रक्षा करें। प्रभो ! हम आपसे सनाथ हैं।' देवताओंके इतना कहते ही भगवान् शंकर उस स्थानपर आये,

जहाँ दैत्य युद्धके लिये खड़े थे। वहाँ दैत्योंका शंकरजीके साथ घमासान युद्ध छिड़ गया। दैत्य इधर-उधर भागने लगे। युद्ध करते समय शंकरजीके ललाटसे पसीनेकी बूँद गिरने लगीं। वे बूँद जहाँ-जहाँ गिरीं, वहाँ-वहाँ शिवके आकारके हो माताएँ प्रकट हो गयीं। वे भगवान् महेश्वरसे बोलीं—'आप आज्ञा दें तो हम सब असुरोंको खा जायें।' तब देवताओंसे धिरे हुए भगवान्ने कहा—'रतु जहाँ-जहाँ जायें, सर्वत्र उनका पोषण करो। इस समय वे भैंरे डरसे रसालतमें जा पहुँचे हैं। तुम भी रसालतक उनके पीछे-पीछे जाओ।' यह आज्ञा पाकर सब माताएँ पृथ्वी छेदकर रसालतमें गयीं और अत्यन्त भयंकर दैत्यों तथा दानवोंका संहार करके फिर उसी मार्गसे देवताओंके पास लौट आयीं। माताओंके जानेसे लौटनेतक देवता गौतमीके तटपर खड़े रहे। लौटनेपर देवताओंने माताओंको खर दिया—'संसारमें जिस प्रकार शिवकी पूजा होती है, उसी प्रकार माताओंकी भी हो।' यों कहकर देवता अन्तर्धान हो गये और माताएँ वहीं रह गयीं। जहाँ-जहाँ वे देवियों स्थित हुई, वह सब स्थान मातृतीर्थ माना जाता है। वे सभी तीर्थ देवताओंके लिये भी सेव्य हैं, फिर मनुष्य आदिके लिये तो बात ही क्या है। शिवजीके कथनानुसार उन तीर्थोंमें किया हुआ स्नान, दान और तर्पण सब अश्वय होता है। जो मनुष्य मातृतीर्थके इस उपाख्यानको प्रतिदिन सुनता, स्मरण रखता और पढ़ता है, वह दीर्घायु और सुखी होता है।

मातृतीर्थके अनन्तर अविष्कृतीर्थ है, जो सब विष्णुओंका नाश करनेवाला है। चारदो वहाँका वृत्तान्त भी बतलाता है, भक्तिपूर्वक सुनो। "एक बार गौतमीके तटपर देवताओंका यह आरम्भ हुआ, किन्तु विष्णु-दोषके कारण उसकी समाप्ति

नहीं हुई। तब सब देवताओंने मुझसे और भगवान् विष्णुसे इसका कारण पूछा। उस समय मैंने ध्यानस्थ होकर कारणका पता लगाया और कहा—'इसमें गणेशजी विघ्न डाल रहे हैं। इसीलिये इस यज्ञकी समाप्ति नहीं हो पाती। अतः सबलोग आदिदेव विनायककी स्तुति करें।' मेरा आदेश पाकर सब देवता गौतमीमें स्नान करके आदिदेव गणेशकी भक्तिपूर्वक स्तुति करने लगे।

देवता बोले—सदा सब कार्योंमें सम्पूर्ण देवता तथा शिव, विष्णु और ब्रह्मास्त्री भी जिनका पूजन, नमस्कार और चिन्तन करते हैं, उन विष्णुराज गणेशको हम शरण लेते हैं। विष्णुराज गणेशके सम्मान मनोवाञ्छित फल देनेवाला कोई देवता नहीं है, ऐसा निश्चय करके त्रिपुरारि महादेवजीने भी त्रिपुरवधके समय पहले उनका पूजन किया था। जिनका ध्यान करनेसे सम्पूर्ण देहधारियोंके मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं, वे अम्बिकानन्दन गणेश इस महायज्ञमें सौत्र ही हमारे विष्णुओंका निवारण करें। 'देवी पार्वतीके चिन्तनमात्रसे ही गणेशजी-वैष्णव पुत्र उत्पन्न हो गया। इससे सम्पूर्ण जगत्में भगवान् उत्पन्न हो गया है।' यह बात उन देवताओंने अपने मुखसे कही थी, जो नवजात बालके रूपमें गणेशजीको नमस्कार करके कुतार्थ हुए थे। माताकी गोदमें बैठे हुए और माताके मन करनेपर भी उन्होंने पिताके ललाटमें स्थित चन्द्रमाको जलपूर्वक पकड़कर उनकी जटाओंमें छिपा दिया, यह गणेशजीका बालविनोद था। यद्यपि वे पूर्ण तुल्य थे तो भी अधिक देरतक माताके स्तनोंका दूध इसलिये पीते रहे कि कहीं बड़े भैया कार्तिकेय भी आकर न पीने लगे। उनकी बुद्धिमें जलस्वभाववत् भाईके प्रति ईर्ष्या भर गयी थी। यह देखकर भगवान् शंकरने विनोदवश कहा—'विष्णुराज! तुम बहुत दूध पीते हो,

इसलिये लम्बोदर हो जाओ।' खों कड़कर उन्होंने उनका नाम 'लम्बोदर' रख दिया। देवसमुदायसे घिरे हुए महेश्वरने कहा—'बेटा। तुम्हारा नृत्य होना चाहिये।' यह सुनकर उन्होंने अपने घुँघुरकी आवाजसे ही शंकरजीको संतुष्ट कर दिया। इससे प्रसन्न होकर शिवने अपने पुत्रको गणेशके रूपपर अभिषिक्त कर दिया। जो एक हाथमें विष्णुस्तन और दूसरे हाथमें कंधेपर कुठार लिये रहते हैं तथा पूजा में पानेपर अपनी माताके कार्यमें भी विष्णु झल देते हैं, उन विष्णुराजके समान दूसरा कौन है। जो धर्म, अर्थ और काम आदियें सबसे पहले पूजनीय हैं तथा देवता और असुर भी प्रतिदिन जिनकी पूजा करते हैं, जिनके पूजनका फल कभी नष्ट नहीं होता, उन प्रधान-पूजनीय गणेशको हम पहले यस्तक गवाते हैं। जिनकी पूजासे सबको प्रार्थनाके अनुरूप सब प्रकारके फलकी सिद्धि दृष्टिगोचर होती है, जिन्हें अपने स्वतन्त्र सामर्थ्यपर अत्यन्त गर्व है, उन बन्धुप्रिय मृगकबाहन गणेशजीकी हम स्तुति करते हैं। जिन्होंने अपने सरस संगीत, नृत्य, समस्त मनोरथोंकी सिद्धि तथा विघ्नोदके द्वारा पाता पार्श्वगीको पूर्ण संतुष्ट किया है, उन अत्यन्त संतुष्ट इन्द्रवामसे श्रीगणेशकी हम शरण लेते हैं।

इस प्रकार देवताओंके स्तवन करनेपर गणेशजीने उनसे कहा—'देवताओ! अब तुम्हारे यज्ञमें विष्णु नहीं पड़ेगा।' जब देवयज्ञ निर्विघ्न पूरा हो गया तब गणेशजीने उन देवताओंसे कहा—'ओ लोग इस स्तोत्रसे भक्तिपूर्वक मेरी स्तुति करेंगे, उन्हें कभी दरिद्रता और दुःखका सामना नहीं करना पड़ेगा। जो इस तीर्थमें आलस्य छोड़कर भक्तिपूर्वक स्नान और दान करेंगे, उनके शुभ कार्य निर्विघ्न सिद्ध होंगे। इस मातका आपलोग भी अनुमोदन करें।' उनके इतना कहनेके साथ ही



देवताओंने एक स्वरसे कहा—'ऐसा ही होगा।' यह सम्पन्न होनेपर देवता अपने-अपने स्थानको चले गये। तबसे यह तीर्थ 'अविघ्न' तीर्थ कहलाने लगा। वह मनुष्योंकी सम्पन्न कामनाओंको पूर्ण करनेवाला तथा सम्पूर्ण विघ्नोंको मिटानेवाला है।

अविघ्नतीर्थके बाद शेषतीर्थ है, यह भी समस्त अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाला है। मैं उसके स्वरूपका वर्णन करता हूँ, रसातलके स्वामी महानाग शेष सम्पूर्ण पाणोंके साथ रसातलमें रहनेके लिये गये। परंतु राक्षसों, दैत्यों और दानवोंने, जिनका रसातलमें पहलेसे ही प्रवेश हो चुका था, उनको बर्हिसे निकाल दिया। तब वे मेरे पास आकर बोले—'भगवान्! आपने राक्षसोंको तथा हमसोंगोंको भी रसातल दे रखा है, किंतु दैत्य और राक्षस हमें यहाँ स्थान नहीं देना चाहते; इसलिये आपकी शरणमें आया हूँ।' तब मैंने जगसे कहा—'तुम गीतमीके तटपर जाओ, वहाँ महादेवजीकी स्तुति करनेसे तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होगा। उनके सिवा दूसरा कोई तीनों लोकोंमें

ऐसा नहीं है, जो सबके मनोरथ सिद्ध कर सके। मेरे कहनेसे शेषनाग वहाँ गये और गङ्गाधर्म स्नान करके हाथ जोड़कर देवेश्वर महादेवकी स्तुति करने लगे—'तीनों लोकोंके स्वामी भगवान् संकरको नमस्कार है। जो दक्षयज्ञके विध्यंस्वक, जगत्के आदि विधाता तथा त्रिभुवनरूप हैं, उन भगवान् शिवको नमस्कार है। जिनके सहस्रों मस्तक हैं, उन भगवान् सदाशिवको नमस्कार है। सबका संहार करनेवाले रुद्रदेवको नमस्कार है। भगवान् आप सोम, सूर्य, अग्नि और जलरूप हैं; आपके नमस्कार है। जो सर्वज्ञ सर्वस्वरूप और कालरूप हैं उन भगवान् शिवको नमस्कार है। सर्वेश्वर शंकर। मेरी रक्षा कीजिये। सर्वव्यापी सोमेश्वर ! मेरी रक्षा कीजिये। जगन्नाथ ! आपके नमस्कार है। मेरा मनोरथ पूर्ण कीजिये।'

इस स्तुतिसे प्रसन्न होकर महाेश्वरने नागराजको मनोवाञ्छित कर दिया, जो देवताओंसे रुझता रहनेवाले दैत्य, दानव तथा राक्षसोंके विनाशमें सहायक था। भगवान्ने शेषनागको शूल देकर कहा—'इससे अपने शत्रुओंका संहार करो।' भगवान् शिवकी यह आज्ञा पाकर शेषनाग सर्वेक साध रसातलमें गये वहाँ उन्होंने शूलसे अपने शत्रु दैत्य, दानव तथा राक्षसोंका बध किया और

फिर भगवान् शेषेश्वरका दर्शन करनेके लिये वे गौतमी-तटपर लौट आये। नागराज जिस मार्गसे आये थे, वसमें रसातलसे बह्रांतक छेद हो गया था। उस बिलसे गौतमी गङ्गाका अत्यन्त पुष्पदायक जल पतालगङ्गामें जा मिला। इस प्रकार उन दोनोंका संगम हुआ। भगवान् शेषेश्वरके सामने एक विशाल कुण्ड बनाकर शेषनागने उसमें हवन किया। उस कुण्डमें सदा अग्निदेव स्थित रहते हैं। उसमें गङ्गाके जलका संगम होनेसे वह जल गरम हो गया। महाेश्वरस्वी शेषनाग महादेवजीकी आराधना करके पुनः अपने अभीष्ट स्वान् रसातलमें चले गये। तबसे वह तीर्थ चाण्डीतीर्थ एवं लेबतीर्थके नामसे प्रसिद्ध हुआ। यह सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाला, पवित्र तथा रोग और दरिद्रताका नाशक है। उससे आयु एवं लक्ष्मीकी भी प्राप्ति होती है। यह पवित्र तीर्थ स्नान और दानसे मोक्ष देनेवाला है। जो मनुष्य इस प्रसङ्गका भक्तिपूर्वक श्रवण, पाठ अवलम्बन करता है, उसकी सब कामनाएँ पूर्ण होती हैं। जहाँ शेषेश्वरतीर्थ है और जहाँ सक्ति प्रदान करनेवाले भगवान् शिव हैं, वहाँ गौतमीके दोनों तटोंपर इक्कीस सौ तीर्थ हैं, जो सब प्रकारकी सम्पत्ति देनेवाले हैं।



अश्वत्थ-पिप्पलतीर्थ, शनैश्वरतीर्थ, सोमतीर्थ, धान्यतीर्थ और चिदर्भा-संगम तथा रेवती-संगम-तीर्थकी महिमा

ब्रह्माजी कहते हैं—गोदावरके उत्तर-तटपर अश्वत्थ-तीर्थ, पिप्पल-तीर्थ और शनैश्वर-तीर्थ हैं उनका फल सुनो। पूर्वकस्नकी बात है—देवताओंनि महर्षि अगस्त्यसे अनुरोध किया था कि आप विन्ध्यपर्वतको आदेश देकर ऊपर उठनेसे रोके।

महर्षि अगस्त्य धीरे-धीरे सहस्रों मुनियोंके साथ विन्ध्यपर्वतके समीप गये। उन्होंने देखा नागश्रेष्ठ विन्ध्य असंख्य वृक्षोंसे व्याप्त, सैकड़ों शिखरोंसे घिरा हुआ और बहुत ही ऊँचा है। ऊँचाईमें वह मेरुगिरि और सूर्यसे टकरा रहे रहा है। मुनिके

आनेपर विन्ध्यपर्वतने उनका आतिथ्य-सत्कार किया। मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यने सब ब्राह्मणोंके साथ विन्ध्यगिरिकी प्रशंसा की और देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये इस प्रकार कहा—‘पर्वतश्रेष्ठ! मैं तत्त्वदर्शी मुनियोंके साथ तीर्थयात्राके उद्देश्यसे दक्षिण दिशाकी यात्रा करना चाहता हूँ, तुम मुझे जानेका मार्ग दो मैं तुमसे आतिथ्यमें वही माँगता हूँ—जबतक सूर्य न आऊँ, जबतक तुम नीचे होकर ही रहना। इसके विपरीत न करना।’ विन्ध्यपर्वतने कहा—‘बहुत अच्छा। ऐसा ही करूँगा।’ महर्षि अगस्त्य उन मुनियोंके साथ दक्षिण दिशामें चले गये। वे धीरे-धीरे गौतमीके तटपर पहुँचकर सांवासरिक यज्ञमें दीक्षित हो गये। उन्होंने ऋषियोंके साथ एक वर्षतकके लिये यज्ञ आरम्भ कर दिया।

उन दिनों कैटभके दो कपी पुत्र राक्षस धर्मके कष्टक हो रहे थे। उनका नाम था—अश्वत्थ और पिप्पल। वे देवलोकमें भी प्रसिद्ध थे। ब्राह्मणोंको पीड़ा देना उनका निरपेक्ष काम था। ब्राह्मणोंका कह देख महर्षिगण गोदावरीके दक्षिणतटपर नियमपूर्वक तपस्या करनेवाले सूर्यपुत्र शनैश्वरके पास गये और उनसे उन राक्षसोंके सब अत्याचार कह सुनाये। यह सुनकर शनैश्वर ब्राह्मणके वेशमें रहनेवाले अश्वत्थ नामक राक्षसके पास गये और स्वयं भी ब्राह्मण बनकर उन्होंने उसकी परिक्रमा की उन्हें परिक्रमा करते देख राक्षसने ब्राह्मण ही समझा और प्रतिदिनकी भाँति माया करके उस पापी राक्षसने उनको भी अपना प्रास बना लिया। उसके शरीरमें प्रवेश करके शनिने उनकी आँतोंको देखा। शनिकी दृष्टि पड़ते ही वह पापपूर्ण राक्षस वज्रके मारे हुए पर्वतकी भाँति क्षणभरमें जलकर भस्म हो गया। अश्वत्थको भस्म करके वे ब्राह्मणरूपधारी शनि दूसरे राक्षसके पास गये।

वहाँ उन्होंने अपनेको वेदाध्ययन करनेवाले ब्राह्मणके रूपमें उपस्थित किया, माने वे विनीत शिष्य थे और पिप्पल गुरु। पिप्पलने पहलेकी ही भाँति अन्न शिष्योंके समान शनैश्वरको भी अपना आहार बनाया, किंतु उदरमें प्रवेश करनेपर शनि उसकी आँतोंपर दृष्टि डाली। उनके देखते ही वह भी जलकर भस्म हो गया। इस प्रकार उन दोनोंको धरकर सूर्यपुत्र शनैश्वरने मुनियोंसे पूछा—‘अब मेरे लिये कौन-सा कार्य है? आपलोग बतायें।’ मुनियोंको बड़ा हर्ष हुआ। उन्होंने शनिको इच्छानुसार वर देना चाहा। शनैश्वर बोले—‘जो मेरे दिनको नियमसे रहकर अश्वत्थका स्पर्श करें, उनके सब कार्य सिद्ध हो जायें और मोहारा होनेवाली पीड़ा भी उन्हें न हो। जो मनुष्य अश्वत्थ-तीर्थमें स्नान करें, उनके भी सब कार्य सिद्ध हो जायें। जो मानव शनिवारको प्रातः काल उठकर अश्वत्थका स्पर्श करते हैं, उनकी समस्त ग्रहपीड़ा दूर हो जाय।’ तबसे उस तीर्थको अश्वत्थतीर्थ, पिप्पलतीर्थ और शनैश्वरतीर्थ भी कहते हैं। अगस्त्य, सात्रिक, याज्ञिक और सामग आदि सैलह हजार एक सौ आठ तीर्थ वहाँ वास करते हैं। उन तीर्थोंमें किष्क हुआ स्नान और दान सम्पूर्ण यज्ञोंका फल देनेवाला है।

इसके आगे विष्णुव्रत सोमतीर्थ है। उसमें स्नान और दान करनेसे सोमपानका फल मिलता है। ओषधियों पूर्वकालसे ही सम्पूर्ण जगत्की माताएँ हैं। उन्हींमें यज्ञ, स्वाध्याय और धर्मकार्य प्रतिष्ठित हैं। ओषधियोंसे ही समस्त रोगोंका निवारण होता है। उन्हींसे अन्नकी उत्पत्ति और सबके प्राणोंकी रक्षा होती है। एक दिन ओषधियोंने मुझसे कहा—‘सुरश्रेष्ठ हमलोगोंको एक ऐसा पति दीजिये, जो राजा हो।’ उनकी बात सुनकर मैंने कहा—‘तुम सबको राजा पतिरूपमें प्राप्त

होगा।' तब उन्होंने पुनः प्रश्न किया— 'इसके लिये हमें कहीं जाना होगा?' मैंने कहा— 'ममताओ! तुम गीतमोके तटपर जाओ। गीतमोके ब्रह्म होनेपर तुम्हें लोकपूजित राजाकी प्राप्ति होगी।' यह सुनकर वे वहाँ गयीं और गीतमोकी स्तुति करने लगीं।

ओषधिर्यौ बोली— भगवान् शंकरकी प्रियतमा पुण्यसलिला गीतमो । यदि आप इस भूतलपर न आतीं तो संसारके प्राणी, जो नाना प्रकारकी पापराशियोंसे तिरस्कृत एवं दुःखी हो रहे हैं, क्या करते। नदीधरि । भूमण्डलके मनुष्योंके सीधेआपका अनुमान कौन कर सकता है, जिनके महापातकोंका नाश करनेवाली आप जगन्माता गङ्गा उनके लिये सदा ही सुलभ हैं। तीनों लोकोंकी बन्दनका जगज्जननी गङ्गा । आपके वैभवको कोई नहीं जानता; क्योंकि कामदेवके शत्रु भगवान् शंकर भी आपको सदा मस्तकपर लिये रहते हैं। मन्त्रेवाञ्छित फल देनेवाली माता । तुम्हें नमस्कार है। पापोंका धिनाश करनेवाली ब्रह्ममयी देवी । तुम्हें नमस्कार है। भगवान् विष्णुके चरणकमलोंसे निकली हुई गङ्गा । तुम्हें नमस्कार है। भगवान् शंकरकी जटासे प्रकट हुई गीतमो देवी । तुम्हें नमस्कार है।

इस प्रकार स्तुति करनेवाली ओषधिर्यौसे गङ्गाजीने कहा— 'देवियो! बलाओ, तुम्हें क्या दूँ?' ओषधिर्यौ बोली— 'जगन्माता । हमें अत्यन्त तेजस्वी राजाको पतिरूपमें दीजिये।' गङ्गाजीने कहा— 'माता ओषधियो । मैं अमृतरूप हूँ। तुम भी अमृतस्वरूपा हो। अतः तुम्हें तुम्हारे योग्य ही अमृतात्मा सोमको पतिरूपमें देती हूँ।' गीतमोके इस वरदानका दैवतओं, ऋषियों, चन्द्रमा तथा ओषधियोंने भी अनुमोदन किया। इसके बाद वे सब अपने-अपने स्थानको चली गयीं। जिस स्थानपर ओषधिर्यौने समस्त पाप-संतापका निष्कारण

करनेवाले अमृतस्वरूप राजा सोमको पतिरूपमें प्राप्त किया, वह सोमतीर्थके नामसे प्रसिद्ध हुआ। वहाँ स्नान और दान करनेसे पितर स्वर्गमें जाते हैं। जो प्रतिदिन इस प्रसन्नको पढ़ता, सुनवा अथवा चर्चितपूर्वक स्मरण करता है, वह दीर्घायु, पुत्रवान् और धनवान् होता है।

उदनन्तर क्षत्रवीर्य है, जो मनुष्योंकी सब अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाला है। वह सुकाल उपस्थित करनेवाला, कल्याणप्रद तथा मनुष्योंकी सब प्रकृष्टकी आपत्तिसे मुक्त करनेवाला है। राजा सोमको पतिरूपमें पाकर ओषधिर्यौ बहुत प्रसन्न हुई थीं। उन्होंने सब लोगों तथा गङ्गाजीके सामने यह अभीष्ट वचन कहा— 'वेदमें एक पवित्र गाथा है, जिसे वेदोंके विद्वान् जानते हैं। जिस भूमिमें फसल उगी हुई है, वह मरताके समान किंवा साक्षात् मरता ही है। जो गङ्गाजीके समीप ठहरकर दान करता है, वह समस्त अभिलषित वस्तुओंको प्राप्त कर लेता है। जो मानव छोटी लगी हुई भूमि, गौ तथा ओषधियोंको ब्रह्मा, विष्णु एवं शिवरूप ब्राह्मणके लिये चर्चितपूर्वक दान देता है, उसका किञ्च हुआ सब दान अक्षय होता है तथा वह अपने सम्पूर्ण अभीष्टोंको प्राप्त कर लेता है। ओषधिर्यौ सोम राजाकी प्रिया हैं और सोम भी ओषधियोंके पति हैं—यह जानकर जो ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मणको ओषधि (अन्न) दान करता है, वह सम्पूर्ण अक्षिप्तपिष्ट वस्तुओंको प्राप्त और ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है। ओषधिर्यौ राजा सोमसे बातचीत करती हुई कहती हैं— 'राजन्, हम ब्रह्मरूपिणी और प्राणरूपिणी हैं। जो हमें ब्राह्मणोंको दान करे, उसे तुम पर लगवओ। स्वाधर-जङ्गमरूप जितना भी जगत् है, वह सब हमलोगोंसे व्याप्त है। इक्षु, कव्य, अमृत तथा जो कुछ भी भोजनके काम आता है, वह हमारा ही श्रेष्ठ अंश है—यह

जानकर जो अन्नका दान करता है, रखन् ! उसे पार लगाओ। राजा सोम ! जो ऋद्धिपूर्वक इस वैदिकी गायका श्रवण, स्मरण अथवा पाठ करे, उसे तुम पार लगाओ।'

गङ्गाके किनारे जिस स्थानपर राजा सोमके साथ ओषधियोंने इस वैदिकी गायका पाठ किया था, वह धान्य तीर्थ कहलाता है। उस दिनसे उसके कई नाम हो गये—औषध्यतीर्थ, सौम्यतीर्थ, अमृततीर्थ, वेदगायत्रीर्थ और मातृतीर्थ। जो मनुष्य इन तीर्थोंमें स्नान, जप, होम, दान, पितृ-तर्पण और अन्न-दान करता है, उसका वह सब कर्म अक्षय फल देनेवाला होता है। यहाँ दोनों तटोंपर एक हजार छः सौ तीर्थ हैं, जो सब पापोंका नाश करनेवाले और सब प्रकारकी सम्पत्ति बढ़ाने-वाले हैं।

वहाँ विदर्भा-संगम और रेवती-संगमतीर्थ भी हैं। अब उनका वृक्षान्त बतलाऊँगा। पुराणवेत्ता पुरुष उसे जानते हैं। महर्षि भरद्वाज एक बड़े तपस्वी महात्मा थे। उनकी बहिनका नाम रेवती था। वह कुरूपा भी। उसका स्वर बड़ा शिक्ता था। प्रतापी भरद्वाज गङ्गाजीके दक्षिण-तटपर बैठकर बड़ी चिन्ता करने लगे कि 'इस भयंकर आकारवाली अपनी बहिनका विवाह किसके साथ करूँ ? कोई भी तो इसे ग्रहण नहीं करता। अहो, किसीके कन्या न हो। कन्या केवल दुःख देनेवाली होती है। जिसके कन्या हो, उस प्राणीकी जीते-जी पग-पगपर मृत्पु होती रहती है।' इस प्रकार वे अपने सुन्दर आश्रमपर तरह-तरहके विचार कर रहे थे। इतनेमें ही कठनामके एक मुनि वहाँ भरद्वाज मुनिका दर्शन करनेके लिये आये। उनकी अवस्था सोलह वर्षकी थी। शरीर सुन्दर था। वे शास्त्र, ज्ञानेन्द्रिय और सद्गुणोंकी खान थे। कठने आते ही भरद्वाजको

प्रणाम किया। भरद्वाजने उनका विधिपूर्वक पूजन किया और आश्रमपर पधारनेका कारण पूछा।



कठने कहा—'मैं विद्यार्थी हूँ और इसी उद्देश्यसे आपके दर्शन करने आया हूँ। जो उचित हो, वह कौजिये।' भरद्वाजने कठसे कहा—'महामते ! तुम्हारी जो इच्छा हो, पड़ो। मैं पुराण, स्मृति, वेद तथा अनेक प्रकारके धर्मशास्त्र—सब जानता हूँ। तुम सब अपनी सजि बतलाओ कुलीन, धर्मपरायण, गुरु-सेवक तथा सुनी हुई विद्याको तत्काल धारण करनेवाला शिष्य बड़े पुण्यसे प्राप्त होता है।'

कठने कहा—बड़न् ! मैं निष्कप, सेवापरायण, भक्त, कुलोत्तम और सत्यवादी शिष्य हूँ। मुझे अध्ययन कराइये

'एवमस्तु' कहकर भरद्वाजने कठको सम्पूर्ण विद्या प्रदायी। विद्या पाकर कठ बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने भरद्वाजसे कहा—'गुरुदेव ! आपको नमस्कार है। मैं आपके धनके अनुकूल दक्षिणा देना चाहता हूँ। अब कोई दुर्लभ वस्तु भी माँग सकने हूँ। बताइये, क्या दूँ ? जो शिष्य अपने गुरुसे विद्या

प्राप्त करके भी उन्हें शोहवत्त दक्षिण नहीं देते, वे जबतक सूर्य और चन्द्रमाकी सत्ता रहती है तबतक नरकमें पड़े रहते हैं।'

भगवान्‌ने कहा—यह मेरी महिमा अभी कुम्हारों है; इसको विधिपूर्वक ग्रहण करो और पत्थर बनाओ। इसके प्रति प्रेमपूर्ण बर्ताव करना, वही मैं दक्षिण माँगता हूँ,

कठने 'बहुत अच्छा' कहकर गुरुके आदेशसे विधिपूर्वक ही हुई रेवतीका जपिग्रहण किया और उसके सुन्दर रूपकी प्राप्तिके लिये वहीं रहकर देवेश्वर गङ्गाकी आराधना की। रेवतीने भी शिवकी प्रसन्नताके लिये उनका पूजन किया। इससे वह सुन्दर रूपवती हो गयी। उसका प्रत्येक अङ्ग मनोहर दिखायी देने लगा। अब

उसके रूपकी कहीं समता नहीं थी। वहाँ रेवतीके स्नान करनेसे जो जलकी धारा प्रकट हुई, वह 'रेवती' नामकी नदी हुई, जो रूप और सौभाग्य प्रदान करनेवाली है। फिर कठने उसकी पुण्यरूपताकी सिद्धिके लिये नाना प्रकारके दर्भों (कुत्तों) से अभिवेक किया। इससे 'विदर्भा' नामकी नदी प्रकट हुई। जो मनुष्य रेवती और यङ्गायें अष्टापूर्वक स्नान करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है। इसी प्रकार जो विदर्भा और गौतमीके संगममें स्नान करता है, उसे तत्काल भोग और मोक्षकी प्राप्ति होती है। वहाँ दोनों तटोंपर ही उत्तम तीर्थ हैं, जो सब पापोंके नाशक तथा सम्पूर्ण सिद्धियोंके दाता हैं।



पूर्णतीर्थ और गोविन्द आदि तीर्थोंकी महिमा, धन्वन्तरि और इन्द्रपर भगवान्‌की कृपा

ब्रह्माजी कहते हैं—गौतमी गङ्गाके उत्तर तटपर पूर्णतीर्थ है। वहाँ यदि मनुष्य मनःस्थानमें नष्ट हो तो भी कल्याणकर भागी होता है। पूर्णतीर्थके महात्म्यका वर्णन कर सकता है, वहाँ स्वयं चक्रधारी भगवान्‌ विष्णु और पित्रकधारी भगवान्‌ शंकर निवास करते हैं। पूर्वकालमें आयुके पुत्र धन्वन्तरि राजा थे। उन्होंने अधमेघ आदि अनेक प्रकारके यज्ञोंका अनुष्ठान किया, भौतिक-भौतिके दान दिये तथा प्रचुर भोग भोगे। फिर भोगोंकी विषयताका अनुभव करके उन्हें बड़ा वैराग्य हुआ। धन्वन्तरि यह जानते थे कि पर्वतके शिखरपर, गङ्गा नदीके किनारे, समुद्रके तटपर, शिव और विष्णुके मन्दिरमें अच्छा विशेषतः किसी पवित्र संगमपर किया हुआ जप, तप,

होम—सब अधिक होता है; इसलिये उन्होंने गङ्गा-सागर-संगमपर भारी तपस्या आरम्भ की।

एक बार राजा धन्वन्तरिने राज्य करते समय एक महान्‌ असुरको रणभूमिसे मार भगाया था। उसका नाम था तम। वह एक हजार वर्षोंतक राजाके चपसे समुद्रमें छिपा रहा। जब उसे मालूम हुआ कि राजा धन्वन्तरि विरक्त होकर वनमें चले आये हैं और उनका पुत्र राज्यसिंहासनपर आसीन हुआ है, तब वह समुद्रसे निकलकर और उस स्थानपर आया, जहाँ महाराज धन्वन्तरि गङ्गातटका अग्रज से जप और होममें संलग्न तथा ब्रह्मचर्यमें तत्पर थे। उसने सोचा, 'इस बलवान्‌ राजाने मुझे अनेक बार मार करनेका प्रयत्न किया है, अतः मैं भी क्यों न अपने इस सत्रुको मार कर डालूँ।'।

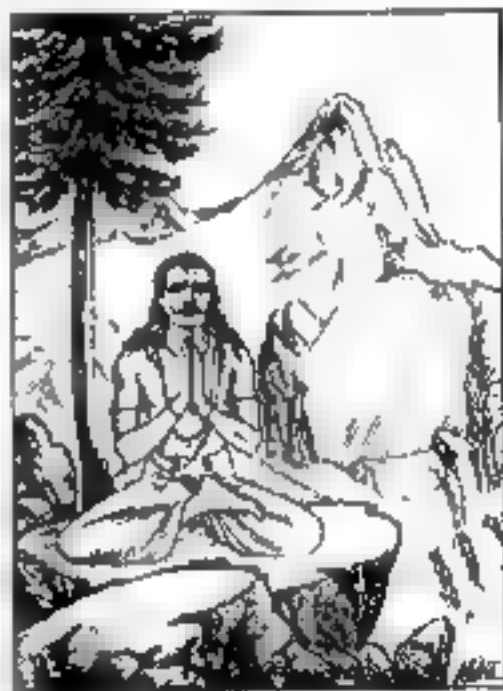
ऐसा निश्चय करके उसने मायासे एक स्त्रीका रूप बनाया और राजाके पास आया। वह मायामयी सुन्दरी तरुणी देखनेमें बड़ी मनोहर थी। उसने हँसते हुए गचना और गान आरम्भ किया। उस सुन्दरीको बहुत समयतक इस अवस्थामें देखा राजाने कृपापूर्वक पूछा—'कल्याणी! तुम कौन हो ? किसके लिये इस गहन वनमें निवास करती हो और किसे देखकर तुम्हें इतना उल्लास-सा हो रहा है ?'

तरुणी बोली—राजन् । आपके रहते संसारमें दूसरा कौन है, जो मेरे उल्लासका कारण हो सके। मैं इन्द्रकी लक्ष्मी हूँ। आपको सब भोगोंसे सम्पन्न देखा बारम्बार आपके सामने विचरती हूँ। असंख्य पुण्यके बिना मैं सभीके लिये अस्पृश्य दुर्लभ हूँ।

उसकी यह बात सुनकर राजाने वह अस्पृश्य कठोर तपस्या त्याग दी और मन-हो-मन ठसीक चिन्तन करने लगे। ठसीके आवय तथा उसीके आज्ञा-पालनमें रहने लगे। जब सब तरहसे वे एकमात्र ठसीकी शरणमें चले गये तब उनकी भारी तपस्याका नाश करके तम अन्तर्धान हो गया। इसी बीचमें मैं राजाको धर देनेके लिये गया। वे तपोभ्रष्ट एवं विह्वल होकर मृतकके समान रो रहे थे। मैंने अनेक प्रकारकी युक्तियोंसे महाराज धन्वन्तरिको सान्त्वना दी और कहा—
राजन् ! तुम्हारा स्रष्टु तप तुम्हें तपस्यासे भ्रष्ट करके कृतकार्य होकर चला गया। तुम्हें जोक नहीं करना चाहिये। प्रायः सभी तरुणी स्त्रियाँ पुरुषको पहले कुछ आनन्द और पीछे भारी संताप देती हैं, फिर वह तो मायामयी थी; अतः उसका संतापप्रद होना क्या आश्चर्यकी बात है।*

तब राजा धन्वन्तरिका भ्रम दूर हुआ। वे हाथ

जोड़कर बोले—'ब्रह्मन् ! क्या करूँ ? तपस्याके पार कैसे नाई ?' मैंने उत्तर दिया—'देवाधिदेव जनार्दनको धनपूर्वक स्तुति करो। उससे तुम्हें सिद्धि प्राप्त होगी। भगवान् विष्णु वेदवेद्य पुरातन परमात्मा हैं। उन्होंने ही सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि की है। तीनों लोकोंमें उनके सिवा दूसरा कोई पुरुष ऐसा नहीं है, जो प्राणियोंके समस्त मनोरथोंकी सिद्धि कर सके।' मेरी आज्ञा मानकर राजा धन्वन्तरि गिरिराज हिमालयपर चले गये और वहाँ दोनों हाथ जोड़कर भक्तिपूर्वक भगवान् विष्णुकी स्तुति करने लगे।



धन्वन्तरि बोले—सर्वत्र व्याप्त रहनेवाले विष्णो ! आपकी जय हो। अचिन्त्य परमेश्वर ! आपकी जय हो। विजयशील अच्युत ! आपकी जय हो। गेयल ! आपकी जय हो। लक्ष्मीके स्वामी, जगन्मय श्रीकृष्ण आपकी जय हो। भूतपते ! आपकी जय हो। नाथ ! आपकी जय हो आपकी जय हो। नाथ ! आपकी जय हो आपकी जय हो।

* आनन्दयन्ति प्रमदास्तपयन्ति च मानवम् । सर्वे एव विशेषेण किमु मायावती तु सा ॥

शेखनाफकी शय्यापर शयन करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। सर्वव्यापी गोविन्द! आपकी जय हो, जय हो। आप विश्वकी सृष्टि करनेवाले हैं। आपको नमस्कार है। देव! आपकी जय हो, जय हो। आप विश्वका पालन और धारण करनेवाले हैं। ईश! आपकी जय हो। आप सदसत्स्वरूप हैं। माधव! आपकी जय हो। आप धर्मनिष्ठ परमात्माको नमस्कार है। कामनाओंको पूर्ण करनेवाले और कामस्वरूप केशव! आपकी जय हो। गुणोंके सागर श्रीराम! आपकी जय हो। आप पुष्टि देनेवाले और पुष्टिके स्थायी हैं। आपकी जय हो, जय हो। कल्याणदाता! आपको नमस्कार है। सम्पूर्ण भूतोंके पालक! आपकी जय हो। भूतेश्वर! आपकी जय हो। आप मीन धारण करनेवाले हैं। आपको नमस्कार है। कर्मफलोंके दाता! आपकी जय हो। आप ही कर्मस्वरूप हैं। पीताम्बरधारी प्रभो! आपकी जय हो। सर्वेश्वर! आपकी जय हो। आप सर्वस्वरूप हैं। आप मङ्गलरूप प्रभुको नमस्कार है। नाथ! आप सत्त्वगुणके अधिनायक हैं। आपकी जय हो, जय हो। आप सम्पूर्ण वेदोंके साक्षा हैं। आपको मेरा नमस्कार है। आप ही जन्मदाता हैं और आप ही जन्म लेनेवाले प्राणियोंके भीतर निवास करते हैं। आपकी जय हो। परमात्मन्! आपको नमस्कार है। मुक्तिदाता! आपकी जय हो। आप ही मुक्ति हैं। भोग प्रदान करनेवाले केशव! आपकी जय हो। लोकप्रद परमेश्वर! आपकी जय हो। पापोंका नाश करनेवाले लोकेश्वर! आपकी जय हो। भक्तवत्सल! आपको जय हो, जय हो। चक्र धारण करनेवाले परमेश्वर आपको प्रणाम है। भक्तदाता! आपकी जय हो। आप ही मान हैं। विश्ववन्दित देव! आपकी जय हो। धर्मदाता! आपको जय हो। आप धर्मस्वरूप हैं। संसारसे पार लगानेवाले परमात्मन्! आपकी

जय हो। अन्नदाता! आपकी जय हो, जय हो। आप ही अन्न हैं। वाचस्पति! आपको नमस्कार है। शक्तिदाता! आपकी जय हो, आप ही शक्ति हैं। विजयकन वरदान देनेवाले ईश्वर! आपकी जय हो। यज्ञदाता! आपकी जय हो। आप ही यज्ञ हैं। आपके नेत्र पद्मपत्रकी तरह विशाल हैं। आपकी जय हो। दान देनेवाले परमेश्वर! आपकी जय हो। आप ही दान हैं। कैटभका नाश करनेवाले नारायण! आपकी जय हो। कीर्तिदाता! आपकी जय हो। आप ही कीर्ति हैं। मूर्तिदाता! आपकी जय हो। आप ही मूर्ति धारण करनेवाले हैं। सौख्यदाता! आपकी जय हो। आप ही सौख्यस्वरूप हैं। पावनको भी पावन बनानेवाले परमात्मन्! आपकी जय हो। शान्तिदाता! आपकी जय हो। आप ही शान्ति हैं। भगवान् संकरकी भी उत्पत्तिके कारण! आपकी जय हो। ज्योतिःस्वरूप! आपकी जय हो। कामन! आपकी जय हो। वितेश! आपकी जय हो। भूममयी पद्मकावाले। आपकी जय हो। सम्पूर्ण जगत्के लिये दातारूप परमेश्वर! आपको नमस्कार है। पुण्डरीकाक्ष! आप ही त्रिलोकीमें रहनेवाले जीवसमुदायका क्लेश निवारण करनेमें दक्ष हैं। कृपानिधे! विष्णो! आप मेरे मस्तकपर अपना वरद हाथ रखिये।

समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाले शङ्ख-चक्र-गदाधर भगवान् विष्णुने इस प्रकार स्तुति करनेवाले ध्वनन्तरिसे वर माँगनेको कहा। उभर उठने विनोद होकर कहा—'मैं देवताओंका राजा होना चाहता हूँ।' 'तथास्तु' कहकर भगवान् वहाँसे अन्तर्धान हो गये और राजा ध्वनन्तरिने क्रमशः उन्नति करते हुए देवेन्द्रपद प्राप्त किया। पूर्वजन्ममें किये हुए अनेक कर्मोंके परिणामवश इन्द्रको तीन बार अपने पदसे भूट होना पड़ा। ब्रह्मासुरका वध होनेपर बहुचक्रों द्वारा इन्द्रका पद

छोना गया। इसके बाद इन्द्रने सिन्धुसेनकी हत्या कर डाली। अतः उस क्षणसे भी उनके पदकी हानि हुई। तीसरी बार अहल्याके साथ समागम करनेके कारण तथा अन्य कारणोंसे भी उन्हें पदभङ्ग होना पड़ा। इन्द्र उन बातोंको बह करके चिन्ताजनित संतापसे उदास रहा करते थे। तदनन्तर एक दिन उन्होंने बृहस्पतिजीसे पूछा—‘बागोबा! क्या कारण है कि बीच-बीचमें मुझे अपने राज्यसे भ्रष्ट होना पड़ता है? इस प्रकार पदभङ्ग होनेकी अपेक्षा तो निर्धन हो जाना ही अच्छा है। कर्मोंकी गहन गतिकी कौन ठीक-ठीक खन्ता है। सम पदार्थोंके रहस्यको जाननेमें आपके सिवा और कोई समर्थ नहीं है।’

तब बृहस्पतिजीने इन्द्रसे कहा—‘बल्कर प्रजापतिसे पूछो। वे ही भूत, भविष्य और वर्तमानकी बातें जानते हैं। महामते! जिस कारणसे ऐसा होता है, वह सब वे बता देंगे।’ ऐसा निश्चय करके वे दोनों धीरे पास आये और मुझे नमस्कार करके हाथ जोड़कर बोले—‘भगवान्, किस दोषसे शचीपति इन्द्र अपने राज्यसे भ्रष्ट होते हैं? नाच! इस संदेहका निवारण कीजिये।’

उनका यह प्रश्न सुनकर मैंने बहुत देरतक विचार किया। तत्पश्चात् बृहस्पतिसे कहा—‘अहम्! खण्डधर्म नामक दोषके कारण इन्द्रको राज्यपदसे ध्युत होना पड़ता है। दैत-कल आदिके दोषसे, श्रद्धा और मन्त्रका अभाव होनेसे, यथावद् दक्षिण घ देनेसे, असत् वस्तुका दान करनेसे और विशेषतः देवता तथा ब्राह्मणोंकी अवहेलनाके पातकसे जो देहधारियोंका अपना धर्म खण्डित हो जाता है, उससे अत्यधिक मानसिक संतापका सामना करना पड़ता है तथा पदकी हानि भी अनिवार्य हो जाती है। क्षोभपूर्ण चित्तसे कित्ता हुआ धर्म भी अनिष्टका ही कारण होता है। उससे

कार्यकी सिद्धि नहीं होती। अपना धर्म पूर्ण न होनेपर कौन-सा अनिष्ट नहीं होता।’ यों कहकर मैंने उनके पूर्वजन्मका वृत्तान्त भी बतलाया। ‘पूर्वजन्ममें इन्द्र राजा आयुके पुत्र पन्वनरि थे। उनकी तपस्यामें तम नामक राक्षसने विघ्न डाल दिया, फिर भगवान् विष्णुने उस विघ्नका निवारण किया। इस तरह इनके पूर्वजन्मोंमें ऐसे वृत्तान्त अनेक हो सकते हैं। ठन्हींके फलसे इन्हें कभी-कभी अपने राज्यसे बाधित रहना पड़ता है।’

मेरी बात सुनकर इन्द्र और बृहस्पति दोनोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने फिर मुझसे ही पूछा—‘सुरश्रेष्ठ! खण्डधर्मत्व दोषका निवारण कैसे होगा?’ तब मैंने पुनः स्नेहकर कहा—‘सुनो, एक उपाय बताता हूँ, जो समस्त दोषोंका हारक, समस्त सिद्धियोंका कारक और दुःखभय संसार सागरसे समस्त प्राणियोंका तारक है। जिनके चित्तमें संताप रहता है, उनके इसी उपायकी तरफ सेनी चाहिये। यह समस्त जीवोंको शान्ति प्रदान करनेवाला है। यह उपाय है—गौतमी देवीके तटपर जाकर भगवान् विष्णु और शिवकी स्तुति करना।’ यह सुनकर वे उसी समय गौतमीके तटपर गये और स्नान करके बड़ी प्रसन्नताके साथ भगवान् विष्णु और शिवकी स्तुति करने लगे। इन्द्रने श्रीविष्णुकी स्तुति की और बृहस्पतिने श्रीशिवकी।

इन्द्र बोले—‘मरत्य, कूर्म और वाराहरूप धारण करनेवाले भगवान् विष्णुको बारम्बार नमस्कार है। नरसिंहदेव तथा वामनको भी नमस्कार है। इक्ष्वाकुरूपधारी भगवान्को नमस्कार है। त्रिविक्रम! आपको नमस्कार है। श्रीराम, बुद्ध और कल्किरूप भगवान्को नमस्कार है। परमेश्वर! आप अनन्त एवं अच्युत हैं। आपको नमस्कार है। परशुरामरूपधारी, आपको नमस्कार है। मैं इन्द्र, वरुण और यम

आपके ही स्वरूप हैं। आपको नमस्कार है। त्रिलोकीरूपधारी देवता परमेश्वरको नमस्कार है। भगवन्! आप अपने मुखमें सरस्वतीको धारण करते हैं और सर्वज्ञ हैं। आप लक्ष्मीवान् हैं। अतएव लक्ष्मीको वक्षःस्थलपर धारण करते हैं। पाप-ताप आपको छू भी नहीं सकते। आपको बाँहें, जङ्घा तथा चरण अनेक हैं। कान, नेत्र तथा मस्तक भी बहुत हैं। आप ही वास्तवमें सुखी हैं। आपको पाँचरु बहुत-से जीव सुखी हो गये। हरे! आप करुणाके सागर हैं। मनुष्योंको तभीतक निर्धनता, भयिष्ठता और दीनताका सामना करना पड़ता है जबतक वे आपको शरणमें नहीं आते।

बृहस्पति बोले—ईश! आप परम सूक्ष्म, ज्योतिर्मय, अनन्त, ओंकारमात्रसे अभिव्यक्त होमैत्राले, प्रकृतिसे परे, धितस्वरूप आनन्दमय और पूर्णरूप हैं। मुमुक्षु पुरुष आपका स्वरूप ऐसा ही बतलाते हैं। भगवन्! जिनके हृदयमें एक भी कामना नहीं है अथवा जो सम्पूर्ण मनोरथोंको प्राप्त कर चुके हैं, वे भी पहलमहायज्ञोंद्वारा आपकी अग्रार्चना करते हैं और उसके फलस्वरूप आपके दिव्य धाम अथवा दिव्य स्वरूपमें, जो संसार-स्वर्गसे परे है, प्रवेश कर जाते हैं। शम्भो, वे निष्काम अथवा आलोकाम पुरुष समत्वबुद्धिके द्वारा सब प्राणियोंमें आपका दर्शन करके क्षुधा-पिपासा, शोक-मोह और जरा-मृत्युरूप छ, कर्मियोंके प्राप्त होनेपर शान्तभावसे रहते, ज्ञानके द्वारा कर्मफलोंको त्याग देते और ध्यानके द्वारा आपमें प्रवेश कर जाते हैं। मुझमें न जातिके धर्म हैं न वेद-शास्त्रका ज्ञान है। न ध्यानका अभ्यास है और न मैं समाधि ही लगाता हूँ। केवल शान्तचित्त भगवान् सिक्को, जो रुद्र, शिव और सोम आदि नामोंसे पुकारे जाते हैं भक्तिके साथ प्रणाम करता हूँ। भगवन्! आपके चरणोंमें भक्ति रखनेसे मूख मनुष्य भी

आपके मोक्षमय स्वरूपको प्राप्त कर लेता है। ज्ञान, दान, तप, ध्यान तथा बड़े-बड़े फल देनेवाले होम आदि कर्मोंका सर्वोत्तम फल यही है कि भगवान् सोमनाथमें निरन्तर भक्ति बनी रहे जगदाधार शिव। सब जीवोंके लिये सदा देखें और सुने हुए प्रिय फलकी, स्वर्गकी तथा मोक्षकी प्राप्तिके लिये आपको यह भक्ति ही सीढ़ी है। धीर पुरुष आपके चरणोंकी प्राप्तिरूपी फलके लिये दूसरी किसी सीढ़ीको नहीं बतलाते। दयालो, इसलिये आपके प्रति मेरी भक्ति बनी रहे। आपके श्रीविग्रहकी सेवाका सौभाग्य प्राप्त होता रहे। दूसका कोई उपाय नहीं है। ईश्वर! यद्यपि हमलोग पापी हैं, यद्यपि आप अपनी महिमाकी ओर देखकर हमपर कृपा कीजिये। आप स्थूल, सूक्ष्म, अनादि, नित्य, पिता, माता, असत् और सत्यस्वरूप हैं—श्रुतियों और पुराणोंने इस प्रकार जिनका स्तवन किया है, उन परमेश्वर सोमनाथको मैं प्रणम करता हूँ।

इन दोनोंकी स्तुतियोंसे भगवान् विष्णु और



शिव बहुत प्रसन्न हुए और बोले—'तुम दोनों अत्यन्त दुर्लभ अभोष्ट घर पाँगो।' तब इन्द्रने कहा—'भगवन्! मेरा राज्य बार-बार अधिकारमें आता और छिन जाता है; जिस पापके कारण ऐसा होता है, वह पाप नष्ट हो जाय। यदि आप दोनों देवेश्वर अत्यन्त प्रसन्न हों तो मेरा सब कुछ सदा स्थिर रहे।' यह सुनकर भगवान् शिव और विष्णुने मुसकराते हुए इन्द्रके वाक्यका अनुमोदन किया और इस प्रकार कहा—'यह गोदावरी नदी बड़ा, विष्णु और शिव—इन तीनों देवताओंसे सम्बन्ध रखनेवाला महान् तीर्थ है। यहाँ सबके मनोरथ पूर्ण होते हैं। तुम दोनों यहाँ ब्रह्मापूर्वक स्नान करो। इन्द्रके मङ्गलके लिये तथा इनके वैभवाकी स्थिरताके लिये बृहस्पति हम दोनोंका स्मरण करते हुए इन्द्रका अभिषेक करें तथा उस समय विघ्नाङ्कित मन्त्र भी पढ़ें—

इह जन्मणि पूर्वविण् चत्किञ्चित् सुकृती कृतम्।

तत् सर्वं पूर्णतमेत् गोदावरी यमोऽस्तु मे॥

'गोदावरी। मैंने इस जन्ममें अथवा पूर्वजन्ममें जो कुछ भी पुण्यकर्म किया हो, वह सब पूर्णताको प्राप्त हो। आपके ममस्कार हैं।' जो इस प्रकार स्मरण करके गौतमी नदीमें स्नान करता है, उसका धर्म हम दोनोंकी कृपासे परिपूर्ण होता है तथा वह साधक अपने पूर्वजन्मके दोषसे भी मुक्त होकर पुण्यवान् हो जाता है।'

इन्द्र और बृहस्पतिने 'बहुत अच्छा' कहकर

भगवान्की आज्ञा स्वीकार की और दोनों प्रसन्न होकर उस कार्यमें लग गये। देवगुरुने इन्द्रका महाभिषेक किया। उससे एक नदी प्रकट हुई, जो पुण्य और मङ्गल कहलायी। उस नदीके साथ जो मङ्गाजीका संगम हुआ, वह बड़ा ही पवित्र एवं कल्याणकारक है। इन्द्रकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर वागमय भगवान् विष्णु प्रत्यक्ष प्रकट हुए और उनसे इन्द्रने त्रिलोकोका राज्य प्राप्त किया। अतः (इन्द्रं वागमिन्दयत्—इस व्युत्पत्तिके अनुसार) भगवान् वहाँ गोविन्दके नामसे विख्यात हुए, क्योंकि इन्द्रने उनसे त्रिलोकमयी गी प्राप्त की थी। देवगुरु बृहस्पतिने वहाँ इन्द्रके राज्यकी स्थिरताके लिये भूदादेवजीका स्तवन किया, वहाँ वे सिद्धेश्वर नामसे विख्यात करते हैं। सिद्धेश्वर नामक शिवलिङ्गकी सम्पूर्ण देवता भी पूजा करते हैं। तबसे वह तीर्थ गोविन्दतीर्थके नामसे विख्यात हुआ। वहाँ मङ्गला-संगम, पूर्णतीर्थ, इन्द्रतीर्थ और बार्हस्पत्यतीर्थ भी हैं। उन तीर्थोंमें जो स्नान, दान अथवा किञ्चिन्मात्र भी पुण्यजन उपार्जन किया जाता है, वह सब अक्षय्य होता है। वहाँकर ब्राह्म पितरोंको अत्यन्त प्रिय है। जो मनुष्य प्रतिदिन इस तीर्थके माहात्म्यको सुनता, पढ़ता और स्मरण करता है, उसे छोटे हुए राज्यको प्राप्ति होती है। नारद! वहाँ गौतमीके दोनों तटोंपर सैंतीस हजार तीर्थ रहते हैं, जो सब प्रकारको सिद्धि देनेवाले हैं।

श्रीरामतीर्थकी महिमा

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! रामतीर्थ भूषणस्थका नाश करनेवाला है। उसकी महिमाके श्रवणमात्रसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। इन्द्राकुक्षतमें दशरथ नामके क्षत्रिय राजा हुए, जो सम्पूर्ण विश्वमें विख्यात थे। वे इन्द्रकी ही भौति बलवान्,

बुद्धिमान् और सूरवीर थे तथा बलिकी भौति अपने पिता-पितामहोंके राज्यका पालन करते थे। महाराज दशरथके तीन रात्रियाँ थीं—कौस्तुभ, सुमित्रा और कैकेयी। वे तीनों कुलीन, सौभाग्यशालिनी, रूपवती और सुलक्षणा थीं।

राजा दशरथ जब अयोध्याके राजसिंहासनपर आसीन थे और ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ वसिष्ठजी उनके पुरोहितके पदपर प्रतिष्ठित थे, उस समय देशमें न रोग थे न मानसिक चिन्ताएँ। न तो अनावृष्टि होती थी और न अकाल ही पड़ता था। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रोंको और चारों आश्रमोंको भी पृथक्-पृथक् बड़ा सुख मिलता था। एक समयकी बात है, देवताओं और दानवोंमें राज्यके लिये युद्ध छिड़ गया। न तो उसमें देवताओंकी जीत होती थी और न दैत्यों एवं दानवोंकी ही। यह युद्ध कई दिनोंतक लगातार चलता रहा। इसी बीचमें अकस्मात्पानी हुई—'राजा दशरथ जिनका पक्ष ग्रहण करेंगे, वे ही विजयी होंगे, दूसरे नहीं।' यह सुनकर देवता और दानव दोनों अपनी विजयके लिये राजाके पास चले। देवताओंकी ओरसे वायु तीव्र जा पहुँचे और राजासे बोले—'महाराज! देव-दानव-संग्राममें आपके चलना चाहिये। वहाँ यह आकाशवाणी सुनायी दी है कि जिस ओर राजा दशरथ रहेंगे, उसी पक्षकी जीत होगी, अतः आप देवताओंका पक्ष ग्रहण कीजिये, जिससे देवता विजयी हों।'

वायुकी यह बात सुनकर राजा दशरथने कहा—'वायुदेव! आप सुखपूर्वक चधरें। मैं अवश्य धर्लूंगा।' वायुके चले जानेपर दैत्यगण राजाके पास आये और बोले—'भगवन्! हमारी सहायता कीजिये। महाराज! विजय आपपर ही अवस्थित है, अतः आप दैत्यराजकी सहायता करें।' राजा बोले—'वायुदेवने पहले मुझसे प्रार्थना की है और मैंने देवताओंको सहायता करनेका वचन दे दिया

है; अतः दैत्य और दानव लौट जायें।' राजा दशरथने वैसा ही किया। स्वर्गमें पहुँचकर उन्होंने दैत्यों, दानवों तथा राक्षसोंके साथ लोहा लिया। उस समय नृपतिके भाइयोंने देवताओंके देखते-देखते तीखे बाण मारकर राजाके रथकी धुरी तोड़ डाली। राजा बड़े वेगसे युद्धमें लगे थे। उन्हें घुरी टूटनेका पता न लगा। नारद। उस युद्धमें रानी कैकेयी भी राजाके पास ही बैठी थी। उसे रथकी अवस्थाका पता लग गया, परंतु उसने राजाको इस बातकी सूचना नहीं दी। धुरी टूटी देख उसने उसकी जगह अपना हाथ ही लगा दिया। यह बड़ा अद्भुत कार्य था। रथियोंमें श्रेष्ठ महाराज दशरथने कैकेयीके हाथसे धीमें हुए रथके द्वारा दैत्यों और दानवोंपर विजय पायी, फिर देवताओंसे अनेक बार पाकर उनकी अनुमति ले चे पुनः अयोध्या लौट आये। जाते समय मार्गके बीचमें जब महाराज दशरथने अपनी प्रिया कैकेयीकी ओर दृष्टिपात किया, तब उसका वह साहसपूर्ण कार्य देखकर उन्हें बड़ा विस्मय हुआ। नारद। इस कार्यसे प्रसन्न होकर राजाने कैकेयीको वर दिये। रानी कैकेयीने भी राजाकी आज्ञा स्वीकार करके इस प्रकार कहा—'महाराज! आपके दिये हुए वे वर आपके ही पास रहें [आवश्यकता पड़नेपर ले लूँगी]।'^{१०}

राज्य दशरथ पुरस्कारमें अनेक आभूषण लेकर अपनी प्रिया कैकेयीके साथ अपने नगरको गये। विजयी होनेसे वे बहुत प्रसन्न थे। तदनन्तर बहुत समयके बाद मुनेश्वर ऋष्यशृङ्गकी कृपासे देवताओंकी कार्यसिद्धिके लिये राजा दशरथके चार देवीपम

^{१०} स तु मध्ये महाराजं मार्गे वीक्ष्य तदा प्रियाम्। कैकेय्या- कम् तद् दृष्ट्वा विस्मयं परमं गतः ॥

ततस्तस्यै वरान् प्रादान्नीस्तु नारदः सः सपि। अनुमान्य नृपस्यै कैकेयी वाक्यमब्रवीत् ॥

त्वयि सिद्धन्तु राजेन्द्र त्वया दत्ता वरा अपो ॥

पुत्र हुए। कौसल्यासे राम, कैकेयीसे बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ भरत तथा सुमित्रासे लक्ष्मण और जत्रुघ्न हुए। ये सभी पुत्र बुद्धिमान, प्रिय तथा राजाके आज्ञाकारी थे। एक बार महर्षि विश्वामित्र आये और उन्होंने यज्ञकी रक्षाके लिये राजासे राम और लक्ष्मणको माँगा। विश्वामित्र उनके महत्त्वकी जानते थे।

राजा दशरथ बोले—'मुने ! इस बुढ़ापेमें किसी तरह दैवयोगसे मेरे ये बालक उत्पन्न हुए हैं, जो मेरे मनकी आनन्द देनेवाले हैं। मैं अपना जरीर और यह राज्य दे दूँगा, किन्तु इन पुत्रोंको न दे सकूँगा।

उस समय वसिष्ठने राजा दशरथसे कहा—'तज्ज् ! रघुवंशियोंने किसीकी प्रार्थनाको ठुकराना नहीं सीखा है।' उनके यों कहनेपर राजाने किसी तरह श्रीराम और लक्ष्मणसे कहा—'पुत्रो ! तुम महर्षि विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षा करो।' यों कहकर उन्होंने अपने दोनों पुत्र विश्वामित्रजीको सौंप दिये। राम और लक्ष्मणने 'बहुत अच्छा' कहकर राजा दशरथको नमस्कार किया और यज्ञकी रक्षाके लिये विश्वामित्रजीके साथ प्रसन्नतापूर्वक चल दिये। तब महर्षि विश्वामित्रने उन दोनों भाइयोंको माहेश्वरी महाविद्या, धनुर्वेद, ऋष्यविद्या, अस्त्रविद्या, लोकविद्या, रथविद्या, गजविद्या, अश्वविद्या, गदाविद्या तथा मन्त्रद्वारा अस्त्रोंके अन्वाहन और विसर्जनकी शिक्षा दी। इस प्रकार सम्पूर्ण विद्याएँ प्राप्तकर श्रीराम और लक्ष्मणने वनवासियोंका हित करनेके लिये वनमें ताड़काको मार डाला और हाथमें धनुष लेकर यज्ञकी रक्षा करने लगे। तत्पश्चात् महायज्ञ पूर्ण होनेपर मुनिवर विश्वामित्र दोनों राजकुमारोंके साथ राजा जनकसे मिलने गये। वहाँ लक्ष्मणसहित श्रीरामने राजाओंकी मण्डलीमें अपने गुरुसे सीखी हुई अद्भुत धनुर्विद्याका परिचय दिया। इससे प्रसन्न होकर राजा जनकने अपने अयोनिजा कन्या लक्ष्मीस्वरूपा सीताका

श्रीरामके साथ विवाह कर दिया। इसी प्रकार लक्ष्मण, भरत और जत्रुघ्नका विवाह भी राजा जनकके ही घर हुआ। तदनन्तर दीर्घकाल व्यतीत होनेपर राजा दशरथ समस्त प्रजा और गुरुकी अनुमतिसे श्रीरामको राज्य देने लगे। उस समय मन्थरारूपी दुर्दैवसे प्रेरित होकर रानी कैकेयी ईर्ष्यासे ब्यकुल हो उठी। उसने श्रीरामके राज्याभिषेकमें विघ्न डाला और उन्हें वनवास भेजनेके लिये कहा। साथ ही उसने वही राज्य भरतके लिये माँगा, परंतु राजाने स्वीकार नहीं किया। पिताके सत्यकी रक्षाके लिये श्रीराम स्वयं ही घोर जङ्गलमें चले गये। सीता और लक्ष्मणने भी उन्होंनेका साथ दिया। श्रीरामने अपने सद्गुणोंके कारण सत्पुरुषोंके शुद्ध हृदयमें घर बना लिया था। जब श्रीराम राज्यकी तुष्णासे रहित और वनवासके लिये दीक्षित हो लक्ष्मण और सीताके साथ चले गये, तब राम, लक्ष्मण और गुणशालिनी सीताका स्मरण करके महाराजको बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने अपने प्राण त्याग दिये। इधर श्रीरामचन्द्रजी चलते-चलते चित्रकूटमें आये। वहाँ उन्होंने तीन वर्ष व्यतीत किये। फिर वहाँसे दक्षिण दिशाकी ओर चलकर वे क्रमशः दण्डकारण्यमें पहुँचे, जो समस्त देशोंमें पवित्र और तीनों लोकोंमें विख्यात है। वह महान् वन दैत्योंसे सेवित होनेके कारण बड़ा भयंकर था। ऋषियोंने भयभीत होकर उसे छोड़ दिया था। श्रीरामने वहाँ दैत्यों और राक्षसोंको मारकर दण्डकवनको ऋषि मुनियोंके रहनेयोग्य बना दिया। फिर पंच योजन आगे जाकर वे धीरे धीरे गौतमीके तटपर पहुँचे। भगवान् शिवकी जो पुत्रीभूषा एवं अनिर्वचनीय पराशक्ति है, वही जलस्वरूपमें प्रकट हुई गौतमी नदी है। ऐसा संत-महत्माओंका कथन है। गौतमी ब्रह्मा, विष्णु और शिवके लिये भी माननीय तथा वन्दनीय है।

श्रीराम बोले—अहो, गङ्गाकम कैसे अद्भुत प्रभाव है! तीनों स्त्रियोंमें इनकी कहीं उपम्व नहीं है। हम धन्य हैं कि इन त्रिभुवनपावनी गङ्गाका दर्शन पा सके।

ये कहकर श्रीरामने बड़े हल्के स्रव महादेवजीकी स्थापना की और यत्नपूर्वक षोडशोपधारसे छतीस कलाओंवाले महादेवजीकी आवरणसहित पूजा करके हाथ जोड़ उनकी स्तुति करने लगे।

श्रीराम बोले—मैं पुराणपुरुष राम्भुको नमस्कार करता हूँ। जिनकी असीम सत्ताका कहीं पार या अन्त नहीं है, उन सर्वज्ञ शिवको मैं प्रणाम करता हूँ। अविनाशी प्रभु रुद्रको नमस्कार करता हूँ। सकला संहार करनेवाले शर्वको मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ। अविनाशी परमदेवको नमस्कार करता हूँ। लोकगुरु उमापतिको प्रणाम करता हूँ। दरिद्रताका विनाश करनेवाले शिवको नमस्कार करता हूँ। रोगोंका अपहरण करनेवाले महेश्वरको प्रणाम करता हूँ। जिनका रूप चिन्तनका विषय नहीं है, उन कल्याणमय शिवको नमस्कार करता हूँ। विश्वकी उत्पत्तिके बीजभूत भगवान् भवको प्रणाम करता हूँ। जगत्की पासन करनेवाले परमात्माको नमस्कार करता हूँ। संहारकारी रुद्रको बारंबार प्रणाम करता हूँ। पार्वतीजीके प्रियतम अविनाशी प्रभुको नमस्कार करता हूँ। नित्य, शर-अक्षरस्वरूप शंकरको प्रणाम करता हूँ। जिनका स्वरूप चिन्मय है और अप्रमेय है, उन भगवान् त्रिलोचनको मैं मस्तक झुकाकर बारंबार नमस्कार करता हूँ। करुणा करनेवाले भगवान् शिवको प्रणाम करता हूँ तथा संसारको भव देनेवाले भगवान् भूतनाथकी सर्वदा नमस्कार करता हूँ। मनोवाञ्छित फलोंके दाता महेश्वरको प्रणाम करता हूँ। भगवती उमाके स्वामी श्रीसोमनाथको नमस्कार करता हूँ। तीनों वेद जिनके तीन नेत्र हैं, उन

त्रिलोचनको प्रणाम करता हूँ। त्रिविध भूर्तिसे रहित सदा शिवको नमस्कार करता हूँ। पुण्यमय शिवको प्रणाम करता हूँ। सत् असत्से पृथक् परमात्माको नमस्कार करता हूँ। पापोंका अपहरण करनेवाले भगवान् हरको प्रणाम करता हूँ। जो सम्पूर्ण विश्वके हितमें लगे रहते हैं उन भगवान्को नमस्कार करता हूँ जो बहुत-से रूप धारण करते हैं, उन भगवान् शंकरको प्रणाम करता हूँ। जो संसारके रक्षक तथा सत् और असत्के निर्माता हैं, उन्हें नमस्कार करता हूँ। जो सम्पूर्ण विश्वके स्वामी हैं, उन विश्वनाथको प्रणाम करता हूँ। हव्य-कव्यस्वरूप यज्ञेश्वरको नमस्कार करता हूँ। सम्पूर्ण लोकोंका सर्वदा कल्याण करनेवाले जो भगवान् शिव आराधना करनेपर उत्तम गति एवं सम्पूर्ण अभ्युदय वस्तुएँ प्रदान करते हैं, उन पुत्रप्रिय इष्टदेवको मैं नमस्कार करता हूँ। भगवान् सोमनाथको प्रणाम करता हूँ। जो स्वतन्त्र ग रहकर भक्तोंके पराधीन रहते हैं उन विजयशील उमानाथको मैं नमस्कार करता हूँ। विभ्राज गणेश तथा नन्दोके स्वामी पुत्रप्रिय भगवान् शिवको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ। संसारके दुःख और शोकका नाश करनेवाले देवता भगवान् चन्द्रसेखरको मैं बारंबार नमस्कार करता हूँ। जो स्तुति करने योग्य और मस्तकपर गङ्गाको धारण करनेवाले हैं, उन महेश्वरको नमस्कार करता हूँ। देवताओंमें श्रेष्ठ उमापतिको प्रणाम करता हूँ। ब्रह्मा आदि ईश्वर, इन्द्र आदि देवता तथा असुर भी जिनके चरण-कमलोंकी पूजा करते हैं, उन भगवान्को मैं नमस्कार करता हूँ जिन्होंने पार्वतीदेवीके मुखसे निकलनेवाले वचनोंपर दृष्टिपूर्वक करनेके लिये मामो तीन नेत्र धारण कर रखे हैं, उन भगवान्को प्रणाम करता हूँ। पश्चामृत, चन्दन, उत्तम धूप दीप, भाँति भाँतिके

विचित्र पुष्प, मन्त्र तथा अस्त्र आदि समस्त उपकारोंसे पूजित भगवान् सोमको मैं नमस्कार करता हूँ।

तदनन्तर भगवान् शंकरने प्रकट होकर श्रीराम और लक्ष्मणसे कहा—‘तुम्हारा कल्याण हो, यर माँगो।’

श्रीराम बोले—सुरब्रह्म! भई-हर। जो लोग इस स्तोत्रके द्वारा भक्तिपूर्वक आपकी स्तुति करें, उनके सम्पूर्ण कार्य सिद्ध हो जायें। शम्भो! जिनके पितर नरकके समुद्रमें डूबे हों, उनके चे पितर यहाँ पिण्ड आदि देनेसे पवित्र हो स्वर्गलोकमें चले जायें। जन्मभरके कमाये हुए मानसिक, भाषिक और शारीरिक पाप यहाँ स्नान करनेमात्रसे तत्काल नष्ट हो जायें। जो लोग यहाँ कबकोंको भक्तिपूर्वक बोझा भी दान दें, वह सब अश्वय होकर दाताओंके लिये उत्तम फल देनेवाला हो।

यह सुनकर शंकरजी बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने ‘एवमस्तु’ कहकर श्रीरामचन्द्रकी कृताका अनुमोदन किया। सुरब्रह्म भगवान् शिवके अन्तर्धान हो जानेपर श्रीराम अपने अनुगामियोंके साथ घोर-धरि ठस प्रदेशमें गये, जहाँसे गेदाखरी नदी प्रकट हुई हैं। तबसे यह तीर्थ श्रीरामतीर्थके नामसे प्रसिद्ध हुआ। जहाँ लक्ष्मणने स्नान और शंकरका पूजन किया, वह लक्ष्मणतीर्थके नामसे प्रसिद्ध हुआ और जहाँ सीताने स्नानादि किया, वह सीतातीर्थके नामसे कहलाया। सीतातीर्थ नाना प्रकारकी समस्त पापराशिकों निर्मूल करनेमें समर्थ है। जिसके चरणोंसे त्रिभुवनपावनी गङ्गा प्रकट हुई, उन्होंने ही जहाँ स्नान किया, उस तीर्थकी विशिष्टताके विषयमें क्या कहा जा सकता है। अतः श्रीरामतीर्थके समान कहीं कोई भी तीर्थ नहीं है।

पुत्रतीर्थकी महिमा

ब्रह्माजी कहते हैं—गीताम्नी-तटपर जो विष्णुवत् पुत्रतीर्थ है, वह पुण्यतीर्थ कहलाता है। उसकी महिमाके श्रवणमात्रसे मनुष्य सम्पूर्ण अभिलषित वस्तुओंको प्राप्त कर लेता है। भरद! मैं उसके स्वरूपका वर्णन करता हूँ, श्रवणान होकर सुने। जब दिति एवं दनुके पुत्र दैत्य और दानवोंका देवताओंद्वारा क्षय होने लगा, तब दिति पुत्र-वियोगके दुःखसे मनमें स्पर्धा लेकर अपनी बहन दनुके पास आयी और इस प्रकार कहने लगी—‘भई! हम दोनोंके ही पुत्र क्षीण होते जा रहे हैं। हम संसारमें कौन ऐसा भुक्तर कार्य करें, जिससे हमारा यह संकट दूर हो। देखो, अदितिका बंस कितना संगतित और उत्तम है। उसका कभी क्षय नहीं होता। वह उत्तम शृङ्ग, सुयज्ञ और विजय-

लक्ष्मीसे सुरोभित है। अदितिकी संतानोंका वैभव और अभ्युदय देखकर मैं दुबली होती जा रही हूँ। सम्भव है, जीवित न रह सकूँ। अदितिके महान् ऐश्वर्यपर दृष्टि डालते ही मैं अवर्णनीय दुःखस्थाका अनुभव करने लगती हूँ। दावानलमें प्रवेश कर जान भी सुखद है, किंतु स्वप्नमें भी सौतकी समृद्धि नहीं देखी जाती।

दनु बोली—भई! तुम अपने गुणोंसे पतिदेव करवणजीको संतुष्ट करो। यदि स्वामी संतुष्ट हो गये तो तुम सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंको प्राप्त कर लोगी।

‘बहुत अच्छा’ कहकर दितिने सब प्रकारसे करवणजीको संतुष्ट किया। तब प्रजापति भगवान् करवणने दितिसे कहा—‘सुब्रह्म! तुम्हें क्या दें? तुम कोई अभीष्ट यर माँगो।’ यह सुनकर दितिने

स्वामीसे कहा—'नाथ। मुझे ऐसा पुत्र दीजिये, जो अनेक गुणोंसे सम्पन्न, विश्वविजयी और अण्डन्त्र हो तथा जिसके जन्म सेनसे मैं संसारमें वीरजननी कह सकूँ।' करवपजीने कहा—'देवि! मैं तुम्हें एक ब्रह्म व्रतकर उपदेश करता हूँ, जो बारह वर्षोंका पालन करनेके बाद फल देता है। उसके बाद आकर तुम्हारे मनके अनुकूल गर्भका आधान करूँगा, क्योंकि व्रत आदिके द्वारा निष्ठाप हो जानेपर ही सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध होते हैं।'।

पतिको यह वचन सुनकर दितिको बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने करवपजीको नमस्कार करके उनके कसबे हुए व्रतका विधिपूर्वक पालन किया। जो लोग तीर्थोंकी सेवा, सुपात्रोंको दान तथा व्रतका पालन आदि नहीं करते, वे अपनी अभीष्ट वस्तुओंकी कैसे प्राप्ति कर सकते हैं। दितिका व्रत पूरा होनेपर करवपजीने गर्भाधान किया और एकान्तमें अपनी प्रिय पत्नी दितिके कहा—'शुचिस्मिन्ने। तपस्वी मुनि भी विहित कर्मकी अवहेलना करनेसे मनोवाञ्छित फलार्थ नहीं पा सकते। अतः तुम्हें कोई निन्दित कर्म नहीं करना चाहिये। दोनों संध्याओंके समय सोना, कहीं जाना अथवा भाल खोलने रहना निषिद्ध है। संध्याकाल भूतोंसे ब्याप्त रहता है। अतः उस समय छींकना, जैभाई लेना तथा भोजन करना भी मना है। ये सब कार्य सदा ओटमें ही करने चाहिये। विशेषतः हँसना तो दूसरोंके सामने हो ही नहीं। संध्याकालमें कभी कमरेके भीतर न रहे। प्रिये! मूत्र, कूजल, मूत्र, पीड़ा और डकार आदिको दिन वा रातमें कभी न लौघना। उत्तरकी ओर सिरहाना करके तथा संध्याकालमें कभी न सोना। झूठ न बोलना। दूसरोंके घर न जान। पतिके सिवा और किसी पुरुषपर कहीं भी दृष्टि न डालना।

यदि निरन्तर इन नियमोंका पालन करती रहोगी तो तुम्हारा पुत्र त्रिभुवनके ऐश्वर्यका भागी होगा।' दितिने स्वामीके सम्पन्न प्रतिज्ञा की—'मैं इन नियमोंका ठीक-ठीक पालन करूँगी।' फिर करवपजी देवताओंके यहाँ चले गये। इधर दितिको पुण्यजन्त कल्याण गर्भ दिनोंदिन बढ़ने लगा। इन सब कठिनोंके भय नामक दैत्य अपनी मयाके बलसे जानता था। उसकी इन्द्रसे मित्रता थी। दोनोंमें बड़ा प्रेम था। उसने इन्द्रके पास एकान्तमें जाकर विनवपूर्वक कहा—'दिति और दनुने विशेष अभिप्रायसे करवपजीको संतुष्ट किया है। दितिका गर्भ दिनोंदिन बढ़ता है, उसमें नाना प्रकारकी लक्ष्मियाँ हैं।'।

जाराजीने पूछा—देवेश्वर! महाबली मय नामक दैत्य तो नमुषिको प्रिय भ्राता है और नमुषि इन्द्रके हाथसे मारा गया था। फिर उसकी अपने भाईके शत्रुसे मित्रता कैसे हुई?

जह्वाजी बोले—पूर्वकालमें नमुषि दैत्योंका राजा था, उसका इन्द्रके साथ बड़ा भयंकर वैर हुआ। एक समयकी बात है—इन्द्र बुद्ध छेड़कर कहीं जा रहे थे। यह देखकर दैत्यराज नमुषि भी उनके पीछे लग गया। उसे आगे देख इन्द्र भयसे व्याकुल हो गये और ऐरावत हाथीको छोड़कर खमुद्रके फेसमें घुस गये। फिर वज्रमें फेस लपेटकर उस फेससे ही इन्द्रने अपने शत्रुका संहार कर डाला। जब नमुषिकी मृत्यु हो गयी तब उसके छोटे भाई मयने अपने बड़े भाईके व्रतकका विनाश करनेके लिये बड़ी भारी तपस्त्र की। उसने अनेक प्रकारकी माया प्राप्त की, जो देवताओंके लिये अत्यन्त भयंकर थी। उसने सम्पूर्ण लोकोंको शरण देनेवाली भगवान् विष्णुसे भी वर प्रप्त किया। मय दानी और प्रियभाषी था। उसने इन्द्रको जोड़नेके लिये अग्नि और साहजनोंकर

पूजन आरम्भ किया। वह याचकोंको मुंहमंथी वस्तुएँ देने लगा। वन्दोजन सदा उसके स्तुति करते थे। इन्द्रने वायुसे अपने मयावी सन्तु मयकी गति विधि जान ली। तब वे ब्राह्मणका वेष बनाकर उसके पास गये और बोले—‘दैत्यराज! मैं याचक हूँ, मुझे मनोवाञ्छित वर दोखिये। मैंने सुना है—आप दाताओंके सिरमौर हैं। अतः आपके पास आया हूँ’ मयने उन्हें ब्राह्मण जानकर कहा—‘दिया हुआ हो समझो। स्वप्ने याचकोंको पाकर दाता यह विचार नहीं करते कि थोड़ा है या अधिक।’ उसके यों कहनेपर इन्द्र बोले—‘मैं तुम्हारे साथ चिकता चाहता हूँ।’ यह सुनकर मय दैत्यने कहा—‘विप्रवर! ऐसे वरसे क्या लाभ। आपके साथ मेरा और तो है नहीं।’ तब इन्द्रने अपने वास्तविक रूपको प्रकट किया। इन्द्रको पहचानकर मयके मनमें बड़ा विस्मय हुआ। ‘सखे! यह क्या बात है? तुम तो वषाधारी हो। तुम्हारे योग्य यह कार्य नहीं है।’ इन्द्रने हँसकर मयको हृदयसे लगाया और कहा—‘विद्वान् पुठव किसी भी उपायसे अपने अभीष्ट कार्यकी सिद्धि करते हैं।’ तबसे मयके साथ इन्द्रकी गहरी मैत्री हो गयी। मय सदाके लिये इन्द्रका हितैषी हो गया। उसने इन्द्रध्वनमें जाकर सब बातें बतायीं, साथ ही इन्द्रको माया भी प्रदान की। इन्द्रने प्रसन्न होकर पूछा—‘मय! बताओ, अब मुझे क्या करना चाहिये?’

मयने कहा—‘अगस्त्यके आश्रमपर जाओ वहाँ गर्भवती दिति रहती है। उसकी सेवा करते हुए आश्रममें कुछ दिन निवास करो; फिर अवसर देखकर वज्र हाथमें लिये दितिके गर्भमें प्रवेश कर जाओ और वज्रसे उस बच्चे हुए गर्भके टुकड़े-टुकड़े कर डालो। इससे तुम्हारे उस सत्रुका अस्तित्व ही मिट जायगा।’

इन्द्रने ‘बहुत अच्छा’ कहकर मयकी प्रशंसा की और विनैतकी भाँति याता दितिके पास गये। वहाँ जाकर दैत्यमाताकी सेवा-शुश्रूषामें लग गये। उनके मनमें क्या है, इस बातको दिति नहीं जानती थीं। उनके गर्भमें जो मुनिका अम्रेघ तेज था, वह किसीके लिये भी दुर्धर्ष था। इन्द्र गर्भके भीतर प्रवेश करनेकी इच्छासे अवसरकी प्रतीक्षा करते हुए बहुत समयतक वहाँ रहे। एक दिन दिति संध्याकालमें उत्तरकी ओर सिरहाना करके सो रही। इन्द्रने मनमें कहा ‘यही अच्छा अवसर है।’ यों कहकर वे वज्र हाथमें ले दितिके उदरमें प्रवेश कर गये। गर्भमें जो बालक था, वह आयुध लिये मारनेकी इच्छासे आये हुए इन्द्रको देखकर भी भयभीत न हुआ और बोला—‘वज्रधारी इन्द्र! मैं तुम्हारा भाई हूँ। तुम मेरी रक्षा क्यों नहीं करते? क्या मुझे मारना चाहते हो? पुत्रके भिन्न अन्य अवसरपर किसीको मारनेसे बचकर दूसरा कोई पातक नहीं है। मैं गर्भसे निकलूँ, तब मुझसे युद्ध कर लेन्द्र। यहाँ आकर इस प्रकार मारना तुम्हारे लिये उचित नहीं होगा। बड़े लोग विपत्तिमें पड़नेपर भी कुर्मागपर पैर नहीं रखते। मैंने न तो अभी विद्या पढ़ी है, न सस्त्र चलाना सीखा है और न अशुश्रूषाका ही संग्रह किया है। तुम विद्वान् हो। तुम्हारे हाथमें वज्र शोभा पा रहा है। क्या मुझे मारते समय तुम्हें लज्जा नहीं आती? कुलीन पुरुष कभी भी कुत्सित कर्म नहीं करते। मुझे मारनेसे तुम्हें क्या मिलेगा, यश अथवा पुण्य? गर्भमें आये हुए प्राणी इच्छानुसार मारे जा सकते हैं, किंतु इसमें कौन-सा पुरुषार्थ है। भाई! यदि तुम्हें युद्धसे प्रेम है और मुझसे हो भिड़ना चाहते हो तो निःसंदेह चले आओ।’ यों कहकर वह बालक भी इन्द्रकी ओर मुक्ता लानकर खड़ा हो गया और बोला—‘इन्द्र! मुझे मारनेसे तुम बालघाती, ब्रह्मघाती

तथा विश्वासघाती कहलाओगे। यही तुम्हें फल मिलेगा। फिर किसलिये मुझे मारनेकी उद्यत हुए हो। सम्पूर्ण चराचर जगत् जिसकी आज्ञाके अधीन चल रहा हो, यह मुझ-जैसे बालककी हत्या करे—इसमें कौन-सा यश और बड़ा पुरुषार्थ है?’

गर्भका बालक यों ही कहता रहा, किंतु इन्द्रने अपने वस्त्रसे उस बालकके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। सच है, क्रोधान्ध और लोभो मनुष्योंको किसीपर भी दया नहीं आती। इतनेपर भी गर्भस्थ बालककी मृत्यु नहीं हुई। सभी टुकड़े जीवित बालकोंके रूपमें परिणत हो गये और दुःखसे रोते हुए बोले—‘भयों मारते हो, हम तुम्हारे भाई हैं।’ किंतु इन्द्रने एक न सुनी, उन खण्डोंके भी टुकड़े-टुकड़े कर डाले। वे भी जीवित होकर बोले—‘इन्द्र! हमें न मारो हम तुमपर विश्वास करते हैं। माताके गर्भमें पड़े हैं और तुम्हारे ही भाई हैं।’ परंतु कौन सुनता था। जिनकी बुद्धि द्वेषसे नष्ट हो गयी है, उनके चित्तमें कल्याणका एक कण भी नहीं रह जाता। गर्भके सभी टुकड़े हाथ-पैर तथा नूतन जीवसे युक्त हो गये। उनमें किसी प्रकारका तिकार नहीं रह गया। उनकी संख्या एकसे बढ़कर उनवास हो गयी। यह देखकर इन्द्रको बड़ा विस्मय हुआ। वे सब के-सब रो रहे थे। इन्द्रने उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा—‘मा रुत’ (मत रोओ) इनके ऐसा कहनेसे उनका नाम भरत हो गया। वे गर्भमें ही अत्यन्त बलवान् और महापराक्रमी हो गये थे। उन्होंने गर्भके भीतरसे ही मुनिवर अगस्त्यको, जिनके आश्रममें माता टिकी हुई थी, पुकारकर कहा—‘मुने! हमारे पिता आपके भाई हैं। वे आपकी वैसीकन बहुत आदर करते हैं। हम यह भी जानते हैं कि आपके मनमें हमलोगोंके प्रति बड़ा स्नेह है तथापि आपके रहते हुए यह वज्रधारी इन्द्र ऐसे

कार्यमें प्रवृत्त हुआ है, जिसे कोई चाण्डाल भी नहीं करता।’ गर्भके बालकोंकी यह पुकार सुनकर अगस्त्य मुनि दौड़े हुए आये। उन्होंने दितिको जगाया। वे गर्भकी वेदनासे पीड़ित थीं। उस समय अगस्त्यने अत्यन्त क्रुपित होकर शचीपति इन्द्रको शाप दिया—‘इन्द्र! संग्राममें शत्रु तुम्हारी पीठ देखेंगे।’ दितिने भी गर्भमें समाये हुए इन्द्रको रोषपूर्वक शाप दिया—‘तूने बच्चोंको मारकर कोई पुरुषार्थ नहीं किया है, अतः मैं शाप देती हूँ कि तू राज्यसे भूत हो जायगा।’ इसी समय वहाँ प्रजापति कश्यपजी भी आ पहुँचे। अगस्त्यके मुखसे इन्द्रकी यह कुत्सित चेष्टा सुनकर उन्हें बड़ा दुःख हुआ।

कश्यपजीने कहा—बेट! गर्भके बाहर निकलो। तुमने यह बड़ा पाप कर डाला। दत्तम कुलमें उत्तम पुरुष कभी पापमें मन नहीं लगाते।

पिताका आदेश सुनकर वज्रधारी इन्द्र गर्भसे बाहर निकले। उस समय लज्जाके भारे उनका मुँह नीचा हो रहा था। वे बोले—‘पिताजी! जिस साधनसे मेरा कल्याण हो, वह बताइये मैं उसे अवश्य करूँगा।’ तब कश्यपजी लोकपालोंके साथ मेरे पास आये और सब बातें बताकर पूछने लगे—‘दितिके गर्भकी शान्ति, गर्भस्थ बालकोंकी इन्द्रके साथ मित्रता, उन बालकोंकी नीरोगता, इन्द्रकी निर्दोषता तथा अगस्त्यके दिये हुए शापका क्रमशः उद्धार कैसे हो?’ तब मैंने कश्यपसे कहा—‘प्रजापते! तुम बसुओं, लोकपालों तथा इन्द्रको साथ लेकर शीघ्र ही गौतमी नदीके तटपर जाओ और वहाँ ज्ञान करके सबके साथ महादेवजीकी स्तुति करो। फिर शिवकी कृपासे सब कल्याण ही होगा।’ ‘अच्छ, ऐसा ही करूँगा’ यों कहकर कश्यप मुनि गौतमी नदीके तटपर गये और देवेश्वर भगवान् शिवकी स्तुति करने लगे।

समस्त दुःखोंको दूर करनेके लिये दो ही देवता समर्थ बताये गये हैं—एक तो परम पवित्र गौतमी नदी और दूसरे करुणानिधि शिव।

कश्यप बोले—देवेश्वर शंकर! मेरी रक्षा कीजिये। लोकानन्दित परमेश्वर! मेरी रक्षा कीजिये। सबको पवित्र करनेवाले काशीश! रक्षा कीजिये। सर्पोंका आभूषण पहननेवाले शिव! रक्षा कीजिये। धर्मस्वरूप वृषभर सवारी करनेवाले देवता! रक्षा कीजिये। तीनों वेद जिनके नेत्र हैं, ऐसे भगवान् त्रिलोचन! रक्षा कीजिये। गोधर* लक्ष्मीश! रक्षा कीजिये। गजचर्मका वस्त्र धारण करनेवाले सर्व! रक्षा कीजिये। त्रिपुरहर! रक्षा कीजिये। अर्द्धचन्द्रसे विभूषित नव! रक्षा कीजिये। यज्ञेश्वर सोमनाथ! रक्षा कीजिये। मन्त्रैवाभिष्ट फलेकि दाता! रक्षा कीजिये। करुणधाम! रक्षा कीजिये। मङ्गलदाता! रक्षा कीजिये। सबकी उत्पतिके हेतुभूत परमात्मा! रक्षा कीजिये। फलन करनेवाले वासव! रक्षा कीजिये। भस्कर! विरैत! रक्षा कीजिये। ब्रह्मानन्दित शिव! रक्षा कीजिये। विश्वेश्वर! रक्षा कीजिये। सिद्धेश्वर! रक्षा कीजिये। पूर्ण परमेश्वर! आपको नमस्कार है। करुणसागर शिव! भयंकर संसाररूपी दुर्गम प्रदेशमें विचरनेके कारण जिनका चित्त उद्विग्न हो रहा है, ऐसे जीवोंके लिये आप ही शरण हैं।

इस प्रकार स्तुति करनेवाले कश्यपजीके समक्ष भगवान् शंकर प्रकट हुए और उनसे वर माँगनेके लिये कहा। कश्यपजीने विनीत होकर भगवान् शिवसे इन्द्रकी समस्त चेष्टाओंका विस्तारपूर्वक वर्णन किया। साथ ही यह भी बताया कि मेरे पुत्रोंका जो नाश हो रहा है, उनमें परस्पर सज्जता बड़ रही है, इन्द्रके पाप और तापकी प्रतिक्रिया हुई है, यह सब शान्त हो जाय। यह सुनकर भगवान्

शंकरने कहा—‘आपके जो उनचास पुत्र मरुद्रण हैं, वे सब सौभाग्यशाली और इन्द्रके साथ सदा यज्ञके भागी होंगे। जिस-जिस यज्ञमें इन्द्रका भाग होगा, उसमें उनसे भी पहले मरुद्रणोंका भाग होगा—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। मरुद्रणोंके साथ रहनेपर कभी कोई इन्द्रको जीत नहीं सकता। फिर तो वे ही सदा विजयी रहेंगे।’ इतना कहकर शंकरजीने पुनिश्च अगस्त्यसे कहा—‘भुने! तुम शचीपति इन्द्रपर क्रोध न करो। महामते! शान्त हो जाओ। मरुद्रण अमर हो गये।’ फिर दितिसे भी शिवजीने कहा—‘देवि! मेरे एक ऐसा पुत्र हो, जो तीनों लोकोंके वैश्वसे सुरोन्मिष्ट रहे—इस बातका चिन्तन करती हुई तुम तपस्यामें प्रवृत्त हुई थीं। तुम्हारा यह मनोरथ अब सफल हो गया। तुम्हारे ये पुत्र अधिक गुणशाली, बलवान् और हारवीर हैं। अतः अब तुम अपनी मानसिक चिन्ता छोड़ दो। सुन्दरी! तुम संतुष्ट रहित होकर अन्य वर भी माँगे।’

दिति बोली—भगवन्! लोकमें यही बड़ी बात समझी जाती है कि माता-पिताको पुत्रका दर्शन हो। विरोधता माताके लिये यह बहुत ही प्रिय बात है। इसमें भी रूप, सम्पत्ति, शौर्य और पराक्रमसे सम्पन्न एक भी पुत्र हो तो बड़े भाग्यशाली बात है। फिर यदि बहुत-से उत्तम और गुणवान् पुत्र प्राप्त हो तो क्या कहना। मेरे पुत्र आपके प्रभावसे विजयी और बली हुए। वे वास्तवमें इन्द्रके भाई और प्रजापतिके पुत्र हैं। देव! जहाँ अगस्त्य और गौतमी गङ्गाके प्रसादके साथ-साथ आपका भी प्रसाद प्राप्त हो, वहाँ शुभ होनेमें क्या संदेह है। यद्यपि मैं कृतार्थ हो गयी, तथापि भक्तिपूर्वक आपसे कुछ निवेदन करती हूँ। देव! मेरी बात सुनें और संसारका कल्याण करें।

* श्री अनीत वृषभ (बन्नी) की शरण करनेसे ‘गोधर’ और लक्ष्मीवर्धन पार्वतीके स्वामी होनेसे ‘लक्ष्मीश’ है। अथवा गोधरका अर्थ भूधर, पिरियार हिमालय) है, उसकी सम्पत्तिवर्धक कन्यके स्वामी होनेके कारण शिव ‘गोधर लक्ष्मीश’ हैं।

देवघन्टा! संतानकी प्राप्ति संसारमें दुर्लभ है। विशेषतः माताके लिये पुत्रका होना और भी प्रिय है। पुत्र भी यदि पुणवान्, धनवान् और आयुष्मान् हुआ, तब तो कहना ही क्या है। इहलोक और परलोकमें उसका फलकी इच्छा रखनेवाले सभी प्राणियोंको पुणवान् पुत्रकी प्राप्ति सदा ही अभीष्ट है। अतः यहाँ ज्ञान करनेसे इस दुर्लभ फलकी प्राप्ति हो सके—ऐसा अनुग्रह कीजिये।

भगवान् ज्ञाकर बोले—निःसंतान होना बहुत बड़े पापका फल है। स्त्री या पुरुष—कोई भी यदि निःसंतान हो तो यहाँ ज्ञान करनेवाले उसे इस दोषका नाश हो जाता है। जो इस स्तोत्रका पाठ करेगा, उसे यहाँ ज्ञान करनेका फल प्राप्त होगा। जो तीन मासतक यहाँ ज्ञान और ध्यान करता है, उसे पुत्रकी प्राप्ति होती है। पुत्रहीन स्त्री यहाँ ज्ञान करके पुत्र पा सकती है। अस्तुकृत्वा स्त्री यदि यहाँ आकर स्नान करे तो उसे अनेकों पुत्र प्राप्त होते हैं। यह तीन महीनेके भीतर ही गर्भवती हो जाती है। जो पितृदोषसे तथा धन अपहरण करनेके दोषसे पुत्र-लाभसे वञ्चित हैं, उनके लिये यह गौतमी नदी परम उद्धारका कारण है। यहाँ पितरोंको पिण्डदान देने, तर्पण करने तथा कुछ सुखर्ष-दान करनेसे निश्चय ही पुत्र होता है। जो धरोहर हटप लेते, रत्नोंकी चोरी करते तथा पितरोंका श्राद्ध-कर्म छोड़ देते हैं, उनके वंशकी वृद्धि नहीं होती। जो कब करके उसका प्रायश्चित्त किये बिना ही मर जाते हैं, उन सबकी

बड़ी गति होती है। जो तीर्थोंका सेवन करते हुए जीवन व्यतीत करते हैं, उन्हें श्रेष्ठ संतानकी प्राप्ति होती है। जो दिति और गङ्गाके संगममें ज्ञान करके अन्नदि, अन्नर, अन्नय, सच्चिदानन्दमय, लिङ्गस्वरूप, ज्योतिर्मय तथा अनामय महादेव भगवान् सिद्धेश्वरका अनेक उपचारोंसे भक्तिपूर्वक पूजन करता है, चतुर्दशी और आश्वीको इस स्तोत्रका स्मृति करता है तथा यहाँ गङ्गाके तटपर ब्राह्मणोंको अपनी शक्तिके अनुसार सुर्वण देता और भोजन करता है, उसे अनेक पुत्र प्राप्त होते हैं। वह सम्पूर्ण अभिलषित वस्तुओंको प्राप्त करके अन्तमें भगवान् शिवके धाममें जाता है। जो इस स्तोत्रके द्वारा कहीं भी मेरी छ. महीने स्तुति करता है, उसे पुत्र प्राप्त होता है। यदि उसकी स्त्री बन्ध्या हो तो भी वह निःसंदेह पुत्रवती होती है।

तबसे उस तीर्थका नाम पुत्रतीर्थ हो गया। वह स्नान-दान आदि करनेसे समस्त व्रतमनाओंकी पूर्ति होती है। मल्लुणोंके साथ मैत्री होनेके कारण उसे मित्रतीर्थ भी कहते हैं। यहाँ ज्ञान करनेसे इन्द्र निम्ज्जण हुए थे, इसलिये यह इन्द्रतीर्थ या शक्रतीर्थ भी कहलाता है। जहाँ इन्द्रको अपनी खोयी हुई लक्ष्मी प्राप्त हुई, यह कामलतीर्थ कहलाया। ये सब तीर्थ समस्त अभीष्ट पद्योंको देनेवाले हैं। भगवान् शिव यह कहकर कि 'यहाँ सब कामनाएँ पूर्ण होतीं' अन्तर्धान हो गये और कश्यप आदि सब लोग कृतकृत्य होकर जैसे आये थे, वैसे लौट गये।

यम, आग्नेय, कपोत और उलूक-तीर्थकी महिमा

ब्रह्मजी कहते हैं—यमतीर्थ पितरोंको प्रसन्नताको देवता और मुनि इस तीर्थका सेवन करते हैं। ये नदानीवाला है। यह प्रायश्च और परोक्ष—सब उसके प्रभावका वर्णन करता है, जो सब पापोंका प्रकारकी अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाला है। सम्पूर्ण भाग करनेवाला है। एक बलवान् कपोत था, जो

अनुष्ठादके नामसे विख्यात था। उसकी पत्नी हेति नामकी यक्षिणी थी, जो इच्छानुसार रूप धारण कर सकती थी। अनुष्ठाद मृत्युके पुत्रका पुत्र था और हेति मृत्युकी पुत्रीकी पुत्री थी। समयानुसार उन दोनोंके भी अनेक पुत्र-पौत्र हुए। पक्षियोंका राजा उलूक अनुष्ठादका प्रबल शत्रु था। गङ्गाके उत्तर-तटपर कपोतका आश्रम था और दक्षिण किनारे पक्षिराज उलूक रहता था। उलूक भी अपने पुत्र-पौत्रोंके साथ निवास करता था। कपोत और उलूक दोनों बहुत समयतक एक-दूसरेके विरोधी होकर युद्ध करते रहे। दोनों ही अपने पुत्र-पौत्रोंको साथ लेकर लड़ते थे। यह बलवान् शत्रुओंके साथ बलवानोंका युद्ध था। उनमेंसे उलूक अथवा कपोत—किसीकी भी जय-पराजय नहीं होती थी। कपोतने यमराज तथा अपने पितामह मृत्युकी आराधना करके याम्य-अम्य प्राप्त किया, अतः वह सबसे अधिक शक्तिशाली हो गया। इसी प्रकार उलूक भी अग्निकी आराधना करके अम्यना बलवान् हो गया। वर पकर दोनों ही उन्मत्त हो गये थे, अतः फिर उनमें बड़ा भयंकर युद्ध छिड़ गया। उसमें उलूकने कपोतके ऊपर आग्नेय-अस्त्रका प्रहार किया। कपोतने भी उलूकपर यमपाश तथा यमदण्डका प्रयोग किया। कपोतकी स्त्री हेति बड़ी पतिव्रता थी। उस महायुद्धमें अपने स्वामीके निकट अग्निके प्रणवीकृत देख वह दुःखसे विह्वल हो गयी। विशेषतः पुत्रोंको अग्निसे आवृत देख उसकी व्याकुलता

और भी बढ़ गयी। उसने अग्निदेवके पास जाकर ज्ञान प्रकारकी ठकियोंसे स्तब्ध करना आरम्भ किया।

हेति बोली—जिनका रूप और दान प्रत्यक्ष है, सम्पूर्ण पदार्थ जिनके आत्मस्वरूप हैं और देवता जिनके द्वारा हवनीय पदार्थोंका भोजन करते हैं, उन यज्ञभोक्ता स्वाहापति अग्निको मैं नमस्कार करती हूँ। जो देवताओंके मुख, देवताओंके हविष्यको वहन करनेवाले, देवताओंके होता और देवताओंके दूत हैं, उन आग्निदेव भगवान् अग्निकी मैं शरण लेती हूँ। जो शरीरके भीतर प्राणरूपमें स्थित हैं और बाहर अन्नदातारूपमें विद्यमान हैं तथा जो चक्रके स्तम्भ हैं, उन धनंजय (अग्निदेव)—की मैं शरण लेती हूँ।*

अग्नि बोले—पतिव्रते! मेरा यह अस्त्र अमोघ है, अतः जिस लक्ष्यपर इसका विश्राम हो सके, उसको बरतओ।

कपोतीने कहा—अग्निदेव! आपका अस्त्र मुझपर ही विश्राम करे, मेरे पुत्र और पतिपर नहीं। मुझे मारकर आप सत्यवादी हों। आपको नमस्कार है।

अग्निदेवने कहा—पतिव्रते! तुम्हारे सुवचन और पतिभक्तिसे मैं बहुत संतुष्ट हूँ। तुम्हारे स्वामी और पुत्रोंका अनिष्ट नहीं होगा। मैं उनकी रक्षाका वचन देता हूँ। यह मेरा आग्नेय-अस्त्र तुम्हारे पतिको, पुत्रोंकी तथा तुमको भी नहीं जलायेगा; अतः तुम सुखपूर्वक सोट जाओ।

* कर्म य इति न कोसमस्ति कस्म्यप्यभूत् च पदार्थजम् ।

अनन्ति इत्येति च येन देवः स्वाहापतिं यज्ञधुवं नमस्ते ॥

मुखभूतं च देवानां देवानां इत्यवहनम् । होतारं चापि देवानां देवानां दूतमेव च ॥

तं देवं शरणं यामि अग्निदेवं विभक्तयुम् । अन्तःस्थितः प्रत्यक्षो वहिष्वाग्रप्रदो हि यः ॥

ये यज्ञस्थानं यामि शरणं तं धनंजयम् ॥

इसी बीचमें उलूकीने भी अपने पतिको देखा। वे यमपात्रमें बाँधकर यमदण्डसे ताड़ित हो रहे थे। सती-साध्वी उलूकी यह देखकर बहुत दुःखी हुई और भयसे व्याकुल हो यमराजके पास गयी।

उलूकी बोली—देव, मनुष्य आपसे भयभीत होकर भागते हैं आपसे डरकर ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं। आपके ही भयसे धीर पुरुष तपस्यवर्ताव करते हैं और आपके ही डरसे कर्मोंके अनुष्ठानमें लगते हैं आपसे घबड़ाकर लोग उपवास करते और गाँव छोड़कर वनमें जाते हैं। आपके ही डरसे सौम्यभक्त प्रणम करते और आपके ही भयसे शोषमान करते हैं। आपसे भयभीत पुरुष ही अन्नदान और गोदानमें प्रवृत्त होते हैं और आपसे डरकर ही मुमुक्षु ब्रह्मचर्यकी चर्चा करते हैं।*

इस प्रकार स्तुति करती हुई उलूकीसे दक्षिण दिशाके स्वामी यमराजने कहा—'तुम्हारा कल्याण हो। तुम घर जाओ। मैं तुम्हें मनके अनुकूल कर दूँगा।' यमराजकी यह बात सुनकर पतिव्रता उलूकीने उससे कहा—'सुरश्रेष्ठ! मैं स्वामी आपके पासमें बँबे हैं और आपके ही दण्डसे पीड़ित हो रहे हैं। आप उससे मैं पति और पुत्रोंकी रक्षा करें।' उसकी यह कप्रतर बाणी सुनकर यमराजको बड़ी हँसा आयी। उन्होंने बार-बार कहा—'सुमुखि। मैं ये पाश और दण्ड किसपर पहुँचें? इनके लिये स्थान बताओ।' उसने कहा—'कगड़ीवर! आपके पास भूमे ही बँबें और आपका दण्ड भी भूतपर ही पड़े।'

यमराजने कहा—भूमे! तुम्हारे पुत्र, पति और

तुम सब लोग निश्चिन्त होकर जीवन व्यतीत करो।

वों कहकर यमराजने अपने पाश समेट लिये और अग्निदेवने आग्नेयास्त्रका निवारण कर दिया। इतना हो नहीं, उन दोनों देवताओंने मिलकर कपेट और उलूकमें प्रेम करा दिया। फिर पक्षियोंसे कहा—'तुमलोग इच्छानुसार घर जाँगो।' दोनों पक्षी बोले—'भागवम्! हमने आपसके बैरके



कारण आपसलोंको दुर्लभ दर्शन प्राप्त किया। हम तो भाग्ययोगि पक्षी हैं। घरदान लेकर क्या करेंगे तत्पक्षि यदि आपलोग प्रेमपूर्वक बार देना ही चाहते हैं तो हमलोग उस कल्याणमय वरको अपने लिये नहीं चाहते। देवेक्षरो! जो अपने लिये याचना करता है, वह श्रेयकर्म पात्र है, जो सदा परोपकारके लिये उद्यत रहता है, उसीका जीवन सफल है।

* त्वद्दीता अनुग्रवन्ते जनसत्त्वद्दीता ब्रह्मचर्यं परति।

त्वद्दीताः साधु चरन्ति धीरास्त्वद्दीताः कर्मनिहा भवन्ति॥

त्वद्दीता अनाशकमाचरन्ति प्रमत्तराश्चरन्ति यच्चरन्ति।

त्वद्दीता, सौम्यतामाचरन्ते त्वद्दीताः सौम्यार्थं भवन्ते॥

त्वद्दीताभ्यामगोदाननिष्ठास्त्वद्दीता ब्रह्मचर्यं चरन्ति॥ (१२५। २३-२४)

अग्नि, जल, सूर्य, पृथ्वी और नाना प्रकारके धार्मिकों तथा विशेषतः संत महात्माओंका उपयोग सदा दूसरोंके भलेके लिये ही होता है। क्योंकि ब्रह्म आदि देवता भी एक दिन मृत्युको प्राप्त होते हैं, देवेश्वरो! यह जानकर स्वार्थ-सिद्धिके लिये परिश्रम करना व्यर्थ है। विधातृने प्राणियोंके जन्मके सब ही उनके लिये जो विधान रख दिया है, वह कभी बदल नहीं सकता। अतः जीव व्यर्थ ही क्लेश उठाते हैं।* इसलिये हम जगत्के कल्याणके लिये ही कुछ याचना करते हैं। हमारी यह याचना सबके लिये गुणदायक है। आप दोनों इसका अनुमोदन करें। गङ्गाके दोनों तटोंपर जो हमारे आश्रम हैं, वे तीर्थरूपमें परिणत हो जायें। वहाँ कोई पत्नी या पुण्यात्मा जिस किसी तरह जो कुछ भी खान, दान, जप, होम और पितरोंका पूजन आदि करें, वह सब अक्षय पुण्य देनेवाला हो।

चमराज बोले—जो लोग गौतमीके उत्तर-तटपर यमस्तोत्रका पाठ करेंगे, उनके वंशमें सदा पीढ़ियोंतक किसीकी अकालमृत्यु नहीं होगी। वे पुरुष सदा सब प्रकारकी सम्पत्तियोंके प्राप्ति होंगे। जो जिज्ञात्मा पुरुष प्रतिदिन इस स्तोत्रका पाठ करेगा, वह अद्भुत ही जल्द व्याधियोंसे कभी पीड़ित न होगा। इस तीर्थमें तीन भास्करक ज्ञान

करनेसे सती स्त्रियों स्त्री गर्भवती होगी। वन्ध्या भी छः महीनेतक ज्ञान करनेसे गर्भवती होगी। गर्भिणी स्त्री एक सप्ताह ज्ञान करे तो वह वीर पुत्रकी जननी होगी और उसका पुत्र भी सौ वर्षकी आयुवाला, धनवान्, बुद्धिमान्, शूरवीर तथा पुत्र-पौत्रोंका विस्तार करनेवाला होगा। इस तीर्थमें पिण्ड आदि देनेसे पितरोंकी मुक्ति हो जायगी। कोई भी मनुष्य इसमें ज्ञान करनेसे मन, वाणी तथा शरीरजन्य पापसे मुक्त हो जायगा।

अग्निदेवने कहा—जो लोग नियमपूर्वक रहते हुए दक्षिण-तटपर भैरवस्तोत्रका पाठ करेंगे, उन्हें मैं अयु, अरोग्य, ऐश्वर्य, लक्ष्मी तथा रूप प्रदान करूँगा। जो कोई भक्त कहीं भी इस स्तोत्रका पाठ करेगा अथवा लिखकर भी इसे घरमें रख देगा, उसके तथा उसके घरको कभी भी अग्निसे भय न होगा। जो मनुष्य पवित्र होकर अग्नितीर्थमें ज्ञान और दान करेगा, उसे निश्चय ही अग्निहोम-यज्ञका फल मिलेगा।

तबसे वह तीर्थ याम्यतीर्थ, आग्नेयतीर्थ, कपेक्षतीर्थ, उलूकतीर्थ और हेतुलूकतीर्थके नामसे विद्वानोंमें प्रसिद्ध हुआ। वहाँ तीन हजार तीन सौ नब्बे तीर्थ हैं और उनमेंसे प्रत्येक तीर्थ मोक्ष देनेवाला है। उन तीर्थोंमें ज्ञान करनेसे मनुष्य पवित्र होते, पुत्र और धन पाते तथा अन्तमें स्वर्गलोकको जाते हैं।



तपस्तीर्थ, इन्द्रतीर्थ और वृषाकपि एवं अञ्जकतीर्थकी महिमा

ब्रह्माजी कहते हैं—तपस्तीर्थ बहुत बड़ा तीर्थ है। वह तपस्याकी वृद्धि करनेवाला, समस्त अभिलषित वस्तुओंका दाता, पवित्र तथा पितरोंकी

प्रसन्नताको बढ़ानेवाला है। उस तीर्थमें जो पापनाशक कटना घटी है, उसे बतलाता है, सुनो। ऋषियोंमें अग्नि और जलकी श्रेष्ठताको लेकर परस्पर संवाद

* आत्मार्थं वस्तु याचेत स खेचमे हि सुरेश्वरैः। जोकिं सफलं तस्य यः परार्थोद्यतः सदा॥
अग्निरापो रविः पृथ्वी घान्तरि निविशन्ति च। परार्थं कर्तनं तेषां सतां चापि विशेषतः॥
ब्रह्माद्योऽपि हि यत्ने मुच्यन्ते मृत्युना सह। एवं ज्ञात्वा तु देवेश्च वृथा स्वार्थपरिश्रमः॥
बन्धना सह मृत्युसां विहितं परमेहिना। कदाचित्कल्पेन तद्वै वृथा क्लिश्यन्ति जन्तवः॥

हुआ। एक पक्ष कहता था, जल श्रेष्ठ है और दूसरे पक्षके लोग अग्निकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन करते थे। अग्निकी श्रेष्ठता बतलानेवाले अपनी युक्तिवाँ इस प्रकार उपस्थित करते थे—“अग्निके बिना जीवन कहाँ रह सकता है, क्योंकि अग्नि ही जीवरूप है। आत्मा और हविष्य भी वही है। अग्निसे ही समस्त जगत्की उत्पत्ति होती है। अग्निने समस्त विश्वको धारण कर रखा है। अग्नि ही ज्योतिर्मय जगत् है। अतः अग्निसे बढ़कर दूसरा कोई भी अत्यन्त पावन देवता नहीं है। अग्निको ही अन्तज्योति तथा परमज्योति कहते हैं। अग्निके बिना कोई भी वस्तु नहीं है। यह त्रिलोकी अग्निका धाम है। इसलिये चौथों भूलोकमें अग्निसे श्रेष्ठ दूसरा कोई नहीं है। नारीकी योनिमें पुरुष को बीज स्थापित करता है और उसमें जो देह आदिके निर्माणकी शक्ति होती है, वह सब अग्निकी ही है। अग्नि देवताओंका मुख है; अतः उससे बड़ा कुछ भी नहीं है।”

दूसरे वेदवादी पुरुष जलको श्रेष्ठ मानते थे। उनका कहना था, ‘जलसे ही अन्नकी उत्पत्ति होती है तथा जलसे ही मनुष्य शूद्र होता है। जलने ही सबको धारण कर रखा है, अतः जलको माता माना गया है। पुराणवेत्ताओंका कथन है कि जल ही तीनों लोकोंका जीवन है। जलसे ही अमृत उत्पन्न हुआ है और जलसे ही ओषधियाँ होती हैं।’ इस प्रकार एक पक्ष अग्निको श्रेष्ठ कहता था और दूसरा पक्ष जलको। यों ही मीमांसा करते हुए एक-दूसरेके विरुद्ध तर्क उपस्थित करनेवाले वेदवादी ऋषि मेरे पास आकर बोले—“भगवन्। आप वीनों लोकोंके प्रभु हैं। बतलाइये, अग्नि श्रेष्ठ है या जल?” मैंने कहा—“दोनों ही इस जगत्में परम पूजनीय हैं। दोनोंसे जगत् उत्पन्न होता है। दोनोंसे इन्ध-कव्य

और अमृतका प्राक्तन्य होता है। दोनोंसे ही जीवन है। दोनों ही सूर्यको धारण करनेवाले हैं। इनमें परस्पर कोई विरोधता नहीं है। दोनों समानरूपसे ही श्रेष्ठ माने गये हैं।”

मेरे कथनसे यह बात सिद्ध हुई कि दोनों ही श्रेष्ठ हैं, कोई एक नहीं; परंतु वे ऋषि ऐसा ही मानते थे कि इन दोनोंमेंसे एक ही श्रेष्ठ है। अतः उन्हें मेरी बातोंसे संतोष नहीं हुआ। तब वे क्षीरसागरमें तपन करनेवाले शङ्ख-चक्र-गदाधारी भगवान् विष्णुके पास गये और ज्ञाना प्रकारके स्तोत्रोंसे उनकी स्तुति करने लगे।

ऋषि बोले—जो भविष्यमें होनेवाला है, जो जन्म ले चुका है तथा जो अभी गुहा (गर्भ) में प्रविष्ट हुआ है, उस सम्पूर्ण भुवनको जो सदा अपनी ज्ञानदृष्टिमें रखते हैं, यह चित्र-विचित्र रूपोंवाली समस्त त्रिलोकी अन्तमें जिनके भीतर लीन होती है, जिनमें महर्षिगण अक्षर, समातन, अन्नमेय तथा वेदवेद्य बहस्रते हैं, जिनकी तरणमें गये हुए प्राणी अपने अभीष्ट पदार्थको प्राप्त कर लेते हैं, उन परमार्थवस्तुरूप परमेश्वरकी हम शरण लेते हैं। जगन्निवास। महाभूतमय जगत्में जो भूत सबसे प्रधान और श्रीविष्णुका स्वरूप है, जिसे योगी भी नहीं ज्ञान पाते, उसीका प्रतिपादन करनेके लिये ये महर्षिगण यहाँ आये हुए हैं। आप यहाँ सत्यको प्रकट कर दें। जगदीश्वर। आप सम्पूर्ण देहधारियोंके अन्तरात्मा हैं। आप ही सब कुछ हैं। आपमें ही यह सम्पूर्ण जगत् स्थित है तथापि कितने आश्चर्यकी बात है कि प्रकृतिसे प्रभावित होनेके कारण कोई कहीं श्री आपकी सत्तका अनुभव नहीं करते। वास्तवमें आप बाहर और भीतर सब ओर विद्यमान हैं। सम्पूर्ण विश्वके रूपमें आप ही सब ओर उपलब्ध हो रहे हैं।

ऋषियोंके इस प्रकार स्तुति करनेपर आग्यजननी

देवी वाक् (आकाशवाणी) ने कहा—‘तुम्हें लोग तपस्या, भक्ति और नियमके साथ दोनोंकी आराधना करो। जिसकी आराधनासे पहले सिद्धि प्राप्त हो, वही भूत सबसे श्रेष्ठ कहा जायगा।’ ‘बहुत अच्छा’ कहकर सम्पूर्ण लोकमान्य महर्षि वहाँसे चल दिये। वे थक गये थे। उनका अन्तःकरण स्थिर हो रहा था। उन्होंने उत्तम वैराग्यका अश्रय लिया और तपस्या करनेका दृढ़ संकल्प लेकर वे सब लोग त्रिभुवनको पवित्र करनेवाली जगज्जननी गौतमीके तटपर आये और जलदेवता तथा अग्निदेवताकी पृथक् पृथक् पूजा करनेको उद्यत हुए। जो अग्निके पूजक थे, वे जलके पूजनमें प्रवृत्त हुए। उस समय वहाँ वेदमता देवी वाणी सरस्वतीने फिर कहा—‘जलसे ही शुद्धि होती है। जो अग्निके पूजक हैं, वे विचार तो करें—जिना जलका पूजन कैसा। जल होनेपर ही मनुष्य सब कर्मोंके अनुष्ठानका अधिकारी होता है। वेदवेत्ता पुरुष जबतक सीतल जलमें कट्ठापूर्वक स्नान नहीं कर लेता, तबतक अपवित्र, मलिन एवं शुभ कर्मका अनधिकारी रहता है। इसलिये जल सबसे श्रेष्ठ है। उसे माताकी पदवी दी गयी है। अतः जल ही श्रेष्ठ है।’

वेदवादी ऋषियोंने यह आकाशवाणी सुनी। इससे उन्हें निश्चय हो गया कि जल ही श्रेष्ठ है। जिस तीर्थमें यह ऋषिसत्र सम्पन्न हुआ, उसे तपस्तीर्थ और सत्रतीर्थ भी कहते हैं। अग्नितीर्थ और सरस्वतीतीर्थ भी उसीके नाम हैं। वहाँ चौदह सौ पुण्यदायक तीर्थोंका निवास है। उनमें किया हुआ स्नान और दान स्वर्ग एवं मोक्षकी प्राप्ति करानेवाला है। जहाँ आकाशवाणीने ऋषियोंका संदेह निवारण किया था, वहाँ सरस्वती नामकी नदी प्रकट हुई, जो गङ्गामें मिली है। सरस्वती और गङ्गाके संगमका माहात्म्य बतलानेमें कौन

मनुष्य समर्थ हो सकता है।

गौतमी तटपर इन्द्रतीर्थके नामसे जो प्रसिद्ध तीर्थ है, वही वृषाकपितीर्थ भी है। उसे ही फेना-संगम, हनुमतीर्थ तथा अम्बकतीर्थ भी कहते हैं। वहाँ भगवान् त्रिविक्रमका निवास है। उस तीर्थमें स्नान और दान करनेसे संसारमें लौटना नहीं पड़ता। अब वहाँका वृत्तान्त बतलाते हैं। गङ्गाके दक्षिण और उत्तर-तटपर इन्द्रेश्वरीतीर्थ है। पूर्वकालमें नमुचि नामक दैत्य देवराज इन्द्रका प्रबल शत्रु था। वह मदसे उन्मत्त रहता था एक बार इन्द्रके साथ उसका युद्ध हुआ इन्द्रने फेनसे उसका मस्तक काट डाला। वह चक्ररूपधारी फेन शत्रुका मस्तक काटनेके पश्चात् गङ्गाके दक्षिण-तटपर गिरा और पृथ्वीको छेदकर रसातलमें समा गया। रसातलमें जो गङ्गाजीका जल है, वह सम्पूर्ण विश्वको पवित्र करनेवाला है। बजने पृथ्वीको छेदकर जो भ्रग बना दिया था, उसी मार्गसे वह पातालगङ्गाका जल पृथ्वीके ऊपर निकल आया उसीको फेना नदी कहते हैं। गङ्गाजीके साथ जो उसका पवित्र संगम हुआ है, वह सम्पूर्ण विश्वमें विख्यात है। गङ्गा-यमुनाके संगमकी भीति बह भी समस्त पापोंका नाश करनेवाला है। वहाँ स्नान करनेवालेसे हनुमान्जीकी उपमाता, जिनका मुख बिलावका सब हो गया था, उस संकटसे मुक्त हुई थी। उस तीर्थको मार्जारतीर्थ और हनुमतीर्थ भी कहते हैं। उसका उपाख्यान पहले कहा जा चुका है। अब वृषाकपि और अम्बकतीर्थकी कथा सुनो। हिरण्य नामसे विख्यात एक दैत्यका पूर्वज था, वह तपस्या करके सम्पूर्ण देवताओंसे अजेय हो गया था। हिरण्य बड़ा भयंकर दैत्य था उसका नलवान् पुत्र महाशनिके नामसे विख्यात था। वह भी देवताओंके लिये सदा दुर्जय था उसकी स्त्रीका नाम पराजिता था। एक बार

महापराक्रमी महाशनिने युद्धके मुहानेपर ऐतच्छील इन्द्रको परास्त किया और उन्हें ले जाकर अपने पिताको सौंप दिया। इन्द्रपर विजय पानेके बाद महाशनिने वरुणको जीतनेके लिये उनपर अतक्रमण किया; किंतु वरुण बड़े बुद्धिमान् थे, उन्होंने महाशनिको अपनी कन्या ब्याह दी। इधर तीनों लोक बिना इन्द्रके हो गये। तब सब देवताओंने मिलकर सलाह की कि 'भगवान् विष्णु ही पुनः इन्द्रको दे सकते हैं; क्योंकि वे ही दैत्योंके हन्ता हैं, भन्वद्रहा भी वे ही हैं। अतः वे हमरेको भी इन्द्र बना देंगे।'

ऐसा निश्चय करके सब देवता भगवान् विष्णुके पास गये और उन्हें सब हाल कह सुनाया। भगवान् विष्णुने कहा—'महादैत्य महाशनि मेरे लिये अवध्य है।' यों कहकर वे महाशनिके चतुर बहणके पास गये और उन्हें इन्द्रके पराभवका समाचार बतलाते हुए बोले—'तुम्हें ऐसा काम करना चाहिये, जिससे इन्द्र पुनः अपने पदपर लौट आयें।' भगवान् विष्णुके आदेशसे करुण शीघ्र ही वहाँ गये। दैत्यने विनयपूर्वक अपने शशुरसे वहाँ पधारनेका कारण पूछा। वरुणने कहा—'महाबाहो! कुछ दिन पहले तुमने इन्द्रको परास्त करके रक्ततलमें बंदी बना लिया है। वे देवताओंके राजा हैं। उन्हें लौटा दो। यदि सत्रुको बाँधकर फिर छोड़ दिया जाय तो वह सत्पुरुषोंके लिये महान् कारण होता है।' 'बहुत अच्छा' कहकर दैत्यराज महाशनिने ऐरावतसहित इन्द्रको लौटा दिया और उनसे यह बात कही—'इन्द्र! आजसे तुम शिष्य हुए और मेरे स्वसुर वरुणजी तुम्हारे गुरु हुए; क्योंकि इन्होंने तुम्हें मुक्ति दिलायी है। अब तुम वरुणके प्रति स्वामिभाव

रखकर स्वयं भृत्यका-सा बर्ताव करना, नहीं तो फिर तुम्हें बाँधकर रक्ततलके कारणहमें डाल दूँगा।'

इस प्रकार इन्द्रको फटकारकर उसने बारंबार हैसते हुए कहा—'जाओ, जाओ; वरुणजीके सदा आदर करना।' इन्द्र अपने घर आये। वे अवमानपूर्ण लज्जासे कासे पड़ गये थे। उन्होंने सन्तुष्टता तिरस्कृत होनेकी सारी बातें इन्द्राणीको कह सुनायी और पूछा—'सुमुखि! सत्रुने मुझसे इस तरह कठोर बातें कहीं और मेरे साथ ऐसा अनुचित बर्ताव किया। इससे मेरे हृदयमें आग लग रही है। तुम्हीं बताओ— कैसे अपने हृदयको शीतल करें?''

इन्द्राणीने कहा—बलभूषण! मैं दानवीकी उत्पत्ति, पराजय, माया, बरदान तथा मृत्यु—सब जानती हूँ। महाशनिको तपस्यासे ही यह शक्ति प्राप्त हुई है। तपस्यासे कुछ भी असाध्य नहीं है। ब्रह्म-कर्मसे कोई बात असम्भव नहीं है। जगन्नाथ भगवान् विष्णु तथा विश्वनाथ शिवकी धर्मसे कोई भी कार्य ऐसा नहीं है, जो सिद्ध न हो सके।* प्राणनाथ! मैंने और भी एक बहुत सुन्दर बात सुन रखी है। कारण कि स्त्रियाँ ही स्त्रियोंके स्वभावको जानती हैं। प्रथो। भूमि तथा जलकी अधिप्राप्ति देवियोंके द्वारा कोई भी कार्य असाध्य नहीं है। तपस्या अथवा यज्ञ आदि उन्हीं दोनोंके सहयोगसे होते हैं। उसमें भी जो तीर्थभूमि हो, वहीं आप चलीं उस स्थानपर भगवान् विष्णु तथा शिवकी पूजा करके सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुएँ प्राप्त कर लेंगे। मैंने यह भी सुना है कि जो स्त्रियाँ पतिव्रता हैं, वे ही सब कुछ जानती हैं। उन्होंने ही चराचर जगत्को धारण

कर रखा है।* पृथ्वीपर सबसे सारभूत स्थान है दण्डकवन। वहाँ जगज्जननी गङ्गा बहती है। वहाँ चलकर आप दीन-दुःखियोंकी पीड़ा दूर करनेवाले जगदीश्वर श्रीविष्णु अथवा शिवकी आराधना करें। दुःखके समुद्रमें डूबनेवाले अनाथ मनुष्योंको श्रीशिव तथा श्रीविष्णु अथवा गङ्गाके सिवा दूसरा कोई कहीं भी शरण देनेवाला नहीं है। अतः एकाग्रचित्त होकर पूर्ण प्रयत्न करके आप इनको संतुष्ट करें। मेरे साथ रहकर भक्ति, स्तोत्र तथा तपस्याके द्वारा इनकी आराधना करें। तपश्चात् भगवान् शिव और विष्णुके प्रसादसे आप कल्याणके भण्डो होंगे बिना जाने किया हुआ कर्म कर्मनिष्ठ पुरुषको एकगुना फल देता है। इसके विधि-विधान और तत्त्वको अच्छी प्रकार जानकर करनेसे सौ-गुना फल मिलता है और पत्नीके साथ इसका अनुष्ठान करनेसे बड़ी कर्म अमल फल देनेवाला होता है।† रहस्य पुरुषके सब कार्योंमें यहाँ फल ही सहायता करनेवाली है। उसके सहयोग बिना छोटे-से छोटे कार्य भी सिद्ध नहीं होते। नवः पुरुष अकेले जो कर्म करता है, उसका अर्धा फल ही उसे मिलता है। किंतु पत्नीके साथ जो कर्म किया जाता है, उसका पूरा फल पुरुषको प्राप्त होता है। सुना जाता है— दण्डकारण्यमें सरिताओंमें श्रेष्ठ गीतमयी गङ्गा बहती है। वे सम्पन्न पार्थीका माश करनेवाली तथा सम्पूर्ण अभिलषित वस्तुओंको देनेवाली हैं। अतः मेरे साथ वहाँ चलिए और महान् फलदायक पुण्यकर्मका अनुष्ठान कीजिये। इससे आप संग्राममें अपने शत्रुओंका संहार करके महान् सुखके भण्डो होंगे।

‘अच्छा, ऐसा हो करूँगा’ यों कहकर अपने गुरु बृहस्पति और पत्नी शचीको साथ ले इन्द्र जगज्जननी गौतमीके तटपर गये। दण्डकारण्यके भीतर उनकी पावन धाराका दर्शन करके इन्द्रको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने देवाधिदेव शिवकी प्रसन्नताके लिये तपस्या करनेका विचार किया। पहले गङ्गामें स्नान करके उन्होंने हाथ जोड़कर प्रणम किया तथा एकमात्र भगवान् शिवके शरण होकर उनका स्तवन आरम्भ किया।

इन्द्र बोले—जो अपनी मायासे सम्पूर्ण चराचर जगत्की सृष्टि, रक्षा और संहार करते हैं, किंतु उसमें अंतरात्मा नहीं होते, वे एक, स्वतन्त्र तथा अद्वैत विद्वानन्दस्वरूप हैं, वे पिताकधारी भगवान् शंकर हमपर प्रसन्न हों। वेदान्तके रहस्योंको भलीभाँति जाननेवाले सनकादि मुनि भी जिनके तत्त्वको ठीक-ठीक नहीं जानते, वे सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंके दत्ता अन्धकासुरविनाशक पार्वतीपति भगवान् शिव हमपर प्रसन्न हों जब पाप, दरिद्रता, लोभ, मायना, मोह और विपत्ति आदि अनन्त सांसारिक दुःख प्रकट हुए, उनका प्रभाव फैलने लगा और उनसे सम्पूर्ण जगत् व्याप्त हो गया, तब यह सब अवस्था देखकर देवेश्वर महादेवजी बड़े चकित हुए और देवी पार्वतीसे बोले—‘लोकेश्वरि! यह सम्पूर्ण जगत् नष्ट होना चाहता है। तুম इसकी रक्षा करो। लोकमाता उम्हा! तুম सबको शरण देनेवाली, उतम ऐश्वर्यसे युक्त, परम कल्याणमयी तथा सम्पूर्ण जगत्की प्रतिष्ठा हो। अरदायिनि। तुम्हारी जय हो। तুম भोग, सम्पत्ति, परम मुक्ति, स्वाहा, स्वधा, स्वास्ति,

* श्रुतमस्ति पुनश्चेदं स्थित्यो याऽऽ पतिव्रताः। ता एव सर्वं जानन्ति धृतं तन्निश्चयवत्म् ॥

† अज्ञातैकगुणं कर्म फलं वास्यति कर्मिणः। ज्ञात्वा स्वगुणं कृत्यन्द् धर्मया च तदक्षयम् ॥

अनादि सिद्धि, वाणी, बुद्धि तथा अजर-अमर हो। मेरी आज्ञाके अनुसार तीनों लोकोंमें विद्या आदि रूपसे तुम रक्षा करती हो। तुमने ही प्रकृतिरूपसे इस विश्व त्रिलोकीकी सृष्टि की है।' शंकरजीके धों कहनेपर उनकी प्राणवज्रभा भगवती उमा उबका आलिंगन करके प्रेमालाप करने लगीं और धककर भगवान्‌के आगे शरीरमें लग गयीं तथा अपने हाथकी अंगुलियोंसे पसीनेका जल पोंछकर फेंका। उस जलसे पहले धर्मका प्रादुर्भाव हुआ। उसके बाद लक्ष्मी प्रकट हुई। फिर दान, उत्तम बृद्धि, सत्व, सरोवर, धान्य, पुष्प, फल, तस्त्र, शस्त्र, गृहोपयोगी अस्त्र, तीर्थ, वन तथा चराचर जगत्‌का आविर्भाव हुआ। देवि! यह सब पापरहित सृष्टि थी। भगवती उमा! तुम्हारे प्रभावसे संसारमें प्रचुर सुखकी वृद्धि हुई। सदा सख और भङ्गलमय कृत्य जोषा पाने लगे। तगदम्ब! तुम सम्पूर्ण जगत्‌की स्वामिनी हो और हम भयसे डरे हुए हैं। अतः तुम हमारी रक्षा करो। कोई ठक करत-करत मोहित हो जाते हैं और कोई उसीमें सोन रहते हैं। परन्तु हम तो शिव और शक्तिके सुन्दर अद्वैत रूपको सर्वदा नमस्कार करते हैं।

इस प्रकार स्तुति करनेवाले इन्द्रके समक्ष भगवान्‌ शंकर प्रकट हुए और बोले—'देवराज! तुम क्या चाहते हो? अपना अभीष्ट मनोरथ कहो।' इन्द्रने कहा—'भगवन्‌! मेरा बलवान्‌ शत्रु महाशनि, जो देखनेमें वज्रके समान भयंकर है, मुझे बाँधकर रसतल से गया था। वहाँ उसने अनेक बार मेरी तिरस्कार किया और खचनरूपी शार्णोंसे बाँधता रहा। मेरा यह प्रयत्न उसीका बध करनेके लिये है। आप मुझे वह शक्ति प्रदान कीजिये, जिससे शत्रुका नाश कर सकूँ। जिसने

मेरा अपमान किया है, उसका नाश करनेपर ही मैं अपना नया जन्म मानूँगा। विजय और लक्ष्मीकी अपेक्षा कीर्ति ही श्रेष्ठ है।' यह सुनकर शिवने इन्द्रसे कहा—'अकेले मेरे द्वारा तुम्हारे शत्रुका बध नहीं हो सकता। अतः तुम अविनाश भगवान्‌ जनार्दनकी भी आराधना करो। शची भी ऐसा ही करें। भगवान्‌ नारायण तीनों लोकोंके एकमात्र आश्रय हैं। उनकी अनन्य श्रितसे उपसन्न करो।'।

भगवान्‌ शिवकी आज्ञासे इन्द्र गङ्गाजीके दक्षिण-तटपर मुनीश्वर आपस्तम्बके पास गये और उनको साथ लेकर कैना तथा गङ्गाके पवित्र संगमपर भीति-भीतिके वैदिक यन्त्रों एवं तपस्विके द्वारा भगवान्‌ जनार्दनकी स्तुति करने लगे। उनकी स्तुतिसे भगवान्‌ विष्णुकी बड़ी प्रसन्नता हुई और वे प्रापक्ष प्रकट होकर बोले—'इन्द्र! तुम्हें क्या वरदान दूँ?' वे बोले—'मुझे एक ऐसा वीर दीजिये जो मेरे शत्रुका बध कर सके।' भगवान्‌ने कहा—'दे दिया।' फिर तो शिव, गङ्गा तथा विष्णुके प्रसादसे उसके भीतरसे एक पुरुष प्रकट हुआ। उसने भगवान्‌ शिव और विष्णु दोनोंके स्वरूप धारण किये थे। उसके हाथमें चक्र भी था और त्रिशूल भी। उसने रसतलमें जाकर इन्द्रशत्रु महाशनिको बध किया। उसका नाम अकाल और वृषाकपि हुआ। वह इन्द्रका सखा बन गया। इन्द्र स्वर्गमें रहते हुए भी प्रतिदिन वृषाकपिके पास आते थे उन्हें अन्यत्र आसक्त देख शचीके हृदयमें प्रणयकोपका उदय हुआ।

तब इन्द्रने ईसकर उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा—'प्रिये! मैं अपने शरीरको लपट खाकर कइया हूँ—मित्रकर वृषाकपिके सिद्धा और किसीके घर नहीं जाता। अतः तुम्हें मुझपर संदेह नहीं

करना चाहिये। तुम पतिव्रता और मेरी प्रियतमा हो। धर्म करने तथा उचित सलाह देनेमें मेरी सदा सहायता करती हो। साथ ही संतानवती और कुलीन भी हो। फिर तुम्हारे सिवा दूसरी कौन स्त्री मेरी प्रियतमा हो सकती है। तुम्हारे ही उपदेशसे मैं महानदी गौतमी गङ्गाके तटपर पधा और वहाँ भगवान् विष्णु, शिव तथा मित्र वृषाकपिके प्रसादसे दुःखसागरके पार हुआ और अब यहाँ राक्षसे च्युत न होनेवाला इन्द्र हूँ। यह सब तुम्हारे सहयोगका फल है। जहाँ स्वामीके चित्तका अनुसरण करनेवाली पतिव्रता स्त्री हो, वहाँ कौन-सा कार्य असाध्य है। वहाँ तो मोक्ष भी दुर्लभ नहीं है। फिर अर्थ, काम आदिकी तो बात ही क्या है। पत्नी भी परम मित्र है। वह लोक और परलोक दोनोंमें हितकारिणी होती है। पत्नी भी यदि कुलीन, प्रिय बोलनेवाली, पतिव्रता, रूपवती, गुणवती तथा सम्पत्ति और विपत्तिमें समान रूपसे साथ देनेवाली हो तो उसके द्वारा इस त्रिलोकीमें कुछ भी असाध्य नहीं है। प्रिये तुम्हारी बुद्धिसे ही मुझे यह मङ्गलमय अवसर प्राप्त हुआ है। अब तो तुम जो कहो वही मुझे करना है, और कुछ नहीं। परलोक और धर्मके लिये उत्तम पुत्रके समान कोई सहायक नहीं है। संकटमें पड़े हुए पुरुषके लिये स्त्रीके समान दूसरी कोई ओषधि नहीं है। निःश्रेयस-पदकी प्राप्ति तथा पापसे मुक्ति करानेके लिये गङ्गाके समान कोई नदी नहीं है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी सिद्धि तथा पापसे छुटकारा पानेके लिये श्रीशिव और श्रीविष्णुके एकत्व-ज्ञानसे बढ़कर दूसरा कोई साधन नहीं है। पतिव्रते। तुम्हारी बुद्धिसे तथा श्रीशिव, श्रीविष्णु और गङ्गाके प्रसादसे मुझे यह सब

अर्थात् वस्तु प्राप्त हुई है। मैं सभलता हूँ मेरे मित्रके बलसे अब यह इन्द्रपद स्थिर रहेगा। तीर्थोंमें गौतमी गङ्गा और देवताओंमें भगवान् विष्णु और शिव श्रेष्ठ हैं। इन्हींकी कृपासे मुझे सब मनोवाञ्छित वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं। यह त्रिलोकविस्तृत तीर्थ मेरी प्रसन्नताको बढ़ानेवाला है। अतः मैं क्रमशः सम्पूर्ण देवताओंसे यह प्रार्थना करता हूँ, महर्षिगण, गङ्गा, विष्णु तथा शिव भी मेरी प्रार्थनाका अनुमोदन करें। देवताओ। गङ्गाके दोनों तटोंपर एक ओर इन्द्रेश्वरतीर्थ है और दूसरी ओर अक्षयतीर्थ। इन्द्रेश्वरमें भगवान् शिव रहते हैं और अक्षयमें साक्षात् भगवान् विष्णु। वे अपनी उपस्थितिसे दण्डकवनको पवित्र करते हैं। इनके बीचमें जो-जो तीर्थ हैं, वे सब पुण्यदायक हैं। उनमें स्नान करनेमात्रसे सबकी मुक्ति होती है। पापी पापसे मुक्त होते हैं और भर्मात्मा पुरुष अपनी पाँच-पाँच पीढ़ीके पितरोंसहित परममोक्षके भागी होते हैं। यहाँ अन्तर जो स्नेह याचकोंको तिलभर भी दान करते हैं, वह दान दाताओंके लिये अक्षय होता है तथा मनोवाञ्छित भोग और मोक्ष प्रदान करता है। यहाँ भगवान् श्रीविष्णु और शिवके दण्डवत् स्नान करनेसे मुक्ति प्राप्त होती है। यह दण्डवत् स्नान धन, यश, आयु, अश्वमेध और पुण्यकी वृद्धि करनेवाला है। जो स्नेह इस तीर्थके माहात्म्यको सुनते और पढ़ते हैं, वे पुण्यके भागी होते हैं। उन्हें यहीं—इसी जीवनमें भगवान् विष्णु और शिवकी स्मृति प्राप्त होती है, जो समस्त पापराशिका संहार करनेवाली है तथा जिसके लिये जितेन्द्रिय एवं मनोजयी मुनि भी प्रार्थना करते रहते हैं।

इन्द्रके इस कथनका अनुमोदन करते हुए देवताओं और ऋषियोंने कहा, 'ऐसा ही होगा।'

आपस्तम्बतीर्थ, शुक्लतीर्थ और श्रीविष्णुतीर्थकी महिमा

ब्रह्माजी कहते हैं—आपस्तम्बतीर्थ तीनों लोकोंमें विख्यात है। वह स्मरण करनेवालेसे समस्त पापराशिका विध्वंस करनेमें समर्थ है। आपस्तम्ब एक मुनि थे। वे परम बुद्धिमान् और महापरायणी थे। उनकी पत्नीका नाम अक्षमूत्रा था, वह पातिव्रत-धर्मका पालन करनेवाली थी। मुनिके एक पुत्र थे, जो 'कर्की' नामसे विख्यात थे। वे बड़े विद्वान् और तत्त्ववेत्ता थे। एक दिन उनके आश्रमपर मुनिग्रेह अगस्त्यजी आये। शिष्योंसहित मुनीश्वर आपस्तम्बने अगस्त्यजीका पूजन किया और इस प्रकार पूछा—'मुनिवर! तीनों देवताओंमें कौन पूज्य है? अन्नदि और अन्नता कौन है तथा वेदोंमें किसका यशोगान किया गया है? महामुने यही मेरा संशय है, इसे दूर करनेके लिये आप कुछ उपदेश करें।'।

अगस्त्यजी बोले—धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी सिद्धिमें शब्द प्रमाण बतलाया जाता है। उसमें भी वैदिक शब्द सबसे श्रेष्ठ प्रमाण है। वेदके द्वारा जिनका यशोगान होता है, वे परात्पर पुरुष परमात्मा हैं। जो मृत्युके अधीन होता है, उसे अपर (क्षर पुरुष) ज्ञानन् चाहिये और जो अमृत है, उसे पर (अक्षर पुरुष) कहते हैं। अमृतके भी दो स्वरूप हैं—मूर्त और अमूर्त। जो अमूर्त (निराकार) है, उसे परब्रह्म जानना चाहिये और मूर्तको अपर ब्रह्म कहते हैं। गुणोंकी व्यापकताके अनुसार मूर्तके भी तीन भेद हैं—ब्रह्म, विष्णु और शिव। वे एक होते हुए भी तीन कहलाते हैं। इन तीनों देवताओंका भी वेद्यतत्त्व

एक ही है। उसे ही परब्रह्म कहते हैं। गुण और कर्मके भेदसे एककी ही अनेक रूपोंसे अभिव्यक्ति होती है। लोकोंका उपकार करनेके लिये एक ही ब्रह्मके तीन रूप हो जाते हैं। जो इस परमवस्तुको ज्ञानन् है, बड़ा विद्वान् है, दूसरा नहीं। जो इन तीनोंमें भेद बतलाता है, उसे लिङ्गभेदी कहते हैं। उसके लिये कोई प्रायश्चित्त नहीं है।* तीनों देवताओंके रूप एक-दूसरेसे भिन्न और पृथक्-पृथक् हैं सम्पूर्ण साक्षर रूपोंमें पृथक्-पृथक् वेद प्रमाण हैं। जो निराकार तत्त्व है, वह एक है। वह इन तीनोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट माना गया है।

आपस्तम्ब बोले—इससे मैं किसी निर्णयपर नहीं पहुँच सका। इसमें जो रहस्यकी बात हो, उसे विचारकर बतलाइये।

अगस्त्यजीने कहा—यद्यपि इन देवताओंमें परस्पर कोई भेद नहीं है तथापि सुखस्वरूप शिवसे ही सम्पूर्ण सिद्धिर्वा प्राप्त होती है। मुने! पराभक्तिके साथ भगवान् शिवकी ही आराधना करो। दण्डकारण्यमें गीतगीके तटपर भगवान् शिव समस्त आपराधिका निवारण करते हैं।

यहर्षि अगस्त्यकी यह बात सुनकर आपस्तम्ब मुनिके बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने गङ्गामें जाकर स्नान किया और व्रतपत्तनका नियम सेकर भगवान् संकरका स्तवन करना आरम्भ किया।

आपस्तम्ब बोले—जो काष्ठोंमें अग्नि, फूलोंमें सुगन्ध, बीजोंमें वृक्ष आदि, पत्थरोंमें सुवर्ण तथा सम्पूर्ण भूतोंमें आत्मारूपसे छिपे रहते हैं, उन भगवान् सोमनाथकी मैं शरण लेता हूँ। जिन्होंने

* लोकान्मनुष्यकारार्थमाकृतिक्रियं ऋक्षैः प्रसृत्य वेति परमं स च विद्वान् वेत्तारः । तत्र ये भेदमाच्छेदं लिङ्गभेदो स उच्यते । प्रायश्चित्तं न क्षयस्ति यस्मैवा व्याहरेद् भिदाय ॥

खेल-खेलमें ही इस विश्वकी रचना की, जो तीनों लोकोंके भरण-पोषण करनेवाले तथा उसके रक्षित हैं, सम्पूर्ण विश्व जिनका स्वरूप है और जो सत्-असत्से परे है, उन भगवान् सोमनाथकी मैं शरण लेता हूँ। जिनका स्मरण करनेसे देहवासी जीवको दरिद्रताके भटान् अधिशास और रोग आदि स्पर्श नहीं करते तथा जिनकी शरणमें गये हुए मनुष्य अपनी अभीष्ट वस्तुको प्राप्त कर लेते हैं, उन भगवान् सोमनाथकी मैं शरण लेता हूँ। जिन्होंने पहले तीनों जेदोंमें वर्णित धर्मका सम्यक्करण करके उसमें ब्रह्मा आदि देवताओंको निपुण किया और इस प्रकार जिन्होंने दो स्तरी भरण किये, उन भगवान् सोमनाथकी मैं शरण लेता हूँ। नमस्कार, मन्त्रोच्चारणपूर्वक इतना किया हुआ हविष्य तथा अर्घ्यपूर्वक किया हुआ पूजन—ये सब जिनको प्राप्त होते हैं तथा सम्पूर्ण देवता जिनकी दी हुई हविको ग्रहण करते हैं, उन भगवान् सोमनाथकी मैं शरण लेता हूँ। जिनसे बढ़कर दूसरी कोई उत्तम वस्तु नहीं है, जिनसे बढ़कर अत्यन्त सूक्ष्म भी कोई नहीं है तथा जिनसे बढ़कर महान्-से-महान् वस्तु भी दूसरी नहीं है, उन भगवान् सोमनाथकी मैं शरण लेता हूँ। जिनकी आज्ञासे यह विश्व, अभिनव, नया प्रकारका और महान् विश्व एक ही कार्यमें संलग्न हो निरन्तर परिचालित रहता है, उन भगवान् सोमनाथकी मैं शरण लेता हूँ। जिनमें ऐश्वर्य, समस्त आधिपत्य, कर्तृत्व, दत्तृत्व, महत्त्व, प्रीति, यश और सौख्य—ये अनादि धर्म हैं, उन भगवान् सोमनाथकी मैं शरण लेता हूँ। जो सदा गरण लेने योग्य, सबके पूजनयोग्य, शरणागतके प्रिय, निरर्थकल्याणमय तथा सर्वस्वरूप हैं, उन भगवान् सोमनाथकी मैं शरण लेता हूँ।

इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवान् संकरने

ब्रह्म होकर कहा—‘मुने! कोई घर बाँटो।’ आपस्तम्बने कहा—‘मेरा और दूसरोंका कल्याण हो। जो मनुष्य यहाँ जान करके सम्पूर्ण जगत्के स्वामी आपका दर्शन करें, वे अपनी समस्त अभीष्ट वस्तुओंको प्राप्त करें।’ भगवान् शिव ‘एवमस्तु’ कहकर इसका अनुमोदन किया। तबसे वह तीर्थ आपस्तम्बके नामसे प्रसिद्ध हुआ। यह अनादि अविद्यामय अन्धकारराशिका दन्मूलन करनेमें समर्थ है।

सुखस्तीर्थ मनुष्योंको सब प्रकारकी सिद्धि प्रदान करनेवाला है। इसके स्मरणमात्रसे सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंकी प्राप्ति होती है। भट्टराज नामसे विख्यात एक बड़े भर्मात्मा मुनि थे। उनकी पत्नीका नाम पैतृनक्षी था। वह प्रतिव्रत-धर्मका पालन करती हुई पतिके साथ गीताम्बीके तटपर निवास करती थी। एक बार मुनिने अग्नि और सोम देवताओंके लिये तथा इन्द्र और अग्नि देवताओंके लिये पुरोडास (खीर) बनाया। पुरोडास जब पक रहा था, तब धूपसे एक पुरुष प्रकट



हुआ, जो तीनों लोकोंको भयभीत करनेवाला था। उसने पुरोडास खा लिया। यह देखकर मुनिने क्रोधपूर्वक पूछा—‘तू कौन है, जो मेरा यज्ञ नष्ट कर रहा है?’ ऋषिकी बात सुनकर राक्षसने उत्तर दिया—‘मेरा नाम हव्यघ्न (यज्ञघ्न) है। मैं संध्यका पुत्र हूँ। प्राचीनबर्हिष्का ज्येष्ठ पुत्र मैं ही हूँ। ब्रह्माजीने मुझे वरदान दिया है कि तुम सुखपूर्वक यज्ञोंका भक्षण करो। मेरा छोटा भाई कलि भी बलवान् और अत्यन्त भोषण है। मैं काला, मेरे पिता काले, मेरी माँ काली तथा मेरा छोटा भाई भी काला ही है। मैं कृतान्त बनकर यज्ञका नाश और यूपका छेदन करूँगा।’

भरद्वाजने कहा—तुम मेरे यज्ञकी रक्षा करो, क्योंकि यह प्रिय एवं सनातन धर्म है। मैं जानता हूँ तुम यज्ञका नाश करनेवाले हो तो भी मेरा अनुरोध है कि तुम ब्राह्मणोंसहित मेरे यज्ञकी रक्षा करो।

ब्रह्मसने कहा—भरद्वाज। तुम संक्षेपसे मेरी बात सुनो। पूर्वकालमें देवताओं और दानवोंके समीप ब्रह्माजीने मुझे शाप दिया। उस समय मैंने लोकपितामह ब्रह्माजीको प्रार्थना करके प्रसन्न किया। तब उन्होंने कहा—‘जब ब्रह्म मुनि तुम्हारे ऊपर अमृतका छीटा दें, तब तुम स्वपसे मुक्त हो जाओगे। इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है।’ ब्रह्मन्! जब आप ऐसा करेंगे, तब आपकी जो-जो इच्छा होगी, वह सब पूर्ण होगी। यह बात कभी मिथ्या नहीं हो सकती।

भरद्वाजने फिर कहा—महामते! तुम मेरे सखा हो। अतः जिस उपायसे यज्ञकी रक्षा हो, वह बताओ मैं उसे अवश्य करूँगा। देवताओं और दैत्योंने एकत्रित होकर कभी शीरसमुद्रका मन्थन किया था। उस समय बड़े कष्टसे उन्हें अमृत मिला। वही अमृत मुझे कैसे सुलभ हो

सकता है। यदि तुम प्रेमवश प्रसन्न हो तो जो सुलभ वस्तु हो, वही माँगो। ऋषिकी यह बात सुनकर राक्षसने प्रसन्नतापूर्वक कहा—‘गौतमी गङ्गाका जल अमृत है। सुवर्ण अमृत कहलाता है। गायका घी भी अमृत है और सोमको भी अमृत ही माना जाता है। इन सबके द्वारा मेरा अभिषेक करो। अथवा गङ्गाका जल, घी और सुवर्ण—इन तीनों वस्तुओंसे ही अभिषेक करो। सबसे उत्कृष्ट एवं दिव्य अमृत है—गौतमी गङ्गाका जल।’

यह सुनकर भरद्वाज मुनिको बड़ा संतोष हुआ। उन्होंने बड़े आदरके साथ गङ्गाका अमृतमय जल हाथमें लिया और उससे राक्षसका अभिषेक किया। इससे वह महाबली राक्षस शुक्ल वर्णका होकर प्रकट हुआ। जो पहले काला था वह क्षणभरमें गेरा हो गया। प्रतापी भरद्वाजने सम्पूर्ण



यज्ञ समाप्त करके ऋत्विजोंको विदा किया। इसके बाद राक्षसने पुनः भरद्वाजसे कहा—‘मुने, अब मैं जाऊँ हूँ। तुमने मुझे गौर वर्णका कर दिया। तुम्हारे इस तीर्थमें जो लोग स्नान, दान और पूजन आदि

करें, उन सबके अभीष्ट फलोंकी सिद्धि हो। इसके स्मरणभात्रसे सब पाप नष्ट हो जायें।' तबसे वह शुक्लतीर्थके नामसे विख्यात हुआ। दण्डकरण्यमें गौतमी गङ्गाके तटपर यह तीर्थ स्वर्णका खुलता हुआ दरवाजा है। वहाँ गङ्गाजीके दोनों तटोंपर सात हजार तीर्थ हैं, जो सब प्रकारकी सिद्धि प्रदान करनेवाले हैं।

श्रीविष्णुतीर्थके नामसे जो विख्यात तीर्थ है, उसका वृत्तान्त सुनो। मुद्गलके पुत्र मीदगल्य एक प्रसिद्ध महर्षि थे। उनकी पत्नीका नाम जम्बल्य था। वह उत्तम पुत्रोंकी जननी थी। मीदगल्यके पिता मुद्गल ऋषि भी सम्पूर्ण विश्वमें विख्यात थे। उनकी एक भगोरधीके नामसे प्रसिद्ध थी। मीदगल्य ऋषि प्रातःकाल ही गङ्गा-स्नान करते थे। यह उनका नित्यका कार्य था। गङ्गाके तटपर कुश, मिट्टी और लमीके फूलोंसे वे प्रतिदिन भगवान्का पूजन करते थे। गुरुके बताये हुए मार्गसे अपने हृदयकमलके भीतर वे प्रतिदिन भगवान् विष्णुका आवाहन करते थे। उनके आवाहन करते ही शङ्ख, चक्र और गदा ध्वज करनेवाले लक्ष्मीपति जगन्नाथ गङ्गापर आरुढ़ हो तुरंत वहाँ आते थे। फिर मीदगल्य ऋषिके द्वारा यज्ञपूर्वक पूजित होनेपर वे कुछ कालतक उन्हें विविध-विधित्र कथार्य सुनाकर करते थे। कथा-वार्तामें जब तीसरे पहरका समय हो जाता, तब भगवान् विष्णु उनसे बार-बार कहते—'बेटा!

अब अपने घर जाओ, तुम बहुत थक गये होंगे।' इस प्रकार भगवान्के अग्रह करनेपर वे घर लौटते थे। उनके जानेपर भगवान् देवताओंके साथ अपने धामको लौटते थे। मीदगल्य भी प्रतिदिन कुछ लेकर अपने घर आते और पत्नीको अपना उपार्जित धन देते थे। मीदगल्यकी पत्नी जम्बल्य बड़ी पतिव्रता थी। उसके स्वामी शोक, फल अथवा मूल—जो कुछ भी ला देते, उसे ही लेकर वह उसका संस्कार करती और पहले अतिथियों, वास्तकों तथा अपने पतिको परोसती थी। इन सबको भोजन देकर वह पीछे स्वयं अन्न ग्रहण करती। जब सब लोग भोजन कर लेंते तब मीदगल्य मुनि प्रतिदिन रातमें प्रसन्नतापूर्वक श्रीविष्णुके मुखमें तुनी हुई कथार्य सबको सुनते थे। इस प्रकार बहुत समय व्यतीत होनेके बाद मीदगल्य मुनिने पत्नी, पुत्र, भाई, बन्धु और माता-पिताके साथ उत्तम भोग भोगे और अन्तमें मोक्ष भी प्राप्त कर लिया। तबसे यह तीर्थ मीदगल्यतीर्थ और श्रीविष्णुतीर्थके नामसे प्रसिद्ध हुआ। वहाँका स्नान और दान भोग एवं भक्ष देनेवाला है। यदि किसी तरह उस तीर्थके नामका व्रण अथवा उसका स्मरण ही हो जम्ब तो भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं और वह मनुष्य चापोंसे मुक्त होकर सुखी हो जाता है। वहाँ गौतमीके दोनों तटोंपर ग्यारह हजार तीर्थ हैं, जो स्नान, दान और जप आदि करनेसे सब फलार्थ देनेवाले हैं।

लक्ष्मीतीर्थ और भानुतीर्थका माहात्म्य

गङ्गाजी कहते हैं—नारद! विष्णुतीर्थके बाद लक्ष्मीतीर्थ है, जो लक्ष्मीकी वृद्धि और दरिद्रताका नाश करनेवाला है। उसका पवित्र इतिवृत्त कस्तुरात सुनो। पूर्वकालकी बात है—लक्ष्मी और दक्षिण

देवीमें संवाद हुआ। वे दोनों एक-दूसरीका विरोध करती हुई संभारमें आयीं। तीनों लोकोंमें कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है, जहाँ ये व्याप्त न हों। दोनों ही कहने लगीं—'मैं बड़ी हूँ, मैं बड़ी हूँ।'

लक्ष्मीने युक्ति दी—‘देहधारियोंका कुत्स, शील और जीवन में ही हैं। मेरे बिना वे जीते हुए भी मृतकके समान हैं।’ दरिद्राने भी तर्क उपस्थित किया—‘मैं ही सबसे बड़ी हूँ। क्योंकि मुक्ति सदा मेरे ही अधीन है। जहाँ मैं हूँ, वहाँ कर्म, क्रोध, मद, लोभ और मात्सर्य—ये दोष कभी नहीं रहते। भय, उन्माद, ईर्ष्या और टहण्डलका भी अभाव रहता है।’ दरिद्राकी बात सुनकर लक्ष्मीने प्रतिवाद किया—‘मुझसे अलंकृत होनेपर सभी प्राणी सम्मानित होते हैं। निर्धन मनुष्य सिक्के ही तुल्य क्यों न हो, सबके द्वारा तिरस्कृत होता रहता है। ‘मुझे कुछ दीजिये’ यह वाक्य मुँहसे निकलते ही बुद्धि, श्री, लज्जा, शान्ति और कीर्ति—ये शरीरके पाँच देवता तुरंत निकलकर चला देते हैं। गुण और गौरव तभीतक टिके रहते हैं, जबतक मनुष्य दूसरोंके साथने हाथ नहीं फैलाता। सब पुरुष वाचक बन गया, तब कहीं गुण और कहीं गौरव। जीव तभीतक सबसे उत्तम, समस्त गुणोंका भंडार और सब लोगोंका वन्दनीय रहता है, जबतक वह दूसरेसे वाचना नहीं करता। प्राणियोंके लिये निर्धनता सबसे बड़ा कष्ट और पाप है। क्योंकि निर्धन मनुष्यको न तो कोई आदर देता, न उससे बात करता और न उसका स्पर्श ही करता है।* अतः दरिद्रे। मैं ही श्रेष्ठ हूँ। तू मेरी बात कान खोलकर सुन ले।’

लक्ष्मीका यह दर्पयुक्त वचन सुनकर दरिद्र बोली—‘लक्ष्मी! मैं बड़ी हूँ—यह बारबार कहते तुझे लज्जा नहीं आती? तू श्रेष्ठ पुरुषोंको छोड़कर

सदा पापियोंमें ही रमती रहती है जो तेरा विश्वास करता है, उसके साथ तू वञ्चन करती है। फिर बड़ी-बड़ी ढींगें कैसे हाँक रही है। तेरे मिलनेपर मनुष्यको वैसा भारी पक्षाताप सहना पड़ता है, वैसा उसे सुख नहीं मिलता। मदिरा पीनेसे भी पुरुषको वैसा भयंकर नशा नहीं होता, वैसा उसे समीप रहनेमात्रसे विद्वानोंको भी हो जाता है। लक्ष्मी! तू सदा प्रायः पापियोंके साथ ही झोड़ा करती है। मैं योग्य और धर्मशाल पुरुषोंमें सदा निवास करती हूँ। भगवान् शिव और श्रीविष्णुके भक्त, कृतज्ञ, महात्म्य, सदाचारी, शान्त, गुस्सेवा-परायण, साधु, विद्वान्, शूरवीर तथा पवित्र बुद्धिवाले श्रेष्ठ पुरुषोंमें मेरा निवास है। अतः श्रेष्ठता तो सदा मुझमें ही है। तेजस्वी ब्रह्मण, व्रतपरायण संन्यासी तथा विभय मनुष्योंके साथ मैं रहा करती हूँ। किंतु तू कहाँ रहती है—वह भी सुन ले। वापपरायण राजकर्मचारी, रिपुहृ, खल, भुगलक्षी, लोभी, विकृताङ्ग, शठ, अनार्थ, कृतघ्न, धर्मघाती, मित्रद्रोही, अनिष्टकारी तथा हृदयहीन मनुष्योंमें ही तेरा निवास है।

इस तरह विवाद करती हुई वे दोनों भेरे पास आयीं। मैंने उनकी बातें सुनीं और इस प्रकार कहा—‘पृथ्वी तथा आप (जल)—ये दोनों देवियों मुझसे ही प्रकट हुई हैं। स्त्री होनेके कारण वे ही स्त्रीके विवादको समझ सकती हैं और कोई नहीं। उनमें भी जो कमण्डलुसे प्रकट होनेवाली नदियाँ हैं, वे श्रेष्ठ हैं। उन सरिताओंमें भी गौरवो देवी तो सर्वश्रेष्ठ हैं। अतः वे ही तुम्हारे विवादका

* देहीति वचनद्वारा देहस्यः पञ्च देवताः । सद्यो विहितं मन्त्रं च श्रीश्रीशान्तिमूर्तयः ॥
 त्रयम् गुणा गुल्फं च वाचनार्थको परम् । अर्थं चेत् पुन्यं ज्ञतः क्व गुणः क्व च गौरवम् ॥
 त्रयसर्वोत्तमो वस्तुतामससर्वगुणलवः ॥ यथास्यः सर्वलोकानां प्रवचनार्थमते परम् ॥
 कष्टमन्त्रमहत्त्वम् निर्धनत्वं सतीरिणम् ॥ न मन्यति नो वक्ति न स्पृहत्यधनं जन ॥

निर्णय करेंगी। वे ही सबको पीड़ाओंको हरनेवाले तथा सबके संदेहका निवारण करनेवाली हैं।' ये कहनेसे वे दोनों पृथ्वी और जलके फस गयीं और उन सबको साथ ले गीतमोदेवीके समीप पहुँचीं। भूदेवी और आपोदेवीने गीतमीसे लक्ष्मी और दरिद्राका विवाद स्पष्टरूपसे कह सुनाया। उन दोनोंके विवादको समस्त लोकपाल, पृथ्वी और जल—ये मध्यस्थकी भाँति सुन रहे थे।

उस समय गङ्गाने दरिद्रासे कहा—'ब्रह्मत्री, तपःत्री, यज्ञत्री, कीर्ति, धनत्री, भक्त, श्री, विद्या, प्रज्ञा, सरस्वती, भोगत्री, भुक्ति, स्मृति, लब्धा, भृति, क्षमा, सिद्धि, तुष्टि, पुष्टि, शान्ति, जल, पृथ्वी, अहंरात्रि, ओषधि, वृत्ति, शुद्धि, रात्रि, गुलोक, ज्योत्स्ना, आशीः, स्वस्ति, व्याप्ति, माया,



उषा, शिवा आदि जो कुछ भी संसारमें विद्यमान है, वह सब लक्ष्मीके द्वारा व्याप्त है। ब्राह्मण, धोर, क्षमावान्, साधु, विद्वान्, भोगपरायण तथा मोक्षपरायण पुरुषोंमें जो-जो रमणीय अथवा सुन्दर है, वह सब लक्ष्मीका ही विस्तार है। अधिक सुननेसे

कय स्त्रम—समस्त जगत् लक्ष्मीमय ही है। जिस किसी व्यक्तिमें जो कुछ भी उत्कृष्ट वस्तु दिखायी देती है, वह सब लक्ष्मीमय है। लक्ष्मीसे शून्य कोई वस्तु नहीं है। दरिद्र! क्या तू इन सुन्दरों लक्ष्मी देवीके साथ स्पर्द्धा करती हुई लज्जित नहीं होती? जा, चली जा यहाँसे।'

तबसे गङ्गाका जल दरिद्राका शत्रु हो गया। तभीतक दरिद्राका कष्ट ठठाना पड़ता है, जबतक गङ्गाजीका सेवन न किया जाय। तबसे लक्ष्मीतीर्थ असंशयोक्तक हो गया। वहाँ स्नान और दान करनेसे मनुष्य लक्ष्मीवान् तथा पुण्यवान् होता है। महामते! वहाँ देवताओं तथा ऋषि-मुनियोंद्वारा सेवित छः हजार तीर्थ हैं, जो सब-के-सब सिद्धि प्रदान करनेवाले हैं।

तदनन्तर विद्ययात भानुतीर्थ है, जो मनुष्योंको सब प्रकारकी सिद्धि देनेवाला है। वहाँका वृत्तान्त महाभारतकोका कथन करनेवाला है। उसे कालप्रताप सुनो। त्रयोति नामसे विद्ययात एक परम धर्मान्ध राजा थे। उनकी स्त्रीका नाम संधिहाता। रानी इस भूतलपर अप्रतिम सुन्दरी थी। संवयी पुरुषोंमें श्रेष्ठ विश्वामित्रकुमार ऋषार्थि मधुच्छन्दा राजा त्रयोतिके पुरोहित थे। एक समयकी बात है—कीर्त्तव राजा त्रयोति अपने पुरोहितको साथ ले दिग्विजयके लिये निकले। सम्पूर्ण दिशाओंपर विजय पाकर लौटते समय राजाने मार्गमें सेनाका पड़ाव डाला। उस समय उन्होंने अपने पुरोहितको उदास देखकर पूछा—'विप्रवर! आप क्षिप्त क्यों हैं? मैंने पृथ्वीको जीत और बड़े-बड़े राजाओंपर विजय पायी, यह तो महान् हर्षकर्म अवसर है। ऐसे समयमें आप दुःखी क्यों हैं? सच-सच बताइये।' तब मधुच्छन्दाने राजाको सम्बोधित करके कहा—'राजन्! जब एक थहर दिन रहेगा, तब हमलोग यात्रा करेंगे। इसीमें रात आधी बीत

जायगी। उधर इस शरीरकी स्वामिनी मेसे प्रियतमा कामके चशीभूत होकर मेरी यह देखती है। उसका स्मरण करके मेरा शरीर सूखा जाता है। कामजनित विकार उत्पन्न होनेपर वह कमलके समान मुखवाली सुन्दरी जोषित तो मिलेगी न?

यह सुनकर राजा हँस पड़े और पुरोहितसे बोले—'ब्रह्मन्! आप मेरे गुरु और मित्र हैं। फिर अपने-आपको क्यों विह्वलनामें हास रहे हैं। संसारका सुख तो क्षणभङ्गुर है। उसमें आप-जैसे महात्माओंकी आस्था कैसी।' मधुच्छन्दा बोले—'राजन्! जहाँ प्रति-पत्नी दोनों एक-दूसरेके अनुकूल रहते हैं, वहाँ धर्म, अर्थ और कामकी वृद्धि होती है। अतः अपनी पत्नीके प्रति यह अनुराग दूषण नहीं, भूषण ही मानना चाहिये।'

तदनन्तर राजा जिसाल सेनाके समक्ष अपने देशमें आये। उन्होंने पत्नीके प्रेमकी परीक्षा करनेके लिये नगरसे यह संदेश भेज दिया—'राजा शयीति दिग्विजयके लिये गये थे। वहाँ एक राक्षस पुरोहितसहित राजाको मारकर रसातलमें 'कलप गया।' दूतके मुखसे यह संदेश सुनकर रानी इसकी सत्यताका पता लगाने लगी, किन्तु मधुच्छन्दाकी पत्नीने तुरंत प्राण त्याग दिये। यह एक अद्भुत बात हो गयी। दूतोंने उसकी मृत्युका हाल महाराजसे जाकर कहा। साथ ही रक्षिणोंकी चेष्टा भी बतायी। इससे राजाको बड़ा विस्मय और दुःख हुआ; उन्होंने दूतोंसे कहा—'तुमलोग जाकर ब्राह्मणीके शरीरकी रक्षा करो और नगरमें यह बात फैला दो कि राजा अपने पुरोहितके साथ राजधानीमें आ रहे हैं।'

यों कहकर राजा चिन्तासे व्याकुल हो उठे। इसी समय आकाशवाणी हुई—'राजन्! इस पृथ्वीपर गौतमी गङ्गा सब प्रकारके संकटोंकी सन्ति करनेवाली तथा पावन है, वे आपका सम्पूर्ण

मनोरथ सिद्ध करेंगी।' आकाशवाणी सुनकर शयीति गौतमीके तटपर गये। उन्होंने ब्राह्मणोंको घन दिया, पित्तों और द्विजोंको दूत किया और अपने पुरोहितको धनके साथ यह कहकर भेजा—'आप अन्य तीर्थोंमें जाकर घन-दान करें।' राजाका यह सब कार्य पुरोहित नहीं जानते थे। उनके चले जानेपर राजाने सेनाको भी भेज दिया और स्वयं अकेले ही गङ्गातटपर रह गये। उन्होंने गङ्गा, सूर्य तथा देवताओंको सुनाकर कहा—'यदि मैंने दान, होम और प्रजा-पालन किया हो तो इस सत्यके प्रभावसे वह पतिव्रता ब्राह्मणी मेरी आयु लेकर जीवित हो जाय।' यों कहकर राजा अग्रिममें प्रवेश कर गये। उसी समय पुरोहितकी पत्नी जीवित हो गयी।



राजगुरु मधुच्छन्दाको जब यह बात पाल्म हुई कि 'राजा अग्रिममें प्रवेश कर गये, मेरी पतिव्रता पत्नी मरकर फिर जी उठी और दूतोंके लिये महाराजने अपने जीवनका परित्याग किया है।' तब उनका ध्यान अपने कर्तव्यकी ओर गया।

उन्होंने सोचा, 'यै भी अग्रिमें प्रवेश करके अपने प्रिय मित्रके पास जाऊँ अथवा यहाँ रहकर तपस्या करूँ?' अन्तमें वे इस निश्चयपर पहुँचे कि 'मेरा कर्तव्य तथा पुण्यकार्य यही है कि पहले राजाको जीवित करूँ, उसके बाद प्रियाके पास जाऊँ।' यह विचारकर उन्होंने सूर्यदेवका स्तवन किया, क्योंकि उनके सिवा दूसरा कोई सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाला नहीं है।

मधुच्छन्दा बोले—मुक्तिस्वरूप, अमिता तेजस्वी भगवान् सूर्यको नमस्कार है। ओंकारके अर्घभूत छन्दोमय देवको नमस्कार है। ओ विरूप, सूरूप, त्रिगुण, त्रिमूर्ति, सृष्टि, धारण और संहारके हेतु तथा सबके प्रभु हैं, उन भगवान् सूर्यको नमस्कार है।

इस स्तोत्रसे प्रसन्न होकर भगवान् सूर्यने कहा—'कोई घर माँगो।' मधुच्छन्दा बोले—'देवेश्वर!

राजाका जीवनदान दीजिये प्रिय वचन बोलनेवाली मेरी पत्नीको भी जीवित रखिये और मुझे तथा राजाके लिये भी उत्तम पुत्र प्रदान कीजिये।' जगदीश्वर भगवान् सूर्यने रत्नमय अम्बुषणोंसे विभूषित राजा शर्वातिको जीवित करके दे दिया, ब्राह्मणकी पत्नीको भी जिलाया तथा और भी श्रेष्ठ एवं कल्याणमय घर प्रदान किये। तदनन्तर राजा प्रसन्न हो पुरोहितके साथ प्रियजनोंसे घिरे हुए सुखपूर्वक अपने देशको गये। उस स्थानपर तीन हजार गुणवान् तीर्थोंका निवास है। मुने! ठसी समयसे उस स्थानका नाम भानुतीर्थ, भूतसंजीवनतीर्थ, शर्वातितीर्थ और मधुच्छन्दसतीर्थ हो गया। वह स्मरणमात्रसे पापोंको दूर भागता है। उन तीर्थोंमें किश्वर हुआ खान और दान सम्पूर्ण यज्ञोंका फल देनेवाला है।

खड्गतीर्थ और आत्रेयतीर्थकी महिमा

ब्रह्माजी कहते हैं—गीतमोके उत्तर-वटपर खड्गतीर्थ है, जहाँ ज्ञान और दान करनेसे मनुष्य मोक्षका भागी होता है। नारद! मैं यहाँका वृक्ष अतः बतलाता हूँ। पैलूष नामसे विख्यात एक ब्राह्मण थे, जो ऋषिके पुत्र थे। वे कुटुम्बके भारसे विवश हो धनके लिये इधर उधर दौड़ा करते थे, किंतु उन्हें कहींसे भी कुछ नहीं मिलता था। दैव तो अल्पन्त विमुख था ही, पुरुषार्थ भी निष्फल हो गया। इससे पैलूषको बड़ा वैराग्य हुआ। वे सोचने लगे, 'यह तृष्णा मुझे बलपूर्वक पापकी ओर खींचती है। तृष्णे! तूने मेरे अज्ञानवश बड़ा अपकार किया है किंतु अब तूझे दूरसे ही नमस्कार है।' यह सोचकर बुद्धिमान् पैलूषने मन ही मन विचार किया—'इस तृष्णाका नाश करनेके लिये क्या होना चाहिये?' फिर उन्होंने

अपने पिता कवचसे पूछा—'तत्त! मैं ज्ञानरूपी खड्गसे श्रेष्ठ और लोभक तथा अल्पन्त दुस्तर संसारका कैसे छेदन करूँ? इसका उपाय बतलाइये।'

कवचने कहा—'वैदिक श्रुतिका कथन है कि ईश्वरसे ज्ञानकी इच्छा करे; अतः तू महादेवजीकी आराधना करो। उससे तुम्हें ज्ञान प्राप्त होगा।

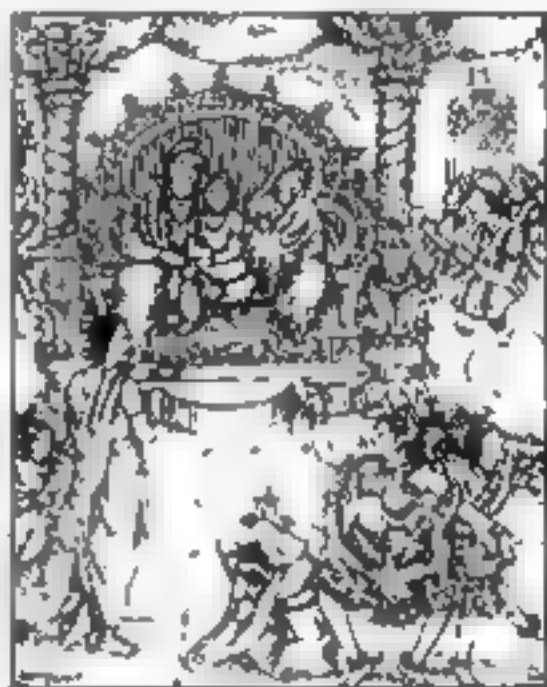
'बहुत अच्छा' कहकर पैलूषने ज्ञान-प्राप्तिके उद्देश्यसे महेश्वरकी अर्चना की। इससे संतुष्ट होकर उन्होंने ब्राह्मणको ज्ञान प्रदान किया। ज्ञान प्राप्त होनेपर परम बुद्धिमान् कवचने इस प्रकार मुक्तिदायिनी गथाका गान किया—'मनुष्यका पहला शत्रु है क्रोध। उसका फल तो कुछ भी नहीं है, उल्टे वह शरीरका नाश करता है। अतः ज्ञानरूपी खड्गसे उसका नाश करके परम आनन्दको प्राप्त करे। नाश प्रकारकी तृष्णा बन्धनमें डालनेवाली

मया है, वह पाप करता है; अतः जनकजी खड़ा हो उसका नाम कर देनेपर मनुष्य सुखसे खड़ा है।* आसक्ति देवता आदिके लिये भी बहुत बड़ा अर्थ है। आत्म असङ्ग है, उसके लिये भी आसक्ति महान् शत्रु है। जनकजी खड़ा हो इस आसक्तिको नष्ट करके शिव-सामुच्च प्राप्त करे। संसार फलवस्तुका कारण है। वह धर्म और अधर्म भी विनाश करनेवाला है। उस संसारका नाश करके जोव अपने परम अभीष्टकी सिद्धि कर सकता है। आत्म पिशाचीकी भीति धितमें प्रवेश करता है और सम्पूर्ण सुखोंको भस्म कर डालती है। पूर्ण अहङ्क (अपरिचित अहमबोध) कभी खड़ा हो उसका नाश करके जीवनमुक्ति प्राप्त करनी चाहिये।

तदनन्तर फैलूच ज्ञान प्राप्त करके गङ्गा-तट पर रहने लगे। ज्ञानकजी खड़ा हो उनका मोह नष्ट हो गया था, मत्तः उन्होंने मोह प्राप्त कर लिया। तबसे वह स्थान खड़ागीर्णके नामसे प्रसिद्ध हुआ। ज्ञानतीर्थ, कश्यपतीर्थ, फैलूचतीर्थ और सर्वकामदीर्घ आदि छः इन्कार तीर्थ वहाँ प्राप्त करते हैं, जो पापराशिके नाशक और अभीष्ट वस्तुओंके दाता हैं।

उसके बाद आत्रेयतीर्थ है। उसीको अग्निन्दतीर्थ भी कहते हैं। वह बहुत ही उत्तम है। वह खोये हुए राज्यकी प्राप्ति करानेवाला है। उसका ब्रह्मरूप्य धतलाता है, सुनो। एक बार गौतमीके उत्तर-तट पर अत्रेय ऋषिने अनेकें ऋषिबन्धु मुनियोंके साथ सत्र आरम्भ किया। उसमें इत्यकह्न अग्नि ही होता थे। इस प्रकार सत्र पूरा होनेपर महर्षिने माहेश्वरी इष्टिका अनुष्ठान किया। इससे अग्निमा आदि आठ प्रकारके ऐश्वर्यकी प्राप्ति हुई तब उनमें सर्वत्र आने-जानेकी शक्ति हो गयी। वे परम

मनोहर इन्द्रधनु, स्वर्गलोक तथा रसातलमें अपनी वपम्पके प्रपन्नसे आने-जाने लगे। एक समय वे इन्द्रलोकमें गये। वहाँ उन्होंने देवताओंसे घिरे हुए इन्द्रको देखा, जो अम्बरुओंका उत्तम नृत्य देख रहे थे। सिद्ध और साध्यागण उनकी स्तुति कर रहे थे। वह सब देखकर पुनः अपने आश्रमपर लौट



आये। कहीं पवित्र गुणोंवाले राजोंसे भरी हुई अत्यन्त रमणीय इन्द्रपुरी और कहीं श्रीहीन, सुवर्णरहित अपना आश्रम! यह देखकर ब्रह्मणको अपने आश्रमसे वैराग्य-सा हो गया। उनके मनमें त्रेधा ही देवताओंका राज्य प्राप्त करनेकी अभिलाषा हुई। तब उन्होंने अपनी प्रियासे कहा—'देखि! अब मैं उत्तम-से-उत्तम फल-मूल भी, चाहे वे कितने ही अच्छे दौगले क्यों न बने हों, नहीं खा सकता। मुझे तो स्वर्गलोकके अमृत, परम पवित्र भक्ष्य-भोजन, श्रेष्ठ आसन, स्तुति, दान, सुन्दर

* कोपल्लु प्रपन्नं शत्रुर्विभक्तो देहनाशनः। जनसङ्गेन च लिप्ता परमं सुखमाप्नुयात्॥

तुल्यो बहुविधा यथा बन्धने पापकारिणः। लिप्ता जनसङ्गेन सुखं तिष्ठति मायम्॥

साध, अस्त्र-शस्त्र, मनोहर वस्त्र, अमरत्वदीपरी और नन्दनवनकी याद आती है।' यों कहकर महाप्रज्वा आत्रेयने तपस्वके प्रभवसे विश्वकर्माके कुलज्य और इस प्रकार कहा—'महाप्रज्वा! मैं इन्द्रका बेटा चला हूँ। अब ज़ीघ ही यहाँ इन्द्रपुरीका निर्माण करेजिये। इसके विपरीत यदि आपने कोई बात मुँहसे निकाली तो मैं निश्चय ही आपके भस्म कर दूँगा।'।

आत्रेयके यों कहनेपर प्रजापति विश्वकर्माने तत्काल ही वहाँ मेरुपर्वत, देवपुरी, कल्पवृक्ष, कल्पलता, कामधेनु, वज्र आदि मन्त्रियोंसे विभूषित, सुन्दर तथा अत्यन्त धिक्कभरी किये हुए गृह बनाये। इतना ही नहीं, उन्होंने सर्वाङ्गसुन्दरी शचीकी भी आकृति बनायी, जो कामदेवकी विहारशाला—सी प्रतीत होती थी। क्षणभरमें सुधर्म सभा, मनोहारिणी अप्सराएँ, दम्भीःब्रह्म अश्व, ऐरावत हाथी, वज्र आदि अस्त्र और सम्पूर्ण देवताओंका निर्माण हो गया। अपनी पत्नीके पञ्च करनेपर भी आत्रेयने शचीके समान रूपकाली उस स्त्रीको अपनी भर्त्सना ब्रह्म लिया। वज्र आदि अस्त्रोंको भी धारण किया। वृक्ष और संग्रहित आदि सब कुछ यहाँ उसी तरहसे होने लगा, जिस प्रकार वह इन्द्रपुरीमें देख गया था। स्वर्गलोकका सम्पूर्ण सुख पाकर भुविपर आत्रेयका चित बहुत प्रसन्न हुआ। आपातरमणीय विषयोंकी भी भला, किस पुरुषको अपेक्षा नहीं होती। दैत्यों और दानवोंने जब स्वर्गका वैभव पृथ्वीपर उतरा हुआ सुना, सब उन्हें बड़ा क्रोध हुआ। वे परस्पर कहने लगे—'क्या कारण है कि इन्द्र स्वर्गलोकको छोड़कर पृथ्वीपर सुख भोगनेके लिये आया है? हमलोग अभी वृत्रासुरका वध करनेवाले उस इन्द्रसे युद्ध करनेके लिये चलें।' ऐसा निश्चय करके असुरोंने वहाँ आकर महर्षि आत्रेयको और उनके द्वारा निर्मित इन्द्रपुरीको भी घेर लिया। फिर

तो उनपर बढ़े-बढ़े शस्त्रोंकी भार पड़ने लगी। इससे भयभीत होकर आत्रेयने कहा—'मैं इन्द्र नहीं हूँ। मेरी यह भार्य भी शची नहीं है। न तो यह इन्द्रपुरी है और न यहाँ इन्द्रका नन्दनवन है। वृत्रहन्त्र, वज्रधारी और सहस्र नेत्रोंवाले इन्द्र तो स्वर्गमें हो हैं। मैं तो वेदवेत्ता ब्राह्मण हूँ और ब्राह्मणोंके साथ ही गीतमीके छटपर निवास करता हूँ। दुर्दैवकी प्रेरणासे मैंने यह कर्म कर डाला, जो न तो वर्तमान कालमें सुख देनेवाला है और न भविष्यमें ही।'।

असुर बोले—भुवित्रेह आत्रेय! यह इन्द्रका अनुकरण छोड़कर यहाँका भारा वैभव समेट लो, तभी तुम कुशलसे रह सकते हो; अन्यथा नहीं।

तब आत्रेयने कहा—'मैं आश्रित तपश्च खाकर सब-सब कइता हूँ—आपलोग जैसे कहेंगे, वैसा ही करूँगा।' दैत्योंसे यों कहकर वे पुनः विश्वकर्माके बोले—'प्रज्वापते! आपने मेरी प्रसन्नताके लिये जो इन्द्रपदका निर्माण किया था, इसका फिर उपसंहार कर लीजिये और ऐसा करके मुझ ब्राह्मण भुमिकी



शीघ्र रक्षा कीजिये। मुझे फिर अपना यही आश्रम तौटा दीजिये, जहाँ मृग, पक्षी, वृक्ष और जल हैं। मुझे इन दिव्य भोगोंकी कोई आवश्यकता नहीं है। शास्त्रीय भयादाकर उलझन करके प्राण की हुई कोई भी वस्तु सुखद नहीं होती।'

'बहुत अच्छा' कहकर प्रजापतिने उस इन्द्रपुरीके वैभवाको समेट लिया। उस देशको निष्कण्टक बनाकर दैत्य फिर अपने स्थानको चले गये। विश्वकर्मा भी हैंसते-हैंसते अपने धामको पधारे। आत्रेय भी अपने शिष्यों और पत्नीके साथ गौतमी-तटपर रहते हुए वपस्यामें संलग्न हो

गये। उनका जो यज्ञ चल रहा था, उसमें उन्होंने लज्जित होकर कहा—'अहो! मोहकी कैसी महिमा है कि मेरे चित्तमें भी भ्रान्ति आ गयी। वह क्या मैंने महेन्द्रपद पाया और क्या-क्या उसके लिये किया।'

इस प्रकार लज्जित हुए आत्रेयसे देवताओंने कहा—'महाबाहो? सच्चा छोड़ो। इससे तुम्हारी बड़ी छ्वाति होगी। जो लोग इस आत्रेयतीर्थमें स्नान करेंगे, वे भविष्यमें इन्द्र होंगे और इसके स्मरणसे उन्हें सुखकी प्राप्ति होगी,' ये कहकर देवता चले गये और आत्रेय मुनि भी बहुत संतुष्ट हुए।

परुष्णीतीर्थ, नारसिंहतीर्थ, पैशाचनाशनतीर्थ, निम्नभेद- तीर्थ और शङ्खुहृदतीर्थकी महिमा

ब्रह्माजी कहते हैं—परुष्णी नामक तीर्थ तीनों लोकोंमें विख्यात है। इसके पापनाशक स्वरूपका वर्णन करता हूँ, सुनो। एक बार महर्षि अत्रिने ब्रह्मा, विष्णु और महादेवजीको आराधना की। उन तीनोंके संतुष्ट होनेपर महर्षिने कहा—'आपलोग मेरे पुत्र हों। साथ ही मेरे एक परम सुन्दरी कन्या भी हो।' इस वन्दनके अनुसार ये तीनों देवता उनके पुत्र हुए। महर्षिने जो कन्या उत्पन्न की, उसका नाम आत्रेयी हुआ। अत्रिके तीनों पुत्र क्रमशः दत्त, सोम और दुर्वासाके नामसे प्रसिद्ध हुए। अत्रिसे अङ्गिराकी उत्पत्ति हुई थी। अङ्गारसे उत्पन्न होनेके कारण ही उन्हें अङ्गिरा कहते हैं। महर्षि अत्रिने अङ्गिरासे ही अपनी सैजस्वी कन्या आत्रेयीको व्याह्र दिया। अङ्गिरामें अत्रिकी तोयताका प्रभाव था। अतः ये आत्रेयीसे सदा परुष (कठोर) भाषण किया करते थे। आत्रेयी भी सदा पतिकी सेवामें संलग्न रहती

थी। आत्रेयीके गर्भसे महान् बलवान् और पराक्रमी अङ्गिरस नामक पुत्र हुए। अङ्गिरस आत्रेयीको प्रतिदिन कटु वचन सुनाते और अङ्गिरस नामकाले पुत्र सदा अपने पिताको शान्त किया करते थे। एक दिन आत्रेयी पतिके कठोर वाक्यसे ठहिर गयीं और दीनभावसे हाथ जोड़कर अपने श्वशुर अग्निदेवसे बोलीं—'भगवन् हव्यवाह! मैं अत्रिकी कन्या और आपके पुत्रकी पत्नी हूँ, पुत्रों और पतिकी सेवामें सदा संलग्न रहती हूँ, तो भी पतिदेव मुझे कटु वचन सुनाते और व्यर्थ ही रोषपूर्ण दृष्टिसे देखा करते हैं। सुरश्रेष्ठ! आप मेरे पति-देवताको समझा दें।

अग्नि बोले—कल्पजो! तुम्हारे पति अङ्गिरा ऋषि अङ्गारसे प्रकट हुए हैं। वे जिस प्रकार शान्त हो सके, वैसी नीति बर्तनी चाहिये। तुम्हारे पति अङ्गिरस जब अत्रिमें प्रवेश करें, तब तुम मेरी आज्ञासे वासरूप होकर उन्हें बहा ले जाना।

आग्नेयीने कहा—भगवन्! मैं उनकी कठोर बातें सह लूंगी, किंतु घेरे स्वामी अग्निमें प्रवेश न करें। जो स्त्रियाँ अपने स्वामीसे प्रतिकूल चलती हैं, उनके जीवनसे क्या लाभ। मैं तो इतना ही चाहती थी कि वे शान्तिमय वचन बोले।

अग्नि बोले—जलमें, शरीरमें तथा स्थावर-जङ्गमरूप जगत्में सर्वत्र मेरा निवास है। मैं तुम्हारे पतिका विषय आश्रय हूँ, क्योंकि मैं ही उनकी जनक हूँ जो मैं हूँ, वही वे भी हैं। यह जानकर तुम्हें चिन्ता नहीं करनी चाहिये। एक बात और है—जलको तो तुम माता सम्झो और अग्निको श्वशुर। इस बातका अपनी बुद्धिसे भलीभाँति निश्चय करके तुम विवाद न करो।

आग्नेयीने कहा—भगवन्! आप जलको माता कहते हैं और मैं आपके पुत्रकी पत्नी हूँ। जननी होकर फिर पत्नी कैसे रह सकूंगी, जलका रूप धारण करनेसे यह विरोध सामने आता है।

अग्नि बोले—स्त्री पहले तो पत्नी होती है। फिर स्वामीका धारण-वोचन करनेसे भार्य्य बनती है। पुत्रका जन्म देनेपर उसे माता कहते हैं। इसी प्रकार अपने गुणोंके कारण वह कलात्र कहलाते हैं। भदे! तुम भी यही रूप धारण करती हो। अतः मेरी आज्ञाका पालन करो। जो एक बार पत्नीके गर्भमें आकर पुत्ररूपसे उत्पन्न हो चुका, वह वास्तवमें उसका पुत्र ही है और वह स्त्री भी जननी ही है। अतः वैदिक तत्त्वके विद्वान् कहते हैं कि पुत्र उत्पन्न हो जानेपर मारी पत्नी नहीं रह जाती।

श्वशुरके मुखसे यह वचन सुनकर आग्नेयीने अग्निरूपमें आये हुए अपने पतिको जलसे अप्सवृत्ति कर दिया। फिर वे दोनों पति-पत्नी गङ्गाजीके जलसे जा मिले। उस समय दोनोंके स्वरूप स्तब्ध थे। जैसे लक्ष्मीके साथ श्रीविष्णु, उमाके साथ शंकर तथा रोहिणीके साथ चन्द्रमा हैं, उसी प्रकार

वे दोनों शोभा पाने लगे। पतिको अप्सवृत्ति करती हुई आग्नेयीने जलमय शरीर धारण किया था, अतः वह परुष्णी नदीके नामसे विख्यात हुई और गङ्गामें जा मिली। उसमें स्नान करनेसे सौ श्रेष्ठानोंका पुण्य प्राप्त होता है। आङ्गिरस नामवाले पुत्रने गङ्गा और परुष्णीके संगमपर बहुत-से यज्ञ किये। वहाँ स्नान-दान आदिसे जो पुण्य होता है उसका वर्णन नहीं हो सकता।

गङ्गाके उत्तर-तटपर नारसिंह नामका विख्यात तीर्थ है, जो सबकी रक्षा करनेवाला है। उसके प्रभावका वर्णन करता हूँ, सुनो। पूर्वकालमें हिरण्यकशिपु नामका दैत्य हुआ था, जो बसवानोंमें श्रेष्ठ था। तपस्या और पराक्रमकी दृष्टिसे भी वह बहुत बड़ा हुआ था। देवता भी उसे परास्त नहीं कर पाते थे। उसका पुत्र भगवान्का भक्त हुआ। उसके साथ द्वेष करनेके कारण हिरण्यकशिपुका अन्तःकरण मलिन हो गया था। उस समय भगवान् अपनी विश्वरूपताका परिचय देते हुए सभायण्डके छंभेसे मरसिंहकपमें प्रकट हुए और उस दैत्यका बध करके उन्होंने उसकी सेनाको भी मार भगवाया। क्रमशः युद्धमें समस्त दैत्योंका संहार करके रसातलके सत्रुओंपर विजय पायी। उसके बाद वे स्वर्गलोकमें गये। वहाँ रहनेवाले दैत्योंको परास्त करके वे पुनः पृथ्वीपर आये। यहाँ पर्वत, समुद्र, नदी, ग्राम और वनोंमें मानव रूप धारण करके जो दैत्य निवास करते थे, उन सबका भगवान् नृसिंहने संहार कर डाला। आकाश, वायु तथा ज्योतिर्मय लोकमें पहुँचे हुए दैत्योंको भी जीवित नहीं छोड़ा। उनके मूख वज्रपातसे भी कटोर थे। गर्दन और मुखपर बड़े-बड़े बाल थे। उनकी गर्जना सुनकर दैत्यपत्नियोंके गर्भ गिर आते थे। उन्होंने समस्त यक्षसौंको परास्त किया। भयंकर सिंहनाद, प्रतपश्रिके समान दृष्टि, चम्पङ् और शरीरके धकेसे

समस्त असुरोंको वृण कर डाला

इस प्रकार अनेक दैत्योंका संहार करके नरसिंहजी गौतमीके तटपर गये, जो उन्होंने चरणकमलोंसे निकली हुई और मन तथा नेत्रोंको आनन्द देनेवाली थी। वहाँ दण्डकारण्यका स्वामी आप्मवर्ष नामक दैत्य रहता था, जो देवताओंके लिये भी दुर्जय था। उसके पास बहुत बड़ी सेना थी। भगवान् नृसिंहका उस दैत्यके साथ अत्यन्त भयंकर एवं रोमाञ्चकारी युद्ध हुआ। श्रीहरिने गोदावरीके उत्तरतटपर अपने शत्रुका संहार कर डाला। यह स्थान तीनों लोकोंमें नारसिंहतीर्थके नामसे विख्यात हुआ। वहाँ किया हुआ स्नान-



दान आदि पुण्यकार्य समस्त पापरूपी ग्रहोंका शमन, वृद्धावस्था और मृत्युका निवारण तथा सबको रक्ष करनेवाला है। जैसे सम्पूर्ण देवताओंमें कोई भी भगवान् विष्णुके समान नहीं है, उसी प्रकार समस्त तीर्थोंमें नारसिंहतीर्थ अनुपम और

सर्वोत्तम है। उस तीर्थमें स्नान करके मनुष्य भगवान् नृसिंहका पूजन करे तो उसे स्वर्ग पार्थलोक और पातालस्का भी कोई सुख दुर्लभ नहीं रहता। बिना ब्रह्मा भी जिनका नाम लेनेपर समस्त पापोंका संहार हो जाता है, वे साधारण भक्तान् नरसिंह ही जहाँ विराजमान हैं, उस तीर्थके सेवनसे प्राप्त होनेवाले फलका कौन वर्णन कर सकता है। जैसे नृसिंहजीसे बड़ा कहीं कोई देवता नहीं है, वसी प्रकार नृसिंहतीर्थके समान कहीं कोई तीर्थ नहीं है।

गङ्गाके उत्तर-तटपर पैशाचनाशनतीर्थ विख्यात है। नरद! वहाँ पूर्वकालमें एक ब्राह्मण पिशाच-योनिसे भुक्त हुआ था। सुयज्ञके पुत्र अजीगर्ति एक विख्यात ब्राह्मण थे। एक समय अकाल पड़नेपर कुटुम्ब-पालनके भारसे दुःखी एवं पीड़ित होकर उन्होंने अपने मझले पुत्र शुनःशेपको वधके लिये क्षत्रियके हाथ बेच दिया। उसके बदलेमें अजीगर्तिको बहुत धन मिला था। शुनःशेप ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ था। ऐसे पुत्रको भी अजीगर्तिने धनके लोभसे बेच डाला। आपत्तिमें पड़नेपर विद्वान् पुरुष भी कौन-सा पाप नहीं कर डालता। समय आनेपर अजीगर्तिकी मृत्यु हुई और वे नरकमें डाले गये। क्योंकि इस लोकमें पूर्वजन्मके किये हुए पापोंका भोगके बिना क्षय नहीं होता। अनेक पाप-योनियोंमें पड़नेके पश्चात् अजीगर्ति भयंकर आकारवाले पिशाच हुए। उन्हें निर्जल और निर्जन वनमें सूखे काठपर रहना पड़ता था। गर्मीमें जहाँ दावानल फैल जाता, वही यमराजके दूत उस घेतको हस्त देते थे। कन्या, पुत्र, पृथ्वी, अन्न तथा गौओंका विक्रय करनेवाले मनुष्य महाप्रलय-कालतक नरकसे छुटकारा नहीं पाते*।

* कन्यापुत्रमहोवाजिगणं विक्रयकारिणः । नरकान्न निवर्तते यवताभूतसंस्तवम् ॥

अपने किये हुए पापोंके फलस्वरूप भयंकर यमदूतोंद्वारा नरकमें फंकाये जानेपर वह प्रेत और-जोरसे रोने लग्ग।

एक दिन अजीर्गर्तिक मङ्गल पुत्र सुनःशेष मार्गमें कहीं जा रहा था। उसने रोते हुए पिताकी कतर बाणी सुनी और पुछा—‘आप कौन हैं, जो अत्यन्त दुःखी होकर रोते हैं? अजीर्गर्तिने बड़े दुःखसे कहा—‘मैं सुनःशेषका पिता हूँ। भारी



पापकर्म करके भयानक प्रेतयोनियें पड़ा हूँ। पहले तो बारम्बार नरकोंमें यातनाएँ सहता रहा और अब प्रेतघेनिको प्राप्त हुआ हूँ। ओ-ओ पापकर्म करनेवाले हैं उन सबकी यही गति होती है।’ यह सुनकर अजीर्गर्तिक पुत्रको बड़ा दुःख हुआ। उसने कहा—‘पिताजी! मैं ही आपका पुत्र सुनःशेष हूँ। हाय, मेरे दोषसे आपकी यह दराह हुई! मुझे घेबनेके कारण आपको इस प्रकार नरकोंमें जाना पड़ा है। अब मैं आपके स्वर्गमें पहुँचाऊँगा।’ ऐसी प्रतिज्ञा करके उसने गङ्गाजीका चिन्तन किया और पिताको उत्तम लोक प्राप्त करानेकी चेष्टायें

संलग्न हो वहाँसे चल दिया। उसने सोचा—‘जो सम्पूर्ण दुःखरूपी अग्निसे संतप्त हैं और मोहके महासागरमें डूब रहे हैं, उन देहधारियोंके लिये गङ्गाजीको छोड़कर तीनों लोकोंमें दूसरा कोई सहारा नहीं है। ऐसा निश्चय करके पिताका दुर्गतिसे उद्धार करनेकी कामना लेकर सुनःशेष पवित्र भवसे गौतमोंके तटपर गया और वहाँ स्नान करके भगवान् विष्णु और शिवका स्मरण करते हुए उसने प्रेतरूपी दुःखी पिताको जल दिया। अलाउल्लि देते ही अजीर्गर्तिने पवित्र होकर परम पुण्यमय दिव्य शरीर धारण कर लिया और विधानपर बैठकर देवसमुदायसे संघित वैकुण्ठधामको प्रस्थान किया। गङ्गा, भगवान् विष्णु, शिव और ब्रह्मजोके प्रभावसे अजीर्गर्ति हजारों सूर्योंके समान तेजस्वी रूप धारण करके वैकुण्ठधाममें रहने लगे। तबसे वह स्थान पैताबनाक्षपतोर्ध्वके नामसे प्रसिद्ध हुआ। उसके स्मरणमात्रसे मनुष्योंके बड़े-बड़े पाप नष्ट हो जाते हैं। नारद! इस प्रकार मैंने तुमसे इस तीर्थका महान्त्य सुनाया। वहाँ और भी तीन सौ तीर्थ हैं, जो भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं।

विश्वभेद नामक तीर्थ सब पापोंका नाश करनेवाला है। वह गङ्गाके उत्तर-तटपर है। उसकी प्रसिद्धि तीनों लोकोंमें है। उसके स्मरणमात्रसे सम्पूर्ण पापोंका क्षय हो जाता है। वहाँ वेदद्वीप है। उसके दर्शनसे मनुष्य वेदोंका विद्वान् होता है। एक सपथकी बात है—परम धर्मात्मा राजा पुरूरवाने उर्वशी नामक अप्सराकी कामना की; मादक नेत्रोंवाली कामिनियोंको देखकर कौन पुरुष मोहमें नहीं पड़ता। उर्वशी राजाके स्थानपर गयी। उसने राजासे यह कर्त की कि मैं अबतक आपको नष्ट न देखूँ, तभीतक आपके पास रह सकती हूँ। उसके रहनेकी वह अवधि स्वीकार करके राजाने

उस रमणीय अप्सराको ग्रहण किया। एक दिन जब वह पलंगपर सोयी हुई थी, राजा पुरुषवा उठे। उसी समय उन्हें नग्न देखकर उर्वशी वहाँसे चली गयी। उसके जानेसे राजाको बड़ा दुःख हुआ। उनका अग्निहोत्र और भोजन छूट गया। वे न किसीकी बात सुनते थे और न किसीकी ओर देखते थे। मृतककी-सी अवस्थामें पड़े रहते थे। उस समय पुरोहितने युक्तियुक्त बचनोंद्वारा उन्हें समझाया—'राजन्! तुम तो बुद्धिमान् हो; क्या तुम्हें मालूम नहीं है कि इन स्त्रियोंका हृदय भेड़ियोंकी तरह कटोर होता है। तुम शोक न करो। महाराज! इस संसारमें कौन ऐसा पुरुष है, जो कामिनीयोंसे उगा न गया हो। ब्रह्मा, भूरा, भुवना और दुर्योधन—वे जिन स्त्रियोंके स्वाभाविक दुर्गुण हैं, वे सुखदायिनी कैसे हो सकती हैं? कालने किसको नहीं मार। चापक होनेपर किसको गौरव प्राप्त हुआ। धन-सम्पत्तिसे किसका मन भ्रान्त नहीं हुआ और युवती स्त्रियोंने किसको धोखा नहीं दिया।* राजन्! जिनका हृदय मदसे उन्मत्त रहता है, वे युवतियों स्वप्न और मायाके सम्पन्न मिथ्या हैं। वे किसको सुख दे सकती हैं, यह जानकर तुम निश्चित हो जाओ। महाप्ते! भगवान् लेकर, विष्णु तथा गौदावरी नदीको छोड़कर तीनों लोकोंमें दूसरा कोई ऐसा नहीं है, जो दुःखियोंको शरण दे सके।'

पुरोहितका यह कथन सुनकर राजाने यत्नपूर्वक अपने दुःखको दूर किया। वे गौदावरीके मध्यभागमें (जहाँ रेत थी) रहकर भगवान् शिव, विष्णु, ब्रह्मा, सूर्य, गङ्गा तथा अन्यान्य देवताओंकी

आराधना करने लगे। जो विपत्तिमें पड़नेपर तीर्थों और देवताओंका सेवन नहीं करता, वह कालके बलमें पड़ा हुआ जीव किस दशाको प्राप्त होगा। राजा पुरुषवा एकमात्र भगवान्के शरण हो उसुकतापूर्वक गौतमीका सेवन करने लगे। संसारकी ओरसे उनका मन हट गया और भगवान्के भजनमें उनकी बड़ी श्रद्धा हो गयी। उन्होंने स्त्रीयोंको साथ लेकर बहुत दक्षिणवाले अनेक यज्ञोंका अनुष्ठान किया। तबसे वह स्थान वेदद्वीप और यज्ञद्वीप कहलाने लगा। वहाँ सदा ही पूर्णिमाकी रातमें उर्वशी आया करती है। जो मनुष्य उस द्वीपकी प्रदक्षिण करता है, उसके द्वारा समुद्रसहित पृथ्वीकी परिक्रमा हो जाती है। जो पुण्यका यहाँ वेदों और यज्ञोंका स्मरण करता है, उसे वेदोंके स्वाध्याय और यज्ञोंके अनुष्ठानका फल मिलता है। उसको ऐतरीय ज्ञानना चाहिये। जहाँ ब्रह्मस्-तीर्थ है। उसे ही खरिखीर्य और निग्नभेदीर्य भी कहते हैं। राजा पुरुषवाके किसी भी कार्यमें कुछ भी निग्नता (न्यूनता) नहीं होती थी। एक ही कार्य उससे निग्नप्रेषक हुआ, यह कि वे सर्वथा उर्वशीयें आसक्त हो गये थे; परंतु गौतमी गङ्गा और महर्षि बसिष्ठने उनके इस निग्नताका भी भेदन कर दिया, इसलिये वह तीर्थ निग्नभेदके नामसे प्रसिद्ध हुआ। यह प्रत्यक्ष और प्रत्यक्ष दोनों प्रकारके अभीष्टकी सिद्धि देनेवाला है। जो निग्नभेदीर्यमें लक्ष्मण करके इन देवताओंका दर्शन करता है, उसके इस लोक और परलोकमें कुछ भी निग्न नहीं होता। वह सब प्रकारसे उन्नतिके प्राप्त हो स्वर्गमें हन्रकी भीति सुख योग्यता है।

* जो नाम लोके राजेन्द्र कामिनीधर उच्यते। चक्रवर्त्य नृपस्य चक्रवर्त्य कुशीसत्त॥

इति स्वाभाविकं यत्तां तः कथं सुखदेव्यः। कालेन को न निहतः कोऽर्थं गौरवमाप्तः॥

शिव न प्राप्तिः को च भोधिदि- को न उच्यतेः।

उसके आगे शङ्खहृद नामक तीर्थ है। वहाँ शङ्ख और गदा धारण करनेवाले भगवान् निवास करते हैं। उस तीर्थमें स्नान करके मनुष्य भयबन्धनसे मुक्त हो जाता है। वहाँका इतिहास यत्नाता है, जो भोग ओर मोक्ष देनेवाला है। पूर्वकलमें सत्ययुगके आरम्भमें ब्रह्माण्डके भीतर अनेक रूपधारी राक्षस उत्पन्न हुए, जो सामवेदका गान करनेवाले थे। ये बलीन्मत्त राक्षस हाथमें अवुध धारण किये मुझे खा जानेके निमित्त आये। उस समय मैंने अपनी रक्षाके लिये ऋगद्वारु भगवान् विष्णुको पुकारा। उन्होंने अपने चक्रसे राक्षसोंका

संहार करके पातालको निष्कण्टक और स्वर्गको शत्रुशून्य बना दिया। फिर उन्होंने अत्यन्त हर्षमें भरकर शङ्ख बजाया, जिससे समस्त राक्षस नष्ट हो गये। श्रीविष्णुके शङ्खके प्रभावसे जिस स्थानपर यह घटना हुई, वह शङ्खतीर्थ कहलाया, जो मनुष्योंके लिये सब प्रकारसे कल्याणकारक, समस्त अर्घोष्ट वस्तुओंका दाता, स्मरणमात्रसे मङ्गलदायक, आयु और आरोग्यका जनक तथा लक्ष्मी और पुत्रकी वृद्धि करनेवाला है। उसके महात्म्यके स्मरण अथवा पाठमात्रसे मनुष्य समस्त अभिलषित वस्तुओंको प्राप्त कर लेता है।

किष्किन्धातीर्थ और व्यासतीर्थकी महिमा

ब्रह्माजी कहते हैं—किष्किन्धातीर्थ बहुत विख्यात है, वह मनुष्योंकी सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाला और समस्त पापोंको शान्त करनेवाला है। वहाँ भगवान् शंकर निवास करते हैं। नारद! उस तीर्थके स्वरूपका वर्णन करता हूँ, भक्तिपूर्वक सुनो। पूर्वकालमें दशरथनन्दन भगवान् श्रीरामने किष्किन्धानिवासी वानरोंको साथ लेकर अब समस्त लोकोंको हलानेवाले रावणको युद्धमें सेना और पुत्रोंसहित मार डाला तब सीताको पुनः प्राप्त करके अपने भाई लक्ष्मण, महाबली वानर, बलवान् विभीषण और देवताओंके साथ वे स्वस्तिसंवनपूर्वक पुष्पक विमानसे अयोध्याकी ओर लौटे। पुष्पक विमान कुबेरका था। वह शीघ्रगामी और इच्छानुसार चलनेवाला था। भगवान् राम शत्रुओंका संहार करनेवाले और शरणाधीन पुरुषोंको शरण देनेवाले थे। उन्होंने विमानसे अयोध्या लौटते समय क्षणमें लोकपावनी गौतमी गङ्गाको देखा, जो समस्त अर्घोष्ट वस्तुओंको देनेवाली तथा मन और नेत्रोंके संतापका निवारण करनेवाली है। गङ्गाजीका दस्न



करके महाराज श्रीराम उनके तटपर उतरे और हनुमान् आदि सम्पूर्ण वानरोंको सम्बोधित करके हर्षगद्गद वाणीमें कहने लगे—'ये गौतमी गङ्गा सम्पूर्ण जीवोंकी जननी है। ये भोग तो देती ही हैं। मोक्ष भी दे सकती हैं। भयंकर पापोंका भी

संहार कर डालती हैं। इनकी समाप्ति करनेवाली दूसरी कौन नदी है, जिन्हें महर्षि श्रैतमने स्वको शरण देनेवाले भगवान् संकरकी आराधना करके जटसहित प्राप्त किया था। ये सम्पूर्ण अभिरक्षित फलोंकी जननी और अमङ्गलोंका नाश करनेवाली हैं। ये समस्त संसारको पवित्र करनेमें समर्थ हैं। समस्त सरिताओंकी जननी गङ्गाका आज प्रत्यक्ष दर्शन हुआ। मैं मन, बाणी और शरीरद्वारा सदा ही इन शरणागतवत्सला गङ्गाजीकी शरण सेता हूँ।

भगवान् श्रीरामका यह वचन सुनकर समस्त वानरोंने गङ्गाजीमें डुबकी लगायी और सम्पूर्ण लौकिक उपहारों तथा अनेक प्रकारके पुष्पोंद्वारा उनकी विधिवत् पूजा की। महाराज श्रीरामचन्द्रजीने श्रीमहादेवजीका यथबहु पूजन करके सर्वभक्षोपशुक्त वाक्योंद्वारा स्तवन किया। सम्पूर्ण वानरोंने भी प्रसन्न होकर नृत्य और गान किया। भगवान् श्रीरामने अपनी प्रिया जनकी तथा प्रेमी वानरोंके साथ सुखपूर्वक यह रात व्यतीत की। सबेरे उठकर भगवान् अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक गोदावरी देवीकी स्तुति करने लगे। फिर अपने भूषणोंका सम्मान करके वे वहाँ अनिर्बचनीय आनन्दका अनुभव करने लगे। उस निर्मल प्रभतामें सूर्योदय होनेपर विभीषणने दत्तारथनन्दन श्रीरामसे कहा—‘भगवन्! हमलोग इस तीर्थमें रहनेसे अभी तृप्त नहीं हुए। अतः कुछ समय और निवास करें। मेरा विचार है, चार रात और यहाँ ठहरें। फिर सब लोग साथ ही अयोध्या चलेंगे।’ विभीषणकी बातका वानरोंने भी अनुमोदन किया। फिर भगवान् शिवकी पूजा करते हुए चार रात और ठहरे। वहाँ महादेवजी सिद्धेश्वरके नामसे प्रसिद्ध थे और उनकी प्रभावसे रावण अत्यन्त प्रबल हो गया था। इस प्रकार सब लोग अपने द्वारा स्थापित किये हुए शिवलिङ्गकी पूजा करते

हुए पौर्व दिनेतक वहाँ ठहरे रहे। श्रीरामने अपने सम्पूर्ण सहायकोंके साथ शुद्धतिशुद्ध हृदयसे सम्पूर्ण शिवलिङ्गोंको मस्तक झुकाया किष्किन्धातीर्थवासी सभी वानरोंद्वारा सेवित होनेके कारण यह स्थान किष्किन्धातीर्थ कहल गया। ब्रह्म ज्ञान करनेवासे बड़े-बड़े पाप भी बह हो जाते हैं। भगवान्ने गौतमो गङ्गाके भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और कहा—‘माता गौतमी! मुझपर प्रसन्न होओ।’ इस तरह बारम्बार कहकर वे विस्मृत धितसे गोदावरीको देखते और उन्हें प्रणाम करते जाते थे। तबसे विद्वान् पुरुष उस पुण्यमय तीर्थको किष्किन्धातीर्थ कहने लगे। जो इस प्रसन्नका पाठ, स्मरण अथवा भक्तिपूर्वक श्रवण करता है, उसके पापको भी यह तीर्थ हर लेता है। फिर जो लोग वहाँ खान और दान करते हैं, उनके लिये तो कहना ही क्या है।

उसके बाद व्यासतीर्थ और प्राचेतसतीर्थ हैं। उनका माहात्म्य कालात्मा हूँ, सुनो। मेरे दस आनन्द पुत्र हुए, जो जगत्की सृष्टि करनेवाले थे। वे पृथ्वीका अन्त कहाँ है—इस बातका पता लगानेके लिये चले गये। तब मैंने पुनः अन्य पुत्रोंको उत्पन्न किया, किन्तु वे भी अपने भाइयोंकी खोज करनेके लिये चले गये। जो पहलेके गये थे, वे तो गये ही थे। वे भी लौटकर नहीं आये। उस समय परम बुद्धिमान् दिव्य आङ्गिरस नामक मुनि उत्पन्न हुए, जो वेद-वेदाङ्गोंके तत्त्वको जाननेवाले और सम्पूर्ण शास्त्रमें प्रवीण थे। वे अङ्गिराकी आज्ञासे पिताको नमस्कार करके तपस्याके लिये उद्यत हुए। गुरुजनोंमें गौरवकी दृष्टिसे माताका स्थान सबसे ऊँचा है तो भी पितासे बिना पूछे ही आङ्गिरसोंने तपस्या करनेका निश्चय कर लिया। इससे कुपति होकर माताने अपने पुत्रोंको शाप दिया—‘जो पुत्र मेरी अवहेलना करके तपस्यामें प्रवृत्त हुए हैं, उन्हें

किसी प्रकार सिद्धि नहीं प्राप्त होगी।' अङ्गिरसोंने अनेकों देशोंमें जाकर तपस्या की, किन्तु उन्हें कहीं भी सिद्धि न मिली, वे सब इधर-उधर दौड़ते रहे, परंतु सभी स्थानोंमें कोई न कोई विघ्न आ जाता था। कहीं राक्षसोंसे, कहीं मनुष्योंसे, कहीं युवती स्त्रियोंसे और कहीं अपने शरीरके ही दोषसे तपस्यामें विघ्न पड़ जाता था। इस प्रकार भटकते हुए सब अङ्गिरस तपस्वियोंमें श्रेष्ठ अगस्त्यजीके पास गये और उन्हें सम्झकार करके विनीत भावसे बोले—'भगवन्! हम अनेक उपायोंसे बारंबार प्रयत्न करते हैं तो भी किस दोषसे हमारे तपस्या सिद्ध नहीं होता? आप तपस्यामें सबसे बढ़े-बढ़े हैं; अतः कोई उपाय हो तो बतायें। ब्रह्मन्! आप ज्ञानियोंमें भी ज्ञानी, ब्रह्मणोंमें भी श्रेष्ठ ब्रह्म, संयमी पुरुषोंमें भी सबसे अधिक सत्य, दयावान्, प्रियकारी, मोक्षनु-य तथा देवसे रहित हैं। अतः हमने जो पूछा है, उसे बताइये। जो अहंकारी, दयार्हीन, गुरु-भेदारीकेत, असत्यकारी और क्रूर हैं, वे तत्त्वको नहीं जानते।'

अगस्त्यने थोड़ी देरतक ध्यान किया, उसके बाद उन सब लोगोंसे धीरे-धीरे कहा—'अपलोग सान्त्वित महात्मा हैं, ब्रह्माज्ञाने आपका प्रजापति बनाया है। जबतक आपलोगोंकी तपस्या पूर्ण नहीं हुई—इसमें कोई-न-कोई कारण अवश्य है। आपलोग उस कारणका स्मरण करें। ब्रह्मजीने पहले जिन मानस पुत्रोंकी उत्पत्ति किया था, वे चले गये और बहुत सुखी हुए, परंतु जो उनकी खोजमें गये, वे ही फिर आङ्गिरस हुए हैं। वे ही आप लोग हैं, जो समय पाकर इस रूपमें आये हैं। आप धीरे-धीरे प्रयत्न करते रहें तो प्रजापतिसे भी बढ़-चढ़कर हो जायेंगे—इसमें शंका भी संदेह

नहीं है। यहाँसे तपस्या करनेके लिये आप त्रिभुवनपावनी गङ्गाके तटपर जायें। संसारमें शिवकाम्य गङ्गाके सिवा दूसरा कोई सिद्धिका उपाय नहीं है। वहाँ पवन प्रदेशमें अश्रमके भीतर ज्ञानद मुख्यी पूज करें। वे आप लोगोंके सब संसर्गोंका निवारण करेंगे।'

तब अङ्गिरसोंने महर्षि अगस्त्यसे पूछा—'ज्ञानद किसको कहते हैं? ब्रह्म, विष्णु, महेश, आदित्य, चन्द्रमा, अग्नि और वरुण—इनमें कौन ज्ञानद है?' अगस्त्यजीने फिर कहा—'ज्ञानदका स्वस्व ब्रह्माता है' सुने। जो ब्रह्म है, वही अग्नि है। जो अग्नि है, वही सूर्य कहलाता है। जो सूर्य है, वही विष्णु है और जो विष्णु है, वही सूर्य। जो ब्रह्मा है, वही ब्रह्म है। जो ब्रह्म है, वही सब कुछ है। इस प्रकार जिसको एकही स्वरूपतत्त्वाका ज्ञान हो, उसीको ज्ञानद कहते हैं। देशिक, प्रेरक, व्याख्याकार, उपाध्याय और शरीरकर जनक आदि बहुत-से गुरु हैं, किन्तु उनमें जो ज्ञानदाता गुरु है, वह सबसे बड़ा है। वहाँ उस ज्ञानकी बात कही गयी है, जिससे भेद-बुद्धिका नाश हो। एकमात्र अद्वितीय शिव ही सब कुछ है। विद्वान् ब्राह्मण उन्हींका इन्द्र, मित्र और अग्नि आदि अनेक नामोंसे वर्णन करते हैं। अनेक नाम और अनेक रूपोंमें जो भगवान्के तत्त्वका वर्णन किया जाता है, वह अज्ञानीजनोंका उपकार करनेके लिये है।'

मुनिका यह वचन सुनकर वे गाथा-गान करते हुए वहाँसे चले गये। उनमेंसे पाँच तो उत्तर-गङ्गाके तटपर गये और पाँच दक्षिण-गङ्गाके। वहाँ महर्षि अगस्त्यके बताये हुए देवताओंकी विधिपूर्वक पूजा करने लगे विशेषतः मासनोंपर बैठकर वे तत्त्वका विचार किया करते थे। इससे

उनके ऊपर समस्त देवता प्रसन्न हुए और बोले—‘विश्वयोनि ब्रह्माजीने युगके आदिमें जो स्रष्टाके पदकी कल्पना की थी, वह इसलिये कि अधर्मोंकी निवृत्ति हो, वेदोंकी स्थापना हो, सम्पूर्ण लोकोंका उपकार हो, धर्म, अर्थ और कर्मकी सिद्धि हो तथा पुराण, स्मृति, वेद और धर्मशास्त्रोंके अर्थका ठीक-ठीक निश्चय हो। इसके अनुसार तुम सब लोगोंको जगत्-स्रष्टाका पद प्राप्त होगा। तुम सब उस पदके अनुरूप होओगे।’ नारद! वे क्रमशः धीरे-धीरे प्रजापति होंगे। जब अधर्म बढ़ेगा, वेदोंका पराभव होगा और उनपर संकट आयेगा, उस समय वेदोंका वद्वार करनेके लिये वे भावी व्यास होंगे। गङ्गाका उत्तम तट ही उनकी तपस्याका उत्तम स्थान होगा और वहाँ शिव, विष्णु, मैं सूर्य, अग्नि और जल—ये सब उपस्थित

रहेंगे। इनसे बढ़कर पवित्र और इनसे श्रेष्ठ कहीं कुछ भी नहीं है। केवल परब्रह्म ही इन सबके आकारोंमें प्रकट हुआ है। सर्वस्वरूप शिव, जो व्यापक तथा सम्पूर्ण भावपदार्थोंका रूप धारण करनेवाले हैं, समस्त प्राणियोंपर कृपा करनेके लिये उस तीर्थमें विशेष रूपसे रहते हैं। उनके साथ सम्पूर्ण देवता भी निवास करते हैं। भगवान् शिव सबपर अनुग्रह करनेवाले हैं। वे आङ्गिरस धर्मव्यास और वेदव्यासके नामसे प्रसिद्ध होंगे। उनका तीर्थ भी व्यासतीर्थके नामसे ही तीनों लोकोंमें विख्यात है। व्यासतीर्थ बहुत ही उत्तम है। उसका जल पापरूपी कीचड़को धोनेवाला, मोहरूप अन्धकार और मदका नाश करनेवाला तथा मनुष्योंको सब प्रकारकी सिद्धि देनेवाला है।



कुशतर्पण एवं प्रणीता-संगम-तीर्थकी महिमा

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! कुशतर्पण एवं प्रणीता-संगम नामक तीर्थ सब लोकोंमें प्रसिद्ध है। वे भोग और मोक्ष देनेवाले हैं, मैं उनके पापहारी स्वरूपका वर्णन करता हूँ, सुनो। विन्ध्यपर्वतके दक्षिणभागमें सद्य नामक महान् पर्वत है। उसीके शाखा-पर्वतोंसे गोदावरी और भीमरथी आदि नदियाँ निकली हैं वही विरजतीर्थ और एकवीरा नदी भी है। उस पर्वतकी महिमाका कोई वर्णन नहीं कर सकता। उसी सहायिकीके पश्चिम प्रदेशमें जो वृत्तान्त वदित हुआ था, वह गोपनीयसे भी गोपनीय है। साधात् वेदमें उसका वर्णन है। उसे देवता, मुनि, पितर और असुर भी नहीं जानते। वही गुह्य रहस्य आज मैं तुम्हारी प्रसन्नताके लिये प्रकट करता हूँ, वह श्रवणमात्रसे सम्पूर्ण अभोष्ट

वस्तुओंको देनेवाला है।

जो अश्वत्थ एवं अक्षर परमात्म है, उसे परम पुरुष जानना चाहिये। वही जब प्रकृतिसे संयुक्त होता है, तब क्षर एवं अपर कहलाता है। पुरुष पहले निराकारसे साकाररूपमें प्रकट हुआ फिर उससे जलकी उत्पत्ति हुई। जलसे पुरुषका प्रादुर्भाव हुआ। फिर जल और पुरुषसे कमल प्रकट हुआ। उस कमलसे मेरी उत्पत्ति हुई। मुने! पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश—ये पाँच तत्त्व मुझसे पहले एक ही समयमें प्रकट हुए थे। मैंने उत्पन्न होनेपर सबसे पहले इन्हींको देखा और कोई स्थावर-जङ्गम भूत मेरे देखनेमें नहीं आये। उस समय वेद नहीं प्रकट हुए थे। दूसरी कोई वस्तु ही मैंने नहीं देखी। अधिक क्या कहूँ—जिनसे

स्वयं मेरी उत्पत्ति हुई, उनको भी मैं न देख सका। उस समय मैं मौन बैठ रहा। इतनेमें ही उत्तम आकाशवाणी सुनयी दी—'ब्रह्मन्! तुम स्थावर और अजगम जगत्की सृष्टि करो।' नरद! वह आकाशवाणी सुनकर मैंने कहा—'कैसे सृष्टि करूँगा, कहाँ सृष्टि करूँगा और किस साधनसे इस जगत्की सृष्टि करूँगा?' आकाशवाणीने पुनः उत्तर दिया—'ब्रह्मन्! यज्ञ करो, इससे तुम्हें शक्ति प्राप्त होगी। यज्ञ ही विष्णु है—यह सनातन श्रुतिका कथन है। यज्ञ करनेवालोंके लिये इस लोक और परलोकमें कर्म-सौ वस्तु असाध्य है।' मैंने फिर पूछा—'कहाँ और किस वस्तुसे यज्ञ करें?' पुनः आकाशवाणी सुन पड़ी—'कर्मभूमिमें धनेश्वर यज्ञपुरुषका यजन करो। स्वयं पुरुष ही तुम्हारे यज्ञके साधन होंगे। तुम उन्हींसे उनका यजन करो। यज्ञ, स्वाहा, स्वधा, धन्य, ब्राह्मण और हविष्य आदि सब कुछ जीहरी ही है। उन्हींसे सबकी प्राप्ति होती है।'।

नरद! उस समय भगीरथी, नर्मदा, यमुना, तापी, सरस्वती, गौतमी, सधु, नन्द, सरोवर तथा अन्यान्य विर्यल सरिताएँ नहीं थीं। अतः मैंने पूछा—'कर्मभूमि कहाँ है?' आकाशवाणीसे उत्तर मिला—'पेरुगिरिके दक्षिण हिमाक्ष, विन्ध्य और सह्यासे भी दक्षिण जो प्रदेश है, उन्हें कर्मभूमि कहते हैं। वह सबके लिये सर्वदा कल्पवृक्षका उदय करनेवाली है।' यह सुनकर मैंने पेरुगिरिके तट पर दिया और सह्यागिरिके समीप आकर सोचने लगा—'कहाँ रहूँ?' इतनेमें ही फिर आकाशवाणी हुई—'इधर आओ। यहाँ रहो और बैठकर यज्ञका संकल्प करो। संकल्प करनेके बाद सम्पूर्ण वेद प्रकट होंगे। फिर वे जो कुछ भी कहें, वही करो।'।

वदनन्तर इतिहास, पुराण तथा अन्य जो भी ऋग्वेद शास्त्र है, वह यैरे मुखमें स्वतः उग्र गता।

और मुझे उसका स्मरण होने लगा, तत्काल ही सम्पूर्ण वेदार्थ भी मुझे ज्ञात हो गया। तब मैंने लोकविख्यात पुरुषसूक्तका स्मरण किया। वेदमें जो यज्ञकी सामग्री बतायी गयी थी, उसके अनुसार ही मैंने उसकी कल्पना की। वेदोक्त प्रकारसे ही यज्ञपात्र भी कल्पित हुए। मैंने अहाँ पवित्रता और संयमपूर्वक बैठकर यज्ञकी दीक्षा ग्रहण की, वह यैरे यज्ञका स्थान मेरे ही नामसे प्रसिद्ध हुआ। वह ब्रह्मागिरि कहलाने लगा। ब्रह्मागिरिसे पूर्वकी ओर चौरासी हजार योजनतक मेरे यज्ञका स्थान है। उस भूमिके मध्यभागमें वेदी थी तथा दक्षिणभागमें गार्हपत्य-अग्निकी स्थापना हुई। इसी प्रकार एक ओर आहवनीय अग्निकी प्रतिष्ठा की गयी। श्रुतिमें यह कहा है कि बिना फनोके यज्ञ सिद्ध नहीं होता, इसलिये मैंने तटोके दो भाग किये। पूर्वादसे मेरी पत्नी प्रकट हुई, जो यज्ञसिद्धिके लिये सहधर्मिणी बनी। उत्तरादसे मैं स्वयं पुरुषरूपमें स्थित हुआ। श्रुति भी कहती है 'अद्वौ चाया'—पत्नी आधा अन्न है। नरद! मैंने वसन्त-ऋतुको उत्तम घृत बनाया। घोषसे ईधनका काम लिया। शरद-ऋतुको हविष्य बनाया। वर्षाको कुराके स्थानमें रखा। सात छन्द सत्रा परिधि हुए। कृता, काला और निषेध—ये क्रमशः समिधा, पात्र और कुरा माने गये। ओ अन्नदि और अनन्त काल है, वही भूपके रूपमें कल्पित हुआ। इसके बाद पशु बर्धनेके लिये रस्सीकी आवश्यक्ता हुई। सत्त्व आदि तीनों गुण ही रस्सीकी जगह काम आये, किंतु उसमें बर्धनेके लिये पशुका अभ्रम था। तब मैंने आकाशवाणीसे कहा—'बिना पशुके यह यज्ञ पूर्ण नहीं हो सकता।' उत्तर मिला—'पुरुषसूक्तसे परमपुरुषको स्तुति करो।'।

'बहुत अच्छा'—कहकर मैंने अपने जन्मदाता

देवाधि जनार्दनका भक्तिपूर्वक पुरुषसूक्तके मन्त्रोंद्वारा स्तवन किया। उस समय फिर आकाशवाणी हुई—‘ब्रह्मन् तुम मुझे ही पशु बनाओ।’ मैं समझ गया, ये मेरे जन्मदाता अधिनासी पुरुष हैं। मैंने त्रिगुणमयी होरियोंसे कालसूयके पार्श्वभागमें उन्हें बाँध दिया। सबसे पहले प्रकट हुए पुरुषरूपी पशुका, जो कुशोंपर विराजमान थे, प्रोक्षण किया। इसी समय पुरुषसे वे सब वस्तुएँ प्रकट हुई—उनके मुखसे ब्राह्मण, भुजाओंसे ऋषिय, मुखसे इन्द्र और अग्नि, प्राणसे वायु, कानसे दिशाएँ तथा मस्तकसे सम्पूर्ण स्वर्गलोककी उत्पत्ति हुई। मनसे चन्द्रमा, नेत्रसे सूर्य, नाभिसे अन्तरिक्ष दोनों बाँधोंसे वैश्व और धरणीसे शूद्र तथा पृथ्वीका प्राकट्य हुआ। रोमकूपोंसे ऋषि और केशोंसे ओषधियाँ प्रकट हुईं नखोंसे ग्रामीण तथा जंगली पशु हुए। पायु और उपस्थसे कृमि, कीट एवं पतङ्ग आदिकर जन्म हुआ। इनके सिवा जो कुछ भी स्वर्ग-जङ्गल तथा दृश्य-अदृश्य जगत् है, वह सब पुरुषसे प्रकट हुआ। इसी समय भगवान्‌की दैवी ध्वनीने पुनः मुझसे कहा—‘ब्रह्मन्! सब पूरा हो गया। मनोवाञ्छित सृष्टि उत्पन्न हुई। इस समय जितने पात्र हैं उन सबकी अग्रिमें आहुति कर दो। यूप, प्रणीता, कुश, ऋत्विक्, यज्ञ, सुक्ल, पुरुष और पाश—सबका विसर्जन कर दो।’

आकाशवाणीके इतना कहते ही मैंने क्रमशः गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि तथा आहवनीयाग्रिमें हवन किया। प्रत्येक होममें विश्वकी उत्पत्तिके कारणभूत पुरुषका ध्यान किया। लोककर्त्ता जगन्नाथ भगवान् विष्णु शुक्लरूप धारण करके आहवनीयाग्रिमें स्थित हुए, श्यामरूपसे दक्षिणाग्रिमें और पौरुषरूपसे गार्हपत्याग्रिमें स्थित हुए। उन सभी देशोंमें भगवान् विष्णुका नित्य निवास है। कोई ऐसा स्थान या वस्तु नहीं है, जहाँ विश्वयोनि भगवान् विष्णु न

हों। उस भ्रममें मनोद्वारा मैंने प्रणीतापात्रका भी सम्पादन किया था। वह प्रणीताका जल ही प्रणीत नदीके रूपमें परिणत हुआ। फिर कुशोंसे मार्जन करके प्रणीताका मैंने विसर्जन कर दिया। मार्जन करते समय जो प्रणीताके जलकी बूँदें इधर-उधर गिरें, वे गुणवान् तीर्थोंके रूपमें प्रकट हुईं। वे तीर्थ ज्ञान करनेसे यज्ञके फल देनेवाले हैं। देवाधिदेव भगवान् विष्णुने जिसे सदा सुरक्षेभित किया है, वह गौतमी वैकुण्ठ धामपर पहुँचनेके लिये सीढ़ियोंकी पंक्ति है। समार्जन करनेके बाद जहाँ कुश इस पृथ्वीपर गिरें थे, वह स्वयं कुशावर्तण नामक तीर्थ हुआ, जो बहुत पुण्यफल देनेवाला है। मैंने किन्ध्वपर्वतके उत्तर जहाँ यूप खाड़ा किया था, वह स्थान भगवान् विष्णुका आश्रय बन्ध तथा वह यूप अक्षयवटके रूपमें परिणत हुआ। वह वृक्ष नित्य एवं कालस्वरूप है और स्मरण करनेमात्रसे यज्ञका पुण्य देनेवाला है। मेरे यज्ञका मुख्य स्थापन वह दण्डकारण्य है। जब यज्ञ पूरा हुआ, तब मैंने भक्तिपूर्वक भगवान् विष्णुको प्रसन्न किया। जिनमें वेदमें विराट् कहते हैं, जिनसे भूर्तिमान् जगत्‌की उत्पत्ति हुई है तथा जिनसे मेरा जन्म हुआ है, उन देवदेवधर भगवान् विष्णुकी आराधना करके मैंने उनका विसर्जन कर दिया।

नरद! मेरे देवयजनका स्थान सींसीस योजन है। आज भी वहाँ तीन कुण्ड हैं, जो यज्ञेश्वरस्वरूप हैं। तीर्थोंसे वह स्थान मेरे देवयजनके नामसे प्रसिद्ध हुआ। वहाँ रहनेवाले जो कीड़े-मकोड़े आदि हैं, वे भी अन्तर्में मोक्षके भागी होते हैं। दण्डकारण्य धर्म और मोक्षका बीज बसाया जाता है। विशेषतः वह प्रदेश, जिसे गौतमी गङ्गाने स्पर्श किया है, अधिक पुण्यमय हो गया है। प्रणीत-संगम तथा कुशावर्तण-तीर्थमें जो ज्ञान और दान आदि करते हैं, वे

परमपदको प्राप्त होते हैं। उनके वृक्षन्तका स्मरण, पठन अथवा धर्तिकपूर्वक श्रवण भी मनुष्योंकी समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला और भोग एवं मोक्षको देनेवाला है। मुने! कुशतर्पणतीर्थ वसोसे भी उच्च

है। चतुर्वर जगत्में इसके सम्मान दूसरा कोई भी तीर्थ नहीं है। इसके स्मरणश्रवणसे ब्रह्महत्या आदि पापोंका नाश हो जाता है। नारद! यह तीर्थ इस पृथ्वीपर स्वर्गका द्वार बताया जाता है।

सारस्वत तथा चिच्छिकतीर्थका माहात्म्य

ब्रह्माजी कहते हैं—सारस्वत नामक तीर्थ समस्त अधोह वस्तुओंके साथ भोग और मोक्षको भी देनेवाला है। यह मनुष्योंके साथ पापोंका नशक, समस्त रोगोंको दूर करनेवाला और सम्पूर्ण सिद्धियोंका दाता है। नारद! उसके माहात्म्यका वृत्तान्त विस्तारपूर्वक सुनो। पुण्योत्कटसे पूर्व और गीतमीके दक्षिणतटपर एक विश्वविख्यात पर्वत है, जिसे शुभगिरि कहते हैं। शाकल्य नामसे प्रसिद्ध एक परम निष्ठवान् मुनि उस पुण्यमय शुभ पर्वतपर उत्तम तपस्या कर रहे थे। गीतमीके

सभी भूतगण प्रतिदिन प्रणाम और उनका स्तवन किया करते थे। ऋषियों, गन्धर्वों तथा देवताओंसे संवित उस परमपवित्र पर्वतपर देवताओं और ब्राह्मणोंको भव पहुँचानेवाला परशु नामक एक राक्षस रहता था। वह यज्ञसे द्वेष रखता, ब्राह्मणोंकी हत्या करता और इच्छानुसार अनेक रूप धारण करके वनमें घिबरता रहता था। जहाँ विद्वान् ब्राह्मण शाकल्यमुनि रहते थे, वहाँ भी वह महात्मापी राक्षस आया करता था। विश्वर शाकल्य बड़े तेजस्वी थे। चापाघाटी परशु प्रतिदिन उन्हें उठा ले जाने अथवा मार डालनेकी चेष्टामें लगा रहता था, किन्तु वह अपने उद्योगमें सफल न हो सका। एक दिन द्विजश्रेष्ठ शाकल्य देवताओंकी पूजा करने भोजन करनेकी इच्छासे आश्रमपर आये। इसी समय परशु ब्राह्मणका रूप धारण करके किसी कन्याको साथ लिये वहाँ आया। इसका शरीर शिथिल हो गया था, सिरके बाल पक गये थे और वह अल्पजन्म दुर्बल दिखायी देता था। उसने शाकल्यसे कहा—‘ब्रह्मन्! आप मुझे और इस कन्याको भोजनार्थी जानिये। मानद! हमत्सेन अतिथ्यके समयपर आये हैं। आप कृतकृत्य हो गये। इस संसारमें वे ही धन्य हैं, जिनके घरसे अतिथि अपनी अधिलावाको पूर्ण करके निकलते हैं। जो अतिथि सत्कार नहीं करते, वे जाँते हुए भी मृतकके समान हैं। जो



तटपर रहकर तपस्या करनेवाले उन श्रेष्ठ साहसिकों

भोजनके लिये बैठकर भी अपने लिये बने हुए 'अपना अन्नदाता बनाऊँगा'।

अन्नको अतिथिके लिये दे देता है, उसने मना पृथ्वीका दान कर दिया।^{१*}

यह सुनकर शकल्यने कहा—'मैं तुम्हें भोजन देता हूँ।' यों कहकर उन्होंने उसे आसनपर बिठाया और विधिवत् पूजा करके भोजन परोसा। परन्तुने हाथमें आचमनके लिये जल लेकर कहा—'दूरसे दूके-धौंटे आये हुए अतिथिके पीस देवता भी आते हैं। जब अतिथि तृप्त होता है तब वे भी तृप्त हो जाते हैं; यदि अतिथिकी तृप्ति न हुई तो वे भी अतृप्त रह जाते हैं। अतिथि और निन्दक—ये दोनों विश्वके शत्रु हैं। निन्दक तो पाप हर लेता है और अतिथि स्वर्गकी सीढ़ी बन जाता है। जो भर्गसे बचकर आये हुए अतिथिको अवहेलनापूर्वक देखता है, उसके धर्म, यज्ञ और लक्ष्मीका तत्काल नाश हो जाता है।† इसलिये मैं दूक-माँदा अभ्यागत आपसे कुछ याचना करता हूँ। अगर मुझे अभीष्ट वस्तु देंगे, तभी भोजन करूँगा; अन्यथा नहीं।' शकल्यने कहा—'उसे दिया हुआ ही समझो। तुम निश्चिन्त होकर भोजन करो।' तब रामलौमें क्रोध पराजुने कहा—'मुने! मैं पके बालोंवाला दुर्बल एवं बूढ़ा काष्ठान नहीं तुम्हारा शत्रु हूँ। तुम्हें मरकर खा जानेका अवसर देखते-देखते मेरे कितने वर्ष व्यतीत हो गये। जैसे छोड़ा जल गर्माग्न में सूख जाता है, वैसे ही मेरे सब अङ्ग भूखके मारे सूख रहे हैं। अतः मैं तुम्हारे अनुचरोंसहित तुम्हें ले चलूँगा और

पराजुका वह कथ-पुनका शकल्यने कहा—'जो उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए हैं और जिन्हें सम्पूर्ण साधनोंका ज्ञान है, उनकी की हुई प्रतिज्ञा कभी झूठी नहीं होती अतः सखे! तुम्हें जैसा उचित जान पड़े, करो।' यद्यपि येरी एक बात सुन लो; कर्त्तव्य के प्रमाणोंका कर्त्तव्य है कि जो मानेको उद्यत हों, उनसे भी भित्तकी ही बात कहे। यह बात ध्यानाग्न रखो कि मैं काष्ठान हूँ; मेरा शरीर यज्ञके समान कठोर है और भगवान् श्रीहरि मेरी सब ओरसे रक्षा करने हैं। भगवान् विष्णु मेरे पैरोंको रक्ष करें। इस कारणसे मेरे प्रसक्तकी, भगवान् वामदे के भक्तियोंकी, धर्मयुक्त पृष्ठभागकी, कृष्ण हृदयकी, विष्णुकी अंगुलियोंकी, भाणोंके अधोऽङ्ग प्रसक्तों की, भगवान् गङ्गाकी, धनेश दोनों कायोंकी रक्षा भगवान् भूय सब ओरसे मेरे शरीरकी रक्षा करें। वायु प्रकारकी आपत्तियोंमें एकमात्र साक्षात् भगवान् नारायण ही मेरे लिये शरण हैं।'

यों कहकर शकल्यने कहा—'रक्षसराय! अब तुम्हारी पत्नी को तो इस समय अलस्य छोड़कर मझे यहाँसे उठा ले चलो या यहीं मुखपूर्वक खा जाओ। उनके यों कहनेपर भी वह लक्ष्म खायेको तृप्त हो गया। सच है, पापीके हृदयमें करुणाका एक कण भी नहीं होता। बड़ी-बड़ी दानों और विद्वान् मुख बनाये जब वह काष्ठानके समीप पहुँचा तब उन्हें देखकर

* त एव भन्वा लोकेऽस्मिन् वेदमतिथयो गृहान्। पूर्वाभिलाषा निर्वोक्तं जीवन्तोऽपि मुक्ताः परे॥
भोजने शुचिष्ठे तु अलसत्वं कल्पितं तु यत्। अतिथिभ्यस्तु को दद्यात्त तैव वस्तुधत्॥

(१६३। १५-१६)

† अतिथिवाचकी ५ द्वावेरी विद्वान्भूमी, अन्वादी नरेन्द्रायनदिदि. स्वर्गसंक्रमः॥
अभ्यागतं पथि शान्तिं सखेयं सोऽपितीक्ष्णः। तत्त्वानन्देन नन्दन्ति तस्य धर्मवशात्शिव॥

(१६३। २०-२१)

बोला—'विप्रवर! तुमको तो शङ्ख, चक्र और गदा हाथमें लिये देखता हूँ। तुम्हारे सहस्रों चरण,



सहस्रों भस्त्रक, सहस्रों नेत्र और सहस्रों हाथ हैं। तुम सर्वव्यापी दिखायी देते हो। सम्पूर्ण भूतोंके एकमात्र निवास हो। तुम्हारा स्वरूप छन्दोमय है। तुम जगन्मय हो। इस रूपमें आज मैं तुम्हें देखता हूँ। तुम्हारा पहला शरीर इस समय नहीं है। हमलिये मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ—अब तुम्हीं मुझे शरण दो। महामते! मुझे ज्ञान प्रदान करो और ऐसा कोई तीर्थ बताओ, जहाँ मेरा पापोंसे उद्धार करनेवाला हो। ब्रह्मन्! महापुरुषोंका दर्शन निष्कल नहीं होता, भले ही वह द्वेष अथवा अज्ञानसे ही क्यों न हुआ हो। लोहका परसपण्डितसे प्रसङ्ग या प्रमादसे भी स्पर्श हो जाय तो भी वह उसे सोना ही बनाता है।*

राक्षसका यह वचन सुनकर शाकस्यको बड़ी दया आयी। वे बोले—'दैत्यराज! तुम्हें शीघ्र ही सरस्वतीका वरदान प्राप्त होगा इससे तुममें भगवान्‌स्तवनकी शक्ति आ जायगी। फिर तुम भगवान्‌ जनार्दनकी स्तुति करना। मनोवाञ्छित वस्तुकी प्राप्तिके लिये श्रीनारायणकी स्तुतिके सिवा दूसरा कोई साधन नहीं है।' 'बहुत अच्छा' कहकर परशु त्रिभुवनरावनी गङ्गाके तटपर गया और स्नान करके पवित्र हो गङ्गाजीको ओर मुँह करके खड़ा हुआ। उसी समय उसने देखा, शाकस्य मुनिके कथनानुसार जगन्जयनी सरस्वती सामने खड़ी हैं। उनका रूप दिव्य है। उन्होंने दिव्य चन्दनका लेप कर रखा है। संसारकी जड़ता दूर करनेवाली जगन्मता जगदम्बा भुवनेश्वरीका दर्शन करके परशुने विनीतभावसे कहा—'देवि। मेरे गुरु शाकस्यने कहा है कि तुम लक्ष्मीकान्त भगवान्‌ गरुडध्वजकी स्तुति करो आपके प्रसादसे वह शक्ति मुझे प्राप्त हो जाय—ऐसी कृपा कीजिये।' सरस्वतीने 'तद्यस्तु' कहा। उनकी कृपासे शक्ति पाकर परशुने भगवान्‌ जनार्दनकी भौति-भौतिके षचनोंद्वारा स्तुति की। इससे भगवान्‌ श्रीहरि बहुत संतुष्ट हुए। उन कृपासिन्धुने राक्षसको वरदान दिया—'तुम्हारे सब मनोरथ पूर्ण होंगे।'

इस प्रकार शाकस्य मुनि, गौतमी गङ्गा, सरस्वती देवी तथा भगवान्‌ नरसिंहके प्रसादसे वह राक्षस महापापी होनेपर भी स्वर्गलोकमें चला गया। जिनके चरणकमलोंमें सम्पूर्ण तीर्थोंका निवास है, उन शार्ङ्गधनुषधारी भगवान्‌ विष्णुकी कृपाका ही यह फल है। तबसे वह तीर्थ सारस्वत

* महतां दर्शनं ब्रह्मन् जायते न हि निष्कलम्। द्वेषद्वन्द्वतो वापि प्रसङ्गाद्वा प्रमादतः॥

अवसःस्पर्शसंस्पर्शे स्वप्नवादेव जायते।

नामसे विख्यात हुआ। वहाँ स्नान और दान करनेसे मनुष्य श्रीविष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

चिञ्चिकतैर्ध सब रोगोंका नाश, सब प्रकारकी चिन्ताओंका निवारण और मनुष्योंको सब प्रकारसे शान्तिका दान करनेवाला है। उस तीर्थके स्वरूपका वर्णन करता हूँ, पूर्वोक्त शुभ्रगिरिपर, जहाँ गौतमीके तटतटपर भगवान् गदाधर विराजमान हैं, पक्षियोंका राजा चिञ्चिक रहता था। इसीको भेरुच्छ भी कहते हैं। वह मांसाहारी पक्षी सदा उस पर्वतपर ही रहता था। वहाँ नाना प्रकारके फूल और फलोंसे सदैव हुए तथा सभी ऋतुओंमें फूलनेवाले वृक्ष व्याप्त थे। श्रेष्ठ ब्राह्मण भी उस पर्वतके शिखरपर निवास करते थे। गौतमी नद्दासे उस पर्वतकी शोभा और भी बढ़ गयी थी। इस प्रकार वह शुभ्रगिरि विविध गुणोंसे सम्पन्न और अनेकोंने मुनिजनोंसे शिरा हुआ था। एक दिन पूर्वदेसके राजा एवमान् जो सत्रियधर्मपरायण, श्रीसम्पन्न और देवताओं तथा ब्राह्मणोंके रक्षक थे, बहुत बड़ी सेना और पुरोहितके साथ वनमें आये। वनमें घूमते-घूमते धक्कर किसी समय वे एक वृक्षके नीचे आये, जो गौतमीके तटपर था। बहुत से पक्षी उस वृक्षपर निवास करते थे। वहाँ पहुँचकर राजाने विविध पक्षीको देखा, जिसके दो मुँह थे। वह स्थूलकाय और सुन्दर था। उसे चिन्तामें निमग्न देख राजाने पूछा—‘तुम दो मुखवाले पक्षीके रूपमें कौन हो? चिन्तित से दिखायी देते हो। यहाँ तो कोई भी दुःखसे पीड़ित नहीं है। फिर तुम कैसे कह पा रहे हो?’

राजाके इस प्रश्नसे पक्षीका मन कुछ आश्चर्य हुआ। उसने बारम्बार लम्बी साँसे लेकर धीरे धीरे कहा—‘राजन्! मुझसे न तो दूसरोंको भय है और न दूसरोंसे मुझे भयकी आशङ्का है। यह पर्वत भौंति-भौतिके फूलों और फलोंसे भरा है। अनेकानेक



मुनि वहाँ निवास करते हैं। फिर भी यह पर्वत मुझे सूना ही दिखायी देता है। अतः मैं अपने मनिये शोक करता हूँ। मुझे न तो यहाँ कुछ सुख मिलता है और न मेरी कभी तृप्ति ही होती है। इतना ही नहीं, मैं निद्रा, विश्राम और शान्तिसे भी वञ्चित हूँ।’ दो मुखवाले पक्षीकी यह बात सुनकर राजाको बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने पूछा—‘तुम कौन हो? तुमने कौन-सा पाप किया है? और क्यों तुम्हें यह पर्वत सूना दिखायी देता है? यहाँ रहनेवाले प्राणी तो एक मुखसे ही तृप्त रहते हैं। तुम्हारे तो दो मुख हैं। तुम्हें क्यों नहीं तृप्ति होती? तुमने इस जन्ममें अथवा पूर्वजन्ममें कौन-सा पाप किया है? ये सब बातें मुझसे सच-सच बताओ। मैं तुम्हें महान् भयसे बचाऊँगा।’

चिञ्चिकने पुनः लंबी साँस लेकर राजासे कहा—‘महाराज मैं तुम्हें अपने पूर्वजन्मका वृत्तन्त सुनता हूँ, सुनो! पूर्वजन्ममें मैं वेद-वेदाङ्गोंमें पाण्डित्य श्रेष्ठ ब्राह्मण था। उत्तम कुलमें मेरा जन्म हुआ था और अच्छे पण्डितके रूपमें

मेरे प्रसिद्धि थी, किंतु मैं सबका कार्य निगलनेवाला और कलहप्रिय था। लोगोंके मुँहपर कुछ और कहता तथा पीठ-पीछे कुछ और। दूसरोंकी उन्नति देखकर सदा दुःखी होता और मया फैलाकर संसारको तगा करता था। मैं कृतघ्न, असत्यवादी, परनिन्दाकुशल, मित्रोही, स्वमित्रोही, गुरुोही, सम्मानार्थी और अत्यन्त निर्दय था। मन, वाणी और क्रियाद्वारा बहुत लोगोंको कष्ट पहुँचाता था। दूसरोंकी हिंसा करना ही मेरा सदाका मनोरञ्जन था। स्त्री-पुरुषके जोड़ेमें फूट डाल देना, समूह-के-समूहका विभक्त करना, मर्यादा तोड़ना आदि दुष्कर्म मैं बिना विषादे किया करता था। विद्वान् पुरुषोंकी सेवासे दूर ही रहता था। तीनों लोकोंमें मेरे-जैसा पापी दूसरा कोई नहीं था। इसीसे मेरे दो मुँह हो गये। दूसरोंको दुःख देनेसे मैं स्वयं भी दुःखका भागी हुआ हूँ और इसीलिये यह पर्वत सूना दिखायी देता है। राजन्! और भी बर्गयुक्त बचन सुनो, जिसके पालन किये बिना ब्रह्महत्याके समान पाप लगता है। क्षत्रिय युद्धमें जाकर अधिक युद्धसे अन्यत्र भी यदि भागनेवाले, इधियार रख देनेवाले, अपना विश्वास करनेवाले, युद्धमें पीठ दिखानेवाले, अपरिचित, बैठे हुए तथा 'मैं डरता हूँ' यों कहनेवाले मनुष्योंको मार डालता है तो उसे ब्रह्महत्यारा कहते हैं। जो सामने प्रिय बोलता, परोक्षमें कटुवचन कहता, मनमें दूसरी बात सोचता, वाणीसे दूसरी बात कहता और क्रियारूपमें सदा दूसरा ही कार्य करता है, जो गुरुजनोंकी सपथ खाता, द्वेष रखता, ब्राह्मणोंकी

निन्दा करता और शूद्र-मूढकी विनय दिखाता, वह पापका ब्रह्महत्यारा है। जो द्वेषवश देवता, केंद्र, अध्यात्मशास्त्र, धर्म और ब्राह्मणके सङ्गकी निन्दा करता है, वह ब्रह्मघाती है।" राजन्! मैं ऐसा ही था तो भी लज्जित दिखानेके लिये सदाकारी-सत्र बना रहता था; इससे मुझे पक्षी होना पड़ा है। इस अवस्थामें छनेपर भी मुझसे कहीं कुछ पुण्यकर्म भी बन गया था, जिससे मुझे स्वतः ही अपने पूर्वजन्मकी कलोंका स्मरण हो आया है।"

चिन्तककी बात सुनकर राजा पथमानको बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने पूछा—'किस कर्मसे तुम्हारी मुक्ति होगी?' उसने कहा—'सुन्नत! गौतमीके उत्तरतटपर गदाधर तपस्य तीर्थ है। वही मुझे से चलो। वह तीर्थ परम पवित्र और सब फलोंका वात करनेवाला है। मैंने बड़े-बड़े मुनियोंसे सुना है कि वह सब अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाला है। गौतमी गङ्गा तथा भगवान् विष्णुके सिवा दूसरा कोई कलेशोंका नाश करनेवाला नहीं है। मैं चाहता हूँ 'सर्वतोभावेन' उस तीर्थका दर्शन करूँ। किंतु मेरे प्रयत्नसे यह कभी सम्भव नहीं है। भला, पापियोंको मनेवाञ्छित वस्तुकी प्राप्ति कैसे हो सकती है। वीर! मैं यत्न करनेपर भी उस तीर्थका दर्शन नहीं कर पाता। यह कार्य मेरे लिये अत्यन्त दुष्कर है। तुम्हारी कृपा हो तो मैं भगवान् गदाधरका दर्शन कर सकता हूँ, भगवान् करुणाके सागर हैं। वे बिना बताये ही सबके दुःखोंको जानते हैं। उनका दर्शन कर लेनेपर पुनः मनुष्योंको सांसारिक

* प्रत्यक्ष च प्रियं यदि परोक्षे परमार्थि च। जन्मदुष्टि जन्मसन्मत्करोत्यन्यसदैव यः॥
गुरुणा सत्यं कर्तुं द्रष्टा ब्राह्मणनिन्दकः। धिक्कविनीतः पापकमा स तु स्याद्ब्रह्मघातकः॥
देव वेदव्याघातकं धर्मनाशकमङ्गुलिम्। एतानिन्दति यो द्वैतस्तु स तु स्याद्ब्रह्मघातकः॥

स्वर्गलोकका अनुभव नहीं करना पड़ता। राजन् ! मैं तुम्हारे प्रसादसे भगवान्‌का दर्शन करते ही स्वर्गलोकको चला आऊँगा।'

पक्षीके यों कहनेपर राजा पवमानने उसे उठा लिया और ले जाकर उसे गौतमी गङ्गा तथा भगवान् गदाधरका दर्शन कराया। विचित्रकने स्नान करके त्रैलोक्यपावनी गङ्गासे कहा—'महा गौतमी। तुम तीनों लोकोंको पवित्र करनेवासी हो। मनुष्य जबतक तुम्हारा दर्शन नहीं करता, तभीतक इस लोक और परलोकमें पापकी कहलाता है। यद्यपि मैंने सब प्रकारके पाप किये हैं तो भी अब तुम्हारी तरणमें आया हूँ। मेरा उद्धार करो। तुम भगवान् विष्णुके चरणकमलोंसे

निकली हो। संसारके प्राणियोंकी तुम्हारे सिवा कहीं कोई भी गति नहीं है।'

पक्षीका अन्तःकरण श्रद्धासे शुद्ध हो गया था। उसने एकमात्र गङ्गाकी शरण ली और 'गङ्गे ! मेरी रक्षा करो' इस प्रकार कहते हुए स्नान किया। तदनन्तर भगवान् गदाधरको प्रणाम करके राजा पवमानसे विदा ले पर्वतनिवासियोंके देखते-देखते वह स्वर्गमें चला गया। पवमान भी अपनी सेनाके साथ अपने नगरको लौट गये। तबसे वेदवेत्ता विद्वानोंने उस तीर्थका नाम पावमानतीर्थ, विचित्रकतीर्थ और गदाधरतीर्थ रख दिया। उस तीर्थमें किया हुआ पुण्यकर्म कोटि-कोटिगुना हो जाता है।

भद्रतीर्थ, पतत्रितीर्थ और विप्रतीर्थकी महिमा

ब्रह्माजी कहते हैं—भद्रतीर्थ सब प्रकारके अनिष्टोंका निवारण करनेवाला है। यह सभस्त पापोंका नाशक तथा परम शान्तिदायक है। विश्वकर्माकी पुत्री तथा भगवान् सूर्यकी पतिव्रता एवं प्रिया भार्या हैं। छाया भी उनकी ही भार्या हैं। छायाके पुत्र शनैश्चर हैं। शनैश्चरकी महिन विष्टि हुई। उसकी आकृति भयानक थी। यह पापमयी थी। भगवान् सूर्यने सोचा, 'यह कन्या किसको दूँ?' वे जिस-जिसको कन्या देना चाहते, वही वही उसकी भयंकरताका समाचार सुनकर उसे लेना अस्वीकार कर देता और कहता, 'ऐसी भार्या लेकर हम क्या करेंगे।' ऐसी अवस्थामें विष्टिने दुःखी होकर अपने

पितासे कहा—'पिताजी! भगवान्, विद्वान्, वक्ता, कुलीन, यशस्वी, उदार और सनाथ बरको कन्या देनी चाहिये।' जो पिता इसके विपरीत आचरण करता है, वह नरकमें पड़ता है। सूर्यदेव। कन्या विद्वानोंके लिये भी धर्मका साधन है। एक ओर पर्वत, वन और काननोंमहित समूची पृथ्वी और दूसरी ओर वस्त्रभूषणोंसे अलंकृत नीरोग कन्या—दोनों एक समान हैं। उस कन्याके दानसे पृथ्वीदानका फल होता है। जो कन्या, अन्न, गौ और तिलकी चिक्री करता है उसका रौरव आदि नरकोंसे कभी छुटकारा नहीं होता। कन्याके विवाहमें कभी विलम्ब नहीं करना चाहिये। उसमें विलम्ब करनेपर पिताको जो

पाप होता है, उसका वर्णन कौन कर सकता है * कन्याके पिता जो उसके लिये दान पूजन आदि करते हैं वही सफल समझना चाहिये। कन्याओंको जो कुछ दिया जाता है, उसका पुण्य अक्षय होता है।†

कन्याके यों कहनेपर भगवान् सूर्य बोले—‘केटी! मैं क्या करूँ। तुम्हारी आकृति भयंकर है, इसलिये कोई तुम्हें ग्रहण नहीं करता स्त्री और पुरुषके विवाहसम्बन्धमें लोग एक-दूसरेके कुल, रूप, वय, धन विद्या, सदाचार और सुखैश्वर्य आदि देखा करते हैं। मेरे यहाँ सब कुछ है, केवल तुममें गुणोंका अभाव है क्या करूँ, कहाँ तुम्हारा विवाह करूँ? यदि तुम्हारा ऐसा विचार हो कि जिस किसीके साथ विवाह कर दिया जाय तो तुम अपनी स्वीकृति दो मैं आज ही तुम्हारा विवाह किये देता हूँ।’ यह सुनकर सिद्धिने अपने पितासे कहा—‘पति, पुत्र, धन, सुख, आयु, रूप और परस्पर प्रेम—ये पूर्वजन्ममें किये हुए कर्मोंके अनुसार प्राप्त होते हैं। जीव पहले जन्ममें जो बुरा भला कर्म किये रहता है, उसके अनुकूल ही दूसरे जन्ममें उसे फल मिलता है अतः पिताको तो उचित है कि वह अपने दोषसे मुक्त हो जाय—कन्याका कहीं योग्य चरके साथ विवाह कर दे फल तो उसे पूर्वजन्मके कर्मोंके अनुसार ही मिलेगा पिता अपने वंशकी मर्यादाके अनुसार कन्याका दान और विवाह-सम्बन्ध करता है। रोष बातें जो प्रारब्धमें होती हैं, वे मिल जाती हैं।’

कन्याका यह कथन सुनकर भगवान् सूर्यने अपनी लोकभयंकारी भीषण कन्या विहिका विवाह विश्वकर्माके पुत्र विश्वरूपसे कर दिया। विश्वरूप



भी वैसे ही भयंकर आकारवाले थे। उन दोनोंके शील और रूपमें सम्मानता थी, अतः सदा आपसमें प्रेम बन्ध रहता था। उस दम्पतिसे गण्ड, अतिगण्ड, रक्षाक्ष, क्रोधन, जय और दुर्मुख नामक पुत्र उत्पन्न हुए। इन सबसे छेड़ा एक पुत्र और हुआ, जिसका नाम हर्षण था। वह पुण्यात्मा, सुशील, सुन्दर, स्वान्त, सुदृक्छ तथा बाहर-भीतरसे पवित्र था एक दिन वह अपने मामाको देखनेके लिये यमराजके घर आया। वहाँ उसने बहुत-से ऐसे जीव देखे, जो स्वर्गकी ही भाँति सुखी थे और

* एकतः पृथिवीं कृत्स्नां सतीत्यनन्तमनन्तः स्वर्तकृतेष्वपिहीनं भुक्त्या चैकतः स्मृता ॥
विक्रीणीते वक्ष कन्यामहं वा गो तिलान्यपि । न तस्य रौरवादिव्यः कदाचिन्निष्कृतिर्भवेत् ॥
विवाहविक्रमं कार्यो न कन्याकः कदाचन । तस्मिन् कृते वस्तुतः स्वात्पापं ताकेन कथ्यते ॥

(१६५ १०-१३)

† यत्कन्यायाः पितुः कुर्वाद् दानं पूजनदीक्षणम् । पक्वत्तं त्रक्वत्तं विद्यातामु दत्तं तदक्षयम् ॥

(१६५ १५-१६)

बहुतेरे दुःखी भी दिखायी दिये; इर्ष्यने सनातन धर्मस्वरूप अपने ममको प्रणाम करके पूछ—‘कत! ये कौन सुखी हैं और कौन नरकमें कष्ट योग्य हैं?’

उसके इस प्रकार पूछनेपर धर्मराजने सब बातें डोक-डोक बता दीं। उन्होंने कर्मोंकी सम्पूर्ण गतियोंका पूर्णरूपसे निरूपण किया। वे बोले—‘ओ मनुष्य विहित कर्मका कभी उल्लङ्घन नहीं करते, उन्हें नरक नहीं देखना पड़ता। जो शस्त्र और शास्त्रीय सदाचारको नहीं मानते, बहुश्रुत विद्वानोंका आदर नहीं करते और विहित कर्मोंका उल्लङ्घन करते हैं, वे मनुष्य नरकगायी होते हैं।’ धर्मराजका यह वचन सुनकर इर्ष्यने पुनः कहा—‘सुरश्रेष्ठ! मेरे पिता विधिरूप बड़े भयंकर हैं। मेरी माता विहि भी भयानक ही हैं। मेरे महात्मनी भ्राता भी बड़े ही हैं। जिस उपायसे उन लोगोंने बुद्धि शान्त हो, वे सुरूप, निर्दोष और मङ्गलदायक हो जायें, वह मुझे बताइये। मैं उसे करूँगा, अन्यथा मैं उनके पास लौटकर नहीं जाऊँगा।’ इर्ष्यके जो कहनेपर धर्मराजने उस शुद्ध बुद्धिवाले बालकसे कहा—‘इर्ष्य! तुम वास्तवमें इर्ष्य ही हो। पुत्र तो बहुत-से होते हैं, किंतु वे सभी कुलका विस्तार करनेवाले नहीं होते। एक ही कोई ऐसा पुत्र होता है, जो सभूये कुलको धारण करता है जो कुलका आधारभूत, पिता-माताका प्रियकरक और पूर्वजोंका उद्धार करनेवाला है, वही वास्तवमें पुत्र है; अन्य जितने हैं, वे रोग हैं। इर्ष्य! तुमने मेरे मन्त्रके अनुकूल बात कही है वह तुम्हारे जन्म भगवान् सूर्यको भी पसंद आयेगी। अतः तुम गीतमी-तटपर जाओ और वहाँ ज्ञान करके मनको धारमें रखते हुए प्रसन्नचित्तसे जगद्गोविन्द शान्तस्वरूप भगवान् विष्णुकी स्तुति करो। वे

यदि प्रसन्न हो जायें तो तुम्हारे समस्त मनोरथोंको पूर्ण कर देंगे।’

वह सुनकर इर्ष्य गीतमी-तटपर गया और स्नान आदिसे पवित्र हो देवेश्वर भगवान् विष्णुकी स्तुति करने लगा। इससे प्रसन्न होकर श्रीहरि इर्ष्यको वरदान दिया—‘तुम्हारे कुलका कल्याण हो। समस्त अभद्रों (अभङ्गलों)-की शान्ति होकर भद्र (मङ्गल)-का विस्तार हो।’ ‘भद्रम् असु’ कहनेसे इर्ष्यके पिता भद्र कहलाये और माता विटिका नाम भद्रा हुआ। तबसे वह स्वाम भद्रादीर्घक नामसे प्रसिद्ध हुआ। वह सब प्रकारसे मङ्गलदायक तथा तीर्थसेवी पुरुषोंकी सब प्रकारकी सिद्धि देनेवाला है। वहाँ भद्रपतिके नामसे प्रसिद्ध होकर साक्षात् देवाधिदेव भगवान् जगद्गुरु श्रीहरि विवास करते हैं, जो मङ्गलके एकमात्र भण्डार हैं।

पश्चिमी रोगों तथा पापोंका नाश करनेवाला है। उसके स्मरणमात्रसे मनुष्य फलकृत्य हो जाता है। कश्यपके दो पुत्र हुए— अरुण और गरुड़। उनके कुलमें पक्षियोंमें श्रेष्ठ सम्पत्ति उत्पन्न हुए। सम्पत्तिके छोटे भाईका नाम जयसु बा। वे दोनों अपने बलसे दम्भ और एक-दूसरेसे लाग-झट रखनेवाले थे। एक दिन वे दोनों भगवान् सूर्यको नमस्कार करनेके लिये आकाशमें गये। ज्यों ही सूर्यके समीप पहुँचे, दोनोंके पंख जल गये और दोनों बककर पर्वतके शिखरपर गिर पड़े दोनों धाड़ोंको निश्चेष्ट एवं अचेत होकर गिरा देख अरुण उनके दुःखसे दुःखी हो गये और भगवान् सूर्यसे बोले—‘भगवन्! ये दोनों पक्षी पृथ्वीपर गिर पड़े हैं। इन्हें आकाशमें हैं, जिससे इनकी मृत्यु न हो।’ ‘तथास्तु’ कहकर सूर्यने उनके जीवित कर दिया। गरुड़ भी उनकी अवस्था

सुनकर भगवान् विष्णुके साथ वहाँ आये और उन्हें सान्त्वना देकर सुख पहुँचाया। तदनन्तर सब लोग अपने संतापका निवारण करनेके लिये गङ्गातटपर गये। जटायु, अरुण, सम्पाति, गरुड, सूर्य तथा भगवान् विष्णु—सबने उस प्रसन्न पुण्यदायक तीर्थमें प्रवेश किया। तबसे वह तीर्थ पतत्रितोर्थके नामसे विख्यात हुआ। वह विषका शत्रु तथा सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाला है। साक्षात् सूर्य तथा विष्णु गरुड और अरुणके साथ वहाँ गीतमौ तटपर रहते हैं। भगवान् शिवका भी उस तीर्थमें निवास है। इन तीनों देवताओंकी उपस्थितिसे वह तीर्थ बहुत उत्तम हो गया है। जो वहाँ स्नान करके पवित्र हो उन देवताओंको नमस्कार करता है, वह आधि-व्याधिसे मुक्त हो परम सौख्यका भागी होता है।

गीतमौके तटपर विप्रतीर्थ भी बहुत विख्यात है। उसे नारायणतीर्थ भी कहते हैं। उसका उपाख्यान आश्चर्यमें डालनेवाला है। अन्तर्वेदी (गङ्गा-यमुनाके बीचके पूभाग) में एक ब्राह्मण रहते थे, जो वेदोंके पारंगत विद्वान् थे। उनके कई पुत्र हुए, जो बड़े विद्वान्, गुणवान्, रूपवान् और दयालु थे। उनमें जो सबसे छोटे भाई थे, वे अनेक गुणोंसे सम्पन्न, शक्ति, सर्वज्ञ और परम बुद्धिमान् थे। उनका नाम आसन्दिब था। आसन्दिबके पिता उनका विवाह करनेके लिये प्रयत्नशील थे। इसी बीचमें एक दिन रतको ब्राह्मण-कुमार आसन्दिब सोये हुए थे। उस दिन उन्होंने भगवान् विष्णुका स्मरण नहीं किया था। वे ठहर ओर मिरहाना करके सोये थे और उनका चित्त एकाग्र नहीं था। इसलिये इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली एक क्रूर राक्षसी वहाँ आयी और आसन्दिबको उठाकर तुरंत गीतमौके दक्षिण तटपर चली गयी। वह उस ब्राह्मणके साथ इच्छानुसार रूप धारण

करके गोदावरीके दक्षिण किनारेकी भूमिपर विचरती रहती थे। उसके शरीरमें बुढ़ापा आ गया था। एक दिन उस भयानक राक्षसीने ब्राह्मणसे कहा—‘विप्रवर! ये मङ्गाजी हैं। तुम अन्य ब्राह्मणोंके साथ मिलकर यहाँ संध्योपासन करो। जो ब्राह्मण समयपर



यज्ञपूर्वक संध्योपासन यहाँ करते थे ही देवेशतोंछात नीच बताये गये हैं। वे चाण्डालोंसे भी बढ़कर हैं। तुम यहाँ सब लोगोंसे मुझको अपनी जन्मदायिनी मन्ता बतलाना, नहीं तो अभी तुम्हारा नाश हो जायगा। द्विजश्रेष्ठ! यदि मेरी बात मानते रहोगे तो मैं तुम्हें सुख दूँगी और तुम्हारा जो प्रिय कार्य होगा, उसे भी पूर्ण करूँगी। कुछ कालके बाद फिर मैं तुम्हें तुम्हारे देशमें तुम्हारे घरमें और तुम्हारे गुरुजनोंके पास पहुँचा दूँगी। यह मैं सत्य कहती हूँ।’ ब्राह्मणने पूछा—‘तुम कौन हो?’ कामरूपिणी राक्षसीने कहा—‘मेरा नाम कङ्कालिनी है। मैं संसारमें प्रसिद्ध हूँ।’ पत्थर पाकर मुनिकुमार आसन्दिबका चित्त भयसे व्याकुल हो उठा, परंतु राक्षसीने अनेक प्रकारकी शपथ खाकर उन्हें अपना

विश्वास दिलाया। तब ब्राह्मणने कहा—‘तुमने जो कुछ कहा है, मैं यैसा ही करूँगा। तुम्हें जो प्रिय लगेगा, वही बात बोलूँगा और वही कर्म करूँगा।’

ब्राह्मणकी बात सुनकर इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली राक्षसीने बुझें होनेपर भी मन्त्रोच्चारण किया और दिव्य वस्त्राभूषणोंसे विभूषित हो ब्राह्मणको अपने साथ ले इधर उधर घूमने लगी। वह सर्वत्र यही कहती कि ‘यह मेरा पुत्र गुणवत्तर है।’ ब्राह्मणकुमार रूप, सौभाग्य, वय और विद्यासे विभूषित थे और वह वृद्धा भी गुणवती दिखाने देती थीं, अतः सब लोग उसे ब्राह्मणकी कन्या ही समझते थे वहाँ किसी ब्रह्म ब्राह्मणने वस्त्राभूषणोंसे विभूषित अपनी सुन्दरी कन्या उस राक्षसीको आगे करके आसन्दिशके स्वाह दी। ऐसे सुकंठ्य पतिको पाकर कन्याने अपनेको कृतार्थ माना। किन्तु ये ब्राह्मण अपनी गुणवती पत्नीको देखकर बहुत दुःखी हुए। उन्होंने मन-ही-मन सोचा, ‘वह पतिपत्नी राक्षसी एक दिन मुझे खा ही जाएगी। क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? अथवा किससे यह बात कहूँ? मैं भारी संकटमें पड़ा हूँ। कौन यहाँ घेरे रखा करेगा? घेरे यह कल्याणमयी पत्नी गुणवती, कृपवती और नयी अवस्थाकी है। इसे भी वह राक्षसी अकस्मात् अपना आहार बना लेगी।’

इसी सोचमें वह बुढ़िया कहीं चली गयी। उस समय अपने पतिको दुःखित जानकर ब्राह्मणकी पतिव्रता पत्नीने एकान्तमें धिनीत भावसे पूछा—‘नन्दा! आप क्यों कहते पड़े हैं? ठीक-ठीक बताइये।’ ‘ब्राह्मणने सब बातें विस्तारके साथ बता दीं। प्रिय मित्र और कुलीन पत्नीसे कौन सी बात अकथनीय है। पतिकी बात सुनकर रानीने कहा—‘प्राणनन्दा! जिसका मन अपने कर्तमें नहीं है, उसको तो सब ओर भय है। वह घरमें भी निर्भय नहीं है। परंतु

जिन्होंने अपने आत्मापर अधिकार प्राप्त कर लिया है, उन्हें किससे भय है! वह भी गौतमी तटपर, जहाँ कितने ही वैष्णव, शिक्त और विधेकी पुरुष निवास करते हैं। यहाँ खान करके पर्यत्र हो भगवान् नारायणकी स्तुति कीजिये।’ यह सुनकर ब्राह्मणने गङ्गामें स्नान किया और गौतमीके तटपर भगवान् नारायणका स्तवन आरम्भ किया—‘नमः! आप इस जगत्के अन्तर्गत हैं। मुकुन्द! आप ही इसकी सृष्टि और संहार करनेवाले हैं। अनाधन्यभू-गुंसिंह! आप ही सबके पातक हैं। मुझ दीनकी रक्षा क्यों नहीं करते?’ यह प्रार्थना सुनकर संसारका शोक दूर करनेवाले भगवान् नारायणने सहस्र अठेवासे तेजोमय सुदर्शनचक्रसे उस पापिनी राक्षसीको मार डाला और उस ब्राह्मणको अभीष्ट वरदान दे उसे यज्ञा-पिताके पास पहुँचा दिया। तबसे वह स्थान विप्रतीर्थ और नारायणतीर्थके नामसे प्रसिद्ध हुआ। वहाँ स्नान, दान और पूजा आदि करनेसे मनोवाञ्छित फलकी सिद्धि होती है।



चक्षुस्तीर्थका माहात्म्य

ब्रह्माजी कहते हैं—चक्षुस्तीर्थ रूप और स्वैश्वर्य देनेवाला है। जहाँ भगवान् योगेश्वर गीतमोंके दक्षिण-तटपर निवास करते हैं, वहाँ पर्वतके किछरपर भौवन नगर विस्फुरित स्थान है। यहाँ मात्र-धर्मपरगणन राजा भौवन निवास करते थे। उसके नगरमें दृष्टकैवल्य नामके एक ब्राह्मण थे, जिनके कंदकेताओंमें श्रेष्ठ गीतम नामक पुत्र हुआ। गीतमकी एक वैश्यके साथ मित्रता हुई। वैश्यका नाम मणिकुण्डल था। इनमें एक दरिद्र और दूसरा धनी था तो भी दोनों एक-दूसरेके हितैषी थे। एक दिन गीतमने अपने धनी मित्र मणिकुण्डलसे एकत्रतमें प्रेम्पूर्णक कहा—‘मित्र! हमलोग धनका उपार्जन करनेके लिये पर्वतों और समुद्रोंकी यात्रा करें। यदि अनुकूल सुख व प्राप्त हुआ तो समझना चाहिये जवानी व्यर्थ गयी। भगवत्के बिना सीख्य कैसे प्राप्त हो सकता है। अहो! निर्धन मनुष्यको धिक्कार है।’ कुण्डलने ब्राह्मणसे कहा—‘पैर पिताने बहुत धन कमाया है। अब अधिक धन लेकर क्या करूँगा।’ तब ब्राह्मणने पुनः मणिकुण्डलसे कहा—‘जो धर्म, अर्थ, ज्ञान और भोगोंसे तृप्त हो जाय, ऐसा कौन पुरुष प्रशंसनीय माना जाता है। सखे! इन सबकी अधिकप्रधिक वृद्धि ही समस्त शरीरधारियोंको अभीष्ट होती है। जो प्रणी अपने ही व्यवसायसे जीवन-निर्वाह करते हैं, वे धन्य हैं। जो दूसरेके दिये हुए धनसे संतोष-लाभ करते हैं, वे कहते ही जाते हैं। जो पुत्र अपने बहुमूल्य अश्व लेकर धनका उपार्जन करता है और पिताके धनको हथसे नहीं छूता, वह संसारमें कृतार्थ होता है।’

धनाभिलाषी ब्राह्मणका यह कथन सुनकर वैश्यने

उसे स्तव माना और घरसे रत्न लाकर गीतमको देते हुए कहा—‘मित्र! इस धनसे हमलोग सुखपूर्वक देश-देशान्तरोंमें भ्रमण करेंगे और धन कमाकर फिर अपने घरको लौट आएँगे।’ वैश्य तो अपनी मद्भयनाके अनुसार सत्य ही कहता था, किन्तु ब्राह्मण उसे धोखा दे रहा था। उसके मनमें पाप था किन्तु वैश्य उसे ऐसा नहीं समझता था। दोनोंने आपसमें सलाह की और मत्त-पिताको सूचना दिये बिना ही धन कमानेके लिये देश-देशान्तरोंमें चल दिये। ब्राह्मण सोचने लगा—‘जिस किसी उपायसे हो सके, वैश्यका धन तो लूँ। अहो, पृथ्वीपर सहस्रों सुन्दर नगर हैं, जहाँ कामकी अधिष्ठात्री देवी-जैसी अभीष्ट भोग प्रदान करनेवाली पुष्टिर्षी हैं। यदि यत्नपूर्वक धन लाकर उनको दिया जाय तो वे सदा भोगी आ सकती हैं और वही जीवन सफल है। किस प्रकार वैश्यसे अपने हृदयमें आये हुए धनको हड़पकर उसका इच्छानुसार उपभोग करूँ?’ यह सोचते हुए गीतमने मणिकुण्डलसे हँसते-हँसते कहा—‘पापसे ही जीवोंकी उन्नति होती है और वे मनोव्याप्तित सुख प्राप्त करते हैं। संसारमें धर्मरहित लोग दुःखके ही भागी देखे जाते हैं। अतः एक मात्र दुःख ही जिसका फल है, उस धर्मसे क्या लाभ।’

वैश्यने कहा—ऐसी बात नहीं है। धर्ममें ही सुखकी स्थिति है। पापमें तो केवल दुःख, भय, शोक, दारिद्र्य और क्लेश ही रहते हैं। जहाँ धर्म है, वहीं मुक्ति है। भला, अपना धर्म क्या नष्ट हो सकता है? इस प्रकार विवाद करते हुए दोनोंमें यह रत्न लग गयी कि जिसका पक्ष श्रेष्ठ हो वह

* नेषुवाच ततो वैश्यः सुखं धर्मं प्रतिष्ठितम् । पापे दुःखं धर्मं श्रेष्ठं दारिद्र्यं क्लेश एव च ॥

यतो धर्मस्ततो मुक्तिः स्वधर्मः किं विनाशयति ॥

दूसरेका धन ले ले। वे बोले—‘अब चलकर हम दोनों किसीसे पूछें—धर्मात्मा प्रवक्तृ होता है या अधर्मी? वेदसे लोकका ही मत्त श्रेष्ठ है, क्योंकि लोकमें ही धर्मसे सुख होता है।’ इस प्रकार विवाद करके दोनों सब लोगोंने पूछने लगे कि ‘पृथ्वीपर धर्म प्रवक्तृ है या अधर्म?’ यह प्रश्न सभने आनेपर कोई बोले—‘जो धर्मिक अनुसार चलते हैं, उन्हें दुःख भोगना पड़ता है और बड़े-बड़े पापी मनुष्य सुखी हैं।’ यह निर्णय सुनकर वैश्यने अपना सारा धन ब्राह्मणको दे दिया। मणिमान् धर्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ था। वह बाजी इम आनेपर भी धर्मकी ही प्रशंसा करता रहा। ब्राह्मणने मणिमान्से पूछा—‘क्या तुम अब भी धर्मकी प्रशंसा करते हो?’ वैश्य बोला—‘हाँ।’ ब्राह्मण फिर कहने लगा—‘वैश्य! मैंने तुम्हारा सारा धन जीत लिया, फिर भी निर्लज्जकी तरह धर्मकी बात क्यों करते हो? देखो, स्वेच्छाचारी होनेपर भी मैंने ही धर्मको जीता है।’

ब्राह्मणकी बात सुनकर वैश्यने मुसकराते हुए कहा—‘सखे! जैसे बान्धोंमें पुस्ताक (पैसा) और पंखधारी चिड़ियोंमें छोटी मक्खियाँ होती हैं, वैसे ही मैं सब मनुष्योंको भी सारहीन मानता हूँ, जिनमें धर्म नहीं होता। चारों पुरुषाचारोंमें पहले धर्मका नाम आता है। अर्थ और काम उसके बाद आते हैं। वह धर्म मुझमें मौजूद है। फिर तुम कैसे कहते हो कि मैंने जीत लिया।’ यह सुनकर ब्राह्मणने पुनः वैश्यसे कहा—‘अब दोनों इधरकी बाजी लगायी जाय।’ वैश्य बोला—‘ठीक है।’ फिर दोनोंने जाकर पहलेकी ही भाँति लौकिक मनुष्योंसे पूछा, निर्णय ज्यों का-त्यों रहा। ब्राह्मण

बोला—‘फिर मेरी विजय हुई।’ थोँ कहकर उसने वैश्यके दोनों हाथ काट डाले और पूछा—‘अब धर्मको कैसा मानते हो?’ ब्राह्मणके इस प्रकार आक्षेप करनेपर वैश्यने कहा—‘मेरे प्राण कण्ठतक अब ज्यों तो भी मैं धर्मको ही श्रेष्ठ मानता रहूँगा। धर्म ही देहधारियोंकी माता, पिता, सुखद और बन्धु है।’ इस तरह दोनोंका विवाद चलता रहा। ब्राह्मण धनवान् हो गया और वैश्य धनके साथ-साथ दोनों बाँहोंसे भी हाथ धो बैठा। इस तरह प्रमथ करते हुए दोनों गौतमी नदीके तटपर आ पहुँचे। जहाँ खेनेर श्रीहरिका निवासस्थान है, वहाँ आनेपर फिर दोनोंमें विवाद आरम्भ हो गया। वैश्य गङ्गा, योनेर और धर्मकी ही प्रशंसा करता था। इससे ब्राह्मणको बड़ा क्रोध हुआ। वह वैश्यपर आक्षेप करते हुए बोला—‘धन चला गया। दोनों हाथ काट गये अब केवल तुम्हारे प्राण बाकी हैं। यदि फिर मेरे मतके विपरीत कोई बात मुँहसे निकालोगे तो मैं तलवारसे तुम्हारा सिर काट लूँगा।’ वैश्य ठँस पड़ा। उसने पुनः गौतमको चुनौती देते हुए कहा—‘मैं तो धर्मको ही बड़ा मानता हूँ, तुम्हारी जैसी इच्छा हो, कर लो। जो ब्राह्मण, गुरु, देवता, वेद, धर्म और भगवान् विष्णुकी निन्दा करता है, वह पापाचारी मनुष्य पाप्मण्य है। वह स्पर्श करने योग्य नहीं है। धर्मको दूषित करनेवाले उस दुराचारी पापात्माका परित्यक्त कर देना चाहिये।’ तब ब्राह्मणने कुपित होकर कहा—‘यदि तुम धर्मकी प्रशंसा करते हो तो हम दोनोंके प्राणोंकी बाजी लग जाय।’ वैश्यने कहा—‘ठीक है।’ फिर दोनोंने स्वधारण लोगोंने पूछा, किन्तु लोगोंने पहले ही जैसा उत्तर दिया।

“धर्मदेव परं धनं यथेच्छसि तथा कुरु। ब्राह्मणां च गुरुन् देवान् वेदान् धर्मं जनार्दनम्॥

यस्तु निन्दते पापे नस्तीं स्पृष्टोऽयं चमत्कृतः उपेक्षणीयः दुर्वृतः पापात्मा धर्मदूषकः॥

(१७०। ४५-४६)

उस समय गौतमीके दक्षिण-तटपर भगवान् योगेश्वरके सामने ब्राह्मणने वैश्यको गिरा दिया और उसकी आँखें निकाल लीं। फिर कहा—‘वैश्य! प्रतिदिन धर्मकी प्रशंसा करनेसे ही तुम इस दशकके पहुँचे हो। तुम्हारा धन गया, आँखें गयीं और दोनों हाथ काट लिये गये। धिप्र। अब तुमसे बिदा लेकर जाता हूँ। फिर कभी बातचीतमें इस तरह धर्मकी प्रशंसा न करना।’ यों कहकर गौतम चला गया। उसके आनेपर वैश्यप्रवर धणिकुण्डल धन, बहुत और बेप्रसे रहित होनेके कारण शोकग्रस्त हो गया। तथापि वह निरन्तर धर्मका ही स्मरण करता था। अनेक प्रकारकी चिन्ता करते हुए वह भूतलपर निश्चेष्ट होकर पड़ा था। उसके हृदयमें उत्साह नहीं रह गया था। वह शोक सागरमें डूबा हुआ था। दिन बीता, रात्रिको आगमन हुआ और चन्द्रमण्डलका उदय हो गया। उस दिन शुक्ल पक्षकी एकादशी थी। एकादशीको वहाँ लङ्कासे विभीषण आया करते थे। उस दिन भी अत्रे, उन्होंने पुत्र और राक्षसोंसहित गौतमी गङ्गामें स्नान

किया और योगेश्वर भगवान् विष्णुकी विधिपूर्वक पूजा की। विभीषणका पुत्र भी दूसरे विभीषणके ही समान धर्मात्मा था। उसे लोग वैभीषणि कहते थे। वैभीषणिने वैश्यको देखा और उससे वात्सलायन किया। वैश्यका यथावत् वृत्तान्त जानकर उस धर्मज्ञने अपने पिता लङ्कापति महात्मा विभीषणको वतलाया। लङ्केस्वरने अपने गुणाकर पुत्रसे प्रसन्नतापूर्वक कहा—‘बेटा। भगवान् श्रीराम मेरे गुरु—आराध्यदेव हैं और उनके आदरणीय भक्त हनुमान्जी मेरे सखा हैं। आजसे बहुत पहले एक कार्य आ पड़नेपर हनुमान्जी बहुत बड़ा पर्वत उठा लाये थे, जो सब प्रकारकी ओषधियोंका भण्डार था। उस समय दो ओषधियोंकी आवश्यकता थी—विशाल्पकरणी और मृतसंजीवनी। उन दोनों ओषधियोंको लाकर उन्होंने भगवान् श्रीरामको अर्पित किया। जब उनकी आवश्यकता पूर्ण हो गयी, तब वे पुनः उस पर्वतको उठाकर हिमालयपर ले गये और वहीं रख आये। हनुमान्जी बड़े वेगसे आ रहे थे, इसलिये विशाल्पकरणी नामकी ओषधि गौतमी गङ्गाके तटपर गिर पड़ी थी। जहाँ भगवान् योगेश्वरका स्थान है, वहीं वह ओषधि है। उसे ले आकर तुम भगवान्को स्मरण करते हुए इसके हृदयपर रख दो। उससे यह उदारमुक्ति वैश्य अपने सम्पूर्ण अधोर्णोंको प्राप्त कर लेगा।’

वैभीषणि बोला—‘पिताजी! मुझे शीघ्र ही वह ओषधि दिखा दीजिये। विसम्भ न कीजिये। दूसरोंकी पीड़ा दूर करनेसे बढ़कर तीनों लोकोंमें दूसरा कोई कल्याणकारी कार्य नहीं है।’

विभीषणने ‘बहुत अच्छा’ कहकर पुत्रको वह ओषधि दिखा दी। उसने ‘इमे स्वा०’ इत्यदि मन्त्रों पढ़कर उस वृक्षकी एक शाखा तोड़ ली और उसे ले आकर वैश्यके हृदयपर रख दिया। उसका स्पर्श होते ही वैश्यके नेत्र और हाथ ज्यों-के-त्यों हो



गये। मणि, मन्त्र और ओषधियोंके प्रभावको कोई नहीं जानता। वैश्यने धर्मका चिन्तन करते हुए गीतमी गङ्गामें स्नान किया और योगेश्वर भगवान् विष्णुको नमस्कार करके पुनः वहाँसे यात्रा की। उसने अपने साथ ओषधिकी टूटी हुई सखा भी ले ली थी। देश-देशान्तरोंमें भ्रमण करता हुआ मणिकुण्डल एक राजधानीमें पहुँचा, जो महापुरके नामसे विख्यात थी। वहाँके महाकवी राजा महाराजके नामसे प्रसिद्ध थे। राजाके कोई पुत्र नहीं था, एक पुत्री थी, उसकी भी आँखें नष्ट हो चुकी थीं। वह कन्या ही राजाके लिये पुत्र थी। राजाने यह निश्चय किया था कि 'देवता, दानव, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, गुणवान् या निर्गुण—कोई भी क्यों न हो, मैं उसीको यह कन्या दूँगा, जो इसकी आँखें अच्छी कर देगा। मुझे अपने राज्यके साथ ही कन्याका दान करना है।' महाराजने यह घोषणा सब ओर करा दी थी। वैश्यने वह घोषणा सुनकर कहा—'मैं निश्चय ही राजकुमारीकी खोजी हुई आँखें पुनः सब दूँगा।'

राजकर्मचारी शीघ्र ही वैश्यको लेकर गया और महाराजको उसने सब बातें कतार्यीं। वैश्यने उस काष्ठका स्पर्श कराया और राजकुमारीके नेत्र ठीक हो गये, यह देखकर राजाको बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने पूछा—'आप कौन हैं?' वैश्यने राजासे अपना सब हाल ठीक-ठीक कह सुनाया। फिर बोला—'ब्राह्मणोंके प्रसादसे तथा धर्म, तपस्या, दान, यज्ञ और दिव्य ओषधिके प्रभावसे मुझमें ऐसी शक्ति आयी है।' वैश्यका यह कथन सुनकर महाराजको अत्यन्त आश्चर्य हुआ। वे

बोले—'अहो, ये महानुभाव कोई देवता ही होंगे। अन्यथा देवेंतर मनुष्यमें ऐसी शक्ति कैसे देखी जाती। अतः इन्हें राज्यके साथ ही अपनी कन्या अवश्य दूँगा।' मनमें ऐसा संकल्प करके राजाने कन्यासहित राज्य वैश्यको दे दिया। मणिकुण्डल राज्यको पाकर भी मित्रके बिना संतुष्ट न हुआ। वह सोचने लगा—'मित्रके बिना न तो राज्य अच्छा है और न सुख ही अच्छा लगता है।' इस प्रकार वह सदा गीतम ब्राह्मणका ही चिन्तन किया करता था। इस पृथ्वीपर उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए सभुपुत्रोंका यही लक्षण है कि अहित करनेवालोंके प्रति भी उनके मनमें सदा कारुण्य ही भरी रहती है।*

एक दिन महाराज मणिकुण्डल वनमें गये थे। वहाँ उन्होंने अपने पूर्व मित्र गीतम ब्राह्मणको देखा। पापी जुआरियोंने उसका सब धन छीन लिया था। धर्मह मणिकुण्डलने अपने ब्राह्मण मित्रको साथ ले लिया, उसका विधिपूर्वक पूजन किया और धर्मका सब प्रभाव भी बताया। फिर समस्त पार्श्वोंकी निवृत्तिके लिये गीतमको गङ्गामें स्नान कराया। वैश्यके देशमें जो सगोत्र बन्धु-बन्धव थे, उनको तथा गीतम ब्राह्मणके बन्धु-बन्धव वृद्धकौशिक आदिको उन्होंने बुलवाया और सबके साथ देवपूजनपूर्वक गीतमीके तटपर यज्ञ किया। तदनन्तर स्त्रीरक्षा अन्त होनेपर वे स्वर्गलोकमें गये। वह स्थान मृतसंजीवनतीर्थ, जन्तुस्तीर्थ और योगेश्वरतीर्थ कहलाने लगा। यह स्मरणपात्रसे पुण्य देनेवाला, धनको प्रसन्न रखनेवाला और समस्त दुर्भावनाओंका नाश करनेवाला है।



सामुद्र, ऋषिसत्र आदि तीर्थोंकी महिमा तथा गौतमी-माहात्म्यका उपसंहार

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! सामुद्रतीर्थ सब तीर्थोंका फल देनेवाला है उसके स्वरूपका वर्णन करता हूँ, मन लगाकर सुनो गौतमके विदा करनेपर पापनाशिनी गङ्गा जब तीनों लोकोंका उपकार करनेके लिये ब्रह्मागिरिसे पूर्व समुद्रकी ओर चली, तब मार्गमें मैंने उनके जलको लेकर कण्ठडलुमें धारण किया। परमात्मा शिवने उन्हें मस्तकपर चढ़ाया। वे भगवान् विष्णुके चरणोंसे प्रकट हुई हैं। ब्रह्मर्षि गौतमने मर्त्यलोकमें उनका अवतरण कराया है वे स्मरणमात्रसे सब पापोंका नाश करनेवाली हैं और गुरुओंकी भी गुरु हैं। समुद्रने जब उन्हें अपनी ओर आते देखा, तब मन-ही-मन विचार किया—'जो सम्पूर्ण जगत्की वन्दनीया और सबकी ईश्वरी हैं जिन्हें ब्रह्मा तथा शिव आदि देवता भी मस्तक झुकाते हैं, उनके स्वागतमें मुझे कुछ दूर आगेतक जाना चाहिये। नहीं तो मेरे धर्ममें दोष आयेगा। जो अपने घर आते हुए महामुरुषको लेनेके लिये मोहवश स्वयं उपस्थित नहीं होता, उस पापीकी रक्षा करनेवाला दोनों लोकोंमें कोई नहीं है।' यों विचारकर समुद्र मूर्तिमान् हो हाथ जोड़े विनीत भावसे गङ्गाजीके समीप आया और इस प्रकार बोला—'देवि! तुम्हारा यह जल, जो आकाश, पाताल और मर्त्यलोकमें फैला हुआ है, मुझमें आकर मिले—इसके लिये मैं कुछ नहीं कहूँगा। मेरे भीतर रत्न, अमृत, पर्वत, राक्षस और असुर रहते हैं। इनको तथा अन्यान्य भयंकर जलजन्तुओंको भी मैं धारण करता हूँ। मेरे जलमें लक्ष्मोंसहित भगवान् विष्णु

सदा शयन करते हैं। इस चराचर जगत्में मेरे लिये कुछ भी असम्भव नहीं है। मैं तुम्हारे स्वागतमें यहाँतक आया हूँ। जो अपनेसे बड़ेके आनेपर अहंकारवश आगे बढ़कर उसका स्वागत नहीं करता, वह धर्म आदिसे भ्रष्ट होकर नरकमें पड़ता है।' भगवता गङ्गा! तुमसे एक प्रार्थना करता हूँ। तुम सप्त धाराओंमें आकर मुझसे मिलो। यदि एक ही धाराके रूपमें आकर मिलोगी तो मैं तुम्हारे दुःसह वेगको धारण न कर सकूँगा।' समुद्रका यह वचन सुनकर गौतमी गङ्गाने कहा—'तुम मेरी वह बात मानो; सप्तधियोंकी जो अरुन्धती आदि पत्नियाँ हैं उन सबको उनके पतियोंसहित ले आओ, तब मैं छोटे रूपमें हो जाऊँगी।' 'बहुत अच्छा' कहकर समुद्र सप्तधियों



* महत्सम्पादते कुर्यात्प्रत्युष्कृतं न नो मदत्। स धर्मादिपरिभ्रष्टो निरयं तु सदापुनरात्।

और उनकी पत्नियोंको ले आया। तब गौदम्वरी देवी सप्त धाराओंमें विभक्त हो गयीं और उसी रूपमें उनका समुद्रसे संगम हुआ। सप्तार्षियोंके नामपर ये सप्तगङ्गाके नामसे विख्यात हुई। वहाँ भक्तिपूर्वक जो स्नान, दान, व्रत, पाठ और स्मरण आदि शुभ कर्म किया जाता है, वह समस्त अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाला होता है। पाप्मकी क्षति, भोग और मोक्षकी प्राप्ति तथा मनकी प्रसन्नताके लिये तीनों लोकोंमें समुद्रतीर्थसे बढ़कर दूसरा कोई तीर्थ नहीं है।

समुद्रतीर्थके अतिरिक्त वहाँ ऋषिसत्तरीर्थ भी है, जहाँ सप्त ऋषि तपस्याके लिये बैठे थे और जहाँ भीमेश्वर शिव विराजमान हैं। वहाँका कृतान्त इस प्रकार है—सप्त ऋषियोंने गङ्गाको सप्त धाराओंमें विभक्त किया। सबसे दक्षिणकी धारा वासिष्ठी कहलायी। उससे उत्तर वैशामित्री, उससे उत्तर वामदेवी, बीचकी धारा गौतमी, उससे उत्तर भास्कराजी, उससे उत्तर आग्नेयी और अन्तिम क्षत्र जागदशी है। उन सब ऋषियोंने मिलकर वहाँ बहुत बड़े सत्रका अनुष्ठान किया। इसी बीचमें देवताओंका प्रबल शत्रु विश्वरूप वहाँ आया और ब्रह्मचर्य तथा तपस्याके द्वारा उन ऋषियोंको प्रसन्न करके भिनयपूर्वक पूछा—‘भुनिकरो! यह अथवा तपस्या—जिस उपायसे भी मुझे कल्याण पुत्र प्राप्त हो, जिसे देवता भी परास्त न कर सकें, वह उपाय बतलाइये।’

तब परम बुद्धिमान् विद्याविग्रहे कहा—‘तब! कर्मसे नाना प्रकारके फल प्राप्त होते हैं। तीन कारणोंमें कर्म ही पहला कारण है। दूसरा कारण कर्त्ता है तथा तीसरे कारणके अन्तर्गत उपादान और बीज आदि अन्य उपकरण हैं। उपादान और बीजको विद्वानोंने कर्म नहीं माना है। जहाँ बहुतसे कारण उपस्थित हों, वहाँ कर्म ही प्रधान

कारण सिद्ध होता है। क्योंकि कर्म करनेसे फलकी सिद्धि देखी जाती है और न करनेसे नहीं। अतः फलकी सिद्धि कर्मके ही अधीन है। कर्म भी दो प्रकारके जन्मने चाहिये—क्रियमाण और कृत। क्रियमाण कर्मका जो-जो साधन है, वह कर्तव्य बताया गया है। विद्वान् पुरुष कर्म करते हुए जो-जो भावना करता है, उसके अनुरूप ही फलकी सिद्धि होती है। यदि बिना भावनाके विधिपूर्वक कर्मका अनुष्ठान करता है तो उसे अन्य प्रकारका फल मिलता है। किंतु भावना करनेपर सम्पूर्ण फल उस भावनाके अनुरूप ही होता है, अतः तप, व्रत, दान, व्रत और यज्ञ आदि क्रियाएँ कर्मके अनुरूप भाव होनेसे ही अभीष्ट फल देती हैं। भाव भी तीन प्रकारका जाग्रत चाहिये—सात्त्विक, राजस और तामस। जिस भावनाके अनुरूप कर्म होगा, वैसा ही फल मिलेगा। अतः फलकी प्राप्ति कर्मके अनुसार और भावनाके अनुरूप भी होती है; इसलिये कर्मोंकी स्थिति विचित्र है, यों समझकर विद्वान् पुरुषको अपनी इच्छाके अनुकूल भाव भी बनाना चाहिये। फिर उसके अनुरूप कर्म भी करना चाहिये। फल देनेवाला भी जब फल चाहनेवालोंको फल देनेमें प्रवृत्त होता है, तब उसके कर्म और भावनाके अनुसार ही फल देता है। कर्म धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंका कारण है। यदि निष्कामभावसे कर्म हो तो वह मुक्तिदायक होता है और सकामभावसे होनेपर वही बन्धनका कारण बन जाता है। अपने भावके अनुसार ही कर्म बनता है तथा वही इस लोक और परलोकमें भौतिक-भौतिके फल देता है। भावके अनुकूल कर्म होता और तदनुसार भोग मिलता है; अतः भाव सबसे बढ़कर है। तुम भी भावके अनुसार कर्म करो। फिर जो चाहोगे, प्राप्त कर लोगे।’

जुद्धिमान् विद्यामित्र मुनिका कथन सुनकर विश्वरूपने ताम्रस भावका आश्रय ले दीर्घकालतक तपस्या की। प्रधान-प्रधान ऋषियोंके मना करनेपर भी उसने अपने क्रोधके अनुरूप देवताओंके लिये भयंकर कार्य किया। भयंकर कुण्ड खोदकर उसमें ध्यानक अग्निदेवको प्रज्वलित किया और उसीमें बैठकर मन ही-मन अत्यन्त भयंकर रौद्रपुरुषका आत्मरूपसे चिन्तन किया। उसे इस प्रकार तपस्या करते देख आकाशवाणी हुई—'भीमस्वरूप जगदीश्वर शिवकी महिमाको फँस ज्ञानता है। वे सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि करते हैं तो भी उसकी आसक्तिसे लिप्त नहीं होते।' यों कहकर आकाशवाणी भीन हो गयी। मुनीश्वरगण भगवान् भीमेश्वरको नमस्कार करके अपने-अपने आश्रमको चले गये। विश्वरूप महाभोग (अत्यन्त भयंकर) था। उसके कर्म भी भयंकर थे। उसकी आकृति भी बड़ी भयानक थी। उसके हृदयका भाव भी भयंकर ही था। उसने भीमस्वरूप भगवान् रुद्रका ध्यान करके अग्निमें अपनी आहुति दे दी। तबसे उसके द्वारा आरक्षित भगवान् शङ्कर भीमेश्वर कहलाते हैं। वहाँ किया हुआ ज्ञान और दान निस्सन्देह मोक्ष देनेवाला होता है। जो सदा भक्तिपूर्वक इस प्रसङ्गका पठ और श्रवण करता है तथा देवताओंके स्वामी भीमस्वरूप भगवान् शिवको प्रणाम करता है, उसे भगवान् शिव अपने सर्वपतापहारी चरित्रोंकी शरणमें लेकर भुक्ति प्रदान करते हैं। यों तो भगवती गोदावरी सर्वत्र और सदा ही सम्पूर्ण पापशुद्धि का विनाश करनेवाली तथा परम पुरुषार्थ (मोक्ष) देनेवाली हैं, तथापि जहाँ वे समुद्रमें मिली हैं, वहाँ उनका बाह्यस्व विशेषरूपसे बढ़ा हुआ है। जो पुण्यात्मा प्राणी गोदावरी सागर-संगममें स्नान कर लेता है, वह अपने पूर्वजोंका दुःसह नरकसे उद्धार करके स्वयं

भी भगवान् शिवके भाममें जाता है। जो वेदान्तद्वारा ज्ञानने योग्य तथा सम्बद्ध उपास्य है, साक्षात् वह ब्रह्म ही भीमेश्वरके रूपमें प्रकट है। भीमेश्वरका दर्शन कर लेनेपर जीव फिर भयंकर दुःख देनेवाले संसारमें नहीं प्रवेश करते।

देवताओंको भी चन्दनीय गङ्गा जब समुद्रमें मिली, तब सम्पूर्ण देवता और पुनि उनके पीछे-पीछे स्तुति करते हुए गये। वसिष्ठ, जाबालि, याज्ञवल्क्य, क्रतु, अत्रि, दक्ष, मरीचि, अन्यान्य वैष्णवगण, शक्तगण, शैवगण, देवगण, भृगु, अग्निवैत, अत्रि, मरीचि, मनु, गौतम, कौशिक, तुम्बुरु, पर्यस्त, अमरस्य, मार्कण्डेय, पिप्पल, गालव, योगोजन, कामदेव, अत्रि, अस तथा भार्गव—वे समस्त पुराणवेत्ता महर्षि प्रसन्नचित्तसे वैदिक मन्त्रोंद्वारा देवी गोदावरीकी स्तुति करते थे। गोदावरीको समुद्रमें मिली हुई देख भगवान् शिव और विष्णुने भी मुनियोंको प्रत्यक्ष दर्शन दिया। देवताओं और रिश्वरोंने भी सबकी पीड़ा दूर करनेवाले उन दोनों देवताओंका दर्शन और स्तवन किया। आदित्य, वसु, रुद्र,



महर्षि, लोकपाल—ये सब हाथ जोड़कर भगवान् शिव और विष्णुकी स्तुति करते थे। समुद्र और गङ्गाके सातों प्रसिद्ध संगमोंपर सदा भगवान् शिव और विष्णु स्थित रहते हैं वहाँ महादेवजी गौतमेश्वरके नामसे विख्यात हैं। लक्ष्मीसहित भगवान् विष्णु भी वहाँ नित्य निवास करते हैं। मैंने जो वहाँ शिवकी स्थापना की है, वह शिवलिंग ब्रह्मेश्वरके नामसे प्रसिद्ध है। देवताओंसहित मैंने अपने लिये कारण उपस्थित होनेपर सम्पूर्ण लोकोंके उपकारके लिये भगवान् विष्णुका भी स्तवन किया था। वे विष्णु वहाँ चक्राब्जिके नामसे विख्यात हैं। वहाँ ऐन्दवीर्ष भी है और उसीको हयग्रीवतीर्थ भी कहते हैं। वहाँ सोमतीर्थ भी है, वहाँ भगवान् शिव सोमेश्वरके नामसे प्रसिद्ध हैं। एक समय इन्द्रने बड़े-बड़े यज्ञोद्धार मेरी आराधना करके मेरे प्रसादसे अपना मनोरथ सिद्ध किया था। तबसे मैं भी वहाँ सब लोगोंका उपकार करनेके लिये रहता हूँ, विष्णु और शिव तो वहाँ हैं ही। अग्निने वहाँ पन्न किया, वह स्थान आग्नेयतीर्थके नामसे प्रसिद्ध है। तदनन्तर आदित्यतीर्थ है, वहाँ वेदमय आदित्य प्रतिदिन मध्याह्नकालमें दूसरा रूप धारण करके भेष, शिवका तथा विष्णुका दर्शन एवं उपासना करनेके लिये आते हैं। वहाँ मध्याह्नकालमें सब लोग वन्दनीय हैं, क्योंकि न मालूम सूर्य वहाँ किस रूपमें आ जायें। उसके सिवा पर्वतश्रेष्ठ इन्द्रग्रेषपर एक दूसरा तीर्थ भी है। वहाँ किसी कारणवश गिरिराज हिमालयने महान् शिवलिंगकी स्थापना की थी, अतः उसे आदितीर्थ कहते हैं। वहाँ किया हुआ छान और दान सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाला तथा शुभ है। इस प्रकार गौतमी गङ्गा ब्रह्मगिरिसे निकलकर वहाँ समुद्रमें मिली है, वहाँतकके कुछ तीर्थोंका मैंने संक्षेपसे वर्णन किया

है। गौतमी गङ्गा वेद और पुराणोंमें भी प्रसिद्ध है। अधिष्ठाता भी उनको बड़ी ख्याति हुई है। सम्पूर्ण विश्वने उनके चरणोंमें भस्तक झुकाया है। उनका प्रभाव अत्यन्त महान् है। भरद! किसमें इतनी शक्ति है, जो गोदावरीकी महिमामय पूरा पूरा वर्णन कर सके। जो भक्तिपूर्वक उनके गुणगानमें प्रवृत्त हो यथाकथञ्चित् उनकी महिमामय दिग्दर्शन करता है, उसके ऐसा करनेमें निःसंदेह कोई अपराध नहीं है; इसलिये मैंने भी लोक-कल्याणके उद्देश्यसे अत्यन्त प्रयास करके गङ्गाके पञ्चारण्यको संक्षेपसे सूचित किया है। कौन गोदावरीके प्रत्येक तीर्थका प्रभाव बता सकता है कहीं, किसी स्थानपर, किसी विशेष समयमें कोई उतम तीर्थ प्रकट होते हैं; परन्तु गौतमीमें सर्वत्र और सदा ही तीर्थोंका वास है। वे धनुष्योंके लिये सब जगह और सब समय पवित्र हैं। उनके गुणोंका वर्णन कौन कर सकता है। उनके लिये तो केवल ममस्कार करना ही उचित जान पड़ता है।

भरदजीने कहा—सुरेश्वर! अब गङ्गाको तीनों देवताओंसे सम्बन्ध रखनेवाली बताते हैं। ब्रह्मर्षि गौतमद्वारा लायी हुई लोकप्रिय गङ्गा परम पवित्र और कल्याणमयी है। उनके आदि, मध्य और अन्तमें दोनों तटोंपर भगवान् विष्णु, शिव तथा आप खड़ा हैं। उनको महिमा सुननेसे मुझे तृप्ति नहीं होती, अब पुनः संक्षेपसे उनका महत्त्व बतलावूँगे।

ब्रह्मर्षि बोले—केट! गङ्गा पहले मेरे कमण्डलुमें थी, फिर भगवान् के चरणोंसे प्रकटे हुई। उसके बाद महादेवजीके जटा-जूटमें निवास करने लगी। महर्षि भीतमने अपने ब्रह्मदेवके प्रभावसे यज्ञपूर्वक भगवान् शिवकी आराधना की, जिससे ये ब्रह्मगिरिपर आयी और वहाँसे चलकर पूर्व-समुद्रमें जा मिली। भगवती गोदावरी सर्वतीर्थयोगी है। वे धनुष्योंको भस्मेवाञ्छित फल देती हैं। उनका

प्रभाव सबसे बढ़कर है। मैं तीनों लोकोंमें कोई भी तीर्थ गोदावरीसे बड़ा नहीं मानता। ठन्हीके प्रभावसे मनकी सारी अभिलाषा पूर्ण होती है। आज भी उनकी महिमाका यथावत् वर्णन कोई नहीं कर सकता। सब लोग भक्तिसे सदा उनकी वन्दना करते हैं। वे वस्तुतः साक्षात् ब्रह्म हैं। नारद! मुझे तो यही सबसे बढ़कर आश्चर्यकी बात जान पड़ती है कि मेरी वाणीमें गङ्गाके गुणोंका वर्णन सुनकर भी तीनों लोकोंमें रहनेवाले सब प्राणियोंकी मुट्ठी उनकी ओर क्यों नहीं लग जाती।

नारदजीने कहा—भगवन्! आप धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षके ज्ञाता और उपदेशक हैं। आपके वचनोंमें रहस्योंसहित छन्द (वेद), पुराण, स्मृति और धर्मशास्त्र आदि समस्त वाङ्मय प्रतिष्ठित है। अतः आप बताइये—तीर्थ, दान, यज्ञ, तप, देव-पूजन, भक्त-अप और सेवामें सबसे श्रेष्ठ क्या है? भगवन्! आप वैसा कहेंगे, वैसा ही होगा। उसके विपरीत कोई बात नहीं हो सकती। अतः मेरे इस संशयका निवारण कीजिये।

ब्रह्माजी बोले—नारद! सुनो, मैं रहस्यमय उत्तम धर्मका वर्णन करता हूँ। चार प्रकारके तीर्थ हैं। चार ही युग हैं। तीन गुण, तीन पुरुष और तीन ही सनातन देवता हैं। स्मृतियोंसहित वेद चार बताये गये हैं। पुरुषार्थ भी चार ही हैं और वाणीके भी चार ही भेद हैं। ये सब समान हैं। धर्म सर्वत्र एक ही है। क्योंकि वह सनातन है। साध्य और साधनके भेदसे उसके अनेक रूप माने गये हैं। धर्मके दो आश्रय हैं, देश और काल। कालके आश्रित जो धर्म है, वह सदा घटता-बढ़ता रहता है। युगोंके अनुसार उसमें एक-एक चरणकी न्यूनता होती जाती है। कालाश्रित धर्म भी देशमें सदा प्रतिष्ठित रहता है। युगोंका क्षय होनेपर भी देशाश्रित धर्मकी हानि नहीं होती। जो

धर्म दोनों आश्रयोंसे हीन है, उसका अभाव हो जाता है। अतः देशके आश्रित रहनेवाला धर्म अपने चारों चरणोंके साथ प्रतिष्ठित होता है। देशाश्रित धर्म भिन्न-भिन्न देशोंमें तीर्थरूपसे स्थित रहता है। सत्ययुगमें धर्म देश और काल दोनोंके आश्रित होता है। त्रेतामें उसके एक चरणको, द्वापरमें दो चरणोंकी और कलियुगमें उसके तीन चरणोंकी हानि होती है। द्वापर और कलियुगमें क्रमशः आधे और चौथाई रूपमें शेष रहकर धर्म खलू रहता है। कलियुगमें उसकी संकटमयी स्थिति होती है। जो इस प्रकार धर्मको जानता है, उसके धर्मकी हानि नहीं होती।

जो धरसे तीर्थयात्राके लिये निकलना चाहता है, उसके सामने अनेक प्रकारके विघ्न आते हैं; परंतु जो उन विघ्नोंके मस्तकपर पैर रखकर गङ्गाजीके पास नहीं पहुँचता, उसने अपने जीवनमें क्या फल पाया। गौतमीके प्रभावका कौन वर्णन कर सकता है। साक्षात् सदाशिव भी उसके वर्णनमें असमर्थ हैं। मैंने संक्षेपसे इतिहाससहित गङ्गाके माहात्म्यका प्रतिपादन किया है। घराघर जगत्में धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका जो भी साधन है, वह सब इस विस्तृत इतिहासमें मौजूद है। इसमें वेदोंक श्रुतियोंका सम्पूर्ण रहस्य बताया गया है। जगत्के कल्याणके लिये जो उत्तम साधन, जो उत्तम नामवाला प्राचीन तीर्थ देखा गया है, उसीका वर्णन किया गया है। जो इस 'माहात्म्यका एक श्लोक अथवा एक पद भी भक्तिपूर्वक पढ़ता और सुनता है अथवा 'गङ्गा-गङ्गा' यों उच्चारण करता है, वह पुण्यका भागी होता है। गङ्गाका यह उत्तम माहात्म्य कलिके कलङ्कक विनाश करनेवाला, सब प्रकारकी सिद्धि और मङ्गल देनेवाला है, संसारमें यह समादरके योग्य है। इसके पढ़ने और सुननेसे मनोवाञ्छित

फलकी प्राप्ति होती है। जो सौ योजन दूरसे भी 'गङ्गा-गङ्गा' का उच्चारण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होता और भगवान् विष्णुके घागघमें आता है। तीनों लोकोंमें साठे तीन करोड़ तीर्थ हैं। वे सभी बृहस्पतिके सिंहराशिमें स्थित होनेपर गौतमी गङ्गामें स्नान करनेके लिये आते हैं।* भेटा। ये गौतमी मेरी आज्ञासे सदा सब मनुष्योंको स्नान करनेपर भोक्ष प्रदत्त करेंगी। हज्जर अक्षमेघ और सौ वाजपेय-यज्ञ करनेपर जो फल मिलता है, वह इस माहात्म्यके श्रवणमात्रसे प्राप्त हो जाता

है। नरद! जिसके घरमें यह मेरा कहा हुआ पुराण मौजूद है, उसे कलिकालका कोई भय नहीं है। वह उत्तम पुराण जिस किसी मनुष्यके सामने कहने योग्य नहीं है। ब्रह्मासु, शान्त एवं वैष्णव महात्म्यके स्वप्ने ही इसकर कीर्तन करना चाहिये। यह भोग और मोक्ष देनेवाला तथा पापोंका नाश करनेवाला है। इसके श्रवणमात्रसे मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है। जो अपने हाथसे लिखकर यह पुस्तक जाइनोंको देता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर फिर कभी गर्भमें नहीं आता।

अनन्त वासुदेवकी महिमा तथा पुरुषोत्तम-क्षेत्रके माहात्म्यका उपसंहार

मुनि बोले—देव! भगवान्की यह कथा सुननेसे हमें तृप्ति नहीं होती। आप पुनः परम गोपनीय रहस्यका वर्णन कीजिये अनन्त वासुदेवकी महिमाका आपने भलीभाँति वर्णन नहीं किया। अब हम इसीको सुनना चाहते हैं। आप विस्तारपूर्वक बतलायें

ब्रह्माजीने कहा—मुनिवरे! अनन्त वासुदेवका माहात्म्य सारसे भी अत्यन्त सारस्वर वस्तु है। वह इस पृथ्वीपर दुर्लभ है। विप्रगण! आदिकल्पकी बात है, मैंने देवशिल्पियोंमें श्रेष्ठ विश्वकर्माको बुलाकर कहा—'तुम पृथ्वीपर भगवान् वासुदेवकी शिलामयी प्रतिमा बनाओ, जिसका दर्शन करके इन्द्र आदि देवता और मनुष्य भक्तिपूर्वक भगवान् वासुदेवकी आराधना करें और उनकी कृपासे

निर्भय होकर रहें।' मेरी बात सुनकर विश्वकर्माने तत्काल ही एक सुन्दर और सुदृढ़ प्रतिमा बनायी, जिसके हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म लोभा पा रहे थे। भगवान्का वह विग्रह सब प्रकारके शुभ लक्षणोंसे सम्यक् और अत्यन्त प्रभावशाली था। नेत्र कमलदलके समान विस्तार थे। वक्षः-स्थलमें श्रीवत्सका चिह्न सुशोभित था। हृदयदेश वनमास्तासे आवृत हो रहा था। मस्तकपर मुकुट और भुजाओंमें अङ्गद शोभा पाते थे। कंधे मोटे आन पड़ते थे। कर्तनोंमें कुचडल झिलमिला रहे थे। श्वाभ्र अङ्गपर पीताम्बरकी अपूर्व शोभा थी इस प्रकार वह प्रतिमा दिव्य थी। स्थापनाका समय आनेपर स्वयं मैंने ही गूढ़ मन्त्रोंद्वारा उसे स्थापित किया। उस समय देवराज इन्द्र ऐरावतपर सवार

* गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयात्तेजोवन् शतैरपि । मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥
तिष्ठ कोट्योऽर्धकोटी च तीर्थानि भुवनत्रये । तानि स्नानं समाधानं गङ्गायां सिंहो गुरौ ॥

हो समस्त देवताओंके साथ मेरे लोकमें आये। उन्होंने स्नान-दान आदिके द्वारा भगवत्प्रतिमाको प्रसन्न किया और उसे लेकर ये अपनी अमरावती पुरीमें चले गये। वहाँ इन्द्रभवनमें उसे स्थापित कर उन्होंने मन, वाणी और शरीरको संयममें रखते हुए दीर्घकालतक भगवान्की आराधना की और इन्हींके प्रसादसे वृष एवं नमुचि आदि क्रूर राक्षसों तथा भयंकर दानवोंका संहार करके तीनों लोकोंका राज्य भोगा।

द्वितीय युग प्रेता आनेपर महापराक्रमी रघुसत्तम रावण बड़ा प्रतापी हुआ। उसने दस हजार वर्षोंतक निराहार और जितेन्द्रिय रहकर अत्यन्त कठोर व्रतका पालन करते हुए भारी तपस्व्य की, जो दूसरोंके लिये अत्यन्त दुष्कर थी। उस तपस्यासे संतुष्ट होकर मैंने रावणको वरदान दिया, 'तुम्हें सम्पूर्ण देवताओं, दैत्यों, नागों और राक्षसोंमेंसे कोई नहीं मार सकेगा। आपके भयंकर प्रहारसे भी तुम्हारी मृत्यु नहीं होगी। तुम यमदूतोंसे भी अवध्य रहोगे।' ऐसा वर पाकर वह राक्षस सम्पूर्ण यक्षों और उनके राजा भवभूषण कुबेरको भी परास्त करके इन्द्रको भी जीतनेके लिये उद्यत हुआ। उसने देवताओंके साथ बड़ा भयङ्कर संग्राम किया। उसके पुत्रका नाम मेघनद था। मेघनदने इन्द्रको जीत लिया, अतः वह इन्द्रजित्के नामसे प्रसिद्ध हुआ। तदनन्तर बलवन् रावणने अमरकवीर्यसे प्रवेश करके देवराज इन्द्रके सुन्दर भवनमें भगवान् वासुदेवकी प्रतिमा देखी, जो अञ्जनके समान हयामवर्ण और समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न थी। पद्मपत्रके समान विरक्तल नेत्र, वनमल्लासे ढंके हुए यक्ष-स्थलमें श्रीवत्सका सुन्दर चिह्न, मस्तकपर

मुकुट, भुजाओंमें भुजबन्ध, हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म, शरीरपर पीताम्बर, चार भुजोंमें तथ्य अङ्गोंमें समस्त अभूषण शोभा दे रहे थे। वह प्रतिमा समस्त मनोवाञ्छित फलोंको देनेवाली थी। रावणने यहाँ रखे हुए ढेर-कै-ढेर रत्नोंको तो छोड़ दिया और उस सुन्दर प्रतिमाको तुरन्त ही पुष्पक विमानसे लङ्कामें भेज दिया।

वहाँ रावणके छोटे भाई धर्मरत्न विभीषण भगवत्पूजक थे। वे सदा भगवान् नारायणके भजनमें लगे रहते थे। देवराजकी भूमिसे आयी हुई उस दिव्य प्रतिमाको देखकर उनके शरीरमें रोमाञ्च हो आया। उन्हें बड़ा विस्मय हुआ। विभीषणने प्रसन्न-चित्तसे मस्तक झुककर भगवान्को प्रणम किया और कहा—'आज मेरा जन्म सफल हो गया। आज मेरी तपस्व्यका फल मिल गया।' यों कहकर धर्मरत्न विभीषण बारम्बार भगवान्को प्रणम करके अपने बड़े भाईके पास गये और हाथ जोड़कर बोले—'राजन्। आप वह प्रतिमा देकर मुझपर कृपा कीजिये। मैं उसकी आराधना करके भवसागरसे पार होना चाहता हूँ।' भाईकी बात सुनकर रावणने कहा—'वीर। तुम प्रतिमा ले लो, मैं उसे लेकर क्या करूँगा। मैं तो ब्रह्माजीकी आराधना करके तीनों लोकोंपर विजय पा रहा हूँ।' विभीषण बड़े नुष्टिमान् थे। उन्होंने वह कल्याणमयी प्रतिमा ले ली और उसके द्वारा एक ही आठ वर्षोंतक भगवान् विष्णुकी आराधना की। इससे इन्होंने अणिमा आदि आठों सिद्धियोंके साथ अजर-अमर रहनेका वरदान प्राप्त कर लिया।

रावण बड़ा पापी और क्रूर राक्षस था। उसने देवता, गन्धर्व, किन्नर, लोकपाल, मनुष्य, भूमि

वनवासवृत्तोरुक्तं मुकुटाङ्गदधरीषोम् । पीठवत्सं सुखीनासां कुण्डलद्वयमङ्गकृतम् ॥
एवं च प्रतिमा दिव्यं गृह्यन्नेतदस्य स्वप्नम् । प्रतिपन्नकरमस्तस्य मयासौ निर्मिता वृत्तः ॥

और सिद्धोंको भी युद्धमें जीतकर उनकी स्त्रियोंको हर लिया और लङ्का नगरीमें लाकर रखा। फिर सीताके लिये मोहित होकर उसने इनको भी हर लानेका प्रयत्न किया। श्रीरामके सम्मुख जानेमें उसे भय होता था; इसलिये मारोचको सुवर्णमय मृगके रूपमें भेजकर उन्हें आश्रयसे दूर हटा दिया और सीताको अकेली पकड़ हर लिया। इसका पता लगनेपर लक्ष्मणसहित श्रीरामको बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने रावणको भार डालनेका निश्चय किया। इस कार्यमें सुग्रीव सहायक हुए। सुग्रीवका वासीके साथ वैर था, अतः श्रीरामने वासीको मारकर सुग्रीवको किष्किन्धके राज्यपर अभिषिक्त कर दिया और अङ्गदको युवराज बनाया। फिर हनुमान्, नल, नील, काम्बवान्, पनस, गवध, गवाक्ष और पाटीन आदि असंख्य महाबली सापरोके साथ कभलनयन श्रीरामने सङ्काकी सजा की। उन्होंने समुद्रमें पर्वतोंकी बड़ी-बड़ी बट्टानें डालकर पुल बँधाया और विशाल सेनके साथ समुद्रको पार किया। रावणने राक्षसोंको साथ लेकर भगवान् श्रीरामके साथ खेर संग्राम किया। परम पराक्रमी श्रीरघुनाथजीने महोदर, प्रहस्ता, भिकुम्भ, कुम्भ, नरान्तक, यमान्तक, मान्मन्थ, मात्स्यवान्, इन्द्रजित्, कुम्भकर्ण तथा रावणको मारकर विदेहकुमारी सीताको अग्निपरीक्षाद्वारा शुद्ध प्रमाणित किया और विभीषणको राज्य दे भगवान् वासुदेवकी प्रतिमाको साथ लेकर वे पुष्पक विमानपर आरुढ़ हुए और अनायास ही पूर्वजोंद्वारा पालित अयोध्या नगरीमें जा पहुँचे। भक्तकसल श्रीरघुनाथजीने अपने छोटे भाई भरत और शत्रुघ्नको भिन्न भिन्न राज्योंपर अभिषिक्त किया और स्वयं सम्राट्की भाँति समस्त भूमण्डलके राज्यपर आसीन हुए। उन्होंने अपने पुरातन स्वरूप श्रीविष्णुकी उस प्रतिमाको आराधन करते हुए

समुद्रपर्यन्त पृथ्वीका ग्यारह हजार चर्चोतक पालन किया। उसके बाद वे अपने वैष्णव धर्ममें प्रवेश कर गये। उस समय श्रीरामने वह प्रतिमा समुद्रको दे दी और कहा—‘अपने जल और रत्नोंके साथ तुम इस प्रतिमाकी भी रक्षा करना।’

हापर जानेपर जब जगदीश्वर भगवान् विष्णु पृथ्वीकी प्रार्थनासे कंस आदिका यध करनेके लिये बलभद्रजोंके साथ वसुदेवजीके कुलमें अवतीर्ण हुए, उस समय नदियोंके स्वामी समुद्रने उस परम दुर्लभ पुण्यमय पुरुषोत्तमक्षेत्रमें सम्पूर्ण लोकोंका हित करनेके लिये ठक प्रतिमाको प्रकट किया, जो सम्पूर्ण मनोवाम्भित फलोंको देनेवाली थी, तबसे उस मुक्तिदायक क्षेत्रमें ही देवाधिदेव अनन्त वासुदेव विराजमान हैं, ओ मनुष्योंकी समस्त कामनाएँ पूर्ण करनेवाले हैं। जो लोग मन, वाणी और क्रियाद्वारा सदा सर्वेश्वर भगवान् अनन्त वासुदेवकी भक्तिपूर्वक शरण लेते हैं वे परमपदको प्राप्त होते हैं। भगवान् अनन्तका एक बार दर्शन, भक्तिपूर्वक पूजन और प्रणाम करके मनुष्य राजसूय और अश्वमेध-यज्ञोंसे दसगुण फल पाता है। वह समस्त भोग-सम्पत्तीसे सम्पन्न छोटी-छोटी बँटियोंसे सुरोभित, सूर्यके समान तेजस्वी और इन्द्रानुसार चलनेवाले विमानसे वैकुण्ठधाममें जाता है। उस समय दिव्याङ्गनाएँ उसकी सेवामें रहती हैं और गन्धर्व उसके यशका गान करते हैं। वह अपने साथ कुलकी इक्कीस पीढ़ियोंका भी उद्धार कर देता है। भुनिवरो! इस प्रकार मैंने भगवान् अनन्तके सम्बन्धमें कुछ निवेदन किया। कौन ऐसा मनुष्य है, जो सी चर्चोंमें भी उनके गुणोंका वर्णन कर सके।

इस प्रकार मनुष्योंकी भोग और मोक्ष देनेवाले परम दुर्लभ पुरुषोत्तमक्षेत्र तथा अनन्त वासुदेवके महात्म्यका वर्णन किया गया। पुरुषोत्तमक्षेत्रमें

शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म और पीताम्बर धारण करनेवाले कमलनयन भगवान् श्रीकृष्ण विराजमान हैं, जिन्होंने कंस और केशीका संहार किया था जो लोग वहाँ देव-दानव-वन्दित श्रीकृष्ण, बलभद्र और सुभद्राका दर्शन करते हैं, वे धन्य हैं। भगवान् श्रीकृष्ण तीनों लोकोंके स्वामी तथा सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंके दाता हैं। जो सदा उनका ध्यान करते हैं, वे निश्चय ही मुक्त हो जाते हैं जो सदा श्रीकृष्णमें अनुरक्त रहते हैं, रातको सोते समय श्रीकृष्णका चिन्तन करते हैं और फिर सोकर उठनेके बाद श्रीकृष्णका स्मरण करते हैं वे शरीर त्यागनेके बाद श्रीकृष्णमें ही प्रवेश करते हैं—ठीक वैसे ही जैसे मन्त्रोच्चारणपूर्वक होम किया हुआ इषिष्य अग्निमें लीन हो जाता है।* अतः मुनिवरो, मोक्षकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको पुरुषोत्तमक्षेत्रमें सदा यज्ञपूर्वक कमलनयन श्रीकृष्णका दर्शन करना चाहिये। जो मनीषी पुरुष शयन और जागरणकालमें श्रीकृष्ण, बलभद्र तथा सुभद्राका दर्शन करते हैं, वे श्रीहरिके काममें जाते हैं। जो हर समय भक्तिपूर्वक पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण, वैशिष्ट्यन्दन बलभद्र और सुभद्रादेवीका दर्शन करते हैं, वे भगवान् विष्णुके लोकमें जाते हैं। जो वर्षाके चार महीनोंमें पुरुषोत्तमक्षेत्रके भीतर निवास करते हैं, उन्हें सारी पृथ्वीकी तीर्थयात्रासे भी अधिक फल प्राप्त होता है। जो इन्द्रियोंको जीतकर और ऋषेयको वशीभूत करके सदा पुरुषोत्तमक्षेत्रमें ही निवास करते हैं, वे तपस्याका फल पाते हैं। मनुष्य अन्य तीर्थोंमें दस हजार वर्षोंतक तपस्या करके जो फल

प्राप्त है, उसे पुरुषोत्तमक्षेत्रमें एक ही मासमें प्राप्त कर लेता है। तपस्व, ब्रह्मचर्यपालन तथा आसक्ति-त्यागसे जो फल मिलता है, उसे मनीषी पुरुष वहाँ सदा ही पाते रहते हैं। सब तीर्थोंमें ज्ञान-दान करनेका जो पुण्य फल बताया गया है, वह मनीषी पुरुषोंको वहाँ सर्वदा प्राप्त होता है। विधिपूर्वक तीर्थसेवन तथा व्रत और नियमोंके पालनसे जो फल बताया गया है, उसे वहाँ इन्द्रियसंयमपूर्वक पवित्रतासे रहनेवाला पुरुष प्रतिदिन प्राप्त करता है। मात्र प्रकारके यज्ञोंसे मनुष्य जो फल प्राप्त करता है, वह जितेन्द्रिय पुरुषको वहाँ प्रतिदिन मिलता करता है। जो पुरुषोत्तमक्षेत्रमें कल्पवृक्ष (अक्षयवट) के पास जाकर शरीरत्याग करते हैं, वे नि-संदेह मुक्त हो जाते हैं। जो मानव बिना इच्छाके भी वहाँ प्राणत्याग करता है वह भी दुःखसे मुक्त हो दुलभ मोक्ष प्राप्त कर लेता है। कृषि, कौट, पतञ्ज आदि तथा पशु-पक्षियोंकी खीनिमें पड़े हुए जीव भी वहाँ देहत्याग करनेपर परमगतिको प्राप्त करते हैं। जो मनुष्य एक बार भी ब्रह्मापूर्वक भगवान् पुरुषोत्तमका दर्शन कर लेता है, वह सहस्रों पुरुषोंमें उत्तम है। भगवान् प्रकृतिसे परे और पुरुषसे भी उत्तम हैं। इसलिये वे वेद, पुराण तथा इस लोकमें पुरुषोत्तम कहलाते हैं। जो पुराण और वेदान्तमें परमात्मा कहे गये हैं, वे ही सम्पूर्ण जगत्का उपकार करनेके लिये उस क्षेत्रमें पुरुषोत्तमरूपसे विराजमान हैं।† पुरुषोत्तमक्षेत्रके भीतर मार्गमें, श्मशानभूमिमें, घरके मण्डपमें, सड़कों और गलियोंमें—जहाँ कहीं इच्छा या

* कृष्णे रत्नः कृष्णघनुस्मरन्ति रात्रौ च कृष्णं पुनरुचिता ये

ते भिन्नदेहाः प्रविशन्ति कृष्णं हविर्वया मन्वहुतं हुताशाम्॥ (१७७. ५)

† प्रकृतेः स परो यस्माद् पुरुषोदधि चोत्तमः। तस्माद् वेदे पुरुषो च लोकेऽस्मिन् पुरुषोत्तमः॥

योऽसी पुराणे वेदान्ते यस्यात्पेत्युदाहृतः। अस्ते विज्ञोपकाराय प्रदेते पुरुषोत्तमः॥

(१७७। २२-२३)

अनिच्छासे भी शरीरत्याग करनेवाला मनुष्य मोक्षका भागी होता है। पुरुषोत्तमतीर्थके समान किसी तीर्थका माहात्म्य न हुआ है और न होगा। मैंने उस क्षेत्रके गुणोंका एक अंशमात्र यहाँ बताया है। कौन पुरुष सौ वर्षोंमें भी उसके समस्त गुणोंका वर्णन कर सकता है। मुनिवरो! यदि तुम सनातन मोक्ष पाना चाहते हो तो

आसस्य छोड़कर उस पवित्र तीर्थमें निवास करो।

व्यासजी कहते हैं—अव्यक्तजन्म ब्रह्माजीका वह वचन सुनकर मुनियोंने वहाँ निवास किया और परमपद प्राप्त कर लिया। द्विजवरो! यदि आपलोग भी मोक्ष प्राप्त करना चाहते हो तो परम उत्तम पुरुषोत्तमक्षेत्रमें निवास करें।

कण्डुमुनिका चरित्र और मुनिपर भगवान् पुरुषोत्तमकी कृपा

व्यासजी कहते हैं—मुनिवरो! पुरुषोत्तमक्षेत्र सम्पूर्ण जीवोंके लिये सुखदायी है। वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंका फल देनेवाला है। उस तीर्थमें कण्डु नामके एक महातेजस्वी मुनि रहा करते थे, जो परम धार्मिक, सत्यवादी, पवित्र, ज्ञानेन्द्रिय और समस्त प्राणियोंके हितमें तत्पर रहनेवाले थे। उन्होंने इन्द्रियोंको जीतकर ब्रह्मधर अधिकार प्राप्त कर लिया था। वे वेद-वेदाङ्गोंके परागत विद्वान् थे और भगवान् पुरुषोत्तमकी उग्रारधन करके उत्तम सिद्धि प्राप्त कर चुके थे। उनके सिखा और भी बहुत से मुनि यहाँ उत्तम व्रतकर्म फलान करते हुए सिद्ध हो चुके हैं।

मुनियोंने पूछा—साधुशिरोमणे! कण्डु कौन थे और उन्होंने किस प्रकार वहाँ परमगति प्राप्त की? हम उनका चरित्र सुनना चाहते हैं, बताइये।

व्यासजी बोले—मुनोद्यरो! कण्डुमुनिकी कथा खड़ी मनोहर है। मैं संक्षेपसे ही कहूँगा, सुनो। गोमती नदीके परम मनोरम एकान्त तटपर, जहाँ कन्द, मूल, फल, समिधा, पुष्प और कुश आदिकी अधिकता थी, कण्डुमुनिका आश्रम था। वहाँ सभी ऋतुओंके फल और फूल सुलभ थे। कैलोंका उद्यान उस आश्रमकी शोभा बढ़ा रहा

था। वहाँ कण्डुमुनिने व्रत, उपवास, नियम, ज्ञान, ध्यान और संयम आदिके द्वारा बड़ी भारी एवं अत्यन्त अद्भुत तपस्या की। वे ग्रीष्म-ऋतुमें पञ्चाग्निका तप सहते, सर्वायें खुली घेदीपर सोते और हेमन्त-ऋतुमें भीगे वस्त्र धारण करके कठोर तपस्या करते थे। मुनिकी तपस्याका बड़ता हुआ प्रभाव देख देवता, गन्धर्व, सिद्ध और विद्याधरोंको बड़ा विस्मय हुआ। वे कहने लगे—'इनका महान् धैर्य अद्भुत है। इनकी कठोर तपस्या नितान्त आश्चर्यजनक है।' उन्हें तपस्यामें स्थित देख इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता उनके भयसे व्याकुल हो आपसमें परामर्श करने लगे। वे उनकी तपस्यामें विघ्न डालना चाहते थे। त्रिभुवनके स्वामी इन्द्र देवतगणोंका अभिप्राय जानकर एक सुन्दरी अप्सरासे बोले—'प्रमत्तेवे! तुम शीघ्र कण्डुमुनिके आश्रमपर जाओ। मुनि वहाँ तपस्या करते हैं। उनकी तपस्यामें विघ्न डालनेके लिये ही तुम्हें भेजा जाता है। सुन्दरी! तुम शीघ्र ही उनके चित्तमें शोध उत्पन्न कर दो।'

प्रमत्तेजा बोली—सुरश्रेष्ठ! मैं सदा आपकी आज्ञाका पालन करती हूँ। किंतु इस कार्यमें तो मेरे जोयनका ही संदेह है। मैं मुनिवर कण्डुसे

बहुत डरती हूँ। वे ब्रह्मचर्यव्रतके पालनमें स्थित हैं अत्यन्त उग्र हैं। उनकी तपस्या बहुत तीव्र है। वे अग्नि और सूर्यके समान तेजस्वी हैं। मुझे अपनी तपस्यामें विघ्न डालने आयी हुई जानकर परम तेजस्वी कण्डुमुनि कुपित हो उठेंगे और दुःसह शाप दे देंगे।

यह सुनकर इन्द्रने कहा—‘सुन्दरी! मैं कामदेव, ऋतुराज वसन्त और दक्षिण समीरको तुम्हारी सहायतामें देता हूँ। इन सबके साथ उस स्थानपर जाओ, जहाँ वे भहामुनि रहते हैं।’ इन्द्रका यह कथन सुनकर मनोहर नेत्रोंवाली प्रमत्तोका कामदेव आदिके साथ आकाशमार्गसे कण्डुमुनिके आश्रमपर गयीं। वहाँ पहुँचकर उसने एक बहुत सुन्दर वन देखा। तीव्र तपस्यामें लगे हुए पापहीन मुनिकर कण्डु भी आश्रमपर ही दिखायी दिये। प्रमत्तोका और कामदेव आदिने देखा—वह वन नन्दनवनके समान रमणीय था। सभी ऋतुओंमें विकसित होनेवाले सुन्दर पुष्प उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। नाना प्रकारके पक्षी वृक्षोंपर बैठकर अपने श्रवणसुखद क्लृप्तियोंसे उस वनको मुखरित कर रहे थे। अप्सराने क्रमशः सम्पूर्ण वनका निरीक्षण किया। उस परम अद्भुत मनोहर काननकी शोभा देख उसके नेत्र आश्चर्य चकित हो उठे। उसने वायु, कामदेव और वसन्तसे कहा—‘अब आपसो पृथक् पृथक् मेरी सहायता करें।’ उन्होंने ‘बहुत अच्छा’ कहकर हसिकृति दे दी। तब प्रमत्तोका बोली—‘अब मैं मुनिके पास जाऊँगी। जो इन्द्रियरुप्ति अश्वोंसे जुटे हुए देहरूपी रथके सारथि बने हुए हैं, उन्हें आज कामबाणसे आहत करके ऐसी दशाको पहुँचा दूँगी कि मनरूपी चाण्डोर वनके काव्यसे बाहर हो जायगी। इस प्रकार उन्हें मैं अयोग्य सारथि सिद्ध कर दिखाऊँगी।’ यों कहकर वह उस स्थानकी ओर चल दी, जहाँ मुनि निवास

करते थे। मुनिकी तपस्याके प्रभावसे वहाँके हिंसक जीव भी शान्त हो गये थे। नदीके तटपर, जहाँ कोयलकी पीली तान सुनायी देती थी, वह ठहर गयो। चोड़ो देरतक तो वह खड़ी रही फिर उसने संगीत छेड़ दिया। इसी समय वसन्तने भी अपना पराक्रम दिखाया। समय नहीं होनेपर भी समस्त काननमें मधुऋतुकी मनोहर शोभा छा गयी। कोकिलकी काकलीसे माधुर्यकी वर्षा होने लगी। मलयवायु मनोहर सुगन्ध लिये मन्द-मन्द गतिसे बहने लगी और छोटे-बड़े सभी वृक्षोंके पवित्र पुष्प धीरे-धीरे भूतलपर गिरने लगे। कामने अपने फूलोंका बाण सँभाला और मुनिके समीप जाकर उनके मनको विचलित कर दिया। संगीतकी यधुर ध्वनि सुनकर मुनिके मनमें बड़ा आश्चर्य हुआ। वे कामबाणसे अत्यन्त पीड़ित हो जहाँ सुन्दरी अप्सरा गीत गा रही थी, गये मुनिके अप्सराको देखा और अप्सराने भी मुनिपर दृष्टिपात किया। उनके नेत्र आश्चर्यसे खिल गये। चादर खिस्तककर गिर पड़ी। मुनिके मनमें विकलता छा गयी। उनके शरीरमें रोमाञ्च हो आया वे पूछने लगे—‘सुन्दरी! तुम कौन हो? किसकी हो? तुम्हारी मुसकान बड़ी मनोहर है। सुभू! तुम मेरे मनको मोह लेती हो। सुमध्यमे, अपना सच्चा परिचय दो।’

प्रमत्तोका बोली—‘मुने! मैं आपकी सेविका हूँ और फूल लेनेके लिये यहाँ आयी हूँ। शीघ्र आज्ञा दीजिये। मैं आपको क्या सेवा करूँ?’

अप्सरकी यह बात सुनकर मुनिका धैर्य छूट गया। उन्होंने भोहित होकर उसका हाथ पकड़ लिया और उसे साथ लेकर अपने आश्रममें प्रवेश किया। वह देख कामदेव, वायु और वसन्त कृतकृत्य हो जैसे आये थे, उसी प्रकार स्वर्गकी लौट गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने इन्द्रसे प्रमत्तोका

और मुनिको सारी चेष्टा कह सुनायी। सुनकर इन्द्र और सम्पूर्ण देवताओंका चित्त प्रसन्न हो गया। कण्डुने अप्सराके साथ आश्रममें प्रवेश करते ही अपना रूप कामदेवके समान मनोहर एवं तरुण बना लिया। दिव्य वस्त्र और आभूषण धारण कर लिये। देखनेमें उनकी अवस्था सोलह वर्षोंकी जान पड़ती थी। मुनिकी यह शक्ति देखकर प्रमत्तोद्योको बड़ा आश्चर्य हुआ। 'अहो, इनकी तपःशक्ति अद्भुत है!' यों कहकर वह बहुत प्रसन्न हुई। कण्डुमुनि स्नान, संन्या, जप, होम, स्वाध्याय, देवपूजन, व्रत, उपवास, नियम और ध्यान—सब छोड़कर रात-दिन उसीके स्तन विहार करने लगे। इसीमें वे आनन्द मगनते थे। ठनकर इन्द्र कामदेवके बशीभूत हो गया था। अतः वे अपनी तपस्याकी हानि नहीं समझ पाते थे। इस प्रकार कण्डुमुनि उसके साथ सांसारिक विषयभोगमें अग्रसक्त हो सीसे कुछ अधिक वर्षोंतक मन्दराचलकी गुफामें पड़े रहे। एक दिन प्रमत्तोद्योने महाभाग कण्डुमुनिके कहा—'ब्रह्मन्! अब मैं स्वर्गमें जाना चाहती हूँ। आप प्रसन्न होकर मुझे जानेकी आज्ञा दें।' मुनिका मन तो उसीमें आसक्त हो रहा था। उसके इस प्रकार पूछनेपर वे बोले—'कल्याणी! कुछ दिन और ठहरो।' तब उसने पुनः सी वयोसे कुछ अधिक कालतक उन कण्डुमुनिके साथ विषय भोगा। तदनन्तर उसने पुनः जानेकी आज्ञा माँगी, किन्तु मुनिने स्वीकार नहीं किया। अतः उसे लगभग दो सौ वर्षोंतक और ठहरना पड़ा। वह जब-जब उनसे देवलोकमें जानेकी आज्ञा माँगती, तब-तब वे उसे यही उत्तर देते—'कुछ दिन और ठहरो। प्रमत्तोद्यो एक तो मुनिके सपने डरती थी, दूसरे उसमें दक्षिणा नयिककी स्वाभाविक उत्तरदायी और तीसरे वह प्रणयभङ्गकी पीड़ाको जानती थी। इसलिये मुनिको छोड़ न सकी। यह

कामभोगमें आसक्त हो दिन-रात उसके स्तन रमण करते रहे किन्तु तृप्ति न हुई। उसके प्रति निश्च नूतन प्रेम बढ़ता गया।

एक दिन कण्डुमुनि बड़ी उतावलीके साथ आश्रमसे बाहर जाने लगे। अप्सराने पूछा—'कहाँ चले?' मुनिने उत्तर दिया—'सुधे। दिन बीत चला है। संध्योपासन कर लूँ, नहीं तो कर्मका लोप हो जायगा।' प्रमत्तोद्योको बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने हँसकर पूछा—'सब धर्मोंके ज्ञाता महात्माजी! क्या आज ही आपका दिन बीता है? आपकी यह बात सुनकर किसकी आश्चर्य न होगा।'



मुनि बोले—'कल्याणी! अभी प्रातःकाल ही तो तुम इस नदीके सुन्दर तटपर आयी हो। उसी समय मैंने तुम्हें देखा, परिचय पूछा और तुम मेरे साथ आश्रममें आयी। अब वह दिन बीता है और यह संध्योपासना समय उपस्थित हुआ है। फिर यह परिहास किसलिये? सच्ची बात बताओ।

प्रमत्तोद्योने कहा—'ब्रह्मन्! यह ठीक है कि मैं प्रातःकालमें ही आयी थी, इसमें सन्देह नहीं

मिथ्य नहीं है। किंतु आज उससे सैकड़ों वर्ष बीत गये।

यह सुनकर मुनिको बड़ा भय हुआ। उन्होंने विराल नेत्रोंवाली अप्सरासे पूछा—'भोर! ब्रह्मओ तो सही, तुम्हारे साथ निरन्तर रमण करते हुए अबतक मेरा कितना समय बीता है?'

प्रश्नोच्चा बोली—मुने! मेरे साथ आपके नी सी सात वर्ष, छः महीने और तीन दिन बीते हैं।

ऋषिने कहा—शुभे! क्या यह सत्य कहती हो अथवा परिहासकी बात है? मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि तुम्हारे साथ एक ही दिन रहा हूँ।

प्रश्नोच्चा बोली—ब्रह्मन्! आपके समीप मैं झूठ कैसे बोलूंगी। विशेषतः ऐसे अवसरपर, जब कि आप धर्म-मार्गका अनुसरण करते हुए चुप रहे हैं।

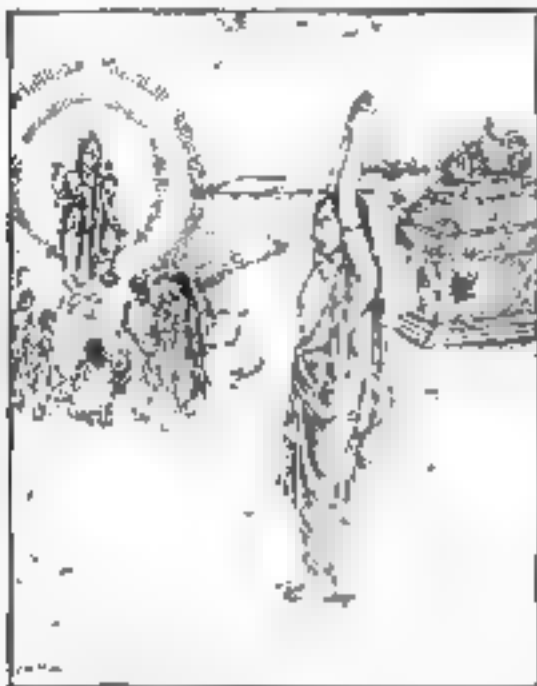
अप्सराकी बात सुनकर मुनिको बड़ा कष्ट हुआ। वे स्वयं ही अपनी निन्दा करते हुए बोले—'हाय, मुझ दुष्टवारीको धिक्कार है। हाय, मेरी तपस्या नष्ट हो गयी। ब्रह्मदेताओंका जो धन है, वह चला गया और मेरा बिकेक भी छिन गया। जान पड़ता है, मनुष्योंको प्येहमें डालनेके लिये ही किसीने युवती नारीकी सृष्टि की है। मुझे तो अपने मनको जीतकर श्रुध्म-पिपासा, राग-द्वेष और अय-मृत्यु—इन छहों ऋर्मियोंसे अतीत परब्रह्मका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। इसके विपरीत जिसने मेरो ऐसी दुर्गति की है, उस कायरूपी महान् ब्रह्मको धिक्कार है। यह काम नस्कग्राममें ले जानेवाला मार्ग है। इसने आज मेरे सम्पूर्ण वेदोंके स्वाध्याय, स्तन और समस्त साधनोंपर पानी फेर दिया।'

इस प्रकार स्वयं ही अपनी निन्दा करके वे धर्मके ज्ञाता मुनि पास ही बैठो हुई उस अप्सरासे बोले—'पापिनी! तेरी जहाँ इच्छा हो, चलो जा। तुझे जो करना था, उसे तूने पूरा कर लिया। मैं

तुझे अपने क्रोधकी प्रचण्ड आगसे जो भस्म नहीं करता, इसमें एक कारण है—सत्पुरुषोंकी मैत्री सात पग एक साथ चलनेसे ही हो जाती है, मैं तो तेरे साथ चिरकालतक निवास कर चुका हूँ। अथवा तेरा क्या दोष है? तेरी क्या हानि करूँ? सारा दोष तो मेरा ही है, क्योंकि मैं ही ऐसा अजितेन्द्रिय निकला। तू तो इन्द्रका प्रिय करनेके लिये आयी थी और मेरी तपस्याका सत्पञ्चन कर चुकी। अपने कष्टमूकके महामोहमय मनसे तूने मुझे घृणित बना दिया। अरो, अब जा! जा! चली आ!।'

इस प्रकार मुनिवर कण्डुने जब क्रोधपूर्वक उसे फटकारा, तब वह काँपती हुई आश्रमसे बाहर निकली और आकाशमार्गसे जाने लगी। उसके अङ्ग-अङ्गसे पसीनेकी बूँदें निकल रही थीं और वह वृक्षोंके पत्तोंसे उन्हें पोंछती जाती थी। ऋषिने उसके उदरमें जो गर्भ स्थापित किया था वह पसोनेके रूपमें ही बाहर निकल गया। वृक्षोंने उन स्वेद-बिन्दुओंको ग्रहण किया और बाधुने इन सबको एकत्रित करके एक गर्भका रूप दिया फिर चन्द्रपाने अपनी अमृतमयी किरणोंसे उस गर्भको घीरे-धीरे घुट्ट किया। उससे मारिषा नामकी कन्या उत्पन्न हुई, जो वृक्षोंकी पुत्री कहलायी। उसके नेत्र बड़े मनोहर थे। वही प्रचेतसोंकी पत्नी और दक्षकी जननी हुई।

इधर महर्षि कण्डु तपस्या क्षीप्त होनेपर श्रीविष्णुके निवास-स्नान पुरुषोत्तमक्षेत्रको गये। वहाँ सम्पूर्ण देवताओंसे सुशोभित श्रीहरिका दर्शन किया। ब्रह्मण आदि चारों वर्णों और आश्रमोंके लोग भगवान्की सेवामें उपस्थित थे। पुरुषोत्तमक्षेत्र और भगवान् पुरुषोत्तमका दर्शन करके मुनिने अपनेको कृतकृत्य माना और वहाँ अपनी दोनों बहिन ऊपर उठकर एकप्रचित्तसे ब्रह्मपारस्तोत्रका जप करते हुए वे भगवान्की आराधना करने लगे।



मुनि बोले—ज्यासजी, हम परम कल्याणमय ब्रह्मपारस्तोत्रकी श्रवण करना चाहते हैं, जिसका अप करते हुए कण्डुमुनिने भगवान् विष्णुकी आराधना की थी।

ज्यासजीने कहा—भगवान् विष्णु सबके परम पार (अन्तिम प्राप्य) हैं, वे अपार भवसागरसे पार उतारनेवाले, पर-शब्द-वाच्य, आकाश आदि पद महाभूतोंसे परे और परमात्मस्वरूप हैं। वेदोंकी भी पहुँचसे परे होनेके कारण उन्हें ब्रह्मपार कहते हैं, वे दूसरोंके लिये पारस्वरूप हैं—उन्हें पाकर सब प्राणी सदाके लिये पार हो जाते हैं वे परके भी पर—इन्द्रिय, मन आदिके भी अगोचर हैं। सबके पालक और सबकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले हैं। वे कारणमें स्थित होते हुए भी स्वयं ही कारणरूप हैं। कारणके भी कारण हैं।

परम कर्मणभूत प्रकृतिके कारण भी वे ही हैं। कर्षणमें भी उन्हींकी स्थिति है इस प्रकार कर्म और कर्ता आदि अनेक रूप धारण करके वे सम्पूर्ण विश्वकी रक्षा करते हैं। ब्रह्म ही प्रभु है, ब्रह्म ही सर्वस्वरूप है, ब्रह्म ही प्रजापति तथा अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाला है। वह ब्रह्म अविनाशी, नित्य और अजन्मा है। वही शाय आदि सम्पूर्ण विश्वोंके सम्पर्कसे रहित भगवान् विष्णु हैं। वे भगवान् पुरुषोत्तम ही अविनाशी अजन्मा एवं नित्य ब्रह्म हैं। उनके प्रभावसे भेरे राग अत्रि समस्त दोष नष्ट हो जायें।

मुनिके उस ब्रह्मपारस्तोत्रका अप सुनकर और उनकी सुदृढ़ परभक्तिके ज्ञानकर भक्त्यासल भगवान् पुरुषोत्तम बड़े प्रसन्न हुए और उनके पास जाकर बोले—‘मुने। तुम्हारे मनमें ओ अभिलाषा हो, उसे कहो। मैं तुम्हें वर देनेके लिये आया हूँ। सुव्रत। तुम कोई वर माँगो।’ देवाधिदेव भगवान् चक्रपाणिके ये वचन सुनकर मुनिने सहसा अँखों खोल दी और देख, भगवान् सामने खड़े हैं। उनका श्रीअङ्ग हीरोके फूलकी भाँति रक्ताम है। नेत्र पद्मपत्रके समान विस्तार हैं। हाथोंमें हाइल, चक्र और गदा शोभा पाते हैं। माथेपर मुकुट और भुजाओंमें भुजबन्ध सुशोभित हैं। चार भुजाएँ हैं। अङ्ग-अङ्गसे उदारता टपकती है। सुन्दर स्त्रीरूप पीताम्बर शोभा दे रहा है। श्रीवत्स-विहारी मुक्त वक्षःस्थल वनमालासे विभूषित है। श्रीहरि समस्त सुभ लक्ष्णोंसे युक्त दिखायी देते हैं। उनके अङ्गोंमें सब प्रकारके रत्नमय आभूषण शोभा पाते हैं। श्रीअङ्गमें दिव्य चन्दन लगा है और दिव्य हार उनकी शोभा बढ़ा रहा है।* इस प्रकार

* आतसीपुष्पसंकाशं परावन्वतेष्वम् । सङ्खचक्रगदापाणिं मुकुट्यङ्गदधारिणम् ॥
चतुर्बाहुमुदारङ्गं शैलस्वधर्मं शुभम् । श्रीवत्सलमयसंयुक्तं वनमालाविभूषितम् ॥
सर्वलक्षणसंयुक्तं सर्वरत्नविभूषितम् । दिव्यचन्दनसिताङ्गं दिव्यपात्रविभूषितम् ॥

भगवान्को झोंकी देखकर कण्डुमुनिके शरीरमें रोमाञ्च हो आया। उन्होंने दण्डकी भीति पृथ्वीपर गिरकर साष्टाङ्ग प्रणाम किया और कहा—“आज मेरा जन्म सफल हुआ, आज मेरी तपस्सक फल मिल गया।” यों कहकर मुनिने भगवान्की स्तुति आरम्भ की।



कण्डु बोले—भरारयण! हरे! श्रीकृष्ण! श्रीवत्साङ्ग! जगत्पते! जगद्बीज! जगद्गाम! जगत्साक्षि! आपको नमस्कार है। अव्यक्त विष्णो! आप ही सबकी उत्पत्तिके कारण हैं। प्रकृति और पुरुष दोनोंसे उत्पन्न होनेके कारण आपको पुरुषोत्तम कहते हैं। कमलनयन गोविन्द! जगन्नाथ! आपको नमस्कार है। आप हिरण्यगर्भ, लक्ष्म्योपति, पञ्चनाभ और सनातन पुरुष हैं। यह पृथ्वी आपके गर्भमें है। आप ध्रुव और ईश्वर हैं। इषोकेत! आपको नमस्कार है। आप अनादि, अनन्त और अजेय हैं। विजयी पुरुषोंमें श्रेष्ठ! आपकी जय हो। श्रीकृष्ण! आप अजित और अखण्ड हैं। श्रीनिवास! आपको नमस्कार है। आप ही बादल और घूम—वर्षा और

गर्मी करनेवाले हैं। आपका पार पान्न कठिन है। आप बड़ी कठिनाईसे प्राप्त होते हैं। दुःख और खेदोंका नाश करनेवाले हरे! जलमें शयन करनेवाले नारायण! आपको नमस्कार है। अव्यक्त परमेश्वर! आप सम्पूर्ण भूतोंके चालक और ईश्वर हैं। भौतिक तत्त्वोंसे आप कभी ध्रुव होनेवाले नहीं हैं। सम्पूर्ण प्राणी आपमें ही निवास करते हैं। आप सब भूतोंके आत्मा हैं। सम्पूर्ण भूत आपके गर्भमें स्थित हैं। आपको नमस्कार है। आप यज्ञ, यज्ञा, यज्ञधर, यज्ञधाता और अभय देनेवाले हैं। यज्ञ आपके गर्भमें स्थित है। आपका श्रीअङ्ग सुवर्णके समान कान्तिमान् है। पुत्रिगर्भ! आपको नमस्कार है। आप क्षेत्रज्ञ, क्षेत्रपालक, क्षेत्री, क्षेत्रहन्ता, क्षेत्रकर्ता, जितेन्द्रिय, क्षेत्रात्मा, क्षेत्ररहित और क्षेत्रके बड़ा हैं। आपको नमस्कार है। गुणात्म्य, गुणावास, गुणाश्रय, गुणावह, गुणभोक्ता, गुणाराध और गुणरचागी—ये सब आपके ही नाम हैं। आपको नमस्कार है। आप ही श्रीविष्णु हैं। आप ही श्रीहरि और चण्डी कहलाते हैं। आप ही श्रीविष्णु और आप ही जनार्दन हैं। आप ही खट्वाकर कहे गये हैं। भूत, भविष्य और वर्तमानके प्रभु भी आप ही हैं। आप भूतोंके उत्पादक और अव्यक्त हैं। सबकी उत्पत्तिके कारण होनेसे आप 'भव' कहलाते हैं। आप सम्पूर्ण प्राणियोंके भरण-पोषण करनेवाले हैं। आप ही भूतभावन देवता हैं। आपको अजन्मा और ईश्वर कहते हैं।

आप विश्वकर्मा हैं, श्रीविष्णु हैं, सत्पु हैं और स्वर्भक्तों आकृति धारण करनेवाले हैं। आप ही शंकर, आप ही मुक्ताचार्य, आप ही सत्य, आप ही तप और आप ही जनस्तोक हैं। आप विश्वविजेता, कल्याणमय, सारण्यतपस्तक, अविनाशी, सत्पु, स्वयम्भू, ज्योति और परायण (परम आश्रय) हैं। अद्वैत, ओंकार, प्राण, अन्धकारनाशक सूर्य,

ये, सर्वत्र विद्यमान तथा देवताओंके स्वामी ब्रह्म भी आप ही हैं। ऋक्ष, यजुः और साम भी आप ही हैं। आप ही सबके आत्मा माने गये हैं। आप ही अग्नि, आप ही वायु, आप ही जल और आप ही पृथ्वी हैं। सृष्टा, भोक्ता, होत्ता, हविष्मत्, प्रभु, विभु, ब्रह्म, लोकपति और अमृत भी आप ही हैं। आप सबके द्रष्टा और लक्ष्यवान् हैं। आप ही सबका दमन करनेवाले और शत्रुओंके नाशक हैं। आप ही दिन और आप ही रात्रि हैं, विद्वान् पुरुष आपको ही सर्व कहते हैं। आप ही कस्तूर हैं। कला, कला, मुहूर्त, क्षण और सब—सब आपके ही स्वरूप हैं। आप ही कलक, आप ही गूढ तथा आप ही पुरुष, स्त्री और नपुंसक हैं। आप विश्वकी उत्पत्तिके स्थान हैं। आप ही सबके नेत्र हैं। आप ही स्याणु (स्थिर रहनेवाले) और आप ही सुविश्राम (पवित्र रहनेवाले) हैं। आप सनातन पुरुष हैं। आपको कोई जीत नहीं सकता। आप इन्द्रके छोटे भाई उषेन्द्र और सबसे उत्तम हैं। आप सम्पूर्ण विश्वको मुख देनेवाले हैं। वेदोंके अङ्ग भी आप ही हैं। आप अश्विनजी, वेदोंके भी वेद (त्रेय तन्त्र), धाता, विधाता और समाहित रहनेवाले हैं। आप जलराशि समुद्र हैं। आप ही ठसके मूल हैं। आप ही धातु और आप ही यमु हैं। आप वैद्य, आप धृक्त्व और आप इन्द्रियातों हैं। आप सबसे आगे चलनेवाले और गाँवके नेता हैं। आप ही गरुड़ और आप ही आदिमान् हैं। आप ही संग्रह (लघु) और आप ही परम महान् हैं। अपने मनको वशमें रखनेवाले और अपनी महिम्नसे कभी घृणित न होनेवाले भी आप ही हैं। आप यम और निरयम हैं। आप प्रांशु (उत्तम शरीरवाले) और क्षुभुज हैं। अन्न, अन्नराज्य और परमस्व भी आप ही कहलाते हैं। आप गुरु और गुरुत्व हैं, वाम और दक्षिण हैं। आप ही भीमत् एवं

अन्य कुछ हैं। प्यक्त जगत् और प्रजापति भी आप ही हैं। आपको अभिसे सुवर्णमय कमल प्रकट हुआ है। आप दिव्य शक्तिसे सम्पन्न हैं। आप ही चन्द्रमा और आप ही प्रजापति हैं। आपके स्वरूपका वर्णन नहीं किया जा सकता। आप ही यम और आप ही दैत्योंके नाशक श्रीविष्णु हैं। आप ही संकर्षण देव हैं। आप ही कर्त्त और आप ही सनातन पुरुष हैं। आप तीनों गुणोंसे रहित हैं।

आप ज्येष्ठ, चरित्र और सहिष्णु हैं। लक्ष्मीके पति हैं। आपके सहस्रों मस्तक हैं। आप अव्यक्त देवता हैं। आपके सहस्रों नेत्र और सहस्रों चरण हैं। आप विराट् और देवताओंके स्वामी हैं। देवदेव। तथापि आप दस अंगुलके होकर रहते हैं। जो भूत है, वह आपका ही स्वरूप बताया गया है। आप ही अन्तर्यामी पुरुष, इन्द्र और उत्तम देवता हैं। जो भविष्य है, वह भी आप ही हैं। आप ही ईश्वर, आप ही अमृत और आप ही मर्त्य हैं। वह सम्पूर्ण संसार आपसे ही अङ्कुरित होता है, अन्तः आप परम महान् और सबसे उत्तम हैं। देव। आप सबसे ज्येष्ठ हैं, पुरुष हैं और आप ही दस प्राणवायुओंके रूपमें स्थित हैं। आप विश्वरूप होकर चार भागोंमें स्थित हैं। अमृतस्वरूप होकर भी मरणोंके साथ घुलनेमें रहते हैं और भी भागोंसहित सन्तान पीरुदेव रूप धारण करके अन्तरिक्षमें निवास करते हैं। आपके दो भाग पृथ्वीमें स्थित हैं और चार भाग भी यहाँ हैं। आपसे यज्ञोंकी उत्पत्ति होती है, जो जगत्में वृद्धि करनेवाले हैं। आपसे ही विराट्की उत्पत्ति हुई, जो सम्पूर्ण जगत्के हृदयमें अन्तर्यामी पुरुषरूपसे विराजमान हैं। वह विराट् पुरुष अपने तेज, यज्ञ और ऐश्वर्यके कारण सम्पूर्ण भूतोंसे विरहित है। आपसे ही देवताओंका आहारभूत हवनीय घृत

उत्पन्न हुआ। प्राण्य और जंगली ओषधियाँ तथा पशु एवं मृग आदि भी आपसे ही प्रकट हुए हैं। देवदेव! आप ध्येय और ध्यानसे परे हैं। आपने ही ओषधियोंको उत्पन्न किया है। आप ही सत्ता मुखोंवाले देदीप्यमान विग्रहसे युक्त कल है। यह स्थावर और जङ्गम तथा चर और अचर सम्पूर्ण जगत् आपसे ही प्रकट हुआ है और आपमें ही स्थित है। आप अनिरुद्ध, वासुदेव, प्रद्युम्न तथा दैत्यनाशक संकर्मण हैं। देव! आप सम्पूर्ण देवताओंमें श्रेष्ठ और समस्त विश्वके परम आश्रय हैं। कमलम्पन! मेरी रक्षा कीजिये। नारायण! आपको नमस्कार है। भगवन्! विश्वो! आपको नमस्कार है। पुरुषोत्तम! आपको नमस्कार है। सर्वतोकेश्वर! आपको नमस्कार है। कमलालय! आपको नमस्कार है। गुणाश्रय! आपको नमस्कार है। गुणाकर! आपको नमस्कार है। वासुदेव! आपको नमस्कार है। सुरोत्तम! आपको नमस्कार है। जनार्दन! आपको नमस्कार है। सनातन! आपको नमस्कार है।

योगिगुह्य परमेश्वर! आपको नमस्कार है। योगके आश्रयस्थान! आपको नमस्कार है। गोपते! श्रीपते! मरुत्पते। श्रीविष्णो! आपको नमस्कार है। जगत्पते! आप जगत्को उत्पन्न करनेवाले और ज्ञानियोंके स्वामी हैं। आपको नमस्कार है। दिवस्पते! आपको नमस्कार है। महीपते! आपको नमस्कार है। पुण्डरीकाक्ष! आप मधु दैत्यका वध करनेवाले हैं। आपको नमस्कार है, नमस्कार है। कैटभको मारनेवाले नारायण! आपको नमस्कार है। सुब्रह्मण्य! आपको नमस्कार है। पाँठपर सेतोंकी धारण करनेवाले महामत्स्यरूप अच्युत! आपको नमस्कार है। आप समुद्रके जलको पथ डालनेवाले और लक्ष्मीको आनन्द देनेवाले हैं। आपको नमस्कार है। विशाल! नासिकावाले अष्टमुख भगवान् इन्द्रजीव! महापुरुषविग्रह! आप मधु और कैटभका नाश

करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। प्रभो! आप पृथ्वीको ऊपर उठानेके लिये विशाल कच्छपका शरीर धारण करनेवाले हैं, आपने अपनी पीठपर मन्दराचलको धारण किया था। महाकूर्मस्वरूप आप भगवान्को नमस्कार है। पृथ्वीका उद्धार करनेवाले महावराहको नमस्कार है। भगवन्! आपने ही पहले-पहल वराहरूप धारण किया था, अतः आप आदिवराह कहलाते हैं। आप विश्वरूप और पितामह हैं, आपको नमस्कार है। आप अनेक, सूक्ष्म, धुल्ल, श्रेष्ठ, परमाणुस्वरूप तथा योगिगुह्य हैं। आपको नमस्कार है। ओ परम कारण (प्रकृति)-के भी कारण हैं, योगीश्वर-मण्डलके आश्रयस्थान हैं, जिनके स्वरूपका ज्ञान होना अत्यन्त कठिन है, जो क्षीरसागरके भीतर निवास करनेवाले महान् सर्प—शेषनागकी सुन्दर लम्बापर शयन करते हैं तथा जिनके कानोंमें सुवर्ण एवं रज्जोके बने हुए दिव्य कुण्डल झिलमिलाते रहते हैं, उन आप भगवान् विष्णुको नमस्कार है।

कण्डमुनिके इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवान् विष्णुने प्रसन्न होकर कहा—‘मुनिश्रेष्ठ! तुम मुझसे जो कुछ पान चाहते हो, उसे शीघ्र कहो।’

कण्ड बोले—जगन्नाथ! यह संसार अत्यन्त दुस्तर और रोमाञ्चकारी है। इसमें दुःखोंकी ही अधिकता है। यह अनित्य और केलेके पत्तोंकी भाँति सारहीन है। इसमें न कहीं आश्रय है, न अवलम्ब। यह जलके बुलबुलोंकी भाँति थड़कता है। इसमें सब प्रकारके उपद्रव भरे हुए हैं। यह दुस्तर होनेके साथ ही अत्यन्त भयानक है। मैं आपकी मायासे मोहित होकर धिरकालसे इस संसारमें भटक रहा हूँ, किन्तु कहीं भी शान्ति नहीं पत्ता। मेरा मन विषयोंमें आसक्त है। देवेश! इस संसारके भयसे पीड़ित होकर आज मैं आपकी सरणमें आया हूँ। श्रीकृष्ण! आप

इस भवसागरसे मेरा उद्धार कीजिये। सुरेश्वर! मैं आपकी कृपासे आपके ही सनातन परम पदको प्राप्त करना चाहता हूँ, जहाँ जानेसे फिर इस संसारमें नहीं आना पड़ता।

श्रीभगवान्‌ बोले—मुनिश्रेष्ठ! तुम मेरे बक हो। सदा मेरी ही आराधना करते रहो। तुम्हें मेरे प्रसादसे अभीष्ट मोक्षपदको प्राप्ति होगी। विप्रवर! मेरे भक्त क्षत्रिय, वैश्य, स्त्री, शूद्र तथा अन्त्यज भी परम सिद्धिको प्राप्त होते हैं, फिर तुम—जैसे तपोनिष्ठ ब्राह्मणकी तो बात ही क्या है! चाण्डाल भी यदि इतना ब्रह्मासे युक्त एवं मेरा भक्त हो तो उसे अभीष्ट सिद्धि प्राप्त होती है; फिर औरोंकी तो चर्चा ही क्या है।*

व्यासजी कहते हैं—यों कहकर भक्तवत्सल भगवान्‌ विष्णु वहाँ अन्तर्धान हो गये। उनके चले जानेपर मुनिवर कण्डु बहुत प्रसन्न हुए और

समस्त कामनाओंका त्याग करके स्वस्थचित्त हो गये। समस्त इन्द्रियोंको वशमें करके ममता और अहंकारसे रहित हो एकाग्रचित्तसे भगवान्‌ पुरुषोत्तमका ध्यान करने लगे। भगवान्‌के निर्लेप, निर्गुण, स्तब्ध और सन्मात्र स्वरूपका चिन्तन करते हुए उन्होंने दुर्लभ मोक्ष प्राप्त कर लिया। जो महात्म्य कण्डुकी कथाको पढ़ता अथवा सुनता है वह सब पापोंसे मुक्त हो स्वर्गलोकमें जाता है। मुनिवरों! इस प्रकार मैंने इस कर्मभूमि तथा मोक्षदायक पुरुषोत्तमक्षेत्रका वर्णन किया, जहाँ साक्षात्‌ भगवान्‌ पुरुषोत्तम निवास करते हैं। जो मनुष्य संसारजनित दुःखोंका नाश और मोक्ष प्रदान करनेवाले वरदायक भगवान्‌ श्रीपुरुषोत्तमका भक्तिपूर्वक दर्शन, स्तवन और ध्यान करते हैं, वे समस्त दोषोंसे मुक्त हो भगवान्‌के अविनाशी धाममें जाते हैं।

मुनियोंका भगवान्‌के अवतारके सम्बन्धमें प्रश्न और श्रीध्यासजीद्वारा उसका उत्तर

मुनि बोले—पुरुवश्रेष्ठ व्यासजी! आपने भारतवर्ष तथा पुरुषोत्तमक्षेत्रके अद्भुत गुणोंका वर्णन किया। उस क्षेत्रके उत्तम माहात्म्यको सुनकर हमें बड़ी प्रसन्नता हुई है। हमारे मनमें बहुत दिनोंसे एक संदेह है उसका निवारण करनेवाला आपके सिवा दूसरा कोई नहीं है। हम भूतलपर श्रीकृष्ण, बलदेव और सुभद्राके अवतारका रहस्य सुनना चाहते हैं वीरवर श्रीकृष्ण और बलभद्र किसलिये अवतीर्ण हुए थे? वे वसुदेवके पुत्र होकर नन्दके घरमें क्यों रहे? यह मर्त्यलोक सर्वथा निःसार है।

इसमें अधिकतर दुःख ही भरा है। यह पानीके बुलबुलेकी भाँति अत्यन्त चञ्चल—क्षणभङ्गुर है। इसकी भयंकरता इतनी बड़ी हुई है कि उसका विचार करते ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं। ऐसे संसारमें उन्हें जन्म ग्रहण करनेकी क्या आवश्यकता थी? इस भूतलपर अवतीर्ण हो उन्होंने जो जो लीलाएँ कीं, उनका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये। उनका सम्पूर्ण चरित्र अद्भुत और अलौकिक है। भगवान्‌ सम्पूर्ण देवताओंके स्वामी एवं सुरश्रेष्ठ हैं और पृथ्वीको उत्पन्न करनेवाले तथा अविनाशी

* मद्भक्ताः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राः अन्त्यजस्तथा । प्राप्नुवन्ति यदा सिद्धिं किं पुनस्त्वं द्विजोत्तम ॥

क्षपाकोऽपि च मद्भक्तः सम्पक् ब्रह्मसमन्वितः । प्राप्नोत्यधिपतां सिद्धिमन्येषां तत्र नर कथा ॥

परमात्मा हैं। उन्होंने अपने दिव्य स्वरूपको मनुष्योंके जीवनमें कैसे प्रकट किया? जो भगवान् सम्पूर्ण जङ्गम प्राणियोंकी रक्षित हैं, वे मानव-शरीरमें कैसे आये? इसे देवता और दैत्य भी बड़े आश्चर्यकी बात मानते हैं। महामुने! आप भगवान् विष्णुके आश्चर्यजनक अवतारकी कथा सुनाइये। भगवान् के बल और पराक्रम विस्मयास्पद हैं। उनके तेजकी कोई म्यप नहीं है। वे अपने अलौकिक चरित्रोंके द्वारा आश्चर्यरूप ज्ञान बढ़ते हैं। आप उनके तात्त्विका वर्णन कीजिये। भगवान् पुरुषोत्तम देवताओंकी पीढ़ा दूर करनेवाले और सर्वव्यापी हैं। जगत्के रक्षक और सर्वलोकमण्डधर हैं। संसारकी सृष्टि, पालन और संहार—सब वे ही करते हैं। वे ही सब लोकोंकी सुख देनेवाले हैं। वे अक्षय सनातन, अनन्त, श्वेत् और वृद्धिसे रहित, निर्लेप, निर्गुण, सूक्ष्म, निर्विकार, निरञ्जन, समस्त उपाधियोंसे रहित, सत्तामात्ररूपसे स्थित, अधिकारी, विभु, नित्य, अवल, निर्मल, व्यापक, नित्यतृप्त, निरामय तथा श्रेष्ठ परमात्मा हैं। सत्ययुगमें उनका विशुद्ध 'हरि' नाम सुना जाता है। देवताओंमें वे वैकुण्ठ और मनुष्योंमें श्रीकृष्ण नामसे विख्यात हैं। उन्हीं परमेश्वरकी भूत और भविष्य लीलाओंको, जिनका रहस्य अत्यन्त गहन है, हम सुनना चाहते हैं।

ब्राह्मणी बोले— जो सम्पूर्ण देवताओंके स्वामी, सबकी उत्पत्तिके कारण, पुराणपुरुष, सनातन, अविनाशी, चतुर्व्यूहस्वरूप, निर्गुण, गुणरूप, परम महान्, परम गुरु, वरेण्य, असौम, यज्ञाङ्ग और देवता आदिके प्रियतम हैं, उन भगवान् विष्णुकी मैं नमस्कार करता हूँ। जिनसे लघु और जिनसे महान् दूसरा कोई नहीं है, जिन अजन्म प्रभुने सम्पूर्ण चराचर जगत्को व्याप्त कर रखा है, जो आविर्भाव, तिरोभाव, दृष्ट और अदृष्टसे विलक्षण

है, सृष्टि और संहारकी भी जिनका स्वरूप कतलक्षण ज्ञात है, उन आदिदेव परब्रह्म परमात्मकके मैं समाधिके द्वारा प्रणाम करता हूँ। जो सम्पूर्ण विश्वोंसे रहित, शुद्ध, नित्य, सदा एकरूप रहनेवाले और विजयी हैं, उन परमात्मा श्रीविष्णुकी नमस्कार है। जो हिरण्यगर्भ, हरि, शंकर तथा वासुदेव कहलाते हैं, जिनसे समस्त प्राणियोंका तरण-तरण होता है, जो सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले हैं, उन भगवान् की नमस्कार है। जो एक होते हुए भी अनेक रूपोंमें प्रकट होते हैं, स्थूल और सूक्ष्म, व्यक्त और अव्यक्त जिनके स्वरूप हैं और जो मोक्षके कारण हैं, उन भगवान् विष्णुकी नमस्कार है। जो जगन्मय हैं, जगत्की सृष्टि, पालन और संहारके मूल कारण हैं, उन परमात्मा, भगवान् विष्णुकी नमस्कार है। जो सूक्ष्मसे भी सूक्ष्मतर, सम्पूर्ण विश्वके आधारभूत, समस्त प्राणियोंके भीतर विराजमान और अपनी महिमासे कभी व्युत् न होनेवाले हैं, उन भगवान् पुरुषोत्तमकी प्रणाम है। जो वास्तवमें अत्यन्त निर्मल आनन्दरूप होते हुए भी भ्रमपूर्ण दृष्टिके कारण भिन्न-भिन्न पदार्थोंके रूपमें स्थित दिखायी देते हैं, जिनका आदि नहीं है, जो सम्पूर्ण जगत्के ईश्वर, अजन्म, अक्षय और अविनाशी हैं, उन भगवान् श्रीहरिकी नमस्कार करके मैं उनके अवतारकी कथा आरम्भ करता हूँ।

पूर्वकालमें दक्ष आदि श्रेष्ठ मुनियोंके पूछनेपर कमलयोगि भगवान् ब्रह्माने जो कुछ कहा था, वही मैं भी आप लोगोंसे कहूँगा। जो अपने चारों मुखोंसे ऋक्, साम आदि चारों वेदोंका उच्चारण करते हुए तीनों लोकोंको पवित्र करते हैं, जिनका प्रादुर्भाव एकाग्रजके जलसे हुआ है, असुरगण जिनके यज्ञोंका लोप नहीं कर पाते, उन भगवान् ब्रह्मजीके प्रणाम करके मैं उन्हींको कहो हूँ।

कथा आरम्भ करता है। जिन्होंने सृष्टिके उद्देश्यसे धर्म आदिको प्रकट किया है, उन अमरकल्पात्मक ब्रह्माजीके सम्पूर्ण मतका ही मैं वर्णन करूँगा। शस्त्रदर्शी मुनियोंने जलको 'नार' कहा है। वह नार पूर्वकालमें भगवान्‌का अर्ध (निवासस्थान) हुआ। इसलिये वे नारायण कहलाते हैं। वे भगवान्‌ नारायण सबको ज्ञात करके स्थित हैं। वे ही सगुण और निर्गुण कहलाते हैं। वे दूर भी हैं और समीप भी, उनकी 'वासुदेव' संज्ञा है। ममात्मका स्थिति करनेपर ही उनका साक्षात्कार होता है। ठगमें कथ और धर्म आदि कल्पनिक भाव नहीं हैं। वे सदा शुद्ध, सुप्रतिष्ठित और एकवक्त्र हैं। जब-जब धर्मकी हानि और अधर्मका उत्थान होता है, तब-तब वे अपने-आपको संसारमें प्रकट करते हैं। पूर्वकालमें उन्होंने प्रजापालक भगवान्‌ने साराहर्ष धारण करके धुधुनसे जलको छुट्टाया और रसतिलमें डूबी हुई पृथ्वीको अपनी एक दाढ़से कमलके फूलकी भाँति ऊपर उठा लिया। उन्होंने ही नृसिंहस्वर धारण करके हिरण्यकशिपुका वध किया और विप्रचिति आदि अन्य दानवोंको भी मार गिराया। फिर बामन अवतार लेकर मायासे बलिको खींचा और दैत्योंको जीतकर तीनों लोकोंको अपने तीन पणोंसे ही नाप लिया। वे ही भृगु-वंशमें परमप्रज्जपी जम्पदशिकुम्भार परशुरामके रूपमें उत्पन्न हुए, जिन्होंने कित्तेके वधका बदला लेनेके लिये भ्रियोंका संहार कर डाला। उन्होंने भगवान्‌ने अत्रिकुम्भार प्रतापी दशमेखके रूपमें अवतीर्ण हो महात्मा अलकैको अष्टाङ्गयोगका उपदेश दिया। त्रेतामें दशरथनन्दन श्रीरामके रूपमें प्रकट होकर उन्होंने ही त्रिभुवनको ध्वस्त देनेवाले रावणका युद्धमें संहार किया।

प्रलयकालमें जब सारी सृष्टि एकाध्वन्यमें निमग्न हो गयी, उस समय देवताओंके भी देवता जगत्पति

श्रीविष्णु एक सहस्र युवैतक सेवनागको सव्यापर सोते रहे। वास्तवमें वे योगनिद्राका आश्रय ले अपनी योगमहिम्नमें स्थित हो गये थे। सम्पूर्ण चराचर जगत्‌को उन्होंने अपने उदरमें स्थापित कर रखा था। जनलोकनिवासी सिद्ध और महर्षि उनकी स्तुति करते थे। उसी समय उनकी नाभिसे एक कमल प्रकट हुआ, जो दिसारूपी पत्रोंसे सुशोभित, अग्नि और सूर्यके समान तेजोमय और पर्यतरूपी केसरोंसे अलंकृत था। सुवर्णमय मेरुगिरि उसका किञ्चलक (केसरका यम्यभाग) था। वह कमल ही पितामह ब्रह्मजीका सुन्दर गृह था। उसमें चार मुखोंवाले देवाभिदेव ब्रह्मजी प्रकट हुए। उस समय भगवान्‌ विष्णुके कान्धेकी मैन्से दो महाबली और महापरक्रमी दानव उत्पन्न हुए, जो ब्रह्माजीको मार डालनेके लिये उत्पन्न हो गये। उनका नाम मधु और कैटभ था। भगवान्‌ने समुद्ररूपी सवणगृहसे उठकर उन दोनों दुर्धर्ष दैत्योंका वध किया। वे तथा और भी भगवान्‌की असंख्य लीलार्थ हैं, जिनकी मैं गणना नहीं कर सकता। इस समय अजन्मा भगवान्‌के जिस अन्तर्गत प्रसन्न चल रहा है, वह मधुपुत्र ही है। इस प्रकार भगवान्‌की जो सत्त्विक मूर्ति है, वही अन्तर्गत धारण करती है। वह प्रधान नामसे विख्यात है और सदा रक्षककार्यमें संलग्न रहती है। वह भगवान्‌ वासुदेवकी इच्छाके अनुसार देवता, मनुष्य और तिर्यक् जीवोंमें अवतीर्ण होती है और उसीके अनुकूल स्वभाव बना लेती है। भक्त पुरुषोंद्वारा पूजित होनेपर वह उनकी मनोवाञ्छित कामनाओंको भी पूर्ण करती है। इस तरह मैंने यहाँ भगवान्‌के अवतारका रहस्य कथराया है। भगवान्‌ विष्णु यद्यपि कृतकृत्य हैं, उन्हें कुछ करना अथवा माना नहीं है तो भी वे स्वेक-कल्याणके लिये ही मानवरूपमें प्रकट हुए थे।

भगवान्‌के अवतारका उपक्रम

व्यासजी कहते हैं—भुनिवरो! अब मैं संक्षेपसे श्रीहरिके अवतारका वर्णन करता हूँ, सुनो। भगवान् इस पृथ्वीका भार उतारनेकी इच्छासे अवतार लेते हैं जब जब अधर्मकी वृद्धि होती है और धर्मका ह्रास होने लगता है, तब-तब भगवान् जनार्दन अपने स्वरूपके दो भाग करके यहाँ अवतार होते हैं। साधु पुरुषोंकी रक्षा, धर्मकी स्थापना, दुष्टों तथा अन्य देव-देहिहोंका दमन और प्रजावर्गका पालन करनेके लिये वे प्रत्येक युगमें अवतार धारण करते हैं। पहलेकी बात है, यह पृथ्वी अत्यन्त भारसे पीड़ित हो मेरुपर्वतपर देवताओंके सभाजयमें गयी और ब्रह्मा आदि सब देवताओंको प्रणाम करके खेद एवं कष्टनामिश्रित वाणीमें अपना सब हाल सुनाने लगी—'सुवर्णके गुरु अग्नि, गीओंके गुरु सूर्य तथा मेरे गुरु सम्पूर्ण लोकोंके बन्दीय भगवान् नारायण हैं। इस समय ये कालनेमि आदि दैत्य मार्त्यलोकमें जन्म लेकर दिन-रात प्रजाको कष्ट देते रहते हैं। सर्वशक्तिमान् भगवान् विष्णुने जिस कालनेमि नामक महान् असुरका वध किया था, वही अब उग्रसेनकुमार कैमके रूपमें उत्पन्न हुआ है। अरिष्ट, धेनुक, केशी, प्रलम्ब, नरक, सुन्दीसुर, अत्यन्त भयंकर बलिकुमार बाणासुर तथा और भी जो महापुरुषकी दुरात्मा दैत्य राजाओंके घरमें उत्पन्न हुए हैं, उनको मैं गणना नहीं कर सकती, दिव्यमूर्तिधारी देवताओ! इस समय मेरे ऊपर महाबली और गर्वसे दैत्योंकी अनेक अर्धदेहियाँ सेनार्ष हैं। सुरेश्वरो, मैं आपलोगोंको बताये देती हूँ कि उन दैत्योंके भारी भारसे पीड़ित होनेके कारण अब मुझमें अपनेको धारण करनेकी भी शक्ति नहीं रह गयी है। अतः आपलोग मेरा भार उतारिये।'



पृथ्वीका यह वचन सुनकर सम्पूर्ण देवताओंने उसका भार उतारनेके लिये ब्रह्माजीको प्रेरित किया। तब ब्रह्माजी बोले—'देवताओ! पृथ्वी जो कुछ कहती है, यह सब ठीक है। वास्तवमें मैं, महादेवजी और तुमलोग—सब भगवान् नारायणके ही स्वरूप हैं। भगवान्‌की जो विभूतियाँ हैं, उन्हींकी परस्पर न्यूनता और अधिकता बाध्य-बाधकरूपसे रहा करती है। इसलिये आओ, हमलोग क्षीरसागरके तटपर बैठें और वहाँ श्रीहरिकी आराधना करके यह सब वृत्तान्त उनसे निवेदन करें। वे सबके आस्थ हैं, सम्पूर्ण जगत् उनका ही रूप है, वे सदा ही जगत्‌का कल्याण करनेके लिये अपने अंशसे अवतार ले धर्मकी स्थापना करते हैं।'

यों कहकर ब्रह्माजी सम्पूर्ण देवताओंके साथ क्षीरसागरके तटपर गये और एकाग्रचित्त होकर भगवान् गरुडध्वजकी स्तुति करने लगे।

ब्रह्माजी बोले—सहस्रमूर्ते! आपके बारंबार भगवत्कार है। आपके सहस्रों बाँहें, अनेक मुख और अनेक चरण हैं। आप जगत्‌की सृष्टि, पालन और संहारमें संलग्न रहते हैं। अप्रमेय परमेश्वर! आपको बारंबार नमस्कार है। भगवन्! आप सूक्ष्मसे भी अत्यन्त सूक्ष्म, परम महान् और बड़े-बड़े गुरुओंसे भी अधिक गौरवस्थित हैं। आप प्रकृति, समष्टि बुद्धि (महत्त्व), अहंकार तथा वाणीके भी प्रधान मूल हैं। अपरा-प्रकृतिमय सम्पूर्ण जगत्‌ आपका ही स्वरूप है। आप हमपर प्रसन्न होइये। देव! यह पृथ्वी आपको शरणमें आयी है। इस समय भूतलपर जो बड़े-बड़े अस्त्र उत्पन्न हुए हैं, उनके द्वारा पीड़ित होनेसे इसके पर्वतक्षपी बन्धन विधिल बढ़ गये हैं। आप सम्पूर्ण जगत्‌के परम आश्रय हैं। आपकी महिमा अपरम्पार है। अतः यह वसुधा अपना भार उतरवानेके लिये आपकी ही सेवामें उपस्थित हुई है। हमलोग भी यहाँ उपस्थित हुए हैं। ये इन्द्र, द्यौर्देव अश्विनीकुमार, वरुण, रुद्र, वसु, आदित्य, वायु, अग्नि तथा अन्य सम्पूर्ण देवता यहाँ खड़े हैं। देवेश्वर! मुझे तथा इन देवताओंको जो कुछ करना हो, उसके लिये आज्ञा दीजिये। आपके ही आदेशका पालन करते हुए हमलोग सदा सम्पूर्ण द्यौर्देवसे मुक्त रहेंगे।

ब्रह्माजीके इस प्रकार स्तुति करनेपर परमेश्वर भगवान् श्रीविष्णुने अपने श्वेत और कृष्ण—दो केश उखाड़े और देवताओंसे कहा—‘मेरे ये दोनों केश ही भूतलपर अवतार ले पृथ्वीके भार और क्लेशका नाश करेंगे। सम्पूर्ण देवता भी अपने-अपने अंशसे पृथ्वीपर अवतीर्ण हो पहलेसे उत्पन्न हुए उन्मत्त दैत्योंके साथ युद्ध करें। इसमें संदेह नहीं कि नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे चूर्ण होकर सम्पूर्ण दैत्य नष्ट हो जायँगे। वसुदेवकी पत्नी जो

देवकीदेवी हैं, उनके आठवें गर्भसे मेरा यह श्याम केश प्रकट होगा। भूतलपर अवतीर्ण हो यह कालनेमिके अंशसे उत्पन्न हुए कंसका वध करेगा।’ यों कहकर भगवान् श्रीहरी अन्तर्धान हो गये। अदृश्य हो जानेपर इन परमात्माकी प्रणाम करके सम्पूर्ण देवता मेरुपर्वतके शिखरपर खड़े गये और वहाँसे पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए।

एक दिन महर्षि नारदने कंससे जाकर कहा—‘देवकीके आठवें गर्भसे भगवान् विष्णु उत्पन्न होंगे, जो तुम्हारा वध करेंगे।’ यह सुनकर कंसको बड़ा क्रोध हुआ और उसने देवकी तथा वसुदेवकी कलागृहमें बंदी बना लिया। वसुदेवने यह प्रतिज्ञा की थी कि ‘देवकीके गर्भसे जो-जो पुत्र उत्पन्न होंगे, उसे मैं स्वयं लाकर दे दिया करूँगा।’ इसके अनुसार उन्होंने अपना प्रत्येक पुत्र कंसको अर्पित कर दिया। सुना गया है प्रथम उत्पन्न हुए छ, गर्भ हिरण्यकशिपुके पुत्र थे, जिन्हें भगवान् विष्णुकी प्रेरणासे योगनिद्रा क्रमशः देवकीके उदरमें स्थापित कर दिया था। योगनिद्रा भगवान् विष्णुकी महामाया है, जिसने अविद्यारूपसे सम्पूर्ण जगत्‌को मोहित कर रखा है। उससे श्रीहरिने कहा—‘निद्रे! तू मेरी आज्ञासे जा और पतलवासो छ गर्भोंको एक-एक करके देवकीके गर्भमें पहुँचा दे। वे सब कंसके हाथसे मारे जायँगे। तत्पश्चात् मेरा शेष नामक अंश अपने अंशसे देवकीके उदरमें सातवें गर्भके रूपमें प्रकट होगा। वसुदेवजीकी दूसरी भार्या रोहिणी आजकल गोकुलमें रहती हैं। तू प्रसवकालमें वह गर्भ रोहिणीके ही उदरमें डाल देना। उसके विषयमें लोग यही कहेंगे कि ‘देवकीका सातवाँ गर्भ भोजराज कंसके दरसे गिर गया।’ गर्भका संकर्षण होनेसे रोहिणीका वह वीर पुत्र लोकमें ‘संकर्षण’ नामसे विख्यात होगा उसके स्त्रीरूपा

वर्ण श्वेतगिरिके शिखरकी भाँति गौर होला। तदनन्तर मैं देवकीके उदरमें प्रवेश करूँगा। उस समय तुझे भी यशोदाके गर्भमें अविलम्ब प्रवेश करना होगा। वर्षा-ऋतुमें श्रवणमासके कृष्णपक्षके अष्टमी तिथिको आधी रातके समय मेरा प्रसव होगा और तू नवमी तिथिमें यशोदाके गर्भसे जन्म लेगी। उस समय वसुदेव मेरी शक्तिसे प्रेरित होकर मुझे तो यशोदाकी सम्भापर पहुँचा देंगे और तुझे देवकीके पास लावेंगे। फिर कंस तुझे लेकर ज्वरकी शिलापर पछड़ेगा, किन्तु तू उसके हाथसे निकलकर आकाशमें उड़कर जायगी। यों करनेपर इन्द्र मेरे गौरवका स्मरण करके तुझे मैं-सौ बार प्रणम करेंगे और विनीतभावसे अपनी बहिन बना लेंगे। फिर तू शुम्भ-निशुम्भ आदि सहस्रों दैत्योंका वध करके

अनेक स्थान बनाकर सभी पृथ्वीकी शोभा बढ़ावेगी। भूति, संनति, कीर्ति, कान्ति, पुण्यी, भूति, लज्जा, पुष्टि, उच्च तथा अन्य जो भी स्त्री नामधारी वस्तु है, वह सब तू ही है। जो प्रातःकाल और अपराह्नमें तेरे सामने मस्तक झुकायेंगे और तुझे अर्घ्य, दुर्गा, वेदगर्भा, अम्बिका, भद्रा, मद्रकाली, होप्पा तथा खेमकरी आदि कहकर तेरी स्तुति करेंगे, उनके समस्त मनोरथ मेरे प्रसादसे सिद्ध हो जायेंगे। जो लोग भस्व-भोज्य आदि पदार्थसे तेरी पूजा करेंगे, उन मनुष्योंपर प्रसन्न होकर तू उनकी समस्त अभिलाषाएँ पूर्ण करेगी। ये सब लोग सदा मेरी कृपासे निश्चय ही कल्याणके भागी होंगे; अतः देवि! जो कार्य मैंने तुझे बताया है, उसे पूर्ण करनेके लिये जा।'

भगवान्का अवतार, गोकुलगमन, पूतना-वध, शकट-भञ्जन, धमलार्जुन-उद्धार, गोपोंका वृन्दावनगमन तथा बलराम और श्रीकृष्णका बछड़े चराना

आसजी कहते हैं—देवाधिदेव श्रीहरिने पहले जैसा आदेश दिया था, उसके अनुसार जगन्मननी योगमायाने देवकीके उदरमें क्रमशः छः गर्भ स्थापित किये और सातवेंको खींचकर रोहिणीके उदरमें डाल दिया। तदनन्तर तीनों लोकोंका उपकार करनेके लिये साक्षात् श्रीहरिने देवकीके गर्भमें प्रवेश किया और उसी दिन योगिन्द्रा यशोदाके उदरमें प्रविष्ट हुई। भगवान् विष्णुके अंशके भूतस्वरूप अतो ही आकाशमें प्रहोंकी पति यथावत् होने लगी। समस्त ऋतुएँ सुखदायिनी हो

गयीं। देवकीके शरीरमें इतना तेज आ गया कि कोई उनकी ओर आँख उठाकर देख भी नहीं सकता था। देवतागण स्त्री-पुरुषोंसे अदृश्य रहकर अपने उदरमें श्रीविष्णुको धारण करनेवाली माता देवकीका प्रतिदिन स्तवन करने लगे।

देवता बोले—देवि! तुम स्वाहा, तुम स्वधा और तुम्हीं विद्या, सुधा एवं ज्योति हो। इस पृथ्वीपर सम्पूर्ण लोकोंको रक्षके लिये तुम्हारा अवतार हुआ है। तुम प्रसन्न होकर सम्पूर्ण जगत्का कल्याण करो। हमारी प्रसन्नताके लिये

* यहाँ श्रवणमास अर्ध भाद्रपद समझना चाहिये। जहाँ अश्वयुज्यके बाद शुक्लपक्षसे मासका आरम्भ माना जाता है, वहाँकी मास-गणनाको दृष्टिमें रखकर श्रवण मास कहा गया है। जहाँ कृष्णपक्षसे मासका आरम्भ होता है, वहाँ वह तिथि भाद्रपद भासमें हो होगी।

उन परमेश्वरको अपने गर्भमें धारण करो, जिन्होंने स्वयं सम्पूर्ण जगत्को धारण कर रखा है।

इस प्रकार देवताओंद्वारा की हुई स्तुतिको सुनती हुई माता देवकीने जगत्की रक्षा करनेवाले कमलनयन भगवान् विष्णुको अपने गर्भमें धारण किया। तदनन्तर वह शुभ समय उपस्थित हुआ, जब कि समस्त विश्वरूपी कमलको विकसित करनेके लिये महात्मा श्रीविष्णुरूपी सूर्यदेवका देवकीरूपी प्रभातवेलामें उदय हुआ अर्थात् रातका समय था। मेघ मन्द-मन्द स्वरमें गरज रहे थे। शुभ मुहूर्तमें भगवान् जनार्दन प्रकट हुए। उस समय सम्पूर्ण देवता फूलोंकी वर्षा करने लगे। विकसित नौस कमलके समान स्वप्नवर्ण, श्रीकृष्णचिह्नसे सुशोभित बन्धुस्थलवासे चतुर्भुज बालकको उत्पन्न हुआ। देख परम मुदिमान् वसुदेवजीने ठाढ़ासपूर्ण वचनोंमें भगवान्का स्तवन किया और



कंससे भयभीत होकर कहा—'सहस्र, चक्र एवं गदा धारण करनेवाले देवदेवेश्वर! मैंने जान लिया, आप साक्षात् भगवान् हैं परन्तु देव! आप मुझपर

क्रुपा करके अपने इस दिव्य रूपको छिपा लीजिये। आप मेरे भवनमें अवतीर्ण हुए हैं, यह बात जान लेनेपर कंस अभी मुझे कह देगा।'।

देवकी बोलीं—जिनके अनन्त रूप हैं, यह सम्पूर्ण विश्व जिनका ही स्वरूप है, जो गर्भमें स्थित होकर भी अपने शरीरसे सम्पूर्ण लोकोंको धारण करते हैं तथा जिन्होंने अपनी मायासे ही बाल-रूप धारण किया है, वे देवदेव प्रसन्न हों, सर्वान्मन्! आप अपने इस चतुर्भुज रूपका उपसंहार करेजिये। दैत्योंका संहार करनेवाले देवेश्वर! आपके इस अवतारका वृत्तान्त कंस न जानने पाये।

श्रीभगवान् बोले—देवि! पूर्वजन्ममें तुमने मुझ-जैसे पुत्रको पानेकी अभिलाषासे जो मेरा स्तवन किया था, वह आज सफल हो गया, क्योंकि आज मैंने तुम्हारे उदरसे जन्म लिया है।

मुनिवरो! यों कहकर भगवान् मीन हो गये तथा वसुदेवजी भी रातमें ही उन्हें लेकर घरसे बाहर निकले। वसुदेवजीके जाते समय पहरा देनेवाले यमुनाके द्वारपाल योगनिद्राके प्रभावसे अचेत हो गये थे। उस रातमें बादल वर्षा कर रहे थे। यह देख शेषनागने छत्रकी भाँति अपने पत्नोंसे भगवान्को ढँक लिया और वे वसुदेवजीके पीछे-पीछे चलने लगे। मार्गमें अत्यन्त गहरी यमुना बह रही थी। उनके जलमें नाना प्रकारकी सैकड़ों लहरें उठ रही थीं, किन्तु भगवान् विष्णुको से जाते समय वे वसुदेवजीके घुटनोंतक होकर बहने लगे। वसुदेवजीने ठसो अवस्थामें यमुनाको पार किया। उन्होंने देखा, नन्द आदि बड़े बड़े गोप राजा कंसका कर लेकर यमुनाके तटपर आये हुए हैं, इसी समय यशोदाजीने भी योगमाय्यको कन्यारूपमें जन्म दिया। परन्तु वे योगनिद्रासे मोहित थीं, अतः 'पुत्र है या पुत्री' इस बातको खन न सकीं। प्रसूतिगृहमें और भी जो स्त्रियाँ

थीं, वे सब निद्राके कारण अचेत पड़ी थीं। वसुदेवजीने चुपकेसे अपने बालकको यशोदाकी शय्यापर सुला दिया और कन्याको लेकर तुरंत लौट आये। जागनेपर यशोदाने देखा, 'मेरे नील कमलके समान श्यामसुन्दर बालक हुआ है।' इससे उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। वसुदेवजी भी कन्याको लेकर अपने घर लौट आये और देवकीकी शय्यापर उसे सुलाकर पहलेकी भाँति बैठ रहे। इतनेमें ही बालकके रोनेका शब्द सुनकर पहलू देनेवाले द्वारपाल सहसा ठठकर खड़े हो गये। उन्होंने देवकीके संतान होनेका समाचार कंससे निवेदन किया। कंसने शीघ्र ही वहाँ पहुँचकर उस बालिकाको डठा लिया। देवकी रूँधे हुए कण्ठसे 'छोड़ो, छोड़ दो इसे' यों कहकर उसे रोकती ही रह गयीं। कंसने उस कन्याको एक शिलापर दे मारा, किंतु वह आकाशमें हो उड़ गई और आयुर्धर्मसहित आठ बड़ी-बड़ी भुजाओंवाली देवीके रूपमें प्रकट हुई। उसने ऊँचे स्वरसे अट्टहास किया और कंससे रोषपूर्वक कहा—'ओ कंस! मुझे पटकनेसे क्या लाभ हुआ। जो तेरा वध करेगा, वे प्रकट हो चुके हैं। देवताओंके सर्वस्वभूत वे श्रीहरि पूर्वजन्ममें भी तेरे काल थे। इन सब बातोंपर विचार करके तू शीघ्र ही अपने कल्याणका उपाय कर।' यों कहकर देवी कंसके देखते-देखते आकाशमार्गसे चली गयी। उसके शरीरपर दिव्य हार, दिव्य चन्दन और दिव्य आभूषण शोभा पा रहे थे और सिद्धगण उसकी स्तुति करते थे।

तदनन्तर कंसके मनमें बड़ा उद्वेग हुआ। उसने प्रलम्ब और केशी आदि समस्त प्रधान असुरोंको बुलाकर कहा—'महाबलु प्रलम्ब! केशी! धेनुक! और पूतना! अरिष्ट आदि अन्य सब क्षीरोंके साथ तुमलोग मेरी बात सुनो। दुरात्मा

देवताओंने मुझे मार डालनेका यत्न प्रारम्भ किया है। किंतु वे मेरे पराक्रमसे भलीभाँति पीड़ित हो चुके हैं। अतः मैं उन्हें बीरोंकी श्रेणीमें नहीं गिनता। दैत्यक्षीरो! मुझे तो कन्याकी कही हुई बात आश्चर्य-सी प्रतीत होती है। देवता मेरे विरुद्ध प्रयत्न कर रहे हैं—यह जानकर मुझे हँसी आ रही है। तथापि दैत्यक्षीरो, अब हमें उन दुष्टोंका और अधिक अपकार करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। देवकीके गर्भसे उत्पन्न हुई बालिकाने यह भी कहा है कि 'भूत, भविष्य और वर्तमानके स्वामी विष्णु, जो पूर्वजन्ममें भी मेरी मृत्युके कारण बन चुके हैं, कहीं-न-कहीं उत्पन्न हो गये।' अतः इस भूतलपर बालकके दमनका हमें विशेष प्रयत्न करना चाहिये। जिस बालकमें बलकी अधिकता जान पड़े, उसे यत्नपूर्वक मौतके घाट उतार देना चाहिये।'

असुरोंको ऐसी आज्ञा देकर कंस अपने घर गया और विरोध छोड़कर वसुदेव तथा देवकीसे बोला—'मैंने आप दोनोंके इतने बालक व्यर्थ ही मारे। मेरे नाशके लिये तो कोई दूसरा ही बालक



उत्पन्न हुआ है। आपलोग संताप न करें। आपके बालकोंकी भवितव्यता ही ऐसी थी। आयु पूरी होनेपर कौन नहीं मारा जाता।' इस प्रकार सान्त्वना दे कंसने उन दोनोंके बन्धन खोल दिये और उन्हें सब प्रकारसे संतुष्ट किया। तत्पश्चात् वह अपने महलके भीतर चला गया।

बन्धनसे मुक्त होनेपर वसुदेवजी नन्दके छक्केके पास आये। नन्द बड़े प्रसन्न दिखायी दिये। मुझे पुत्र हुआ है, यह सोचकर वे फूले नहीं समाते थे। वसुदेवजीने भी कहा—'बड़े सौभाग्यकी बात है कि इस समय वृद्धावस्थामें आपको पुत्र हुआ है। अब तो आपलोगोंने उपाका वार्षिक कर चुका दिया होगा। जिसके लिये यहाँ आये थे, वह काम पूरा हो गया। यहाँ किसी ग्रेह पुठकने अधिक नहीं ठहरना चाहिये नन्दजी। अब कार्य हो गया, तब आपलोग क्यों यहाँ बैठे हैं शीघ्र ही अपने गोकुलमें जाइये। वहाँ रोहिणीके गर्भसे उत्पन्न भेट भी एक बालक है। उसका भी अपने ही पुत्रकी भाँति लालन-पालन कीजियेगा।'

वसुदेवजीके यों कहनेपर नन्द आदि गोप छकड़ोंपर साम्प्रत लादकर जहाँसे चल दिये। उनके गोकुलमें रहते समय रातमें बालकोंकी हत्या करनेवाली पूतना आयी और सोये हुए कृष्णको लेकर अपना स्तन पिलाने लगी। पूतना रातमें जिस-जिसके मुखमें अपना स्तन डालती थी, 'उस-उस बालकका शरीर क्षणभरमें निर्जीव हो जाता था। श्रीकृष्णने उसके स्तनको दोनों हाथोंसे पकड़कर खूब जोरसे दबाया और क्रोधमें भरकर उसके प्राणोंसहित दूध पीना आरम्भ किया। उस राक्षसोके शरीरको नस नाड़ियोंके बन्धन छिन्न भिन्न हो गये। वह जोर-जोरसे कराहती हुई पृथ्वीपर गिर पड़ी। मरते समय उसका शरीर बड़ा भयंकर हो गया। पूतनाका

वीर्यकर सुनकर समस्त व्रजवासी भयके मारे जाग उठे। उन्होंने आकर देखा, पूतना मरी पड़ी है और श्रीकृष्ण उसके गोदमें बैठे हैं। यह देखकर माता यशोदा धर्रा ठर्री और श्रीकृष्णको शीघ्र ही गोदमें ठठाकर गायकी पूँछ घुमाने आदिके द्वारा अपने बालकके ग्रह दोषको शान्त किया। नन्दने भी श्रवण गेवर से श्रीकृष्णके भस्तकमें लगाया और उनकी रक्षा करते हुए इस प्रकार बोले—'ममस्त प्राणिनोंकी उत्पत्ति करनेवाले भगवान् श्रीहरि, जिनके नाभिकक्षत्रसे सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ है, तुम्हारी रक्षा करें। जिनकी दाढ़के अग्रभागपर रखी हुई यह पृथ्वी सम्पूर्ण जगत्को चरण करती है, वे बराहरूपधारी केशव तुम्हारी रक्षा करें। तुम्हारे गुदाभग और उदरकी रक्षा भगवान् विष्णु तथा ब्रह्म और चरणोंकी रक्षा श्रीजनार्दन करें। जो एक ही क्षणमें वायनसे विशद बन गये और तीन चरोंसे सारी त्रिलोकीको नापकर नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सम्पन्न दिखायी देने लगे, वे भगवान् वायन तुम्हारी सदा रक्षा करें। तुम्हारे भिरकी जेबिन्द तथा कण्ठकी केशव रक्षा करें। मुख, बाहु, प्रवाहु (कोहनीके नीचेका भाग) घन और सम्पूर्ण इन्द्रियोंकी अखण्ड ऐश्वर्यशाली अविनाशी भगवान् नारायण रक्षा करें। भगवान् वैकुण्ठ दिश्वर्जोंमें, मधुभूदन विदिताओं (कोणों) में, हवीकेत आकाशमें और पृथ्वीको चरण करनेवाले भगवान् अनन्त पृथ्वीपर तुम्हारी रक्षा करें।'

इस प्रकार नन्दग्रेपद्वारा स्वस्तिवाचन होनेपर बालक श्रीकृष्ण छकड़ेके नीचे एक छटोलेपर सुलाये गये। गोपोंको मरी हुई पूतनाका विशाल शरीर देखकर अत्यन्त भय और आश्चर्य हुआ। एक दिनकी बात है, मधुसूदन श्रीकृष्ण छकड़ेके नीचे खड़े हुए थे। उस समय वे दूध पीनेके लिये जोर-जोरसे रोने लगे। रोते-ही-रोते उन्होंने अपने

दोनों पैर ऊपरकी ओर फैकने आरम्भ किये। उनका एक पैर छकड़ेसे छू गया। उसके इत्ते आघातसे ही वह छकड़ा ठसटकर गिर पड़ा। उसपर रखे हुए घटके और बड़े आदि टूट-फूट गये। उस समय समस्त गोप-गोपिकाँ हाड़ाकर करती हुई वहाँ आ पहुँचीं। उन्होंने देखा, 'बालक श्रीकृष्ण उतान सोये हुए हैं।' जब गोपोंने पूछा— 'किसने इस छकड़ेको ठसट दिया?' वहीं कुछ बालक खेल रहे थे। उन्होंने कहा— 'इस बच्चेने ही गिराया है।' यह सुनकर गोपोंके मनमें बड़ा आश्चर्य हुआ। मन्दगोपने अत्यन्त विस्मित होकर बालकको गोदमें उठा लिया। यत्नेसे भी अस्वरूपबन्धित हो टूटे-फूटे भीड़ोंके टुकड़ों और छकड़ेकी दही, फूल, फल और अन्नतसे पूजा की।



एक दिन समुदेवजीकी प्रेरणसे गर्गजी गोकुलमें आये और अन्य गोपोंसे छिपे-छिपे ही उन्होंने उन दोनों बालकोंके द्विजोन्मित संस्कार किये। उनके नामकरण-संस्कार करते हुए परम बुद्धिमान् गर्गजीने बड़े बालकका नाम 'राम' और छोटेका 'कृष्ण'

रखा। थोड़े ही दिनोंमें वे दोनों बालक महाबलवान्के रूपमें प्रसिद्ध हो गये। घुटनोंके बलसे चलनेके कारण उनके दोनों घुटनों और हाथोंमें गड़ पड़ गयी थीं। वे शरीरमें गोबर और राख लपेटे इधर-उधर घूम करते थे। यशोदा और रोहिणी उन्हें रोक नहीं पाती थीं। कभी गौओंके बाड़ेमें खेलते-खेलते बछड़ोंके बाड़ेमें निकल आते थे। कभी उसी दिन पैदा हुए बछड़ोंकी पूँछ पकड़कर खींचने लगते थे। वे दोनों बालक एक ही स्थानपर साध-साध खेलते और अत्यन्त चपलता दिखाते थे। एक दिन, जब यशोदा उन्हें किसी प्रकार रोक न सकीं, तब उनके मनमें कुछ क्रोध हो आया। उन्होंने अन्नपास ही बड़े-बड़े कार्य करनेवाले श्रीकृष्णकी कमरमें रस्सी कस दी और उन्हें ऊखलसे बाँध दिया। उसके बाद कहा— 'ओ बछल! तू बहुत ऊधम मचा रहा था। अब तुझमें सामर्थ्य हो तो जा।' थोँ कहकर गृहस्वामिनी यशोदा अपने काम-काजमें लग गयीं। जब यशोदा घरके काम-धंधेमें फँस गयीं, तब कमलनयन श्रीकृष्ण ऊखलको घसीटते हुए दो अर्जुन वृक्षोंके बीचसे जा निकले। वे दोनों वृक्ष जुड़ते दृप्त हुए थे। उन वृक्षोंके बीचमें तिरछी पड़ी हुई ऊखलीको ज्यों ही उन्होंने खींचा, तभी समय ऊँची शाखाओंवाले वे दोनों वृक्ष जड़से उखड़कर गिर पड़े। वृक्षोंके उखड़ते समय बड़े जोरसे कड़कड़ाहटकी आवाज हुई। उसे सुनकर समस्त ब्रजवासी कातरभावसे वहाँ दौड़े आये। आनेपर सबने देखा वे दोनों महावृक्ष पृथ्वीपर गिरे पड़े हैं। उनकी मोटी मोटी झालियाँ और पक्की खट्टाई भी टूट-टूटकर बिखर गयी हैं। उन दोनोंके बीचमें बालक कृष्ण घन्द-घन्द मुसकरा रहा है। उसके खुले हुए मुखमें थोड़े-से दाँत झलक रहे हैं। उसकी कमरमें खूब

कसकर रस्ती बँधी हुई है। उदरमें दाम (रस्सी) बँधनेके कारण ही श्रीकृष्णकी दामोदरके नामसे प्रसिद्धि हुई।

तदनन्तर नन्द आदि सम्पत्त बड़े-बड़े गोप, जो बड़े-बड़े उत्पातोंके कारण बहुत डर गये थे, उद्विग्न होकर आपसमें सलाह करने लगे—'अब हमें इस स्थानपर रहनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। किसी दूसरे महान् वनमें पलायन चाहिये। यहाँ भारतेके हेतुभूत अनेक उत्पात देखे जाते हैं—जैसे पूतनाका विनाश, छकड़ोंका उल्टा जाना और भिन्न-भिन्न वर्षाके ही दोनों पक्षोंका गिरना आदि। अतः अब हम विलम्ब न करके शीघ्र ही यहाँसे वृन्दावनको चले दें। जबतक कोई भूमिसम्बन्धी दूसरा महान् उत्पात ब्रजको नष्ट न कर दे, तबतक ही हमें उसकी व्यवस्था कर लेनी चाहिये।' इस प्रकार यहाँसे चले जानेका विषय करके सम्पत्त ब्रजवासी अपने-अपने कुटुम्बके लोगोंसे कहने लगे—'शीघ्र चलो, विलम्ब न करो।' फिर तो एक ही क्षणमें छकड़ों और गौओंके साथ सब लोग यहाँसे चले दिये। बछड़ोंके चरवाहे झुंड-के-झुंड एक साथ होकर उन बछड़ोंको चराते हुए चलते थे। झरझरा वह खाली किया हुआ स्थान अन्नके दाने बिखरे होनेके कारण ज्वारभरमें कौए आदि पक्षियोंसे व्याप्त हो गया। सीतापूर्वक सब कार्य करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने गौओंके अभ्युदयकी कामनासे अपने शुद्ध अन्तःकरणके द्वारा नित्य वृन्दावन धामका चिन्तन किया। अतः अत्यन्त रुद्ध प्रोष्यकालमें भी वहाँ सब ओर वर्षाकालकी भाँति नयी-नयी घास जम गयी। वृन्दावनमें पहुँचकर वह सम्पत्त गोप-गौओंका समुदाय चारों ओरसे अर्धचन्द्राकार छकड़ोंकी बाड़ लगाकर बस गया।

तत्पश्चात् बलराम और श्रीकृष्ण बछड़ोंको

चरवाही करने लगे। गोष्ठमें रहकर वे दोनों भाई अनेक प्रकारकी बाल्यलीलाएँ किया करते थे। चौरके पंखका मुकुट बनाकर पहन्ते, जंगली पुष्पोंको कान्चोंमें धारण करते, कभी मुरली बजाते और कभी पत्तोंको लपेटकर ठन्हीके छिद्रोंसे तरह-तरहकी ध्वनि निकालते थे। दोनों काक-कक्षवाले बालक हैंसते-खेलते हुए उस महान् वनमें विचरण करते थे। कभी आपसमें ही एक-



दूसरेको हैंसते हुए खेलते और कभी दूसरे व्यासवालोंके साथ बालोचित क्रीड़ाएँ करते-फिरते थे। इस प्रकार कुछ समय बीतनेपर बलराम और श्रीकृष्ण सात वर्षके हो गये। जो सम्पूर्ण जगत्का पालन करनेवाले हैं, वे उस महान् वनमें बछड़ोंके पालक बने हुए थे। धीरे-धीरे प्रोष्य-ऋतुके बाद वहाँ वर्षाका समय आया। मेघोंकी घटासे सम्पूर्ण आकाश आच्छादित हो गया। निरन्तर धारावाहिक धृष्टि होनेसे सम्पूर्ण दिशाएँ एक-सो जान पड़ती थीं। पानी पड़नेसे नयी-नयी घास उग अगयी। स्थान-स्थानपर

बीरबहुटियोंसे पृथ्वी अचञ्छदित हो गयी। जैसे पत्रोंके फर्शपर लाल मणिकी केरी सोभा पाती है, वसी प्रकार बीरबहुटियोंसे ढकी हुई हरी-भरी पृथ्वी सुशोभित होती थी। जैसे नूतन सम्पत्ति पाकर उद्धत मनुष्योंके मन कुमार्गमें प्रवृत्त होने लगते हैं, वसी

प्रकार वयंकि जलसे भरी हुई नदियोंका पानी भीषण तोड़कर टटके ऊपरसे बहने लगाना। संख्या होनेपर महाबलों साथ और श्रीकृष्ण इच्छानुसार व्रजमें लौट आते और अपने समयवत्क ग्वाल-बालोंके साथ देवताओंकी भक्ति क्रोड़ करते थे।

कालिय नागका दमन

ग्यासजी कहते हैं—एक दिनकी बात है—श्रीकृष्ण अपने बड़े भाई बलरामजीको साथ लिये बिना ही सुन्दावनके भीतर गये और ग्वाल-बालोंके साथ विचरने लगे। जंगली पुष्पोंका हार पहननेके कारण वे बड़े सुन्दर दिखायी देते थे। घूमते-घूमते श्रीकृष्ण चञ्चल सहरोंसे सुशोभित यमुनाके तटपर गये, जो तटपर लगे हुए फेनोंके रूपमें मानो सब ओर हास्यकी छटा बिखेर रही थी। उस यमुनामें एक कालिय नागका कुण्ड था, जो विषाग्निके कणोंसे दूषित होनेके कारण अत्यन्त भयंकर हो गया था। श्रीकृष्णने उस भयानक कुण्डको देखा उसकी फैलती हुई विषाग्निके तटके बड़े-बड़े वृक्ष दग्ध हो गये थे। वायुके आघातसे जो जलमें हिलने उठती थी और उससे जो जलके छींटे चारों ओर पड़ते थे, उनका स्पर्श हो जानेपर पक्षी जलकर भस्म हो जाते थे। वह महाभयंकर कुण्ड मृत्युका दूसरा मुख था। उसे देखकर भगवान् यधुसूदनने रोच, 'इस कुण्डके भीतर दुष्टात्मा कालिय नाग रहता है, जिसका विष ही शस्त्र है। इसने यहाँ सामरगाभिनी यमुनाका सारा जल दूषित कर दिया है। प्यूससे पीड़ित मनुष्य अथवा गौएँ इस जलका उपयोग नहीं कर सकते। अतः मुझे नगराज कालिम्बका दमन करना चाहिये, जिससे सदा भयभीत रहनेवाले व्रजवासी यहाँ सुखपूर्वक विचर सकें। मैंने

मनुष्यलोकमें इसीलिये अवतार धारण किया है कि इन कुमार्गगामी दुरात्माओंको दण्ड देकर राहपर लाऊँ यहाँ पास ही बहुत-सी शाकाओंसे सम्पन्न कटम्बका वृक्ष है। उसपर चढ़कर जीर्णोक्त व्रत करनेवाले इस सर्पके कुण्डमें कूदूंगा।'

ऐसा निश्चय करके भगवान्ने अच्छी तरह कमर कस ली और वे बैंगपूर्वक नागराजके कुण्डमें कूद पड़े। उनके कूदनेसे वह महान् कुण्ड भुज्ज हो उठा पानीकी ऐसी हिलोर उठी कि बहुत दूरके वृक्ष भी भीग गये। सर्पकी विषाग्निका तपे हुए जलसे भीगनेके कारण वे सभी वृक्ष सहसा जल उठे। चारों दिश्वोंमें आगकी लपटें फैल गयीं। उस नागकुण्डमें पहुँचकर श्रीकृष्णने अपनी भुजाओंपर हाथ ठोकरी उसका शब्द सुनकर नगराज उनके पास आया। उसके पैर जोधसे लाल हो रहे थे। उसके फणोंसे विषाग्निकी लपटें निकल रही थीं। और भी बहुत-से विषले नाग उसे घेरे हुए थे। सैकड़ों नागपत्नियाँ भी वहाँ उपस्थित थीं, जो यनोहर हार पहनकर बड़ी सोभा पा रही थीं। उनके अङ्गोंके हिलने डुलनेसे कानोंके चञ्चल कुण्डल हिलमिलते रहे थे। सपने श्रीकृष्णको अपने शरीरमें लपेट लिया और वे विषकी प्याहासे भरे हुए मुखोंद्वारा उन्हें डसने लगे। श्रीकृष्णको कुण्डमें पड़कर नागके फणोंसे पीड़ित होते देख ग्वाल-बाल व्रजमें दौड़े आये

और शोककुल होकर रोते हुए बोलते—‘व्रजवासियों! श्रीकृष्ण कालियहृदमें चुबकर मूर्च्छित हो गये हैं। नागराज उन्हें खाये लेता है। तुम बसदों आओ, बिलम्ब न करो।’

यह बात सुनकर मानो गोपोंपर वज्र टूट पड़ा। समस्त गोप और यशोदा आदि गोपियाँ तुरंत कालियहृदपर दौड़ी अग्यीं। ‘हाथ, हाथ, फाँसे कुण्ड कहीं हैं?’ इस प्रकार बिलाप करती हुई



गोपियाँ अत्यन्त व्याकुल हो उठीं और यशोदाके साथ गिरती पड़ती हुई वहाँ आयीं। नन्दगोप, अन्य गोपगण तथा अद्भुत पराक्रमी बलराम भी श्रीकृष्णको देखनेके लिये तुरंत समुद्रतटपर जा पहुँचे। पुत्रका मुँह देखकर नन्दगोप और माता यशोदा दोनों बड़बड़ा हो गये। अन्यग्न गोपियाँ भी शोकसे आकुल हो रोती हुई श्रीकृष्णकी ओर देखने लगीं। ये भयसे कातर हो नदगद खण्डोंमें प्रेमपूर्वक बोलतीं—‘हम सब स्नेह यशोदाके साथ नागराजके महान् कुण्डमें प्रवेश करें। अब व्रजमें लौटना हमारे लिये उचित नहीं है। भला, सूर्यके

बिना दिन और चन्द्रमाके बिना रात कैसे। दूधके बिना गौरें और श्रीकृष्णके बिना व्रज किस कामका। हम श्रीकृष्णके बिना गोकुलमें नहीं जायेंगी।’

शेषियोंके ये वचन सुनकर रोहिणीनन्दन महाबली बलरामने देखा—गोपगण बहुत दुःखी हैं। इन्हीं आँखों आँसुओंसे भीगी हुई हैं। नन्दजी की पुत्रके मुखपर दुःखित सगाये अत्यन्त कातर हो रहे हैं और यशोदा अपनी सुध-बुध खो बैठी हैं। तब उन्होंने अपनी संकेतमयी भाषामें श्रीकृष्णको उनके माहात्म्यका स्मरण दिलाते हुए कहा—‘देवदेवेश्वर! तुम क्यों इस प्रकार मानवभाव व्यक्त कर रहे हो। क्या इस बातको नहीं जानते कि तुम इन मानवोंसे भिन्न साक्षात् परमात्मा हो? तुम्हीं इस जगत्के केन्द्र हो। देवताओंका आश्रय भी तुम्हीं हो। तुम्हीं त्रिभुवनकी सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले त्रयीमय परमेश्वर हो। हम दोनों इस समय यहाँ अवतीर्ण हुए हैं। इस व्रजमें ये गोप-गोपियाँ ही हमारे बान्धव हैं। ये सब-के-सब तुम्हारे लिये दुःखी हो रहे हैं। फिर क्यों अपने इन बन्धुओंकी उपेक्षा करते हो। तुमने मनुष्यभाव अच्छी तरह दिखा लिया। कालोचित अपलता दिखानेमें भी कोई कमी नहीं की अब यह खेल रहने दो और दौलोंसे ही अस्त्र-शस्त्रोंका खम लेनेवाले इस दुरात्मा नागका दमन करो।’

बलरामजीके द्वारा इस प्रकार स्मरण दिलाये जानेपर श्रीकृष्णके होठ मन्द मुसकानसे खिल उठे। उन्होंने अँगड़ाई लेकर अपने शरीरको सोंपोंके बन्धनसे छुड़ा लिया और दोनों हाथोंसे उसके बीचके फणको नीचे झुकाकर व वसीपर चढ़ गये और शीघ्रतापूर्वक पैर चलाते हुए नृत्य करने लगे। श्रीकृष्णके चरणोंके आघातसे उस नागके फणमें कई भाव हो गये। वह जिस फणको ऊपर दृढ़ता, उसकेको धगवध्न् अपने

पैरोंसे झुकाकर दवा देते थे। शोकृष्णके द्वारा कुचले जानेसे नागकी चककर आने लगत। वह मूर्च्छित होकर ढंडेकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ा। उसके मस्तक और गर्दन टेढ़े हो गये थे। मुखसे रक्तकी अजस धारा बह रही थी। यह देखकर नागराजकी पत्नियाँ भगवान् मधुसूदनकी शरणमें गयीं।



भागपत्नियाँ बोलीं—देवदेवेश्वर! हमने आपको पहचान लिया। आप सबके ईश्वर और सबसे उत्तम हैं। अधिष्ठान परमज्योतिःस्वरूप ओ ब्रह्म है, उसीके अंशभूत आप परमेश्वर हैं। देवता भी जिन स्वयम्भू प्रभुकी स्तुति करभेमें समर्थ नहीं हैं, उन्हींके स्वरूपका वर्णन हम जैसी साधारण स्त्रियाँ कैसे कर सकती हैं। सम्पूर्ण पृथ्वी, आकाश, जल, अग्नि और वायुरूप यह ब्रह्माण्ड जिनके छोटे-से अंशका भी अंश है, उस भगवान्की स्तुति हम कैसे कर सकती हैं। जगन्नाथ! हम बड़े कहमें पड़ गयी हैं। आप हमपर कृपा करें। यह नाग अब प्राण त्यागना चाहता है। हमें

पतिकी भिक्षा दें।

उनके इस प्रकार स्तुति करनेपर कालिय नागको कुछ आश्वासन मिला। यद्यपि उसका शरीर अत्यन्त शिथिल हो गया था तो भी वह धीरे-धीरे बोला—‘देवदेव! मुझपर प्रसन्न हों। अब आपमें अणिमा आदि आठ ऐश्वर्य स्वभाविक हैं। आपसे बढ़कर अन्यत्र कहीं भी उनकी स्थिति नहीं है। ऐसे आप परमेश्वरकी ये क्या स्तुति करूँगा। आप पर हैं। पर (मूल प्रकृति) के भी आदि कारण हैं। परकी प्रवृत्ति भी आपसे ही हुई है। परमपुत्र! आप परसे भी पर हैं। फिर मैं कैसे आपकी स्तुति कर सकता हूँ। ईश्वर! आपने जाति, रूप और स्वभावसे मुझे जैसा बनाया है, उसके अनुसार ही मैंने यह चेष्टा की है। देवदेव! यदि इन सबके विपरीत कोई चेष्टा करे तो मुझे दण्ड देना उचित हो सकता है। क्योंकि आपका ऐसा ही आदेश है तथापि आप जगत्के स्वामी हैं। आपने मुझको जो दण्ड दिया है, उसे मैंने सहर्ष स्वीकार किया; क्योंकि आपसे मिला हुआ दण्ड भी वरदान है अब मेरे सिधे दूसरे वरकी आवश्यकता नहीं है। अभ्युत! आपने मेरे बलका नाश किया, मेरे बिधकी भी हर लिया और पूर्णरूपसे मेरा दमन भी कर दिया। अब एकमात्र जीवन रह गया है। उसे छोड़ दीजिये और कहिये, आपकी क्या सेवा करूँ?’

श्रीभगवान् बोले—‘सर्प! अब तुम्हें यहाँ यमुनजलमें कदापि नहीं रहना चाहिये। अपने भृत्य और परिवारके साथ समुद्रके जलमें चले जाओ नाग। तुम्हारे मस्तकपर मेरे चरणचिह्न देखकर नालोंके सत्रु गरुड़ तुमपर प्रहार नहीं करेंगे।’

यों कहकर भगवान् श्रीहरिने नागराजको छोड़ दिया। वह भी शोकृष्णको प्रणाम करके समुद्रको चला गया। उसने सबके देखते-देखते सेवक,

संतान, बन्धु बान्धव और पत्नियोंके साथ सदाके लिये वह कुण्ड त्याग दिया। सर्पके चले जानेपर गोपोंने दौड़कर श्रीकृष्णको छत्तीसे लगा लिया, मानो वे भरकर पुनः लौट आये हों। उनके नेशोंसे आँसू निकलकर श्रीकृष्णके मस्तकपर गिरने लगे। कुछ गोप विस्मित होकर श्रीकृष्णकी स्तुति करने

लगे। यमुना नदीका जल विषसे रहित हो गया—यह देख समस्त गोपोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। गोपिकाँ श्रीकृष्णकी मनोहर लीलाओंका गान करने लगीं और ग्वाल-बाल उनके गुणोंकी प्रशंसा करने लगे उन सबके साथ श्रीकृष्ण वज्रमें आये।

धेनुक और प्रलम्बका यध तथा गिरियज्ञका अनुष्ठान

व्यासजी कहते हैं—एक दिन बलराम और श्रीकृष्ण साथ-साथ गौएँ चराते हुए वनमें विचरने लगे। घूमते-घूमते वे परम रमणीय ताड़के वनमें जा पहुँचे। वहाँ धेनुक नामक वृक्ष गढ़देके रूपमें सदा विकास करता था। मनुष्यों और गौओंका घास ही उसका भोजन था। फलकी समृद्धिसे पूर्ण मनोहर तालवृक्षको देखकर ग्वाल-बाल यहँकि फल लेनेको ललचा उठे और बोले—'धैया राम! ओ कृष्ण, धेनुकासुर सदा इस भूभागकी रक्षा करता है इसीलिये ये त्वड़ोंके सुगन्धित फल लोगोंने छोड़ रखे हैं। हम इन्हें प्राप्त करना चाहते हैं यदि आपलोगोंको जैसे तबे हम फलोंको गिराइये।' ग्वाल-बालोंकी यह बात सुनकर बलराम और श्रीकृष्णने बहुत से तालफल पृथ्वीपर गिराये। गिरते हुए फलोंका शब्द सुनकर वह गर्दभाकार दुष्ट दैत्य क्रोधमें परा हुआ आया। आते ही उसने अपने दोनों पिछले पैरोंसे बलरामजीकी छातीमें प्रहार किया। बलरामजीने उसके दोनों पैर पकड़ लिये और उसे आकाशमें घुमाना आरम्भ किया। घुमानेसे आकाशमें ही उसके प्राणफलेक उड़ गये। फिर वेगसे बलरामजीने उसे एक महान् ताल वृक्षपर दे मारा। जैसे आँधी बादलोंको उड़ा देती है, उसी प्रकार उस दैत्यने गिरते-गिरते अपने शरीरके आघातसे बहुतेरे फल गिरा दिये।

उसके मरे जानेपर और भी बहुत-से गर्दभाकार दैत्य आये, किंतु श्रीकृष्ण और बलभद्रे उन सबको खेल-खेलमें ही ठठाकर वृक्षोंपर फेंक दिया। एक ही क्षणमें पके हुए ताड़के फलों और गर्दभाकार दैत्योंके शरीरसे सारी पृथ्वी पट गयी। इससे उस स्थानकी बड़ी शोभा होने लगी। तबसे उस तालवनमें गौएँ बाधारहित होकर नयी-नयी घास चरने लगीं।

अनुचरोंसहित धेनुकासुरके मरे जानेपर वह मनोहर तालवन समस्त गोप-गोपियोंके लिये सुखदायक हो गया। इससे वसुदेवके दोनों पुत्र बलराम और श्रीकृष्ण प्रसन्न हुए। वे दोनों महात्मा छोटे-छोटे स्तंभोंवाले बछड़ोंकी भीति शोभा पा रहे थे। कंधेपर गाय बाँधनेकी रस्सी लिये, जन्मालासे विभूषित हो वे दूर-दूरतक गौएँ चराते और उनके नाम ले-लेकर पुकारते थे। श्रीकृष्णका जन्म सुनहरे रंगका था और बलरामजीका नीले रंगका। उन्हें धारण किये वे दोनों भार्य दो इन्द्रधनुषों एवं श्वेत-श्याम मेघोंकी भीति शोभा पाते थे। लोकमें बालकोंके जो-जो खेल प्रचलित हैं, उन सबके द्वारा परस्पर क्रीड़ा करते हुए वनमें विचरते थे। समस्त लोकनाथोंके नाथ होकर भी वे इस पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए और मानवधर्ममें तत्पर रहकर मनुष्ययोनिको गौरवान्वित करते थे।

मानव-जातिके गुणोंसे युक्त भौति-भौतिके खेल खेलते हुए वनमें घूमते थे। कभी झुलझुलकर और कभी आपसमें कुश्ती लड़कर महाबली श्रीराम और श्रीकृष्ण व्ययाम करते थे। उन दोनोंकी खेलते देख प्रलम्ब नामक दानव उन्हें पकड़ ले जानेकी इच्छासे वहाँ आया। उसने ग्वाल-बालोंके वेषमें अपने वास्तविक रूपको छिपा रखा था। मनुष्य भ होते हुए भी मनुष्यका रूप धारण करके दानवोंमें श्रेष्ठ प्रलम्ब ग्वाल-बालोंकी उस घण्टालीमें बेछटके जा मिला। वह राम और कृष्ण दोनोंको उठ ले जानेका अवसर ढूँढ़ने लगा। उसने कृष्णको लो सर्वाया अजेय समझा। अतः रोहिणीनन्दन बलरामको ही मारनेका निश्चय किया।

तदनन्तर उन ग्वाल-बालोंमें हरिणाग्रैडन नामक खेल आरम्भ हुआ। यह बालकोंका वह खेल है, जिसमें दो-दो बालक एक साथ हिरणाग्री तरङ्ग ठकलते हुए किसी निश्चित लक्ष्यतक जाते हैं। आगे पहुँचनेवाला विजयी होता है। द्वारा हुआ बालक विजयीको अपनी पीठपर बिठाकर नियत स्थानतक ले आता है। इस खेलमें सब लोग सम्मिलित हुए। दो-दो बालक एक साथ ठकलते हुए चले। श्रीरामके साथ श्रीकृष्ण, प्रलम्बके साथ बलराम तथा अन्य ग्वाल-बालोंके साथ दूसरे-दूसरे बालक कुद रहे थे। श्रीकृष्णने श्रीरामको और बलरामने प्रलम्बको जीत लिया। इसी प्रकार श्रीकृष्णपक्षके अन्य बालकोंने भी अपने साथियोंको हरा दिया। अब वे हारे हुए बालक एक-दूसरेको अपनी पीठपर सादे हुए भाण्डीर-बटुक आये और पुनः वहाँसे लौट चले। किन्तु दानव प्रलम्ब बलरामको अपने कंधेपर चढ़ाकर सोझ ही उड़ चला। वह चलता ही गया। कहीं रुका नहीं। जब वह बलरामजीका भार नहीं सह सका, तब बड़े

क्रोधमें आकर वर्षाकालके मेघकी भाँति उसने अपने शरीरको बड़ा लिया। बलरामजीने देखा, उस दैत्यका रंग जले हुए पर्वतके समान है। उसके गलेमें बहुत बड़ा छार लटक रहा था। मस्तकपर बहुत बड़ा मुकुट था। आँखें गाड़ीके पहिने-जैसी धूम रही थीं। उसके पैर रखनेसे भरती हगमगने लगती थी, उसका रूप बड़ा ही भयंकर था। ऐसे राक्षसके द्वारा अपनेको हरे जाते देख बलरामने श्रीकृष्णसे कहा—‘कृष्ण! कृष्ण! इधर तो देखो, ग्वाल-बालोंके वेषमें छिपा हुआ कोई दैत्य मुझे हरकर लिये जाता है। इसकी विकराल मूर्ति पर्वतके समान दिखायी देती है। मधुसूदन! बताओ, इस समय मुझे क्या करना चाहिये। यह दुरात्मा बड़ी उतावलीके साथ भागा जाता है।’

यह सुनकर भगवान् श्रीकृष्णके ओठ मन्द मुसकानसे खिल उठे। वे रोहिणीनन्दन बलरामके बस और पराक्रमकी जानते थे। अतः उनसे बोले—‘सर्वात्मन्! यह क्या बात है, आप तो स्मृतरूपमें मनुष्यकी-सी चेष्टा करने लगे। आप सम्पूर्ण गुह्य वदार्थोंमें गुह्यसे भी गुह्य हैं। जब अपने उस स्वरूपका तो स्मरण कीजिये, जो सम्पूर्ण जगत्का कारण, कारणोंका भी पूर्ववर्ती, अद्वितीय आत्मा और प्रलयकालमें भी स्थित रहनेवाला है। विश्वात्मन्! आप और मैं दोनों ही इस संसारके एकमात्र कारण हैं और पृथ्वीका भार उतारनेके लिये यहाँ दो रूपोंमें प्रकट हैं। अग्रमेयात्मन्! आप अपने स्वरूपको स्मरण कीजिये और इस दानवको मार डालिये। तत्पश्चात् मानुष-भावका आश्रय लेकर बन्धुजनोंका हित कीजिये।’

महत्मा श्रीकृष्णके द्वारा इस प्रकार अपने स्वरूपका स्मरण कराये जानेपर महाबली बलरामने



हँसकर प्रलम्बासुरको दबाया और क्रोधसे ताल औंछें करके उसके घस्तकपर एक मुका मारा। उनके इस प्रहारसे प्रलम्बाके दोनों नेत्र बाहर निकल आये, मस्तिष्क फट गया और वह दैत्य मूँहसे खून ठगलता हुआ पृथ्वीपर गिरकर मर गया। अद्भुत कर्म करमेवाले बलदेवजीके द्वारा प्रलम्बाको मारा गया देख ग्वाल-बाल 'बहुत अच्छा हुआ, बहुत अच्छा हुआ' कहते हुए उनकी प्रशंसा करने लगे। इस प्रकार प्रलम्बासुरके मारे जानेपर ग्वाल-बालोंके मुखसे अपनी प्रशंसा सुनते हुए बलरामजी श्रीकृष्णके साथ पुनः गौओंके समूहमें आये।

इस तरह जाना प्रकारकी सीलाएँ करते हुए बलराम और श्रीकृष्ण वनमें विहार करते रहे। हतनेमें ही वर्षा नीत गयी और सरद ऋतुका आगमन हुआ। जलाशयोंमें कमल खिलने लगे, आकाश और नक्षत्र निर्मल हो गये। ऐसे समयमें समस्त व्रजवासी इन्द्रोत्सवका आयोजन करने लगे उन्हें उत्सवके लिये अत्यन्त उत्सुक देख

पसन्तुर्दम्भन् श्रीकृष्णने बड़े-बूढ़े गोपोंसे कौतूहलवश पूछा—'यह इन्द्रोत्सव क्या वस्तु है, जिससे आपसोगोंको इतना हर्ष हुआ है?' श्रीकृष्णको अत्यन्त आदरपूर्वक प्रश्न करते देख नन्द गोपने कहा—'बेटा! देवराज इन्द्र मेघ और जलवे स्वामी हैं उन्होंने प्रेरित होकर मेघ जलमय रसकी वृष्टि करते हैं उस वृष्टिसे ही अन्न पैदा होता है, जिसे हम तथा अन्य देहधारी खाकर जीवन-निर्वाह करते और देवता आदिको भी तृप्त करते हैं। ये दूध और बछड़ोंवाली गौएँ इन्द्रके बढावे हुए अन्नसे ही संतुष्ट हो इष्ट-पुष्ट रहती हैं जहाँ वर्षा करनेवाले मेघ होते हैं वहाँ बिना खेतोंकी भूमि नहीं दिखायी देती, कोई श्रणग्रस्त नहीं रहता और वहाँ एक भी भूखसे पीड़ित मनुष्य नहीं दृष्टिगोचर होता। मेघ सूर्यकी किरणोंद्वारा इस पृथ्वीका जल ग्रहण करते और फिर सम्पूर्ण लोकोँकी भलाईके लिये उसे बरसा देते हैं अतः वर्षाकालमें सब राजालोग, हम तथा अन्य देहधारी भी बड़ी प्रसन्नताके साथ उत्सव मनाते और देवराज इन्द्रकी पूजा करते हैं।'

इन्द्रपूजाके विषयमें नन्दगोपका ऐसा कथन सुनकर भगवान् दामोदरने इन्द्रको कुपित करनेके उद्देश्यसे कहा—'पिताजी हमलोग न तो खेती करते हैं और न व्यापारसे ही जीविका चलाते हैं। हमारे देवता तो वे गौएँ ही हैं। क्योंकि हम सब लोग वनवासी हैं। आन्वीधिकी त्रयी, वार्ता और दण्डनीति—ये चार प्रकारकी विद्याएँ हैं इनमेंसे कर्ताका सम्बन्ध हमलोगोंसे है। अतः उसका वर्वन सुनिये। कृषि, वाणिज्य और पशुपालन—इन तीन वृत्तियोंपर वार्ता अवलम्बित रहती है कृषि किसानोंकी वृत्ति है और वाणिज्य क्रय-विक्रय करनेवाले वैश्योंको हमलोगोंकी सबसे प्रधान वृत्ति है—गोपालन। इस प्रकार ये वार्ताके तीन

भेद हैं। उपर्युक्त चार विद्याओंमेंसे जो जिस विद्याने निर्वाह करता है, वही उसके लिये महान् देवता है। उसे उसीकी पूजा-अर्चा करनी चाहिये। वही उसके लिये उपकारक है। जो मनुष्य एकका दिव्य हुआ फल भोगता और किसी दूसरेकी पूजा करता है, वह इस लोक या परलोकमें—कहाँ भी कल्पणका भागी नहीं होता। हमारे इस राजकी जो प्रख्यात सोमार्ह हैं, उनका पूजन होना चाहिये। सीमाके भीतर वन है और वनके भीतर सम्पूर्ण पर्वत हैं, जो हमारे लिये परम आश्रय हैं। अतः इन्हें गिरियज्ञ और गोयज्ञ आरम्भ करना चाहिये। इन्द्रसे हमारा क्या लाभ होता है। हमारे लिये तो गीर्ह और गिरिराज ही देवता हैं। साक्ष्य मन्त्रयुक्त यज्ञको प्रधानता देते हैं। किसानोंके यहाँ सौरयज्ञ (हल पूजन) होता है और इम-जैसे वन एवं पर्वतोंमें रहनेवाले लोग गिरियज्ञ और गोयज्ञका अनुष्ठान करें तो उत्तम है। इसलिये मेरा विचार तो यह है कि आपलोग भीति-भीतकी पूजा-साधनियोंसे गिरिराज गोवर्धनकी पूजा करें। सम्पूर्ण राजका दूध एकत्र किया जाय और उससे साक्ष्यों तथा अन्य पाशकोंको भोजन कराया जाय। इस प्रकार गोवर्धनका पूजन, होम और साक्ष्य-भोजन हो जानेपर गीर्हका शरद् ऋतुमें ब्राह्मण होनेवाले पुष्पाँद्वारा शृङ्गार किया जाय और वे गिरिराजकी परिक्रमा करें। गोपगण! यही मेरी सम्पत्ति है। यदि आपलोग प्रेमपूर्वक यह यज्ञ करेंगे तो इसके द्वारा गीर्ह और गिरिराज गोवर्धन प्रसन्न होंगे। साथ ही मुझे भी बड़ी प्रसन्नता होगी।

श्रीकृष्णका यह वचन सुनकर नन्द अर्द्ध राजवासियोंके मुख हर्षसे प्रफुल्लित हो उठे। वे बोले, 'बहुत ठीक, बहुत ठीक। बेरा! तुमने जो

अपना सब प्रकट किया है, वह बहुत सुन्दर है। हमलोग यही करेंगे। अब गिरियज्ञका ही आरम्भ किया जाय।' यों कहकर राजवासियोंने गिरियज्ञका अनुष्ठान किया। गिरिराज गोवर्धनको दही और खीर आदिकी बलि चढ़ायी। सैकड़ों-हजारों साक्ष्योंको भोजन कराया। फिर गीर्ह और सौर्होंकी पूजा की गयी और उनके द्वारा गिरिराजकी परिक्रमा करायी गयी। सौर्ह उससे भरे मेघकी भाँति गर्जना करते थे। भगवान् श्रीकृष्ण दूसरे रूपमें पर्वतके शिखरपर बैठे और मैं ही भूर्भुवः गिरिराज हूँ—यों कहकर गोपोंद्वारा अर्पित किये हुए नाना प्रकारके अन्नोन्नम भोग लगाने लगे



तथा अपने कृष्णरूपसे ही गोपोंके साथ पर्वत-शिखरपर चढ़कर उन्होंने अपने द्वितीय शरीर गिरियज्ञका पूजन भी किया। तदनन्तर गिरियज्ञरूपमें प्रकट हुए भगवान् अन्तर्धान हो गये और गोपगण उनसे मन्त्रेवाञ्छित वरदान पाकर गिरियज्ञकी समर्पित करके पुनः अपने राजमें लौट आये।

इन्द्रके द्वारा भगवान्का अभिषेक, श्रीकृष्ण और गोपोंकी धातचीत, रासलीला और अरिष्टासुरका वध

स्वयंजी कहते हैं—इन्द्रयज्ञमें बाधा पड़नेसे देवराज इन्द्रको बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने मेघोंके संवर्तक नामक गणसे कहा—'बदलो! मेरी बात सुनो और मैं जो भी आज्ञा दूँ, उसे बिना विचारे शीघ्र पूरा करो। खोटी बुद्धिवाले बन्दगोपने अन्य ग्वालोंके साथ श्रीकृष्णके बलपर उन्मत्त हो मेरे यज्ञको बंद कर दिया है। इसलिये उनकी जो सबसे बड़ी आजीविका है और जिनका फलन करनेके कारण वे गोप कहलाते हैं, उन गौओंको घुसलाधार वृष्टिसे पीड़ित करो। मैं भी पर्वत-शिखरके समान ऊँचे देराबतपर सवार हो वायुके संयोगसे तुमलोगोंकी सहायता करूँगा।' देवराजकी ऐसी आज्ञा पाकर मेघोंने गौओंका संहार करनेके लिये बड़ी भयंकर आँधी और वर्षा अरम्भ की। एक ही क्षणमें पृथ्वी, दिसाई और आकाश धाराधरिक वृष्टिके कारण एक हो गये। वर्षाके साथ ही वायु भी बड़े वेगसे चल रही थी। इससे काँपती हुई गौएँ प्राण त्यागने लगीं। कुछ गौएँ अपने अङ्गुमें बछड़ोंको छिपाकर छड़ी थीं। जलकी तेज धारा बहनेसे कितनी ही गायोंके बछड़े बह गये। बछड़ोंका मुख अत्यन्त दयनीय हो रहा था। वायुके वेगसे उनकी गर्दन काँप रही थी। मानो वे आर्त होकर मन्द स्वरमें श्रीकृष्णसे त्राहि-त्राहिकी पुकार कर रही थीं। भगवान्ने देखा—गौओं, गोपियों और ग्वालोंसे भय हुआ सम्पूर्ण व्रज अत्यन्त पीड़ित हो रहा है। तब उन्होंने उनकी रक्षाके लिये इस प्रकार विचार किया—'जान पड़ता है यह सब देवराज इन्द्रकी करदूत है। अपना यज्ञ बंद होनेसे वे हमलोगोंके विरोधी हो गये हैं। इस समय मुझे सम्स्त व्रजकी

रक्षा करनी चाहिये। वह गोवर्धन पर्वत बड़ी-बड़ी शिलाओंसे युक्त है। इसीको अपने बलसे उखाड़कर मैं इसके ऊपर छत्रकी भाँति धारण करूँगा।'

ऐसा निश्चय करके श्रीकृष्णने गोवर्धन पर्वतको उखाड़ लिया और उसे लीलापूर्वक एक ही हाथसे धारण किया। पर्वत उखाड़नेके बाद अगदीक्षर श्रीकृष्णने गोपोंसे कहा—'मैंने वर्षासे बचनेका उपाय कर दिया। तुम सब लोग इसके नीचे आ जाओ और जहाँ वायुका झोंका न लगे, ऐसे स्थानोंमें घबकायेव बैठ जाओ। किसी प्रकारका भय न करो। पर्वतके गिरनेकी आशङ्का बिलकुल छोड़ दो।' भगवान्के धों कहनेपर सम्स्त गोप छत्रोंपर बर्तन-भाँड़े लादे गौओंके साथ उसके नीचे आ गये। वर्षाकी धारासे पीड़ित हुई गोपियाँ भी वहीं आ गयीं। श्रीकृष्णने गोवर्धन पर्वतको स्थिरतापूर्वक धारण कर रखा था। यह तनिक



भी डिलता-डुलता नहीं था। वज्रमें रहनेवाले गोप-गोपीजन हर्ष और विस्मयपूर्ण दृष्टिसे उन्हें देखते रहे। वे प्रेमपूर्वक निनिमेष नेत्रोंसे देखते हुए भगवान्‌की स्तुति करते रहे। नन्दके वज्रमें मेघोंने लगातार सप्त रातोंतक वर्षा की। वे इन्द्रकी आज्ञासे गोपोंका विनाश करनेपर तुले थे। परंतु श्रीकृष्ण तबतक उस पर्वतको धारण किये खड़े ही रह गये। इससे गोकुलकी पूर्ण रक्षा हुई और इन्द्रकी प्रतिज्ञा झूठी हो गयी। तब उन्होंने बादलोंको वर्षा करनेसे रोक दिया। बादल डट गये। आकाश स्वच्छ हो गया और इन्द्रका वरून्‌ सफल न हो सका। तब समस्त वज्रके लोग प्रसन्नतापूर्वक वहाँसे निकलकर पुनः अपने स्वामपर आये। फिर श्रीकृष्णने भी महापर्वत गोवर्धनको यथास्थान रखा दिया। वज्रवासी विस्मित होकर उनकी यह लीला देखा रहे थे।

श्रीकृष्णने गोवर्धन पर्वत धारण करके समूचे गोकुलको बचा लिया, यह जानकर इन्द्रको उनके दर्शनकी इच्छा हुई। वे महागज ऐरावतपर अरुन्ध ही वज्रमें आये। वहाँ देवराजने गोवर्धन पर्वतके समीप श्रीकृष्णका दर्शन किया। वे गोप-सरीर धारण करके गौएँ चरा रहे थे। उनका पराक्रम अनन्त था। सम्पूर्ण जगत्‌के रथक भगवान्‌ श्रीकृष्ण वहाँ ग्वाल-बालोंसे घिरे हुए खड़े थे। ऊपर परिकराज गरुड अन्य प्राणियोंसे अदृश्य रहकर श्रीहरिके यस्तकपर अपने पंखोंसे छाया कर रहे थे। यह देखकर इन्द्र एकान्तमें ऐरावत हाथीसे उतरे और प्रेमसे एकटक देखते हुए भगवान्‌ बधुमुदनसे मुसकराकर बोले—'महानाहु श्रीकृष्ण। मैं आपके समीप जिस कार्यके लिये आया हूँ, उसे सुनिये। मेरे प्रति कोई अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये। परमेश्वर ! आप ही सम्पूर्ण जगत्‌के आधार हैं और पृथ्वीका भार उठा देनेके

लिये भूतलपर अकतीर्ण हुए हैं। येए यज्ञ बंद होनेसे मेरे मनमें विरोध जाग उठा और मैंने गोकुलका नाश करनेके लिये बड़े-बड़े मेघोंको वर्षा करनेकी आज्ञा दे दी। उन्होंने ही यह संहार मचाया है, परंतु आपने महापर्वत गोवर्धनको उखाड़कर समस्त गौओंको बचसे बचा लिया। खोपर ! आपके इस अद्भुत कर्मसे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। कृष्ण ! मैं तो अब ऐसा मानता हूँ कि आज ही देवताओंका सारा प्रदीपन सिद्ध हो गया। क्योंकि आपने एक ही हाथसे इस गिरिराजको ऊपर उठा रखा था। श्रीकृष्ण ! आपने गोवर्धनकी बहुत बड़ी रक्षा की है। अतः आपका आदर करनेके लिये मैं गौओंकी प्रेरणासे यहाँ आपके समीप आया हूँ। गौओंके आदेशानुसार आज मैं उपेन्द्रके पदपर आपका अभिवेक करूँगा। आजसे आप गौओंके इन्द्र होकर गोविन्द नामसे विख्यात होंगे।'

यों कहकर इन्द्रने ऐरावत हाथीसे घण्टा डलवा। उसमें पवित्र जल भरा हुआ था। उस



दिव्य जलसे उन्होंने श्रीकृष्णका अभिषेक किया। श्रीकृष्णका अभिषेक होते समय गौओंने कृत्तल अपने धनोंसे दुधकी धारा बहाकर वसुधाको भिगो दिया। अभिषेकका कार्य पूरा करके श्वेपति इन्द्रने प्रेम और विनयपूर्वक श्रीकृष्णसे फिर कहा: 'महाभाग! यह सब तो मैंने गौओंके आदेशसे किया है। अब पृथ्वीका भार उतरवानेकी इच्छासे मैं जो और कुछ बातें निवेदन करता हूँ, उन्हें भी सुनिये। मेरे अंशसे इस पृथ्वीपर एक ब्रह्म पुरुष उत्पन्न हुआ है, जिसका नाम अर्जुन है। आप उसकी सदा रक्षा करते रहें। मधुसूदन, अर्जुन वीर पुरुष है। वह इस भूमिका भार उतारनेमें आपकी सहायता करेगा। जैसे अपनी रक्षा की जाती है वैसे ही आपको अर्जुनकी भी रक्षा करनी चाहिये।'

श्रीभगवान् बोले—देवराज ! मैं जानता हूँ, भरतवंशमें आपके अंशसे अर्जुनकी उत्पत्ति हुई है। मैं जबतक इस भूतलपर रहूँगा, अर्जुनकी रक्षा करूँगा। मेरे रहते अर्जुनको युद्धमें कोई भी जीत न सकेगा। महाबाहु कंस, अष्टिासुर, केसी, कुवलयापीड और नरकासुर आदि दैत्योंके मारे जानेके पश्चात् महाभारत युद्ध होगा। उसकी समाप्ति होनेपर यह जानना चाहिये कि पृथ्वीका भार उतर गया। अब आप जाइये, पुत्रके सिन्धे चिन्ता न कीजिये। मेरे आगे अर्जुनका कोई भी शत्रु सफल न हो सकेगा। केवल अर्जुनके सिन्धे ही मैं युधिष्ठिर आदि पाँचों ऋषियोंको महाभारतके अन्तमें कुन्ती देवीके समीप सकुशल लौटाऊँगा।

श्रीकृष्णके यों कहनेपर देवराज इन्द्रने उन्हें छातीसे लगाया और ऐशवतपर आरुढ़ हो पुनः स्वर्गको प्रस्थान किया। तदनन्तर श्रीकृष्ण गौओं और ग्वाल बालोंके साथ पुनः व्रजमें लौट आये। गोपियोंकी आँखें उनके पदपर लगी हुई थीं।

उनकी दृष्टिसे वह मार्ग पवित्र हो गया था।

इन्द्रके चले जानेपर गोपोंने अनावास ही अद्भुत कर्म करनेवाले श्रीकृष्णसे प्रेमपूर्वक कहा—'महाभाग ! आपने गोकर्धन पर्वत उठाकर हमारे और गौओंको बहुत बड़े भयसे रक्षा की है। तात् ! यह अनुपम बालसीला, समाजमें नीचा समझ जानेवाला ग्वालेका शरीर और आपका दिव्य कर्म—यह सब क्या है? आपने जलमें प्रवेश करके कालिय नागका दमन किया, प्रलम्बको मार गिराया और गोकर्धन पर्वतको हाथपर उठा लिया। इससे हमारे मनमें सन्देह पैदा होता है। अभितपराक्रम श्रीकृष्ण! हम ब्रौहरिके धरणोंकी शपथ खाकर सत्य-सत्य कहते हैं कि आपकी इस दिव्य शक्तिको देखते हुए हमें विश्वास नहीं होता कि आप मनुष्य हैं। आप देवता हैं या दानव, यक्ष हैं या गन्धर्व—इन सब बातोंका विचार करनेसे हृष्टाद्य क्या लाभ है। आप कोई भी क्यों न हों, इस समय हमारे बान्धव हैं अतः आपको नमस्कार है। हम देखते हैं, स्त्री और बालकोंसहित सम्पन्न व्रजका आपके प्रति प्रेम बड़ रहा है और यह कर्म भी आपका ऐसा है, जिसे सम्पूर्ण देवता भी नहीं कर सकते अभी आप बालक हैं, फिर भी आपके बालकी कोई सीमा नहीं है। इधर आपने हमलोगोंमें जन्म लिया है, जो अच्छी श्रेणीमें नहीं गिना जाता। अमेयात्मन् ! इन सब बातोंपर विचार करनेसे आप हमारे मनमें शङ्का उत्पन्न कर देते हैं।'

गोपोंकी यह बात सुनकर भगवान् कुछ कासतक प्रेमसे रुठकर चुपचाप बैठे रहे। फिर इस प्रकार बोले—'गोपगण ! यदि मेरे साथ सम्बन्ध होनेसे आपको लज्जा नहीं आती हो अवका यदि मैं आपलोगोंका प्रिय हूँ तो इस प्रकार विचार करनेकी क्या आवश्यकता है। यदि

मुझपर आपका प्रेम है अथवा मैं आपकी प्रशंसाका पात्र हूँ तो मेरे प्रति अपने बन्धु-बन्धुओंके समान ही स्नेह रखिये मैं न देवता हूँ न मन्थर्व हूँ, न यक्ष हूँ और न दानव ही हूँ। मैं तो आपका बन्धु होकर उत्पन्न हुआ हूँ। अतः यही आपको प्रियना चाहिये। इसके विपरीत किसी भी विचारको मनमें स्थान नहीं देना चाहिये।'

श्रीहरिका यह वचन सुनकर गोप भीन हो गये। वे यह सोचकर कि कन्हैया इम्बरी चारों मुनकर रुठ गया है, वहाँसे चुपचाप चले गये।

तदनन्तर एक दिन निराकाशमें श्रीकृष्णने देखा—आकाश स्वच्छ है, शरच्चन्द्रकी मनोरम चाँदनी चारों ओर फैली है, कुमुदिनी खिली है, जिसकी आनन्दयय सुगन्धसे सम्पूर्ण दिसाएँ महक रही हैं। वनमें सब ओर धीरे गूँज रहे हैं, जिससे वह वनश्रेणी अत्यन्त मनोहारिणी जान पड़ती है। प्रकृतिकी यह वैसर्गिक सौधा देखकर उन्होंने गोपियोंके साथ रास करनेका विचार किया। श्रीकृष्णने अत्यन्त मधुर स्वरमें संगीतकी मधुर तान छोड़ दी, जो वनिताओंको बहुत ही प्रिय थी। गीतकी मनोरम ध्वनि सुनकर गोपियाँ घर छोड़कर निकल पड़ीं और बड़ी डटाबलीके साथ उस स्थानपर आ पहुँचीं, जहाँ मधुसूदन मुरली बजा रहे थे। वहाँ आकर कोई गोपी तो उनके स्वरमें स्वर मिलाकर धीरे-धीरे गाने लगी। कोई ध्यान देकर सुनती हुई मन-ही-मन भगवान्‌का स्मरण करने लगी। कोई 'कृष्ण कृष्ण' कहकर सज्ज गयी। कोई प्रेमान्ध होकर लज्जाको तिलाञ्जलि दे उनके बगलमें खड़ी हो गयी। कोई गोपी बाहर गुरुजनोंको खड़ा देख चरके भीतर ही रह मयी और नेत्र बंद करके तन्मय हो गोविन्दका ध्यान करने लगी। गोपियोंसे घिरे हुए श्रीकृष्ण रासलीलाका रसास्वादन करनेको उत्सुक थे। अतः उन्होंने



शरच्चन्द्रकी प्योत्स्नासे अत्यन्त मनोरम प्रतीत होनेवाली उस रात्रीका सम्मान किया—रास आरम्भ करके उसे गौरव प्रदान किया।

इसी बीचमें श्रीकृष्ण गापद होकर कहीं अन्यत्र चले गये। गोपियोंका शरीर श्रीकृष्णकी चेष्टाओंके अधीन था। वे झुंड-की-झुंड अपने प्रियतमकी लोचके लिये वृन्दावनमें विचरने लगीं। उनके मनमें केवल श्रीकृष्णके दर्शनकी लालसा थी। वे वृन्दावनकी भूमिपर रात्रिमें श्रीकृष्णके चरण-चिह्न देखकर उन्हें चारों ओर दूँद रही थीं। श्रीकृष्णकी विभिन्न शीलाओंका अनुकरण करती हुई उन्होंने व्यग्र हो सब गोपियाँ एक ही साथ वृन्दावनमें विचरने लगीं। बहुत खोजनेपर भी जब श्रीकृष्ण नहीं मिले, तब उनके दर्शनसे निराश हो वे सब-की-सब लौटकर यमुनाके तटपर आयीं और उनके मनोहर चरित्रोंका गान करने लगीं। इतनेमें ही श्रीकृष्ण उन्हें आते दिखायी दिये। उनका मुखकमल खिला था। त्रिभुवनके रक्षक और सोसाते ही सब कुछ करनेवाले श्रीकृष्णको

आते देख कोई गोपी अत्यन्त हर्षसे भर गयी। उसके नेत्र प्रसन्नतासे खिल उठे और वह 'कृष्ण-कृष्ण-कृष्ण' की रट लगाने लगी। किसीने भी नहीं देखा करके उनकी ओर देखा और नेत्ररूपी प्रमत्तों के हाथ उनके मुखकमलकी सौन्दर्य-भाषुरीका पान करने लगी। किसी गोपीने गोविन्दको निहारकर अपने नेत्र बंद कर दिये और वहाँके रूपका ध्यान करती हुई वह योगस्थ-सी प्रतीत होने लगी।

तब माधवने किसीको प्रिय वचन कहकर और किसीको कुटिल भूषणसे निहारकर मन्त्रवा। सबका दिल प्रसन्न हो गया। फिर उदात्त चरित्रोंवाले श्रीकृष्णने रासमण्डली बनायी और समस्त गोपियोंके साथ आदरपूर्वक रासलीला की। उस समय कोई भी गोपी श्रीकृष्णके पाससे हटना नहीं चाहती थी। अतः एक स्थानपर स्थिर हो जानेके कारण रासोचित मण्डल न बन सका। तब श्रीकृष्णने एक-एक गोपीका हाथ पकड़कर रासमण्डलकी रचना की। उस समय उनके हाथका स्पर्श पाकर प्रत्येक गोपीकी आँखें आनन्दसे मुँद जाती थीं। इसके बाद रासलीला अग्रगण्य हुई। मञ्जल चूड़ियोंकी झनकारके साथ क्रमशः शरद्-ऋतुकी शोभाके रमणीय गीत गाये जाने लगे। उस समय श्रीकृष्ण शरद्-ऋतुके चन्द्रमाका, उनकी चरु-चन्द्रिकाका और मनोहर कुमुद-वनका वर्णन करते हुए गीत गाते थे, किंतु गोपियाँ बारंबार केवल श्रीकृष्णके नामका ही गान करती थीं। श्रीकृष्ण जितने ऊँचे स्वरसे रासके गीत गाते, उससे दुगुने स्वरसे समस्त गोपियाँ 'धन्य कृष्ण ! धन्य कृष्ण !!' का उच्चारण करती थीं। भगवान् जब आगे चलते, तब गोपियाँ उनके पीछे चलती थीं और जब वे पीछेकी ओर घूमकर सीट पड़ते, तब वे उनके सामने मुँह किये पीछे हटती थीं। इस प्रकार वे अनुलोप और प्रतिलोप-गतिसे श्रेष्ठरिक्त साथ

देती थीं। मधुसूदनने उस समय गोपियोंके साथ ऐसा रास किया, जिससे उन्हें उनके बिना एक क्षण भी करोड़ वर्षोंके सम्मान प्रतीत होने लगा। भगवान् श्रीकृष्ण सबके ईश्वर हैं। वे गोपियोंमें, उनके रसियोंमें तथा सम्पूर्ण भूतोंमें भी निवास करते हैं। वे आत्मारूपसे सम्पूर्ण विश्वको व्याप्त करके स्थित हैं। जैसे सब प्राणियोंमें पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश और आत्मा हैं, वही प्रकार भगवान् भी सबको व्याप्त करके स्थित हैं।

एक दिन आधी रातके समय जब श्रीकृष्ण रासलीलामें संलग्न थे, अर्धशूरा नामका उन्मत्त दानव ब्रह्मचरियोंको श्रास देता हुआ वहाँ सौंदके रूपमें आ पहुँचा। उसका शरीर जलपूर्ण मेघके समान फैला था। सींग तीखे थे। नेत्र सूर्यकी भाँति तेजस्वी दिखायी देते थे। वह अपने सूरोंके अग्रभ्रमसे पृथ्वीको विदीर्ण किये डालता था और दौत पीसता हुआ अपने दोनों ओठोंको बार-बार जीभसे चाटता था। उसके कंधोंकी गँठें अत्यन्त कठोर थीं और उसने क्रोधके मारे अपनी पूँछ ऊपर उठा रखी थी। उसकी गर्दन लंबी और मुख विस्तृत था। बूझोंसे टकर सेनेके कारण उसके सलाहमें जायके कई चिह्न थे। सौंदका रूप धारण करनेवाला वह दैत्य गीओंके गर्भ गिरा देता और सबको बड़े वेगसे मारता हुआ भक्ष्य बनमें घुस करता था। उसके नेत्र बड़े भयंकर थे। उसे देखकर समस्त गोप और गोपाङ्गनाएँ अत्यन्त भयसे व्याकुल हो उठीं और 'कृष्ण-कृष्ण' पुकारने लगीं। उनका आर्तनद सुनकर श्रीकृष्णने ताल ठोकते हुए सिंहके समान गर्जना की। वह शब्द सुनकर दुरात्मा क्षपासुर श्रीकृष्णकी ओर हो दीडा। उसके आँखें श्रीकृष्णके पैरकी ओर लगी थीं और सामने उन्हींकी सीपमें उसने सींगोंका अग्रभ्रम कर रखा था। उस महत्बली



दैत्यको अन्ते देख श्रीकृष्ण अवहेलनापूर्वक हैंसने लगे और अपने स्वयंसे विलम्बर भी पीछे न हटे। जब ही वह दैत्य समीप आया, धनुसूदनने झट उसके दोनों सोंग पकड़ लिये और अपने धुटनेसे उसकी कोखमें प्रहार किया। सोंग पकड़ लिये जानेसे वह दानव हिल-डुल नहीं पाता था। उसका गहंकार और बल दोनों नष्ट हो चुके थे। श्रीकृष्णने उसकी गर्दनको भीगे हुए कपड़ेकी भाँति निचोड़ डाल्य और एक सोंग उखाड़कर उसीसे उसपर प्रहार किया। इससे वह महादैत्य मुँहसे रक्त वमन करके मर गया। उसके घारे जानेपर गोपोंने भगवान् श्रीकृष्णकी भूरि-भूरि प्रशंसा की—ठीक उसी तरह, जैसे पूर्वकालमें बम्भसुरके घारे जानेपर देवताओंने इन्द्रकी स्तुति की थी।

कंसका अक्रूरको नन्दगाँव जानेकी आज्ञा देना और केशीका वध तथा भगवान् के पास नारदका आगमन

ब्यासजी कहते हैं—महर्षिभ्यो! जब कृष्णभक्तधारी अरिहसुर, धेनुक और प्रलम्ब आदि असुर घारे जा चुके, गोवर्धन पर्वत धारण करके श्रीकृष्णने गोकुलको बचा लिया, उनके द्वारा कालिय नगका दमन, दोनों कमलाजुन वृद्धोंका मङ्ग, पूतनाका वध और शकट-भङ्ग आदि घटनाएँ हो गयीं, तब देवर्षि नारदने कंसके पास जाकर क्रमशः सब समाचार कह सुनाया। यशोदा और देवकीके बालकोंमें जो अदला-बदली हुई, वहाँसे लेकर अष्टि-वधतककी सारी बातें नारदजीके मुखसे सुनकर छोटी बुद्धिवाले कंसने वसुदेवजीके प्रति बड़ा क्रोध किया और समस्त यादवोंको सभामें अत्यन्त रोषपूर्वक उलाहना देकर उसने यदुवंशियोंको सबको निन्दा की; फिर आगेके कर्तव्यके विषयमें इस प्रकार विचार किया—‘बलराम और कृष्ण दोनों अभी बालक हैं। अवतक वे युवा होकर अत्यन्त बलवान् नहीं हो जाते, तबतक ही मुझे

उनका वध कर डालना चाहिये। युवा होनेपर तो वे मेरे काबूके बाहर हो जायेंगे। यहाँ महापराक्रमी चाणूर और बलवान् मुष्टिक दोनों पहलवान मौजूद हैं। इनके द्वारा मध्ययुद्धमें उन दोनों मतवाले बालकोंको मरवा डालूँगा। धनुषयज्ञ नमक उत्सव देखनेके बहाने दोनोंको जयसे बुलाकर ऐसा पाल कटौगा, जिससे उनका नाश हो जाय।’

इस प्रकार सोच-विचारकर दुष्टत्वर कंसने बलराम और श्रीकृष्णको मार डालनेका निश्चय किया और बीरवार अक्रूरको बुलाकर कहा—‘दानपते! तुम मेरे प्रसन्नताके लिये एक बात मानो, यहाँसँ रक्षपर बैठकर नन्दगाँव जाओ। यहाँ वसुदेवके दो पुत्र हैं, जो मेरा विनाश करनेके लिये विष्णुके अंशसे उत्पन्न हुए हैं। वे दोनों दुष्ट बढ़ते जा रहे हैं। चतुर्दशीको धनुषयज्ञका उत्सव होनेवाला है। उसमें कुक्ती सहनेके लिये उन दोनोंको बुला लाओ। मेरे दो पहलवान चाणूर और मुष्टिक दौंव-पेचमें बहुत

कुशल है। इनके साथ यहाँ उन दोनोंकी कुश्ती हो और सब लोग देखें। वसुदेवके दोनों कपी पुत्र अभी वास्तक ही हैं। दूरपर उठते ही उन दोनोंको महत्त्वकी प्रेरणासे मेरा कुक्कुलयापीड हाथी मार डालेगा। उन दोनोंकी मारकर मैं दुष्ट बुद्धिकाले वसुदेव, नन्द और अपने पिता उग्रसेनको भी मीनके घाट उतारूँगा। तत्पश्चात् समस्त गोपोंका गोधन और सारा वैभव छीन लूँगा, क्योंकि वे दुष्ट मेरे बंधकी इच्छा करते हैं। दानपते! तुम्हारे सिया से सभी यादव बड़े दुष्ट हैं, अतः मैं क्रमशः इनका भी बंध करनेके लिये प्रयत्न करूँगा। तदनन्तर कदवोंसे रहित यह समस्त अकण्ठक राज्य अकेला ही भोगूँगा। अतः वीर! तुम मेरी प्रसन्नताके लिये बड़ा जाओ। गोपोंसे ऐसा कहना जिससे वे घबरायें भी, दही अद्विद उपहारकी वस्तुएँ लेकर शीघ्र यहाँ आये।

अक्रूरजी बड़े भगवद्भक्त थे। कंसके इस प्रकार आदेश देनेपर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। इसी बहाने काल भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन तो करूँगा, इस विचारने उन्हें उतावला बना दिया। राजा कंससे 'महुत अच्छा' कहकर अक्रूरजी सीधे ही रथपर सवार हुए और मथुरापुरीसे निकलकर नन्दगीतकी ओर चल दिये।

इधर कंसका दूत महाकली केशी कंसके ही आदेशसे वृन्दावनमें आया। श्रीकृष्णचन्द्रका बंध करना ही उसकी यात्राका उद्देश्य था। उसने घोड़ेका रुख धारण कर रखा था। वह अपनी टाँगोंसे पृथ्वीको छोड़ता, गर्दनके बालोंसे बादलोंको ढकता तथा वेगसे ठछलकर चन्द्रमा और सूर्यके भी मार्गको लौंछता हुआ गोपोंके समीप आया। उसके हीसंगके शब्दसे समस्त गोप और गोपाङ्गनाएँ भयभीत हो भगवान् गोविन्दकी शरणमें भायीं उनकी त्राहि-त्राहिकी पुकार सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण असंपूर्ण मेघकी गर्जनाके समान गम्भीर वाणीमें इस प्रकार बोले—'गोपालगण! इसकेन्द्रसे इरनेकी अत्यव्यक्तता नहीं है। आपसो तो गोप-जातिके हैं। इस तरह भयसे व्याकुल होकर अपने वीरोचित पराक्रमका लोप क्यों कर रहे हैं। ओरे ! इस दैत्यमें रुचि

ही कितनी है, यह हमारा क्या कर लेगा। यह तो जोर-जोरसे हिनहिन्कर केवल अलाहू फैला रहा है। इसपर तो दैत्योंकी सेना सवारी करती है। यह दुष्ट अस्व स्पर्ध ही ठछल कूद मचा रहा है।' बादलोंसे घोंककर भगवान् उस दैत्यसे कहा—'ओ दुष्ट ! इधर आ। मैं कृष्ण हूँ। जैसे पिनाकधारी खीरफदने पूषाके दाँत तोड़ दिये थे, उसी तरह मैं भी तेरे सारे दाँत गिराये देता हूँ।'

घोंककर भगवान् श्रीकृष्ण केशीके सामने गये। वह दैत्य भी मुँह फैलाकर उनकी ओर दीड़ा। श्रीकृष्णने अपनी बाँहको बढ़ाकर दुष्ट केशीके मुखमें घुसेड़ दिया। उससे टकारकर केशीके सारे दाँत शुभ मेघ-छण्डोंकी भाँति छिन्न-भिन्न हो गिर गये। श्रीकृष्णकी भुजा केशीके शरीरमें बढ़ती ही चली गयी। जैसे अघटेलनापूर्वक उपेक्षा किया हुआ रींग धीरे-धीरे बढ़कर विनाशका कारण बन जाता है, वैसे ही यह भुजा भी उस दैत्यकी मृत्युका साधन बन गयी। उसके जबड़े फट गये। वह मुखसे फेन और रात फैकने लगा। नस-नाड़ियोंके बन्धन टूट जानेसे उसके दोनों जबड़े बिसल हो गये।



यह लीद और पेशाब करता हुआ घातोंपर पैर पटकने लगा। उसका सारा शरीर पसीनेसे तर हो गया और यह धड़ककर प्राणोंसे हाथ धो बैठा। उसकी स्त्री हलचल सम्पन्न हो गयी। जैसे बिजली गिरनेसे किसी वृक्षके दो टुकड़े हो जाते हैं, उसी प्रकार श्रीकृष्णकी भुजासे यह महाभयंकर असुर दो टुकड़े होकर गिर पड़ा। केसीको मारनेसे श्रीकृष्णके शरीरमें कोई धकावट नहीं हुई। वे स्वल्परूपमें हैंसते हुए वहाँ खड़े रहे। उस दैत्यके मारे जानेसे गोप और गोपियोंकी बड़ी प्रसन्नता हुई। वे श्रीकृष्णको सब ओरसे घेरकर आश्चर्यचकित हो उनकी स्तुति करने लगे। इसी समय देवर्षि नारद बड़ी उत्कचलीके साथ वहाँ आये और बादलोंमें स्थित हो गये। केसीको मारा गया देखा वे हर्षसे फूले नहीं सम्पत्ते थे।

नारदजी बोले—जगन्नाथ ! आपको बन्दबाद है। अभ्युत। आपने खेल-खेलमें ही इस केसीको मार डाला। यह देवताओंको बड़ा क्लेश दिया करता था। मधुसूदन ! आपने इस अवतारमें जो-जो महान्

कर्म किये हैं, उनसे मेरे चित्तको बड़ा आश्चर्य और संतोष हुआ है। यह अघरूपधारी दैत्य जब गर्दनके बालोंको हिलाने और हिनहिनाते हुए आकाशकी ओर देखता था, उस समय देवराज इन्द्र और सम्पूर्ण देवता भी धरती उठते थे। जनार्दन ! आपने दुष्टात्मा केसीका वध किया है, इसलिये अब लोकमें आप 'केशव' नामसे विख्यात होंगे। आपका कल्याण हो, अब मैं जलैरा और परसों केसके यहाँ आपके साथ जो युद्ध होगा, उसमें फिर सम्मिलित होऊँगा। परपीथर ! उपरसेन्कुम्भ कंस जब अपने अनुचरोंसहित यज्ञ आयत्त, उस समय पृथ्वीका भार आप बहुत कुछ उत्तर देंगे। उसके बाद भी राजाओंके साथ आपके अनेक युद्ध हमें देखनेको मिलेंगे। गोविन्द ! आपने देवताओंका बहुत बड़ा कार्य सिद्ध किया और मुझे भी बहुत आदर दिया। आपका कल्याण हो, अब मैं जाता हूँ।

यों कहकर नारदजी चले गये। सब श्रीकृष्ण अत्यन्त सौम्यभावसे ग्लासोंके साथ गोकुलमें चले आये।



अकूरका नन्दगाँवमें जाना, श्रीराम-कृष्णकी मधुरायात्रा, गोपियोंकी कथा, अकूरको यमुनामें भगवद्दर्शन, उनके द्वारा भगवान्की स्तुति, मधुरा-प्रवेश, रजक-वध और मालीपर कृपा

नारदजी कहते हैं—अकूरजी लीन चलनेवाले रथपर चढ़कर मधुरासे निकले और श्रीकृष्णके दर्शनका शोध लेकर नन्दगाँवकी ओर चल दिने। मार्गमें सोचने लगे—“अहा! मुझसे कहकर सौभाग्यशाली कोई नहीं है, क्योंकि आज मैं अंशसहित अवतारमें हुए साक्षात् भगवान् विष्णुका मुख देखूँगा आज मेरा जन्म सफल हुआ और आनेवाला प्रभात बहुत ही सुन्दर होगा। क्योंकि

यै विकसित कमलके समान नेत्रोंवाले भगवान् विष्णुके मुखका दर्शन करूँगा। जो स्मरण अधवा ध्यानमें आकर भी मनुष्यके स्मरे जाय हर सेता है, वही कमल-सदृश नेत्रोंवाला श्रीविष्णुका सुन्दर मुख आज मुझे देखनेको मिलेगा। जिससे सम्पूर्ण वेद और वेदाङ्गोंका प्रादुर्भाव हुआ है तथा जो देवताओंके लिये सर्वश्रेष्ठ आश्रय है, भगवान्के इसी मुखका आज मैं दर्शन करूँगा।” कहा, इन्द्र,

* चित्तावभास चाकूरो नस्ति धन्यस्तो मया। योऽहंमहाकूर्पोऽस्य मुखं द्रक्ष्यामि चक्रिणः॥
अ० ये कर्त्तव्यं धन्यं सुप्रभातं च मे निज। यदुद्दिष्टमप्ययं विष्णोर्दृष्टव्यं मुखम्॥
पार्थ इति वसुधं स्मृतं संकल्पयमयम्। तन्मुण्डरीकनयं विष्णोर्दृष्टव्यं मुखम्॥
विजयमुहं यतो वेदा वेदमन्त्रचित्तवर्तिनः। द्रक्ष्यामि पार्थं धन्यं देवतां चतुर्मुखम्॥

रुद्र, अश्विनोकुमार, वसु, आदित्य तथा मरुद्वज
जिनके स्वरूपको नहीं जानते, वे श्रीहरी अस्त्र
में उल्टे करके। जो सर्वज्ञ, सर्वज्ञपी, सर्वस्वज्ञ,
सम्पूर्ण भूतोंमें स्थित, अव्यय एवं व्यापी परमात्मा
हैं, वे ही आज भी नेत्रोंके अतिथि होंगे। जिन्होंने
अपनी योगशक्तिसे मत्स्य, कूर्प, घराह और
नरसिंह आदि अवतार ग्रहण किये थे, वे ही
भगवान् आज मुझसे वार्त्तालाप करेंगे। स्नेहसे
हारीर धारण करनेवाले अविनाशी जगन्नाथ इस
समय कार्यवशा राजमें निवास करनेके लिये
मानवरूप धारण किये हुए हैं। जो भगवान् अनन्त
अपने मत्स्यरूप इस पृथ्वीको धारण करते हैं, वे
ही जगत्का हित करनेके लिये अवतीर्ण हो आज
मुझे 'अक्रूर' कहकर बुलावेंगे। पिता, पुत्र, सुहृद,
भ्राता, माता और बन्धु-बान्धवकृपिणी जिनकी
मायाको यह जगत् हटा नहीं पाता, उन भगवान्को
धारधार नमस्कार है। जिनको हृदयमें स्थापित
करके मनुष्य इस योगमायारूप फैली हुई अधिष्ठाता
हो जाते हैं, उन विद्यास्वरूप परमात्माको नमस्कार
है जिन्हें यज्ञपरायण मनुष्य यज्ञपुरुष, योगवृद्ध-
जगन्नाथ और वेदान्तवेत्ता सर्वज्ञपी श्रीविष्णु
कहते हैं, उनको मेरा नमस्कार है। जो सम्पूर्ण
जगत्के निवासस्थान हैं, जिनमें सब और असब
दोनों प्रतिष्ठित हैं, वे भगवान् अपने सहज
सत्त्वगुणसे मुझपर प्रसन्न हों। जिनका स्वरण

करनेपर मनुष्य पूर्ण कल्याणका भागी होता है,
उन पुरुषप्रेष्ठ श्रीहरिकी मैं सदाके लिये शरण
लेता हूँ।*

अक्रूरका हृदय भक्तिसे चिन्तित हो रहा था। वे
इस प्रकार श्रीविष्णुका चिन्तन करते हुए कुछ
दिन रहते नन्दगोकर्में पहुँच गये। वहाँ उन्होंने
भगवान् श्रीकृष्णको उस स्थानपर देखा, जहाँ तौर्प
दुड़ी जा रही थी। वे बछड़ोंके बीचमें खड़े थे।
उनका श्रीअङ्ग विकसित नीलकमलकी आभासे
सुशोभित था। नेत्र खिले हुए कमलकी शोभा
धारण करते थे। कस-स्थलमें श्रीवत्सका चिह्न
दिखायी देता था। बड़ी-बड़ी बहिन, चौड़ी और
उभरी हुई छाती, कैसी नरसिका, विलसयुक्त
पुसकानसे सुशोभित मुख, लाल-लाल नख,
हारीरपर पीतम्बर, गलेमें जंगली पुष्पोंके हार,
हाथमें निग्ध नील सता और कानोंमें ह्वेत
कमलपुष्पके आभूषण—यही उनकी झोंकी थी।
उनके दोनों चरण भूमिपर विराजमान थे। श्रीकृष्णका
दर्शन करनेके बाद अक्रूरजीकी दृष्टि यदुनन्दन
बलभद्रजीपर पड़ी, जो हंस, चन्द्रमा और कुन्दके
सम्मान गौरवर्ण थे। उनके हारीरपर नील वस्त्र
रोन्ना जा रहे थे। उनकी कद कैसी और बहिन
बड़ी-बड़ी थीं। मुख प्रफुल्ल कमल-सा सुशोभित
था। नीलाम्बरधारी गौराङ्ग बलभद्रजी ऐसे जान
पड़ते थे, मान्ने येचमालासे धिरा हुआ दूसरा

* न ज्ञान नेत्ररुद्रविद्यामादित्यमरुद्वजः । भक्त्य स्वर्क्य जनन्ति स्मृतास्तस्य स मे हरिः ॥
सर्वात्मा सर्वग- सर्वः सर्वभूतेषु संस्थितः । सो भक्त्यस्म्यन्ते व्यापी स वीर्यतो महाऽद्य ह ॥
मत्स्यकूर्पवराणांष्टैः सिंहरूपशशिभिः स्थितम् । चकार योगतो योग स योगश्लाघयिष्यति ॥
संश्रितं च जगत्स्वामी कार्यजाले जने स्थितिम् । कर्तुं मनुष्यकर्म प्राप्तः स्नेहच्छादेहभृगव्ययः ॥
सोऽपन्तः पृथिवीं धत्ते शिखरस्थितिसंस्थितम् । सोऽकलीर्णं जगत्पथं बालकुरेति वक्ष्यति ॥
पितृमन्त्रमुहृद्भ्रातृमन्त्रबन्धुमनोमिषम् । कन्यायां नालमुहृद् जगत्पथं नवी नमः ॥
तारन्त्रविद्यां पितृत्वं हृदि यस्मिन्निवेदिते । योगकर्मणिमां मर्षास्तस्य विद्यात्वे नमः ॥
बन्धुभिर्वज्रपुरुषे कसुदेवह सख्यतः । वेदान्तवर्णद्वयविष्णुः प्रोच्यते सो नतोऽस्मि तम् ॥
तस्य यत्र जगद्भक्ति भवन्ते च प्रविष्टितम् । सदासत्त्वं स तत्त्वेन भव्यसी यत्तु सौम्यताम् ॥
स्मृते सकसकस्त्यजभक्त्यं यत्र बाधतेः पुरुषप्रकृतं निर्वर्णं राजाभिः सर्वं हरिम् ॥



कैलास पर्वत हो।" उन दोनों भाइयोंको देखकर महायुद्धिमान् अक्रूरजीका मुखकमल प्रसन्नतासे खिल उठा। सम्पूर्ण सरोवरमें रोमञ्च हो आया और वे मन-ही-मन इस प्रकार कहने लगे—“इन दोनों बन्धुओंके रूपमें यहाँ साक्षात् भगवान् विष्णु विराज रहे हैं। ये ही वह परम धाम और ये ही वह परम पद हैं। अन्तर्मुर्ति भगवान् आज ही मेरे हाथका स्पर्श करके उसे शोभासम्पन्न बनावेंगे। इन्हीं भगवान्की अँगुलियोंके स्पर्शसे सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जानेके कारण मनुष्य उत्तमात्तम सिद्धि प्राप्त करते हैं तथा अश्विनीकुमार, रुद्र, इन्द्र और वसु आदि देवता प्रसन्न होकर उन्हें उत्तम वर देते हैं। इन्हीं भगवान्ने दैत्यराजकी सेनाका विनाश

करके दैत्यपत्नियोंकी आँखोंका काजल भी छीन लिया। शम्भु बलिने जिनके हाथमें संकल्पका जल छोड़कर रसातलमें रहते हुए भी मनोहर स्वर्गीय भोग प्राप्त कर लिये तथा देवराज इन्द्रने जिनकी आराधना करके एक धन्वन्तरके लिये देवलोकका अखण्ड संप्राप्य प्राप्त किया, ये ही भगवान् कंसके साथ रहनेके कारण निर्दोष होते हुए भी दोषके पात्र बने हुए मुझ अक्रूरका क्या आदर न करेंगे? जो साधु पुरुषोंसे बहिष्कृत हैं उनके जन्मको धिक्कार है। भगवान् श्रीहरि ज्ञानस्वरूप हैं। परिपूर्ण सत्त्वके पुत्र हैं। सब प्रकारके दोषोंसे रहित हैं, अव्यक्त हैं और समस्त प्राणियोंके हृदयमें विराजमान हैं। जगत्में कौन-सी ऐसी वस्तु है, जो उन्हें ज्ञात न हो। अतः मैं भक्तिसे विनोद होकर आदि यज्य और अन्तसे रहित, अजन्म, पुरुषोत्तम, भगवान् विष्णुके अंशावतार तथा ईश्वरोंके भी ईश्वर श्रीकृष्णकी शरणमें जातू हूँ।

इस प्रकार विचार करते हुए वे भगवान् श्रीकृष्णके पास गये और ‘मैं यदुवंशी अक्रूर हूँ’— यों कहकर उनके चरणोंमें पड़ गये। भगवान्ने भी ध्वज, चक्र और कमल आदि चिह्नोंसे सुशोभित अपने करकमलद्वारा उनके स्पर्श किया और उन्हें खींचकर प्रेमपूर्वक गाढ़ आलिंगन दिया फिर क्लृप्त और श्रीकृष्णने उनसे बातचीत की और उन्हें साथ से अपने भवनमें बसे गये। परस्पर प्रणमन आदिके बाद अक्रूरने दोनों भाइयोंके साथ बैठकर भोजन किया और यथायोग्य उनसे सब बातें निवेदन कीं। दुरात्मा दानव कंसने वसुदेव

* स ददर्श तदा तत्र कृष्णमटोहने गवाम् । कसमप्यनर्थं पुत्रांशोत्पत्तिलक्ष्यविधिम् ॥
 प्रकुम्भपद्मचार्त्तं श्रीकृष्णोद्भवससम् । प्रत्यम्बकामुपवसतुस्त्रोऽव्ययमुपसम् ॥
 सक्लिन्नसस्मिताभार्त्तं विभ्राज मुखपङ्कजम् । वृद्धरकरं पद्मं धारण्या सुप्रतिष्ठितम् ॥
 विभ्राजं यामसी पीते चन्दपुष्पविभूषणम् । सान्द्रनीलसख्यद्वयं सितम्भोजवत्सलकम् ॥
 हंसन्दुकन्दभक्तं गोमयसचरं द्विजम् । कथयन् क्लृप्तं च ददर्श यदुन्दनम् ॥
 प्राग्गुणुद्गपाहं च विक्लवसिमुखपङ्कजम् । येषामात्मनिर्वृत्तं कैलाससिद्धिवापारम् ॥

और देवकीको जिस प्रकार धमकाया था, उग्रसेनके प्रति जैसा उसका बर्ताव था और जिस ठट्ठेस्वसे कंसने उन्हें ब्रजमें भेजा था, वह सब विस्तारके साथ कह सुनाया। सुनकर भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'वे सब बातें मुझे ज्ञात हैं। इस विषयमें जो ठपित कर्तव्य है, उसे मैं करूँगा। आप अन्यथा विचार न करें। कंसको मार गया ही समझें। मैं बलरामजीसहित कल आपके साथ मधुरा चलाँगा। बड़े-बड़े गोप भी धैर्यकी बहुत-सी सामग्री लेकर आयेंगे, बीर! आप किसी प्रकारको चिन्ता न करें। आरामसे यहाँ रत मितायें। अजबसे तीन रात्रके भीतर ही मैं अनुवर्तित्वहित कंसको मार डालूँगा।'।

तदनन्तर गोपोंको मधुरा चलनेका आदेश दे अकूर, श्रीकृष्ण तथा बलरामजी नन्दके घरमें सोये। सबेर होनेपर महाबली राम और श्रीकृष्ण अकूरके साथ मधुरा जानेको तैयार हो गये, वह देख गोपियोंके नेत्रोंमें आँसू भर आये। वे चिन्तासे इतनी दुर्बल हो गयीं कि उनके कंगन और बाजूबंद खिसक-खिसककर गिरने लगे। वे दुःखसे पीड़ित हो लंबी साँस लेती हुई एक दूसरीसे कहने लगी—'सखी! गोविन्द मधुरा जाते हैं। वहाँ जाकर वे इस गोकुलमें फिर क्यों आने लगे। वहाँ तो अपने काराँड्याग नगरकी स्त्रियोंके मधुर वार्तास्वाक्छ रस पान करेंगे। नगरकी नहरियोंके विलासपूर्ण वृक्षोंमें जब इनका मन आसक्त हो जायगा, तब फिर गाँवोंकी रहनेवाली इन गँवार गोप-गोपियोंकी ओर उनका झुकाव कैसे हो सकेगा। हाय ! जीहरी सम्पूर्ण ब्रजके प्राण थे। इन्हें छीनकर दुरात्मा और निर्दयी विधाताने हम गोपियोंपर निष्ठुर प्रहार किया है। नगरकी युवतियाँ मकभरी मुष्कानके साथ बात करती हैं। उनकी गतिमें लालित्य है। वे कटाक्षपूर्ण नेत्रोंसे देखती हैं। अतः वे हमसंगोंके पास क्यों आने लगे यह देखो, गोविन्द रथपर बैठकर

मधुरा जाते हैं। कूर अकूरने उन्हें चकमा दिया है। क्या इस निर्दयीकी प्रेमीजननोंकी मानसिक वेदनाका अनुभव नहीं है, जो यह हमारे बधननन्द गोविन्दको अन्यत्र स्थिते जाता है? गोविन्द भी आज अत्यन्त निष्ठुर हो गये हैं। देखो न, बलरामजीके साथ रथपर बैठकर चले जा रहे हैं। अरी ! इन्हें रोक्नेमें शीघ्रता करो। वैं! क्या कहती हो—गुरुजनोंके सम्मने हमारा कुछ बोलना ठपित नहीं है ? अरी ! हम तो यों ही विरहकी आगमें जल रही हैं। अक ये गुरुजन हमारा क्या कर लेंगे। हाय ! ये नन्दका आदि भी जानेको उद्यत हैं। कोई भी श्रीकृष्णको लौटनेका ठपेग नहीं करता। आज मधुरावाभिनी युवतियोंके नेत्ररन्ध्रे भ्रमर श्रीकृष्णके मुक्तकमलका मकरन्द चान करेंगे। वे लोग धन्य हैं, जो मार्गमें पुलकित शरीरसे घेरोक-टोक श्रीकृष्णका दर्शन करेंगे। अकज गोविन्दका दर्शन पाकर मधुराकी स्त्रियोंके नेत्रोंमें मय्य आनन्द छा जायगा।



अक उन भाग्यशालिनी युवतियोंने कौन सा शुभ स्वप्न देखा है, जो वे अपने विस्तृत एवं कमनीय नेत्रोंसे श्रीकृष्णकी रूप-माधुरीका पान करेंगी।

अहो! विधाताको किञ्चिन्मात्र भी दया नहीं है। उसने हम गोपियोंको बहुत बड़ी निधिका दर्शन कराकर हमारी अँखें ही निकाल लीं। हमारे प्रति श्रीकृष्णका अनुराग ज्यों-ज्यों शिथिल होता जाता है, त्यों-ही-त्यों हमारे हाथोंकि कङ्कण भी सीझरपूर्वक ढीले होते जा रहे हैं। अक्रूरका हृदय बहुत ही क्रूर है। वह घोड़ोंकी बहुत जल्दी-जल्दी हाँकता है। हम-जैसी आर्त स्त्रियोंपर उसे छोड़ किसको दया नहीं आयेगी। अरी ! वह देखो, श्रीकृष्णके रथकी धूल बहुत ऊँचेपर दिखायी देती है। हाथ ! अब वह धूल भी नहीं दिखायी देती। अब वह भगवान्‌को बहुत दूर ले गयी।' इस प्रकार गोपियोंकि अत्यन्त अनुरागपूर्वक देखते-देखते बलरामसहित श्रीकृष्णने ब्रजके उस भूभागका परिचय किया। रथके घोड़े बहुत तेज चलनेवाले थे, अतः बलराम, अक्रूर और श्रीकृष्ण दोपहर होते-होते यमुनके समीपवर्ती यमुना-तटपर पहुँच गये।

तब अक्रूरने श्रीकृष्णसे कहा—'आप दोनों भाई यहीं रथपर बैठे रहें तबतक मैं यमुनाके जलमें नैत्यिक स्नान और पूजन कर लेता हूँ।' श्रीकृष्णने 'अहुत अभधा' कहकर उनकी बात मान ली। परम बुद्धिमान् अक्रूरने यमुनाके जलमें प्रवेश करके स्नान और आचमन किया। तत्पश्चात् वे परब्रह्मका चिन्तन करने लगे। उन्हें जलके भीतर सहस्रों फणोंसे युक्त बलभद्री दिखायी दिये। उनकी शरीर कुन्दके समान गौर और नेत्र कमलपत्रके समान विशाल थे। वासुकि तथा द्विम्ब आदि बड़े-बड़े नाग उन्हें घेरे हुए स्तुति कर रहे थे। गलेमें सुगन्धित वनमाला उनकी शोभा बढ़ा रही थी। वे दो नील वस्त्र और सुन्दर कर्णभूषण धारण किये मनोहर गेंडुली मूँरे जलके भीतर विराजमान थे। उनकी गोदमें भगवान् श्रीकृष्ण दृष्टिगोचर हुए, जो सबल मेघके समान रुक्म, किञ्चित् तालिमायुक्त विशाल नेत्रोंवाले, चतुर्भुज, सुन्दर और चक्र आदि आयुधोंसे विभूषित थे।

उन्होंने दो पीताम्बर धारण कर रखे थे। विचित्र-विचित्र हार उनकी शोभा बढ़ाते थे। इन्द्रधनुष और विद्युन्मालासे विभूषित मेघकी भाँति उनकी विचित्र शोभा हो रही थी। वक्षःस्थलमें श्रीवत्सच्छिह्न सुशोभित था। भुजओंमें भुजबन्ध और मस्तकपर मुकुट देदीप्यमान था। कर्णोंमें कमलपुष्प कुण्डलका कण्ठ देव था। सनन्दन आदि पापरहित सिद्ध योगी नसिकाके अग्रभागपर दृष्टि जमाये मन-ही-मन भगवान्‌का ध्यान करते थे। बलराम और श्रीकृष्णको वहाँ पहचानकर अक्रूर बड़े आश्चर्यमें पड़े। वे सोचने लगे, 'दोनों भाई इतना शीघ्र यहाँ कैसे आ गये ?' अक्रूरने कुछ बोलना चाहा, किन्तु श्रीकृष्णने उनकी वाणीको स्तम्भित कर दिया। तब वे जलसे निकलकर रथके पास आये, किन्तु वहाँ बलराम और श्रीकृष्ण पहलेकी ही भाँति बैठे दिखायी दिये। तब उन्होंने पुनः जलमें डुबकी लगायी। भीतर वही दृश्य दिखायी दिया। गन्धर्व



मुनि, सिद्ध तथा बड़े-बड़े नाग श्रीकृष्ण और बलरामकी स्तुति करते थे। यह सब देखकर दानपति अक्रूरको वास्तविक रहस्यका पता लग

गया। वे पूर्ण विज्ञानमय भगवान् अच्युतकी स्तुति करने लगे—

‘जिनका सम्प्रमाण स्वरूप है, यहिमा अधित्य है, वो सर्वत्र व्यापक हैं, जो कारणरूपसे एक, किंतु कार्यरूपसे अनेक हैं, उन परमात्माको आरंभार नमस्कार है। अचिन्त्य परमेश्वर। आप शब्द (वैदिक मन्त्र)—रूप और इति:स्वरूप हैं। आपको नमस्कार है। प्रभो! आप प्रकृतिसे परे विज्ञानस्वरूप हैं। आपको नमस्कार है। आप ही भूतात्मा, इन्द्रियात्मा, प्रधानात्मा, बोधात्मा और परमात्मा हैं। इस प्रकार एक होते हुए भी आप पाँच प्रकारसे स्थित हैं: सर्वधर्मात्मन् महेश्वर! आप ही शर और अक्षर हैं। मुझपर प्रसाद होइये, ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आदि नामोंसे आपका ही वर्णन किया जाता है। भगवन्! आपके स्वरूप, प्रयोजन और नाम आदि सभी अनिर्वचनीय हैं। आप परमेश्वरको मेरा नमस्कार है। नाथ। जहाँ जन्म और जाति आदि कल्पनाओंका अस्तित्व नहीं है, वह नित्य, अविकारी और अजन्म परब्रह्म आप ही हैं। कल्पनके बिना—कोई व्यावहारिक काम रखे बिना किसी भी पदार्थका ज्ञान नहीं होता। इसीलिये कृष्ण, अच्युत, अनन्त और विष्णु आदि नामोंसे आपकी स्तुति की जाती है। सर्वात्मन्! आप अजन्मा परमेश्वर हैं। जगत्में कितनी कल्पनएँ हैं, उन सबके द्वारा आपका ही बोध होता है। आप ही देवता हैं, सम्पूर्ण जगत् ही तथा विश्वरूप हैं। विश्वात्मन्! आप विकार और भेदसे सर्वत्र रहित हैं, सम्पूर्ण विश्वमें आपके सिवा दूसरी कोई वस्तु नहीं है। आप ही ब्रह्मा, महादेवजी, भूय, धाता, विधाता, इन्द्र, वायु, अग्नि, वरुण, कुबेर और कम हैं। एकमात्र आप ही भिन्न-भिन्न रूप धारण करके अपनी विभिन्न शक्तियोंसे जगत्की रक्षा करते हैं। आप ही विश्वकी सृष्टि करते हैं और आप ही प्रत्येकजलीन सुख होकर सम्पूर्ण जगत्का संभर करते हैं। अज! यह गुणमय प्रपञ्च आपका ही

स्वरूप है। सत्स्वरूप परमेश्वरका आवक जो अक्षररूप अक्षर है, वह आपकी उत्कृष्ट स्वरूप है। यही सत्, अस्त और ज्ञानात्मा है। आपके उस स्वरूपको मेरा प्रणाम है। भगवन्! वास्तुदेवरूपमें आपको नमस्कार है। संकर्षण-संज्ञा धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। प्रद्युम्न कहलानेवाले आपको नमस्कार है और अनिरुद्ध नामसे पुकारे जानेवाले आपको नमस्कार है।’

इस प्रकार जलके भीतर यदुवंशी अक्षरने सर्वेश्वर श्रीकृष्णकी स्तुति करके मानसिक धूप और पुष्पोंद्वारा उनका पूजन किया। अन्य विषयोंका चिन्तन छोड़कर मनको उन ब्रह्मभूत परमात्मामें लगा दीर्घकालतक ध्यान किया। तत्पश्चात् समाधिसे विरत हो अपनेको कुतार्थ मानते हुए यमुना-जलमें निकलकर वे पुनः रथके समीप आये। आनेपर उन्होंने बलराम और श्रीकृष्णको पूर्ववत् बैठे देखा। अक्षरजीके नेत्रोंसे विश्वमयका आभास मिलता था। वह देख श्रीकृष्णने उनसे कहा—

‘अक्षरजी! अपने यमुनाके जलमें कौन-सी आश्चर्यकी बात देखी है, जो आपके नेत्र आश्चर्यचकित दिखायी देते हैं?’

अक्षर बोले—अच्युत। जलके भीतर मैंने जो आश्चर्य देखा है, उसे यही अपने सामने मूर्तिमान् बैठ देखता हूँ। वह परम आश्चर्यमय जगत् भिन्न मङ्गात्मका स्वरूप है, उन्हीं आश्चर्यस्वरूप आपके साथ मेरा समागम हुआ है। मधुसूदन! अब इस विषयमें अधिक कहनेकी क्या आवश्यकता। चलिए, मधुर चलें। मैं कमसे डरता हूँ। जो दूसरोंके टुकड़ोंपर जीवन-निर्वाह करनेवाले हैं, उन मनुष्योंके जन्मको धिक्कार है।

यों कहकर अक्षरने घोड़ोंको हाँक दिया और सत्यव्रतके समय मधुरापुरीमें जा पहुँचे। मधुराको देखकर अक्षरने क्लृप्त और श्रीकृष्णसे कहा—

‘महापराक्रमी वीरो! अब आपसोंग पैदल जाइये। रथसे मैं अकेला ही जाऊँगा, मधुरामें पहुँचकर

आप दोनों वसुदेवजीके घर न जायें, क्योंकि आपके ही कारण वह बेचार मूढ़ा कंसके द्वारा सदा अपमानित होता है।'

यों कहकर अक्रूर मधुरापुरीमें चले गये। राम और श्रीकृष्ण भी पुरीमें पहुँचकर राजमार्गपर आ गये। उस समय नगरके सभी स्त्री-पुरुष आनन्दपूर्ण नेत्रोंसे उन्हें निहारते थे। वे दोनों वीर तरुण हार्थियोंकी भाँति लोसापूर्वक चल रहे थे। घूमते-घूमते इन दोनों भाइयोंने कपड़ा रँगनेवाले एक रजकको देखा। उससे अपने शरीरके अनुरूप सुन्दर बल्ल भंगि। वह राजा कंसका रजक था। राजाकी कृपा पाकर उसका अहंकार बहुत बढ़ गया था। उसने बलराम और श्रीकृष्णके प्रति लसकारकर अनेक आक्षेपयुक्त कटुवचन कहे। उस दुरात्मक रजकका कर्ताव्य देख श्रीकृष्ण कुपित हो उठे। उन्होंने वण्डसे मारकर उस रजकका घस्तक पृथ्वीपर गिरा दिया। उसे मारकर राम और कृष्णने उसके सारे वस्त्र छीन लिये और अपनी रुधिरके अनुसार पीले एवं नीले वस्त्र धारण करके वे बड़ी प्रसन्नताके साथ मासीके घर गये। उन्हें देखते ही भालोके नेत्र आनन्दसे खिल उठे। वह अत्यन्त विस्मित होकर मन ही-मन सोचने लगा 'ये दोनों किसके पुत्र हैं? कहाँसे आये हैं? एकके अङ्गपर पीताम्बर शोभ पाता है तो दूसरेके शरीरपर नीलाम्बर। दोनों ही अत्यन्त मनोहर दिखायी देते हैं।' उन्हें देखकर मासीने सम्पन्ना—दो देवता इस भूतलपर उतरे हैं। उन दोनों भाइयोंके मुखकमल प्रफुल्लित दिखायी देते थे। मासीने दोनों हाथ पृथ्वीपर फैलाकर सिरसे पृथ्वीका स्पर्श करते हुए साहाय्य प्रणाम किया और कहा—'नाथ! आप दोनों बड़ी कृपा करके

मेरे घर पधारे हैं! मैं धन्य हो गया। अब पुण्यसे आप दोनोंकी पूजा करूँगा।' यों कहकर उसने रुधिरके अनुसार फूल बँट किये। 'ये सुन्दर हैं, ये मनोहर हैं,' यों कहते हुए उसने उनके मनमें फूलोंके प्रति आकर्षण पैदा किया और जो-जो उन्हें पसंद आया, वह सब दिया। प्रायः सभी फूल मनोहर, निर्मल और सुगन्धित थे। श्रीकृष्णने भी



प्रसन्न होकर भालोको घर दिया— 'भद्र! मेरे अधीन रहनेवाली लक्ष्मी तेरा कभी त्याग न करेगी। सीम्य तेरे कल और धनकी कभी हानि न होगी। जबतक यह पृथ्वी और सूर्य रहेंगे, जबतक तेरी पुत्र-पौत्र आदि वंश परम्परा कायम रहेगी। तू बहुत-से भोग भोगकर अन्तमें मेरी कृपासे मुझे स्मरण करते हुए दिव्य लोक प्राप्त करेगा। भद्र! तेरा मन हर समय धर्ममें लग्न रहेगा।'

यों कहकर कसरामसहित श्रीकृष्ण मासीद्वारा पूजित हो उसके घरसे चले आये।

कुब्जापर कृपा, कुवलयपीड, चाणूर, मुष्टिक, तोशल और कंसका वध तथा वसुदेवद्वारा भगवान्का स्तवन

आसजी कहते हैं—तदनन्तर श्रीकृष्णने कुब्जकापर एक कुब्जा स्त्री देखी, जो अङ्गरागसे भर हुआ पत्र लिये आ रही थी। उसे देखकर श्रीकृष्णने पूछा—‘कमललोचने! तू यह अङ्गराग किसके पास लिये जाती है? सब-सब क्या?’ उनकी बात सुनकर वह श्रीहरिके प्रति अनुरक्त हो गयी और बोली—‘प्रिय ! क्या आप नहीं जानते, कंसने मुझे अङ्गराग लगानेका कार्य सौंप रखा है? मैं अनेककालके नामसे विख्यात हूँ। ये सिधा दूसरे किसीका भिन्न हुआ चन्दन कंसको पसंद नहीं आता।’

श्रीकृष्ण बोले—सुमुख ! यह सुन्दर सुगन्धयुक्त अनुलेपन तो राजाके ही योग्य है। हमारे शरीरके योग्य भी कोई अनुलोपन हो तो दो।

यह सुनकर कुब्जादे आदरपूर्वक कहा—‘सीजिये न।’ फिर उन दोनोंको उनके शरीरके अनुरूप चन्दन आदि अनुलेपन प्रदान किया। कुब्जाने ही उनके कपोल आदि अङ्गोंमें पञ्चभङ्गीरचनापूर्वक अङ्गराग लगाया। इससे ये दोनों पुरुषरत्न इन्द्रधनुषके साथ शोभा देनेवाले श्वेत-रूपम घेघोंके समान सुशोभित हुए। तत्पश्चात् उल्लापन-विधि (कुब्जत्वं दूर करनेकी क्रिया) के जाननेवाले श्रीकृष्णने उसकी ठोड़ीमें अपने हाथकी दो उँगलियाँ लगा दीं और उसे उचकाकर ऊपरकी ओर खींचा। साथ ही उसके पैर अपने दोनों पैरोंसे दबा लिये। इस प्रकार केशवने उसके शरीरको सौंभ कर दिया फिर तो वह युक्तियोंमें श्रेष्ठ परम सुन्दरी बन गयी और प्रेमसे शिथिल कान्हीमें बोली—‘प्यारे! आप मेरे घरमें पधारें।’ ‘अच्छा, तुम्हारे घर आऊँगा’ यों कहकर श्रीकृष्णने कुब्जाको बिदा किया और बलरामजीके मुँहकी ओर देखकर वे जोरसे हँसे। तदनन्तर पत्र-रचनपूर्वक अङ्गराग लगाये और पीताम्बर तथा नीलाम्बर धारण किये

विचित्र पुष्पोंके झारले सुशोभित वे दोनों भाई धनुषस्त्राणमें गये। वहाँ उन्होंने रक्षकोंसे धनुषके विषयमें पूछा और उनके बतलानेपर उसे उठाकर चढ़ाया। बलपूर्वक चढ़ाते ही वह धनुष टूट गया। उससे बड़े जोरका शब्द हुआ, जिससे सबी मधुरपुरी गूँज उठी। धनुष टूटनेपर रक्षकोंने उनपर आक्रमण किया। तब वे रक्षक-सेनाका संहार करके धनुषरत्नासे बाहर निकले कंसको अक्रूरके लीटनेका हास मालूम हो चुका था। फिर धनुष टूटनेका शब्द सुनकर उसने चाणूर और मुष्टिकसे कहा, ‘दोनों गोपपुत्र यहाँ आ गये हैं। उन्हें मेरे स्वप्ने मलयुद्ध करके तुम दोनों अवश्य मार डालना, क्योंकि वे दोनों मेरे प्राण लेनेवाले हैं। यदि युद्धमें उन्हें मारकर तुमने मुझे संतुष्ट किया तो मैं तुम्हारी जो-जो इच्छा होगी, वह सब पूर्ण करूँगा। वे दोनों मेरे शत्रु हैं, अतः न्यायसे अथवा अन्यायसे उनको अवश्य मार डालो। उनके मारे जानेपर इस राज्यपर मेरा और तुम्हारा समान अधिकार होगा।’

इस प्रकार उन दोनों मामलोंको आदेश दे कंसने हाथीबाणको मुलापा और ठण्ड स्वरसे कहा—‘महावत! तू कुवलयपीड हाथीको मतवाला करके रङ्गभूमिके द्वारपर खड़ा रखना। जब दोनों गोपपुत्र मलयुद्धके लिये आयें, तब उन्हें द्वारपर ही मरवा डालना।’ महावतको यह आज्ञा दे कंसने देखा, रङ्गभूमिमें सब ओर धधाधोग्य मञ्च लग गये हैं, तब वह सूर्योदय होनेकी प्रतीक्षा करने लगा। उसकी भृत्य समीप आ गयी थी। स्नेहा होनेपर सब मञ्चोंपर नागरिकराग आ बिराजे। जो मञ्च केवल राजाओंके लिये बिल्के थे, वहाँ भिन्न-भिन्न स्थानोंके राजा अपने सेवकोंसहित आ बैठे। जो लोग मल्लोंकी जोड़का चुनाव करनेवाले

थे, उन्हें कंसने रङ्गभूमिके बीचमें अपने पास ही बिठाया। वह स्वयं भी बहुत ऊँचे मङ्गपर विराजमान था। रतिवासकी स्त्रियोंके लिये अलग मङ्ग लगे थे और नगरकी स्त्रियोंके लिये अलग। मन्द आदि गोप दूसरे दूसरे मङ्गोंपर बैठे थे। अङ्गूर और वसुदेव मङ्गोंके किन्हीं छड़े थे। बेचारी देवकी नगरकी स्त्रियोंमें छड़ी थी। वह सोचती थी, अन्तकालमें भी तो एक बार पुत्रका मुँह देख लूँ।

इसी समय रङ्गभूमिमें तुरही आदि बाजे बज उठे। चाणूर उछलने और मुष्टिक ताल ठोंकने लगा। लोगोंने हाहाकार मचा गया। बलराम और श्रीकृष्ण रङ्गभूमिके द्वारपर आये और महात्मसे प्रेरित कुवलयापीड हाथीको मारकर भीतर घुस गये। उस समय उनके अङ्गोंमें हाथीका मूँद और रक्त लगे हुए थे। उसके बड़े-बड़े दाँतोंको ही उन्होंने अपना आवुध बना लिया था। वे दोनों भाई गर्वपूर्ण लीलामयी धितवनसे निहारते हुए उस महान् रङ्गोत्सवमें इस प्रकार प्रविष्ट हुए, मानो पुर्णोंके झुंडमें दो सिंह आ गये हों। उनके आते ही रङ्गभूमिमें चारों ओर महान् कोलहल हुआ। सब लोग विस्मयके साथ कहने लगे, 'ये ही कृष्ण हैं, ये ही बलभद्र हैं। ये कृष्ण ये ही हैं, जिन्होंने भयंकर राक्षसी पूतनाका वध किया, छफड़े ठलठल दिये और दोनों अर्जुन वृक्षोंको उखाड़ डाला। जिन्होंने बालक होते हुए भी कालिय नागके पस्तकपर नृत्य किया, सात रातोंतक गोवर्धन पर्वतको हाथपर रखा और अरिष्ट, धेनुक तथा केशी आदि दुराचारियोंको खेल-खेलमें ही मार डाला, ये ही ये श्रीकृष्ण दिखायी देते हैं और ये जो दूसरे महाबाहु युवतियोंके मन और नयनोंको अमनन्द देते हुए लीलापूर्वक आगे आगे चल रहे हैं, ये श्रीकृष्णके बड़े भाई बलदेवजी हैं। पौराणिक रहस्यको जाननेवाले विद्वान् पुरुष इन्हें गोपालके विषयमें यों कहते हैं कि ये शोकसागरमें डूबे हुए

सद्वत्सक उद्धार करेंगे। निश्चय ही ये सबको जन्म देनेवाले सर्वभूतस्वरूप भगवान् विष्णुके अवतार हैं, जो पृथ्वीका भार उतारनेके लिये अवतीर्ण हुए हैं।'

इस प्रकार जब नगरके लोग बलराम और श्रीकृष्णका वर्णन कर रहे थे, उस समय देवकीके हृदयमें स्नेहके कारण उनके स्तनोंसे दूध बहने लगा। वसुदेवजी तो मनो समीप आयी हुई वृद्धावस्थाको छोड़कर युवा हो गये। उनकी दृष्टि अपने दोनों पुत्रोंपर ही लगी हुई थी, मानो वे ही उनके लिये महान् उत्सव हों। रतिवासकी स्त्रियाँ एकटक नेत्रोंसे श्रीकृष्ण और बलरामको निहारती थीं। नगरकी स्त्रियाँ तो उनकी ओरसे दृष्टि ही नहीं हटाती थीं।

स्त्रियाँ आपसमें कहने लगीं—'सखियों! श्रीकृष्णका मुख तो देखो, कैसी कमल-जैसी सुन्दर आँखें हैं। कुवलयापीड हाथीसे युद्ध करनेके कारण जो परिश्रम हुआ है, उससे इनके मुखपर पसीनेकी बूँदें निकल आयी हैं। इन स्वैदबिन्दुओंसे सुरोभित इनका तमज मुख ऐसा चान पड़ता है, मानो खिले हुए कमलपर ओसके कण शोभा पा रहे हों। इस मनोहर मुखकी झौकी करके आज अपना जन्म सफल कर लो। अहा! भामिनी! इस बालकके वक्षःस्थलपर तो दृष्टिपात करो। श्रीवत्स-चिह्नसे इसकी कैसी शोभा हो रही है। यह सम्पूर्ण जगत्का आश्रय है और इसकी दोनों भुजाएँ लघुओंका दर्प दलन करनेमें समर्थ हैं। अरे सखी! उधर देखो, मुष्टिक और चाणूरको उछलते-कूदते देख बलभद्रजीके मुखपर मन्द हास्यकी कैसी छटा छ रही है। हाय, सखी! देखो तो सही, ये श्रीकृष्ण चाणूरके साथ युद्ध करने जा रहे हैं। क्या इस सभामें न्यायमुक्त कर्तव्य करनेवाले बड़े-बड़े नहीं हैं? कहाँ तो अभी युवावस्थामें प्रवेष्ट करनेवाले श्रीहरिकृष्ण मुकुमार शरीर और कहाँ बज्रके समान कठोर एवं विशाल शरीरवाला यह महान् असुर, ये दोनों भाई

रङ्गभूमिमें अभी तरुण दिखायी देते हैं। इनके सभी अङ्ग कोमल हैं और चापूर आदि दैत्य मल बड़े ही भयंकर हैं। युद्धके लिये ओढ़कर चुनाच करनेवाले लोगोंने यह बहुत बड़ा अन्वय है कि वे मध्यस्थ होकर भी बालक और बलवान्के युद्धकी उपेक्षा करते हैं।'

जब मगरको स्थिरा इस प्रकार वार्तालाप कर रही थी, उसी समय भगवान् श्रीहरि अपने पदाघातसे पृथ्वीको कैपाते हुए सब लोगोंने हृदयमें हर्षातिरोककी वृष्टि करने लगे। बलभद्रजी भी ताल ठोंककर मनोहर गतिसे उछलते हुए चल रहे थे। उस समय यह पृथ्वी घन-घनपर इनके पदाघातसे विदीर्ण नहीं हुई—यही बड़े आश्चर्यकी बात थी। तदनन्तर अर्धमत्तपराक्रमी श्रीकृष्ण चापूरके साथ कुरती लड़ने लगे तथा भग्नयुद्धकी विषयमें कुशल मुष्टिक दैत्य बलदेवजीके साथ भिड़ गया। श्रीकृष्ण चापूरके साथ परस्पर भिड़कर, नीचे गिराकर, उछलकर, धूँसे और चक्के समान कोड़नीसे मारकर, पैरोंसे ठोंकते देकर तथा एक-दूसरेके शरीरको रगड़कर लड़ने लगे। इस तरह उन दोनोंमें बड़ा भारी युद्ध हुआ। उस युद्धमें यद्यपि किसी अस्त्र-शस्त्रका प्रयोग नहीं होता था तो भी वह अत्यन्त घोर एवं भयंकर था। अपने बल और प्राणशक्तिसे ही सहाय था। ज्यों-ज्यों चापूर ओठरिके साथ युद्ध करता, त्यों-ही-त्यों उसकी प्राणशक्ति घटती जाती थी। अन्वय श्रीकृष्ण भी उसके साथ स्तैलापूर्वक युद्ध करने लगे। वह परिश्रमसे थक गया था, अतः क्रोधपूर्वक श्रीकृष्णके हाथपर हाथ मार रहा था। कंसने देखा, श्रीकृष्णका बल बढ़ रहा है और चापूर भक्ता जा रहा है; कुपित होकर उसने बाने बंद कर दिये। इसी समय अकालमें देवताओंके अनेक प्रकारके बाजे बज उठे। अदृश्य भवसे छड़े हुए देवता हवमें भरकर भगवान्की स्तुति करते हुए बोले—'केशव ! चापूर दानवको मार

हालिये, गोविन्द ! आपकी चप हो।'

श्रीकृष्ण देवता चापूरके साथ खिलवाड़ करते रहे, फिर उसे मार डालनेके लिये सचेत हुए और दैत्यको उठाकर आकाशमें घुमाने लगे। युवासे समय ही उसके प्राण-पखेरू उड़ गये भगवान्ने उसे ती बार घुमकर पृथ्वीपर पटक दिया। चापूरके सी-सी टुकड़े हो गये। उसके रक्तकी धारासे अकालमें गहरी कीचड़ हो गयी। महाबली बलदेवजी भी इसी देरतक मुष्टिकके साथ लड़ते रहे। अन्तमें उन्होंने भी उस दैत्यके मस्तकपर मुष्टिका प्रहार किया और छातोमें घुटनेसे अघात करके उसे पृथ्वीपर गिरा दिया। फिर अपने शरीरसे रगड़कर उसका कचूरा निकाल दिया। उसकी जीवन-तीला समाप्त हो गयी। तत्पश्चात् श्रीकृष्णने पुनः महाबली भगवान् तोतालको बायें घूँसेकी चोटसे मार गिराया। चापूर, मुष्टिक और तोतालके मारे जानेपर शेष बलवान् भग्न छड़े हुए। उस समय श्रीकृष्ण और बलभद्र रंगभूमिमें मधुमयस्क ग्वालवासीको खूब ले हवमें भरकर उछलने-कूदने लगे। यह देख कंसकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं। उसने अपने सेवकोंको आज्ञा दी, 'इन दोनों ग्वालकोंको बलपूर्वक रङ्गशालासे बाहर निकाल दो पापी मन्दको भी पकड़कर तुरंत बेड़ियोंमें अकड़ दो। बसुदेवको भी उसकी वृद्धताका विचार न रखते हुए कठोर दण्ड देकर मार डालो। वे जो ग्वाल-बल श्रीकृष्णके साथ उछल रहे हैं, इन सबकी गीर्ँ चीन लो और इनके घरमें जो कुछ भी धन-सम्पत्ति हो, उसे लूट लो।'

कंसको इस प्रकार आदेश देते देख भगवान् मधुसूदन हैस पड़े। वे उछलकर भस्त्रपर जा चढ़े। राजाका धुकुट पृथ्वीपर गिर पड़ा। श्रीकृष्णने उसके कैल पकड़ लिये और उसे पृथ्वीपर गिराकर स्वयं भी उसीपर कूद पड़े। वे सम्पूर्ण जगत्का धार लेकर उसके ऊपर कूदे थे, इसलिये

उसके प्राण निकल गये। उग्रसेनकुमार राजा कंस संसारसे चल बसा। मरनेपर भी श्रीकृष्णने उसके मस्तकके बाल पकड़कर उसके शरीरको रङ्गभूमिमें घसीटा। कंसके पकड़े जानेपर उसका घड़ें सुनका क्रोधमें भरकर आया, किन्तु बलभद्रजीने उसे



खेलमें ही धार गिराया। मसुराका महाराज कंस श्रीकृष्णके हाथसे अवहेलनापूर्वक मारा गया, यह देखकर रङ्गभूमिमें आवे हुए सब लोग हल्लाकर करने लगे। तदनन्तर श्रीकृष्णने गीता गायकर वसुदेव और देवकीके चरण पकड़ लिये। सत्यदेवजीने भी उनका साथ दिया। वसुदेव और देवकीने श्रीकृष्णको उठाया और जन्मकालमें उन्होंने जो बातें कही थीं, उन्हें याद करके स्वयं ही प्रजाम करने लगे।

वसुदेवजी बोले—देवदेवेश्वर! आप मुझपर प्रसन्न होइये। प्रभो ! आप देवताओंमें सर्वश्रेष्ठ हैं। केशव ! आपने हम दोनोंपर कृपा करके ही हम दोनोंका उद्धार किया है। हमारी आराधनासे भगवान्ने जो दुष्टाचारी दैत्योंका वध करनेके लिये

हमारे घरमें अवतार लिया, इससे हमारा कुल ध्विन्न हो गया। सर्वात्मन्! आप ही सम्पूर्ण भूतोंके अन्त हैं—आपमें ही सबका लय होता है। आप समस्त प्राणियोंके भीतर विराजमान हैं। आपसे ही भूत और भविष्यकी प्रकृति हुई है। सर्वदेवमय अच्युत! अधिन्य परमेश्वर! यज्ञमें आपका ही यज्ञ किया जाता है। परमेश्वर ! आप ही यज्ञ हैं और आप ही यज्ञोंके कर्त्ता-धर्ता हैं। आपके प्रति परमात्मभक्तको इटाकर जो मेरा और देवकीका मन पुत्रप्नेहके कारण आपकी ओर जाता है, यह हमारे लिये अत्यन्त विडम्बना है। कहीं तो आप सम्पूर्ण भूतोंके कर्त्ता, अनादि और अनन्त परमेश्वर और कहीं हमारी इस मानवीय विडम्बना आपको 'पुत्र' कहकर पुकारना जिनके बीतार समस्त चराचर जगत् प्रतिष्ठित है, वे किसी मनुष्यसे कैसे उत्पन्न हो सकते हैं, किसी नारीके गर्भमें कैसे जन्म कर सकते हैं। जगन्नाथ! जिनसे यह सम्पूर्ण संसार उत्पन्न हुआ है, वे आप पश्याके सिवा किस मुठ्ठिसे मेरे पुत्र हो सकते हैं। परमेश्वर ! आप प्रसन्न हों। इस विश्वकी रक्षा करें। आप मेरे पुत्र नहीं हैं। ईश! ब्रह्मासे लेकर वृक्षपर्यन्त सम्पूर्ण जगत् आपसे ही उत्पन्न हुआ है। परमात्मन्! आप हमारे मनमें मोड़ क्यों उत्पन्न करते हैं। मेरी दुष्टि मायासे भ्रष्ट हो रही थी। आप मेरे पुत्र हैं, यह समझकर मैंने कंससे अत्यन्त भय किया था और शत्रुके भयसे व्याकुल होकर आपको गोकुल ले गया था। गोविन्द! यहाँ रहकर आप मेरे सौभाग्यसे इतने बड़े हुए हैं। रघु, भरद्वाज, अश्विनीकुमार और इन्द्रके द्वारा भी जो कार्य सिद्ध नहीं हो सकते, वे भी आपके द्वारा सिद्ध होते देखे गये हैं। ईश! आप सर्वशक्तिशाली हैं। अग्रजता कल्याण करनेके लिये इस भूतलपर अवतारण हुए हैं। हमारा सारा मोह अब दूर हो गया।

भगवान्की माता-पितासे भेंट, उग्रसेनका राज्याभिषेक, श्रीकृष्ण- बलरामका विद्याध्ययन, गुरुपुत्रको यमपुरसे लाना, जरासंधकी पराजय, कालियवनका संहार तथा मुचुकुन्दद्वारा भगवान्का स्तवन

व्यासजी कहते हैं—भगवान्के अलौकिक कर्म देखकर वसुदेव और देवकीको उनके भगवद्भावका ज्ञान हो गया, यह देख भगवान् श्रीहरिने यदुवंशियोंको मोहनेके लिये वैष्णवी माया फैलायी और कहा—‘माता और पिताजी! मैं तथा मेरा बलराम बहुत दिनोंसे आपके दर्शनके लिये उत्कण्ठित थे, आज दीर्घ कालके बाद हमें आपका दर्शन मिला है। जिसका समय माता-पिताकी सेवा किये बिना ही बीतता है, उस पुत्रका जीवन व्यर्थ है; यह जानीको कह देनाआशा माना गया है। साधु पुरुषोंमें उसकी चिन्ता होती है, तात! जो गुरु, देवता, ब्राह्मण और माता-पिताका पूजन-सत्कार करते हैं, उनकी कल्पना सफल होता है। पिताजी! इमलोक कंसके बल और प्रतापसे पराधीन हो गये थे, अतः हमारे द्वारा जो अपने कर्तव्यका उल्लङ्घन हुआ है, यह सब आप क्षमा करें।’

यों कहकर दोनों भाइयोंने माता-पिताको प्रणाम किया। फिर क्रमशः यदुकुलके सभी बड़े-भूढ़ोंका धारणस्पर्श किया। इस प्रकार अपने विनयपूर्ण बर्तावसे समस्त पुरुवासियोंके मनमें अपने प्रति स्नेहका संचार कर दिया। कंसके मारे जानेपर उसकी पत्नियाँ और माताएँ शोक और दुःखमें डूब गयीं तथा डमकी सब ओरसे फेरकर अनेक प्रकारसे विलाप करने लगीं। उन्हें बनरायी हुई और दुःखी देख श्रीकृष्णने स्वयं भी नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए उन सबको सन्तुष्ट रीति, उग्रसेनको कैदसे छुड़या और अपने राजपदपर अभिविक्त कर दिया राज्यासनपर बैठनेके बाद

उग्रसेनने अपने पुत्रके तथा अन्य मरे हुए व्यक्तियोंके पारलौकिक कार्य किये। मृतकोंकी और्ध्वर्द्धात्मक क्रिया करनेके पश्चात् जब उग्रसेन पुनः सिंहासन पर बैठे, तब श्रीकृष्णने उनसे कहा—‘महाराज! जो भी आवश्यक कार्य हो, उसके लिये मुझे निःसङ्ग होकर आज्ञा दें। जबतक मैं आपकी सेवामें मौजूद हूँ तबतक आप देवताओंकी भी आज्ञा दे सकते हैं, फिर इस पृथ्वीके राजाओंकी तो बात ही क्या है।’



उग्रसेनसे यों कहकर श्रीकृष्ण वायुदेवतासे बोले—‘वायो! तुम इन्द्रके पास जाओ और उनसे मेरा यह भेदना कहो ‘इन्द्र! तुम अभिमान छोड़कर महाराज उग्रसेनको सुधाग्री सभा दे दो। श्रीकृष्ण कहते हैं, यह राजाके योग्य उत्तम रत्न

है, अतः सुधर्मा सभामें यदुर्वशिष्योंका बैठना सर्वथा उचित है।' भगवान्‌के यों कहनेपर वायुदेवने शचीपति इन्द्रसे सब कुछ कहा। इन्द्रने वायुको सुधर्मा सभ दे दी। वह दिव्य सभ सब रत्नोंसे सम्पन्न थी। गोविन्दकी भुजाओंकी छत्र-छायामें रहनेवाले यादव वायुद्वारा लाये हुई उस सभका उपभोग करने लगे। श्रीकृष्ण और बलभद्र सम्पूर्ण विद्याओंके ज्ञाता तथा पूर्ण ज्ञानस्वरूप थे, तथापि शिष्य और आचार्यकी परम्पराको सुरक्षित रखनेके लिये उन्होंने काश्यपगोत्रमें उत्पन्न अचन्तीपुरनिवासि सांदीपनिजीके यहाँ विद्याभ्यस्यनके लिये यात्रा की। बलराम और श्रीकृष्ण दोनों भाई शिष्यता ग्रहण करके निरन्तर गुरु-सेवामें सगे रहते थे। उन्होंने अपने अचरन्धर सबको शिष्यके कर्तव्यका उपदेश दिया। चौंसठ दिनोंमें ही रहस्य और संग्रह (अस्त्रोंके उपसंहार)-सहित धनुर्वेदका उन्हें पूर्ण ज्ञान हो गया। यह एक अद्भुत बात थी। उनके अलौकिक और अनहोने कर्मोंको देखकर गुरुने ऐसा समझा कि साधव् सूर्य और चन्द्रमा इन दोनोंके रूपमें घेर यहाँ आये हैं। एक बार बतानेपात्रसे ही सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंका उन्हें ज्ञान हो गया। पूरी विद्या पढ़कर उन्होंने गुरुसे कहा—'भगवन्! आपको क्या गुरुदक्षिणा दी जाय? बताइये।' परम बुद्धिमान्‌ गुरुने भी उनसे अलौकिक कर्मका विचार करके अपने घरे हुए पुत्रको मौन, जो प्रभासक्षेत्रमें समुद्रके भीतर डूब गया था। तब बलराम और श्रीकृष्ण हथियार लेकर समुद्रतटपर गये और समुद्रसे बोले—'मेरे गुरुके पुत्रको ले आओ।' समुद्रने हाथ जोड़कर कहा—'भगवन्! मैंने सांदीपनिके पुत्रका अपहरण नहीं किया है। मेरे भीतर पञ्चजन नामका एक दैत्य रहता है, उसका आकार शङ्ख-रूप का है। उसीने उस बालकको पकड़ लिया था। वह दैत्य आज भी मेरे जलमें मौजूद है।' समुद्रके यों कहनेपर भगवान्‌ने जलमें प्रवेश करके पञ्चजनको

पार डाला और उसकी हड्डियोंका ठसम शङ्ख ग्रहण किया। उसका स्वर सुनकर दैत्योंका बल क्षीण होत, देवताओंकी शक्ति बढ़ती और अश्वमेध नाश होता है। तदनन्तर भगवान्‌ श्रीकृष्ण और बलराम बलरामजी कमपुरीमें गये, वहाँ उन्होंने शङ्ख-चक्र किया और वैवस्वत यमको जीतकर गुरुके पुत्रको प्राप्त कर लिया। वह बैचारा वहाँ बरककी यातना भोग रहा था। उसे पहले-जैसा लीप प्रदानकर दोनों भाइयोंने गुरुको अर्पित किया। तत्पश्चात्‌ वे दोनों बन्धु उपसेनद्वारा पालित मथुरापुरीमें चले आये। उनके आगमनसे मथुराके सभी स्त्री-पुरुष प्रसन्न हो गये।

महाबली कंसने बरासंघकी पुत्री अस्ति और प्रीतिसे विवाह किया था। बरासंघ मगधदेशका बलराम राजा था। वह बहुत बड़ी सेना साथ लेकर अपने राज्यको मारनेवाले यदुर्वशिष्योंसहित श्रीकृष्णका बंध करनेके लिये क्रोधपूर्वक आया। मथुराके पास पहुँचकर उसने उस पुरीको चारों ओरसे घेर लिया। उसके साथ तोड़स अश्वीहिणी सेना थी। बलराम और श्रीकृष्ण बोड़े-से सैनिकोंको साथ ले नगरसे बाहर निकले और उसके बलवान्‌ योद्धाओंके साथ युद्ध करने लगे। उस समय उन्हें अपने पुरातन आयुधोंको ग्रहण करनेकी इच्छा हुई। उनके धनमें ऐसा प्रकल्प आते ही सुदर्शन चक्र, शार्ङ्गधनुष, बाणोंसे भर हुआ अक्षय तूणीर और कौमोदकी गदा—ये सभी अस्त्र श्रीकृष्णके हाथमें आ गये। इसी प्रकार बलदेवजीके हाथमें भी उनके अभिष्ट अस्त्र हस्त और मुस्तल आ गये। उन दिव्य अस्त्रोंको पाकर श्रीकृष्ण और बलरामने महापराजयसंघको सेनाभक्ति युद्धमें परास्त कर दिया और फिर वे अपनी पुरीमें लौट आये। दुर्गच्छी बरासंघ परास्त होकर भी जीड़े-जी लौट गया था। अतः श्रीकृष्णने उसे हारा हुआ नहीं समझा। वह पुनः बहुत बड़ी सेनाके साथ मथुरापर बढ़ आया और बलराम तथा श्रीकृष्णसे परास्त होकर भाग खड़ा

हुआ। इस प्रकार अत्यन्त दुर्घट महाधराजने श्रीकृष्ण
आदि यदुर्वशियोंके साथ अत्यन्त कर सोहा सिखा।
परंतु प्रत्येक युद्धमें उसे यदुर्वशियोंद्वारा मुँहकी
छानी पड़ी। यद्यपि उसके पास सेना अधिक थी
तो भी छोड़ो-खड़े सेनावाले यदुर्वशियों उसे मार
भगाया। इन अनेक युद्धोंमें लड़नेपर भी जो
यदुर्वशियोंकी सेना सुखित रह गयी, यह चक्रपाणि
भगवान् विष्णुके अंशभूत श्रीकृष्णके समीपकी
महिमा थी। भगवान् श्रीकृष्ण तनुओंपर जो
अनेक प्रकारके अस्त्र चलाते थे, यह मनुष्यधर्मका
पालन करनेवाले जगदीश्वरकी सीला थी। जो
धनसे ही संसारको सृष्टि और संहार करते हैं,
उन्हें तनुपक्षका विनाश करनेमें कितने उद्यमकी
आवश्यकता है, तथापि मनुष्योंके धर्मका अनुसरण
करते हुए बलवानोंसे संधि और हीन बलवालोंके
साथ युद्ध करते थे। कहीं साम, दान और कहीं
पेदकी नीति दिखाते हुए कहीं-कहींपर दण्डनोत्तिका
भी प्रयोग करते थे और आवश्यकता होनेपर
कहीं युद्धसे पलायन भी करते थे। इस प्रकार वे
धान्य-सरीसरी चेतका अनुसरण करते थे। वास्तवमें
यह जगदीश्वरकी सीला है, जो उनकी इच्छाके
अनुसार होती है।

दक्षिणमें एक बघनोंका राजा रहता था, उसने
अपने पुत्र कास्यवधनको अपने राज्यपर अधिकार
किया और स्वयं बघमें चला गया। कास्यवधन
बलके धंदसे उन्मत्त रहता था। एक बार उसने
भारदजीसे पूछा—'पृथ्वीपर बलवान् राजा कौन-
कौन-से हैं?' भारदजीने यादवोंको बतलाया।
उसने हाथी घोड़े और रथसहित खरबों म्लेच्छोंकी
सेना साथ लेकर यादवोंपर आक्रमणकी तैयारी
की। वह प्रतिदिन अभिषिक्त गतिसे यात्रा करता
हुआ मधुरको गया। यादवोंके प्रति उसके हृदयमें
बड़ा अपर्य था। उसके आक्रमणका समाचार
आनकर श्रीकृष्णने सोचा, 'यदि कास्यवधनने अक्र
यादवोंकी सेनाका संहार कर दिया तो अवसर

देखकर भगपराज बरासंध भी आक्रमण करेगा
और यदि पहले बरासंधने ही आकर हमारी
सेनाको क्षीण कर दिया तो बलवान् कास्यवधन
बचे-बुचे सैनिकोंको मार डालेगा। अहो!
यदुर्वशियोंपर दोनों प्रकारसे संकट उपस्थित है।
अतः इससे बचनेके लिये मैं यादवोंके निमित्त
अपना दुर्घट दुर्गका निर्माण करूँगा, जहाँ रहकर
निश्चय भी युद्ध कर सकती हैं, फिर वृष्णियों और
यादवोंकी तो बात ही क्या। यदि मैं सोया अथवा
बाहर गया होऊँ तो भी उस दुर्गमें रहनेपर दुष्ट
तनु यादवोंको अधिक कष्ट न दे सकें।' यह
सोचकर गोविन्दने समुद्रसे बाढ़ घेजन भूमि
पौंगी और उसमें द्वारकापुरीका निर्माण किया।
उसमें बड़े-बड़े उद्यान लोभ्य पते थे। उसकी
बहमदोबारी बहुत ऊँची थी। सैकड़ों सरोवरोंसे
वह पुरी सुरोभित हो रही थी। उसमें सैकड़ों
परकोटे बने हुए थे। वह पुरी इन्द्रकी अमरावती-
सी मनोहर अन पड़ती थी। भगवान् श्रीकृष्णने
मधुरके निवासियोंको वहाँ पहुँचा दिया और जब
कास्यवधन समेत आ गया, तब वे स्वयं मधुर लौट
आये। मधुरके बाहर कास्यवधनकी सेनाका पड़ल
था। श्रीकृष्ण अस्त्र-तस्त्र सिन्धे बिना ही मधुरसे बाहर
निकले। कास्यवधनने उन्हें देखा और यह जानकर
कि वे ही कस्युदेव हैं, बिना अस्त्र-तस्त्रके ही
उनका खेला किया। जिन्हें बड़े-बड़े योगी अपने
मनके द्वारा भी नहीं प्राप्त कर सकते, उन्हीं
भगवान् के पकड़नेके लिये कास्यवधन उनके पीछे-
पीछे चला। उसके पीछा करनेपर श्रीकृष्ण भी एक
बहुत बड़ी गुफामें प्रवेश कर गये, जहाँ महापराक्रमी
मुक्कुन्द सोये हुए थे। कास्यवधनने भी उस गुफामें
प्रवेश करके देखा, एक मनुष्य सो रहा है। उसे
श्रीकृष्ण समझकर उसे छोटी बुद्धिवाले यवनने
समत मारो। मुक्कुन्दकी आँख खुल गयी और वह
यवन राजाकी दृष्टि पड़ते ही उनकी प्रेधानिसे
जलकर भस्म हो गया।



पूर्वकालमें राजा मुचुकुन्द देवासुर संग्राममें युद्ध करनेके लिये गये थे। वहाँ उन्होंने बड़े-बड़े दैत्योंको परास्त किया। युद्ध समाप्त होनेपर उन्हें नींद सताने लगी। तब उन्होंने देवताओंसे दोषकास्तक निशामें पड़े रहनेका वरदान माँगा। देवताओंने कहा—'राजन्। जो तुम्हें सोतेसे उठा देगा, वह तुम्हारे शरीरसे उत्पन्न हुई अग्निसे उत्पन्न जलकर भस्म हो जाएगा।' इस प्रकार चापी कालध्वजको भस्म करके गजाने मधुसूदनसे पूछा—'आप क्यों हैं?' वे बोले—'मैं चन्द्रवंशके भीतर यदुकुलमें उत्पन्न यमुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण हूँ।' यह सुनकर उन्होंने सर्वेश्वर श्रीहरिको प्रणाम करके कहा—'भगवन्। मैंने आपको पहचान लिया। आप श्रीहरिके अंशभूत साक्षात् परमेश्वर हैं। पूर्वकालमें गार्ग्यने कहा था—अर्द्धांशसे हृत्परके अन्तमें यदुकुलमें श्रीहरिका अवतार होगा। वे अवतारधारी श्रीहरि आप ही हैं, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। आप मर्त्यलोकके प्राणियोंका उपकार करनेवाले हैं। आपके इस महान् तेजको मैं नहीं सह सकता। आपकी वाणी महामेघकी गंभीर गर्जनाके समान है। देवासुर-संग्राममें दैत्यपक्षके महान् योद्धा भी

आपके जिस महान् तेजको सहन न कर सके, वही तेज आज मेरे लिये भी अस्तव्य है। संसार-संग्राममें पड़े हुए जीवके लिये एकमात्र आप ही परमाश्रय हैं, शरणार्थियोंकी पीड़ा दूर करनेवाले हैं। भगवन्! मुझपर प्रसन्न होइये और मेरे अपमानको हर लीजिये। आप ही समुद्र, पर्वत, नदी, वन, पृथ्वी, आकाश, वायु, जल अग्नि तथा पुरुष हैं। पुरुषसे भी परे जो व्यापक, जन्म आदि विकारोंसे रहित, शब्द आदिसे शुद्ध, सदा नवीन तथा वृद्धि और क्षयसे रहित इत्य है, वह भी आप ही हैं। देवता, पितर, यक्ष, गन्धर्व, उग्रस, सिद्ध, अप्सरा, यतुष, पशु, पक्षी, सर्प, मृग तथा वृक्ष—सब आपसे ही उत्पन्न हुए हैं। इस चराचर जगत्में जो कुछ भी भूत या भविष्य, मूर्त या अमूर्त अथवा स्थूल या सूक्ष्मतर वस्तु है, वह सब आपके मित्र कुछ भी नहीं है। भगवन्! इस संसारचक्रमें आध्यात्मिक आदि तीनों तारोंसे पीड़ित हो सदा भटकते हुए मुझे कभी शान्ति नहीं मिली। नाथ! मैंने भूगर्भात्से जलकी आशा करके दुःखोंको ही भुख समझकर ग्रहण किया, अतः वे सदा मेरे लिये संतापके ही कारण हुए। प्रभो! राज्य, पृथ्वी, सेना, कोष, मित्र, पुत्र, पत्नी, भूत और शब्द आदि विषय—यह सब कुछ मैंने सुख-वृद्धिसे ग्रहण किया; परंतु देवेश्वर! परिणाममें वे सब मेरे लिये संतापप्रद ही सिद्ध हुए हैं। नाथ! देवलोककी उत्तम गतिको प्राप्त देवताओंको भी जब मुझसे सहायता लेनेकी इच्छा हुई, तब वहाँ भी नित्य शान्ति कहाँ है। आप सम्पूर्ण जगत्के उद्दम-स्थान हैं। परमेश्वर! आपकी अग्रार्थना किये बिना सन्नतन सन्निव कौन पा सकता है। जिनका चित्त आपकी यात्रासे मोहित है, वे जन्म-मृत्यु और जरा आदि कष्टोंको भोगकर अन्तमें यमराजका दर्शन करते हैं। तदनन्तर सैकड़ों पाशोंमें आबद्ध हो नरकोंमें अत्यन्त दारुण दुःख भोगते हैं। यह विश्व आपका स्वल्प है। परमेश्वर! मैं अत्यन्त

विषयी हूँ और आपकी मायासे मोहित होकर भगवत्पादोंके अगाध गर्तमें भटक रहा हूँ। वही मैं आज अपार एवं स्तवन करने योग्य अथ परमेश्वरकी शरणमें आया हूँ, जिससे भिन्न दूसरा कोई परम पद नहीं है। मेरा चित्त सांसारिक श्रमसे संतप्त है, अतः मैं निर्वाणस्वरूप आप परमप्राप्त परमेश्वरकी अभिलाषा करता हूँ।

व्यासजी कहते हैं—परम बुद्धिमान् कृष्ण मुकुन्ददेव इस प्रकार स्तुति करनेपर अति अन्तर्हित, सर्वभूतेषु श्रीहरिने कहा—'नरेन्द्र! तुम अपनी इच्छाके अनुसार दिव्य लोकमें जाओ और यैरे प्रसादसे उत्तम ऐश्वर्यसे सम्पन्न होकर वहाँके दिव्य भोग भोगो। तत्पश्चात् इस पृथ्वीपर श्रेष्ठ कुलमें तुम्हारा जन्म

होगा। उस समय तुम्हें अपने पूर्वजन्मकी स्मृति बनी रहेगी और मेरी कृपासे तुम मोक्ष प्राप्त कर लोगे।' यह सुनकर राजाने जगदीश्वर भगवान् श्रीकृष्णको प्रणम किया और गुफासे निकलकर देखा तो सब मनुष्य छोटे-छोटे दिखायी दिये। तब कस्मिन्पुन आया जैन वे तपस्वी करनेके लिये गन्धमादन पर्वतपर भगवान् नर-नारायणके आश्रममें चले गये। श्रीकृष्णने भी युक्तिसे शत्रुका वध करके मधुरामें आ हाथी, घोड़े और रथसे सुतोषित उनकी सारी सेना अपने अधिकारमें कर ली तथा द्वारकामें ले जाकर राजा उग्रसेनको समर्पित कर दी। अब सम्पूर्ण यादव शत्रुओंके आक्रमणकी आशङ्कासे निर्भय हो गये।

बलरामजीकी व्रजयात्रा, श्रीकृष्णद्वारा रुक्मिणीका हरण तथा प्रद्युम्नके द्वारा शम्भरासुरका वध

व्यासजी कहते हैं—तदनन्तर बलदेवजी अपने बन्धु-बान्धवोंके दर्शनके लिये उत्कण्ठित हो नन्दगोधमें आये। उस समय सम्पूर्ण गोप और गोपियाँ उनसे पूर्ववत् मिलीं। बलरामजीने सबको आदर देते हुए सबके साथ प्रेमपूर्वक बातलाप किया। किन्हींने उनकी इच्छासे लगाया। कुछ लोगोंका उन्होंने गाढ़ आलिङ्गन किया तथा कुछ गोप-गोपियोंके साथ बैठकर उन्होंने हास्य-विनोद किया। वहाँ गोपोंने बलरामजीसे अनेकों प्रिय लगनेवाली बातें कहीं। कुछ गोपियाँ उन्हें देखकर प्रेमानन्दमें निमग्न हो गयीं तथा कुछ दूसरी गोपियोंने ईर्ष्यापूर्वक पूछा—'चक्रवर्त्त प्रेमरसके आस्वादनमें व्यस्त रहनेवाले नगरी स्त्रियोंके प्रियतम श्रीकृष्ण तो सुखसे हैं न? क्षणिक अनुप्राप्त दिखातेवाले श्यामसुन्दर क्या कभी हमारे चेष्टाओंका उपहास करते हुए नगरकी महिलाओंके लीलाङ्गक मान नहीं बढ़ाते? क्या श्रीकृष्ण कभी हमारे

गीतोंका अनुसरण करनेवाले मधुर स्वरका स्मरण करते हैं? क्या वे एक बार भी अपनी माताको देखनेके लिये वहाँ आयेंगे? अथवा उनकी बात करनेसे हमें क्या लाभ। कोई दूसरी बात करो। यदि हमारे बिना उनका काम चल सकता है तो उनके बिना हमारा भी चल जायगा। हमने उनके लिये पिता, माता, भ्राता, यति और बन्धु-बन्धव किसको नहीं छोड़ दिया। फिर भी वे कृतज्ञ न हो सके तथापि बलरामजी! क्या श्रीकृष्ण कभी वहाँ आनेके विषयमें भी आपसे बात करते हैं? दामोदर श्रीकृष्णका मन तो नगरकी स्त्रियोंमें आसक्त हो गया है। हमपर अब उनका प्रेम नहीं रहा। अतः अब हमारे लिये उनका दर्शन दुर्लभ ही जान पड़ता है।'

भगवान् श्रीकृष्णने गोपियोंका चित्त आकृष्ट कर लिखा था। वे अन्तर्भक्तियोंकी भी 'हे कृष्ण! हे दामोदर!' कहकर पुकारने और जोर-जोरसे हँसने

लगीं। तब बलरामजीने श्रीकृष्णके सौम्य, मधुर, प्रेमगर्भाभित, अभिमानशून्य और अत्यन्त मनोहर स्मित मुनकर गोपियोंको सन्तुष्ट दी। फिर वेपथुके साथ प्रेमपूर्वक हास-परिहासयुक्त मन्दोहर बागें की ओर पहलेंकी ही भीति से उनके साथ वनभूमिमें विचरण करने लगे। दो महोने वहाँ रहकर वे पुनः द्वारकाको चले गये। इनका विवाह राजा रेवताकी कन्या रेवतीसे हुआ। उसके गर्भसे बलरामजीने निराश और वल्गु नामक दो पुत्र उत्पन्न किये।

विदर्भ देशमें कुण्डिनपुर नामक एक नगर है, वहाँ राजा भीष्मक राज्य करते थे। उनके पुत्रका नाम रुक्मी और कन्यका नाम रुक्मिणी था। श्रीकृष्ण रुक्मिणीको प्राप्त करना चाहते थे और मन्दोहर मुसकानवाली रुक्मिणी भी श्रीकृष्णचन्द्रको पतिकरूपमें पानेकी अभिलाषा रखती थी। उन्होंने कुण्डिनपुरसे रुक्मिणीके लिये प्रार्थना भी की, किंतु रुक्मीने द्वेषवश श्रीकृष्णकी प्रार्थना दुष्टता दी। जरासंधकी प्रेरणासे परम पराक्रमी राजा भीष्मकने रुक्मीके साथ मिस्रकर शिशुपालको अपनी कन्या देनेका निश्चय किया। शिशुपालका विवाह सम्पन्न करनेके लिये जरासंध आदि सभी प्रमुख राजा उसे साथ ले कुण्डिनपुरमें गये। श्रीकृष्ण भी बलभद्र आदि यादवोंके साथ पैदलनेत्रका विवाह देखनेके लिये वहाँ उपस्थित हुए।

विवाह होनेमें एक ही दिनकी देर थी, इसी समय श्रीहरिने कलभद्र आदि बन्धुजनोंपर सत्रुओंके रोकनेका भार रखकर राजकुमारों रुक्मिणीको हर लिया। इससे पौण्ड्रक, दन्तवध, विदूरथ, शिशुपाल, जरासंध और सात्यक आदि राजा बहुत कुपित हुए। उन्होंने श्रीकृष्णको मार डालनेकी भरी चेष्टा की, किंतु बलराम आदि यादव वीरोंने सामना करके उन सबको परास्त कर दिया। तब रुक्मीने यह प्रतीक्षा करके कि 'मैं श्रीकृष्णको युद्धमें मारे बिना कुण्डिनपुरमें प्रवेश नहीं करूँगा,' श्रीकृष्णका पीछा किया; परंतु चक्रपाणि श्रीकृष्णने हाथों,



घोड़े, पैदल और रथोंसे युक्त रुक्मीकी चतुराङ्गिणी सेनाका बंध करके उसे लीलापूर्वक जीत लिया और पुष्पीपर गिरा दिया। इस प्रकार रुक्मीको जीतकर मधुसूदनने रुक्मिणीके साथ विधिपूर्वक विवाह किया। रुक्मिणीके गर्भसे बलवान् प्रद्युम्नका जन्म हुआ, जो कामदेवके अंत में, जिन्हें जन्मके समय ही सम्बरासुरने हर लिया था और जिन्होंने बड़े होनेपर सम्बरासुरका बंध किया था।

मुनिव्योंने पूछा—मुने! सम्बरासुरने वीरव प्रद्युम्नका अपहरण कैसे किया और महत्पराक्रमी सम्बर प्रद्युम्नके हाथसे किस प्रकार मारा गया?

व्यासजी बोले—आह्वान! सम्बरासुर कालके सम्पन्न विकरांत था। उसे यह बात मालूम हो गयी थी कि श्रीकृष्णका पुत्र प्रद्युम्न मेरा बंध करेगा; अतः उसने जन्मके छठे दिन ही प्रद्युम्नको सुतितागृहसे हर लिया और उन्हें ले जाकर समुद्रमें फेंक दिया। वहाँ उस बालकको एक मत्स्यने निगल लिया, किंतु उसकी जठराग्निसे वह होनेपर भी बालककी मृत्यु न हो सकी। तदनन्तर मत्स्यने अन्य मछलियोंके साथ उस मत्स्यको भी मारा और असुरोंमें श्रेष्ठ

शम्बरसुरको भेंट कर दिया। उसके घरमें मायावती नामकी एक युवती गृहस्वामिनी थी। वह सुन्दरी रसोइयोंका आधिपत्य करती थी 'जब मछलीका पेट खोला गया, तब उसमें मायावतीने एक अत्यन्त सुन्दर बालक देखा, जो चले हुए कामरूपी कृष्णके प्रथम अवतार था। 'यह कौन है? किस प्रकार मछलीके पेटमें आ गया?' इस प्रकार कौतूहलमें पड़ी हुई उस कुशाग्री तस्फीसे नारदजीने कहा—'यह सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि, पालन और संहर करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णका पुत्र है। इसे शम्बरसुरने सौरीसे बुराकर समुद्रमें फेंक दिया और वहाँ बलस्थने निगल लिया था। वही यह बालक है, जो आज तुम्हारे हाथ आ गया। सुन्दरी! यह मनुष्योंमें रत्न है। तुम पूर्ण विश्वासके साथ इसका पालन करो।'

देवर्षि नारदके यों कहनेपर मायावतीने उस बालकका पालन किया। उसका अत्यन्त सुन्दर रूप देखकर वह मोहित थी और बचपनसे ही अत्यन्त अनुरागपूर्वक उसकी सेवा करने लगी। जिस समय वह बालक युवावस्थाकी संधिसे मुक्तोन्मुख हुआ, उस समय वह गजगर्भामिनी बाला प्रद्युम्नके प्रति कामदेवका भाव प्रकट करने लगी। मायावतीने महत्त्वा प्रद्युम्नको सारी माया सिखा दी। उसका मन वहाँमें रमता था और उसके नेत्र सदा वहाँको निहारते रहते थे। मायावतीको अपने प्रति आसक्त होते देख कामदेवका प्रद्युम्नने कहा—'तू मातृभक्तका परित्याग करके यह विपरीत भक्तवत् कैसे करती है?' मायावतीने कहा—'तुम मेरे नहीं, भगवान् श्रीकृष्णके पुत्र हो। तुम्हें कलस्त्रको शम्बरने चुनकर समुद्रमें फेंक दिया था। तुम भूरे मछलीके पेटसे प्राप्त हुए हो। प्रिय! तुम्हारी पुत्रवत्सला यात्रा आज भी तुम्हारे लिये रोजी है।'

मायावतीके यों कहनेपर मायावती प्रद्युम्नका चित्त क्रोधसे व्याकुल हो उठा। उन्होंने शम्बरसुरको बुद्धके लिये लालकार और उसकी सारी दैन्यसे-सह्य संहार करके सारों मायाओंको जोंतकर उसके ऊपर

आड़की मायाका प्रयोग किया। उस मायासे प्रद्युम्नने कलस्त्ररूपी शम्बरको मार डाला और आकाशमार्गसे उड़कर वे मायावतीके साथ अपने पिताके नगरमें आये। अन्तःपुरमें उतरनेपर मायावतीसहित प्रद्युम्नको देखकर श्रीकृष्णकी रानियों प्रसन्न हो अनेक प्रकारने संकल्प करने लगे। रक्मिणीकी दृष्टि प्रद्युम्नके ओरसे हटती ही नहीं थी। वे स्नेहमें भरकर कहने लगीं—'यह अवश्य ही किसी बड़भगिनीका पुत्र है। अभी इसकी युवावस्थाका आरम्भ हो रहा है। यदि मेरा पुत्र प्रद्युम्न जीवित होता तो उसकी भी यही अवस्था होती। बेदा तुमने अपने जन्मसे किस सौभाग्यशालिनी जननीकी शोभा बढ़ायी है? अथवा तुम्हारे प्रति मेरे हृदयमें जैसा स्नेह उमड़ रहा है, उसके अनुरूप मैं यह स्पष्टरूपसे कह सकती हूँ कि तुम श्रीहरिके पुत्र हो।'

इसी समय श्रीकृष्णके साथ नारदजी वहाँ आये, उन्होंने अन्तःपुरमें रहनेवाली रक्मिणी बैठीस प्रसन्नतापूर्वक कहा—'सुधू यह तुम्हारा पुत्र प्रद्युम्न है। इस समय शम्बरसुरको मारकर यहाँ आधा है। कुछ वर्ष पहले शम्बरसुरने ही तुम्हारे पुत्रको सूक्तिकागृहसे हर लिया था। यह तुम्हारे पुत्रकी सती भ्रातृ मायावती है। यह शम्बरसुरकी पत्नी नहीं है। इसका कारण सुनो। जब शम्बरजीके कोपसे कामदेवका नाश हो गया, तब उनके पुनर्जन्मकी प्रतीक्षा करती हुई रानिने अपने मायाभाव रूपसे शम्बरसुरको मोहित किया। देवि! तुम्हारे पुत्ररूपमें वे कामदेव ही अवतीर्ण हुए हैं और यह वहाँकी पत्नी रति है। कल्याणो! यह तुम्हारी पुत्रवधू है, इसमें किसी प्रकारकी विपरीत शङ्का न करना।'

यह सुनकर रक्मिणी और श्रीकृष्णको बड़ा हर्ष हुआ। समस्त द्वारकापुरी 'धन्य! धन्य' कहने लगी। फिरकालसे खोये हुए पुत्रके साथ माता रक्मिणीका मिलन देख द्वारकापुरीके सब लोगोंने बड़ा विस्मय हुआ।

श्रीकृष्णकी संतति, अनिरुद्धके विवाहमें रुक्मीका वध, भीमासुरका वध, पारिजात-हरण तथा इन्द्रकी पराजय

रुक्मिणी कहते हैं—रुक्मिणीने प्रद्युम्नके अतिरिक्त चारुदेव, सुदेव, चारुदेह, सुपेज, चरुगुप्त, भद्रवार, चारुविन्द, सुचारु और बलवानोंमें श्रेष्ठ पाह नामक पुत्र तथा चारुमती नामकी कन्याको जन्म दिया। रुक्मिणीके सिवा श्रीकृष्णकी सात पटरानियाँ और थीं। उनके नाम ये हैं—कालिन्दी, मित्रविन्द, राजा नानजित्की पुत्री सत्य, जम्बवान्की कन्या इक्ष्वाकुनर रूप धारण करनेवाली रोहिणी देवी (जाग्रद्वती), अपने शीलसे विभूषित महारजकुमारी भद्र, सञ्जित्की पुत्री सत्यभाषा तथा मनोहर मुसकानवासी लक्ष्मण। इनके सिवा श्रीकृष्णके सोलह हजार स्त्रियाँ और थीं। महापराक्रमी प्रद्युम्नने रुक्मीकी सुन्दरी कन्याको और उस कन्याने भी श्रीहरिके पुत्र प्रद्युम्नजीको स्वयंवरमें ग्रहण किया। उसके गर्भसे प्रद्युम्नजीके अनिरुद्ध नामक पुत्र हुआ, जो पशुवन्सी, महापराक्रमी, युद्धमें कभी रुद्ध (कुण्ठित) न होनेवाला, बलवान समुद्र तथा शत्रुओंका दमन करनेवाला था। अनिरुद्धके भी रुक्मीकी पौत्रोने वध किया। यद्यपि रुक्मी श्रीकृष्णके साथ साग-डौट रखता था तो भी उसने अपने दौहित्र अनिरुद्धके साथ पौत्रोका विवाह कर दिया। उस विवाहमें बलराम आदि यदुवंशी श्रीकृष्णके साथ रुक्मीके भोजकट नगरमें गये थे। विवाह हो जानेपर कलिङ्गराज आदिने रुक्मीसे कहा—'रामन्! बलराम जुआ खेलना नहीं जान्ते, तथापि उन्हें जुएका बड़ा भारी व्यवसाय है, अतः उन्हें हमसेही उनको जुएसे ही परास्त करें।' 'बहुत अच्छा' कहकर रुक्मीने सभामें बलरामजीके साथ जुएका खेल प्रारम्भ किया। पहले ही दौबमें बलभद्रजी एक हजार स्वर्णमुद्र हार गये। उसके बाद भी कई बार उनकी हार हुई। यह देख मूर्ख कलिङ्गराज दौट दिखते हुए बलरामजीका उपहास करने लगा। मदन्यास रुक्मीने भी कहा—'बलभद्रको तो घूट-

विद्यका बिलकुल ज्ञान नहीं है। इसीलिए बार-बार हार खाता पड़ो है। ये व्यवसाय ही बर्नदमें आकर अपनेको घूट विद्यका पूर्ण ज्ञाता मानते थे।' तब बलरामजीने क्रोधमें भरकर एक करोड़ स्वर्णमुद्राएँ दौबपर लम्प दीं। रुक्मीने पौसा पैसा। अबकी बार बलभद्रकी जीत हुई। उन्होंने उबबसरसे कहा—'मैंने जीत लिया।' रुक्मी बोला—'क्यों झूठ बोलते हो। जीत तो मेरी हुई है। तुमने इस दौबके विषयमें चर्चा अवश्य की थी, परंतु मैंने उसका अनुमोदन तो नहीं किया था। ऐसी दशाएँ भी यदि तुम्हारी जीत हुई है तो मेरी जीत कैसे नहीं हुई।' इसी समय महापरा बलरामजीके क्रोधको बढ़ाती हुई आकाशवाणी हुई—'जीत तो बलदेवजीकी ही हुई है। रुक्मी झूठ बोलता है। मैंने अनुमोदनसूचक वचन न करनेपर भी जो उसने दौबको स्वीकार करके पौसा पैसा है, इस कर्मसे उसका अनुमोदन मिट्ट हो जाता है।'

इतना सुनते ही बलरामजी क्रोधसे लाल आँखें करके ठठ खड़े हुए। उन्होंने जुआ खेलनेके फसेसे ही रुक्मीको मीतके घाट उतार दिया। फिर काँपते हुए कलिङ्गराजको बलपूर्वक धर दबाया और जिन्हें दिखा-दिखाकर वह हँसता था, उन दौतोंको कुपित होकर तोड़ डाला फिर सभाभवनके सुवर्णमय बिहाल स्तम्भको खींच लिया और क्रोधमें आकर रुक्मीके पक्षमें आये हुए समस्त राजाओंका संहार कर डाला। बलरामजीके कुपित होनेपर सम्पूर्ण राजालोग हाहाकार करते हुए भाग खड़े हुए। बलरामजीके द्वारा रुक्मीकी मारा गया सुनकर श्रीकृष्ण चुप रहे। रुक्मिणी और बलराम दोनोंके संकोचसे वे कुछ बोल न सके। तदनन्तर विवाहके बाद भगवान् श्रीकृष्ण अनिरुद्धसहित कदवोंको साथ से हमका चले आये

एक दिन त्रिभुवनके स्वामी इन्द्र पतवाले ऐरावतकी पीठपर बैठकर द्वारकामें श्रीकृष्णके पास आये और इस प्रकार बोले—'मधुसूदन! तद्यपि आप इस समय मनुष्यरूपमें स्थित हैं, तद्यपि आपने रक्षक बनकर देवताओंके सम्पूर्ण दुःख दूर कर दिये हैं। तपस्वीजनोंकी रक्षाके लिये अरिष्ट, धेनुक, प्रलम्ब तथा केही आदि सब दैत्योंको मार किया और कंस, कुवलयपोद्ग, बालघातिनी चूतना तथा जितने इस जगत्के उपद्रव थे, उन सबको आपने शान्त कर दिया है। आपके भुजदण्डसे तैनों लोक सुरक्षित होनेके कारण देवता यज्ञोंमें हविष्य ग्रहण करके तुल हो रहे हैं जनार्दन। इस समय मैं जिस उद्देश्यसे आया हूँ, उसे सुनकर उसके प्रतिकारका उपाय करें। भूमिका पुत्र नरक, जो इस समय प्राण्योतिषपुरका स्वामी है, सम्पूर्ण भूतोंका विनाश कर रहा है। जनार्दन! उसने देवताओं, सिद्धों और राजाओंकी कन्याओंका अपहरण करके अपने महलमें कैद कर रखा है। वछन्कन छत्र, जिससे जलकी बूँदें चूती रहती हैं, अपने अधिकारमें कर लिया है। मन्दराक्षसके शिखर मणिपर्वतको भी हरण कर लिखा है, इतना ही नहीं, नरकासुरने मेरी यात्रा अदितिके दोनों दिव्य कुण्डल भी, जिनसे अमृत झरता रहता है, हर लिये हैं। अब वह मुझसे ऐरावत हाथी लेना चाहता है। गोविन्द उसका यह दुराचार मैंने आपसे निवेदन कर दिया। इसके बदलेमें उसके साथ जो कुछ करना चाहिये, वह आप स्वयं ही विचारें।'

यह सुनकर भगवान् देवकीनन्दन मुस्कराये और इन्द्रका हाथ पकड़कर अपने सिंहासनसे उठे। उन्होंने गरुड़का आवाहन किया। चिन्तन करते ही गरुड़ आ पहुँचे। भगवान् सत्यभामाको बिठाकर स्वयं भी गरुड़पर सवार हुए और प्राण्योतिषपुरकी ओर चल दिये। इन्द्र भी द्वारकावर्गियोंके देखते देखते ऐरावत हाथीपर सवार हुए और प्रसन्नचित्त हो देवलोककी चले गये। प्राण्योतिषपुरके चारों

ओर सौ योचनोंतक भयंकर पार्श्वों (सोहके कँटीले तरों) का वेरा बन्द था। शत्रुओंकी सेनाको रोकनेके लिये वे पार्श्व लगाने गये थे। श्रीहरिने सुदर्शन चक्र चलाकर उन सब पार्श्वोंको काट डाला। तब मुर नामक दैत्यने छड़े होकर भगवान्‌का सम्मना किया किन्तु भगवान्‌ने उसे मार डाला। मुरके साथ हजार पुत्र थे, श्रीहरिने चक्रकी धाररूप अग्निसे उन सबको पतंगोंकी भाँति भस्म कर दिष्ट। मुरकी मारकर उन्होंने हयग्रीव और पञ्चजनको भी वमलोक पठाया तथा बड़ो उतावलीके साथ प्राण्योतिषपुरपर भाग किया। नरक बहुत बड़ी सेनाके साथ सामने आया। उसके साथ श्रीकृष्णका घोर युद्ध हुआ। उसमें श्रीगोविन्दने सहस्रों दैत्योंका संहार किया। भूमिपुत्र नरक अस्त्र-हस्तोंकी वृष्टि कर रहा था दैत्य-मण्डलकर विनाश करनेवाले श्रीहरिने चक्र चलाकर उस असुरके दो टुकड़े कर दिये। नरकके भारे जनेपर भूमि अदितिके दोनों कुण्डल लेकर उपस्थित हुई और जगदीश्वर श्रीकृष्णसे इस प्रकार बोली—'नाथ! आपने वाराहरूप धारण करके जिस समय मुझे उखाड़ था, उस समय आपका स्पर्श होनेपर मेरे गर्भसे यह पुत्र उत्पन्न हुआ था, अतः इसे आपने ही दिष्ट और आपने ही मार गिराया। ये दोनों कुण्डल सीजिये और नरकासुरकी संतानकी रक्षा कीजिये। प्रभे! मेरा ही भार उतारनेके लिये आप अंसलहित अवतार धारण करके इस श्लोकमें आये हैं। आप ही कर्ता, विकर्ता (बिगाड़नेवाले) और संहर्ता (नश करनेवाले) हैं। आप ही अविनाशी कारण हैं और आप ही जगत्स्वरूप हैं। अच्युत! मैं आपकी क्या स्तुति कर सकती हूँ आप परमात्मा, जीवात्मा और अविनाशी भूतात्मा हैं; अतः आपकी स्तुति हो ही नहीं सकती। फिर किन्तुलिये असंभव क्या की जाय। सर्वभूतात्मन्! मुझपर प्रसन्न होइये। स्वकासुरने जो अपराध किया है, उसे क्षमा कीजिये। वह आपका पुत्र था, अतः उसे दोषरहित करनेके लिये ही आपने मारा है।'

भूतभावन भगवान् श्रीकृष्णने पृथ्वीकी प्रार्थना सुनकर 'तथास्तु' कहा। नरकासुरके महलमें जो रत्न थे, उन्हें अपने अधिकारमें कर लिया। अन्त-पुरमें जाकर उन्होंने सोलह हजार एक सौ कन्याएँ देखीं। चार दौलतवाले छः हजार हाथी और काम्बोज देशके इक्कीस लाख घोड़े भी देखे। श्रीगोविन्दने उन कन्याओं, हाथियों और घोड़ोंको द्वारकापुरी भेज दिया। चरुणके छत्र और मणिपर्जनपर भी दृष्टि पड़ी। उन्हें भगवान्ने पश्चि राज गरुड़पर रखा लिया। फिर सत्यभामाके साथ स्वयं भी गरुड़पर सवार हो अदितिको कुण्डल देनेके लिये स्वर्गलोकमें गये।



चरुणके छत्र, मणिपर्जन और भस्मोसहित श्रीकृष्णको पीठपर लिये गरुड़जी मौजसे चले जा रहे थे। स्वर्गके द्वारपर पहुँचकर श्रीकृष्णने शङ्ख बजाया। शङ्खकी आवाज सुनकर सम्पूर्ण देवता अर्घ्यपत्र लिये भगवान्की सेवामें उपस्थित हुए। उनके द्वारा पूजित हो भगवान् श्रीकृष्ण देवमाता अदितिके महलमें गये। वह भव्य भवन श्वेत बादलोंके समान धवस और पर्यंत-शिखरके सदृश कैलाश था। उसमें प्रवेश करके भगवान्ने अदितिको देखा और इन्द्रसहित उनके

चरुणोंमें प्रणाम किया। फिर दोनों दिव्य कुण्डल उन्हें अर्पित किये और नरकासुरके मारे जानेका समाचार भी कह सुनाया। इससे जगन्माता अदितिको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने भगवान्में मन लगाकर जगदाधार श्रीहरिको इस प्रकार स्तवन किया।

अदिति बोली—भक्तोंको अभय देनेवाले कमलनयन परमेश्वर! आपको नमस्कार है। आप सनातन अत्मा, भूतात्मा, सर्वात्मा और भूतभावन हैं। मन, बुद्धि और इन्द्रियोंके प्रेरक हैं। गुणस्वरूप आप स्वेष्ट, दीर्घ आदि सम्पूर्ण कल्पनओंसे रहित हैं, जन्म आदि विकारोंसे पृथक् हैं तथा स्वयं आदि तीनों अवस्थाओंसे परे हैं। आपको नमस्कार है। अच्युत! सन्ध्या, रात्रि, दिन, भूमि, आकाश, वायु, जल, अग्नि, मन, बुद्धि और अहंकार—सब आप ही हैं। ईश्वर, आप ब्रह्मा, विष्णु और शिव नामक अपनी प्रतियोंसे जगत्की सृष्टि, स्थिति और संहार करनेवाले हैं। आप कलाओंके भी अधिपति हैं। यह चराधार जगत् आपकी मायाओंसे व्याप्त है। जनार्दन! अकारण वस्तुमें जो आत्मबुद्धि होती है, वह आपकी माया है। उसीके द्वारा अहंता और ममताका भाव उत्पन्न होता है। माधव! इस संसारमें जो कुछ होता है, वह सब आपकी मायाकी ही चेष्टा है। भगवान्! जो मनुष्य अपने धर्ममें तत्पर हो आपकी निरन्तर आराधना करते हैं, वे अपनी बुद्धिके लिये इस सारी मायाको तर जाते हैं। ब्रह्मा आदि सम्पूर्ण देवता, मनुष्य और पशु—ये सभी श्रीविष्णुमायाके यन्त्रान् धैर्यमें पड़े हुए मोहान्धकारसे आवृत हैं। भगवान्! जो आपकी आराधना करके भोगोंको प्राप्त करना चाहते हैं, वे आपकी मायाद्वारा बंधे हुए हैं। मैंने भी पुत्रकी कामनासे और सन्तुष्टिकर कर करनेके लिये आपकी आराधना की है, मोक्षके लिये नहीं। यह आपकी मायाका ही वित्तस है। पुष्करहित मनुष्य यदि कल्पवृक्षसे भी कौपीनमात्र ही लेनेकी इच्छा करे तो यह अपराध उसके अपने ही पापकर्मोंका है। अपनी

भायासे सम्पूर्ण जगत्को मोहित करनेवाले अविनाशी परमेश्वर। मुझपर प्रसन्न होइये। ज्ञानस्वरूप सम्पूर्ण भूतेश्वर। मेरी अज्ञानकी मार बड़ीजिये। आपके हाथोंमें चक्र, शार्ङ्गधनुष, गदा और शङ्ख शोभा पाते हैं। विष्णो। आपको बारंबार नमस्कार है परमेश्वर। शङ्ख चक्र आदि स्थूल चिह्नोंसे सुशोभित आपके इस रूपका मैं दर्शन करती हूँ आपका जो परम सूक्ष्म स्वरूप है, उसको मैं नहीं जानती। आप मुझपर प्रसन्न होइये।'

देवमाता अदितिके इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवान् श्रीकृष्ण हँसकर बोले—'देवि! आप हम सब लोगोंकी माता हैं, अतः आप ही प्रसन्न होकर हमें वरदान दें।'

अदिति बोली—एवमस्तु। नरेश्वर जैसे आपको इच्छा है मैं वही कहूँगी। आप मर्यादालोकमें सम्पूर्ण देवताओं और असुरोंसे अजेय होंगे।

तदनन्तर सत्यभामा ने इन्द्राणीसहित अदितिके प्रणाम किया और कहा—'देवि! आप मुझपर भी प्रसन्न हों।' अदिति ने कहा—'सुभू! मेरी कृपासे तुम्हें वृद्धावस्था और कुसंपत्ता नहीं स्पृश कर सकती।

तुम्हारी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण होंगी।' तत्पश्चात् अदिति की आज्ञासे देवराज इन्द्र ने भगवान् श्रीकृष्णका आदरपूर्वक पूजन किया श्रीकृष्ण भी सत्यभामाके साथ देवताओंके नन्दनवन अर्थात् सम्पूर्ण जगत्में घूमने-फिरने लगे। एक स्थानपर भगवान् श्रीकृष्णके परिजालक वृक्ष देख, जो परम सुगन्धित पत्ररियोंसे सुशोभित, शीतलता और आच्छाद प्रदान करनेवाला, ताम्रवर्णके पत्रोंसे अलंकृत और सुवर्णके सम्पन्न कनिष्ठान् धर। अमृतके लिये समुद्रका मन्थन होते समय वह प्रकट हुआ था। उसे देखकर सत्यभामा ने श्रीगोविन्दसे कहा—'नमो! इस वृक्षको आप द्वारा कर्मों नहीं ले चलते। आप कहते हैं, सत्यभामा मुझे बड़ी प्रिय है। यदि आपकी यह बात सत्य हो तो मेरे धरके अँगनकी शोभा बढ़ानेके लिये इस वृक्षको ले चलिये।'

सत्यभामाके यों कहनेपर भगवान् श्रीकृष्णने

परिजालक गुरुद्वार रख लिया। यह देख उस वनके रक्षकोंने कहा—'गोविन्द! देवराजकी महारानी जो शची हैं, उनका इस परिजालपर अधिकार है। आप उनके इस प्रिय वृक्षको न ले जाइये। देवताओंने अमृतमन्थनके समय महारानी शचीको



विभूषित करनेके लिये ही इस वृक्षको प्रकट किया था। आप इसे लेकर कुशलपूर्वक नहीं जा सकते। आप अज्ञानवश ही इसे ले जानेकी अभिलाषा करते हैं। भला, इस परिजालको लेकर कौन कुशलसे जा सकता है। देवराज इन्द्र इसका बदला लेनेके लिये अत्यन्त आग्रहेंगे। जब वे हाथमें वज्र लेकर आगे बढ़ेंगे, तब सम्पूर्ण देवता भी उनका साथ देंगे, अतः सम्पूर्ण देवताओंके साथ आपको विवाद करनेसे क्या लाभ। अच्युत! जिस कार्यका परिणाम कटु हो, उसको विद्वान् पुरुष प्रशंसा नहीं करते।'

वनरक्षकोंके यों कहनेपर सत्यभामा देवी अत्यन्त कुपित होकर बोली—'तची अथवा देवराज इन्द्र इस परिजालको लेनेवाले कौन होते हैं। यदि यह अमृतमन्थनके समय समुद्रसे निकला है, तब तो इसका सम्पूर्ण लोकोंका समान अधिकार है। इसे इन्द्र

अकेले कैसे ले सकते हैं। यदि अपने पतिकी भुजाओंके बलबल अधिक घमंड होनेके कारण तबो इस वृक्षको रोकाती है तो सुयलोग जोय तबोके पास जाकर मेरी यह बात कहो—'सत्यभामा अपने पतिपर गर्व करके धृष्टद्युम्नक कहती है कि यदि तू अपने पतिको अत्यन्त प्रिय हो तो पारिजात वृक्षको लेकर जाते हुए मेरे पतिको उनके द्वारा रोका।'।

यह सुनकर रत्नकेने तबोके पास जा सत्यभामाकी कही हुई सारी बातें ज्यों-की-त्यों सुना दीं। तबोने भी अपने स्वामी देवराज इन्द्रको युद्धके लिये उत्साहित किया। तब इन्द्र पारिजातके लिये सम्पूर्ण देवसेनाको भाग ले श्रीहरिसे युद्ध करनेको उद्यत हुए। जब इन्द्र हाथमें वज्र लेकर युद्ध करनेके लिये छोड़े हुए, तब सभस्व देवता भी परिच, छद्म, गदा और शूल आदि आयुधोंके साथ तैयार हो गये। भगवान् श्रीकृष्णने देखा इन्द्र ऐरावतपर सवार हो देवपरिवारको साथ ले युद्धके लिये उपस्थित हैं, तब उन्होंने पाञ्चजन्य शङ्ख बजाया। उसकी ध्वनिसे सम्पूर्ण दिशाएँ गूँज उठीं। साथ ही उन्होंने सहस्रों और लाखों बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी। उन बाणोंसे सम्पूर्ण दिशाएँ और आकाश आकाशित हो गये। यह देख सम्पूर्ण देवता भी अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे। सम्पूर्ण जगत्के स्वामी भगवान् मधुसूदनने देवताओंके छोड़े हुए एक-एक अस्त्र-सस्त्रके खेल-खेलमें ही इन्जनों टुकड़े कर डाले। पक्षिराज गरुड़ने वरुणके पालको खींच लिया और छोटे-छोटे साँपोंके शरीरकी धीति उसके खण्ड-खण्ड कर डाले। भगवान् देवकीनन्दनने यमराजके चलाये हुए दण्डको गदाकी मारसे टुक टुक करके पृथ्वीपर गिरा दिया। कुबेरकी सिंघिकाको चक्रसे तिस तिल करके काट डाला। सूर्य और चन्द्रमा उनकी दृष्टि पड़ते ही अपना तेज और प्रभाव खो बैठे। अग्निदेवके सैकड़ों टुकड़े हो गये। आठों वसुओंने भगवान्के बाणोंकी चोट खाकर आठों दिशओंको

तरल ली। ग्यारह रुद्र भी धराशायी हो गये। उनके त्रिशूलोंके अग्रभाग चक्रको धारसे छिन्न-भिन्न हो गये। स्वाध्य, विश्वेदेव, वरुण और गन्धर्व शार्ङ्गधनुषधारी भगवान् श्रीकृष्णके बाणोंसे अहत हो सेमरकी रुईके समान आकाशमें उड़ने लगे। गरुड़ तो मर आकाशमें ही चलनेवाले उड़े। उन्होंने चोंचसे, पंजोंसे और पंजोंसे भी देवताओं और दानवोंको घायल कर डाला।

तदनन्तर देवराज इन्द्र और भगवान् मधुसूदन एक-दूसरेपर हजार-हजार बाणोंकी वृष्टि करने लगे, मानो दो मेघ परस्पर जलकी धाराएँ बरसाते हों। ऐतवत और गरुड़में घमासान युद्ध होने लगा। जब सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्र कटकर गिर गये तब इन्द्रने वज्र और श्रीकृष्णने सुदर्शन चक्र हाथमें लिप्ये। उन दोनोंको वज्र और चक्र हाथमें लिपे देख चारवर जीर्णोत्थित सम्पूर्ण त्रिलोकीमें हाहाकार मच गया। अन्ततोगत्वा इन्द्रने वज्रको चला ही दिया, किन्तु भगवान् श्रीकृष्णने उसे हाथमें पकड़ लिया। उन्होंने अपना चक्र नहीं छोड़ा। केवल इतना ही कहा, 'खड़ा रह, खड़ा रह।' देवराजका



वज्र व्यर्थ हो गया और उनके काहनको गुरुने क्षत-विक्षत कर डाला; अतः वे रणभूमिसे भागने लगे, उस समय सत्यभामाने कहा—‘त्रिलोकीन्ध्र! आप तो महारानी शचीके पति हैं। आपको युद्ध-भूमिसे भागना उचित नहीं। पारिजात-पुष्पोंके हारसे सुशोभित एवं प्रेमपूर्वक आयी हुई शचीको यदि आप पहलेकी भाँति विजयी होकर नहीं देखेंगे तो आपके लिये यह देवराजका पद कैसा प्रतीत होगा। इन्द्र! अब अधिक प्रयास करनेकी आवश्यकता नहीं आप सच्चाका अनुभव न करें; आप यह पारिजात ले जाइये, जिससे देवताओंकी पीड़ा दूर हो। मैं आपके घर गयी थी, किन्तु सच्चेने पतिका गर्वसे ठन्कत होकर मुझे अन्दरके साथ नहीं देखा। मैं भी स्त्री ही ठहरी और मुझे भी अपने पतिपर गर्व है, तथा स्त्री होनेके कारण मेरा चित्त भी अधिक गम्भीर नहीं है, इसलिये मैंने आपके साथ युद्ध ठान दिया। यह पारिजात दूसरेका धन है। इसका अपहरण करनेसे मुझे कोई लाभ नहीं।’

सत्यभामाके भी कहनेपर देवराज इन्द्र लौट आये और बोले—‘मानिनी! खेदको अधिक बढ़ानेसे क्या लाभ। जो सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले हैं उन विश्वरूपधारी परमेश्वरसे युद्धमें हार जानेपर भी मुझे लज्जा नहीं हो सकती। देवि! जिनका अदि, अन्त और मध्य नहीं है, जिनमें सम्पूर्ण जगत्की स्थिति है, जिनसे इसकी उत्पत्ति हुई है और जिन सर्वभूतमय परमेश्वरसे ही इसका संहार होगा, उन सृष्टि, पालन और संहारके कारणभूत परमात्मासे परास्त होनेपर मुझे लज्जा क्यों होने लगी। जिनकी अत्यन्त अल्प और सूक्ष्म मूर्तिको, जो सम्पूर्ण जगत्की जननी है, सब वेदोंके ज्ञाता होनेपर भी दूसरे मनुष्य नहीं जान पड़े, जो स्वेच्छासे ही सदा जगत्का उपकार करते हैं, उन अजन्मा, अकला तथा सबके अदिभूत इन सनातन

परमेश्वरको जीतनेमें कौन समर्थ हो सकता है।’

जयसजी कहते हैं—देवराज इन्द्रके इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवान् श्रीकृष्णने गम्भीर भावसे हँसकर कहा—‘जगत्पते! आप देवराज इन्द्र हैं और हम मनुष्य हैं। आपको मेरे द्वारा किया हुआ यह अपराध क्षमा करना चाहिये। यह रहा आपका पारिजात वृक्ष, इसे इसके योग्य स्थानपर ले जाइये। इन्द्र! मैंने तो केवल सत्यभामाकी बात रखनेके लिये ही इसको ले लिया था। आपने मेरे ऊपर जो वज्र चलाया था, उसे भी लीजिये। यह तनुसंहारक अस्त्र आपका ही है।’

इन्द्र बोले—‘प्रभो! मैं मनुष्य हूँ—यों कहकर आप मुझे क्यों मोहमें डाल रहे हैं। भगवान्! हम तो आपके इस सगुण-स्वरूपको ही जानते हैं। आपके सूक्ष्म स्वरूपका ज्ञान हमें नहीं है। जगत्पते! अब जो कोई भी हों, इस समय जगत्की रक्षामें उत्तर हैं। असुरसूदन! आप संसारका कण्टक दूर कर रहे हैं। श्रीकृष्ण! यह पारिजात आप द्वारकापुरीको ले जायें। जब आप मार्गस्थोक छोड़ देंगे, तब यह पृथ्वीपर नहीं रहेगा।

‘बहुत अच्छा’ कहकर भगवान् श्रीहरि भूलोकमें चले आये। उस समय सिद्ध, गन्धर्व तथा ऋषि-महर्षि उनकी स्तुति कर रहे थे। उत्तम पारिजात वृक्ष लेकर श्रीकृष्ण सहसा द्वारकापुरीके ऊपर जा पहुँचे। उन्होंने शङ्ख बजाकर द्वारकावासियोंके हृदयमें हर्ष भर दिया। फिर सत्यभामाके साथ गुरुसे डकरकर पारिजातको उनके आँगनमें लगाया। उसके नीचे जानेपर सब लोगोंको अपने पूर्वजन्मकी बातें खद आ जाती थीं। उसके फूलोंकी भुगन्धसे बारह कोसतककी पृथ्वी सुगन्धित रहती थी। सम्पूर्ण यादवोंने उस वृक्षके पास जाकर जब अपना मुख देखा, तब उन्होंने अपनेको अमानव—देवतातुल्य पाया।

भगवान् श्रीकृष्णका सोलह हजार स्त्रियोंसे विवाह और उनकी संतति तथा उषाका अनिरुद्धके साथ विवाह

व्यासजी कहते हैं—नरकासुरके सेवकोंने जो हाथी, घोड़े, धन, रत्न तथा स्त्रियोंको छुरकामें पहुँचाया था, वह सब श्रीकृष्णने ले लिया। सुभ भुहर्त आनेपर जनार्दनने नरकासुरके महलसे लायी हुई समस्त कन्याओंके साथ विवाह किया। एक ही समय श्रीगोविन्दने अनेक रूप धारण करके उन सबका स्वधर्मके अनुसार विधिपूर्वक पाणिग्रहण किया। सोलह हजार एक सौ स्त्रियाँ थीं, अतः भगवान् मधुसूदनने भी उतने ही रूप धारण किये थे। प्रत्येक कन्या यह समझती थी कि भगवान् श्रीकृष्णने केवल मेरा पाणिग्रहण किया है। जगद्गुरु सृष्टि करनेवाले विश्वरूपधारी श्रीहरि रत्नके समय उन सभी स्त्रियोंके महलोंमें निवास करते थे।

श्रीहरिके सन्निपतीके गर्भसे उत्पन्न हुए प्रद्युम्न आदि पुत्रोंकी चर्चा पहले की जा चुकी है। सत्यभामाने भानु आदि पुत्रोंको जन्म दिया। जाम्बवतीसे माय्य आदिका जन्म हुआ। नागनज्जित (सत्या)—से भरविन्द आदि और तैम्ब्य (मित्रविन्द)—से संग्रामजित् आदि पुत्र उत्पन्न हुए। माद्रोके गर्भसे वृक आदिका जन्म हुआ। लक्ष्मणाने गात्रवान् आदि पुत्र प्राप्त किये। कालिन्दीसे श्रुत आदिकी उत्पत्ति हुई इसी प्रकार भगवान्की अन्य पत्नियोंके गर्भसे जो पुत्र उत्पन्न हुए थे, उन सबकी संख्या अट्ठासी हजार आठ सौके लगभग थी। रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्न श्रीकृष्णके समस्त पुत्रोंमें श्रेष्ठ थे। प्रद्युम्नसे अनिरुद्ध और अनिरुद्धसे वज्रका जन्म हुआ। अनिरुद्ध संग्राममें कभी रुकते नहीं थे वे बड़े बलवान् थे। उन्होंने बलिवकी पौत्री और बाणासुरकी पुत्री उषाके साथ विवाह किया था उस विवाहमें भगवान् श्रीकृष्ण तथा शंकरमें बड़ा भयंकर युद्ध हुआ था। उस समय श्रीकृष्णने चक्रसे बाणासुरकी सहस्र भुजाएँ काट डालीं।

पुनर्विनी पुत्र—जहन् उषाके लिये महादेवजी तथा श्रीकृष्णमें युद्ध क्यों हुआ तब श्रीहरिने बाणासुरकी भुजाओंको उच्छेद क्यों किया? महाभाग आप यह सम्पूर्ण वृत्तान्त हमें बताइये इस सुन्दर कथाको सुननेके लिये हमें बड़ा कौतूहल हो रहा है।

व्यासजीने कहा—बाह्यणो! बाणासुरकी पुत्री उषाको स्वप्नमें किसी पुरुषने आलिंगन किया। उषाका भी उसके प्रति अनुराग हो गया। इतनेमें ही उसकी नींद खुल गयी—जागनेपर उस पुरुषको न देखनेके कारण उषा अव्यभिक्त होकर बोल उठी—‘प्यरे! तुम कहाँ चले गये?’ उस समय उसे लज्जाका ध्वन न रहा। बाणासुरके यन्त्री कुम्भाण्डके एक कन्या थी, जिसका नाम चित्रलेखा था। वह उषाकी सखी थी। उसने पूछा—‘राजकुमारी, तुम किस पुकारती हो?’ यह सुनकर वह लाजसे गड़-सी गयी। मुँहसे एक शब्द भी बोल न सकी। तब चित्रलेखाने उसे बहुत विश्वास दिलाया और समझाते उसके मुखसे निकलवा लीं। चित्रलेखाको जब यथार्थ बात मालूम हो गयी, तब उषाने उससे कहा—‘पार्वतीदेवीने मुझे इसी प्रकार पतिकी प्राप्ति होनेका वरदान दिया है; अतः तुम उस पुरुषकी प्राप्ति करनेके लिये जो कसब हो सके, उसे करो।’

तब चित्रलेखाने एक पदपर प्रधान प्रधान देवताओं, दैत्यों, गन्धर्वों और मनुष्योंका चित्र लिखकर उषाको दिखाया। ठगने गन्धर्वों, नागों देवताओं और दैत्योंको छोड़कर मनुष्योंकी ओर दृष्टि दी। उनमें भी अन्धक और वृष्णिर्वशोंके लोगोपर विशेष ध्यान दिया, श्रीकृष्ण और बलरामके चित्रोंको देखकर वह सुन्दरी कुछ लज्जित हो गयी। प्रद्युम्नको देखनेपर उसने लज्जासे आँखें फेर लीं, परंतु अनिरुद्धपर दृष्टि पड़ते ही न जाने उसको लज्जा कहाँ चली गयी। वह सहसा बोल

उत्ती—‘ये ही हैं, ये ही मेरे प्रियतम हैं।’ उसके यों कहनेपर योगाभिनेत्र चित्रलेखा उसे सम्बन्ध दे द्वारकापुरीको गयी।

एक बार बाणासुरने भगवान् शंकरको प्रणाम करके कहा था—‘देव! युद्धके बिना इन हजार भुजाओंसे मुझे बड़ा खेद हो रहा है; क्या कभी ऐसे युद्धका अवसर आयेगा, जब कि ये मेरी भुजाएँ सफल होंगी?’ यदि युद्ध न हो तो इन भुजाओंसे क्या लाभ। फिर तो ये मेरे लिये भारस्व ही सिद्ध होंगी। यह सुनकर महादेवजीने कहा—‘जिस समय तुम्हारी मयूर चिह्नवाली ध्वजा टूट जायगी, उस समय तुम्हें वैसा युद्ध प्राप्त होगा।’ इससे बाणासुरकी बड़ी प्रसन्नता हुई। वह भगवान् शिवको प्रणाम करके घर चला आया कुछ कालके बाद उसकी मयूर-ध्वजा टूटकर गिर गयी। यह देखकर उसके हर्षकी सीमा न रही। इसी समय चित्रलेखा अपनी योगविद्याके बलसे अनिरुद्धको बाणासुरके भवनमें ले आयी। अनिरुद्ध कन्याके अन्त-पुरमें उसके साथ विहार करने लगे। यह बात अन्त-पुरके रक्षकोंको मालूम हो गयी। उन्होंने दैत्यराजसे सब हाल कह सुनाया। बाणासुरने अपने सेवकोंको अनिरुद्धसे युद्ध करनेकी आज्ञा दी, किन्तु शत्रुवीरोंका दमन करनेवाले अनिरुद्धने सोहेका परिष लेकर उन सबकी मार डाली। सेवकोंके मारे जानेपर बाणासुर स्वयं ही रथपर आरुढ़ हो अनिरुद्धका वध करनेके लिये उद्यत हुआ। अपनी शक्तिपर युद्ध करनेपर भी जब उसे खीरकर अनिरुद्धजीने परास्त कर दिया, तब वह मन्त्रोंकी प्रेरणासे मयाद्वारा युद्ध करने लगा। इस प्रकार उसने यदुनन्दन अनिरुद्धको नागप्राशसे बाँध लिया।

उत्तर द्वारकामें अनिरुद्धको खोज हो रही थी। समस्त यदुवंशी आपसमें कह रहे थे कि ‘अनिरुद्ध सहसा कहाँ चले गये?’ उसी समय देवर्षि गार्दजी द्वारकामें पहुँचे और उन्होंने बताया कि ‘अनिरुद्धको बाणासुरने शोणितपुरमें बाँध रखा,

है। उन्हें योगविद्यामें चतुर युवती चित्रलेखा अपने साथ ले गयी थी।’ यदुवंशियोंको इस बातपर विश्वास हो गया। फिर तो भगवान् श्रीकृष्णने गरुडका आवाहन किया। वे स्मरण करते ही आ पहुँचे। भगवान् श्रीकृष्ण बलराम और प्रद्युम्नके साथ गरुडपर आरुढ़ हो बाणासुरके नगरमें गये। पुरीमें प्रवेश करते समय महाबली प्रमथोंके साथ उनका युद्ध हुआ। श्रीहरि उन सबका संहार करके बाणासुरके भवनके निकट गये। तत्पश्चात् तीन पैर और तीन भस्तकवाले माहेश्वर ध्वरने बाणासुरको रक्षाके लिये शार्ङ्गधन्वा श्रीकृष्णके साथ युद्ध किया। उसके पैरोंके हुए भस्मके स्पर्शसे श्रीकृष्णका शरीर संतप्त हो उठा और उससे छू जानेपर बलदेवजीने भी शिथिल होकर अपने नेत्र मूँद लिये। इस प्रकार श्रीकृष्णके साथ युद्ध करते हुए माहेश्वर ज्वरर शीघ्र ही वैष्णव ध्वरने आक्रमण किया और उसकी भगवान् के शरीरसे बाहर निकाल दिया। उस समय भगवान् गारायणकी भुजाओंके आघातसे माहेश्वर ध्वरको बड़ी पीड़ा हुई वह व्याकुल हो उठा। यह देख पितामह ब्रह्माजीने आकर कहा—‘भगवान्! इसे क्षमा कीजिये।’ भगवान् बोले—‘अच्छ, मैंने क्षमा कर दिया।’ यों कहकर उन्होंने वैष्णव ध्वरको अपनेमें ही लीन कर लिया। तब माहेश्वर ध्वरने कहा—‘भगवान्! जी मनुष्य आपके साथ घेरे युद्धका स्मरण करेंगे, वे ज्वरहीन हो जायेंगे।’ यों कहकर वह चला गया।

तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णने पाँच अग्नियोंको जीतकर उन्हें नष्ट कर डाला और दानवोंको सेनका खेल-खेलमें ही विध्वंस कर दिया, वह देख बलिकुमार बाणासुर सम्पूर्ण दैत्योंकी सेना साथ ले भगवान् से युद्ध करने लगा। भगवान् शिव तथा कार्तिकेयजीने भी उसका साथ दिया। श्रीहरि तथा शंकरजीमें बड़ा भयंकर युद्ध हुआ। उनके उलाये हुए नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंकी मारसे पीड़ित हो समस्त लोक धुब्ध हो उठे। उस

महायुद्धको होते देख देवताओंने समझा "विश्व ही समस्त संसारके लिये प्रलयकाल आ गया।" तब भगवान् श्रीकृष्णने जूम्भापास्रके द्वारा शंकरजीको स्तब्ध कर दिया वे युद्ध छोड़कर जँभाई लेने लगे। यह देख दैत्य और प्रमदाण चारों दिशाओंमें भाग गये। भगवान् शंकर जूम्भासे विवश हो रथके पिछले भागमें बैठ गये। उस समय वे अनायास ही सब कुछ करनेवाले श्रीकृष्णके साथ युद्ध न कर सके गरुड़ने कार्तिकेयकी भुजाओंको क्षत-विक्षत कर दिया। प्रद्युम्नने भी अपने अस्त्र-शस्त्रोंसे उन्हें पीड़ित किया तथा श्रीकृष्णके हुंकारसे उनकी राशि नष्ट हो गयी, अतः वे युद्धसे भाग गये।

इस प्रकार जब महादेवजी जँभाई लेने लगे, दैत्यसेना नष्ट हो गयी, कार्तिकेयजी परास्त हो गये और प्रमदायों (रुद्रके गणों)-का संहार हो गया, तब श्रीकृष्ण, प्रद्युम्न और बलरामजीके साथ युद्ध करनेके लिये एक विशाल रथपर आरुढ़ हो बाणासुर वहाँ आया। साक्षात् नन्दीश्वर सारथि बनकर उसके घोड़ोंकी बागदोर सँभाले हुए थे। महापराक्रमी बलराम और प्रद्युम्नने अनेकों बाणोंसे बाणासुरकी सेनाको भीध डाला। वह सेना खोरधर्मसे भ्रष्ट होकर रणभूमिसे भागने लगी। बाणासुरने देखा उसकी सेनाको बलरामजी इससे खींचकर मूसलसे मारते हैं और भगवान् श्रीकृष्ण भी उसे अपने बाणोंका निशाना बनाते हैं। तब उसका श्रीकृष्णके साथ घमासान युद्ध छिड़ गया। दोनों एक-दूसरेपर कवचको भी छेद डालनेवाले तेजस्वी बाण छोड़ने लगे। भगवान् श्रीकृष्णने बाणासुरके चलाये हुए बाणोंको अपने सायकोंसे छिन्न-भिन्न कर डाला फिर बाणासुरने श्रीकृष्णको और श्रीकृष्णने बाणासुरको घायल किया। दोनों एक-दूसरेको जीतनेकी इच्छासे परस्पर अस्त्र-शस्त्रोंकी बौछार कर रहे थे। जब सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्र छिन्न-भिन्न हो गये तब भगवान् श्रीकृष्णने

बाणासुरको मारनेका निश्चय किया उन्होंने सैकड़ों सूर्योंके सपान तेजस्वी सुदर्शन चक्र हाथमें लिया और बाणासुरको लक्ष्य करके चला दिया। वे शत्रुको भुजाओंको काट डालना चाहते थे। श्रीकृष्णके द्वारा प्रेरित चक्रने क्रमशः उस असुरकी भुजाओंका उच्छेद कर डाला। जब बाणासुरकी भुजाओंका जङ्गल कट गया तब भगवान् श्रीकृष्णने उसके चक्र करनेके लिये चक्र हाथमें लिया वे उसे छोड़ना ही चाहते थे कि भगवान् शंकरको उनका मनोभाव ज्ञात हो गया। तब वे तुरंत कूदकर भगवान्के सामने आ गये। उन्होंने देखा भुजाओंके कट जानेसे बाणासुरके शरीरसे रक्तकी धारा गिर रही है। तब शान्तिपूर्वक भगवान्की स्तुति करते हुए कहा—'कृष्ण! कृष्ण!! अग्राध!!' मैं आपको जानता हूँ। आप पुरुषोत्तम, परमेश्वर, परमात्मा और आदि-अन्तसे रहित परब्रह्म हैं। आप जो देवता, यन्त्र-यक्षी तथा मनुष्योंकी योनिमें शरीर धारण करते हैं, यह आपकी लीलामात्र है। आपकी चेष्टा दैत्योंका वध करनेके लिये होती है। प्रभो! प्रसन्न होइये। मैंने बाणासुरको अभय दे



रखा है। आपको भी येरी बात असत्य नहीं करनी चाहिये। मेरा आश्रय पानेसे यह दैत्य बहुत बड़ गया है। वास्तवमें यह आपका अपराधी नहीं है। मैंने ही इसे वरदान दिया था, अतः मैं ही इसके लिये आपसे क्षमा चाहता हूँ।*

भगवान् शंकरके यो कहनेपर भगवान् श्रीकृष्णका मुख प्रसन्न हो गया। बाणासुरके प्रति उनके मनमें कोई अमर्ष नहीं रह गया। उन्होंने तत्त्वज्ञोंसे कहा— 'शंकर! यदि आपने इसे वर दे रखा है तो यह बाणासुर जीवित रहे। आपके वचनोंका गौरव रखनेके लिय हमने अपना चक्र सीटा लिया है। शंकर! आपने जो

अभयदान दिया है, वह मैंने भी दिया। अब अपनेको मुझसे पृथक् न देखें। जो मैं हूँ, वही आप हैं और वही यह देवता, असुर तथा मनुष्योंसहित सम्पूर्ण अणु भी है। जिनका चित्त अविद्यासे मोहित है, वे ही पुरुष भेददृष्टि रखनेवाले होते हैं।**

यों कहकर भगवान् श्रीकृष्ण अनिरुद्धके पास गये। उनके जते ही अनिरुद्धको बाँधनेवाले नाग धाम खाड़े हुए। गरुड़के पंखोंकी इवा लागनेसे वे सुख गये थे। तदनन्तर पत्नीसहित अनिरुद्धको गरुड़पर चढ़ाकर भगवान् श्रीकृष्ण, बलराम और प्रद्युम्न द्वाराकापुरीमें आये।

पौण्ड्रकका वध और बलरामजीके द्वारा हस्तिनापुरका आकर्षण

मुनिवोंने कहा—भगवान् श्रीकृष्णने यानव-शरीर धारण करके बहुत बड़ा पराक्रम किया, जो उन्होंने सीतापूर्वक ही इन्द्र, महादेवजी तथा सम्पूर्ण देवताओंको जीत लिया। मुनिब्रह्म! देवताओंकी घेष्टका विध्वस्त करनेवाले भगवान्ने और भी जो कर्म किये थे, वे सब हमसे कहिये। हमें उन्हें सुननेके लिये बड़ा कौतूहल हो रहा है।

व्यासजी बोले—मुनिवर! कतलाता हूँ, मनुष्यावतारमें श्रीहरिने जो सीताएँ की थीं, उन्हें आदरपूर्वक सुनीं। पौण्ड्रकवंशी वासुदेव नामक एक राजा था। वह 'भगवान् वासुदेव' बन बैठा था। कुछ अज्ञानमोहित मनुष्योंने उससे यह कहा था कि 'आप ही इस पृथ्वीपर वासुदेवके रूपमें अवतीर्ण हुए हैं।' उनकी बातोंमें आकर वह स्वयं भी अपनेको अवतार मानने लगा था। वासुदेव बननेकी धुनमें वह अपने कालविक स्वरूपको भूल गया और भगवान् विष्णुके जितने चिह्न हैं, उन सबको

धारण करने लगा। इतना ही नहीं, उसने भगवान् श्रीकृष्णके पास अपना दूत भी भेजा और उसके मुखसे कहसक्य—'ओ मूढ़! तूने जो चक्र आदि घेरे चिह्न और घेरा वासुदेव नाम धारण किया है, वह सब तोड़ ही त्याग दे और अपने जीवनकी रक्षाके लिये मेरी सज्जमें आ जा।' यह सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण हँस पड़े और दूतसे बोले—'तुम जाकर राजा पौण्ड्रकसे मेरी यह बात कहना, 'राजन्! मैंने तुम्हारे वचनोंका तत्पर्य भस्तीभूति समझ लिया है। अब तुम्हें जो कुछ करना हो, वह करो। मैं अपने चिह्नको साथ लेकर ही तुम्हारे नगरमें आऊँगा और उस चिह्नस्वरूप चक्रको तुम्हारे उम्बर ही छोड़ूँगा, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। तुमने जो आज्ञापूर्वक आनेका संदेश दिया है, उसका मैं अविलम्ब पालन करूँगा। कल सबेर ही तुम्हारी पुरीमें पहुँच जाऊँगा। तुम्हारे वहाँ आकर मैं वह कार्य करूँगा, जिससे फिर तुमसे कोई भय नहीं रह जायगा।'

* त्वया यदभयं दत्तं कृत्स्नमभयं प्रयत्नः प्रसीदति भिक्षाव्यवस्थानं दृष्टयर्हसि शंकरः ॥
यांऽहं स त्वं जगन्नेदं संदेवसुखमनुबन्धुः अविद्यामोहितस्थान- पुर्या भिक्षादीश्वरः ॥

श्रीकृष्णके यों कहनेपर दूत चला गया, तब भगवान्ने गरुड़का स्मरण किया। गरुड़ तुरंत आ पहुँचे। भगवान् उनकी पीठपर सवार हुए और पौण्ड्रकके नगरमें गये। श्रीकृष्णके आक्रमणकी बात सुनकर काशिराज अपनी समस्त सैन्योंके साथ पौण्ड्रककी सहायतामें आ गया। तब अपनी और काशिराजकी विशाल सेना लेकर पौण्ड्रक वासुदेव श्रीकृष्णका सामना करनेके लिये गया। भगवान्ने दूरसे ही देखा पौण्ड्रक एक विशाल रथपर बैठा है। उसने अपने हाथोंमें कृत्रिम शङ्ख चक्र और गदा ले रखे हैं। एक हाथमें कमल भी है। गलेमें खममालाके स्थानपर एक बहुत बड़ा हार लटक रहा है। शार्ङ्गधनुषकी तरहका एक धनुष भी है। रथपर गरुड़चिह्नसे अंकित एक ध्वजा फहरा रही है और इसकी छतरीमें श्रीवत्सका कृत्रिम धिक् भी बना हुआ है। उसने मस्तकपर किरीट, कानोंमें कुण्डल और शरीरपर पीताम्बर धारण कर रखा है। उसे देखकर भगवान् श्रीकृष्ण गम्भीरभावसे हँसे और उसकी सेनाके साथ युद्ध करने लगे। शार्ङ्गधनुषसे छूटे हुए बाणोंसे, गदासे और चक्रकी मारसे उन्होंने काशिराजकी सेनाका संहार कर डाला और अपने समान चिह्न धारण करनेवाले अज्ञानी पौण्ड्रकसे कहा—'पौण्ड्रक! तुमने जो दूतके मुखसे मुझे कहना भेजा था कि तुम अपने विह्वल छोड़ दो। सो अब मैं तुम्हारे आदेशका पालन करता हूँ। तो, यह चक्र छोड़ो। यह गदा छोड़ दो और इस गरुड़को भी छोड़ो। यह तुम्हारी भूजापर आरुढ़ हो जाय।' यों कहकर भगवान्ने अपने छोड़े हुए चक्रसे पौण्ड्रकको विदीर्ण कर डाला। गदाके अग्रभातसे उसे पृथ्वीपर गिरा दिया और गरुड़ने उसके कृत्रिम भयङ्कको भी तोड़ फोड़ डाला। पौण्ड्रकके मारे जानेपर वहाँ लोगोंमें हाहाकार मच गया। तब काशिराज अपने मित्रका बदला चुकानेके लिये श्रीकृष्णके साथ युद्ध करने लगे। श्रीकृष्णने

शार्ङ्गधनुषछाड़ छोड़े हुए बाणोंसे काशिराजका मस्तक काटकर उसे काशीपुरीमें फेंक दिया। यह लोगोंके लिये बड़े विस्मयका कार्य था। इस प्रकार पौण्ड्रक और काशिराजको सेवकोंसहित मारकर भगवान् श्रीकृष्ण द्वारकामें चले आये और वहाँ स्वर्गलोकमें स्थित देवताकी भाँति विहार करने लगे।



धुनिधोने कहा—'मुने! अब हम परम मुनिमान् बलरामजीके शीर्ष और पराक्रमका वृत्तान्त सुनना चाहते हैं। आप उसीका वर्णन कीजिये।

ब्रह्मजी बोले—'मुनियो! बलरामजी इस पृथ्वीको धारण करनेवाले साक्षात् भगवान् शेष हैं। उनकी महिमा अनन्त है। वे अप्रमेय हैं। उन्होंने जो कार्य किये, उसका वर्णन करता हूँ, सुनो। दुर्योधनकी पुत्री कुम्भरी लक्ष्मणा स्वयंवरमें जा रही थी। उस समय जाम्बवतके पुत्र वीरवर साम्बने उसे बलपूर्वक हर लिया। यह देख महापराक्रमी कर्ण, दुर्योधन, भीष्म और द्रोण आदि बहुत क्रुपित हुए। उन्होंने साम्बको युद्धमें जीतकर कैद कर लिया। यह सुनकर सम्पूर्ण यादवोंने दुर्योधन आदिपर बड़ा

प्रेम किया और उनका विनाश कर खत्मके लिये
भी तैयारी की। तब बलरामजीने यदुवंशके एककर
कहा—'मैं अकेला ही कौरवोंके यहाँ जाऊँ हूँ। वे मेरे
कहनेसे साम्बको छोड़ देंगे।' तदनन्तर बलरामजी
हस्तिनापुरमें जाकर बहरके उद्यानमें ठहर गये, नारयण
नहीं गये। बलरामजीको आश्रय जान दुर्योधन आदि
कौरवोंने उन्हे गौ, अर्घ्य और जल पेंट किये। वह
सब विधिपूर्वक स्वीकार करके बलरामजीने कौरवोंसे
कहा—'एक उग्रसेनकी आज्ञा है कि तुम सब लोग
साम्बको शीघ्र छोड़ दो।'

बलदेवजीकी यह बात सुनकर भीष्म, द्रोण,
कर्ण और दुर्योधन आदिके क्रोधकी सीमा न रही,
राजा बाह्मीक आदि भी क्रुपित हो उठे। उन्होंने
यदुकुलकी राज्यके अधिकारसे वञ्चित जान
बलरामजीसे कहा—'बलदेव! तुमने यह कैसी
बात कह डाली। कौन ऐसा यदुवंशी है, जो
कौरवोंको आज्ञा देगा। यदि उग्रसेन भी कौरवोंको
आज्ञा दें, तब तो हमें राजाओंके योग्य श्वेत-छत्र
धारण करनेसे क्या लाभ होगा। अतः तुम लौट
जाओ, साम्बने अन्यायपूर्ण कार्य किया है, अतः
तुम्हारे या उग्रसेनके कहनेसे हम उसे छोड़ नहीं
सकते। हमलोग यदुर्वंशियोंके माननीय हैं। कुकुर
और अन्धक-वंशोंके लोग सदा हमको प्रणाम
किया करते थे। अब ये ऐसा नहीं करते तो न
सही, किंतु स्वामीको सेवककी ओरसे यह आज्ञा
देनेकी बात कैसी। हमने तुमलोगोंको अपने
समान आसन और भोजन देकर जो सम्मानित
किया, उससे तुम्हारा अहंकार बहुत बढ़ गया है।
इसमें तुम्हारा क्या दोष है। हमने ही प्रेमवश नीति
नहीं देखी। बलराम! हमने तुम्हारे लिये जो यह
अर्घ्य निवेदित किया है, इसमें केवल प्रेम ही
कारण है। हमारे कुलकी ओरसे तुम्हारे कुलको
अर्घ्य देना कदापि उचित नहीं है।'

यों कहकर कौरव चुप हो गये। उन्होंने
श्रीकृष्णके पुत्रको बन्धनसे मुक्त नहीं किया। इस

विषयमें उन सबने एक राय कर ली थी। वे सब-
के सब बलरामजीको वहीं छोड़ हस्तिनापुरमें
चले गये। कौरवोंद्वारा किये हुए आक्षेपसे बलरामजीको
बड़ा क्रोध हुआ। वे घूरते हुए उठकर खड़े हो
गये और पैरकी एड़ीसे उन्होंने पृथ्वीपर प्रहार
किया। महारत्न बलरामकी एड़ीके आघातसे पृथ्वी
विदीर्ण हो गयी। वे अपनी गर्जनासे सम्पूर्ण
दिलालोंको गुँजाकर कम्पित करने लगे। वे आँखें
ताल-ताल और भीहँ टेढ़ी करके बोले—'अहो!
इन सराहने दुरात्मा कौरवोंको अपने राजा होनेका
इतना मद्द, इतना अधिमान है! क्या कौरव ही
सच्चाद-पदके अधिकारी हैं? हमलोगोंका प्रभुत्व
कुछ ही कालके लिये है? क्या बात है जो ये
महाराज उग्रसेनकी अलङ्घनीय आज्ञाको भी नहीं
मानते। देवताओं और धर्मके साथ शचीपति इन्द्र
भी उनकी आज्ञाकी प्रतीक्षा करते हैं। इन्द्रकी
सुधर्मा सभामें इस समय सदा महाराज उग्रसेन ही
विराजमान होते हैं। इन कौरवोंका राजसिंहासन
तो सैकड़ों धनुष्योंकी मूठन है, उसीपर इनको
संतोष है! धिक्कार है इन्हें! आजसे उग्रसेन ही
सधरत राजाओंके भी राजा बनकर रहें। अब मैं
इस पृथ्वीको कौरवोंसे हीन करके ही द्वारकापुरीको
लीटूँगा। कर्ण, दुर्योधन, द्रोण, भीष्म, बाह्मीक,
दुःशासन, भूरि, भूरिश्रवा, सोमदत्त, शल तथा
अन्यन्य कौरवोंको उनके हाथी, घोड़े और रथोंके
सहित मार डालूँगा और वीरधर साम्बको उनकी
पत्नीके साथ द्वारकापुरीमें ले जाकर उग्रसेन आदि
बन्धु बान्धवोंका दर्शन करूँगा। अथवा देवराज
इन्द्रकी प्रेरणासे हमें शीघ्र ही पृथ्वीका भार
उठाना है, इसलिये समस्त कौरवोंके साथ उनके
हस्तिनापुर नगरको अभी गङ्गामें डाले देता हूँ।'

यों कहकर क्रोधसे लाल आँखें किये बलभद्रजीने
अपने हस्तका मुख नाँचेकी ओर किया और
कहारदीवारीकी जड़में धँसाकर खींचा। इससे
सम्पूर्ण हस्तिनापुर सहसा डगमगता सा जान



पड़ा यह देख समस्त कौरव व्याकुलचित्त होकर हाहाकार करने लगे और बलरामजीके पास

आकर बोले—‘महाबाहु राम! बलराम!! क्षमा कीजिये, क्षमा कीजिये; मुसलायुध! अपना क्रोध शान्त कीजिये और हमपर प्रसन्न होइये। बलराम। ये पत्नीसहित साम्ब आपकी सेवामें समर्पित हैं। हम आपको प्रभाव नहीं जानते; इसीसे हमलोगोंके द्वारा आपको अपराध हुआ है। अब कृपया उसे क्षमा करें।’ यों कहकर कौरवोंने पत्नीसहित साम्बको बलरामजीके सामने उपस्थित कर दिया। भीष्म, द्रोण और कृपाचार्य आदि बलरामजीको प्रणाम करके प्रिय वचन कहने लगे। तब बलवानोंमें श्रेष्ठ बलरामने कहा—‘अच्छ, मैंने क्षमा कर दिया।’ इस समय भी हस्तिनापुर गङ्गाकी ओर कुछ झुक-सा दिखायी देता है। यह बलवान् और मुरवोर बलरामका ही प्रभाव है। तदनन्तर कौरवोंने बलरामजीके सहित साम्बका पूजन करके बहुत-से दहेज और नववधूके साथ उन्हें दुरकापुरी भेज दिया।

द्विविदका वध, यदुकुलका संहार, अर्जुनका पराभव और पाण्डवोंका महाप्रस्थान

व्यासजी कहते हैं—मुनियो! बलरात्री भगवान् बलरामजीने जो और पराक्रम किया था, वह भी सुनो। द्विविद नामसे प्रसिद्ध एक महापराक्रमी वानर था, जो देवद्रोही दैत्यपति नरकासुरका मित्र था। उसने देवताओंसे वैर खाँध लिया था। वह कहता था, ‘श्रीकृष्णने देवताओंके कहनेसे ही बलवान् नरकासुरका वध किया है, अतः मैं समस्त देवताओंसे इसका बदला लूँगा।’ इस निष्ठायके अनुसार वह यज्ञोंका विध्वंस और मर्त्यलोकका विनाश करने लगा। अज्ञानसे मोहित होनेके कारण उसने साधु पुरुषोंकी मर्यादा तोड़ डाली और देहधारी जीवोंका संहार आरम्भ कर दिया वह चञ्चल वानर देश, नगर और गाँवोंमें

आग लगा देने लगा। कहीं कहीं पर्वत गिराकर गाँवों आदिको कुचल डालता था। पर्वतोंको उखाड़कर समुद्रके जलमें डाल देता था और स्वयं भी समुद्रके भीतर घुसकर उसका मन्थन आरम्भ कर देता था, इससे क्षुब्ध होकर समुद्र अपनी सीमा लाँघकर आगे बढ़ जाता और तटपर बसे हुए गाँवों तथा नगरोंको डुबो देता था। वानर द्विविद इच्छानुसार विशाल रूप धारण करके छेतोंमें सौटता, घूमता और छेतीको कुचलकर नष्ट कर डालता था। उस दुरात्माने सम्पूर्ण जगत्के किरूद्ध कार्य आरम्भ कर दिया था। कहीं कोई स्वाध्याय और वधट्कारका नाम सेनेवाला नहीं था। सब संसार अत्यन्त दुःखित हो गया था।

एक दिन रैवत पर्वतके उद्यानमें बलभद्रजी तथा महाभगा रैवती विहार कर रहे थे। उनके साथ और भी सुन्दर स्त्रियाँ थीं। बलभद्रजी रमणियोंके बीचमें विराजमान थे और वे उनके सुयशका गान कर रही थीं। इसी समय द्विविद भी वहाँ आया और उनके सम्मुख खड़ा हो उन्होंनेकी मकल करने लगा। यह दुष्ट जानर उन युक्तियोंकी ओर देख-देखकर जोर-जोरसे हँसने लगा। यह देखकर बलभद्रजीने कुपित होकर उसे डाँटा, किन्तु उनके डाँटनेकी परवा न करके वह किलकरी मारने लगा। तब बलरामजीने उठकर बड़े रोषके साथ मूसल हाथमें लिया। उधर जानरने भी एक भयंकर शिलाखण्ड टका लिया और उसे बलभद्रजीपर चलाया; किन्तु उन्होंने मूसलसे मारकर उस शिलाके सहर्षों टुकड़े कर दिये। द्विविदने बलरामजीके मूसलका भार बचाकर उनकी छातीपर बड़े वेग और रोषके साथ धूसर मारा। यह देख बलरामजीने भी क्रोधमें भरकर मुँहसे उसके मसकपर प्रहार किया। इससे वह रक्त बगन करता हुआ निजीव होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। गिरते समय उसके शरीरके आघातसे उस पर्वत-शिखरके सैकड़ों टुकड़े हो गये, माने उसपर वह गिरा ही। उस समय देवता बलरामजीके ऊपर फूलोंकी वर्षा तथा उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे और बोले—'घोर! आपने यह बड़ा अच्छा कार्य किया, यह दुष्ट जानर दैत्य-पक्षका सहायक था। इसने सम्पूर्ण जगत्को संकटमें डाल रखा था। सौभाग्यकी बात है कि आज यह मारा गया।'।

इस प्रकार इस वृष्णको धारण करनेवाले परम बुद्धिमान बलरामजीके अनेक अद्भुत पराक्रम हैं, जिनकी कोई गणना नहीं हो सकती।

इस तरह इस जगत्का उपकार करनेके लिये बलरामसहित भगवान् श्रीकृष्णने दैत्यों और दुष्ट राजाओंका वध किया। फिर अर्जुनके साथ मिलकर भगवान्ने अनेक अशौचिणी सेनाओंका वध करतकर इस पृथ्वीका भार उतारा। इस प्रकार सम्पूर्ण दुष्ट राजाओंका संहार करके भूमि उतागनेके

पक्षत् उन्होंने ब्राह्मणोंके शापको निर्मित बनाकर अपने कुलका भी संहार कर डाला। अन्तमें स्वयम्भू श्रीकृष्ण द्वारकापुरी छोड़कर अपने अंशभूत बलराम आदिके साथ पुन, अपने आश्रयभूत परम धामको चले गये।

मुनिकोंने पूछा— ब्रह्मन्! भगवान्ने ब्राह्मणोंके शापको निर्मित बनाकर किस प्रकार अपने कुलका संहार किया?

बलरामजी बोले— एक समयकी बात है— पिण्डारक नामके महाहीनमें विश्वाश्रित कण्व तथा महामुनि नारद पधारे थे। वहाँ यदुकुलके कुमारोंने उनका दर्शन किया। वे सभी कुमार बौद्धिके मतसे उन्मत्त थे, अतः धावीकी प्रेरणासे उन्होंने बाल्यवर्तीकुमार मानवको स्त्रीके वेषमें विभूषित किया और मुनियोंको प्रणाम करके विनोत भावसे पूछा—'महर्षियो! यह स्त्री पुत्रकी अभिलाषा रखती है। बताइये, यह अपने पेटसे क्या जनेगी?' वे महर्षि दिव्य ज्ञानसे सम्पन्न थे,



तथापि यदुकुलसरोंने उनके साथ छल किया। यह देख उनमें क्रान्त पालन करनेवाले उन महर्षियोंने यादोंके नाटक लिये शाप देन हुए कहा—'यह

स्त्री एक मुसल पैदा करेगी, जिससे सम्पूर्ण यदुकुलका संहार हो जायगा।' उनके यों कहनेपर यदुकुम्भरोंने पुरीमें आकर राजा उग्रसेनको सब हाल कह सुनाया। साम्बके पेटसे मुसल पैदा हुआ। उग्रसेनने उस मुसलके लोहेको कुटवाकर चूर्ण बना दिया और उसे समुद्रमें फेंक दिया वह चूर्ण एका नामकी घासके रूपमें उत्पन्न हो गया। मुसलका जो लोहा था, उसे चूर्ण कर देनेपर भी उसका एक टुकड़ा बचा रह गया उसे यादवगण किसी प्रकार भी चूर्ण न कर सके उसकी आकृति तोमरके समान थी। वह टुकड़ा भी समुद्रमें फेंक दिया गया, किंतु उसे एक मत्स्यने निगल लिया। उस मत्स्यको मछेरोंने जाल बिछाकर पकड़ लिया। जब उसका पेट चीरा गया, तब वह लोहा निकला और उसे जरा नामक व्याधने ले लिया। भगवान् श्रीकृष्ण इन सभी बातोंको अच्छी तरह जानते थे तो भी उन्होंने बिधाताके बिधानको बदलना नहीं चाहा। इसी बीचमें देवताओंने भगवान् श्रीकृष्णके पास अपना दूत भेजा। उसने एकान्तमें भगवान्‌को प्रणाम करके कहा: 'भगवन्! यमु, अश्विनीकुमार, मरुद्गण, आदित्य, रुद्र तथा साध्य आदि देवताओंके साथ इन्द्रने मुझे दूत बनाकर भेजा है। प्रभो! देवगण आपसे जो निवेदन करना चाहते हैं, वह इस प्रकार है, सुनिये। देवताओंके प्रार्थना करनेपर आपने जो इस पृथ्वीका भार उतारनेके लिये अवतार लिया था, उसे आज सौ वर्षसे अधिक हो गये। दुष्टचारी दैत्य मारे गये। पृथ्वीका भार उतर गया। अब देवता आपसे सनाथ होकर स्वर्गमें निवास करें। जगन्नाथ! यदि आपको स्वीकार हो ले अब अपने परमधामको पधारें।'

श्रीभगवान् बोले—'दूत! तुम जो कुछ कहते हो, वह सब मैं जानता हूँ। इसीलिये मैंने यादवोंके संहारका कार्य आरम्भ कर दिया है। यदि यदुवंशियोंका संहार न हो तो यह पृथ्वीपर बहुत बड़ा भार रह जायगा, अतः मैं सात रातवे भोतर जल्दी ही इस भारको भी उतार डालूँगा। जिस प्रकार मैंने द्वारकापुरी बसानेके लिये समुद्रसे भूमि माँगी थी, उसी प्रकार उसे वह भूमि लौट भी दूँगा और यादवोंका संहार करके अपने परमधामको जाऊँगा। देवराज इन्द्र तथा देवताओंको यों मानना चाहिये कि मैं बलरामजीके साथ अब अपने धाममें आ ही गया। इस पृथ्वीके भाररूप जो जरामंध आदि राजा थे, वे मारे गये, तथापि इन यदुवंशियोंका भार उनसे भी बढ़कर है, अतः पृथ्वीके इस महाभारको उतारकर ही मैं देवलोककी रक्षाके लिये अपने धाममें जाऊँगा।'

भगवान् वासुदेवके यों कहनेपर देवदूत उन्हें प्रणाम करके दिव्य गतिसे देवराजके समीप चला गया। इधर द्वारकापुरीमें दिन-रात विनाशके सूचक दिव्य, भीम एवं अन्तरिक्षसम्बन्धी उत्पात होने लगे उन्हें देखकर भगवान्ने यादवोंसे कहा—'देखो, ये अत्यन्त भयंकर महान् उत्पात हो रहे हैं इनकी शान्तिके लिये हम सब लोग शीघ्र ही प्रभासक्षेत्रमें चलें।' उस समय महान् भगवद्भक्त उद्धवजीने श्रीहरिको प्रणाम करके कहा: 'भगवन्! अब मुझे क्या करना चाहिये? इसके लिये आज्ञा दें। मैं समझता हूँ आप इस समस्त यादवकुलका संहार करना चाहते हैं, क्योंकि मुझे ऐसे निमित्त दिखायी देते हैं जो इस कुलके विनाशकी सूचना देनेवाले हैं।'

श्रीभगवान् बोले—ठट्टव! तुम मेरी कृपासे प्राप्त हुई दिव्य गतिके द्वारा गन्धमदन पर्वतपर परम पवित्र बदरिकाश्रमतोर्ध्वमें चले जाओ। वह शीनर नागयणक स्थान है। वहाँकी भूमि बड़ी पवित्र है। उस तोर्ध्वमें मेरा चिन्तन करते हुए निवास करो, फिर मेरी कृपासे तुम्हें उत्तम सिद्धि प्राप्त होगी। मैं इस कुलका संहार करके अपने धामको जाऊँगा। मेरे त्याग देनेपर समुद्र इस द्वारकापुरीको डुबो देगा।

भगवान्‌के यों कहनेपर ठट्टवजी उन्हें प्रणाम करके नर नारायणके आश्रयमें चले गये। तदनन्तर सम्पूर्ण यादव शीघ्रगामी रथपर आरुढ़ हो बलराम और श्रीकृष्ण आदिके साथ प्रभासक्षेत्रमें गये। वहाँ पहुँचकर कुकुर और अन्धकवंशके सब लोगोंने प्रसन्नतापूर्वक मदिरा-पान किया। पीते समय उनमें परस्पर संवर्ष हो गया जिससे विनाश करनेवाली कलहाग्नि प्रज्वलित हो उठी। दैवके अधीन होकर उन्होंने एक-दूसरेको शस्त्रोंसे मारना आरम्भ किया। जब शस्त्र समाप्त हो गये, तब पास ही जमी हुई एरका नामकी धास सबने उखाड़ ली। उनके हाथोंमें आनेपर वह एरका वज्रको भीति दिखायी देने लगी उसके द्वारा वे एक-दूसरेपर भयंकर प्रहार करने लगे। प्रद्युम्न, सायब, कृतवर्मा, सात्यकि, अनिरुद्ध, धृष्ट, विषुध, चारुवर्मा, सुचारु तथा अक्रूर आदि सभी यदुवंशी एरकारूप वज्रसे एक-दूसरेको मारने लगे। श्रीहरिने यादवोंको ऐसा करनेसे रोककर किंतु वे उन्हें अपने विपक्षीका सहायक मानने लगे और उनकी अवहेलना करके परस्पर प्रहार करते ही रहे। इससे भगवान् श्रीकृष्णको भी क्रोध हो आया। अतः उन्होंने भी उनका वध करनेके लिये मुद्गोधर एरका उखाड़ ली। हाथमें आते ही वह एरका लोहेका मुसल बन गयी। उस मुखलसे भगवान्‌ने सहस्रा समस्त यादवोंका संहार कर डाला तथा अन्य यादव

आपसमें ही लड़कर नष्ट हो गये। तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णका जैत्र नामक रथ दारुकके देखते देखते समुद्रके मध्यवर्ती मार्गद्वारा शीघ्र ही चला गया। उसमें जुते हुए घोड़े उस रथको लेकर उड़ गये। फिर सङ्ग, चक्र, गदा, शार्ङ्गधनुष, दोनों अक्षय तूणीर और खड्ग—ये सभी अस्त्र-शस्त्र भगवान्‌की परिक्रमा करके सूर्यके मार्गसे चले गये। क्षणभरमें वहाँ सम्पूर्ण यदुवंशियोंका संहार हो गया। केवल महाबाहु श्रीकृष्ण और दारुक रह गये, उन दोनोंने धूमते हुए आगे जाकर देखा, बलरामजी एक वृक्षके नीचे आसन लगाकर बैठे हैं और उनके मुँहसे एक विशाल नाग निकल रहा है। वह महाकाय सर्प उनके मुखसे निकलकर सिद्धों और भागोंसे पूजित हो समुद्रकी ओर चला गया। समुद्रने स्वामने आकर उसे अर्घ्य दिया। तत्पश्चात् वह श्रेष्ठ भागोंसे पूजित हो समुद्रके जलमें प्रवेश कर गया।

इस प्रकार बलरामजीका प्रयाण देखकर श्रीकृष्णने दारुकसे कहा—“तुम दारुकमें जाकर यह सब वृत्तान्त वसुदेवजी तथा रुक्मा उपसेनसे कहो—



“बलरामजी चले गये। यदुवंशियोंका संहार

हो गया और मैं भी योगस्थ होकर परमधामको चला जाऊँगा।' ये सब बातें बतकर द्वारकावासी मनुष्यों और उपसेनसे यह भी कहना कि 'अब इस सम्पूर्ण द्वारकापुरीको समुद्र डुबो देंगे, अतः आपसो यहाँसे जानेंके लिये रथोंको सुसज्जित करके अर्जुनके आग्रामन्को प्रवेश करें। जब अर्जुन द्वारकासे निकले तब कोई भी यहाँ न रहे। सब लोग अर्जुनके साथ ही चले जायें।' इसके। तुम कुन्तीनन्दन अर्जुनसे भी जाकर मेरी ये बातें कहो— 'द्वारकामें जो मेरी स्त्रियाँ हैं, उनके ये यथार्थिक सब कहेंगे।' यह कहकर अर्जुनको साथ ले तुम द्वारकामें आना और सबको बाहर निकाल ले जन्म। अब यदुकुलमें अनिरुद्धकुमार चक्रनाथ रहा होगा।"

यह सुनकर दारुका ने भगवान् श्रीकृष्णको बारंबार प्रणाम किया और अनेक बार उनकी परिक्रमा करके वह उनके कथनानुसार वहाँसे चला गया। उसने जाकर भगवान्की आज्ञाके अनुसार सब कार्य किया। वह अर्जुनको द्वारकामें युत्ता ले आया और महावृद्धिमान् धनको यदुर्धाजयोंका राज बनाया। तब भगवान् श्रीकृष्णने घामुदेवस्वरूप परब्रह्मको अपने अग्र्यामें आरंभित करके सम्पूर्ण भूतोंमें इनके ज्वाला होनेकी धारणा की और योगयुक्त होकर अपने एक पैरको दूसरे पैरके घुटनेपर रखकर बैठे। वे ब्राह्मण दुर्वासोके वचनका मान रखना चाहते थे।" उसी समय जरा धामका व्याध उस ओर आ निकला। उसने मुसलके बचे हुए लोहखण्डका बाण बनाकर उसे धारण कर रखा था। भगवान्का चरण उसे मुण्के आकारका दिखायी दिया। उसे देखकर वह खड़ा हो गया और उसी तीमरसे उसने भगवान्के पैरको बाँध डाला। जब वह उनके समीप गया तब वे उसे खर भुज्जधारी मनुष्यके

रूपमें दृष्टिगोचर हुए। भगवान्को देखते ही वह उनके चरणोंमें पड़ गया और बारंबार कहने लग्य— 'प्रभो! प्रसन्न होइये। मैं अनजानमें हरिके धेखसे यह अपराध किया है, अतः क्षमा कीजिये।'

तब भगवान्ने उससे कहा—'व्याध! मुझे तनिक भी भय नहीं है। तू मेरे प्रसादसे इन्द्रलोकमें चला जा।' भगवान्के इतना कहते ही वहाँ विमान आ पहुँच और वह व्यूध ठमपर बैठकर भगवान्की कृपासे स्वर्गलोकको चला गया। उसके चले जानेपर भगवान् श्रीकृष्णने त्रिविध गतिको पार करके अपने अग्र्याको अव्यय, अचिन्त्य, अप्रमल, अमन्यो, अजर, अविनश्वो, अप्रमेय, अविज्ञातत्वा एवं ब्रह्मभूत अपने ही घामुदेवस्वरूपमें लीन कर लिया।

तत्पश्चात् अर्जुनने सम्पूर्ण यदुर्वीको विभिन्नपूर्वक प्रेतकर्म (और्ध्वदैहिक संस्कार) किया फिर ब्रज आदि सब लोगोंको साथ ले वे द्वारकासे बाहर निकले। श्रीकृष्णकी हजारों पत्नियाँ भी साथ ही



* महाभारतमें प्रसङ्ग आया है कि एक बार यहाँ दुर्वास मन्त्रकृष्णके यहाँ पधारे। भगवान्ने उसका बड़ा ज्वाला करवा दिया। दुर्वासने कहा—'अब मेरी मृत्यु अपने यहाँ करीये लगभग।' मन्त्रकृष्णने ऐसा ही किया किन्तु उसे पैरके बाँधे यहाँ लवाया, इसलिये कि ब्राह्मणकी कुशला अवश्य न हो जय। दुर्वासने कहा, 'यहाँ यहाँ मृत्यु लयी है, यह मरना ब्रह्म दुर्वास होगा और यहाँ यहाँ लगी है यह किसी लगेसे विष लग्य।'।

थीं। उन सबकी रक्षा करते हुए कुन्तीनन्दन अर्जुन भीर-भीर चले। भगवान् श्रीकृष्णने मरत्यलोकेमें जो सुधर्म सभ्र भँगावाये थी, वह और भीरिजात वृष दोनों ही पुनः स्वर्गको चले गये। श्रीहरि जिस दिन इस पृथ्वीको छोड़कर अपने कामको पकड़े, उसी दिन यह मलिनकाय कलिकुल भूतलपर प्रकट हुआ। समुद्रने मनुष्योंसे सूनी द्वारकको हुनो दिया। केवल भागवान् श्रीकृष्णका मन्दिर वह अब भी नहीं हुआ। वहाँ भागवान् श्रीकृष्ण नित्य विराजमान रहते हैं। वह परम पवित्र भगवद्ग्राम सम्पूर्ण पातकोंका नाश करनेवाला है। भगवान् श्रीकृष्णकी सीलाओंसे युक्त उस पवित्र स्थानका दर्शन करनेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

अर्जुन द्वारकावासियोंको साथ ले प्रचुर धन-धान्यसे सम्पन्न पञ्चनद (पंजाब) देशमें जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने सब लोगोंके साथ एक स्थानपर पड़ाव डाला। वहाँ बहुत-से लुटेरे रहते थे। उन्होंने देखा एकमात्र धनुर्धर अर्जुन ही बहुत-सी अनाथ स्त्रियोंको साथ लिये जाता है। तब उनके मनमें लोभ उत्पन्न हुआ। लोभसे उनकी विचारशक्ति नष्ट हो गयी, अतः वे अत्यन्त दुर्मति पापवादी अभिप्रेत होकर आपसमें सलाह करने लगे—'भाइयो! यह अर्जुन अकेला हम सब लोगोंकी अवहेलना करके इन अनाथ स्त्रियोंको लिये जाता है। इसके हाथमें केवल शत्रु है। इसीके बलपर यह हमें कुछ नहीं सम्पन्नता। यह हमारे लिये धिक्कारकी बात है। हम सब लोग बल लगओ।'

ऐसा निश्चय करके लाठी और डेले चलानेवाले डाकू हजाराँकी संख्यामें उन स्त्रियोंपर दूट पड़े। यह देख कुन्तीनन्दन अर्जुनने उनका उपहास-सा करते हुए कहा—'ओ पापियो! यदि तुम्हारी मरनेकी इच्छा न हो तो लौट जाओ।' आभीरोंपर उनकी धमकीका कुछ भी असर न हुआ। उन्होंने अर्जुनके वचनोंकी अवहेलना करके सारा धन लूट लिया। तब अर्जुनने अपने दिव्य गण्डीव धनुषको चढ़ाना आरम्भ किया, किन्तु बलवान्

होनेपर भी वे उसे चढ़ा न सके। बड़ी कठिनाईसे किसी तरह उन्होंने धनुषपर प्रत्यक्षा चढ़ायी थी तो वह पुनः झीली हो गयी तथा उनके बहुत स्पर्श करनेपर भी उन्हें किसी अस्त्र-शस्त्रकी कद न आयी। उन्होंने डाकुओंपर बाण चलाये किन्तु वे बाण उन्हें घायल न कर सके। अग्निदेवके दिये हुए अक्षय काष उन ग्वालोंके साथ युद्ध करनेमें नष्ट हो गये। अर्जुनकी शक्ति भी क्षीण हो गयी। उस समय अर्जुनके मनमें यह निश्चय हुआ कि 'मैंने अपने बाण-समूहोंसे जो बड़े बड़े कलशान् राजाओंको परास्त किया है, वह श्रीकृष्णका ही बल था।' बाणोंके नष्ट हो जानेपर अर्जुनने धनुषकी नेकसे डाकुओंको मारना आरम्भ किया, किन्तु वे उनके इस प्रहारकी हीसी उड़ाने लगे। वे लोच लुटेरे अर्जुनके देखते-देखते वृष्णि और अन्धकवंशकी सुन्दरी स्त्रियोंको लेकर चारों ओर चम्पत हो गये। तब अर्जुनने दुःखी होकर कहा—'हाय! यह बड़े कष्टकी बात हुई अहो! भागवान् श्रीकृष्णने मुझे अकेला छोड़ दिया।' यों कहकर वे फूट-फूटकर रोने लगे और रोते-रोते ही बोले—'हाय! यह बड़ी धनुष है, वे ही बाण हैं, वही रथ और वे ही घोड़े हैं, किन्तु आज सब एक साथ ही नष्ट हो गये। अहो! दैव बड़ा प्रबल है। महत्प्रभु श्रीकृष्णके बिना मुझे सामर्थ्य रहते हुए बीच पुरुषोंसे अपमानित होना पड़ा। वे ही मेरी पुजार्थ, बड़ी मुष्टि और बड़ी धैर्य अर्जुन, किन्तु उन पुण्यपुत्र श्रीकृष्णके बिना आज सब कुछ निष्कार हो गया। मेरा अर्जुनत्व और भीमसेनका भीमत्व भगवान्‌के ही कारण था, तभी तो आज उनके न रहनेपर मुझे आभीरोंमें जीव लिया अन्धका यह कैसे सम्भव था।' इस प्रकार कहते हुए अर्जुन अपने गेह नगर इन्द्रप्रस्थमें गये वहाँ उन्होंने कदवकुमार वक्त्रको यदुवंशियोंका राजा बनाया। कदनन्तर वे वनमें आकर मुझसे मिले और मुझे विनयपूर्वक प्रणाम किया। अर्जुनको अपने चरणोंकी वन्दना करते देख मैंने पूछा—'पाथ!

तुम इस प्रकार अत्यन्त उदास क्यों हो रहे हो? तुमसे किसी ब्राह्मणकी इत्यादि तो नहीं हो गयी है? अथवा विजयकी अपेक्षा भङ्ग होनसे तुम्हें दुःख हो रहा है? इस समय तुम सर्वथा शीहीन हो गये हो। तुमने किसी अगम्य स्त्रीसे रक्षण तो नहीं किया जिससे तुम्हारी कान्ति फीकी पड़ गयी है? या कहीं निम्न श्रेणीके मनुष्योंने तुम्हें बुद्धिमें पगस्त कर दिया है?

मेरे ऐसा प्रश्न करनेपर अर्जुनने हँसी खीस छोड़ते हुए कहा—'भगवन्! सुनिये—जो हमारे तेज, बल वीर्य, पराक्रम, श्री और कान्ति थे, वे भगवान् श्रीकृष्ण हमलोगोंको छोड़कर चले गये। मुने जो महान् होकर भी साधारण मनुष्योंकी भाँति हममें हैंस हैंसकर बातें किया करते थे, उन्हींके बिना आज हम तिनकोंके पुत्रलेकी भाँति सारहीन हो गये हैं। मेरे दिव्यास्त्रों, दिव्य जनों और गाण्डीव धनुषके जो मूर्तिमान् स्वर थे, वे भगवान् पुरुषोत्तम हमें छोड़कर चले गये। जिनकी कृपादृष्टिसे लक्ष्मी, विजय, सम्पत्ति और उन्नतिने कभी हमारा साथ नहीं छोड़ा, वे भगवान् गोविन्द हमें छोड़कर चले गये। जिनके प्रभञ्जकपी अग्निसे भीष्म, द्रोण, कर्ण और दुर्योधन आदि वीर जनक भस्म हो गये, अब भगवान् श्रीकृष्णने इस भूमण्डलको त्याग दिया। तब! चक्रपाणि गेहिवन्दके विरहमें केवल मैं ही नहीं, यह सारी पृथ्वी ही यौवन, श्री और कान्तिसे हीन प्रताप होती है। जिनकी कृपासे भीष्म आदि वीर आगम्य पतङ्गाँकी भाँति मेरे पास आकर भस्म हो गये, आज उन्हीं श्रीकृष्णके बिना मुझे कालोंने हरा दिया। जिनके प्रभञ्जक से गण्डीव धनुष तीनों स्त्रियोंमें विखिल हो चुका था, उन्हीं श्रीहरिके बिना उसे आभोरोंने कुँडोंमें तिरस्कृत कर दिया। महामुने! मेरे साथ कई हजार अनाथ स्त्रियाँ थीं और मैं उनकी रक्षाके लिये पूर्ण यत्न कर रहा था तो भी इन्कुओंने कलत्रन लपेटके यत्नपर उन्हें छोन लिया। पितृमह!

ऐसी अवस्थामें मेरा शीहीन होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। अथर्व तो यह है कि मैं नीच पुत्रवैदर्य अपमानके पङ्कमें खान्न आकर भी निर्लज्जतापूर्वक जीवन धारण कर रहा हूँ।'

जबसब कहते हैं—हिजबरो! पाण्डुनन्दन महामुने अर्जुन अत्यन्त दुःखी और दीन हो रहे थे। उनकी बात सुनकर मैंने कहा—'पार्थ! तुम लज्जा न करो। स्त्रोकमें भी न पड़ो। सोचो और समझो! सम्पूर्ण भूतोंमें कालकी ऐसी ही गति है। पाण्डुनन्दन! प्राणियोंकी उत्पत्ति और अवनतिका कारण काल ही है। यह जो कुछ होता है और हुआ है, सब कालमूलक ही है—यह जानकर तुम धैर्य धारण करो। नदी समुद्र, पर्वत, सम्पूर्ण पृथ्वी, दैवता, मनुष्य, पशु, वृक्ष और सर्प, बिच्छू आदि सब भूतोंको कालने ही उत्पन्न किया है और कालके द्वारा ही पुनः उनका संहार होगा। यह सद्यः प्रपञ्च कासम्भरण ही है—यह जानकर शान्त हो जाओ। धनञ्जय! तुमने श्रीकृष्णकी जैसी महिमा बातलायी है, वह वैसी ही है। उन्होंने पृथ्वीका भार उत्तारनेके लिये ही यहाँ अवतार लिया था। जब पृथ्वीपर भार अधिक हो गया और वह दबने लगी, तब वह देवताओंके पास गयी थी। उसीके लिये इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले श्रीहरिने अवतार ग्रहण किया था। वह कार्य पूरा हो गया। सम्पूर्ण दुष्ट राजा मरे गये तथा वृष्णि और अन्धकवंशज भी संहार हो गया, अब इस भूतलपर भगवान्के करनेयोग्य कोई कार्य शेष नहीं रह गया था, अतः अवतार कार्य पूरा करके वे इच्छानुसार अपने धामको चले गये हैं। देवदेव भगवान् श्रीकृष्ण ही सृष्टिके समय संसारकी सृष्टि और पालनके समय पालन करते हैं तथा वे ही संहारकालमें सम्पूर्ण जगत्का संहार करनेमें समर्थ होते हैं, जैसा कि इस समय भी उन्होंने दुष्ट राक्षसोंका संहार किया था। अतः पार्थ! तुम्हें अपनी पराजयसे दुःख नहीं मानना चाहिये;

क्योंकि अभ्युदयका समय आनेपर ही पुरुषोंद्वारा नड़े-बड़े पराक्रम होते हैं। जिस समय तुमने अकेले ही भीष्म-जैसे वीरोंका वध किया था, उस समय उनका भी क्या अपनेसे न्यून पुरुषके द्वारा पराभव नहीं हुआ था? किंतु वह पराजय कालकी ही देन थी। भगवान् विष्णुके प्रच्छावसे जिस प्रकार तुम्हारे द्वारा उनकी पराजय हुई, उसी प्रकार सुतेरोंके हाथसे तुम्हें भी पराजित होना पड़ा। वे जगत्पति भगवान् श्रीकृष्ण भिन्न-भिन्न शरीरोंमें प्रवेश करके संसारका क्लृप्ति करते हैं और अन्तमें सब जीवोंका संहार कर झलते हैं। जब तुम्हारे अभ्युदयका समय था, तब भगवान् श्रीकृष्ण तुम्हारे सहायक हो गये थे और जब वह समय बीत गया तब तुम्हारे विपक्षियोंपर भगवान्की कृपादृष्टि हुई है। तुम गङ्गावन्दन भीष्मके साथ सम्पूर्ण कौरवोंका संहार कर झलोगे—इस बातपर पहले कौन विश्वास कर सकता था और फिर तुम्हें आभीरोंसे परास्त होना पड़ेगा—यह बात कौन मान सकता था। परंतु दोनों ही बातें सम्भव हुई। पार्थ! यह सम्पूर्ण भूतोंमें श्रीहरिकी लीलाका ही विलास है। अतः तुम्हें तनिक भी शोक नहीं करना चाहिये। सम्पूर्ण जगत्के स्वामी भगवान् श्रीकृष्णने ही सम्पूर्ण पादवोंका संहार किया है।

तुमलोगोंका संहार-काल भी समीप ही है, इसीलिये भगवान्ने तुम्हारे बल, तेज, पराक्रम और महात्म्यका पहले ही संहार कर दिया है। जो जन्म ले चुका है, उसकी मृत्यु निश्चित है। जो ऊँचे चढ़ चुका है, उसका नीचे गिरना भी अवश्यभावी है। संयोगवत् अवसान वियोगमें ही होता है और संग्रह हो जानेके बाद उसका क्षय होना भी निश्चित बात है। यह समझकर विद्वान् पुरुष हर्ष और शोकके बलीभूत नहीं होते और इतर मनुष्य भी उन्हींके आचरणसे शिक्षा लेकर वैसे ही बनते हैं।* ब्रह्मेष्ट! यह समझकर तुम्हें भाइयोंके साथ सारा राज्य छोड़कर तपस्याके लिये वनमें जाना चाहिये। अब जाओ, धर्मराज युधिष्ठिरसे मेरी ये सारी बातें कहो वीर! परसोंतक अपने भाइयोंके साथ जैसे भी हो सके घरसे प्रस्थान कर दो।

यह सुनकर अर्जुनने धर्मराजके पास जा अपनी देखी और अनुभव की हुई सारी बातें कह सुनायीं। अर्जुनके मुखसे मेरा संदेश सुनकर समस्त पाण्डव परोक्षित्को राज्यपर अभिषिक्त करके वनमें चले गये। मुनिवरो! इस प्रकार मैंने आपलोगोंसे यदुकुलमें अवतारण भगवान् श्रीकृष्णकी सम्पूर्ण लीलाओंका विस्तारपूर्वक वर्णन किया।

श्रीहरिके अनेक अवतारोंका संक्षिप्त वर्णन

मुनिवोंने कहा—मुनिश्रेष्ठ! आपने श्रीकृष्ण और बलरामका कैसा अद्भुत माहात्म्य बताया। उनकी महिमा अलौकिक है। इस पृथ्वीपर भगवान्के माहात्म्यकी सर्वा अत्यन्त दुर्लभ है। महभाग! आपके मुखसे भगवत्कथा सुनते-सुनते हमें वृत्ति नहीं होती, अतः उनकी लीलाओंका

पुन वर्णन करीजिये। हमने साधु पुरुषोंके मुखसे सुना है कि पुराणोंमें अमृततेजस्वी भगवान् विष्णुके वाराह अवतारका वर्णन है। जहन्नु! भगवान् नारायणने किस प्रकार वाराहरूप धारण किया? और किस प्रकार अपनी दंष्ट्रासे एकाग्रवर्धे बूजो हुई पृथ्वीका उद्धार किया? सबकी अपनी

* जगत्स्य नियतो मृत्युः पन्नं च तपोमहः । विप्रयोग्यक्षमानस्तु संयोग संचय क्षय ॥

विज्ञाप न बुधा- शोकं न हर्षमुपवर्ण्य ये । देण्येवेतरे चेष्टां शिक्षन्तः सन्ति तादृगा ॥

और आकृष्ट करनेवाले परम बुद्धिमान् भगवान् श्रीहरिको समस्त लीलाओंका हम विस्तारपूर्वक श्रवण करना चाहते हैं।

व्यसजी बोले—मुनिवरो! तुमलोगोंने मुझपर यह बहुत बड़े प्रश्नका भार रख दिया। मैं यथाशक्ति तुम्हारे प्रश्नोंका उत्तर दूँगा। भगवान् विष्णुकी लीला-कथाका श्रवण करो। भगवान् विष्णुके प्रभावको सुननेमें जो तुम्हारा मन सगा है, यह बहुत बड़े सौभाग्यकी बात है। अतः श्रीविष्णुकी जो जो लीलाएँ हैं, उन सबका वर्णन सुनो वेदवेत्ता ब्राह्मण जिन्हें सहस्रमुख, सहस्रनेत्र, सहस्रचरण, सहस्रशिर, सहस्रकर, अविनाशी देव, सहस्रजिह्वा, भास्वान्, सहस्रपुच्छ, प्रभु, सहस्रदाता, सहस्रादि, सहस्रबाहु, इषन, सवन, होत, इक्ष्व, यज्ञपात्र, पवित्रक, वेदी, दीक्षा, समिधा, सुवा, सुक् सोम सूप मसल, प्रोक्षणी, दक्षिणायन, अध्वर्यु, सामग ब्राह्मण, सदस्य, सदन, सभा, यूप, यक्र, ध्रुवा, दर्वी, चरु, उलूखल, प्राग्वंश, यज्ञभूमि, छोट-बड़े चरणचर जीव, प्राग्वंश, अध्व, स्थण्डिल, कुश, मन्त्र, यज्ञको बहन करनेवाले अग्निदेव, यज्ञभाग, भागवाहक, अग्राशनभोजी, सोमभोक्ता, हुताग्नि उदायुध तथा यज्ञमें सनातन प्रभु कहते हैं। उन श्रीवत्सन्निहविभूषित देवेश्वर भगवान् विष्णुके सहस्रों अवतार हो चुके हैं और समय-समयपर होते रहते हैं उनका जो वाग्वह अवतार है, वह वेदप्रधान यज्ञस्वरूप है। चारों वेद उनके चरण और यूप उनकी दाढ़ें हैं। यज्ञ दौत और चित्तियाँ मुख हैं। साक्षात् अग्नि ही उनकी जिह्वा, कुज रामावालि और ब्रह्म मस्तक है। उनका तप महान् है दिन और रात्रि उनके नेत्र हैं। वे दिव्यस्वरूप हैं वेद उनका अङ्ग और श्रुतियाँ आभूषण हैं। हविष्य नामिका, सुवा घृधुन और सामवेदका गम्भीर घोष ही उनका स्वर है। वे सत्य धर्मस्वरूप श्रीसम्पन्न तथा क्रम (गति) और विक्रम (पराक्रम) के द्वारा सम्मानित हैं। प्रायश्चित्त

उनके नख, पशु उनके घुटने तथा यज्ञ उनका स्वरूप है। उद्गाता अन्न (अँत) होम लिङ्ग, ओषधि एवं महान् फल बीज हैं। वादी अन्तरात्मा, मन्त्र नितम्ब और सोमरस उनका रक्त है। वेदी कंधा, हविष्य गन्ध तथा हव्य और गव्य उनका प्रचण्ड वेग है। प्राग्वंश (यजमान-गृह) उनका शरीर है। वे परम कान्तिमान् और नाना प्रकारकी दीक्षाओंसे सम्पन्न हैं। दक्षिण उनका हृदय है। वे महान् योगी और महायज्ञमय हैं। उपाकर्म (वेदोंका स्वाध्याय) उनका द्वार और प्रवर्ग (एक प्रकारकी होमाग्नि) उनका आभूषण है। नाना प्रकारके छन्द उनके चलनेके मार्ग हैं। गूढ उपनिषद् उनके बैठनेके लिये आसन हैं। पृथ्वीकी छायास्वरूप पत्नी सदा उनके साथ रहती हैं, वे मणिमय शिखरकी भाँति पानीके ऊपर प्रकट हुए समुद्र, पर्वत, वन और काननोंसहित समस्त पृथ्वी एकाग्रधके जलमें डूबी थी। सम्पूर्ण जगत्के आदि कारण और सहस्रों मस्तकोंवाले भगवान्ने वाराहरूपमें प्रकट होकर एकाग्रधमें प्रवेश किया तथा सब लोकोंका हित करनेकी इच्छासे पृथ्वीको अपनी दाढ़पर उठा लिया। इस प्रकार समस्त जीवोंके हितैषी भगवान् यज्ञवाराहने समुद्र-जलको धारण करनेवाली समुची पृथ्वीको उद्धार किया।

द्विजवरो! यह वाराह-अवतारका वर्णन हुआ। उसके बाद भगवान्का नरसिंह अवतार हुआ। उस अवतारमें भगवान्ने नरसिंहरूप धारण करके हिरण्यकशिपु नामक दैत्यका वध किया था प्राचीन कालके सत्ययुगकी बात है, दैत्योंके आदिपुरुष देवशत्रु बलाधिमान्नी हिरण्यकशिपुने बड़ी भारी तपस्या की। वह साढ़े ग्यारह हजार वर्षोंतक शम-दम तथा ब्रह्मचर्यका पालन करता हुआ मीनव्रत लेकर जप और उपवासमें संलग्न रहा। उसकी तपस्या और नियम-पालनसे स्वयम्भू भगवान् ब्रह्माजी बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने हंससे जुड़े हुए सूर्यके समान तेजस्वी जिमान्द्वारा स्वयं

आकर दैत्यको वरदान दिया। उनके साथ आदित्य, वसु, मरुत्, देवता, रुद्राणि और विश्वेदेव भी थे। ब्रह्माजीने ब्रह्म ब्रह्मचरगुरु ब्रह्माजीने इस दैत्यसे कहा—‘सुव्रत! तुम मेरे भक्त हो। मैं तुम्हारी इस तपस्यासे बहुत प्रसन्न हूँ। तुम्हारा कल्याण हो। तुम कोई वर माँगो और उसके द्वारा अभीष्ट वस्तु प्राप्त करो।’

हिरण्यकशिपु बोले—लोकपितामह! देवता, असुर, गन्धर्व, यक्ष, नाग और राक्षस मुझे धार न सकें। तपस्वी ऋषि भी क्रोधमें आकर मुझे स्पर्श न दें। किसी अस्त्र या शस्त्रसे, वृक्ष या पर्वतसे, अधवा सूखी या गीली वस्तुसे, ऊपर या नीचे—कहीं भी मेरी मृत्यु न हो। जो मेरे सेवक, सेना और बाहर्णासहित मुझे एक ही ध्वजसे भार डालनेमें समर्थ हो, उसीके हाथसे मेरी मृत्यु हो।

ब्रह्माजीने कहा—जत! ये दिव्य और अद्भुत वर देने तुम्हें दिये। इन सम्पूर्ण अभीष्टोंको तुम त्रिसन्देश प्राप्त करोगे।

यों कहकर पितामह ब्रह्माजी ब्रह्मविष्णुओंसे संवित श्रृंगपद—ब्रह्मश्रमको चले गये। तदनन्तर उस वरदानकी बात सुनकर देवता, नाग, गन्धर्व और मनुष्य ब्रह्माजीकी सेवामें उपस्थित हुए और बोले—‘भगवन्! इस वस्तुसे तो वह असुर हमलोगोंको सदा ही कष्ट पहुँचाता रहेगा, अतः हमारे क्रोध प्रसन्न हो उसके वधका भी उपाय सोचिये।’

ब्रह्माजीने कहा—देवताओं! उसे अपनी तपस्याका फल अवश्य प्राप्त होगा। उसका भोग समाप्त होनेपर वह साक्षात् भगवान् विष्णुके हाथसे मारा जायगा।

ब्रह्माजीका यह वचन सुनकर सब देवता प्रसन्न हो अपने-अपने दिव्य स्थानोंको चले गये। वर पाते ही दैत्यराज हिरण्यकशिपु अभिमानमें आकर समस्त प्रजाको कष्ट देने लगा। आश्रयमें रहनेवाले सत्यधर्मपरायण, जिनेन्द्रिय एवं उत्तम

व्रतधारी महामान् मुनियोंको भी उसने सताना अग्रभ्यं कर दिया। स्वर्गके देवताओंको हराकर तीनों लोकोंको अपने अधीन करके वह महाबली असुर स्वयं ही स्वर्गमें रहने लगा। वरदानके बदले उन्मत्त होकर पृथ्वीपर विचरते हुए उस दानवने दैत्योंको तो चञ्चका भागी बनाया और देवताओंको उससे वञ्चित कर दिया। तब आदित्य, वसु, साध्य, विश्वेदेव और मरुत् शरणाग्रतरक्षक मनातन प्रभु महाबली भगवान् विष्णुकी शरणमें गये और इस प्रकार बोले—‘देवेश्वर! आप हिरण्यकशिपुके भयसे हमारी रक्षा करें। आप ही हमारे परम देवता, परम गुरु और परम विश्वात्मा हैं। सुरा्रेष्ठ! आप ब्रह्मा आदि देवताओंके भी पालक हैं। आपके नेत्र विकसित कमलदलके समान लोभ्य होते हैं। आप सत्रुपक्षका नाश करनेवाले हैं। भगवन्! हमें क्षण दीर्घिवे और दैत्योंका संग्रह कीजिये।’

भगवान् वासुदेवने कहा—देवताओ! भय छोड़ो। मैं तुम्हें अभय देता हूँ। तुम शीघ्र ही पहलेकी भाँति स्वर्गलोकको प्राप्त करोगे। मैं वरदानसे उन्मत्त दानवा राज हिरण्यकशिपुको, जो देवेश्वरोंके लिये अवध्य हो रहा है, उसके सेवकगणोंसहित मार डालूँगा।

यों कहकर भगवान् उन देवेश्वरोंको विदा करके स्वयं हिरण्यकशिपुके स्थानपर आये। उस समय उन्होंने आधा शरीर मनुष्यका और आधा सिंहका बना रखा था। इस प्रकार नृसिंहदेह धारण किये हाथ-पै हाथ मिलाये हुए आये। उनके शरीरका वर्ण मेघके समान श्याम था। शब्द भी मेघको गर्जन्के समान ही गम्भीर था। ओज और वेगमें भी वे मेघके ही सदृश थे। मत्वाले सिंहके समान उनकी चाल थी। यद्यपि हिरण्यकशिपु ज्ञाताभिमानी दैत्योंसे मुरझित और अत्यन्त बलशाली था तो भी भगवान् उसे एक ही ध्वजसे मारकर यमलोक पहुँचा दिया।



यह नृसिंह अवतारकी कथा कही गयी। अब मामन-अवतारका वर्णन सुनो। भगवान्‌का खमनकम दैत्योंका विनाश करनेवाला था। उस रूपको धारणकर श्रीहरि बलवान्‌ बलिके यज्ञमें गये और वहाँ उन्होंने अपने तीन ही पाणोंसे त्रिलोकीको नापकर सम्पूर्ण दैत्योंको शुद्ध कर डाला। बलिके हाथसे सम्पूची पृथ्वी लेकर भगवान्‌ने इन्द्रको दे दी। यही महत्त्व श्रीविष्णुका खमन अवतार है। केदरेका ब्रह्मन् भगवान्‌ खामनके यत्नसे सदा जन करते हैं।

सदनन्तर भगवान्‌ विष्णुने दत्तात्रेय नामक अवतार धारण किया। दत्तात्रेयजीमें शम्भुकी पराकल्य थी उस समय वेद, वेदोंकी प्रक्रिया और यज्ञ—सभी नष्टप्राय हो गये थे। चारों वर्णोंमें संकरता आ गयी थी। धर्म लिपिल हो चला था। अधर्म बड़े जोरोंके साथ बढ़ रहा था। सत्य मिटता जाता था और सब ओर असत्यका बोलवाला था। प्रजा क्षीण हो रही थी और धर्म पाखण्डमिश्रित हो गया था। ऐसे समयमें भगवान्‌ दत्तात्रेयने यज्ञ तथा क्रियाओंसहित वेदोंका पुनरुद्धार किया और चारों वर्णोंको पृथक् पृथक् करके

उन्हें व्यवस्थितरूप दिया। दत्तात्रेयजी परम बुद्धिमान्‌ और करदायक थे, उन्होंने हैहयराज कार्तवीर्यको यह वर दिया था कि 'राजन्‌! तुम्हारी ये दो भुजाएँ मेरी कृपासे एक हजार हो जायेंगी। वसुधापते! तुम सम्पूर्ण वसुधाका पालन करोगे जिस समय तुम युद्धमें लड़े होंगे, तुम्हारे शत्रु तुम्हें आँख ठठाकर देख भी नहीं सकेंगे—तुम उनके लिये अजेय हो जाओगे।'।

यह श्रीविष्णुके दत्तात्रेयावतारकी चर्चा की गयी। इसके बाद भगवान्‌ने परशुरामावतार ग्रहण किया। राजा कार्तवीर्य अर्जुन अपनी सहस्र भुजाओंके कारण युद्धमें शत्रुओंके लिये दुर्जय था तो श्री परशुरामजीने उसे सेनाके बीचमें मार



डाला। राजा अर्जुन रक्षक बैठा था, किन्तु परशुरामजीने उसे धरतीपर गिरा दिया और छत्तीस चढ़कर तीखे फरसेके द्वारा उसकी हजारों भुजाएँ काट डालीं। उस समय कार्तवीर्य बड़े जोर जोरसे चीखता, चिल्लाता रहा। उन्होंने मेरुगिरिसे विभूषित समस्त पृथ्वीपर करोड़ों क्षत्रियोंकी लाशें बिछा दीं, इसीसे बार भूतलको क्षत्रियोंसे शून्य कर

दिया और अपने समस्त पार्श्वोंका ब्रह्म करनेके लिये उन्होंने अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान किया। उस यज्ञमें भृगुनन्दन परशुसमने कश्यपजीको सारी पृथ्वी दक्षिणारूपमें दे दी। साथ ही बहुत-से हाथी, घोड़े, सुन्दर रथ और गौएँ भी दान कीं। आज भी वे विश्वका कल्याण करनेके लिये घोर तपस्या करते हुए महेन्द्र पर्वतपर निवास करते हैं।

यह सन्तान परमेश्वर श्रीहरिके परशुरामरूपका परिचय दिया गया। चौबीसवें व्रतायुगमें भगवान् दशरथनन्दन कश्यपनयन श्रीरामके रूपमें अवतार लिया। भगवान् विष्णु उस समय बार वर्षोंमें प्रकट हुए थे। उनका तेज सूर्यके समान था। वे लोकमें श्रीरामके नामसे विख्यात हुए और विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षाके लिये उनके पीछे-पीछे गये। महाकश्यपी श्रीराम सब लोगोंको प्रसन्न रखने, राक्षसोंको धरने और धर्मकी वृद्धि करनेके लिये अवतीर्ण हुए थे। कहते हैं, राजा श्रीराम सदा सब भूतोंका हित करनेके लिये तत्पर रहते थे। वे सम्पूर्ण धर्मोंके ज्ञाता थे। उन्होंने लक्ष्मणको साथ ले चौदह वर्षोंतक वनमें निवास किया था। उनके साथ उनकी कन्या सीता भी गयी थीं, जो प्रतिपत्नी लक्ष्मी थीं। जनम्यानमें निवास करते हुए श्रीरामने देवताओंके अनेक कर्म सिद्ध किये। उन्होंने रावणके द्वारा अपहृत सीताका पता लगाकर उन्हें प्राप्त किया और रावणका वध किया। पुलस्त्यवंशी राक्षसराज रावण देवता, असुर, यक्ष, राक्षस और नगोंके लिये भी अश्वमेध था। युद्धमें उसको जीतना बहुत ही कठिन था। उसका शरीर कज्जलरसिके समान कस्ता था। उसे कोटि कोटि राक्षस सदा घेरे रहते थे। वह तीनों लोकोंको चार भगानेवाला, क्रूर, दुर्बल, दुर्धर, गर्वयुक्त, सिंहके समान पराक्रमी और वरदानसे उन्मत्त था। देवताओंके लिये तो उसकी ओर देखना भी कठिन था। ऐसे रावणको भगवान् श्रीरामने सेना और सर्ववोमहित संग्राममें धर

हास्य। इसके पहले उन्होंने और भी कई अलौकिक कर्म किये थे। अपने मित्र सुग्रीवके लिये उन्होंने महाकली चानरराज वालीको मारा और सुग्रीवकी किष्किन्धाके राज्यपर अभिषिक्त किया। मधुका पुत्र लवण नामका दानव मधुवनमें रहता था। वहाँ वीर तो था ही, वर पाकर मतवाला हो ठठा था। उसे भगवान्ने शत्रुघ्नके रूपमें जाकर मारा। मारीच और सुबाहु नामके दो बलवान् राक्षस थे, जो युद्ध अन्तःकरणवाले मुनियोंके यज्ञोंमें विघ्न डाला करते थे। उनको और उनके साथी अन्य राक्षसोंको भी युद्धकुरात महात्मा श्रीरामने मार गिराया। विराध और कबन्ध दो बड़े धर्मकर राक्षस थे। वे पूर्वजन्ममें गन्धर्व थे, किन्तु शापसे मोहित होकर राक्षसभावको प्राप्त हुए थे। उन्हें भी भरद्वाज श्रीरामने मारकर शापमुक्त कर दिया। श्रीरामके साथ अग्नि, सूर्यकिरण और विद्युत्के समान तेजस्वी, तपाये हुए स्वर्णसे युक्त विभिन्न पंखोंसे सुशोभित तथा महेन्द्र-वज्रके सदृश सारयुक्त थे। उनकी द्वारा उन्होंने युद्धमें शत्रुओंका नाश किया। परम बुद्धिमान् महर्षि विश्वामित्रने देवताओंके लिये भी दुर्धर दैत्योंका वध करनेके लिये श्रीरघुनाथजीको अनेक दिव्य अस्त्र-शस्त्र प्रदान किये थे। पूर्वकालमें, जब कि महात्मा राजा जनकके यहाँ बड़ा हो रहा था, श्रीरामने खेलते ही महेन्द्रके धनुषको तोड़ डाला था। धर्मात्माओंमें केवल श्रीरघुनाथजीने ये सब अलौकिक कर्म करके दस अश्वमेध यज्ञ भी किये थे, जो बिना किसी विघ्न-बाधाके पूर्ण हुए थे। श्रीरामचन्द्रजीके राज्य करते समय कभी अमङ्गलकी बात नहीं सुनी गयी। हवा ठेक नहीं चलती थी। कोई किसीका धन नहीं चुराता था। न कभी विधवाओंके विलाप सुने जाते और न अनर्थकरी ही प्राप्ति होती थी। उस समय सब कुछ शुभ-ही शुभ होता था। प्राणियोंकी जल, अग्नि अथवा आँधीसे कभी धम नहीं होता था। बूढ़ोंके बालकोंको प्रेतक्रिया नहीं

करनी पड़ती थी। क्षत्रिय ब्राह्मणोंको परिचर्या करते थे। वैश्य क्षत्रियोंके प्रति श्रद्धा रखते थे और शुद्र अहंकार छोड़कर ब्राह्मण आदि तोंनों वर्णोंकी सेवा करते थे। श्रीरामके राज्यमें स्त्रियाँ अपने पतिके सिवा दूसरे किसी पुरुषमें आसक्त नहीं होती थी और पुरुष भी अपनी पत्नीको छोड़ किसी दूसरी स्त्रीपर कुदृष्टि नहीं ठासते थे। उस समय सारा जगत् जितेन्द्रिय था। पृथ्वीपर डकुओंका कहीं नाम भी नहीं था। एकमात्र शोराम ही सबके स्वामी और संरक्षक थे। उनके शासनकालमें मनुष्य हजारों वर्ष जीवित रहते और वे सहस्रों पुत्रोंके पिता होते थे किसी भी प्राणीको रोग नहीं सलाता था। रामराज्यमें इस भूतलपर देवता, ऋषि और मनुष्य एक साथ एकत्रित होते थे। पुराणवेत्ता पुरुष इस विषयमें एक गाथा कहा करते हैं—“श्रीरघुनाथजीका वर्ण क्याप और अवस्था युवा है, उनके नेत्र कुछ-कुछ लक्ष्मिन् लिये हुए हैं, मुखसे तेज बरसता रहता है, वे बहुत कम बोलते हैं। उनकी लंबी भुजाएँ घुटनोंतक पहुँचती हैं; उनका मुख बड़ा सुन्दर है। कंधे सिंहके सदृश हैं। महाबाहु श्रीरामने दस हजार वर्षोंतक राज्य किया। उनके राज्यमें सदा ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेदका श्रेष्ठ मुद्राकी देता था। धनुषकी टंकार भी सर्वदा कानोंमें आती रहती थी। ‘दान करो और स्वयं भी भोगो’ का उपदेश कभी बंद नहीं होता था। दत्तमन्त्रनन्दन श्रीराम सत्त्ववान् और गुणवान् होनेके साथ ही सदा अपने तेजसे देदीप्यमान रहते थे। उनकी सूर्य और चन्द्रमासे भी अधिक शोभा होती थी।”

यह श्रीरामावतारका वर्णन हुआ। इसके बाद

श्रीहरिक अवतार मधुरामें हुआ था। वह श्रीकृष्णके नामसे विख्यात हुआ। भगवान् श्रीकृष्ण सम्स्त संसारका हित करनेके लिये अवतारों हुए थे।



उन्होंने मानव-शरीर धारण करके शास्त्र, शिशुपाल, कंस, द्विषिद, अरिष्ट, वृषभ, केशी, दैत्यकन्या पूतन्व, कुवलयापीड हाथी तथा बाणूर और मुष्टिक नामके पक्षोंका वध किया। अद्भुत कर्म करनेवाले बाणसुरकी हजार भुजाएँ काट डालीं पुरुषोंमें बाणसुरका संहार किया और महाबली कालयवनको भी धर्म करा दिया। भगवान्ने अपने तेजसे दुष्ट दुष्टको रज्जुओंके समस्त रत्न हर लिये और उन्हें पीतके घाट उतार दिया। यह अवतार सम्पूर्ण लोकोका हित-सन्धन करनेके लिये हुआ था।

इसके बाद विष्णुयज्ञा नामसे प्रसिद्ध कल्कि अवतार होनेवाला है। भगवान् कल्कि शम्भल

। स्वामी युवा स्नेहितको दीक्षायां पितृभाषित ॥

आजानुवाहुः सुमुखः सिंहसन्धो महाबुधः दत्तमन्त्रसन्धो रामो राज्यप्रकाशयत् ॥
श्रवसापवयुर्वा शोभो ज्वालोषक महामनः अयुष्मिन्नाऽभवदष्टे दीवता भुज्यतामिति ॥
सत्त्ववान् गुणसम्पन्नो दीप्यमानः स्वर्गेवसत् अति चन्द्रं च सूर्यं च रामे दृशार्थवर्धनी ॥

समस्त गाँवमें अवतीर्ण होंगे। उनके अवतारका उद्देश्य भी सब लोकोंका हित करना ही है। वे तथा और भी अनेक दिव्य अवतार हैं, जो पुराणोंमें ब्रह्मवादी पुरुषोंद्वारा वर्णित हैं। भगवान् के अवतारोंका वर्णन करनेमें देवता भी मोहित हो जाते हैं। पुराण वेदोंकी बुक्तियोंद्वारा समर्थित हैं। इस प्रकार यह अवतार-कथा संक्षेपसे कही गयी। जो सम्पूर्ण लोकोंके गुरु और सदा कीर्तन करनेयोग्य हैं, उन भगवान् विष्णुके अवतारोंका वर्णन किया

गया। इसके कथितनसे पितरोंको प्रसन्नता होती है। जो इस जगहकर अक्षितपतकामी श्रीविष्णुके अवतारकी कथा सुनता है, उसके पितर भी अमृत तृप्त होते हैं। योगेश्वर भगवान् श्रीहरिकी योगमायाका वर्णन सुनकर मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है और भगवान् के कृपासे शान्त ही उसे श्रद्धा, समृद्धि तथा प्रभु भोगोंकी प्राप्ति होती है। मुनिवरों! इस प्रकार मैंने अमिततेजस्वी श्रीहरिके सर्वपापहारी पवित्र अवतारोंका वर्णन किया।

यमलोकके मार्ग और चारों द्वारोंका वर्णन

मुनि बोले—ब्रह्मन्! आपके मुखसे निकले हुए पुण्यधर्ममय वचनामृगोंसे हमें तृप्ति नहीं होती। अपितु अधिकधिक सुननेकी उत्कण्ठ बढ़ती जाती है। मुने! आप परम बुद्धिमान् हैं और प्राणिज्योंकी उत्पत्ति, सब और कर्मगतिको जानते हैं, इसलिये हम आपसे और भी प्रश्न करते हैं। सुननेमें अज्ञात है कि यमलोकका मार्ग कहाँ दुर्गम है। वह सदा दुःख और क्लेश देनेवाला है तथा समस्त प्राणिज्योंके लिये भयंकर है। उस मार्गकी लंबाई कितनी है तथा मनुष्य उस मार्गसे यमलोककी यात्रा किस प्रकार करते हैं? मुने! कौन-सा ऐसा उपाय है, जिससे मरनेके दुःखोंकी प्राप्ति न हो?

ब्रह्मसजीने बोले—उत्तम कर्मका फलन करनेवाले मुनिवरों! सुनो। यह संसारकक प्रवाहरूपसे निरन्तर चलता रहता है। अब मैं प्राणिज्योंकी मृत्युसे लेकर आगे जो अवस्था होती है, उसका वर्णन करूँगा। इसी प्रसङ्गमें यमलोकके मार्गका भी निर्णय किया जायगा। यमलोक और मनुष्यलोकमें छियासी हजार योजनाओंका अन्तर है। उसका मार्ग तपाये हुए तथेकी भाँति पूर्ण तप्त रहता है। प्रत्येक जीवकी यमलोकके मार्गसँ जाना पड़ता है। पुण्यात्मा पुरुष पुण्यलोकोंमें और नीच पापघारी मानव पापमय लोकोंमें जाते हैं। यमलोकमें

चाँदस नरक हैं, जिनके भीतर पापी मनुष्योंको पुष्क-पुष्क यागनाई दी जाती है। उन नरकोंके नाम ये हैं—नरक, वैश्व, वीर, सुकर, तल, कुम्भीपाक, महाभोर, हात्थल, विषोदहन, कीटार, कृमिभक्ष, स्वात्माभक्ष, धम, पीच बहानेवाली नदी, रक्त बहानेवाली नदी जल बहानेवाली नदी, अग्निज्वाल, महारौद्र, संदल, शुनभोजन, घोर बैतरणी और अक्षिप्रथन। यमलोकके मार्गमें न तो कहीं बुझाकी छाया है न ठोलाब और पोछो है, न बावड़ी न पुष्करिणी है, न कूप हैं न पीसले हैं, न धर्मजला है न मण्डप है, न धर है न नदी एवं पर्वत हैं और न ठहरनेके योग्य कोई स्थान ही है, जहाँ अत्यन्त कष्टमें पड़ा हुआ बका-मौँटा जीव विश्राम कर सके। उस महान् पथपर सब पक्षियोंको निहत हो जाना पड़ता है। जीवकी यहाँ जितनी आयु नियत है, उसका भोग पूरा हो जानेपर इच्छा न रहते हुए भी उसे प्राणोंका त्याग करना पड़ता है। अस्त, अग्नि, विष, धुआँ, रोग अथवा पर्वतसे गिरने आदि किसी भी निमित्तको संस्कार देहधारी जीवका मृत्यु होती है। पाँच भूतोंसे घने हुए इस विशाल शरीरको छोड़कर जीव अपने कर्मानुसार यज्ञना भोगनेके योग्य दूसरा शरीर धारण करता है। उसे सुख और दुःख भोगनेके लिये सदा

शरीरकी प्राप्ति होती है। पापाचारों मनुष्य उसी देहसे अत्यन्त कष्ट भोगता है और धर्मरत्न मनुष्य प्रसन्नतापूर्वक सुखका भागी होता है।

शरीरमें जो गर्मी या पित्त है, वह तीव्र वायुसे प्रेरित होकर जब अत्यन्त कुपित हो जाता है, उस समय बिना ईश्वरके ही ठहीस हुई अग्निकी भाँति बड़कर धर्मस्थानोंको विदीर्ण कर देता है। तत्पश्चात् उदान नामक वायु ऊपरको ओर उठता है और छाये-पोंये हुए अन्न-जलको नीचेकी ओर जानेसे रोक देता है। इस आपत्तिकी अवस्थामें भी उसीको प्रसन्नता रहती है, जिसने पहले जल, अन्न एवं रसकर दान किया है जिस पुरुषने ब्रह्मसे पवित्र किये हुए अन्न-करणके द्वारा पहले अन्न-दान किया है वह उस सम्पन्नवस्थामें अन्नके बिना भी सुखलाभ करता है। जिसने कभी मिथ्याभक्षण नहीं किया, दो प्रेमियोंके पारस्परिक प्रेममें बाधा नहीं डाली तथा जो आत्मिक और ब्रह्मात्मा है, वह सुखपूर्वक मृत्युको प्राप्त होता है। जो देवता और ब्राह्मणोंकी पूजामें संलग्न रहते किसीको निन्द्य नहीं करते तथा साम्बिक, उदार और लज्जाशील होते हैं, ऐसे मनुष्योंको मृत्युके समय कष्ट नहीं होता। जो कामनासे, क्रोधसे अथवा द्वेषके कारण धर्मका त्याग नहीं करता, शास्त्रोक्त आज्ञाका पालन करनेवाला तथा सौम्य होता है, उसकी मृत्यु भी सुखसे होती है। जिन्होंने कभी जलकर दान नहीं किया है उन मनुष्योंको मृत्युकाल उपस्थित होनेपर अधिक जलन होती है तथा अन्नदान न करनेवालोंको उस समय भूखकर भारी कष्ट भोगना पड़ता है जो लोग जाड़ेके दिनोंमें लकड़ी दान करते हैं, वे शीतके कष्टको जीत लेते हैं। जो वन्दन दान करते हैं, वे तपपर विजय पाते हैं तथा जो किसी भी जीवको उद्वेग नहीं पहुँचाते, वे मृत्युकालमें प्राणघातिनी क्लेशमय वेदनाका अनुभव नहीं करते। जानन्दता पुरुष मोहपर और दीपदान करनेवाले अन्धकारपर विजय पाते हैं।

जो झूठी गवाही देते, झूठ बोलते, अधर्मका उपदेश देते और वेदोंको निन्द्य करते हैं, वे सब लोग मूर्च्छाग्रस्त होकर मृत्युको प्राप्त होते हैं।

ऐसे लोगोंकी मृत्युके समय यमराजके दूत दूत हाथोंमें हथौड़ी एवं मुद्गर लिये आते हैं, वे बड़े धक्के करते हैं और उनकी देहसे दुर्गन्ध निकलती रहती है। उन यमदूतोंपर दृष्टि पड़ते ही मनुष्य काँप उठता है और भ्राता, माता तथा पुत्रोंका नाम लेकर भारंवार चिल्लाने लगता है। उस समय उसकी घाणी स्मृत सम्झमें नहीं आती। एक ही सन्ध, एक ही आवाज-सी जान पड़ती है। भयके घरे रोगोंकी आँखें खुलने लगती हैं और उसका मुख सूख जाता है। उसकी सौंस ऊपरको उठने लगती है। दृष्टिकी शक्ति भी गह हो जाती है। फिर वह अत्यन्त वेदनासे पीड़ित होकर उस शरीरको छोड़ देता है और वायुके सहारे चलता हुआ वैसे ही दूसरे शरीरकी धारण कर लेता है जो रूप, रंग और अवस्थामें पहले शरीरके समान ही होता है। वह शरीर माता-पिताके गर्भसे उत्पन्न नहीं कर्मजनित होता है और वातव्य भोगनेके लिये ही मिलता है, उसीसे वातना भोगनी पड़ती है। तदनन्तर यमराजके दूत लीज ही उसे वातव्य पार्श्वोंसे बाँध लेते हैं। मृत्युकाल आनेपर जीवको बड़ी वेदना होती है, जिससे वह अत्यन्त व्याकुल हो जाता है। उस समय सब भूतोंसे उसके शरीरका सम्बन्ध टूट जाता है। प्राणवायु कण्ठतक आ जाती है और जीव शरीरसे निकलते समय जोर-जोरसे रोता है। माता, पिता, भाई, मामा, स्त्री, पुत्र, मित्र और गुरु—सबसे ज़ता झूट जाता है। सभी सगे-सम्बन्धी नेत्रोंमें आँसू भरे दुःखी होकर उसे देखते रह जाते हैं और वह अपने शरीरकी त्यागकर यमलोकके मार्गपर वायुरूप होकर चला जाता है।

वह भार्य अन्धकारपूर्ण अपार, अत्यन्त भयंकर तथा पापियोंके लिये अत्यन्त दुर्गम होता है।

यमदूत पक्षियों में बाँधकर उसे खींचते और मुद्गरों से पीटते हुए उस विस्मय पथपर ले जाते हैं। यमदूतों के अनेक रूप होते हैं। वे देखने में बड़े डरावने और समस्त प्राणियों को भय पहुँचानेवाले होते हैं। उनके मुख विकराल, नासिका टेढ़ी, आँखें तीन,



ठोड़ी, कपोल और मुख फैले हुए तथा ओठ लंबे होते हैं। वे अपने हाथों में विकराल एवं भयंकर आयुध लिये रहते हैं। उन आयुधों से आग की लपटें निकलती रहती हैं। पाश, सर्पकल और डंडे से भय पहुँचानेवाले, महाकृती, महाभयंकर यमकिंकर यमराज की आज्ञा से प्राणियों की आयु समाप्त होने पर उन्हें लेने के लिये आते हैं। जीव यात्रणा भोगने के लिये अपने कर्म के अनुसार जो भी शरीर ग्रहण करता है, उसे ही यमराज के दूत यमलोक में ले जाते हैं। वे उसे कालपात्र में बाँधकर पैरों में बेड़ी बाँध देते हैं। बेड़ी की साँकल वज्र के समान कटोर होती है। यमकिंकर क्रोध में भरकर उस बँधे हुए जीव को भलीभाँति पीटते हुए ले जाते हैं। वह लड़खड़ाकर गिरता है, रोता है और 'हाय बाप! हाय मैया! हाय पुत्र!' कहकर

चारों ओर चीखता-चिल्लाता है; तो भी दूकित कर्मवाले उस पक्षी को वे तोखे सुतों, मुद्गरों, खड्ग और शक्ति के प्रहारों और वज्रमय भयंकर डंडों से घायल करके जोर-जोरसे डींगते हैं। कभी कभी तो एक-एक पक्षी को अनेक यमदूत चारों ओर से घेरकर पीटते हैं। बेचारा जीव दुःख से पीड़ित हो भूँछिन्न होकर इधर-उधर गिर पड़ता है तथापि वे दूत उसे घसीटकर ले जाते हैं। कहीं भयभीत होने, कहीं ग्रास पाले, कहीं लड़खड़ाते और कहीं दुःख से करुण क्रन्दन करते हुए जीवों को उस मार्ग से जाना पड़ता है। यमदूतों की फटकार पड़ने से वे डरिष्ट हो डरते हैं और भय से विह्वल हो काँपते हुए शरीर से दौड़ने लगते हैं। मार्ग पर कहीं कहीं बिछे होते हैं और कुछ दूर तक लपी हुई चालू मिलती हैं।

जिन मनुष्यों ने दान नहीं किया है, वे उस मार्ग पर चलते हुए पैरों से चलते हैं। जो वहिंसक मनुष्य के सब ओर से हुए चकलों की लातों पड़ी होती हैं, जिनकी जली और फटी हुई चमड़ों से मेदे और रक्त की दुर्गन्ध आती रहती है। वे बेदना से पीड़ित हो जोर-जोरसे चीखते-चिल्लाते हुए यममार्ग की यात्रा करते हैं। शक्ति, भिन्दिफल, खड्ग, तोमर, बाण और तीखी नोकवाले सुतों से उनका अङ्ग-अङ्ग विदीर्ण कर दिया जाता है। कुत्ते, बाघ, भेड़िये और कौए उनके शरीर का मांस नोच-नोचकर खाते रहते हैं। घाँस खानेवाले लोग उस मार्ग पर चलते समय ओर से चरि जाते हैं, सूअर अपनी दाढ़ों से उनके शरीर को विदीर्ण कर देते हैं।

जो अपने ऊपर विश्वास करनेवाले स्वाधी, मित्र अथवा स्त्री को हत्या कराते हैं, वे रास्ते द्वारा छिन्न-भिन्न और व्याकुल होकर यमलोक के मार्ग पर जाते हैं। जो निरपराध जीवों को मारते और मरवाते हैं, वे रास्ते के ग्रास बनकर उस पथ से यात्रा करते हैं। जो पराये स्त्रियों के वस्त्र उतारते हैं, वे मरने पर नंगे करके दौड़ते हुए यमलोक में

लाये जाते हैं। जो दुरात्मा पापाचारों अत्र, वस्त्र, सोने, खर और खेतका अपहरण करते हैं, उन्हें यमलोकके मार्गपर पत्थरों, सर्पों और डंडोंसे मारकर जर्जर कर दिया जाता है और वे अपने अङ्ग-प्रत्यङ्गसे प्रचुर रक्त बहाते हुए यमलोकमें जाते हैं। जो नराधम नरककी परवा न करके इस लोकमें ब्राह्मणका धन इहूप लेते, उन्हें मारते और गालियाँ सुनाते हैं, उन्हें सूखे काष्ठमें बाँधकर उनकी आँखें फोड़ दी जाती और चक-कल काट लिये जाते हैं। फिर उनके शरीरमें पीब और रक्त पोत दिये जाते हैं तथा कालके समान ग्रीध और गीदह उन्हें नोच-नोचकर खाने लगते हैं। इस दशामें भी क्रोधमें भरे हुए भयानक यमदूत उन्हें पीटते हैं और वे चिखते हुए यमलोकके पथपर अग्रसर होते हैं।

इस प्रकार वह मार्ग बड़ा ही दुर्गम और अग्निके समान प्रज्वलित है। उसे रौरव (जीवोंकी स्लानेवाला) कहा गया है। वह नीची-ऊँची भूमिसे मुक्त होनेके कारण मानवमात्रके लिये अगम्य है। तथापि हुए ताँबेकी भीति उसका वर्ण है। वहाँ आगकी चिनगागिरी और लपटें दिखायी देती हैं। वह मार्ग कण्टकोंसे भरा है। शक्ति और वज्र आदि आयुधोंसे ख्यात है। ऐसे कष्टप्रद मार्गपर निर्दयी यमदूत जीवको घसीटते हुए ले जाते हैं और उन्हें सब प्रकारके अस्त्र-सस्त्रोंसे मारते रहते हैं। इस तरह पापामय अन्धायी मनुष्य विवश होकर मर खाने हुए दुर्धर्ष यमदूतोंके द्वारा यमलोकमें ले जाये जाते हैं। यमराजके सेवक सभी पापियोंको उस दुर्गम मार्गमें अवहेलनापूर्वक ले जाते हैं। वह अस्पृश्य भयंकर मार्ग जब समाप्त हो जाता है, सब यमदूत सभी जीवको लीने और लोहेकी बनी हुई भयंकर यमपुरीमें प्रवेश कराते हैं।

वह पुरी बहुत विशाल है, उसका विस्तार साख्र योजनाका है। वह चौकोर बताया जाता है।

उसके चार सुन्दर दरवाजे हैं, उसकी चहारदीवारी सोनेकी बनी है, जो दस इञ्चर चौजन ऊँची है। यमपुरीका पूर्वद्वार बहुत ही सुन्दर है वहाँ फहरती हुई सैकड़ों फलाकारें उसकी सोभ बढ़ाती हैं। हीरे, नीलम, पुखराज और मोतियोंसे वह द्वार सज्जा जाता है, वहाँ गन्धर्वों और अप्सराओंके गीत और नृत्य होते रहते हैं। उस द्वारसे देवताओं, ऋषियों, योगियों, गन्धर्वों, सिद्धों, यक्षों और विद्याधरोंका प्रवेश होता है। उस नगरका उत्तरद्वार चण्डा, कृत्र, चैव्य तथा नाना प्रकारके रत्नोंसे अलंकृत है। वहाँ वीणा और वेणुकी मनोहर ध्वनि गूँजाती रहती है। गीत, भङ्गल-गान तथा श्रवण आदिके सुमधुर शब्द होते रहते हैं। वहाँ महर्षियोंका समुदाय शोभा पाता है। उस द्वारसे उन्हीं पुण्यकर्मोंका प्रवेश होता है, जो धर्मज्ञ और सत्यवादी हैं। जिन्होंने गर्वमें दूसरोंकी जल निक्षेप और सहीमें अग्निका सेवन कराया है, जो धके-पदि मनुष्योंकी सेवा करते और सदा प्रिय वचन बोलते हैं, जो दाता, दूर और मात-पिताके भक्त हैं तथा जिन्होंने ब्राह्मणोंकी सेवा और अतिथियोंका पूजन किया है, वे भी उत्तरद्वारसे ही पुरीमें प्रवेश करते हैं।

यमपुरीका पश्चिम महाद्वार भीति-भीतिके रत्नोंसे विभूषित है। विविध-विचित्र गणियोंकी वहाँ सोहिवी बनी है। देवता उस द्वारकी शोभा बढ़ाते रहते हैं। वहाँ भेरी, मृदङ्ग और शङ्ख आदि वाद्योंकी ध्वनि हुआ करती है। सिद्धोंके समुदाय सदा हर्षमें भरकर उस द्वारपर भङ्गल-गान करते हैं। जो मनुष्य भगवान् शिवकी भक्तिमें संलग्न रहते हैं, जो सब सीधोंमें गोते लगा चुके हैं जिन्होंने ब्रह्मग्निका सेवन किया है, जो किसी दक्ष्य तीर्थस्थानमें अथवा कालिङ्गर पर्वतपर प्राण-त्याग करते हैं और जो स्वामी, मित्र अथवा ज्ञातृका कल्याण करनेके लिये एवं गौओंकी रक्षाके लिये मरे गये हैं, वे शूरवीर और तपस्वी

पुरुष पश्चिमद्वारसे यमपुरीमें प्रवेश करते हैं। उस पुरीका दक्षिणद्वार अत्यन्त भयङ्कक है। यह सम्पूर्ण जीवोंके मनमें भय उपजानेवाला है। वहाँ निलन्त हाहाकार मचा रहता है। सदा अँधेरा छाया रहता है। उस द्वारपर तीखे सींग, कस्टे, बिच्छू, साँप, वज्रमुख कीट, भेड़िये, व्याघ्र, रीछ, सिंह, गीदड़, कुत्ते, बिलाव और गीध उपस्थित रहते हैं। उनके मुखोंसे आगका लपटें निकला करती हैं। जो सदा सबका अपकार करनेवाले पापात्मा हैं, उन्हींका उस मार्गसे पुरीमें प्रवेश होता है। जो ब्राह्मण, गौ, बालक, वृद्ध, रोगी शरणागत विश्वासी, स्त्री, मित्र और निहत्थे मनुष्यकी हत्या कराते हैं, अगम्या स्त्रीके

सह्य सम्भोग करते हैं, दूसरोंके धनका अपहरण करते हैं, धरोहर हड़प लेते हैं, दूसरोंको जहर देते और उनके घरोंमें आग लगाते हैं, परायी भूमि, गृह, शय्या, वस्त्र और आभूषणकी चोरी करते हैं दूसरोंके छिद्र देखकर उनके प्रति क्रूरताका बर्ताव करते हैं, सदा झूठ बोलते हैं ग्राम, नगर तथा राष्ट्रको महान् दुःख देते हैं झूठी गवाही देते, कन्ध बेचते, अभक्ष्य भक्षण करते, पुत्री और पुत्रवधूके साथ समागम करते, माता-पिताको कटुवचन सुनाते तथा अन्यान्य प्रकारके महापातकोंमें संलग्न रहते हैं, ये सब दक्षिण द्वारसे यमपुरीमें प्रवेश करते हैं।*



यमलोकके दक्षिणद्वार तथा नरकोंका वर्णन

मुनियोगे पूछ—तपोधन! पापी मनुष्य दक्षिण-मार्गसे यमपुरीमें किस प्रकार प्रवेश करते हैं? यह हम सुनना चाहते हैं। आप विस्तारपूर्वक बतलाइये।
व्यासजी बोले—मुनिवर! दक्षिणद्वार अत्यन्त घोर और महाभयंकर है। मैं उसका वर्णन करता हूँ। वहाँ सदा नाना प्रकारके हिंस्र जन्तुओं और गीदड़ियोंके शब्द होते रहते हैं। वहाँ दूसरोंका पहुँचना असम्भव है। उसे देखते ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं। भूत, प्रेत, पिशाच और राक्षसोंसे यह द्वार सदा ही घिरा रहता है। पापी जीव दूरसे ही उस द्वारको देखकर त्राससे भूँचिन्न हो जाते हैं और विलाप-प्रलाप करने लगते हैं। तब यमदूत उन्हें साँकलोंसे बाँधकर बसीटते और निर्भय

होकर डंडोंसे पीटते हैं। साथ ही डौंटे-फटकारते भी रहते हैं। डोहामें आनेपर वे खूनसे लथपथ हो पग-पगपर लड़खड़ाते हुए दक्षिणद्वारको जाते हैं। मार्गमें कहीं तीखे काँटे होते हैं और कहीं घुरेकी भारके समान तीक्ष्ण पत्थरोंके टुकड़े बिछे होते हैं। कहीं कीचड़-ही-कीचड़ भरी रहती है और कहीं ऐसे ऐसे गड्ढे होते हैं जिनको पार करना असम्भव-सम्भ होता है। कहीं-कहीं लोहेकी सुईके समान कीलें गड़ी होती हैं। कहीं वृक्षोंसे भरे हुए पर्वत होते हैं, जो किनारोंपर झरने गिरते रहनेसे दुर्गम प्रतीत होते हैं और कहीं कहीं तपे हुए अँगारे बिछे होते हैं। ऐसे मार्गसे दुःखी होकर पापी जीवोंको यात्रा करना पड़ती है। कहीं दुर्गम

* ये पातकानि विघ्नं गं कर्त्तुं वृद्धं तथाऽऽयुष्म । शरणागतं विध्वंसं स्त्रियं मित्रं निरायुधम् ॥
येऽगम्यागमिनो मृगाः परद्रव्यपहस्तिनः । निशपत्यपहजोरं विषवहिप्रदाश्च ये ॥
परभूमिं गृहं शय्यां वस्त्रालङ्कारहर्षणम् । परश्रेष्ठं ये कुरा ये सदानृतवादिनः ॥
ग्रामराष्ट्रपुरस्थाने महादुःखप्रदा हि येः कूटसाक्षिप्रदातारः । कन्याविक्रयकारकाः ॥
अभक्ष्यभक्षणता ये गच्छन्ति सुतं स्तुचाम् । मातरं पितरं नैव ये वदन्ति य परीरुगम् ॥
अन्धे ये चैव निदिष्टा महापातककारिणः । दक्षिणं तु ते सर्वे द्वारं प्रविशन्ति वै ॥

गर्त, कहीं चिकने डेले, कहीं तपायो हुई बालू और कहीं तीखे कंटि होते हैं। कहीं दवानल प्रज्वलित रहता है। कहीं तपी हुई किला है तो कहीं जमी हुई बर्फ। कहीं इतनी अधिक बालू है कि उस मार्गसे जानेवाला जीव उसमें आकण्ठ दूब जाता है। कहीं दुषित जलसे और कहीं कंठेकी आगसे वह मार्ग भर रहता है। कहीं सिंह, भेड़िये, बाघ, झैंस और भयानक कोड़े डेरा डाले रहते हैं। कहीं बड़ी-बड़ी जंके और अजगर पड़े रहते हैं। भयंकर पक्षिखर्ग, विषैले सर्प और दुष्ट एवं क्लेशोन्मत्त हाथी सतायक करते हैं। पुरोंसे मार्गको छोड़ते हुए तोखे सोंगोंवाले बड़े-बड़े साँड़, घैसे और यक्षवाले डैट सबको काट देते हैं। भयानक डाइनों और भीषण रोगोंसे पीड़ित होकर जीव उस मार्गसे यात्रा करते हैं।

कहीं धूलिमिश्रित प्रचण्ड वायु चलती है, जो पशुओंकी सर्वा करके निराश्रय जीवोंको कष्ट पहुँचाती रहती है, कहीं बिजली गिरनेसे शरीर विदीर्ण हो जाता है, कहीं बड़े ओरसे जलोंकी सर्वा होती है, जिससे सब अङ्ग छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। कहीं कहीं बिजलीकी गड़गड़ाहटके साथ भयंकर ठल्कापात होते रहते हैं और प्रज्वलित आँगारोंकी सर्वा हुआ करती है, जिससे जलते हुए पापी जीव आगे बढ़ते हैं। कभी जोर-जोरसे धूलकी सर्वा होनेके कारण शरीर भर जाता है और जीव रोने लगते हैं। मेघोंकी भयंकर गर्जनासे बारबार त्रास पहुँचता रहता है। बाण-वर्षासे घायल हुए शरीरपर खारे जलकी धारा गिरायी जाती है और उसकी पीड़ा सहन करते हुए जीव आगे बढ़ते हैं। कहीं कहीं अत्यन्त शीतल हवा चलनेके कारण अधिक सर्दी पड़ती है तथा कहीं रुखी और कठोर वायुका सामना करना पड़ता है, इससे पापी जीवोंके अङ्ग अङ्गमें बिवाई फट जाती है। वे सूखने और सिकुड़ने लगते हैं। ऐसे मार्गसे, जहाँ न तो राह खूबके

लिये कुछ मिल पाता है और न कोई सहाय ही दिखायी देता है, पापी जीवोंको यात्रा करनी पड़ती है। सब ओर निर्जल और दुर्गम प्रदेश दृष्टिगोचर होता है। बड़े परिश्रमसे पापी जीव यमलोकतक पहुँच पाते हैं। यमराजकी आज्ञाका पालन करनेवाले भयंकर यमदूत उन्हें बलपूर्वक ले जाते हैं। वे एककी और पराधीन होते हैं। स्वयं न कोई मित्र होता है न बन्धु। वे अपने-अपने कर्मोंको सोचते हुए बारबार रोते रहते हैं। प्रेतोंका-सब उनका शरीर होता है। उनके कण्ठ, ओठ और तालू सूखे रहते हैं। वे शरीरसे अत्यन्त दुर्बल और भयभीत हो धुधाग्निकी प्याससे जलते रहते हैं। कोई सौकलमें बंधे होते हैं। किन्हींको उतान सुलाकर यमदूत उनके दोनों पैर फकड़कर धसीटते हैं और कोई नोचे मुँह करके धसीटे जाते हैं। उस समय उन्हें अत्यन्त दुःख होता है। उन्हें खानेको अन्न और पीनेको पानी नहीं मिलता। वे भूख-प्याससे पीड़ित हो हाथ जोड़ दीनभावसे आँसु बहाते हुए गद्गद वाणीमें बारबार याचना करते और 'दीजिये, दीजिये' की रट लगाये रहते हैं। उनके सामने सुगन्धित फलार्थ, दही, खीर, घी, घात, सुगन्धपुष्प पेय और शीतल जल प्रस्तुत होते हैं। उन्हें देखकर वे बारबार उनके लिये याचना करते हैं।

उस समय यमराजके दूत क्रोधमें लाल आँखें करके उन्हें फटकारते हुए कठोर वाणीमें कहते हैं—'ओ पापियो! तुमने समयपर अग्निहोत्र नहीं किया, स्वयं ब्राह्मणोंको दान नहीं दिया और दूसरोंको भी उन्हें दान देते समय बलपूर्वक घम किया, इसी पापका फल तुम्हारे सामने उपस्थित हुआ है। तुम्हारा धन आगमें नहीं जला था, जलमें नहीं गिरा हुआ था, रक्षाने नहीं छोड़ा था और कोरने भी नहीं चुराया था। नराधमो! तो भी तुमने अब चहस्ते ब्राह्मणोंको दान नहीं दिया है, तब इस समय तुम्हें कहाँसे कोई वस्तु प्राप्त हो सकती है। जिन साधु पुरुषोंने सात्त्विकभावसे

नाना प्रकारके दान किये हैं, उन्हींके लिये ये पर्वतोंके समान अन्नके ढेर लगे दिखायी देते हैं। इनमें भक्ष्य, भोज्य, पेय, लेह्य और चोष्य—सब प्रकारके खाद्य पदार्थ हैं। तुम इन्हें पानेकी इच्छा न करो क्योंकि तुमने किसी प्रकारका दान नहीं दिया है। जिन्होंने दान, होम, यज्ञ और ब्राह्मणोंका पूजन किया है, उन्हींका अन्न ले आकर सदा यहाँ जमा किया जाता है। नारकी जीवो! यह दूसरोंकी वस्तु हम तुम्हें कैसे दे सकते हैं।'

यमदूतोंकी यह बात सुनकर ये भूख-प्याससे पीड़ित जीव उस अन्नकी अभिलाषा छोड़ देते हैं। तदनन्तर यमदूत उन्हें भयानक अस्त्रोंसे पीड़ा देते हैं। भुद्गर, लोहदण्ड, शक्ति, सोमर, पट्टिश, परिष, भिन्दिपाल, गदा, फरसा और कर्णोंसे उनकी पीठपर प्रहार किया जाता है और सामनेकी ओरसे सिंह तथा बाघ आदि उन्हें फाट खाते हैं। इस प्रकारके पापी जीव न तो भीतर प्रवेश कर पाते हैं और न बाहर हो निकल पाते हैं। अस्पृश्य दुःखित होकर कर्णकन्दन किया करते हैं। इस प्रकार वहाँ भलीभाँति पीड़ा देकर यमराजके दूत



उन्हें भीतर प्रवेश कराते और उस स्थानपर ले जाते हैं, जहाँ सबका संयमन (नियन्त्रण) करनेवाले भर्मात्मक यमराज रहते हैं। वहाँ पहुँचकर ये दूत यमराजको उन पापियोंके आनेकी सूचना देते हैं और उनकी आज्ञा मिलनेपर उन्हें उनके सामने उपस्थित करते हैं। तब पापचारी जीव भयानक व्यसन और चित्रगुप्तको देखते हैं। यमराज उन पापियोंको बड़े जोरसे फटकारते हैं और चित्रगुप्त धर्मयुक्त वचनोंसे पापियोंको समझाते हुए कहते हैं—'पापचारी जीवो! तुमने दूसरोंके धनका अपहरण किया है और अपने रूप और वीर्यके चमूँडमें आकर पराधीन स्त्रियोंका सतीत्व नष्ट किया है। जीव स्वर्ग जो कर्म करता है उसका फल भी उन्हें स्वर्ग ही भोगना पड़ता है—यह जानते हुए भी तुमने अपना विनाश करनेके लिये यह पापकर्म क्यों किया? अब क्यों शोक करते हो। अपने कुकर्मोंसे ही तुम पीड़ित हो रहे हो। तुमने अपने कर्मोंद्वारा जिन दुःखोंका उपार्जन किया है, उन्हें भोगो। इसमें किसीका कुछ दोष नहीं है। ये जो राजालोग मेरे समीप आए हुए हैं, इन्हें भी अपने बलका बड़ा चमूँड था। वे अपने योम दुष्कर्मोंद्वारा यहाँ लाये गये हैं। इनकी बुद्धि बहुत ही छोटी थी 'तत्पश्चात् यमराज राजाओंकी ओर दृष्टिपात करके कहते हैं—'अरे ओ दुराचारी नरेशो! तुमलोग प्रजाका विध्वंस करनेवाले हो। बोड़े दिनोंतक रहनेवाले राज्यके लिये तुमने क्यों भयंकर पाप किया? राजाओ! तुमने राज्यके सोम, मोह, बल तथा अन्यायसे जो प्रजाओंको कठोर दण्ड दिया है, उसका यथोचित फल इस समय भोगो। कहाँ गया वह राज्य। कहाँ गयीं वे रानियाँ, जिनके लिये तुमने पापकर्म किये हैं। उन सबको छोड़कर यहाँ तुमलोग एककी—असहाय होकर खड़े हो। यहाँ वह सारी सेना नहीं दिखायी देती, जिसके द्वारा तुमने प्रजाका दमन किया है। इस समय

यमदूत तुम्हारे अङ्ग-अङ्ग फाड़े डालते हैं। देखो तो, उस पापका अब कैसा फल मिल रहा है।'।

इस प्रकार यमराजके तपालम्बसुक्त अनेक वचन सुनकर वे राजा अपने-अपने कर्मोंका विचार करते हुए चुपचाप खड़े रह जाते हैं। तब उनके पापोंकी शुद्धिके लिये धर्मराज अपने सेवकोंको इस प्रकार आज्ञा देते हैं—'ओ चण्ड! ओ महाचण्ड! इन राजाओंको पकड़कर ले जाओ और क्रमशः नरककी अग्निमें तपाकर इन्हें पापोंसे मुक्त करो।' धर्मराजकी आज्ञा फलते ही यमदूत राजाओंके दोनों पैर पकड़कर वेगसे घुमाते हुए उन्हें ऊपर फेंक देते हैं और फिर झूटकर उनके पापोंकी मात्राके अनुसार उन्हें बड़ी-बड़ी शिलाओंपर देरतक पटकते रहते हैं, मानो यज्ञसे किसी महान् वृक्षपर प्रहार करते हों। इससे पापी जीवका शरीर जर्जर हो जाता है। उसके प्रत्येक छिद्रसे रक्तकी धारा बहने लगती है। उसकी चेतना लुप्त हो जाती है और वह हिलने-डुलनेमें भी असमर्थ हो जाता है। तदनन्तर शीतल वायुका स्पर्श होनेपर धीरे-धीरे पुन वह सचेत हो उठता है तब यमराजके दूत उसे पापोंकी शुद्धिके लिये नरकमें डाल देते हैं। एकसे निवृत्त होनेपर वे दूसरे-दूसरे पापियोंके विषयमें यमराजसे निवेदन करते हैं 'देव! आपक्या आज्ञासे हम दूसरे पापीको भी ले आये हैं। यह सदा धर्मसे विमुख और पापपरायण रहा है। यह दुराचारी व्याध है। इसने महापातक और उपपातक—सभी किये हैं। यह अपवित्र मनुष्य सदा दूसरे जीवोंकी हिंसामें संलग्न रहा है यह जो दुरात्म्य खड़ा है, अगम्या स्त्रियोंके साथ समागम करनेवाला है, इसने दूसरेके धनका भी अपहरण किया है। यह कन्या बेचनेवाला, झूठी गवाही देनेवाला, कृतघ्न तथा मित्रोंको धोखा देनेवाला है। इस दुरात्माने मदोन्मत्त होकर सदा धर्मकी निन्दा की है, मर्त्यलोकमें केवल पापका ही आचरण किया

है। देवेश्वर! इस समय इसको दण्ड देना है या इसपर अनुग्रह करना है, यह बताइये। क्योंकि आप ही निग्रहानुग्रह करनेमें समर्थ हैं। हमलोग तो केवल आज्ञापालक हैं।'।

यों निवेदन करके वे दूत पापीको यमराजके सामने उपस्थित कर देते हैं और स्वयं दूसरे पापियोंको लानेके लिये चल देते हैं। जब पापीपर लगभग गये दोषकी सिद्धि हो जाती है, तब यमराज अपने भयंकर सेवकोंको उन्हें दण्ड देनेके लिये आदेश देते हैं। वसिष्ठ आदि महर्षियोंने जिसके सिद्धे जो दण्ड नियत किया है, उसीके अनुसार वे यमकिकार पापीको दण्ड प्रदान करते हैं। अङ्गुल, मुद्गर, डंडे, आरे, शक्ति, तोमर, छद्म और



शूलोंके प्रहारसे पापियोंको विदीर्ण कर डालते हैं। अब नरकोंके भयंकर स्वरूपका वर्णन सुनो।

महावीरच नामक नरक रक्तसे भरा रहता है। उसमें यज्ञके समान काँटे होते हैं उसका विस्तार दस हजार योजन है। उसमें दूबा हुआ पापी जीव काँटोंमें बिंधकर अत्यन्त कष्ट भोगता है। गौओंका वध करनेवाला मनुष्य उस भयंकर नरकमें एक

लाख वर्षोंतक निवास करता है। कुम्भीयक्षकका विस्तार सौ लाख भोजन है। यह अत्यन्त भयंकर नरक है। यहाँकी भूमि तपावे हुए तँबके चट्टोंसे भरी रहनेके कारण अत्यन्त प्रज्वलित दिखायी देती है। वहाँ गरम-गरम बालू और आँगरे बिंदे होते हैं। ब्राह्मणकी हत्या तथा पुश्याका अपहरण करनेवाले और भरोहरको डकड़ लेनेवाले पापी उस नरकमें डालकर प्रलयकालतक जलाये जाते हैं। तदनन्तर रौरव नामक नरक है, जो प्रज्वलित वज्रमय बाणोंसे व्याप्त रहता है। उसका विस्तार साठ हजार योजनका है। उस नरकमें गिराये हुए मनुष्य जलते हुए बाणोंसे बिंधकर काला भोगते हैं। झूठी गवाही देनेवाले मनुष्य उसमें ईश्वरकी भीति पड़े जाते हैं। उसके बाद यजुष नामक नरक है, जो लोहेसे बना हुआ है। यह सदा प्रज्वलित रहता है। उसमें वे ही डालकर जलाये जाते हैं, जो दूसरोंको निरपराध बंदी बनाते हैं। अप्रतिष्ठ नामक नरक पीब, मूत्र और विज्ञानका भंडार है। उसमें ब्राह्मणकी पीड़ा देनेवाला पापी नीचे मुँह करके गिराया जाता है। धिलेपक नामका घोर नरक लाहकी आगसे जलता रहता है। उसमें मदिरा पीनेवाले द्विज डालकर जलाये जाते हैं। महाप्रथ नामसे विख्यात नरक बहुत ऊँचा है। उसमें जमकता हुआ शूल गड़ा होता है। जो लोग प्रति-पत्नीमें भेद डालते हैं, उन्हें वहाँ शूलसे छेदा जाता है। उसके बाद जयन्ती नामक अत्यन्त घोर नरक है, जहाँ लोहेकी बहुत बड़ी पहान पड़ी रहती है। परायी स्त्रियोंके साथ सम्भोग करनेवाले मनुष्य उसीके नीचे दबाये जाते हैं। शास्वत नरक जलते हुए सुदृढ़ काँटोंसे व्याप्त है। जो स्त्री अनेक पुरुषोंके साथ सम्भोग करती है, उसे उस शास्वत नामक वृक्षका आलिङ्गन करना पड़ता है। उस समय वह पीड़ासे व्याकुल हो उठती है। जो लोग सदा झूठ बोलते और दूसरोंके यमके चोट पहुँचानेवाली वाणी मुँहसे निकालते हैं, मृत्युके

बाद उनको जिह्वा यमदूतोंद्वारा काट ली जाती है। जो आसक्तिके साथ कटाक्षपूर्ण परायी स्त्रीको ओर देखते हैं, यमराजके दूत जाग मारकर उनकी आँखें फोड़ देते हैं जो लोग माता, बहिन, कन्या और पुत्रवधूके साथ समागम तथा स्त्री, बालक और बूढ़ोंको हत्या करते हैं, उनकी भी यही दशा होती है, वे चौदह इन्द्रोंकी आयुपर्यन्त नरक-कालनामें पड़े रहते हैं। महादीरव नामक नरक ज्वालामुखोंसे परिपूर्ण तथा अत्यन्त भयंकर है, उसका विस्तार बीस हजार योजन है। जो मूढ़ नगर, गाँव, घर अथवा खेतमें आग लगाते हैं, वे एक कल्पतक उस नरकमें पकाये जाते हैं। तमिस्र नरकका विस्तार एक लाख योजन है। वहाँ सदा खड्ग, पट्टिश और मुद्गोंकी मार पड़ती रहती है। इससे वह बड़ा भयंकर जान पड़ता है। यमराजके दूत चोरीको उसीमें डालकर शूल, तर्क, गदा और खड्गसे उन्हें तीन सौ कल्पोंतक पीटते रहते हैं। महातमिस्र नामक नरक और भी दुःखदायी है। उसका विस्तार तमिस्रकी अपेक्षा दूना है। उसमें जोंके भरी हुई हैं और निरन्तर अन्धकार छाया रहता है। जो माता, पिता और मित्रको हत्या करनेवाले तथा विश्वासघाती हैं, वे जबतक वह पृथ्वी रहती है, तबतक उसमें पड़े रहते हैं और जोंके निरन्तर उनका रक्त चूसती रहती हैं। असिपत्रवन नामक नरक तो बहुत ही कष्ट देनेवाला है। उसका विस्तार दस हजार योजन है। उसमें अग्निके सम्मन प्रज्वलित खड्ग पक्षिके रूपमें व्याप्त है। वहाँ गिराया हुआ पापी खड्गकी धारके समान पत्तोंद्वारा क्षत-विधत हो जाता है। उसके शरीरमें सैकड़ों घाव हो जाते हैं। भिन्नवर्ती मनुष्य उसमें एक कल्पतक रखकर काटा जाता है। कर्मव्याकुल नामक नरक दस हजार योजन विस्तीर्ण है। उसका आकार कुपैकी तरह है। उसमें जलती हुई बालू, आँगरे और कटि भरे हुए हैं। जो भयंकर उपायोंद्वारा किसी मनुष्यको



जला देता है, वह उक्त नरकमें एक लाख दस हजार तीन सौ वर्षोंतक जलाया और विदीर्ण किया जाता है।

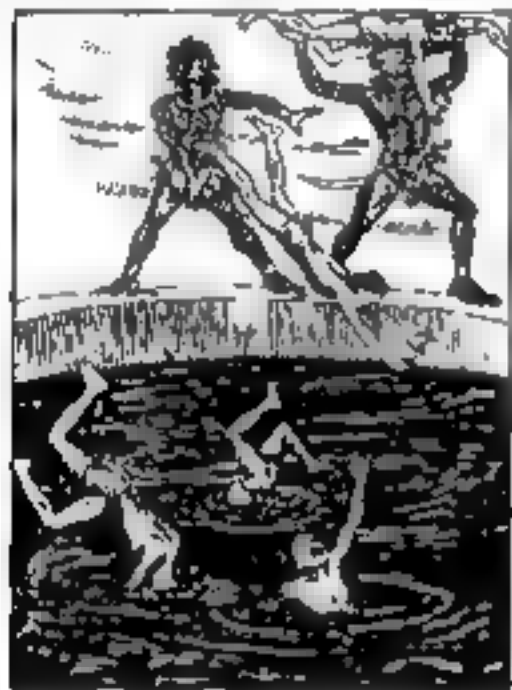
काकोल नामक नरक कीड़ों और पीकसे भरा रहता है जो दुष्टात्मा मानव दूसरोंको न देखकर अकेला ही मिष्टान्न खाता है, वह उसीमें गिराया जाता है। कुहमल नरक विद्या, मूत्र और रक्तसे भरा होता है। जो लोग पञ्चयज्ञोंका अनुष्ठान नहीं करते, वे उसीमें गिराये जाते हैं। महाभीम नरक अत्यन्त दुर्गन्धयुक्त मांस व रक्तसे पूर्ण है। अभक्ष्य-भक्षण करनेवाले नीच मनुष्य उसमें गिरते हैं। महावट नरक मुर्दोंसे भरा होता है। वह बहुत-से कीटोंसे व्याप्त रहता है। जो मनुष्य अपनी कन्या बेचता है, वह नीचे मुँह करके उसमें गिराया जाता है। तिलकक नामसे प्रसिद्ध नरक बहुत ही भयंकर बताया गया है। जो लोग दूसरोंको पीड़ा देते हैं, वे उसमें तिलकी भीति पैदा करते हैं। तैलपाक नरकमें खीलता हुआ तेल

भूमिपर बहता रहता है। जो मित्रों तथा शरणागतोंकी इत्या करते हैं वे उसीमें पकाये जाते हैं। वज्रकषाट नरक वज्रमयी शृङ्खलासे व्याप्त रहता है। जिन स्त्रियोंने दूध बेचनेका व्यवसाय किया है, उन्हें वहाँ निर्दयतापूर्वक पीड़ा दी जाती है। निरुच्छ्वास नरक अन्धकारसे पूर्ण और वायुसे रहित होता है जो ब्राह्मणको दिये जानेवाले दानमें इकावट हात्मता है, वह निश्चेष्ट करके उसमें डाल दिया जाता है अङ्गारोपचय नामक नरक दहकते हुए अङ्गारोंसे प्रज्वलित रहता है। जो लोग देनेकी प्रतिज्ञा करके भी ब्राह्मणको दान नहीं देते, वे उसीमें जलाये जाते हैं। महापापी नरकका विस्तार एक लाख योजन है। जो सदा असत्य बोला करते हैं, उन्हें नीचे मुँह करके उसीमें डाल दिया जाता है। महाज्वाल नामक नरक सदा आगकी लपटोंसे प्रकाशित एवं भयंकर होता है। जो मनुष्य पापमें मग्न लगाते हैं, उन्हें दीर्घकालतक उसीमें जलाया जाता है। क्रकच नामक नरकमें बड़की भारकी समान तीखे आरे लगे होते हैं। उसमें अगम्य स्त्रीके साथ समागम करनेवाले मनुष्योंको उन्हीं आरोंसे चीरा जाता है। गुहपाक नरक खीलते हुए गुहके अनेक कुण्डोंसे व्याप्त है। जो मनुष्य वर्णसंस्कारता फैलाता है, वह उसीमें डालकर जलाया जाता है।*

शूरघ्न नामक नरक तीखे तलवारोंसे भरा रहता है। जो लोग ब्राह्मणोंकी भूमि हड़प लेते हैं वे एक कल्पतक उसमें डालकर काटे जाते हैं। अम्बरीष नामक नरक प्रलयाग्निके समान प्रज्वलित रहता है। सुवर्णकी चोरी करनेवाला मनुष्य करोड़ कल्पोंतक उसमें दण्ड किया जाता है। वज्रकुठार नामक नरक वज्रसे व्याप्त है। पेड़ काटनेवाले सभी मनुष्य उसमें डालकर काटे जाते हैं। परिताप नामक नरक भी प्रलयाग्निसे उद्दीप्त

* नरकं गुहपाकेति चत्सुहृदयैकृतम् । निक्षिप्तो दहते तस्मिन् वर्णसंस्कारकृजः ॥

रहता है। विष देने तथा मधुकी चोरी करनेवाला पापी उसीमें यातना भोगता है। कालसूत्र नरक वज्रमय सूतसे निर्मित है। जो लोग दूसरोंकी खेती नष्ट करते हैं वे उसीमें घुमाये जाते हैं, जिससे उनका अङ्ग सिक्र-भिन्न हो जाता है। कर्मल नरक भुख और नाकके पलसे भरा होता है। मांसकी रुचि रखनेवाला मनुष्य उसमें एक कल्पतक रखा जाता है। उग्रगन्ध नामक नरक सार, मूत्र और विट्वासे भरा होता है। जो पितरोंको पिण्ड



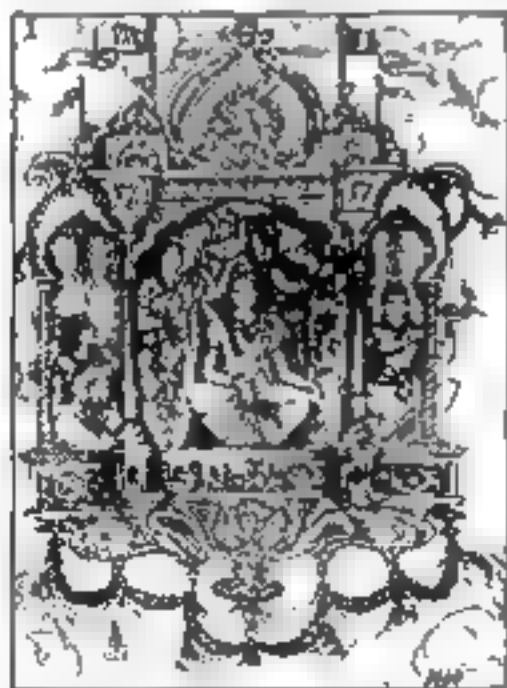
नहीं देते, वे उसी नरकमें डाले जाते हैं। दुर्धर नरक जोंकों और बिच्छुओंसे भरा रहता है। मूढखोर मनुष्य उसमें दस हजार वर्षोंतक पड़ा रहता है। वज्रमहापोड नामक नरक वज्रसे ही निर्मित है। जो दूसरोंके धन धान्य और सुवर्णको चोरी करते हैं, उन्हें उसीमें डालकर यातना दी जाती है। यमदूत उन चोरोंकी घूरोंसे अण-

क्षणपर काटते रहते हैं। जो मूर्ख किसी प्राणीकी हत्या करके उसे काँए और गृध्रकी भीति खाते हैं, उन्हें एक कल्पतक अपने ही शरीरका मांस खाना पड़ता है। जो दूसरोंके आसन, शय्या और वस्त्रका अपहरण करते हैं, उन्हें यमदूत शिवि और तोयरोसे विदीर्ण करते हैं। जिन छोटी बुद्धिवाले पुरुषोंने लोगोंके फल अथवा पत्ते भी चुराये हैं, उन्हें क्रोधमें भरे हुए यमदूत तिनकीकी आगमें जला डालते हैं। जो मनुष्य पराये धन और परायी स्त्रीके प्रति सदा दूषित भाव रखता है, यमदूत उसको समीपमें जसता हुआ शूल गाड़ देते हैं। जो मानव मन, वाणी और क्रियाद्वारा धर्मसे विमुक्त रहते हैं, उन्हें यमलोकमें बड़ी भयंकर यातना भोगनी पड़ती है। इस प्रकार लाखों, करोड़ों और अरबों नरक हैं, जहाँ पापी मनुष्य अपने कर्मोंका फल भोगते हैं। इस लोकमें थोड़ा-सा भी पापकर्म करनेपर यमलोकमें भयंकर नरकके भीतर घोर यातना सहनी पड़ती है। मूढ़ मनुष्य साधु पुरुषोंद्वारा बताये हुए धर्मयुक्त वचनोंको नहीं सुनते। जब कोई उनसे परलोककी चर्चा करता है, तब वे झट यही उत्तर देते हैं—किसने स्वर्ग और नरकको प्रत्यक्ष देखा है। ऐसे लोग दिन-रात प्रयत्नपूर्वक पाप करते हैं। धर्मका आचरण तो वे भूलकर भी नहीं करते। इस प्रकार जो इसी लोकमें कर्मोंके फलका भोग होना मानते हैं, परलोकके प्रति जिनकी तनिक भी आस्था नहीं है, ऐसे नराधम भयंकर नरकोंमें पड़ते हैं। नरकका निवास अत्यन्त दुःखदायी और स्वर्गवास सुख देनेवाला है। मनुष्य शुभकर्म करनेसे स्वर्ग पाते हैं और अशुभकर्म करके नरकोंमें पड़ते हैं।

धर्मसे यमलोकमें सुखपूर्वक गति तथा भगवद्धक्तिके प्रभावका वर्णन

मुनियोंने कहा—अहो! यमलोकक मार्गमें तो बड़ा भयंकर दुःख होता है। साधुश्रेष्ठ! आपने इन दुःखोंके साथ ही योर नरकों तथा दक्षिणद्वारका भी वर्णन किया। ब्रह्मन्! उस भयानक मार्गमें कष्टोंसे बचनेका कोई उपाय है या नहीं? यदि है तो बताइये, किस उपायसे मनुष्य यमलोकमें सुखपूर्वक जा सकते हैं?

व्यासजीने कहा—मुनिधरो! जो लोग इस लोकमें धर्मपरायण हो अहिंसाका वासन करते, गुरुजनकों सेवामें संलग्न रहते और देवता तथा ब्राह्मणोंको पूजा करते हैं, वे स्त्री और पुत्रोंस्पीहित जिस प्रकार उस मार्गसे यात्रा करते हैं, वह यत्नलगा है। उपर्युक्त पुण्यात्म्य पुरुष सुवर्णमय ध्वजाओंसे सुशोभित भौति-भौतिके दिव्य विमानोंपर



आरूढ़ हो धर्मराजके नगरमें जाते हैं। जो ब्राह्मणोंको भक्तिपूर्वक नाम प्रकाशको वस्तुएँ दानमें देते हैं, वे उस महान् पथपर सुखसे यात्रा करते हैं। जो

ब्राह्मणोंको, ब्राह्मणोंमें भी विशेषतः श्रोत्रियोंको अत्यन्त भक्तिपूर्वक दत्तम रीतिसे तैयार किया हुआ अन्न देते हैं, वे सुलज्जित विमानोंद्वारा धर्मराजके नगरमें जाते हैं। जो सदा सत्य बोलते और बाहर भीतरसे शुद्ध रहते हैं, वे भी देवताओंके समान कान्तिमान् शरीर धारणकर विमानोंद्वारा यमराजके भवनमें जाते हैं। जो धर्मज्ञ पुरुष जीविकरहित दोन-दुर्बल साधुओंको भगवान् विष्णुके उद्देश्यसे पवित्र गोदान करते हैं, वे मणिजडित दिव्य विमानोंद्वारा धर्मराजके लोकमें जाते हैं। जो जुता, झुता, शय्या, आसन, वस्त्र और आभूषण दान करते हैं, वे दिव्य आभूषणोंसे अलंकृत हो हाथी रथ और घोड़ोंकी सवारीसे वहाँकी यात्रा करते हैं। उनके ऊपर सोने-चाँदीका छत्र लगा रहता है। जो श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको विसुद्ध हृदयसे भक्तिपूर्वक गुठका रस और भात देते हैं, वे सुवर्णमय वाहनोंद्वारा यमलोकमें जाते हैं। जो ब्राह्मणोंको पालनपूर्वक शुद्ध एवं सुसंस्कृत दूध, दही, घी और गुड़ दान करते हैं वे चक्रवाक पक्षियोंसे जुड़े हुए सुवर्णमय विमानोंद्वारा यात्रा करते हैं। उस समय गन्धर्वगण वाद्योंद्वारा उनकी सेवा करते हैं। जो सुगन्धित पुष्प दान करते हैं, वे हंसयुक्त विमानोंसे धर्मराजके नगरको जाते हैं। जो श्रोत्रिय ब्राह्मणोंको श्रद्धापूर्वक तिल, तिलमयी धेनु अथवा घृतमयी धेनु दान करते हैं, वे चन्द्रमण्डलके समान उज्ज्वल विमानोंद्वारा यमराजके भवनमें प्रवेश करते हैं। उस समय गन्धर्वगण उनका सुयश गाते रहते हैं। इस लोकमें जिनके सनघाये हुए कुर्र, बाघड़ो, तलाव, सरोवर, दीपिका, पुष्करिणी तथा शीतल जलाशय स्वीभा पाते हैं, वे दिव्य चण्डानादसे मुखरित सुवर्ण और चन्द्रमयके समान कान्तिमान् विमानोंद्वारा यात्रा

करते हैं। मार्गमें उन्हें सुख देनेके लिये दिव्य वस्त्रें डुलाये जाते हैं। जो लोग समस्त प्राणियोंके



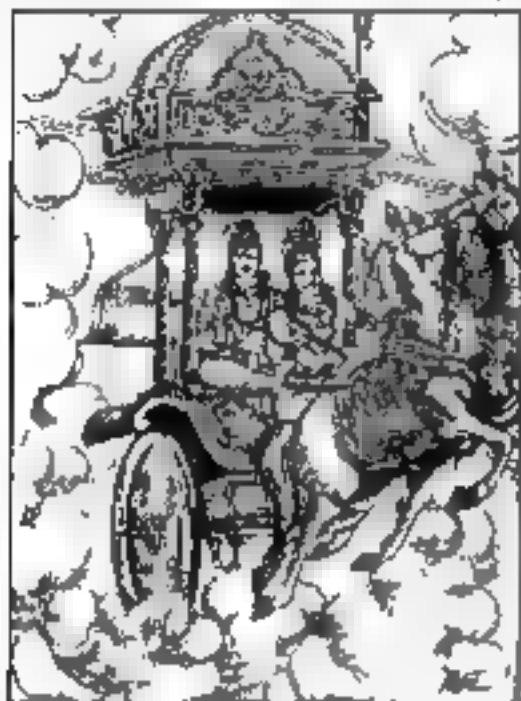
जीवनभूत जलका दान करते हैं, वे विषासासे रहित हो दिव्य विमानोंपर बैठकर सुखपूर्वक उस महान् पथको यात्रा करते हैं। जिन्होंने ब्राह्मणोंको एकहीकी बनी खाड़ाई, सवारी, पीड़ा और आसन दान किये हैं, वे उस मार्गमें सुखसे जाते हैं, वे विमानोंपर बैठकर सोने और पणियोंके बने हुए उत्तम पीढ़ोंपर पैर रखकर यात्रा करते हैं।

जो मनुष्य दूसरोंके उपकारके लिये फल और पुण्योंसे सुशोभित विचित्र उद्यान लगाते हैं, वे वृक्षोंकी रमणीय एवं सीतल छायामें सुखपूर्वक यात्रा करते हैं। जो लोग सोन, चाँदी, मृग तथा मोती दान करते हैं, वे सुवर्णनिर्मित उज्ज्वल विमानोंपर बैठकर यमलोकमें जाते हैं। भूमिदान करनेवाले पुरुष सम्पूर्ण मनोवाञ्छित वस्तुओंसे तृप्त हो उदयकालीन सूर्यके समान तेजस्वी विमानोंपर बैठकर देवोप्यमान शरीरसे धर्मराजके नगरमें जाते हैं। जो ब्राह्मणोंके लिये भक्तिपूर्वक उत्तम गन्ध, अगर, कपूर, पुष्प और धूपका दान करते हैं, वे

मनोहर गन्ध, सुन्दर वेष, उत्तम कान्ति और श्रेष्ठ आभूषणसे विभूषित हो विचित्र विमानोंद्वारा धर्मराजकी यात्रा करते हैं। दीप-दान करनेवाले मनुष्य अग्निके सुलभ प्रकाशमय होकर सूर्यके समान तेजस्वी विमानोंद्वारा दसों दिशाओंको प्रकाशित करते हुए चलते हैं। जो गृह अथवा स्नानके लिये स्थान देते हैं, वे अत्युपेक्ष्यकी सी कान्तिवाले सुवर्णमण्डित गृहोंके साथ धर्मराजके नगरमें जाते हैं। जलपात्र, कुडी और कम्बलु दान करनेवाले मानव अप्सराओंसे पूजित हो महान् गजराजोंपर बैठकर यात्रा करते हैं। जो ब्राह्मणोंको स्निग्ध और पैरोंमें मलनेके लिये तेल तथा नहाने और पीनेके लिये जल देते हैं, वे घोड़ोंपर सवार होकर यमलोकमें जाते हैं। जो रातोंके बड़े-बौढ़े दुर्बल ब्राह्मणोंको अपने यहाँ ठहराते हैं, वे चक्रांशसे जुड़े हुए दिव्य विमानोंपर बैठकर सुखसे यात्रा करते हैं। जो स्वागतपूर्वक आमन देकर ब्राह्मणकी पूजा करता है, वह अत्यन्त प्रसन्न होकर सुखसे उस मार्गपर जाता है।

जो 'पापहरे' इत्यादिका उच्चारण करके गौको यस्तक झुकाते हैं, वह सुखसे यमलोकके मार्गपर आगे बढ़ता है। जो शठता और दम्भका परित्याग करके एक समय भोजन करते हैं, वे हंसयुक्त विमानोंद्वारा सुखपूर्वक यमलोककी यात्रा करते हैं। जो कितेन्द्रिय पुरुष एक दिन उपवास करके दूसरे दिन एक समय भोजन करते हैं, वे मोरोंसे जुड़े हुए विमानोंद्वारा धर्मराजके नगरमें जाते हैं। जो नियमपूर्वक व्रतका पालन करते हुए तीसरे दिन एक समय भोजन करते हैं, वे हाँवियोंसे जुड़े हुए दिव्य रथोंपर आसीन हो धर्मराजके लोकमें जाते हैं। जो नित्य पवित्र रहकर इन्द्रियोंकी वशमें रखते हुए छठे दिन आहार ग्रहण करते हैं, वे साक्षात् शचीपति इन्द्रके समान ऐरावतकी पीठपर बैठकर यात्रा करते हैं। जो एक वृक्षतक उपवास करके अन्न ग्रहण करते हैं, वे माधोंमें जुड़े हुए विमानोंद्वारा धर्मराजके

नगरमें जाते हैं। उस समय देवता और असुर उनकी सेवामें उपस्थित रहते हैं। जो चित्तेन्द्रिय रहकर एक भासतक उपवास करते हैं, वे सूर्यके



समान देदीप्यमान रथोंपर बैठकर यमलोककी यात्रा करते हैं। जो स्त्री अपना गौकी रक्षाके लिये युद्धमें प्राणत्याग करता है, वह सूर्यके समान कान्तिमान् शरीर धारण करके देवकण्ठओंद्वारा सेवित हो धर्मनगरकी यात्रा करता है।

जो भगवान् विष्णुमें भक्ति रखते हुए चित्तेन्द्रियध्वसे तीर्थोंकी यात्रा करते हैं, वे सुखदायक विष्णुमेंसे सुशोभित हो उस भयंकर पथकी यात्रा करते हैं। जो श्रेष्ठ द्विज प्रचुर दक्षिणावाले यज्ञोंद्वारा भगवान्‌का यजन करते हैं, वे तपाये हुए सुवर्णसदृश विष्णुमेंसे सुखपूर्वक यमलोकमें जाते हैं। जो दूसरोंकी पीड़ा नहीं देते और भृत्योंका भरण-पोषण करते हैं, वे सुवर्णनिर्मित उज्ज्वल विमानोंपर बैठकर सुखसे

यात्रा करते हैं। जो समस्त प्राणियोंके प्रति दयाभाव रखते, सबको अभय देते, क्रोध, मोह और मदसे मुक्त रहते तथा इन्द्रियोंको बशमें रखते हैं, वे महान् तेजसे सम्पन्न हो पूर्ण चन्द्रमाके समान प्रकाशमान विष्णुनगर बैठकर यमराजकी पुरीमें जाते हैं। उस समय देवता और गन्धर्व उनकी सेवामें खड़े रहते हैं। जो सत्य और पवित्रतासे युक्त रहकर कभी भी मांसखार नहीं करते, वे भी धर्मराजके नगरमें सुखसे हो यात्रा करते हैं। जो एक हजार गौओंका दान करता है और जो कभी मांस भक्षण नहीं करता, वे दोनों समान हैं—यह बात पूर्वकालमें वेदवेत्ताओंमें बृहत् सभायां ब्रह्माजीने कही थी ब्राह्मणो! सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करनेसे जो पुण्य होता है और समस्त यज्ञोंके अनुष्ठानसे जिस फलकी प्राप्ति होती है, वही वह उसके समान फल मांस न खानेसे भी प्राप्त होता है।* इस प्रकार दान और व्रतमें तत्पर रहनेवाले धर्मात्मा पुरुष विमानोंद्वारा सुखपूर्वक यमलोकमें जाते हैं, जहाँ सूर्यनन्दन ब्रह्म धिराजमान रहते हैं।

धार्मिक पुरुषोंको देखकर यमराज स्वयं ही स्वागतपूर्वक उन्हें आसन देते और फल, अर्घ्य तथा प्रिय वस्त्रोंद्वारा उनका सम्मान करते हैं। वे कहते हैं—'पुण्यकण्ड पुरुषो! आपलोग धन्य हैं। आप अपने अत्यन्तकष्ट कल्याण करनेवाले महात्मा हैं, क्योंकि आपने दिव्य सुखके लिये शुभकर्मोंका अनुष्ठान किया है अब इस विमानपर बैठकर उस अनुपम स्वर्गलोकको जाइये, जहाँ समस्त कामनाएँ पूर्ण होती हैं। वहाँ महान् भोगोंका उपभोग करके अन्तमें पुण्य क्षीण होनेपर जो थोड़ा अशुभ कर्म शेष रहेगा, उसका फल यहाँ आकर भोगियेगा।'

धर्मात्मा पुरुष अपने पुण्योंके प्रभावसे धर्मराजको कोमल हृदयवाले अपने पिताके तुल्य देखते हैं

* ये च मांस न खादन्ति सत्यशीलसमन्वितः । श्रेष्ठे चान्तिं सुखेनैव धर्मराजपुरं गतः ॥
 शीतहस्तं तु यो दद्यात्तस्य मांसं न भक्षयेत् । सम्पत्तेर्वै पुरा प्राप्ते ब्रह्म वेदविदा वा ॥
 सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वपद्मेषु वारकृतम् । अमांसकृत्ये विप्रस्तब्धे तच्च च तत्समम् ॥

इसलिये धर्मका सदा सेवन करना चाहिये। धर्म मोक्षरूप फलको देनेवाला है। धर्मसे ही अर्थ, काम और मोक्षकी सिद्धि बतायी गयी है। धर्म ही माता-पिता और भ्राता है, धर्म ही अपना रक्षक और सुहृद् है। स्वामी, सखा, पालक तथा धारण-पोषण करनेवाला धर्म ही है।* धर्मसे अर्थ, अर्थसे काम और कामसे भोग एवं सुख उपलब्ध होते हैं। धर्मसे ही ऐश्वर्य, एकप्राप्ता और उत्तम स्वर्गीय गति प्राप्त होती है। विप्रवरो। धर्मका यदि सेवन किया जाय तो वह मनुष्यकी महान् भयसे रक्षा करता है। इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि धर्मसे देवत्व और ब्रह्मत्व भी प्राप्त हो सकते हैं। जब मनुष्यके पूर्वसंचित पाप नष्ट हो जाते हैं, तब उनकी बुद्धि इस लोकमें धर्मकी ओर लगती है। हजारों जन्मोंके पश्चात् दुर्लभ मनुष्य-जीवनको पकड़ जो धर्मका आचरण नहीं करता, वह निश्चय ही सीधायसे बहिष्कृत है। जो लोग कुत्सित, दलित, कुम्हार, ठेगी, दूसरोंके सेवक और मूर्ख हैं, उन्होंने पूर्वजन्ममें धर्म नहीं किया है—ऐसा जानना चाहिये, जो दीर्घायु, सुखी, सम्पन्न, भोगसाधनसे सम्पन्न, धनवान्, नीरोग तथा रुग्ण हैं, उन्होंने पूर्वजन्ममें अवश्य ही धर्मका अनुष्ठान किया है। ब्राह्मणों! इस प्रकार धर्मपरायण मनुष्य उत्तम गतिको प्राप्त होते हैं और अधर्मका सेवन करनेवाले लोग पशु-

पक्षियोंकी योग्यता में आते हैं।

जो मनुष्य नरकसमुद्रका विनाश करनेवाले भगवान् वासुदेवके भक्त हैं, वे स्वप्नमें भी यमराज अथवा नरकोंको नहीं देखते। जो दैत्यों और दानवोंका संहार करनेवाले अग्नि-अन्तरहित भगवान् नारायणको प्रतिदिन नमस्कार करते हैं, वे भी यमराजको नहीं देखते। जो मन्, वाणो और क्रियाके द्वारा भगवान् अच्युतकी शरणमें चले गये हैं, उनपर यमराजका वश नहीं चलता। वे मोक्षरूप फलके भङ्गी होते हैं। ब्राह्मणों! जो मनुष्य प्रतिदिन जगन्नाथ श्रीनारायणको नमस्कार करते हैं, वे वैकुण्ठधामके सिवा अन्यत्र नहीं जाते। श्रीविष्णुको नमस्कार करके मनुष्य कम्पदुर्गेको, यमलोकके मार्गको, यमपुरीको तथा वहकि नरकोंको किसी प्रकार नहीं देख पाते। मोहमें पड़कर अनेकों बार पाप कर लेनेपर भी यदि मानव सर्वभक्षहारी श्रीहरिको नमस्कार करते हैं तो वे नरकमें नहीं पड़ते। जो लोग शठतासे भी सदा भगवान् जनार्दनका स्मरण करते हैं वे भी देहत्यागके पश्चात् रोग-शोकसे रहित श्रीविष्णुधामको प्राप्त होते हैं। मत्पन्न क्रोधमें आसक्त होकर भी जो कभी श्रीहरिके कर्मोंका कीर्तन करता है, वह भी चेदिराज त्रिभुवनकी भीति सम्पूर्ण दोषोंका क्षय हो जानेसे मोक्षको प्राप्त करता है।†

* शब्दाद्धर्मः सेवितव्यः सदा मुक्तिफलप्रदः। धर्मदर्शस्तथा कामो मोक्षश्च परिकीर्त्यते॥
धर्मो माता पिता भ्राता धर्मो नमः सुहृत्सु। धर्मः स्वामी सखा गोत्र तथा भ्राता च योग्यः॥

(२१९। ७३-७४)

† ये नरा नरकण्डसिवासुदेवमनुब्रजन्-। ते स्वप्नेऽपि न पश्यन्ति धर्मं वा नरकाणि वा॥
अनादिनिघनं देवं दैत्यदानवदमनम्॥ ये नमन्ति नरा नित्यं न हि पश्यन्ति ते यमम्॥
कर्मण्य यमस्तं तावा येऽच्युतं शरणं गताः॥ न समर्था यमस्तेषां ते मुक्तिफलभागिनः॥
ये क्षया जगत्त्रयं धर्मं नित्यं नरायणं हितुः॥ नमन्ति न हि ते विष्णो स्थानमन्यत्र गाधिनः॥
न ते दूताश्च तन्वासां न यमं न च तां पुरीम्॥ प्रकल्प विष्णुं पश्यन्ति नरकाणि कथंचन॥
कृत्वापि बहुधाः पारं नरा येऽहसम्बन्धिनः॥ न चान्ति नरकं नरा सर्वपापहरं हरिम्॥
शत्रुघोनापि नरा नित्यं ये स्मरन्ति जनार्दनम्॥ तेऽपि यान्ति तनुं त्यक्त्वा विष्णुलोकमनामयम्॥
अप्यन्तर्लोपसक्तोऽपि कदाचित्कीर्तयेद्भरिम्॥ सोऽपि दोषक्षयान्मुक्तिं लभेज्ज्योतिषतिथया॥

(२१९। ८२-८९)

धर्मकी महिमा एवं अधर्मकी गतिका निरूपण तथा अन्नदानका माहात्म्य

मुनियोंने कहा— भगवन्! आप सम्पूर्ण धर्मों के ज्ञाता तथा सब साधकों के ज्ञानमें निपुण हैं। कृपया बताइये पिता, माता, पुत्र, गुरु, जातिवाले, सम्बन्धी और मित्रवर्ग—इनमेंसे कौन मरनेवाले प्राणिकों विशेष सहायक होता है? लोग तो मृतकके शरीरको काठ और मिट्टीके डेलेकी भाँति छोड़कर चल देते हैं, फिर परलोकमें कौन उसके साथ जाता है?

व्यासजी बोले—विप्रवरों! प्राणी अकेला ही जन्म लेता, अकेला ही मरता, अकेला ही दुर्गम संकटोंको पार करता और अकेला ही दुर्गतिमें पहुँचा है। पिता, माता, भ्राता, पुत्र, गुरु, जातिवाले, सम्बन्धी तथा मित्रवर्ग—इनमेंसे कोई भी मरनेवालेका साथ नहीं देता। बरके लोग मृत व्यक्तिके शरीरको काठ और मिट्टीके डेलेकी भाँति त्याग देते और दो बड़ी रोकर उससे मुँह मोड़कर चले जाते हैं। ये सब लोग तो त्याग देते हैं, किन्तु धर्म उसका त्याग नहीं करता। वह अकेला ही जीवके साथ जाता है, अतः धर्म ही सच्चा सहायक है। इसलिये मनुष्योंको सदा धर्मका सेवन करना चाहिये। धर्मयुक्त प्राणी उत्तम स्वर्गगतिको प्राप्त होता है। इसी प्रकार अधर्मयुक्त भान्ध मरकमें पहुँचा है; अतः विद्वान् पुरुष पापसे प्राप्त होनेवाले धनमें अनुराग न रखे। एकमात्र धर्म ही मनुष्योंका

सहायक बताया गया है। बहुत-से शास्त्रोंका ज्ञाता मनुष्य भी लोभ, मोह, भ्रमा अथवा भयसे मोहित होकर दूसरेके लिये न करने योग्य कार्य भी कर डालता है। धर्म, अर्थ और काम—तीनों ही इस जीवनके फल हैं। अधर्म-त्यागपूर्वक इन तीनोंकी प्राप्ति करनी चाहिये।*

मुनियोंने कहा—भगवन्! आपका यह धर्मयुक्त बचन, जो घाम कल्याणका साधन है, हमने सुना। अब हम यह जानना चाहते हैं कि यह शरीर किन तत्वोंका समूह है। मनुष्योंका मरना हुआ शरीर तो स्थूलसे सूक्ष्म—अव्यक्तभाषको प्राप्त हो जाता है, वह त्रेत्रोंका विषय नहीं रह जाता; फिर धर्म कैसे उसके साथ जाता है?

व्यासजी बोले—पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, तेज, मन, बुद्धि और आत्मा—ये सदा साथ रहकर धर्मपर दृष्टि रखते हैं। ये समस्त प्राणियोंके सुभागुण कर्मोंके निरन्तर साक्षी रहते हैं। इनके साथ धर्म जीवका अनुसरण करता है। जब शरीरसे प्राण निकल जाता है, तब त्वचा, हड्डी, मांस, वीर्य और रक्त भी उस शरीरको छोड़ देते हैं। उस समय जीव धर्मसे युक्त होनेपर ही इस लोक और परलोकमें सुख एवं अभ्युदयको प्राप्त होता है।

मुनियोंने पूछा—भगवन्! आपने यह भलीभाँति

* एक प्रसूतो विप्र एक एव हि यत्कृतिः । एकस्वरति दुर्गतिं गच्छन्धेकस्तु दुर्गतिम् ॥
अस्हायः पिता माता तथा भ्राता सुखे गुरुः । ज्ञातिसम्बन्धवर्गः मित्रवर्गस्तथैव च ॥
मृतं शरीरमुत्सृज्य कलहलोहसमं जनः । मुहूर्तमिव रोदिष्य तत्रे पाप्मि परादुमुखाः ॥
हीनश्चशरीरमुत्सृज्य धर्म एकोऽनुगच्छति । उत्सृज्यः सहस्रं सेवितव्यः सदा नृभिः ॥
प्राणी धनसमायुक्तो गच्छेत्स्वर्गगतिं परम् । तथैव धर्मसंपुक्तो नरकं चोपपद्यते ॥
तस्मिन्पापगतैरर्थैर्ननुरूपेण चण्डितः । धर्म एको मनुष्याणां सहायः परिकीर्तितः ॥
लोभान्योहादनुक्रोशद्वयद्वयं यदुद्वेगः । नरः करोत्यकापीध परार्थे लोभमोहितः ॥
धर्मश्चार्थश्च कामश्च त्रितयं जीवतः कृतम् । एताव्ययमस्तस्मिन्धर्मपरिवर्जितम् ॥

समस्त दिया कि धर्म किस प्रकार जीवका अनुसरण करता है। अब हम यह जानना चाहते हैं कि [शरीरके कारणभूत] वीर्यकी उत्पत्ति कैसे होती है।

ब्रह्मसंजीने कहा—द्विजवरो! शरीरमें स्थित जो पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, तेज और मनके अधिष्ठाता देवता हैं, वे जब अन्न ग्रहण करते हैं और उससे मनसहित पृथ्वी आदि पाँचों भूत सृज होते हैं, तब उस अन्नसे शुद्ध वीर्य बनता है। उस वीर्यमें कर्मप्रेरित जीव आकर निवास करता है। फिर स्त्रियोंके रजमें मिलकर वह समयानुसार जन्म ग्रहण करता है। पुण्यात्मा प्राणी इस लोकमें जन्म लेनेपर जन्मकालसे ही पुण्यकर्मका उपभोग करता है वह धर्मके फलका आश्रय लेता है। मनुष्य यदि जन्मसे ही धर्मका सेवन करता है तो सदा सुखका भागी होता है। यदि बौध-बौधमें कभी धर्म और कभी अधर्मका सेवन करता है तो वह सुखके बाद दुःख भी पाता है। अपयुक्त मनुष्य यमलोकमें जाकर महान् कष्ट उठानेके बाद पुनः तिर्यग्योनिमें जन्म लेता है। मोहयुक्त जीव जिस-जिस कर्मसे जिस-जिस योनिमें जन्म लेता है, उसे बतलाता है; सुखे। पशुयो स्त्रीके साथ सम्भोग करनेसे मनुष्य पहले तो भेड़िका होता है; फिर क्रमशः कुत्ता, सियार, गीध, साँप, कौआ और बगुला होता है। जो पपात्मा कामसे मोहित होकर अपनी भीजाईके साथ कलसम्भार करता है, वह एक वर्षतक नर-कोकिल होता है। मित्र, गुरु तथा राजाकी पत्नीके साथ सम्भोग करनेसे कामात्मा पुरुष मरनेके बाद सुखर होता है। पाँच वर्षोंतक सुखर रहकर मरनेके बाद दस वर्षोंतक बगुला, तीन महीनोंतक चीटी और एक मासतक कीड़की योनिमें पड़ा रहता है। इन सब योनिघोंमें जन्म लेनेके बाद वह पुनः कृमियोनिमें उत्पन्न होता और चौदह महीनोंतक जीवित रहता है। इस प्रकार अपने पूर्वपरांका क्षय करनेके बाद वह फिर मनुष्ययोनिमें जन्म लेता है। जो पहले

एकको कन्ध देनेकी प्रतिज्ञा करके फिर दूसरेको देने चाहता है, वह भी मरनेपर कीड़ेकी योनिमें जन्म पाता है। उस योनिमें वह तेरह वर्षोंतक जीवित रहता है। फिर अधर्मका क्षय होनेपर वह मनुष्य होता है। जो देवकार्य अथवा पितृकार्य न करके देवताओं और पितरोंको संतुष्ट किये बिना ही मर जाता है, वह कौआ होता है। सौ वर्षोंतक कौआकी योनिमें रहनेके बाद वह मुर्गा होता है। तत्पश्चात् एक मासतक सर्पकी योनिमें निवास करता है। उसके बाद वह मनुष्य होता है। जो पितरोंके समान बड़े भाईका अपमान करता है, वह मृत्युके बाद क्रीडा-योनिमें जन्म लेता है और दस वर्षोंतक जीवन धारण करता है। तत्पश्चात् मरनेपर वह मनुष्य होता है। शुद्रजातीय पुरुष ब्राह्मणीके साथ सम्भोग करनेपर कीड़ेकी योनिमें जन्म लेता है। उससे मृत्यु होनेपर वह सुखर होता है। सुखरकी योनिमें जन्म लेते ही रोगसे उसकी मृत्यु हो जाती है। तदनन्तर वह मूर्ख पूर्वजन्तु पापके ही फलस्वरूप कुत्तेकी योनिमें उत्पन्न होता है। उसके बाद उसे मानव-शरीरकी प्राप्ति होती है। मानवयोनिमें संतान उत्पन्न करके वह मर जाता है और बूढ़का जन्म पाता है। कृतघ्न मनुष्य मृत्युके बाद जब कम्पराजके लोकमें जाता है, उस समय क्रूर यमदूत उसे बंधकर धरकर दण्ड देते हैं। उस दण्डसे उसको बड़ी वेदना होती है। दण्ड, मुद्गर, शूल, धरंकर अग्निदण्ड, असिपत्रवन, वसवास्तुकी तथा कूटशस्त्रादि अन्य बहुत-सी घोर यातनाओंका अनुभव करके वह संस्कारचक्रमें आता और सीढ़ीकी योनिमें जन्म लेता है; पंद्रह वर्षोंतक कीड़ा रहनेके बाद मानव-गर्भमें आकर वहाँ जन्म लेनेके पहले ही मर जाता है। इस प्रकार सैकड़ों बार गर्भमें मृत्युका कष्ट भोगकर अनेक बार संसार-बन्धनमें पड़ता है। तत्पश्चात् वह पशु-पक्षियोंकी योनिमें जन्म लेता है। उसमें बहुत वर्षोंतक कष्ट उठाकर अन्तमें वह कछुआ होता है।

दहीकी चोरी करनेसे मनुष्य बगुला और मेढक होता है। फल, मूल अथवा पुआ चुरानेसे वह चींटों होता है। जलकी चोरी करनेसे कौआ और काँसा चुरानेसे हारीत (हरियस) पक्षी होता है। चाँदीका बर्तन चुरानेवाला कजूतर होता है और सुवर्णमय पात्रका अपहरण करनेसे कुम्भियोनिमें जन्म लेना पड़ता है। रसमका कोड़ा चुरानेसे मनुष्य घानर होता है। यस्त्रकी चोरी करनेसे तातकी योनिमें जन्म होता है। साड़ी चुरानेवाला मनुष्य घरनेके बाद हंस होता है। रुईका वस्त्र हड़प लेनेवाला मानव मृत्युके पश्चात् क्रीड़ा होता है। सनका वस्त्र, कनी वस्त्र तथा रसमी वस्त्र चुरानेवाला मनुष्य खरगोश होता है। धूपकी चोरी करनेसे मनुष्य दूसरे जन्ममें मोर होता है। अङ्गराग और सुगन्धकी चोरी करनेवाला लोभी मनुष्य छलूंदर होता है। उस योनिमें पंद्रह वर्षोंतक जीवित रहनेके बाद जब पापका क्षय हो जाता है, तब वह मनुष्य-योनिमें जन्म ग्रहण करता है। जो स्त्री दूधकी चोरी करती है, वह बगुली होती है। जो गीब दुग्ध स्वयं ससक्त होकर घेरसे अथवा धनके लिये किसी सम्बन्धीन पुरुषको हस्त करता है, वह मरनेपर गदहा होता है। गदहेकी योनिमें दो वर्षोंतक जीवित रहनेके बाद वह जरुद्धद्वारा मारा जाता है, फिर मृगकी योनिमें जन्म लेकर सदा तट्टिग्न बना रहता है। भूगयोनिमें एक वर्ष बीतनेपर वह बाणका निशान बन जाता है, फिर मछलीकी योनिमें जन्म ले वह जालमें फँसा लिया जाता है। चार महोने बीतनेपर वह शिखरी कुत्तेके रूपमें जन्म लेता है। दस वर्षोंतक कुत्ता रहकर चौदह वर्षोंतक व्याघ्रकी योनिमें रहता है। फिर कालक्रमसे पापोंका क्षय होनेपर मनुष्य योनिमें जन्म ग्रहण करता है। जो मनुष्य खलीमिश्रित अन्नका अपहरण करता है, वह भयंकर चूहा होता है। उसका रंग नेक्ले-जैसा भूरा होता है। वह पक्षत्वा प्रतिदिन मनुष्योंके

हँसता रहता है। चोकी चोरी करनेवाला दुर्बुद्धि मानव कौआ और बगुला होता है। नमक चुरानेसे चिरिकाक नामक पक्षी होता पड़ता है। जो मनुष्य विद्यासपूर्वक रखी हुई धरोहरको हड़प लेता है, वह मृत्युके बाद मच्छरीकी योनिमें जन्म लेता है। उसके पश्चात् मृत्यु होनेपर फिर मनुष्य होता है। मानव-योनिमें भी उसकी आयु बहुत ही थोड़ी होती है।

ब्राह्मणो! मनुष्य पाप करके तिर्यग्योनिमें जाता है, जहाँ उसे धर्मका कुछ भी ज्ञान नहीं रहता। जो मनुष्य पाप करके स्वर्गोद्धार उसके प्रायश्चित्त करते हैं, वे सुख और दुःख दोनोंसे युक्त होते हैं। लोभ-मोहसे युक्त पापाचारी मनुष्य निक्षय ही स्लेच्छयानिमें जन्म लेते हैं जो लोग जन्मसे ही पापका परित्याग करते हैं, वे नीरोग, रूपवान् और धनी होते हैं। स्त्रियाँ भी ऊपर बताये अनुसार कर्म करनेसे अपनी भर्त्तिनी होती हैं और पापयोनिमें पड़े हुए पुरुषोंका पापियोंकी ही पत्नी बनती हैं। द्विजवरे, चोरीके प्रायः सभी दोष बता दिये गये। यहाँ जो कुछ कहा गया है, वह बहुत संक्षिप्त है, फिर कभी कथा-वार्त्ताका अवसर आनेपर तुम लोग इस विषयको विस्तारपूर्वक सुन सकते हो। पूर्वकालमें देवर्षियोंकी सभामें उनके प्रश्नानुसार ब्रह्मजीने जो कुछ कहा था, वह सब मैंने तुम लोगोंको बतलाया है। ये सब बातें सुनकर तुम धर्मके अनुष्ठानमें मन लगाओ।

भुवि बोलें—ब्रह्मन्! आपने अधर्मकी गतिक निरूपण किया, अब हम धर्मकी गति सुनना चाहते हैं। किस कर्मके अनुष्ठानसे मनुष्यकी सद्गति होती है?

व्यासजीने कहा—ब्रह्मण्यो! जो मोहवश अधर्मका अनुष्ठान कर लेनेपर उसके लिये पुनः सन्ने हृदयसे पश्चात्ताप करता और मनको एकाग्र रखता है, वह पापका सेवन नहीं करता। ज्यों-ज्यों मनुष्यका मन पाप कर्मकी निन्दा करता है, त्यों-त्यों उसके

शरीर उस अधर्मसे दूर होता जाऊ है। यदि धर्मवादी ब्राह्मणोंके सम्मने अपना पाप कह दिया अथवा तो वह उस पापजनित अपराधसे जीव मुक्त हो जाता है। मनुष्य जैसे-जैसे अपने अधर्मकी बात बारंबार प्रकट करता है, वैसे ही-वैसे वह एकाग्रचित्त होकर अधर्मको छोड़ता जाता है।* जैसे साँप केबुल छोड़ता है, उसी प्रकार वह पहलेके अनुभव किये हुए पापोंका त्याग करता है। एकाग्रचित्त होकर ब्राह्मणको नाना प्रकारके दान दे। जो मनको ध्यानमें लगाता है, वह उत्तम गतिको प्राप्त करता है।

ब्राह्मणों। अब मैं दानका फल बतलाता हूँ। सब दानोंमें अन्नदानको श्रेष्ठ बतलाया गया है। धर्मकी इच्छा रखनेवाले मनुष्यको चाहिये कि वह सरलतापूर्वक सब प्रकारके अन्नोंका दान करे। अन्न ही मनुष्योंका जीवन है। उसीसे जीव-जन्तुओंकी उत्पत्ति होती है। अन्नमें ही सम्पूर्ण लोक प्रतिष्ठित है, अतः अन्नको श्रेष्ठ बतलाया जाता है। देवता, ऋषि, पितर और मनुष्य अन्नकी ही प्रशंसा करते हैं; क्योंकि अन्नदानसे मनुष्य स्वर्गलोकको प्राप्त होता है। स्वाध्यायशील ब्राह्मणोंके लिये न्यायोपार्जित उत्तम अन्नका प्रसन्नचित्तसे दान करना चाहिये। जिसके प्रसन्नचित्तसे दिये हुए अन्नको दस ब्राह्मण भोजन कर लेते हैं, वह कभी मनुष्यकी आदिकी योगिनमें नहीं पड़ता। सदा जापोंमें संलग्न रहनेवाला मनुष्य भी यदि दस हजार ब्राह्मणोंको भोजन करा दे तो वह अधर्मसे मुक्त हो जाता है। वेदोंका अध्ययन करनेवाला ब्राह्मण

भिक्षासे अन्न ले आकर यदि किसी स्वाध्यायशील ब्राह्मणको दान कर दे तो वह संसारमें सुख और संप्रदिक्रम भोगी होता है। जो क्षत्रिय ब्राह्मणके धनको हानि न पहुँचाकर न्यायतः ब्रजाका पालन करते हुए अन्नका उपार्जन करता है और उसे एकाग्रचित्त होकर श्रोत्रिय ब्राह्मणोंको दान देता है वह धर्मवान् है और उस पुण्यके जलसे अपने पापपङ्कजों धो डालता है। अपने द्वारा उपार्जित खेतीके अन्नमेंसे छठा भाग राजाको देनेके बाद जो शेष रहता भोग बच जाता है, वह अन्न यदि वैश्य ब्राह्मणको दान करे तो वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो शूद्र प्राणियोंके संशयमें डालकर और नाना प्रकारकी कठिनाइयोंको सहकर भी अपने द्वारा उपार्जित शूद्र अन्नको ब्राह्मणोंके निमित्त दान करता है, वह भी पापोंसे मुक्तकार पा जाता है। जो कोई भी मनुष्य श्रेष्ठ वेदवेत्त ब्राह्मणोंके हर्षपूर्वक न्यायोपार्जित अन्नका दान करता है, उसका पाप शूट जाता है। संसारमें अन्न बलकी पृथि करनेवाला है। उसका दान करनेसे मनुष्य बलवान् बनता है। मनुष्योंके मार्गपर चलनेसे सब पाप दूर हो जाते हैं। दानवेत्ता पुरुषोंने जो मार्ग बताया है और जिसपर मनीषी पुरुष चलते हैं, वही अन्नदानाओंका भी मार्ग है। उन्हींसे सन्नतन धर्म है। मनुष्यको सभी अवस्थाओंमें न्यायोपार्जित अन्नका दान करना चाहिये। क्योंकि अन्न सर्वोत्तम गति है। अन्नदानसे मनुष्य परमगतिको प्राप्त होता है। इस लोकमें उसकी सम्पत्ति कष्टनाई पूर्ण होती है और मृत्युके बाद भी वह सुखका भागी होता है।†

* मोहादधर्मः चः कृत्वा पुनः समनुतप्यते। मनःसमधिपसंदुको न स सेवेत दुष्कृतम्॥
पथः यथा मनस्तस्य दुष्कृतं कर्म गच्छति। तथा तथा शरीरं तु तेषां धर्मो मनुष्यते॥
यदि विद्वान् कथयते विद्वान् धर्मकदिनम्। ततोऽधर्मकृतविद्वान्प्रमत्तप्रमत्तमुच्यते॥
यथा यथा नरः सम्पदाधर्ममनुभवते। सदाहितेन मनसा विमुहति तथा तथा॥

(२१८१ ध-४)

† आत्मस्य हि प्रदानेन यो यतिः परो यतिः सर्वकर्मसमायुक्तः प्रेत्य चाप्यनुते सुखम्।

(२१८१ २६-२७)

इस प्रकार पुण्यवान् मनुष्य फलोंसे मुक्त होता है। अतः अन्यायरहित अन्नका दान करना चाहिये। जो गृहस्थ सदा प्राणान्निहोत्रपूर्वक अन्न-भोजन करता है, वह अन्नदानसे प्रत्येक दिनको सफस बनाता है। जो मनुष्य वेद, न्याय, धर्म और इतिहासके ज्ञाता सौ विद्वानोंको प्रतिदिन भोजन कराता है वह चार नरकमें नहीं पड़ता और

संसार-बन्धनमें भी नहीं बँधता, अपितु सम्पूर्ण कम्पन्नओंसे मुक्त हो मृत्युके बाद सुखका भागी होता है। इस प्रकार पुण्यकर्मसे युक्त मनुष्य निश्चित होकर आनन्दका भागी होता है। उसे स्वयं, कीर्ति और धनकी प्राप्ति होती है। ब्राह्मणों इस प्रकार मैंने तुम्हें अन्नदानका महान् फल बताया। यह सभी धर्मों और शास्त्रोंका मूल है।

श्राद्ध-कल्पका वर्णन

मुनिवरेने पूछा—भगवन्! अब श्राद्ध-कल्पका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये। तपोधन! कब, कहाँ, किन देशोंमें और किन लोगोंको किस प्रकार श्राद्ध करना चाहिये—वह बतानेकी कृपा करें।

व्यासजी बोले—मुनिवरो! सुनो, ये श्राद्ध-कल्पका विस्तारके साथ वर्णन करता हूँ। अब, जहाँ, जिन प्रदेशोंमें और जिन लोगोंद्वारा जिस प्रकार श्राद्ध किया जाना चाहिये, वह सब बतलाता हूँ अपने कुलोचित धर्मका पालन करनेवाले ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंको उचित है कि वे अपने-अपने वर्णके अनुरूप वेदोक्त विधिसे मन्त्रोच्चारणपूर्वक श्राद्धका अनुष्ठान करें। स्त्रियों और सुद्वेष्ट आह्वयके आह्वयके अनुसार मन्त्रोच्चारणके बिना ही विधिवत् श्राद्ध करना चाहिये। उनके लिये अग्निमें होम आदि वर्जित हैं। पुष्कर अर्द्ध तीर्थ, पवित्र मन्दिर, पर्वतशिखर, पावन प्रदेश, पुण्यसलिला नदी, ऋतु, सत्वेष्ट, संगम, सात समुद्रोंके तट, लिये-पुले अपने घर, दिव्य वृक्षोंके मूल और यज्ञ कुण्ड—ये सभी उत्तम स्थान हैं। इन सबमें श्राद्ध करना चाहिये।

अब श्राद्धके लिये वर्जित स्थान बतलाता हूँ। किरात (किलात) कलिङ्ग (उड़ीसा), कोकण, कृमि, दशार्ण, कुमार्य, तङ्गण, क्रथ, सिन्धु नदीका उत्तर तट, नर्मदाका दक्षिण तट और करतोयाका पू्व तट—इन प्रदेशोंमें श्राद्ध नहीं करना चाहिये।

प्रत्येक मासकी अमावास्या और पूर्णिमाको श्राद्धके योग्य काल बताया गया है। नित्यश्राद्धमें विश्वेदेवोंका पूजन नहीं होता। नैमित्तिक श्राद्ध विश्वेदेवोंके पूजनपूर्वक होता है। नित्य, नैमित्तिक और काव्य—ये तीन प्रकारके श्राद्ध माने गये हैं। इन तीनोंका प्रतिकर्ष अनुष्ठान करना चाहिये। जातकर्म आदि संस्कारोंके अवसरपर आध्यात्मिक श्राद्ध भी करना उचित है। उसमें युग्म ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करनेका विधान है। आध्यात्मिक श्राद्ध मातासे आरम्भ होता है। जब सूर्य कन्याराशिपर जाते हैं, तब कृष्णपक्षके पंद्रह दिनोंतक पार्वणकी विधिसे श्राद्ध करना चाहिये। प्रतिपदाको श्राद्ध करनेसे धनकी प्राप्ति होती है। द्वितीया संतान देनेवाली है। तृतीया पुत्रप्राप्तिकी अभिलाषा पूर्ण करती है। चतुर्थी शत्रुका नाश करनेवाली है। पञ्चमीको श्राद्ध करनेसे मनुष्य लक्ष्मीको प्राप्त करता है और षष्ठीको श्राद्ध करके वह पूजनीय होता है। सप्तमीको गणोंका आधिपत्य, अष्टमीको वृद्ध बुद्धि, नौमीको स्त्री, दशमीको मनोरथकी पूर्णता और एकादशीको श्राद्ध करनेसे मनुष्य सम्पूर्ण वेदोंको प्राप्त करता है। द्वादशीको पितरोंकी पूजा करनेवाला मानव विजय लाभ करता है। त्रयोदशीको श्राद्धसहित श्राद्ध करनेवाला पुरुष संतान-वृद्धि, पशु, मेधा, स्वतन्त्रता, उत्तम पुष्टि, दीर्घायु अथवा ऐश्वर्यका भागी होता है—इसमें

निक भी संदेह नहीं है। जिसके पितर कुत्सस्वर्गमें ही मृत्युको प्राप्त हुए अथवा शस्त्रद्वारा मारे गये हों, वे उन पितरोंको पूज करनेकी इच्छासे मनुष्यी तिथिको श्राद्धपूर्वक श्राद्ध करें। जो पुरुष पवित्र होकर अमावास्याको यस्त्रपूर्वक श्राद्ध करता है, वह सम्पूर्ण कामनाओं तथा अक्षय स्वर्गको प्राप्त करता है।

मुनिवरो! अब पितरोंकी प्रसन्नताके लिये जो-जो वस्तु देनी चाहिये, उसका वर्णन सुनो। जो श्राद्धकर्ममें गुह्यमिश्रित अन्न, तिल, मधु अथवा मधुमिश्रित अन्न देता है, उसका वह सम्पूर्ण दान अक्षय होता है। पितर कहते हैं—'क्या हमारे कुलमें ऐसा कोई पुरुष होगा, जो हमें जलाञ्जलि देगा, वर्षामें और मघा नक्षत्रमें हमको मधुमिश्रित खीर अर्पण करेगा? मनुष्योंको बहुत-से पुत्रोंकी अभिलाषा करनी चाहिये। यदि उनमेंसे एक भी गया चला जाए अथवा कन्याका विवाह करे या नील वृक्षका उत्सर्ग करे तो पितरोंको पूर्ण हृष्टि और उत्तम गति प्राप्त हो।' कृत्तिका नक्षत्रमें पितरोंकी पूजा करनेवाला मानव स्वर्गलोकको प्राप्त होता है। संतानकी इच्छा रखनेवाला पुरुष रोहिणीमें श्राद्ध करे। मृगशिरामें श्राद्ध करनेसे मनुष्य तेजस्वी होता है। आर्द्रामें शौर्य और पुनर्वसुमें स्त्रीकी प्राप्ति होती है, पुष्यमें अक्षय धन, आश्लेषामें उत्तम आयु, मघामें संतान और पुष्टि तथा पूर्वाषाढगुनीमें सौभाग्यकी प्राप्ति होती है। उत्तराषाढगुनीमें श्राद्ध करनेवाला मनुष्य संतानवान् और श्रेष्ठ होता है। हस्त नक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे शास्त्रज्ञानमें श्रेष्ठता प्राप्त होती है। चित्रामें रूप, तेज और संतति मिलती है। स्वातीमें श्राद्ध करनेसे व्यापारमें लाभ होता है। विशाखा पुत्रकी अभिलाषा पूर्ण करनेवाली है। अनुराधामें श्राद्ध करनेसे चक्रवर्ती-पदकी प्राप्ति होती है। ज्येष्ठामें श्राद्धसे प्रभुत्व प्राप्त होता है। मूलमें श्राद्ध

करनेवाला पुरुष उत्तम आरोग्य लाभ करता है। पूर्वाषाढ नक्षत्रमें यस्त्री प्राप्ति होती है। उत्तराषाढमें श्राद्धसे शोक दूर होता है। श्रवणमें श्राद्धके अनुष्ठानसे सुख शोक प्राप्त होते हैं। धनिष्ठामें श्राद्धसे अधिक धनका लाभ होता है। अभिषिक्तमें श्राद्धसे वेदोंकी विद्वता प्राप्त होती है। शतभिषामें पितरोंकी पूजा करनेसे वैद्यकके कार्यमें सिद्धि प्राप्त होती है। पूर्वाभाद्रपदामें श्राद्धसे भेड़ और बकरी तथा उत्तराभाद्रपदामें गीर्ण प्राप्त होती है। रेवतीमें श्राद्धका अनुष्ठान करनेसे जस्ता आदि धातुओंकी तथा अश्विनीमें घोड़ोंकी प्राप्ति होती है। भरणी नक्षत्रमें श्राद्ध करनेवाला पुरुष उत्तम आयु प्राप्त करता है। तत्त्वज्ञ पुरुष उत्त नक्षत्रोंमें श्राद्ध करनेपर ऐसे ही फलोंके भागी होते हैं। अतः अक्षय फलको इच्छा रखनेवाले पुरुषको कन्याराशिपर सूर्यके रहते उत्त नक्षत्रोंमें काव्य श्राद्धका अनुष्ठान अवश्य करना चाहिये। सूर्यके कन्याराशिपर स्थित रहते मनुष्य जिन-जिन कामनाओंका चिन्तन करते हुए श्राद्ध करते हैं, उन सबको प्राप्त कर लेते हैं। जब सूर्य कन्याराशिपर स्थित हों, तब नान्दीमुख पितरोंका भी श्राद्ध करना चाहिये, क्योंकि उस समय सभी पितर पिण्ड देनेकी इच्छा रखते हैं। जो राजसूय और अश्वमेध यज्ञोंका दुर्लभ फल प्राप्त करना चाहता हो, उसे कन्याराशिपर सूर्यके रहते जल, ताक और मूल आदिसे भी पितरोंकी पूजा अवश्य करनी चाहिये। उत्तराषाढगुनी और हस्त नक्षत्रोंपर सूर्यदेवके स्थित रहते जो भक्तिपूर्वक पितरोंका पूजन करता है, उसका स्वर्गलोकमें निवास होता है। उस समय यमराजकी आज्ञासे पितरोंकी पुष्टि तबतक खाली रहती है जबतक कि सूर्य वृश्चिक राशिपर मौजूद रहते हैं। वृश्चिक जीत जानेपर भी जब कोई श्राद्ध नहीं करता, तब देवताओंसहित पितर मनुष्यको दुःसह शाप देकर खेदपूर्वक लंबी सड़से लेते हुए अपनी

पुरीकी लौट जाते हैं। अष्टका^१, मन्वन्तरा^२ तथा अन्वष्टका^३ तिथियोंको भी ब्राह्म करना चाहिये। यह मातृवर्गसे आरम्भ होता है^४।

ग्रहण, ज्येष्ठीपात, एक रात्रिपर सूर्य और चन्द्रमाके संगम, जन्मकाल तथा ग्रहपेदाके अवसरपर पार्वण ब्राह्म करनेका विधान है। दोनों अवर्गोंके आरम्भके दिन, दोनों विषुव^५ योगोंके अनेपर तथा प्रत्येक संक्रान्तिके दिन विधिपूर्वक उत्तम ब्राह्म करना चाहिये इन दिनोंमें पिण्डदानको छोड़कर शेष सभी ब्राह्म-सम्बन्धी कर्म करने चाहिये। वैशाखकी शुक्ल तृतीया और कार्तिककी शुक्ला नवमीको संक्रान्तिकी विधिसे ब्राह्म करना उचित है। भाद्रपदी त्रयोदशी और माघकी अमावास्याको खीरसे ब्राह्म करना चाहिये। जब कोई बेटावेता एवं अग्निहोत्री क्षत्रिय ब्राह्मण घरपर पधारे, तब उस एक ब्राह्मणके भी विधिपूर्वक उत्तम ब्राह्म सम्पन्न करना चाहिये। जिस दिन माधुपुरुषोंद्वारा प्रसंगित ब्राह्मके योग कोई वस्तु प्राप्त हो जाय, उस दिन द्विजोंको पार्वणकी विधिसे ब्राह्म करना चाहिये। माता और पिताकी मृत्युके दिन प्रतिवर्ष एकोदश ब्राह्म करना चाहिये। यदि पिताके भाई अथवा अपने सड़े भाईकी मृत्यु हो गयी हो और उनके कोई पुत्र नहीं हो तो उनके लिये भी निपनतिथिको प्रतिवर्ष एकोदश ब्राह्म करना उचित है। पार्वण ब्राह्ममें पहले विश्वेदेवोंका आवाहन और पुजन

होता है। किंतु एकोदशमें ऐसा नहीं होता। देवकर्ममें दो और पितृकर्ममें तीन ब्राह्मणोंको विनियत करना चाहिये अथवा दोनोंमें एक-एक ब्राह्मणको ही निमन्त्रित करें। इसी प्रकार मातामहोंके ब्राह्मकायमें भी समझना चाहिये।

जो हासका मरा हो, उसके लिये सदा बहर जलके समीप पृथ्वीपर तिल और कुसुमसहित पिण्ड और जल देना चाहिये। मृत्युके तीसरे दिन प्रेतका आस्वि-चयन करना उचित है। घरमें किसीकी मृत्यु होनेपर ब्राह्मण दस दिनोंमें, क्षत्रिय बारह दिनोंमें, वैश्य पंद्रह दिनोंमें और शूद्र एक मासमें शुद्ध होता है।* सूतक निवृत्त हो जानेपर घरमें एकोदश ब्राह्म करना बताया गया है। बारहवें दिन, एक मासपर, फिर षेड मासपर तथा उसके बाद प्रतिमास एक वर्षतक ब्राह्म करना चाहिये। वर्ष बीतनेपर संपिण्डीकरण ब्राह्म करना उचित है। संपिण्डीकरण हो जानेपर उसके लिये कर्षण ब्राह्मका विधान है। संपिण्डीकरणके बाद वृत्त वर्षिक प्रेतभावसे मुक्त होकर पितरोंके स्वर्गपको प्राप्त होते हैं। पितर दो प्रकारके हैं—अमूर्त और मूर्तिमान्। नान्दीमुख नामवाले पितर अमूर्त होते हैं और पार्वण ब्राह्मके पितर मूर्तिमान् बतलते गये हैं। एकोदश ब्राह्म ग्रहण करनेवाले पितरोंकी 'प्रेत' संज्ञा है। इस प्रकार पितरोंके तीन भेद स्वीकार किये गये हैं।

पुनर्विधि पूजा—द्विजश्रेष्ठ! मरे हुए पिता आदिक

१. जीव, माय, फलानुज तथा वैश्वके कृष्णपञ्चमी अष्टमियोंको अष्टका कहते हैं। इनमें मृदोक्त अष्टका-कर्म किये जाते हैं। इसीलिये उनका नाम अष्टका है। २. प्राचीन कालका एक प्रकारका उत्सव, जो आषाढ़ शुक्ल दशमी, आषाढ़ कृष्ण अष्टमी और बाद शुक्ल तृतीयाको होता था। ३. पूर्वोक्त अष्टका तिथियोंके दूसरे दिनोंको चारों नवमी तिथियोंको अन्वष्टका कहते हैं। ४. इस ब्राह्मके आभ्युदयिक ब्राह्म कहते हैं। इसमें पहले माता, पितामही और ब्रह्मापरीक्षा आवाहन-पुजन आदि होता है। उसके बाद पिता, पितामह, प्रपितामह और मातामह, प्रमातामह, वृद्धप्रमातामहका पुजन आदि कर्म होता है। ५. जिस समय सूर्य विषुव रेखापर पहुँचते और दिन-रात बराबर होते हैं, उसे विषुव कहते हैं। यह समय वर्षमें दो बार आता है।

* दशाहे ब्राह्मण, शूद्रों इतरवर्गजन क्षत्रियः। वैश्यः पञ्चदशमेन शूद्रो मासैः शुद्धयति॥

सपिण्डीकरण ब्राह्मण कैसे करना चाहिये? यह हमें विधिपूर्वक बताइये।

ब्यासजी बोले—ब्राह्मणो! मैं सपिण्डीकरण ब्राह्मणकी विधि बतलाता हूँ, सुनो। सपिण्डीकरण ब्राह्मण विश्वेदेवोंकी पूजासे रहित होता है। इसमें एक ही अर्घ्य और एक ही पवित्रकका विधान है। अग्निकरण और अन्नग्रहणकी क्रिया भी इसमें नहीं होती। सपिण्डीकरणमें अपसव्य होकर अकुम्भ ब्राह्मणोंको भोजन करना चाहिये। इसमें जो विशेष क्रिया है उसका वर्णन करता हूँ, एकग्रचित होकर सुनो। सपिण्डीकरणमें सिल, चन्दन और जलसे पुष्ट चार पात्र होते हैं। उनमेंसे तीन तो पितरोंके लिये रखे और एक प्रेतके लिये। प्रेतके पात्रसे अर्घ्यजल लेकर 'ये समाप्ताः सम्पत्सः' इत्यादि मन्त्रका जप करते हुए पितरोंके तीनों पात्रोंमें छोड़ना चाहिये। जेब करव अन्य ब्राह्मणोंकी भीति करना चाहिये। स्त्रियोंके लिये भी इसी प्रकार एकोद्दिष्टका विधान है। यदि पुत्र न हो तो स्त्रियोंका सपिण्डीकरण नहीं होता। पुरुषोंको उचित है कि वे स्त्रियोंके लिये भी प्रतिवर्ष उनकी मृत्युतिथिको एकोद्दिष्ट ब्राह्मण करें। पुत्रके अभावमें सपिण्ड और सपिण्डके अभावमें सहोदक इस विधिको पूर्ण करें। जिसके कोई पुत्र न हो, उसका ब्राह्मण उसके दीहित्र कर सकते हैं। पुत्रिका^१-विधिसे ब्याही हुई कन्याके पुत्र तो अपने नान्ना आदिका ब्राह्मण करनेके अधिकारी हैं ही जिनकी दृष्टानुष्यायण संज्ञा है, ऐसे पुत्र नान्ना और बाबा दोनोंका नैमित्तिक ब्राह्मणोंमें भी विधिपूर्वक पूजन कर सकते हैं। कोई भी न हो तो स्त्रियाँ ही अपने पतियोंका मन्त्रोच्चारण किये बिना ब्राह्मण कर सकती हैं। वे भी न हों तो राजा मृतकके

सजातीय मनुष्योंद्वारा दाह आदि समस्त क्रियाएँ पूर्ण कराये; क्योंकि राजा सब वर्णोंका बन्धु होता है।

ब्राह्मणो! सपिण्डीकरणके बाद पिताके जो प्रपितामह हैं, वे लेपभागधोजी पितरोंकी श्रेणीमें चले जाते हैं। उन्हें पितृपिण्ड पानेका अधिकार नहीं रहता। उनसे आरम्भ करके चार पीढ़ी ऊपरके पितर, जो अबतक पुत्रके लेपभागका अन्न ग्रहण करते थे, उसके सम्बन्धसे रहित हो जाते हैं। अब उनकी लेपभागका अन्न पानेका अधिकार नहीं रहता। वे सम्बन्धहीन अन्नका उपभोग करते हैं। पिता, पितामह और प्रपितामह—इन तीन पुरुषोंको पिण्डका अधिकारी समझना चाहिये। इनसे भिन्न अर्थात् पितामहके पितामहसे लेकर ऊपरके जो तीन पीढ़ीके पुरुष हैं, वे लेपभागके अधिकारी हैं। इस प्रकार छः वे और सातवाँ यजमान—सब मिलकर सात पुरुषोंका यज्ञ सम्बन्ध होता है—ऐसा मुनियोंका कथन है। यह सम्बन्ध यजमानसे लेकर ऊपरके लेपभागधोजी पितरोंतक गना जाता है। इनसे ऊपरके सभी पितर पूर्वज कहलाते हैं। पूर्वजोंमेंसे जो नरकमें निवास करते हैं, जो पशु, पक्षीकी योनिमें पड़े हैं तथा जो भूत आदिके रूपमें स्थित हैं, उन सबको विधिपूर्वक ब्राह्मण करनेवाला यजमान तुष्ट करता है। जिससे जिसकी तृप्ति होती है, वह बतलाता हूँ, सुनो। मनुष्य पृथ्वीपर जो अन्न बिखेरते हैं, उससे पिशाचयोनिमें पड़े हुए पितरोंकी तृप्ति होती है। स्नानके कस्त्रसे जो जल पृथ्वीपर टपकता है, उससे वृक्षयोनिमें पड़े हुए पितर तुष्ट होते हैं। नहानेपर अपने शरीरसे जो जलके कण पृथ्वीपर गिरते हैं, उनसे उन पितरोंकी तृप्ति होती है जो

१ मनुस्मृतिके अनुसार कन्याका विवाह इस उक्तिके साथ हो किया जा सकता है कि उसका पुत्र अपने नानाके ब्राह्मण करनेका अधिकारी समझा जाय। विवाहको यह विधि पुत्रिका विधि कहलाती है। पुत्रहीन पिता ही पुत्रिका-विधिसे अपनी कन्याका विवाह कर सकता है। उससे उत्पन्न हुआ पुत्र औरस पुत्रकी ही भीति नानाको सम्पत्तिको उत्तराधिकारी होता है।

देवभावको प्राप्त हुए हैं। पिण्डोंके उठानेपर जो जलके कण पृथ्वीपर गिरते हैं, उनसे पशु-पक्षीकी योनियों पड़े हुए पितरोंकी तृप्ति होती है। कुत्तमें जो बलक दौड़ निकलनेके पहले दह आदि कर्मके अनधिकारी रहकर मृत्युको प्राप्त होते हैं, वे सम्प्राजर्जनेके जलकर आहार करते हैं। ब्राह्मणस्त्रोग भोजन करके जो हाथ-मुँह धोते हैं और चरणोंका प्रक्षालन करते हैं, उस जलसे अन्यत्र पितरोंकी तृप्ति होती है। ब्राह्मण! इस प्रकार विधिपूर्वक श्राद्ध करनेवाले पुरुषोंके जो पितर दूसरी-दूसरी योनियोंमें चले गये हैं, वे भी संवत्मान और ब्राह्मणोंके हृदयसे बिखरे हुए अन्न और जलके द्वारा पूर्ण तृप्त होते हैं। मनुष्य अन्वाद्येयार्चित्व बनसे जो श्राद्ध करते हैं, उससे चण्डाल आदि योनियोंमें पड़े हुए पितरोंकी तृप्ति होती है। इस प्रकार धर्मा श्राद्ध करनेवाले भ्रातृ-बन्धुओंके द्वारा जो अन्न और जल पृथ्वीपर डाले जाते हैं, उनके द्वारा बहुत-से पितर तृप्त होते हैं। अतः मनुष्यको उचित है कि वह पितरोंके प्रति भक्ति रखते हुए साकम्पात्रके द्वारा भी विधिपूर्वक श्राद्ध करे। श्राद्ध करनेवाले लोगोंके कुत्तमें कोई दुःख नहीं भोगता।

श्राद्धका दान संयम्भी, अग्निहोत्री, शुद्धचरित्र, विद्वान् एवं विरोधतः त्रैविध्य ब्राह्मणको देना चाहिये। त्रिणाचिकेत, त्रिमधु, त्रिसुपर्ण, बह्वृषेय, पात-पिताका भक्त, धानजा, सामवेदका ज्ञाता, अतिवक्, पुरोहित, आचार्य, उपाध्याय, मामा, क्षत्र, सम्बन्धी, मण्डल ब्राह्मणका पत्र करनेवाला, पुराणोंका तत्त्वज्ञ, संकल्पहीन, संतोषी और प्रतिग्रह न लेनेवाला—ये श्राद्धमें सर्व्वस्वित्त करनेयोग्य चरित्रधर ब्राह्मण हैं। ऊपर बताये हुए श्रेष्ठ द्विजोंको देवपत्र अथवा श्राद्धमें एक दिन पहले ही निमन्त्रण देना चाहिये। उसी समयसे ब्राह्मणों तथा श्राद्धकर्त्ताको भी संयमसे रहना चाहिये। जो श्राद्धमें दान देकर

अथवा श्राद्धमें भोजन करके मैथुन करता है, उसके पितर एक मसतक वीर्यमें क्षयन करते हैं। जो स्त्रीसहवास करके श्राद्ध करता अथवा श्राद्धमें भोजन करता है, उसके पितर उसीके वीर्य और मूत्रका एक मसतक आहार करते हैं। इसलिये विद्वान् पुरुषको एक दिन पहले ही ब्राह्मणोंके पास निमन्त्रण भेजना चाहिये। यदि पहले दिन ब्राह्मण न मिल सकें तो श्राद्धके दिन भी निमन्त्रण किया जा सकता है। परन्तु स्त्री-प्रसङ्गी ब्राह्मणोंको कदापि निमन्त्रित न करे। यदि समयपर भिक्षाके लिये संयमी प्रति स्वयं पछरे हों तो उन्हें भी कमस्वर आदिके द्वारा प्रसाद करके संयताचित्तसे अन्न भोजन कराने। विद्वान् पुरुष श्राद्धमें योगियोंको भी भोजन कराने। क्योंकि पितरोंका आधार रोग है, अतः योगियोंका सदा पूजन करना चाहिये। यदि हजारों ब्राह्मणोंमें एक भी योगी हो तो वह जलसे नैऋत्य भीति यजमान और श्राद्धभोजी ब्राह्मणोंको भी तार देता है। इस विषयमें ब्रह्मवादी विद्वान् पितरोंकी श्रद्धा हुई एक गंधाका गान करते हैं। पूर्व्वकालमें राजा पुत्रवाले पितरोंने उसका गान किया था। वह गाना इस प्रकार है—'हमारी वंश-परम्परामें कब किसीको ऐसा श्रेष्ठ पुत्र प्राप्त होगा, जो योगियोंको भोजन करनेसे बचे हुए अन्नको लेकर पृथ्वीपर हमारे लिये पिण्ड देगा? अथवा गयामें जाकर पिण्डदान करेगा? या हमारी तृप्तिके लिये साधारण साक, तिल, ची और खिचड़ी देगा? अथवा जम्बेदरी तिथि और मध्य नक्षत्रमें विधिपूर्वक श्राद्ध करेगा और दक्षिणायनमें हमारे लिये मधु और घीसे मिली हुई खीर देगा?'

इसलिये सम्पूर्ण कामनाओंकी सिद्धि तथा पापसे मुक्ति चाहनेवाले प्रत्येक मनुष्यको उचित है कि वह भक्तिपूर्वक पितरोंको पूजा करे। श्राद्धमें तृप्त किये हुए पितर मनुष्योंके लिये वह

रुद्र, आदित्य, नक्षत्र, ग्रह और तारोंकी प्रसन्नताका सम्पादन करते हैं। इतना ही नहीं, वे अशु, ब्रह्म, धन, विद्या, स्वर्ग, मोक्ष, सुख तथा राज्य भी देते हैं। पितरोंको पूर्वजकी अपेक्षा अपराध अधिक प्रिय है। परपर आये हुए ब्राह्मणोंका स्वागतपूर्वक पूजन करके उन्हें पवित्रयुक्त हाथसे अन्नभोजन करनेके पक्षार् आसनोपर बिठाये; फिर विधिपूर्वक श्राद्ध करके उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको भोजन करनेके पक्षार् पण्डितपूर्वक प्रणाम करे और प्रिय वचन कहकर विदा करे। दरवाजेतक उन्हें पहुँचानेके लिये पीछे-पीछे जाय और उनकी छाया लेकर लौटे। तदनन्तर नित्य-क्रिया करे और अतिथियोंको भोजन कराये। किन्हीं-किन्हीं श्रेष्ठ पुरुषोंका विचार है कि यह नित्यकर्म भी पितरोंके ही ठोकरसे होता है। दूसरे लोगोंका कहना है कि इससे पितरोंका कोई सम्बन्ध नहीं है। शेष कार्य सदाकी भाँति करे। किन्हीं-किन्हींका मत है कि पितरोंके लिये पुष्पकू पाक बनाकर श्राद्ध करना चाहिये। कुछ लोगोंका विचार है कि ऐसा न करके पहले बने हुए फलसे ही अन्न लेकर सब कार्य पूर्ववत् करना चाहिये।

तदनन्तर श्राद्धकर्ता मनुष्य अपने भृत्य आदिके साथ अवशिष्ट अन्न भोजन करे। वर्षा पुरुषको इसी प्रकार एकाग्रचित्त होकर पितरोंका श्राद्ध करना चाहिये और जिस प्रकार ब्राह्मणोंको संतोष हो, वैसी चेष्टा करनी चाहिये। अब मैं श्राद्धमें त्याग देने योग्य अधम ब्राह्मणोंका वर्णन करता हूँ। मित्रहोही, खराब नखोंवाला, नपुंसक, सयका रोगी, कोढ़ी, व्यापारी, काले दाँतोंवाला, गंध, काना, अंधा, बहरा, बड़, गूँगा, पतु, हिक्का, खराब चपड़ेवाला, डीनाऊ, लस ओखोंवाला, कुम्हाड़ा, मौन, विकराल, अलससी, मित्रके प्रति शत्रुभाव रखनेवाला, कलाङ्कित कुलमें उत्पन्न, पशु पालन करनेवाला, अच्छी आकृतिसे हीन, परिचित

(छोटे भ्रातृके विवाहित होनेपर भी स्वयं अविवाहित रहनेवाला), परिवेत्ता (बड़े भ्रातृके ब्याहसे पहले ही विवाह कर लेनेवाला), परिवेदनिका (बड़ो बहिनके विवाहके पहले ही ब्याह करनेवाली स्त्री)-का पुत्र, सुतज्योतीय स्त्रीका स्वामी और उसका पुत्र—ऐसे ब्राह्मण श्राद्ध-भोजनके अधिकारी नहीं हैं। सूदीके पुत्रका संस्कार करानेवाला, अविवाहित, जो दूसरेकी पत्नी रह चुकी हो, ऐसी स्त्रीका पति, केतन लेकर पढ़ानेवाला, वैसे गुरुसे पढ़नेवाला, सुतकके अन्नपर जीविका-विवाह करनेवाला, स्वप्नरसका विक्रय करनेवाला, चोर, पतित, व्यस्य लेकर खानेवाला, लठ, चुगलखोर, चेलोंका त्याग करनेवाला, अग्निहोत्रका त्यागी, राज्यका पुरोहित, सेवक, विद्याहीन, द्वेष रखनेवाला, बुद्ध पुरुषोंसे झगुता रखनेवाला, दुर्धर्ष, क्रूर, मूक, भन्दिरकी अवसर जीनेवाला, नक्षत्र बतानेवाला, ज्ञान बढानेवाला और चक्रके अनधिकारी पुरुषोंसे पत्र करानेवाला—ये तथा अन्य जितने भी निन्दित और अशुभ ब्राह्मण हैं, उन्हें श्राद्धमें सम्मिलित न करे; क्योंकि वे पण्डितको दुष्टित करनेवाले हैं। जहाँ कुछ पुरुषोंका अक्षर और साधु पुरुषोंकी अवहेलना होती हो, वहाँ देवताओंका दिया हुआ भयंकर दण्ड तत्काल ऊपर पड़ता है। जो शस्त्र-विधिकी अवहेलना करके मूर्खको भोजन कराता है, वह दाख प्राचीन धर्मका त्याग करनेके कारण नष्ट हो जाता है। जो अपने आश्रयमें रहनेवाले ब्राह्मणका परित्याग करके दूसरेको बुलाकर भोजन करता है, वह दाख उस ब्राह्मणके स्नेहको ब्यासकी अङ्गमें दण्ड होकर नष्ट हो जाता है।

यस्कोके बिना कोई क्रिया, यज्ञ, वेदाध्ययन और तपस्या नहीं होती। अतः श्राद्धकालमें यस्कोका दान विशेष रूपसे करना चाहिये।* जो रेशमी, सूते और चिन्न कटा हुआ वस्त्र श्राद्धमें देता है,

* यस्कोप्राप्ते क्रिया कार्यत यज्ञ वेदस्तपसि च। तस्मात्तस्मै देयानि श्राद्धकाले विशेषतः॥

वह उत्तम भोगोंको प्राप्त करता है। जैसे बहुत-सी गौओंमें बछड़ा अपनी मूत्रके पास पहुँच जाता है, वसी प्रकार ब्राह्मणमें ब्राह्मणोंका भोजन किया हुआ अन्न जीवके पास, वह जहाँ भी रहता है, पहुँच जाता है। नाम, गोत्र और मन्त्र—ये क्षत्रको वहाँ छोकर नहीं ले जाते, अपितु मृत्युको प्राप्त हुए जीवोंके तृप्ति पहुँचती है—ये ब्राह्मणसे तृप्ति स्वयं करते हैं। 'देवताभ्यः पितृभ्यश्च मन्त्राभ्यश्च एव च। मयः स्वाहायै स्वधायै निष्कमेव नमो नमः।' * इस मन्त्रका ब्राह्मण आरम्भ और अन्तमें तीन बार जप करे। पिण्डदान करते समय भी एकाग्रचित्त होकर इसका जप करना चाहिये। इससे पितर ही आ जाते हैं और राक्षस भग्न छोड़े होते हैं तथा तीनों लोकोंके पितर तृप्त होते हैं। यह मन्त्र पितरोंको तारनेवाला है। ब्राह्मणमें रक्ष्म, सन अथवा कपासका गूदा मूल देना चाहिये। ऊन अथवा पाटका सूत्र वर्जित है। विद्वान् पुरुष जिसमें कोर न हो, ऐसा कन्ध पटा न होनेपर भी ब्राह्मणमें न दे; क्योंकि उसके पितरोंको तृप्ति नहीं होती और राताके लिये भी अन्वयका फल प्राप्त होता है। पितर आदिमेंसे जो जीवित हो, उसको पिण्ड नहीं देना चाहिये, अपितु उसे विधिपूर्वक उत्तम अन्न भोजन करना चाहिये। भोगकी इच्छा रखनेवाला पुरुष ब्राह्मणके पश्चात् पिण्डको अग्निमें डाल दे और जिसे पुत्रकी अभिलाषा हो, वह मध्यम अर्थात् पितृमहके पिण्डको मन्त्रोच्चारणपूर्वक अपनी पत्नीके हाथमें दे दे और पत्नी उसे खा ले। जो उत्तम कान्तिकी इच्छा रखनेवाला हो, वह ब्राह्मणके अनन्तर सब पिण्ड गौओंको खिला दे। युद्धि, यज्ञ और कीर्ति चाहनेवाला पुरुष पिण्डोंको जलमें डाल दे। दीर्घ आयुकी अभिलषा रखनेवाला पुरुष उसे गौओंको दे दे। कुमारशालाकी इच्छा रखनेवाला पुरुष वह पिण्ड मुर्गोंको दे दे। कुछ ब्राह्मण ऐसा कहते हैं कि पहले ब्राह्मणोंसे 'पिण्ड ठगओ' ऐसी

अज्ञात से ले, उसके बाद पिण्डोंको उठाये। अतः ऋषिर्षीकी ब्रह्मगी हुई विधिके अनुसार ब्राह्मण अनुष्ठान करे, अन्यथा दोष लगाता है और पितरोंको भी नहीं पिलता।

जौ, धान, चित्त, गेहूँ, मूँग, सावई, सरसोंके तेल, तिलीका चक्कल और केंगनी आदिसे पितरोंको तृप्त करे। आम, अमड़ा, बेल, अनार, बिजौरा, पुराना आँखला, खीर, नारियल, फलसा, नारंगी, खजूर, अंगूर, नीलकंठ, परबल, चिरौजी, बेर, जंगली बेर, इन्द्रजी और भहुआ—इन फलोंको ब्राह्मणमें वस्त्रपूर्वक लेना चाहिये। गुड़, रक्कर, छाँड़, गायका दूध, दही, घी, तिलका तेल, लेंधा तथा समुद्र और झीलसे उत्पन्न होनेवाला नमक, पवित्र सुगन्ध, चन्दन, अरगजा तथा केसर भी पितरोंको निवेदन करे। सामर्थिक शक्त, जीतार्थ, बहुआ, मूली तथा जंगली साग ब्राह्मणमें देनेयोग्य हैं। चम्पा, चमेली, बेला, लोच, अशोक, तुलसी, तिलक, लपशा, सुगन्धित शोफलिफल, कुम्भक, लगर, बनकेवड़ा और जूही आदि पुष्प ब्राह्मणमें अर्पण करने योग्य हैं। कमल, कुमुद, पद्म, पुण्डरीक, इन्दीवर, कोकनद और कड़ार भी पितरोंको निवेदन करे। गूगल, चन्दन, श्रीवास (बेल), अगर तथा ऋषिगुग्गुल—ये पितरोंके योग्य द्रव्य हैं। चना और मसूर ब्राह्मणमें वर्जित हैं। स्त्री, कैटनों और भेड़के दूध, दही और भीका परित्याग करे। ताड़, वरुणा, कौकोल, बहुपत्रा (शिवालिंगी), अर्जुनी—फल, नींबू, रक्तविल्व और सातके फलका भी ब्राह्मणमें त्याग करे। पितृकर्ममें कस्तूरी, गोरोचन, पद्मचन्दन, कालेयक (काली अगर), होंग, अजकयन और हौहबागकी गन्ध वर्जित है। फलकका रस, बड़ी इलायची, चिरयल, रत्नजम्बू, गाजर, अमलोनिका साग, धूँकाकी साग, चनेकी पत्तीका साग, पहाड़ी कन्द, सोडा, सौंफ, फटुआ साग, भन्नामूकर (बागहीकन्द), हलभृत्य,

* देवता, पितर, मन्त्रायोगी, स्वाहा और स्वधको सदा बारम्बार नमस्कार है।

मसूरों, प्याज, लहसुन, शकरकंद, बैंगन, जिमीकंद, सुपारी, लौकी, पेर्हेटुस, कुम्हड़ा, मिर्च, सोंठ, पीपल, बीगन, केरोंच, बहेड़ा, कच्चे गेहूँका अर्क, सतू, बासी अन्न, हॉग, कचनार और सहिजन—इन सब वस्तुओंका आद्यमें उपयोग न करे। जो अत्यन्त खड़ा, अधिक चिकना, सूक्ष्म, बहुत देरका बना हुआ और भीरस हो तथा जिसमेंसे पदिराखी सी गन्ध आती हो, ऐसे पदार्थोंको आद्यमें न दे। धिरायता, नीम, राई, धनिया, तरबूज और अमलबेद भी आद्यमें वर्जित हैं। अन्ध, छोटी इलायची, नरंगी, अदरक, इमली, अमड़ा और नैपाली धनियाका आद्यमें उपयोग करना चाहिये। खोर, सेभर, भूंग, लडू, पानक, रसाल (मन्न) और गेदुआधको भी आद्यमें भक्तिपूर्वक देना चाहिये। जो भी स्वादिष्ट एवं विनाश खास पदार्थ हों, इनका आद्यमें उपयोग करना चाहिये जिनमें खटार्थ और कड़ुआपन कम हो, ऐसी ही वस्तुओंका उपयोग करना उचित है अधिक खट्टे, अधिक नमकीन और अधिक कड़वे पदार्थ असुरोंके भोजन हैं; अतः उनको दूरसे ही त्याग दे। मीठे, स्नेहयुक्त, थोड़े गरपरे और थोड़े खट्टे स्वादिष्ट पदार्थ देवताओंके भोजन हैं। अतः उनको आद्यमें उपयोग करे। आद्यमें निषिद्ध वस्तु भोजन करनेका मनुष्य रौरव नरकमें पड़ता है। अभक्ष्य वस्तुएँ ब्राह्मणोंको कदापि न दे। बरैकी पत्तीका साग, जँधीरी नींबू, सहिजन, कचनार, खाली, मसूर, गाजर, सनकी पत्तीका साग, कोदो, तालमखाना, चुकका साग, कम्बुक, पदमकातका फल, लौकी, लहड़ी और लहड़ वृक्षके फलका आद्यमें भोजन करनेसे मनुष्य

नरकमें पड़ता है। जो पितरोंके लिये उक्त निषिद्ध वस्तुएँ अर्पित करता है, वह उन पितरोंके साथ ही पूज्यवह सम्पत् नरकमें गिरता है। यदि अनजानमें या प्रमदवश एक बार इन निषिद्ध वस्तुओंका भक्षण कर ले तो उसके दोषकी निवृत्तिके लिये प्रायश्चित्त करना आवश्यक है। सात दिनोंतक कर्मशः फल, मूल, दूध, दही, तक्र, गोमूत्र और चाँकी खप्पी खाकर रहे। इस प्रकार ब्राह्मणों और विशेषतः भगवान् विष्णुके भक्तोंको दक्षित है कि ये एक बार भी निषिद्ध आचरण कर लेनेपर इस प्रकार तहोरकी शुद्धि करें। ऊपर बतायी हुई निषिद्ध वस्तुओंका अवश्य त्याग करे। अपनी शक्तिके अनुसार श्राद्धकी सामग्री एकत्रित करके विधिपूर्वक श्राद्ध करना सम्बन्ध कर्तव्य है। जो अपने वैभवाके अनुसार इस प्रकार विधिपूर्वक श्राद्ध करता है, वह मानव ब्रह्मसे लेकर कीटपर्यन्त सम्पूर्ण जगतको तृप्त कर देता है।

मुनिजीने पूछा—ब्रह्मन्! जिसके पिता तो जीवित हों, किंतु पितामह और प्रपितामहकी मृत्यु हो गयी हो, उसे किस प्रकार श्राद्ध करना चाहिये? यह विस्तारपूर्वक बतलाइये।*

ज्योत्स्नी बोले—पिता जिनके सिये आदर करते हैं, उनके सिये स्वयं पुत्र भी आदर कर सकता है। ऐसा करनेसे लौकिक और वैदिक धर्मकी हानि नहीं होती।

मुनिजीने पूछा—विप्रवर ! जिसके पिताकी मृत्यु हो गयी हो और पितामह जीवित हों, उसे किस प्रकार श्राद्ध करना चाहिये? यह बतानेकी कृपा करें। ‡

* पित्रा गोवति यस्याः पुत्री द्वौ पुत्रौ चितुः। कथं ज्ञातं हि कर्तव्यमेतद्विस्तरतो यद् ॥

(2201 204)

† कर्मैः पण्डितैः शब्दं कर्मैः दत्तं स्वयम्। एवं न ह्येते भव्यो लौकिको वैदिकस्तथा॥

(२२०। २०६)

‡ मृतः पित्रा लोभति यः सत्यं ब्रह्मन् पित्रात्मनः । स हि ब्रह्मं कथं कुर्यादेतत्त्वं यत्कुमारीति ॥

(२२६। २०७)

व्यासजी बोले—पिताको तो पिण्ड दे, पितामहको प्रत्यक्ष भोजन कराये और प्रपितामहको भी पिण्ड दे दे। यही शास्त्रोंका निर्णय है। मरे हुएको पिण्ड देने और जीवितको भोजन करानेका विधान है। उस अवस्थामें सपिण्डोकरण और पार्वणश्राद्ध नहीं हो सकता।*

जो मनुष्य श्राद्ध-सम्बन्धी विधिका पालन करता है, वह आयु, धन और पुत्रोंके साथ ही

वृद्धिको प्राप्त होता है—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। जो श्राद्धके समय इस पितृमेधविषयक अध्ययनका पाठ करता है, उसके दिये हुए अन्नको पितरलोग तीन युगोंतक खाते रहते हैं। इस प्रकार मैंने यहाँ श्राद्ध-कृत्यका वर्णन किया। यह पापोंका नाश और पुण्योंकी वृद्धि करनेवाला है। श्राद्धके अवसरपर मनुष्यको संयतचित्त होकर इसका श्रवण और पाठ करना चाहिये।

गृहस्थोचित सदाचार तथा कर्तव्याकर्तव्यका वर्णन

व्यासजी कहते हैं—ब्राह्मणो! इस प्रकार गृहस्थ पुरुष हव्य, कव्य और अन्नसे देवता, पितर तथा अतिथियोंका पूजन करे। सम्पूर्ण भूत, भरण-पोषणके योग्य कुटुम्बीजन, पशु, पक्षी, चींटियाँ, सन्ध्यासी भिक्षुक, पक्षिक तथा सदाचारी ब्राह्मण आदि जो भी उपस्थित हों, गृहस्थ पुरुष अपने धर्ममें सबको संतुष्ट करे, जो नित्य और नैमित्तिक क्रियाओंका उल्लङ्घन करता है, वह पापभोजी है।

मुनि बोले—महर्षे! आपने पुरुषोंके नित्य, नैमित्तिक और कर्माध्य—प्रविध कर्मोंका वर्णन किया, अब हम सदाचारका वर्णन सुनना चाहते हैं, जिसका अनुष्ठान करके मनुष्य इस लोक और परलोकमें भी सुखका भागी हो।

व्यासजीने कहा—ब्राह्मणो! गृहस्थ पुरुषको सदा ही सदाचारकी रक्षा करनी चाहिये। आचारहीन मनुष्यको न इस लोकमें सुख मिलता है न परलोकमें। जो सदाचारका उल्लङ्घन करके मनमाना वर्ताव करता है उस पुरुषका कल्याण यज्ञ, दान और तपस्यासे भी नहीं होता। दुराचारी पुरुषको इस लोकमें बड़ी आयु नहीं मिलती, अतः उत्तम

आचाररूप धर्मका सदा पालन करना चाहिये। सदाचार बुरे लक्षणोंका नाश करता है। ब्राह्मणो! अन्न में सदाचारका स्वरूप बतलाता हूँ, एकाग्रचित्त होकर उसका पालन करना चाहिये। गृहस्थको धर्म, अर्थ और काम—तीनोंके साधनका यत्न करना चाहिये। उनके सिद्ध होनेपर उसे इस लोक और परलोकमें सिद्धि प्राप्त होती है। मनको वशमें करके अपनी आयका एक चौथाई भाग पारलौकिक कल्याणके लिये संगृहीत करे। आधे भागसे नित्य-नैमित्तिक कार्योंका निर्वाह करते हुए अपना भरण-पोषण करे तथा एक चौथाई भाग अपने लिये मूल पूँजोंके रूपमें रखकर उसे बढ़ावे। ब्राह्मणो! ऐसा करनेसे धन सफल होता है। इसी प्रकार पापकी निवृत्ति तथा पारलौकिक उन्नतिके लिये विद्वान् पुरुष धर्मका अनुष्ठान करे। वह इस लोकमें भी फल देनेवाला होता है। ब्राह्मणमुहूर्तमें जागे। जागकर धर्म और अर्थका चिन्तन करे। इसके बाद सत्या त्याग कर नित्यकर्मसे निवृत्त हो, स्नान आदिसे पवित्र होकर मनको संयममें रखते हुए पूर्वाभिमुख बैठे और आचमन करके

* पितुः पिण्डं प्रदद्याच्च भोजयेच्च पितामहम् । प्रपितामहस्य पिण्डं वै ह्यन्नं शास्त्रेषु निर्णयः ॥

मृतेषु पिण्डं दातव्यं जीवन्तं चापि भोजयेत् । सपिण्डोकरणं नास्ति न च पार्वणमप्येत ॥

संध्योपासन करे। प्रातःकालकी संध्या उस समय आरम्भ करे, जब तारे दिखायी देते हों। इसी प्रकार सायंकालकी संध्योपासन सूर्यास्तसे पहले ही विधिपूर्वक आरम्भ करे। आपत्तिकास्तके सिवा और किसी समय उसका त्याग न करे। द्विजे! बुरी-बुरी बातें बकना, झूठ बोलना, कठोर वचन मुँहसे निकालना, असत् साख्य पढ़ना, नास्तिकवादको अपनाना तथा दुष्ट पुरुषोंकी सेवा करना अवश्य छोड़ देना चाहिये।* मनको वस्त्रमें रखते हुए प्रतिदिन सायंकाल और प्रातःकाल झुक्न करे। उदय और अस्तके समय सूर्यमण्डलकी दर्शन न करे। बाल सँवारना, दर्पण देखना, हाँसना करना, अँजन लगाना और देवताओंका तर्पण करना—यह सब कार्य पूर्वाह्नकालमें ही करना चाहिये।

ग्राम, निवासस्थान, तीर्थ और क्षेत्रोंके मार्गमें, जाते हुए स्रोतमें तथा गोशालामें मल-मूत्र न करे। पतनी स्त्रीको नंगी अवस्थामें न देखे। अपनी विद्यापर दुहिता न करे। राजस्वला स्त्रीका दर्शन, स्पर्श तथा उसके साथ भाषण भी वर्जित है। पानीमें मल-मूत्रका त्याग अथवा मैथुन न करे। बुद्धिमान् पुरुष मल-मूत्र, केश, राख, खोपड़ी, भूसी कीकसे, सड़ी-गली वस्तुएँ, रस्सी तथा केवल पृथ्वीपर और मार्गमें कभी न बैठे। गृहस्थ मनुष्य अपने वैधव्यके अनुसार देवता, पितर, मनुष्य तथा अन्यान्य प्राणियोंका पूजन करके पीछे भोजन करे। भलीभाँति आचमन करके हाथ पैर धोकर पवित्र हो पूर्व या उत्तरकी ओर मुँह करके भोजनके स्थाने आसनपर बैठे और हाथोंको धुत्नोंके भीतर करके मीनभ्रमसे भोजन करे। भोजनके समय मनको अन्यत्र न ले जाय। यदि अन्न किसी प्रकारकी हानि करनेवाला हो तो उस हानिको ही बताये, उसके सिवा अन्नके और किसी दोषकी चर्चा न करे। भोजनके साथ

पृथक् नमक लेकर न खाय। जूटा अन्न खाना वर्जित है। मनुष्यको चाहिये कि मनको वस्त्रमें रखे और खड़े होकर या चलते-चलते मल-मूत्रका त्याग, आचमन तथा किसी वस्तुका भक्षण न करे। जूटे मुँह वार्तालाप न करे तथा इस अवस्थामें स्वाध्याय भी वर्जित है। जूटे अवस्थामें सूर्य, चन्द्रमा और तारोंकी ओर जानमूलकर न देखे। दूसरेके आसन, सभ्या और बर्तनका भी स्पर्श न करे।

गुरुजनोंके आनेपर उन्हें बैठनेको आसन दे। उठकर प्रणाम आदिके द्वारा उनका आदर-सत्कार करे। उनके अनुकूल वार्तालाप करे। जाते समय उनके पीछे-पीछे कुछ दूर जाकर पहुँचावे। उनके प्रतिकूल कोई बर्ताव न करे। एक वस्त्र धारण करके भोजन और देवपूजन न करे। बुद्धिमान् पुरुष ब्राह्मणोंसे बोझ न तुल्लावे। आगमें भूत्र त्याग न करे। नग्न होकर कभी स्नान और शयन न करे। दोनों हाथोंसे सिर न खुजलावे। बिना कारण बार-बार सिरके ऊपरसे स्नान न करे। सिरसे स्नान कर लेनेपर किसी भी अङ्गमें तेल न लगावे। सब अन्धकारोंके दिन स्वाध्याय बंद रखे। ब्राह्मण, अग्नि, गौ तथा सूर्यकी ओर मुँह करके पेशाब न करे। दिनमें उत्तरकी ओर और रातमें दक्षिणकी ओर मुँह करके मल-मूत्रका त्याग करे। जहाँ ऐसा करनेमें कोई बाधा हो वहाँ इच्छानुसार करे। गुरुके दुष्कर्मकी चर्चा न करे। यदि वे क्रुद्ध हों तो उन्हें विनयपूर्वक प्रसन्न करे। दूसरे लोग भी यदि गुरुकी निन्दा करते हों तो उसे न सुने। ब्राह्मण, राजा, दुःखसे आतुर मनुष्य, विद्यावृद्ध पुरुष, गर्भिणी स्त्री, रोगसे व्याकुल मनुष्य, गूंगा, अंधा, बहरा, मत्त, उन्मत्त, व्यभिचारिणी स्त्री, उपकारी, बालक और पतित—ये यदि सामनेसे आते हों तो स्वयं किनारे हटकर

* पूर्वा संध्यां सनश्चरं पश्चिमं सद्विवाकरम् । उपरसीत यथान्याथ नैनां ब्रह्मादनापदि ॥

असत्प्रसापधूर्तं वाक्पराध्वं च चर्चयेत् । असच्छास्त्रमसद्वादमसत्स्वेवं च वै द्विज ॥

इनको जानेके लिये मार्ग देना चाहिये। विद्वान् पुरुष देवालय, चैत्यबुध, चौराहा, विद्याबृद्ध पुरुष और गुरु—इनको दाहिने करके चले। दूसरोंके धारण किये हुए जूते, वस्त्र और माला आदि स्वयं न पहने। चतुर्दशी, अष्टमी, पूर्णिमा तथा पर्वके दिन वैशाख्य एवं स्त्री-सहवास न करे। नुद्धिभक्त मनुष्य बाँहों और पिंडलियोंको ऊपर उठकर न खड़ा हो तथा पैरोंको भी न हिलावे। पैरसे पैरको न दबावे। किसीको चुभती हुई बात न कहे। निन्दा और चुगली छोड़ दे। दम्भ, अभिमान और तीखे व्यवहारका त्याग करे। मूर्ख, उन्मत्त, व्यसनी, कुरूप, होनाङ्ग और निर्धन मनुष्योंकी शिष्टी न उड़ावे। दूसरोंको दण्ड न दे, केवल पुत्र और शिष्यको शिक्षा देनेके उद्देश्यसे दण्ड दिया जा सकता है। आसनको पैरसे छींचकर न बैठे। सायंकाल और प्रातःकाल पहले अतिथिकर सम्भार करके पीछे स्वयं भोजन करे।

पूर्व या उत्तरकी ओर मुँह करके ही दौतन करे। दौतन करते समय घीन रहे। दौतनके लिये निषिद्ध वृक्ष एवं लताओंका परित्याग करे। उत्तर और पश्चिमकी ओर सिर करके कभी न सोये। दक्षिण या पूर्व दिशाकी ओर ही मस्तक करके सोना चाहिये। जहाँसे दुर्गन्ध आती हो, ऐसे जलमें तथा रात्रिकालमें स्नान न करे। ग्रहणके समय रात्रिमें भी आन करना बहुत उत्तम है। इसके सिवा अन्य समयमें दिनमें ही स्नानका विधान है। वस्त्रके छोरसे अथवा वस्त्र हाथमें लेकर उससे शरीरको न मले। बालों और धात्योंको न झटकारे। विद्वान् पुरुष स्नान किये बिना कभी चन्दन न लगावे। एक दूसरोंके वस्त्र और आभूषणोंको बदल-बदलकर न पहने। जिसमें कोर न हो और जो बहुत फट गया हो,

ऐसा वस्त्र न पहने। जिसमें कोई अथवा बाल पड़े हों, जिसे कुत्तेने देखा अथवा चाट लिया हो अथवा जो सारभण निकाल लेनेके कारण दूषित हो गया हो, ऐसे अन्नको कभी न खाये। भोजनके साथ अस्त्रग नमक रखकर न खाये। बहुत देरके बने हुए सूखे और बाली अन्नको त्याग दे। पिट्टी, खान, इसके रस और दूधकी बनी हुई वस्तुएँ भी यदि बहुत दिनोंकी हों तो उन्हें न खाये। सूर्यके उदय और अस्तके समय शयन न करे। बिना नहाये, बिना बैठे, अन्यधनस्क होकर, हाथ्यापर बैठकर या स्वेकर, केवल पृथ्वीपर बैठकर, बोलते हुए तथा वृत्तवर्गको दिये बिना कदापि भोजन न करे। मनुष्य स्नान करके तबै और रात्रि दो समय विधिपूर्वक भोजन करे।

विद्वान् पुरुषको कभी परापी स्त्रीके साथ समागम नहीं करना चाहिये। परस्त्रीसंगम मनुष्योंके हृत्, पुर्त और आयुका नाश करनेवाला है। इस संसारमें परस्त्री-गमनके समान पुरुषकी आयुका विपातक कर्ष दुभरा कोई नहीं है।* देवपूजा, अग्निहोत्र, पितरोंका श्राद्ध, गुरुजनोंको प्रणाम तथा भोजन भलीभाँति आचमन करके करना चाहिये। स्वच्छ, फेनरहित, दुर्गन्धरहित और पवित्र जल लेकर पूर्व या उत्तरकी ओर मुँह करके आचमन करना चाहिये। जलके भीतरकी, चरकी, बाँकीकी, चूहेके बिलस्की और तीबसे बची हुई—ये पाँच प्रकारकी मिट्टियाँ त्याग देने योग्य हैं। हाथ-पैर धोकर एकाग्रचित्तसे मूर्जन करके मुटनोंको समेटकर तीन या चार बार आचमन करे, फिर दो बार ओठ पोंछकर आँख, कान, मुख, नासिका तथा मस्तकका स्पर्श करे। इस प्रकार अलसे भलीभाँति आचमन करके पवित्र हो देवपूजा तथा श्राद्ध आदिकी क्रिया करनी चाहिये। सीकने, खटने, बगन करने, धूकने

* परदारो न मलव्याः पुरुषेण विपक्षितः। श्रान्पूर्वायुषां हन्ती परदारवर्तिनृण्यम् ॥

न हादृतमनायुषं स्वेकं किञ्चन विधत्ते। वादुतं पुरुषस्येह परदारविध्वंसनम् ॥

तथा अस्पृश्यका स्पर्श करनेपर आचमन, सूर्यका दर्शन अथवा दाहिने कानका स्पर्श करना चाहिये। इनमें पहलेके अभावमें दूसरा उपाय करना चाहिये। पहले उपायके सम्भव होनेपर उपान्नातक अथवा अन्य अभीष्ट नहीं।

शक्ति न कटकटाये। अपने शरीरपर कल न दे, दोनों संध्याओंके समय अध्ययन, भोजन और शयनका त्याग करे। सन्ध्यकालमें मैथुन और राक्षस चलना भी मन्त्र है। पूर्वाह्नमें देवताओंका, मध्याह्नमें मनुष्योंका तथा अपराह्नकालमें पितरोंका भक्तिपूर्वक पूजन करना चाहिये। दैवकार्य या पितृकार्यमें फिरसे जान करके प्रवृत्त होना उचित है। पूर्ण या उत्तराशी और मूँह करके और कराये। उत्तम कुलमें ठापा होनेपर भी जो कन्या किसी अङ्गसे हीन या रोगिणी हो, उसके साथ विवाह न करे। ईर्ष्याका परित्याग करे। दिनमें शयन अथवा मैथुन न करे। दूसरोंको कह देनेवाला कार्य न करे। कभी किसी भी जीवको पीड़ा न दे। स्वयंस्व सही घर उत्तमक सभी धर्मके पुरुषोंके लिये स्वयं है। यदि कन्याका जन्म अभीष्ट न हो तो उसे रोक्नेके लिये पौखीं रातमें भी स्वीसहवास न करे। छठी रात आनेपर स्त्रीके पास जाय, क्योंकि शुभ रात्रिणी ही इसके लिये श्रेष्ठ है। शुभ रात्रियोंमें स्वीसहवास करनेसे पुत्र होता है और अशुभ रात्रियोंमें गर्भधान करनेसे कन्या उत्पन्न होती है। पर्व आदिके अवसरपर मैथुन करनेसे विधवा संतान होती है और संध्याकालमें गर्भधान करनेसे नपुंसक उत्पन्न होते हैं। किन्तु पुरुष औरकर्ममें रिक्त (चतुर्षी, नवमी और चतुर्दशी) तिथियोंका परित्याग करे। दिनराहित उदण्ड पुरुषोंको बात कभी न सुने। जो अपनेसे नीचा हो, उसे आदरपूर्वक ऊँच अस्सन न दे। हजामत बनवाने, बसन होने, स्त्री-प्रसङ्ग करने तथा श्मशानभूमिमें जानेपर वस्त्रसहित स्नान करे। देवता, वेद, द्विज, साधु, सच्चे महत्त्व, गुरु, पतिव्रता, वेद, यज्ञ तथा तपस्वीकी निन्दा और

परिहास न करे। सत्य मामूलिक वेष धारण किये रहे। कभी भी अमङ्गलमय वेष न धारण करे। स्वच्छ कल पहने और श्वेत पुष्पोंकी माला धारण करे। दण्ड, तन्मत्, मूढ़, अधिनीत, शीलहीन, अयस्य और जातिसे दूषित, अधिक अपव्ययी, कैरे, कार्यमें असमर्थ, विन्दित, भूतोंका संग करनेवाले, निर्धन, विवाद करनेवाले तथा अन्य अधम पुरुषोंके साथ कभी मिश्रण न करे। मुहूर्त, चण्डीकृत, उच्च, स्तम्भक तथा क्षुर—इनके साथ मैत्रीका भाव रखे और जब वे घरपर पधारें तो ठठकर खड़ा हो जाय; साथ ही अपने वैभवके अनुसार इनका पूजन करे। प्रतिवर्ष अपने घर उभये हुए ब्राह्मणोंका वैभवके अनुसार स्वगत-साकार करे।

अपने घरमें बधास्थान देवताओंका भलीभाँति पूजन करके क्रमशः अग्रिम आहुति दे। पक्षी आहुति ब्रह्मको, दूसरी प्रजापतिको, तीसरी गृहप्रभुको, चौथी कश्यपको तथा पाँचवीं अनुपतिको दे। तत्पश्चात् बलिदेवको दे। देवताओंके लिये पुष्प-पुष्प स्वयंस्व विद्याग करके उनके लिये बलि अर्पण करे। तत्पश्चात् क्रम इस प्रकार है। एक पात्रमें पहले पर्वन्, जल और पुष्पीको तीन बलियाँ दे; फिर पूर्व आदि प्रत्येक दिशामें वायुको बलि देकर क्रमशः उग-उग दिशओंके नामसे भी बलि समर्पित करे। तत्पश्चात् मध्यमें क्रमशः ब्रह्म, अन्तरिक्ष और सूर्यको बलि दे। उनके उत्तरभागमें विद्येदेवी और विष्णुको बलि दे फिर उनके भी उत्तरभागमें तब और भूतपतिको बलि समर्पित करे। तदनन्तर 'पितृभ्यः स्वाहा नमः' यों कहकर दक्षिण दिशामें अपसव्य होकर पितरोंके लिये बलि दे और वायव्य दिशामें अग्रका शेष भाग तथा जल लेकर 'यक्षैस्तस्य निर्जङ्गम्य' यह मन्त्र पढ़कर उसे विधिपूर्वक छोड़ दे; फिर देवताओं और ब्राह्मणोंको नमस्कार करे। दाहिने हाथमें अंगूठेक उत्तर और जो एक रेखा होती है, वह ब्राह्मणोंके नामसे प्रसिद्ध है, उससे आचमन किञ्च ज्ञात है। तर्जनी और

अँगूठेके बीचका भाग पितृतीर्थ कहलाता है। नान्दीमुख पितरोंको छोड़कर अन्य सब पितरोंको उसी तीर्थसे जल आदि देना चाहिये। अँगुलियोंके अग्रभागमें देवतीर्थ है। उसीसे देवकार्य करनेका विधान है। कनिष्ठिकाके मूलभागमें कामतीर्थ (प्रजापति-तीर्थ) है। उससे प्रजापतिकार्य किया जाता है। इस प्रकार इन तीर्थोंसे सदा देवताओं और पितरोंके कार्य करने चाहिये, अन्य तीर्थोंसे कदापि नहीं। ब्राह्मतीर्थसे आचमन उत्तम माना गया है। पितरोंका श्राद्ध और तर्पण पितृतीर्थसे, देवताओंका चक्र-याग्रादि देवतीर्थसे और प्रजापतिकार्य कामतीर्थसे करना श्रेष्ठ बताया गया है। नान्दीमुख नामवाले पितरोंके लिये पिण्डदान और तर्पण आदि कार्य प्राजापत्यतीर्थसे करने चाहिये।

विद्वान् पुरुष एक स्थल जल और अग्नि न ले। गुरु, देवता, पिता तथा ब्राह्मणोंकी ओर पैर न फैलाये। बछड़ेको दूध पिलाती हुई गम्पकसे न छेड़े। अङ्गुलिसे पानी न धिये। सौचके समय बिलम्ब न करे। मुखसे अन्न न फूँके। ब्राह्मणे। जहाँ श्रम देनेवाला धनी, धिक्रिस्ता करनेवाला वैश्य, श्रोत्रिय ब्राह्मण तथा जलपूर्ण बट्टी—ये चार न हों, जहाँ निवास नहीं करना चाहिये। जहाँ शत्रुविजयी बलवान् और धर्मपरकण राजा हो, वहाँ विद्वान् पुरुषको सदा निवास करना चाहिये। दूध टाँके राज्यमें कहीं सुख है।* जहाँ पुरवासी परस्पर संगठित और न्यायानुकूल बर्ताव करनेवाले हों तथा सब लोग शान्त एवं ईर्ष्यारहित हों, वहाँका निवास भविष्यमें सुख देनेवाला होता है। जिस घरमें किसान बहुत हों, परंतु वे बहुत चर्पकी न हों तथा जहाँ सब तरहके अन्न पैदा होते हों, वहाँ बुद्धिमान् पुरुषको निवास करना चाहिये। ब्राह्मणे। जहाँ अपनेको जीतनेकी इच्छा रखनेवाला मनुष्य, पहनेका

शत्रु और सदा उत्सवमें ही मान रहनेवाले लोग—ये तीन सदा मौजूद हों, वहाँ कभी निजस नहीं करना चाहिये। जिस स्थानपर अच्छे स्वभाववाले पड़ोसी हों, दुर्घर्ष राजा हो और सदा खेती उपजानेवाली भूमि हो, वहाँ विद्वान् पुरुषको रहन उचित है। विप्रवरों! इस प्रकार मैंने तुमलोगोंके हितके लिये ये सब बातें बतायी हैं।

अब मैं भक्ष्य और भोज्यकी विधिसे सम्बन्ध रखनेवाली बातें बतलाऊँगा। भी अथवा तैलमें पका हुआ अन्न बहुत देरका बना हुआ अथवा कसी भी हो तो वह भोजन करने योग्य होता है। गेहूँ, जौ तथा गेरुसकी बनी हुई वस्तुएँ तेल, घीमें न बनी हों, तब भी वे पूर्ववत् ग्रहण करने योग्य हैं। शङ्ख, कचर, सोन, चाँदी, रस्सी, कपड़ा, साग, मूल, फल, घण्टि, हीरा, मूँगा, मोती, पात्र और चर्म—इन सबकी शुद्धि जलसे होती है। लोहेके चाँई एवं इथियारोंकी शुद्धि घानीसे धोने तथा कचर आनी शूनपर रगड़नेसे होती है। जिस चाँईमें तेल का भी रखा गया हो, उसकी सफाई गर्म जलसे होती है। सूच, मृगचर्म, मूसल, ओखली तथा कपड़ोंके डेरकी शुद्धि जल छिड़कनेमात्रसे हो जाती है। चल्कल चल्ककी शुद्धि जल और मिट्टीसे होती है, मिट्टीके बर्तन दुकार पक्कनेसे शुद्ध होते हैं। भिक्षामें प्राप्त अन्न, कमीगरका हाथ, बाजारमें धिकनेके लिये आयी हुई लक आदि वस्तुएँ, जिसके गुण-दोषका ज्ञान न हो, ऐसी वस्तु और सेवकोंद्वारा बनायी हुई वस्तु सदा शुद्ध मानी जाती है। जो बहता हो तथा जिससे दुर्गन्ध न आती हो, ऐसा जल शुद्ध माना गया है। समयानुसार अग्निसे तपाने, बुहारने, चर्पके चलने-फिरने, लीपने, जोतने और जल छिड़कनेसे भूमिकी शुद्धि होती है। बुहारने आदिसे

* तत्र विप्र न वसत्यं कश्च नसि चतुर्धम्। श्वप्रदता वैश्वः श्रोत्रियः सजला नदी॥

जितामित्रो नृपे यत्र बलवान्धर्मतत्परः। तत्र नित्यं वसेत्प्राज्ञः कुत कुतपती सुखम्॥

पर शुद्ध होता है। जिसमें माल या कीड़े पड़ें हो, जिसे गायने सूँच लिया हो तथा जिसमें भस्मिष्ठर्षा पड़ी हो, ऐसे पात्रकी शुद्धिके लिये राख, मिट्टी और जलका उपयोग करना चाहिये। तबैका कर्तन खटाईसे, छँग और शीश बलसे और कर्तसेके कर्तन राख और बलसे शुद्ध होते हैं। जिस पात्रमें कोई अपवित्र वस्तु पड़ गयी हो, उसे मिट्टी और जलसे तबतक धोये, जबतक कि उसकी दुर्गन्ध दूर न हो जाय। इससे वह शुद्ध होता है। भूल, अग्नि, घोड़ा, गौ, ऊँचा, किरणें, वायु, भूमि, जलके छींटे और मक्खी आदि—ये सब अशुद्ध वस्तुके संसर्गमें आनेपर भी दूषित नहीं होते। बकरे और घोड़ेका मुख शुद्ध माना गया है, किंतु गायका नहीं। बछड़ेका मुँह तथा मूत्राका स्तन भी पवित्र वस्तु माना गया है। पेड़से फल गिरावे समय पक्षीकी चोंच भी शुद्ध मानी गयी है। आसन, हाथ्या, सवारी, नदीका तट और कुण्ड—ये सब बाजारमें बिकनेवाली वस्तुओंकी भाँति सूर्य और चन्द्रमाकी किरणों तथा वायुके स्पर्शसे शुद्ध होती हैं। सबकों और गलियोंमें घूमने-फिरने, स्नान करने, छींक आने, हस्य खुलने तथा बस बसनेपर विधिपूर्वक आचमन करना चाहिये। पक्षी ईंटके बने हुए चबूतरे आदिमें यदि कोई अस्पृश्य वस्तु, गलियोंकी कीचड़ या बल आदि लग जाय तो उसकी शुद्धि केवल वायुके स्पर्शसे हो जाती है।

अनजानमें यदि दूषित अन्न भोजन कर ले तो तीन रात्र उपवास करनेसे शुद्धि होती है, और यदि जान-बूझकर किया हो तो उसके दोषकी क्षतिके लिये प्रार्थना करनेसे शुद्धि होती है। राजस्वला स्त्री, नक्षत्रसूता स्त्री, चाण्डाल तथा मुर्दा होनेवाले मनुष्योंसे छू आनेपर शुद्धिके लिये स्नान करना चाहिये। मनुष्यकी गीली हड्डीका स्पर्श कर लेनेपर ब्राह्मण स्नान करनेसे शुद्ध होता है और सूखी हड्डीका स्पर्श करनेपर केवल आचमन करके गायका स्पर्श या सूर्यका दर्शन करनेसे वह शुद्ध

हो सकता है। शूक और उबटनको न लाँचे। झूठ, भल-भूत और पैरोंकी धोवनको घरसे बाहर केके। दूसरोंके सुदाये हुए पोखरे आदिमें पाँच सौदे मिट्टी निकासे बिना स्नान न करे। देवतासम्बन्धी सरोवरों और गङ्गा आदि नदियोंमें सदा ही स्नान करे। असमयमें उद्यान आदिके भीतर कभी न उठे। लोकनिन्दित पुरुषों तथा विधवा स्त्रियोंसे कभी कर्तास्ताप न करे। राजस्वला स्त्री, पतिव्रता, मुर्दा, विधवा, प्रसूता स्त्री, गर्भसक, वस्त्रहीन, चाण्डाल, मुर्दा होनेवाले तथा परस्त्रीगामी पुरुषोंको देखकर विद्वान् पुरुष अपनी शुद्धिके लिये सूर्यका दर्शन करे। अभय पदार्थ, भिक्षुक, चाण्डाल, विधवा, गदहा, मुर्गा, पतित, जातिबहिष्कृत, चाण्डाल, प्रमथित सुअर तथा अशौचदूषित मनुष्योंका स्पर्श कर लेनेपर स्नान करनेसे शुद्धि होती है। जिसके घरमें प्रतिदिन नित्यकर्मकी अवहेलना होती है तथा जिसे ब्राह्मणोंने त्याग दिया है, वह अशौच पापधेगी है। नित्यकर्मका त्याग कभी नहीं करना चाहिये। उसे न करनेका विधान तो केवल मरणाशौच और जननाशौचमें ही है। अशौच प्राप्त होनेपर ब्राह्मण दस दिन, क्षत्रिय बारह दिन तथा वैश्य पंद्रह दिनोंतक दान-होम आदि कर्मोंसे अलग रहे। शूद्र एक मासतक अपना कर्म बंद रखे। फिर अशौच निवृत्त होनेपर सब लोग अपने शास्त्रोक्त कर्मोंका अनुष्ठान करें। मृतकका दाह-संस्कार करनेके बाद उसके गोत्रवाले लोगोंको चाहिये कि बाहर जलाशय आदिमें जाकर पड़ते, चौंथे, सातवें और नवें दिन उस प्रेतके लिये जलाहुति दें। दाह-संस्कारके चौथे दिन सम्मान गोत्रवाले भाई बन्धुओंको प्रेतकी पिण्डसे उसके अस्थियोंका संचय करना चाहिये। अस्थिसंचयके बाद उनके अङ्गोंका स्पर्श किया जा सकता है। फिर समानोदक पुरुष अपने सब कर्म कर सकते हैं। जिस दिन मृत्यु हुई हो, उस दिन समानोदक और सपिण्ड दोनोंका स्पर्श

किया जा सकता है। धनके लिये चेष्टा करते समय यह स्वेच्छामसे अथवा तत्स्य, रसस्य, बन्धन, अपि, विष्य, पर्वतसे गिरने तथा उपवास आदिके द्वारा मृत्यु होनेपर और बालक, परदेशी एवं परिव्राजककी मृत्यु होनेपर तत्काल अशौच निवृत्त हो जाता है। कुछ लोगोंके मतमें तीन दिनोंतक अशौच बना रहता है। यदि सपिण्डोंमेंसे एककी मृत्यु होनेके बाद थोड़े ही दिनोंमें दूसरेकी भी मृत्यु हो जाय तो पहलेके अशौचके साथ ही दूसरेका अशौच भी निवृत्त हो जाता है। अतः पहलेके अशौचमें जितने दिन शेष हों, उतने ही दिनोंके भीतर दूसरेका भी श्राद्ध आदि कर्म कर देना चाहिये। जननाशौचमें भी यही विधि देखी गयी है। सपिण्ड तथा समानोदक व्यक्तिओंमें एकके बाद दूसरेका जन्म हो तो इसी प्रकार पहलेके साथ दूसरेका अशौच भी निवृत्त हो जाता है।

पुत्रका जन्म होनेपर पिताको वस्त्रसहित स्नान करना चाहिये। वसमें भी यदि एकके जन्मके बाद दूसरेका जन्म हो जाय तो पहले जन्मे हुए बालकके दिनपर ही दूसरेकी भी शुद्धि कर्तायी गयी है। अशौचके बाद क्रमशः दस, बारह, पंद्रह और तीस दिन बीतनेपर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र अपने-अपने शास्त्रोक्त कर्मोंका अनुष्ठान करें। अशौच निवृत्त होनेपर प्रेतके लिये एकोष्टि करना चाहिये और ब्राह्मणोंको दान देना चाहिये। लोकमें जो-जो वस्तु अधिक प्रिय हो और घरमें भी जो वस्तु अत्यन्त प्रिय जान पड़े, उसको अक्षय बनानेकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको उक्ति है कि वह उसे गुणवान् पुरुषको दान दे। अशौचके दिन पूरे हो जानेपर जल, वाहन और आयुधका स्पर्श करके पवित्र हो सब वर्णोंके लोग

प्रेतके लिये अलक्ष्म और पिण्डदान आदिका कार्य करें; तदनन्तर अपने-अपने वर्ण-धर्मका पालन करें। इससे इस लोक और परलोकमें भी कल्याण होता है। तीनों वेदोंका प्रतिदिन स्वाध्याय करे, विद्वान् बने, धर्मानुसार धनका उपार्जन करे और उसे धनपूर्वक यज्ञमें लगाये। जिस कर्मका करते समय आत्मामें घृणा न हो और जिसे महापुरुषोंके सामने प्रकट करनेमें कोई संकोच न हो, ऐसा कर्म निःशङ्क होकर करना चाहिये। ब्राह्मणों। ऐसे आचरणवाले गृहस्थ पुरुषको धर्म, अर्थ और कामको प्राप्ति होती है तथा इस लोक और परलोकमें भी उसका कल्याण होता है। यह विषय अत्यन्त गोपनीय तथा आयु, धन और बुद्धिको बढ़ानेवाला है। यह सब पापोंका नाशक, पवित्र तथा श्री, पुष्टि एवं अमरोग्य देनेवाला है। इसका ही नहीं, यह कल्याणप्रय प्रसङ्ग मनुष्योंको सदा और कर्मों देनेवाला तथा उनके तेज और बलकी वृद्धि करनेवाला है। मनुष्योंको सदा इसका अनुष्ठान करना चाहिये। यह स्मार्तका सर्वोत्तम साधन है। सम्भक्त श्रेष्ठकी इच्छा रखनेवाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंको यज्ञपूर्वक इन सब कर्मोंका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। जो इस विषयको भस्मीभूति मानकर निरप-निरन्तर इसका अनुष्ठान करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। द्विजवरो! यह मैंने सारसे भी अत्यन्त सारभूत तत्त्वका वर्णन किया है। यह श्रुतियों तथा स्मृतियोंद्वारा प्रतिपादित धर्म है। हर एकको इसका उपदेश नहीं देना चाहिये। जो चास्त्रिक हो, जिसकी बुद्धि खोटी हो, जो दम्भी, मूर्ख और कुतर्कपूर्ण वार्तालाप करनेवाला हो, ऐसे मनुष्यको कदापि इसका उपदेश नहीं देना चाहिये।

वर्ण और आश्रमोंके धर्मका निरूपण

मुनियोंने कहा—ऋषन्! अब हम वर्णधर्म और आश्रमधर्मका विरोध रूपसे वर्णन सुनना चाहते हैं। विप्रवर! अब उसीका वर्णन कीजिये।

ब्राह्मणजी बोले—द्विजवर! अब मैं क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—इन चारों वर्णोंके धर्मका वर्णन करूँगा। तुमस्वये एकप्रचित होकर सुनो। ब्राह्मणको सदा दान, दया, उपमन्या, देवयज्ञ और स्वाध्यायमें तत्पर रहना चाहिये। तर्पण और अग्निहोत्र उसका प्रतिदिनका कार्य होना चाहिये। जीविकाके लिये वह अन्य द्विजोंका यज्ञ कराये तथा उन्हें पढ़ाये। यज्ञ करनेके लिये वह जान-बूझकर भी प्रतिग्रह ले सकता है। सब लोगोंका हितसम्बन्धन करना और किसीका भी अपने द्वारा अहित न होने देना, यह ब्राह्मणका कर्तव्य है। समस्त प्राणियोंके प्रति मैत्रीका होना, यह ब्राह्मणके लिये सबसे उत्तम धन है।* केवल ऋतुकालमें पत्नोंके साथ सभागम करना ब्राह्मणके लिये प्रसंसाहीय बात है। क्षत्रिय भी अपने इच्छानुसार ब्राह्मणको दान दे पाना प्रकारके यज्ञोद्धार भगवान्का यजन करे और स्वाध्यायमें संलग्न रहे। समस्त चलकर जीवन-निर्वाह करना और पुण्यको पालन करना—ये दो क्षत्रियकी मुख्य जीविकाएँ हैं। उनमें भी पृथ्वीकी रक्षा उसके लिये मुख्य अजोविका है। पृथ्वीका पालन करनेसे ही राजा कुतार्थ होते हैं, क्योंकि उसीसे उनके यज्ञ आदि कार्योंकी रक्षा होती है। जो राजा दुष्ट पुरुषोंका दमन और साधु पुरुषोंका पालन करके सब वर्णोंको अपने-अपने धर्ममें स्थापित करता है, वह मनोवञ्छित लोकोंको प्राप्त होता है। लोकपितामह ब्रह्माजीने वैश्योंके लिये पशुओंका पालन, व्यापार और छेती—ये तीन आजीविकाएँ प्रदान की हैं।

वेदोंका अध्ययन, यज्ञ, दान, धर्म तथा नित्य और नैमित्तिक आदि कर्मोंका अनुष्ठान वैश्यके लिये भी उत्तम है। शूद्र द्विजातियोंको सेवाका कार्य करे और उसीसे अर्थोपार्जन करके अपना जीवन-निर्वाह करे। भस्त्रा खरीद-बिक्री या शिल्पकर्मके द्वारा धन पैदा करके उससे जीविका चलाये। शूद्र भी दान दे और मन्त्रहीन शक-यज्ञोंद्वारा यजन करे। वह अष्ट आदि सब कार्य बिना मन्त्रके कर सकता है। भूय आदिका भरण-पोषण करनेके लिये सबके लिये संग्रह आवश्यक है। ऋतुकालके समय अपनी पत्नीके पास जाना, सब प्राणियोंके प्रति दयाभाव रखना, शीत, उष्ण आदि दुष्टोंको संलग्न करना, अभिमान न रखना, सत्य बोलना, पवित्रतापूर्वक रहना, किसीको बड़ न पहुँचाना, सबका भक्षण करना, प्रिय वचन बोलना, सबके प्रति मैत्रीका भाव रखना, किसी वस्तुको कपन्य न करना, कृपक्या न करना तथा किसीके भी दोष न देखना—ये सभी वर्णोंके लिये सामान्यरूपसे उत्तम गुण बताये गये हैं। चारों आश्रमोंके लिये भी ये सामान्य गुण हैं। ब्राह्मणों! अब ब्राह्मण आदि वर्णोंके उपधर्म बताताये जाते हैं। आपत्तिकालमें ब्राह्मणके लिये क्षत्रियका कर्म, क्षत्रियके लिये वैश्यका कर्म तथा वैश्य और क्षत्रिय दोनोंके लिये शूद्रका कर्म कर्तव्य बताया गया है। सामर्थ्य रहते इन दोनोंके शूद्रका कर्म नहीं करना चाहिये, परंतु आपत्तिकालमें यही कर्तव्य हो जाता है। आपत्ति न होनेपर कर्म-संस्कार कदापि न करे ब्राह्मण! इस प्रकार मैंने वर्णधर्मका वर्णन किया है।

अब आश्रमधर्मका भली-भाँति वर्णन करता हूँ, सुनो। उपनयन-संस्कार होनेपर ब्राह्मचारी बालक एकप्रचित हो गुरुके घरपर रहते हुए वेदोंका

अध्ययन करे, सौच और सदाचारका पालन करते हुए गुरुकी सेवा करे। पवित्र बुद्धिसे उनके ज्ञानपूर्वक वेदोंको शिक्षा ग्रहण करे। दोनों संध्योंके समय एकप्रवृत्ति हो सूर्योपस्थान, अग्निहोत्र और गुरुका अभिवादन करे। गुरुदेव खाड़े हों तो स्वयं भी खड़ा रहे। वे जाते हों तो पीछे-पीछे जाय और वे बैठे हों तो उनसे नीचे आसनपर बैठे। शिष्यको कहिये कि वह गुरुके विपरीत कोई आचरण न करे। ठहोकी आज्ञासे उनके सामने बैठकर एकप्रवृत्तिसे वेदका अध्ययन करे। गुरुका आदेश मिलनेपर भिक्षुका अन्न ग्रहण करे। जब आचार्य पहले स्नान कर लें तो स्वयं चालीमें प्रवेश करके अवाहन करे। प्रतिदिन प्रत-काल आचार्यके लिये समिधा और जल अर्पित हो आवे। जब ग्रहण करनेके योग्य वेदोंका पूर्णक्रमसे अध्ययन कर ले, तब विद्वान् पुरुष गुरुशिष्य देख गुरुकी आज्ञा ले गृहस्थाश्रममें प्रवेश करे।

विधिपूर्वक योग्य स्त्रीसे विवाह करके अपने अर्णोचित कर्मद्वारा जनक उपाज्जन करे और उसीसे यथाशक्ति गृहस्थका सारा कार्य पूर्ण करे। श्राद्धके द्वारा पितरों, यज्ञद्वारा देवताओं, अन्नसे अतिथियों, स्वाध्यायसे मुनियों, संतानोत्पन्नसे प्रजापति, बलिवैश्वदेवसे सम्पूर्ण भूतों और सत्त्वब्रह्मके द्वारा सम्पूर्ण जगत्का पूजन करे। ऐसा करनेवाला पुरुष अपने कर्मोंद्वारा उपाजित उत्तम लोकमें जाता है। भिक्षापर निर्वाह करनेवाले संन्यासी और ब्रह्मचारी भी गृहस्थोंके ही अवलम्बसे रहते हैं, अतः गृहस्थ-आश्रम श्रेष्ठ माना गया है। जो ब्राह्मण वेदाध्ययन, तीर्थस्नान और पुण्योंके दर्शनके लिये भूतलपर भ्रमण करते हैं, जिनका कोई घर नहीं है, जो प्रायः निराहार रहते हैं और जहाँ सम्भ्या हो गयी, वहाँ डेर डाल देते हैं, ऐसे लोगोंका सहारा और आधार गृहस्थ ही हैं। पूर्वोक्त द्विज जब घरपर पधारें तो मधुर वार्त्तासे

सब उनका स्वागत-सत्कार करना चाहिये। उन्हें सज्ज, आसन और भोजन देना चाहिये। जिसके घरसे अतिथि निराश होकर लौटता है, वह उसे अपना पाप दे बदलेमें उसका पुण्य लेकर चल देता है।* गृहस्थ पुरुषमें दूसरोंके प्रति अक्वैरुना अपनेमें अहंकार, दम्भ, परनिन्दा, दूसरोंपर चोट करनेकी प्रवृत्ति और कटुवचन बोलनेका स्वभाव होना अच्छा नहीं माना गया है। जो गृहस्थ इस प्रकार उत्तम विधिको पालन करता है, वह सब प्रकारके बन्धनोंसे मुक्त हो उत्तम लोकमें जाता है। गृहस्थ पुरुष बुद्धिमान होनेपर अपनी स्त्रीका भार पुत्रोंको सौंप दे और स्वयं तपस्याके लिये वनमें चला जाय अथवा स्त्रीको भी साथ ही लेता जाय। वहाँ पतिर्पा, मूल और फल आदिका आहार करते हुए पृथ्वीपर तपन करे। सिरके काल, दाढ़ी और मूँछ न कटाये। वानप्रस्थ मुनिके लिये सब लोग अतिथि हैं। वह मृगचर्म, कास और कुश आदिकी कपौन एवं चादर धारण करे। इसके लिये तीनों समय स्नान करना उत्तम माना गया है। देवपूजन, होम, सम्पूर्ण अतिथियोंका पूजन, भिक्षा और प्राणिपक्षोंके कलि-समर्पण—ये सब बातें वानप्रस्थके लिये श्रेष्ठ मानी गयी हैं। वह अपने शरीरमें जंगली फल आदिके तेल लगा सकता है। उसका मुख्य कर्तव्य है तपस्व—शौच और उष्ण आदि दुन्दोंका सहन। जो वानप्रस्थ मुनि नियमपूर्वक रहकर पूर्वोक्त रूपसे अपने कर्तव्यका पालन करता है, वह अग्निकी भीति अपने सब दोषोंको जला देता और सन्तत स्नेहोंको प्राप्त होता है।

मुनियो! मनीषी पुरुष जो भिक्षुका चतुर्थ आश्रम कहलाते हैं, उसके स्वरूपका वर्णन सुनो। भिक्षुको कहिये कि पुत्र, धन, स्त्रीके प्रति स्नेहका त्याग करे और ईर्ष्यारहित होकर चतुर्थ आश्रममें जाय। इसीको संन्यास-आश्रम भी कहते हैं।

* अतिथिर्पश्यन् यथाशक्ते गृहम् प्रतिनिवर्तते । स दत्त्वा दुष्कृतं तस्मै पुण्यमाप्नोति गच्छति ॥

संन्यासीको समस्त त्रैवर्णिक कर्मेंके उत्तराधिकार त्याग करना चाहिये। वह मित्र और शत्रुमें समान भाव रखे। सब प्राणियोंके मित्र बन रहे। जरायुज और अण्डज आदि किसी भी प्राणीके सब मन, वाणी और क्रियाद्वारा कभी द्रोह न करे। वह सब प्रकारकी आसक्तियोंको त्याग दे। गाँवोंमें एक रात और नगरमें पाँच रातसे अधिक न रहे। पशु, पक्षी आदिके प्रति न तो उसका रग हो और न द्वेष हो रहे। जीवन-निर्वाहके लिये वह उच्च वर्णवाले मनुष्योंके घरपर भिक्षाके लिये जाए—वह भी ऐसे समयमें जब कि रसोईकी आग बुझ गये हो और बरके सब लोग खा-पी चुके हों। भिक्षा न मिलनेपर खेद और मिलनेपर हर्ष न माने। भिक्षा दत्तनी ही ले, जिससे प्रणम्यज्ञा होती रहे। धियासक्तिसे वह नितान्त दूर रहे। अधिक आदर-सत्कारकी प्रतिको

धृताको दृष्टिसे देखे, क्योंकि अधिक आदर-सत्कार मिलनेपर संन्यासी अन्य बन्धनोंसे मुक्त होनेपर भी बाँध आता है। काम, क्रोध, दर्प, लोभ और मोह आदि जितने दोष हैं, उन सबका त्याग करके संन्यासी ममत्तरहित हो सर्वत्र विचरता रहे।* जो सम्पूर्ण प्राणियोंको अभय-दान देकर पृथ्वीपर विचरता रहता है, उस देहभिक्षुनसे मुक्त यतिको कहीं भय नहीं होता। जो ब्राह्मण अग्निहोत्रको भाषनाद्वारा शरीरमें स्थापित करके अपने मुखमें भिक्षाप्राप्त अन्नकपी इक्षिप्य ठालकर उस शरीरस्थ अग्निको अर्पण देता है, वह उस संश्लिष्ट अग्निके द्वारा उतम लोकमें जाता है। जो द्विज पवित्र एवं संयत बुद्धिसे मुक्त हो सस्त्रोक विधिले मोक्ष-आश्रमका पालन करता है, वह बिना ईधनकी प्रज्वलित अग्निके सदुक्त सन्नद तेजोमय ब्रह्मलोकमें जाता है।



उच्च वर्णकी अधोगति और नीच वर्णकी ऊर्ध्वगति का कारण

मुनिकोंने पूछा—महाभाग! आप सर्वत्र हैं, समस्त प्राणियोंके हितमें तत्पर रहनेवाले हैं। मुने, भूत, भविष्य और वर्तमान—कुछ भी आपसे छिपा नहीं है। महानते। किस कर्मसे उच्च वर्णकी नीच गति होती है और किस कर्मसे नीच वर्णकी उच्च गति होती है? यह बतानेको कृपा करें।

ध्यासजी बोले—मुनिवरों! भौतिके मूढ और लताओंसे अन्धमूर्ख, अनेक प्रकारकी भ्रष्टाओंसे विभूषित तथा विविध आशयोंसे युक्त हिमालयके रमणीय शिखरपर त्रिपुरासुरका नाच करनेवाले त्रिनेत्रधारी भगवान् शंकर विशिष्टमान थे। वहाँ त्रिरिजकुमारी पार्वती देवीने देवेश्वर महादेवजीकी

प्रकम्पन करके वही प्रश्न किया था। मैं वही प्रसङ्ग यहाँ चुन रहा हूँ, तुम सब लोग ध्यान देकर सुनो।

पार्वतीजीने पूछा—भगवन्! स्वयम्भू भगवान् ब्रह्मने पूर्वकालमें चार वर्णोंकी सृष्टि की। उनमेंसे वैश्य किस कर्मसे शुद्धभावको प्राप्त होता है? अथवा क्या करनेसे क्षत्रिय वैश्य हो जाता है और ब्राह्मण किस कर्मके अनुष्ठानसे क्षत्रिय होता है? देव। इस प्रकार धर्मकी प्रतिलोम दृष्टिमें कैसे साधक जा सकता है? ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय किस कर्मसे शुद्ध होते हैं? भूतनाथ! अध मेरे इस संशयका निवारण कीजिये। क्षत्रिय आदि तीन वर्णोंके लोग, जो जन्मसे ही यहाँ भिन्न वर्णवाले

* प्राणयात्रानिमित्तं च व्यवसरे भुक्तव्यम् । काले प्रसस्तवर्णानां भिक्षार्थं पर्यटद् गृहम् ॥
अस्तामे न विषादी स्याद्वापे नैव च ईर्ष्येत् । प्रणयत्त्रिकलत्रः स्वान्याजस्तर्जुनैर्निर्मितः ॥
अतिपूजितत्वाभ्यस्तु जुगुप्सव्यैव सर्वतः । अतिपूजितत्वाभ्यस्तु यतिर्मुक्तोऽपि बध्यते ॥
कामः क्रोधस्तथा दर्पः लोभमोहादयश्च वै । तास्तु दोषान् परित्यज्य परित्यागिन्मो भवेत् ॥

हैं, कैसे ब्राह्मणभावको प्राप्त हो सकते हैं?
शिवजी बोले—देवि! ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति अत्यन्त



कठिन है। शुभे! ब्राह्मण स्वभावसे ही ब्राह्मण होता है, इसी प्रकार क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र भी स्वभावसे ही वैसे होते हैं—ऐसा मेरा विचार है। ब्राह्मण इस लोकमें पापकर्म करनेसे अपने पथसे भट हो जाता है, उसमें वर्णको पाकर भी फिर उससे नीचे गिर जाता है। जो ब्राह्मण-धर्मका पालन करते हुए उसीसे जीवन-निर्वाह करता है, वह ब्राह्मणत्वको प्राप्त होता है परंतु जो ब्राह्मणत्वका त्याग करके क्षत्रियोचित धर्मोंका सेवन करता है, वह ब्राह्मणत्वसे भट होकर क्षत्रिययोनिमें जन्म लेता है जो विप्र लोभ और मोहका आश्रय ले अपनी मन्द बुद्धिके कारण दुर्लभ ब्राह्मणत्वको पाकर भी सदा वैश्यकर्मका अनुष्ठान करता है, वह वैश्ययोनिको प्राप्त होता है, अथवा यदि वैश्य

शूद्रोक्त कर्म करने लगता है तो वह शूद्र हो जाता है। अपने धर्मसे भट हुआ ब्राह्मण शूद्रत्वको प्राप्त होता है। वर्णसे भट या बहिष्कृत होनेपर वह ब्रह्मलोकसे भी गिर जाता है और नरकमें पड़नेके पश्चात् शूद्रयोनिमें जन्म लेता है। महाभागे, क्षत्रिय अथवा वैश्य भी जब अपना-अपना कर्म छोड़कर शूद्रोक्त कर्म करने लगते हैं, तब अपने पदसे भट होकर वर्णसंकर हो जाते हैं। ऐसे कर्म-भट ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—तीनों शूद्रभावको प्राप्त होते हैं। जो शूद्र ज्ञान-विज्ञानसे युक्त एवं पवित्र हो अपने धर्मका पालन करते हुए जीवन-निर्वाह करता है धर्मको जानता और उसके पालनमें तत्पर रहता है, वह धर्मके फलका भागी होता है।*

देवि! ब्रह्माजीने यह एक दूसरी आध्यात्मिक बात बतलायी है, जिसके पालनसे धर्मकामी पुरुषोंको वैदिक सिद्धि प्राप्त होती है। जो मनुष्य क्षत्रियके कार्य और शूद्रजातीय स्त्रीके गर्भसे उत्पन्न अथवा वर्णसंकर है उसका अन्न अत्यन्त निर्दिष्ट माना गया है। इसी प्रकार एक समुदायका अन्न, ब्राह्मण और सूतकका अन्न तथा शूद्रका अन्न कभी नहीं खाना चाहिये। देवि! देवताओं और महात्मा पुरुषोंने शूद्रके अन्नकी सदा ही निन्दा की है। यह श्रीब्रह्माजीके श्रीमुखका कथन होनेके कारण अत्यन्त प्रामाणिक है। जो ब्राह्मण अपने पेटमें शूद्रका अन्न लिये मृत्युको प्राप्त होता है वह अग्निहोत्री और यज्ञकर्ता होते हुए भी शूद्रोचित गतिको प्राप्त होता है। पेटमें शूद्रान्न शेष रहनेके कारण वह ब्रह्मलोकसे भट हो जाता है शूद्रान्न-भोजी ब्राह्मण शूद्रत्वको प्राप्त होता है—इसमें अन्यथा विचारके लिये स्थान नहीं है।† ब्राह्मण अपने उदरमें जिसका अन्न शेष रहते प्राण त्याग

* यस्तु शूद्रः स्वधर्मेन ज्ञानविज्ञानकाम्युनिः । धर्मज्ञो धर्मनिरतः स धर्मफलमाप्नुते ॥

(२२३। २१)

† तेन शूद्रान्नशेषेण ब्रह्मलोकद्वारमुत्तरे । ब्राह्मणः शूद्रान्नमेति नास्ति तत्र विचरणा ॥

(२२३। २६)

करता है और जिसके अन्नसे जीवन-निर्वाह करता है, उसीकी योग्यता प्राप्त होता है। जो लोग दुर्लभ ब्राह्मणत्वको अपनापन ही पाकर उसकी अवहेलना करते हैं अथवा अभक्ष्य-भक्षण करते हैं, वे ब्राह्मणत्वसे गिर जाते हैं। गरुडी, ब्रह्मरूपण, चोर, प्रत भङ्ग करनेवाला, अपवित्र, स्वाभ्युपन न करनेवाला, पक्षी, लोभी, अपकारो, लट, कटाईन, सूदीका पति, दोगलेका उत्त खानेवाला, सोमरस बेचनेवाला और नीचसेवी ब्राह्मण ब्राह्मणत्वसे भट्ट हो जाता है। गुरुस्त्रीगामी, गुरुद्वेषी, गुरुविन्दापराधन तथा ब्रह्मलो ब्राह्मण भी ब्राह्मणेतिसे गिर जाता है।

जो शुद्ध सब कर्म शरीरीय विधिके अनुसार न्यायपूर्वक करता है, सबका अतिथि-सत्कार करनेके बाद बचा हुआ अन्न भोजन करता है, अपनेसे श्रेष्ठ वर्णवाले पुरुषोंकी सेवा-सुश्रूषामें यत्नपूर्वक लग्न रहता है, जो कभी मर्त्यें बुरा नहीं मानता, सदा सन्मार्गपर स्थित रहता है, देवता और द्विजोंका सत्कार करता, सबका आतिथ्य करनेके लिये दृढसंकल्प रहता, शत्रुकासमें पत्नीके साथ समागम करता, नियमपूर्वक रहकर नियमित भोजन करता और कार्यदक्ष, सत्पुसेवी तथा अतिथियोंसे बचे हुए समस्त भोजन करनेवाला होता है, जो कभी भी मांस नहीं ग्रहण करता, ऐसा गृह वैश्ययोगिको प्राप्त होता है।

जो वैश्य सत्यवादी, अहंकाररहित, निर्द्वन्द्व, सामवेदका ज्ञाता, पवित्र और स्वाध्यायपरायण होकर प्रतिदिन यज्ञ करता, मन और इन्द्रियोंको संयममें रखता, ब्राह्मणोंका सत्कार करता, किसी भी वर्णके दोष नहीं देखता, गृहस्थोचित वस्तुका पालन करते हुए केवल दो समय भोजन करता है, जो अह्मकार दिवस पाकर निष्कर्म एवं अहंकारशून्य हो गया है, अग्निहोत्रकी उपासना करते हुए विधिपूर्वक हवन करता है और सबका आतिथ्य-सत्कार करते हुए यज्ञशिरा अन्नका भोजन करता है, वह वैश्य पवित्र होकर श्रेष्ठ क्षत्रिय-कुलमें अन्य ग्रहण करता है।

क्षत्रियरूपमें उत्पन्न होनेपर वह जन्मसे ही अच्छे संस्कारका होता है। उपनयनके पश्चात् ब्रह्मचर्यव्रतके पालनमें उत्तर हो वह संस्कारसम्पन्न द्विज होता है। वह समय-समयपर दान देता, प्रचुर दक्षिणा देकर वैभवपूर्ण वृद्ध करता और वेदाध्ययन करके स्वर्गकी इच्छासे अहवनीय अग्नि तीनों अग्नियोंकी सदा उपसना करता है। राजा होनेपर वह संकल्पके जससे भीगे हयग्रेहाण दान देता और सदा धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करता है। स्वयं सत्यवादी होकर सदा सत्यका ही अनुष्ठान करता है, रुद्धिपर दृष्टि रखता है और धर्मदण्डसे युक्त हो धर्म, अर्थ एवं कामरूप त्रिवर्णका साधन करता है। शरीर और इन्द्रियोंको यत्नमें रखकर प्रजासे करके रूपमें केवल उसकी अवस्था छठी भोग ग्रहण करता है। तत्त्वज्ञ राजाको पवित्र है कि वह स्वेच्छाकारी होकर विषय-भोगोंका सेवन न करे, अपितु धर्ममें चित्त लगाकर सदा शत्रुकासमें ही पत्नीके पास जाय। नित्य उपासना करनेवाला, नियमपरमप्य, स्वाध्यायशील तथा पवित्र रहे। सबका अतिथि-सत्कार करे। धर्म, अर्थ और कामका चिन्तन करते हुए सदा प्रसन्न-चित्त रहे। अन्नकी इच्छा रखनेवाले शूद्रोंको भी सदा यही उत्तर दे—'भोजन तैयार है।' स्वार्थ या अधमनासे प्रेरित होकर कोई भाव न व्यक्त करे। देवता, पितर और अतिथियोंके लिये सर्वदा स्नान-सामग्री उपस्थित रखे। अपने घरमें न्यायानुकूल विधिसे उपासना करे। भिक्षुको भिक्ष दे। दोनों समय विधिपूर्वक अग्निहोत्र करे तथा गीतों और ब्राह्मणोंका हितसाधन करनेके लिये संश्रममें सम्मूक्त होकर प्राण दे दे। त्रिविध अग्नियोंके सेवन तथा मन्त्रोच्चारणपूर्वक हवन करनेसे पवित्र होकर क्षत्रिय भी जन्मान्तरमें ज्ञान-विज्ञान-सम्पन्न वेदोंका पारंगत और संस्कारयुक्त ब्राह्मण हो जाता है। इस प्रकार उत्तरीतर शुभ कर्म करनेसे धर्मरूप वैश्य कर्मनुसार क्षत्रिय होता है और नीच कुलमें उत्पन्न शूद्र भी उत्तम कर्म करनेसे संस्कार-सम्पन्न द्विज हो जाता है।

देवि! जन्मसे ब्राह्मण होनेपर भी जो दुराचारी और समस्त वर्णसंस्कारोंका अन्न भोजन करनेवाला है, वह ब्राह्मणत्वको त्यागकर वैश्य हो शुद्ध हो जाता है। इसी प्रकार शुद्धात्मा एवं जितेन्द्रिय शुद्ध भी शुद्ध कर्मोंके अनुष्ठानसे ब्राह्मणकी भौतिक सेवन करने योग्य हो जाता है, यह सशस्त्र ब्रह्मजीका कथन है। जो शुद्ध अपने स्वभाव और कर्मके अनुसार जीवन बिताता है, उसे द्विजत्वियोंसे भी अधिक शुद्ध जानना चाहिये—ऐसा मेरा विश्वास है। जन्म, संस्कार, वेदाध्ययन और संतति—ये सब द्विजत्वके कारण नहीं हैं; द्विजत्वका मुख्य कारण तो सदाचार ही है। संसारमें ये सब लोग आचरणसे ही ब्राह्मण बाने जाते हैं। उत्तम आचरणमें स्थित होनेपर शुद्ध भी ब्राह्मणत्वको प्राप्त हो सकता है।* पार्थिव! ब्रह्मस्वभाव सर्वत्र सम है—यह मेरी मान्यता है। जहाँ निर्गुण एवं निर्मल ब्रह्म स्थित है, वही द्विजत्व है। देवि! ये जो विमल स्वभाववाले पुरुष हैं, वे ब्रह्मके ही

स्वान और भावका दर्शन करानेवाले हैं। प्रजाकी सृष्टि करते समय वरदायक भगवान् ब्रह्माने स्वयं ही ऐसी बात कही थी। ब्राह्मण इस संसारमें एक महान् क्षेत्र है, जो हव्य-पैरोंसे युक्त होकर सर्वत्र विधरता रहता है। इसमें जो बीज पड़ता है, वह फलोकमें फल देनेवाली खेती है। ब्राह्मणको सदा संतुष्ट एवं सम्भारका पथिक होना चाहिये। उन्नति चाहनेवाले द्विजको सदा ब्रह्ममार्गका अवलम्बन करके रहना चाहिये। गृहस्थ ब्राह्मणको घरपर रहते हुए प्रतिदिन संहिताके मन्त्रोंका अध्ययन और स्वाध्याय करना चाहिये। वह अध्ययनकी वृत्तिसे ही जीवन-निर्वाह करे। जो ब्राह्मण इस प्रकार सदा सम्भारमें स्थित हो अग्निहोत्र और स्वाध्याय करता है, वह ब्रह्मभक्तको प्राप्त होता है। देवि! ब्राह्मणत्वको प्राप्त करके उसकी समपूर्वक रक्षा करनी चाहिये। वह मैं तुम्हें बड़ी गोपनीय बात बतलापी है। शुद्ध धर्माचरणसे ब्राह्मण होता है और ब्राह्मण धर्मभ्रष्ट होनेपर सुदृक्त्वको प्राप्त होता है।

स्वर्ग और नरकमें ले जानेवाले धर्माधर्मका निरूपण

पार्थिवजीने कहा— भगवन्! सर्वभूतेष्वर। देव-दानव-वन्दित विभो! मुझे मनुष्योंके धर्म और अधर्मके विषयमें संदेह है। देव! आप उसका समाधान कीजिये। देहधारी जीव सदा मनु, खण्ड और किर्यारूप त्रिविध बन्धनोंद्वारा बँधते हैं, फिर किन साधनोंसे और किस प्रकार उनकी मुक्ति होती है? यह बताइये। देव! किस स्वभावसे, कैसे कर्मसे अथवा किन सदाचारों एवं सद्गुणोंसे

संसारके मनुष्य स्वर्गलोकमें जाते हैं?

निम्नजी बोले— देवि! तुम धर्म और अर्थके तत्त्वको जाननेवाली और निरन्तर धर्ममें तत्पर रहनेवाली हो। तुम्हारा प्रश्न सब प्राणियोंके लिये हितकारी और उनकी बुद्धिको बढ़ानेवाला है। मैं उसका उत्तर देता हूँ, सुनो। जो मनुष्य सब प्रकारके लिङ्गों (ब्रह्म चिह्नों)-से रहित, सत्य-धर्मके परायण तथा ज्ञान हैं, जिनके सभी संशय

॥ ब्राह्मणे वाप्यसद्वृत्तः सर्वसंस्कारभोजनः ॥
स ब्राह्मणं समुत्सृज्य शुद्धो भवति ब्रह्मन् । कर्मभिः शुचिर्भवेति शुद्धात्मा त्रिविकीर्णः ॥
शुद्धोऽपि द्विजकलेभ्य इति ब्रह्मात्रवीर्यवत् । स्वभावकर्मण्य चैव यः शुद्धोऽभितोति ॥
विशुद्धः स द्विजातिभ्यो विभ्रेय इति मे मतिः । न खेनिर्नापि संस्कारो न वृत्तिर्न च संततिः ॥
कारणानि द्विजत्वस्य वृत्तमेव तु कारणम् । सर्वोऽयं ब्राह्मणे लोके वृत्तेन तु विधीयते ॥

बृते स्थितः शुद्धोऽपि ब्राह्मणत्वं च भवति ।

(२२३१५३-५८)

नष्ट हो गये हैं, वे अधर्म या धर्मसे नहीं बँधते। जो प्रलय और उत्पत्तिके तत्त्वज्ञ, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी और वीतराग हैं वे पुरुष कर्मोंके बन्धनसे मुक्त हो जाते हैं। जो मन, वाणी और क्रियद्वारा किसीकी हिंसा नहीं करते तथा किसीके प्रति आसक्त नहीं होते, वे कर्म-बन्धनमें नहीं पड़ते। जो प्राण-संहरसे दूर रहनेवाले, सुशील, दयालु, प्रिय और अग्रियको समान समझनेवाले तथा जितेन्द्रिय हैं, वे भी कर्मोंसे नहीं बँधते। जो सब प्राणियोंपर दया रखते, सब जीवोंके लिये विश्वासपात्र बने रहते और हिंसापूर्ण बर्तावका त्याग कर देते हैं वे मनुष्य स्वर्गलोकमें जानेवाले हैं। जो पराये धनके प्रति कभी ममता नहीं रखते और परायी स्त्रियोंसे सदा दूर रहते हैं तथा जो धर्मतः प्राप्त अर्थका ही उपभोग करनेवाले हैं, वे मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं। जो परस्त्रियोंके प्रति सदा माता, बहिन और पुत्रीका-सा कर्ताव्य करते हैं, वे मानव स्वर्गलोकमें जाते हैं। जो केवल अपनी ही स्त्रीके प्रति अनुराग रखते, अस्तुकाल आनेपर ही पत्नीके साथ समागम करते तथा विषय-सुखोंके उपभोगमें कभी आसक्त नहीं होते, वे ही मनुष्य स्वर्गलोकके यात्री होते हैं। जो अपने सदाचारके कारण परायी स्त्रियोंको ओरसे सदा आँखें बंद किये रहते हैं, इन्द्रियोंको अपने अधीन रखते और शीलकी सदा रक्षा करते हैं वे मानव स्वर्गगामी होते हैं यह देवमार्ग है। मनुष्योंको सदा इसका सेवन करना चाहिये। विद्वान् पुरुषोंको सदा उसी मार्गका सेवन करना चाहिये, जो जामनाद्वारा निर्मित न हो, जिसमें किसीका व्यर्थ हो अपकार न होता हो और जहाँ दान, सत्कर्म, तपस्व, शील, शीघ्र तथा दयाभावका दर्शन होता हो। स्वर्गमार्गकी उच्च रखनेवाले पुरुषोंको इसके विपरीत मार्गका आश्रय नहीं लेना चाहिये।

जो अपने अथवा दूसरेके लिये अधर्मयुक्त श्राव नहीं कहते और कभी झूठ नहीं बोलते, वे

मनुष्य स्वर्गलोकमें जाते हैं। जो जीविका धनका धर्मके लिये या स्वेच्छासे ही कभी असत्यभाषण नहीं करते, अपितु स्पष्ट, कोमल, मधुर, पापरहित एवं स्वगतपूर्ण वचन बोलते हैं, वे मनुष्य स्वर्गलोकमें जानेके अधिकारी हैं। जो कठोर कड़वी तथा निष्ठुर बातें सुँहसे नहीं निकालते चुगली नहीं खाते, साधुतासे रहते हैं, कठोर भाषण और परद्रोह त्याग देते हैं तथा सम्पूर्ण भूतोंके प्रति सत्य एवं जितेन्द्रिय होते हैं, वे मनुष्य स्वर्गलोकमें जाते हैं। जो लठोंसे बात नहीं करते, विरुद्ध कर्मोंको त्याग देते, कोमल वचन बोलते, क्रोध न करके मनोहर वाणी सुँहसे निकालते और कुपित होनेपर भी शान्ति धारण करते हैं, वे मानव स्वर्गगामी होते हैं देवि! यह वाणीद्वारा प्राप्त जानेका स्वर्ग धर्म है। शुभ तथा सत्य गुणोंवाले विद्वान् मनुष्योंको सदा इसका सेवन करना चाहिये।

कल्पयामि। धर्मसिद्ध धर्मसे युक्त मनुष्य सदा स्वर्गमें जाते हैं। मैं उनका वर्णन करता हूँ, सुनो। निर्जन वनमें रखे हुए पराये धनपर जब दृष्टि पड़े, उस समय जो मनसे भी उसे लेना नहीं चाहते, वे स्वर्गगामी होते हैं। इसी प्रकार जो परायी स्त्रियोंको एकत्रतमें पाकर मनके द्वारा भी कामवास उन्हें नहीं प्रहण करते, जो शत्रु और मित्रको सदा एक-चित्तसे अपनते, शास्त्रोंका अध्ययन करते, पवित्र एवं सत्कृतित्व होते और अपने ही धनसे संतुष्ट रहते हैं, जिनसे दूसरोंको कष्ट नहीं पहुँचता और जिनके चित्तमें सदा मैत्रीका भाव बना रहता है, जो सब प्राणियोंपर निरन्तर दयाभाव बनाये रहते हैं, वे मनुष्य स्वर्गलोकमें जानेके अधिकारी हैं। जो ज्ञानवान्, क्रियवान्, धनवान्, सुहृद्-प्रेमी, धर्माध्यक्ष, उग्र और शुभाशुभ कर्मोंके फल-संग्रहके प्रति उदासीन रहते हैं, जो पशुओंको त्याग देते, देवताओं और द्विजोंकी सेवामें संलग्न रहते एवं गुरुजनोंके आनेपर खड़े होकर उनका स्वागत करते हैं, वे मानव स्वर्गलोकमें जाते हैं। देवि! जो लोग शुभकर्मोंके

फलस्वरूप स्वर्गमार्गपर जाते हैं, उनका मैंने वर्णन किया। अब तुम और क्या सुनना चाहती हो?

पार्वतीजी बोलीं—महेश्वर! मेरे मनमें मनुष्योंके सम्बन्धमें एक और महान् संशय है। अब आप उसका भलीभाँति समझाव दें। प्रभो! मनुष्य किस कर्मसे इस पृथ्वीपर बड़ी आयु प्राप्त करता है? और किस कर्मसे उसकी आयु क्षीण हो जाती है? आप कर्मोंके परिणामका वर्णन करें।

शिवजी बोले—देवि! कर्मोंका फल जैसे प्राप्त होता है उसका वर्णन करता हूँ, सुनो। मर्त्यलोकमें सब मनुष्य अपने-अपने कर्मोंका फल भोगते हैं। जो मनुष्य सदा हाथमें डंडा लेकर दूसरोंके प्राणियोंकी हिंसा करता, सर्वदा हथियार उठाकर प्राणियोंकी हिंसा किया करता, सब जीवोंके प्रति निर्दय बना रहता, सदा सबको उद्देगमें डालता, झूट और पतझूटोंको भी शरण नहीं देता और अस्थिर निष्ठुरतापूर्ण बर्ताव करता है वह नरकमें पड़ता है। इसके विपरीत जो धर्मात्मा होता है, उसे अपने स्वरूपके अनुरूप ही गति मिलती है। हिंसक नरकमें और अहिंसक स्वर्गमें जाता है। नरकगामी मनुष्य नरकमें पड़कर अत्यन्त दुस्सह एवं भयंकर यातना भोगता है। जो कोई कभी उस नरकसे निकलता है, वह यदि मनुष्य-योगिमें जाता है तो भी वहाँ उसकी आयु बहुत थोड़ी होती है। देवि! जो शुभकर्म करते हुए जीवन व्यतीत करता है, प्राणियोंकी हिंसासे दूर रहता है, जो शस्त्र और दण्डका त्याग करके कभी किसीकी हिंसा नहीं करता, न मरवाता है, न भारता है और न मारनेवालेका अनुमोदन ही करता है, जिसका सभी प्राणियोंके प्रति स्नेह है तथा जो अपने और परायेमें समान भाव रखता है, ऐसा पुरुष सदा देवपदको प्राप्त होता है। देवि! वह अपने शुभ कर्मोंसे प्राप्त देवोचित सुख-भोगोंका प्रसन्नतापूर्वक उपभोग करता है वह यदि कभी मनुष्य-लोकमें आता है तो उसकी बड़ी आयु होती है। वह बड़ी

आयुवाले सदाचारी एवं पुण्यवत् मनुष्योंका मार्ग है। जीवोंकी हिंसाका त्याग करनेसे इसकी प्राप्ति होती है, वह ब्रह्मजीका कथन है।

पार्वतीजीने पूछा—भगवन्! कैसे शील और सदाचारवाला पुरुष किन कर्मों अथवा किये दानसे स्वर्गमें जाता है?

महादेवजी बोले—जो ब्राह्मणका सत्कार करनेवाला तथा दीन-दुःखी और कृपण अन्नदिकों भक्ष्य, भोज्य, अन्न, पान एवं वस्त्र देनेवाला है, जो यज्ञभण्डप, धर्मशाला, पीसला तथा पुष्करिणी बनवाता है, मन और इन्द्रियोंको बरामें कलेकें सुदृढभावसे वित्त-नैमित्तिक अदि कर्म करता है, आसन, शय्या, सज्जरी, घर, रत्न, धन, खेतकी उपज तथा खेत आदि वस्तुओंका सदा शान्त चित्तसे दान करता है, देवि! ऐसा मनुष्य देवलोकमें जन्म लेता है। वहाँ दीर्घकालतक उत्तम भोगोंका उपभोग करते हुए नन्दन आदि बर्णोंमें अप्सराओंके साथ प्रसन्नतापूर्वक विहार करता है। देवि! वहाँसे च्युत होनेपर वह मनुष्योंके सौभाग्यशाली कुलमें, जो धन-धान्यसे सम्पन्न होता है, जन्म लेता है। वह मानव समस्त मनोवाञ्छित गुणोंसे युक्त, प्रसन्न, प्रचुर भोग-सामग्रियोंसे सम्पन्न एवं धनवान् होता है। पार्वती! जो दानशील महाभ्रमण प्राणी है, ब्रह्माजीने उन्हें सर्वप्रथम बतलाया है इनके सिवा दूसरे मनुष्य ऐसे हैं, जो देनेमें कृपण होते हैं। वे पूर्ण घरमें रहते हुए भी किसीको अन्न नहीं देते। दीन, अंधों, कुम्हों, दुःखियों, याचकों और अतिथियोंको देखकर मुँह फेर लेते हैं। उनके याचना करते रहनेपर भी अनसुनी करके पीछे लौट जाते हैं। कभी किसीको धन, वस्त्र, भोग, स्वर्ग, गौ और भौति-भौतिके साध फलार्थ नहीं देते। जो लोभी, अस्तिक और दानरहित होते हैं, वे अज्ञानी मनुष्य-नरकमें पड़ते हैं। कलत्रचक्रके परिवर्तनसे उन्हें जब कभी मनुष्य-योगिमें आना पड़ता है, तब वे निर्धन-कुलमें जन्म पाते हैं। बुद्धि भी उनकी बहुत थोड़ी

होती है। यहाँ वे भूख-प्यासका कष्ट सहते हैं। सब लोग उन्हें समाजसे बहिष्कृत किये रहते हैं। वे सब भोगोंसे निराश हो पापपूर्ण वृत्तिसे जीवन-निर्वाह करते हैं। उनका जन्म ऐसे कुलमें होता है, जहाँ भोग-सामग्री बहुत थोड़ी होती है, अतः वे अल्पभोगपरायण होते हैं। देवि! इस प्रकार दान न करनेसे मनुष्य निर्धन होते हैं।

उनसे भिन्न अन्य मनुष्य दम्भी और अभिमानी होते हैं। वे मन्दबुद्धि मानव आसन देने योग्य गुरुजनके आनेपर उन्हें पौदातक नहीं देते। जिन्हें स्वयं किनारे हटकर जानेके लिये मार्ग देना उचित है, उनके लिये वे अज्ञानी मार्ग नहीं देते। जो लोग अर्घ्य पाने योग्य हैं उनका वे विधिपूर्वक पूजन नहीं करते। उन्हें पाद्य अथवा आचमनीय भी नहीं देते। अभोष्ट एवं श्रेष्ठ गुरुजनसे भी प्रेमपूर्वक चर्चालाप नहीं करते। अभिमानके साथ ही बड़े हुए लोभके बुरीभूत होकर वे माननीय पुरुषोंका भी अनादर और बड़े-बूढ़ोंका तिरस्कार करते हैं। देवि! ऐसे स्वभाववाले सभी मनुष्य नरकमें जाते हैं। यदि वे कभी उस नरकसे छुटकारा पाते हैं तो बहुत वर्षोंतक अन्यान्य योनियोंमें भटकनेके बाद भूमिगत, अज्ञानी, चाण्डाल आदिके निन्दित कुलमें जन्म पाते हैं। गुरुजनों और वृद्ध पुरुषोंको संतान देनेवाले लोगोंकी यही गति होती है।

जो न दम्भी है न मानि है, जो ऐक्य और अनिधियोंका पूजक, लोकपूज्य, सबको सम्भार करनेवाला, मधुरभाषी, सब प्रकारकी श्रेष्ठओंसे दूस्सेका प्रिय करनेवाला, समस्त प्राणियोंके सदा प्रिय मानस्यका, द्वेषरहित, प्रसन्नमुख, क्रमसम्बन्धक, सबसे स्वर्गात्पूर्वक स्नेहमय वचन बोलनेवाला, प्राणियोंकी हिंसा न करनेवाला, श्रेष्ठ पुरुषोंका विधिकत् सत्कारपूर्वक पूजन करनेवाला, मार्ग देने योग्य पुरुषोंको धर्मा देनेवाला, गुरुपूजक और अतिथिको अन्नका अग्रभाग अर्पित करनेवाला है, ऐसा पुरुष स्वर्गमें जाता है। मनुष्य अपने किये हुए कर्मोंका फल स्वयं ही भोगता है।

यह साक्षात् कथाजीका बताव हुआ धर्म है, जिसका मैं वर्णन किया है।

जिसका आचरण निर्दयतापूर्ण होता है, जो सब प्राणियोंके मनमें भय उत्पन्न करता है, हाथ, पैर, रस्सी, डंडा, डेला, खंभ्र अथवा अन्य साधनोंसे जीवोंको कष्ट देता है, हिंसाके लिये उद्वेग पैदा करता है, जीवोंपर आक्रमण करता और उन्हें उद्विग्न बनाता है, ऐसे स्वभाव और आचरणवाला मनुष्य नरकमें पड़ता है। वह यदि कालक्रमसे मनुष्य-योनिमें जाता है तो अधम कुलमें जन्म लेता है, जहाँ उसे नाना प्रकारकी बाधाएँ और क्लेश सहन करने पड़ते हैं। वह अधम मनुष्य अपने किये हुए कर्मोंके फलस्वरूप सब लोकोंका द्वेषपात्र होता है। इसके विपरीत जो सब प्राणियोंको दयापूर्ण दृष्टिसे देखता है, सबके प्रति मैत्रीभाव रखता है, पिताके समान निर्भीक होता है, दयालु होनेके कारण प्राणियोंको न डरता है और न धरता ही है, जिसके हाथ-पैर बरसते होते हैं, जो सम्पूर्ण जीवोंका विश्वासपात्र है, रस्सी, डंडा, डेला अथवा अस्त्र-शस्त्रोंसे किसी भी जीवको उद्वेग नहीं पहुँचाता, शुभ कर्म करता और सबपर दया रखता है, ऐसे नील और आचरणवाला मनुष्य स्वर्गमें जाता है। जहाँ देवताओंकी भाँति वह दिव्य भवनमें सानन्द निवास करता है। वह यदि पुण्यक्षयके पश्चात् मर्त्यलोकमें आता है तो मनुष्योंमें क्लेशरहित एवं निर्धन होता है। वह सुखसे जन्म लेता और अभ्युदयशाली होता है। सुखका भागी तथा उद्वेगशून्य होता है। देवि! यह साधु पुरुषोंका मार्ग है, जहाँ किसी प्रकारकी बाधा नहीं है।

जर्वतीजीने पूछा—भगवन्! कुछ मनुष्य कथापोहमें कुरात दिखायी देते हैं; अतः कृपया बताइये—किस कर्मसे मनुष्य बुद्धिमान होने हैं? तथा जो लोग जन्मसे ही अंधे, रोगी तथा नपुंसक देखे जाते हैं, उनके वैसे होनेमें क्या कारण है? बतानेकी कृपा करें।

महादेवजी बोले—जो लोग वेदवेत्ता, सिद्ध

तथा धर्मज्ञ ब्राह्मणोंसे प्रतिदिन शुभाशुभ कर्म पूछते हैं और अशुभका त्याग करके शुभ कर्मका सेवन करते हैं। वे इस लोकमें सुखमें रहते और अन्तमें स्वर्गगामी होते हैं। ऐसे लोग जब फिर कभी मनुष्य-योनिमें आते हैं, तब बुद्धिमान् होते हैं। जिसका वेदाध्ययन यज्ञानुष्ठानमें सहायक होता है, वह कल्याणका भागी होता है। जो परायी सिक्कोंपर कुदृष्टि डालते हैं, वे उस दुष्ट स्वभावके कारण जन्मान्ध होते हैं। जो दूषित मनसे परायी स्त्रियों की देखते हैं, वे पापी मनुष्य इस लोकमें रोगसे पीड़ित होते हैं। जो मूर्ख और दुराचारी मानव पशु आदिके साथ मैथुन करते हैं, वे मानव नपुंसक होते हैं जो पशुओंको बाँधे रखते और गुरुपत्न्य-गमन करते हैं, वे मनुष्य भी नपुंसक होते हैं।

पार्वतीजीने पूछा—देवश्रेष्ठ! कौन-सा कर्म अग्निव है? क्या करनेसे मनुष्य कल्याणका भागी होता है?

महादेवजी बोले—जो कल्याणमय मार्गकी इच्छा रखता हुआ सदा ब्राह्मणोंसे उसकी जिज्ञासा करता है, जो धर्मका अन्वेषण और गुणोंकी अभिलाषा करता है, वह स्वर्गमें जाता है। देवि!

यदि कभी वह फिर मनुष्य-योनिमें आता है तो मेघावली और धारणाशक्तिसे मुक्त होता है। यह सत्पुरुषोंका धर्म सबका कल्याण करनेवाला है, अतः इसीपर चलना चाहिये। यह मैंने मनुष्योंके हितके लिये बतलाया है।

पार्वतीजीने पूछा—भगवन्! कुछ लोग ब्रत और तपसे ब्रह्म एवं राक्षसके समान देखे जाते हैं और कुछ मनुष्य यज्ञपरायण दुष्टिगोचर होते हैं, वह किस कर्मविपाकका फल है?

महादेवजीने कहा—देवि! लोकधर्मके प्रतिपादक शास्त्र और प्राचीन मर्यादाको प्रमाण मानकर जो उसका अनुसरण करते हैं, वे दुष्टसंकल्प एवं यज्ञतत्पर देखे जाते हैं। परंतु जो मोहके वशीभूत हो अधर्मको ही धर्म बताते हैं, वे ब्रत और मर्यादाका लोप करनेवाले मानव बहाराक्षस होते हैं। उन्होंनेसे जो लोग काल-क्रमसे यहाँ फिर मनुष्ययोनिमें जन्म लेते हैं, वे होम और वषट्कारसे मुक्त एवं मनुष्योंमें अधम्य होते हैं। देवि! मैंने तुम्हारे संदेहका निवारण करनेके लिये यह मनुष्योंके शुभाशुभ कर्मका निरूपण किया है।

भगवान् वासुदेवका माहात्म्य

व्यासजी कहते हैं—जगन्माता पार्वती अपने स्वामीकी कही हुई सब बातें आदिसे ही सुनकर बहुत प्रसन्न हुई। उस समय वहाँ तीर्थयात्राके प्रसङ्गसे जो मुनि उस पर्वतपर गये थे, उन्होंने भी शूलपाणि महादेवजीका पूजन और प्रणाम करके सब लोकोंके हितके लिये प्रश्न किया।

मुनियोंने कहा—त्रिलोचन, आपकी नमस्कार है। इस रोमाञ्चकारी महाभयंकर संस्कारमें अज्ञानी पुरुष चिरकालसे भटक रहे हैं वे जन्म-मृत्युरूप संसारबन्धनसे किस उपायसे मुक्त हो सकते हैं? बताइये। हम यही सुनना चाहते हैं।

महादेवजी बोले—हिंसा कर्मबन्धनमें बँधकर

दुःख भोगनेवाले मनुष्योंके लिये मैं भगवान् वासुदेवसे बढ़कर दूसरा कोई उपाय नहीं देखता। जो शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् वासुदेवका मन, वाणी और क्रियाद्वारा विधिपूर्वक पूजन करते हैं, वे परम गतिको प्राप्त होते हैं। जिनका मन अगम्य भगवान् वासुदेवमें नहीं लगता, उनके जीवनसे और पशुओंकी भौत जेष्टसे क्या लाभ हुआ।

मुनियोंने कहा—सर्वलोकजन्तित पिनाकधारी भगवान् अंकर! हम भगवान् वासुदेवका माहात्म्य सुनना चाहते हैं।

महादेवजी बोले—सनातन पुरुष श्रीहरि ब्रह्मजीसे भी श्रेष्ठ हैं। उनका श्रीविग्रह श्यामवर्ण है, उनकी

कान्ति जाम्बूनद नामक सुवर्णके सम्पन्न है। वे मेघरहित आकाशमें सूर्यकी भाँति प्रकाशित होते हैं। उनके दस भुजाएँ हैं। वे महातेजस्वी और देवज्ञानोंके नशक हैं। उनके चक्र-स्पर्शमें श्रीवासका चिह्न सोपा पाता है। वे इन्द्रियोंके नियन्ता और सम्पूर्ण देववन्दके अधिपति हैं। उनके उदरसे ब्रह्माका और पस्तकसे मेरा प्रादुर्भाव हुआ है। सिरके फूलोंसे नक्षत्र और ग्रह तथा रोमावलिमेंसे देवता और असुर उत्पन्न हुए। उनके शरीरसे ऋषि और सनातन लोक प्रकट हुए हैं। वे साक्षात् ब्रह्माजी तथा सम्पूर्ण देवताओंके निवासस्थान हैं। वे ही इस सम्पूर्ण पृथ्वीके रचयिता और तीनों लोकोंके स्वामी हैं। स्थावर-जङ्गम भूतोंका संहार करनेवाले वे ही हैं। वे देवताओंके भी देवता और रक्षक हैं। सन्तुओंको तप देनेवाले, सर्वज्ञ, सर्वभूत, सर्वव्यापी और सब ओर मुखवाले हैं। तिनमें लोकोंमें उनसे बढ़कर दूसरी कोई वस्तु नहीं है। वे सनातन महाभाग गौबन्दके नामसे विख्यात हैं। देवताओंके कार्यकी सिद्धिके लिये मानव-शरीरमें अवतीर्ण होकर वे समस्त भूपातोंका बुद्धमें संहार करेंगे। भगवान् विष्णुके बिना देवगण अनाथ हैं। अतः, उनके बिना वे संसारमें देव-कार्यकी सिद्धि नहीं कर सकते सम्पूर्ण भूतोंके नयक भगवान् विष्णु समस्त प्राणियोंद्वारा रक्षित हैं। वे देवताओंके नाथ, कार्य-कारण-ब्रह्मस्वरूप और ब्रह्मर्षियोंको शरण देनेवाले हैं। ब्रह्माजी उनकी नशिमें हैं और मैं शरीरमें। सम्पूर्ण देवता भी उनके शरीरमें सुखपूर्वक स्थित हैं। वे भगवान् कर्मणके सन्धान नेत्र धारण करते हैं। उनके गर्भमें श्रीका निवास है। वे सदा लक्ष्मीजीके साथ रहते हैं। सर्व नामक धनुष, सुदर्शन चक्र और नन्दक नामक खड्ग उनके आशुध हैं। सम्पूर्ण नागोंके सन्तु गरुड उनकी ध्वजामें विराजमान हैं। उत्तम सोल, शीघ, इन्द्रियसंयम, पराक्रम, वीर्य, सुदृढ़ शरीर, ज्ञान, सरलता, कोमलता, रूप और धन आदि सभी

गुणोंसे वे सुशोभित हैं। उनके पास सम्पूर्ण दिव्यास्त्रोंका समुदाय है। उनके योगमन्त्रायाम सहस्रों नेत्र हैं। वे धिकराल नेत्रोंवाले भी हैं। उनका हृदय विशाल है। वे अपनी चाणोसे मित्रजनकेसे प्रशंसा करते हैं। कुटुम्बी और बन्धुजनोंके प्रेमी हैं। क्षमाशील, अहंकाररूप और वेदोंका ज्ञान प्रदान करनेवाले हैं। वे भयानुओंके भयका अपहरण और मित्रोंके आनन्दको वृद्धि करनेवाले हैं। समस्त प्राणियोंको शरण देनेवाले और दीनोंके पातक हैं। शास्त्रोंके ज्ञाता और ऐश्वर्यसम्पन्न हैं। सर्वमें अग्रे हुए मनुष्योंके उपकारी और सन्तुओंको भय देनेवाले हैं। नीतिज्ञ, नीतिराम्य, ब्रह्मवादी, जितेन्द्रिय और उत्कृष्ट बुद्धिसे युक्त हैं।

वे देवताओंके अभ्युदयके लिये महात्मा मनुके वंशमें अवतार लेंगे। उस अवतारमें वे ब्राह्मणोंका सत्कार करनेवाले, ब्रह्मस्वरूप और ब्राह्मणोंके प्रेमी होंगे। यदुकुलमें अवतीर्ण भगवान् श्रीकृष्ण राजगृहमें जरासंधको जीतकर उसकी कैदमें पड़े हुए राजाओंको छुड़ावेंगे। पृथ्वीके समस्त राज उनके पास संबित होंगे। वे अन्धन्त पराक्रमी होंगे। भूतलपर दूसरा कोई बोर उन्हें पराक्रमद्वारा परास्त न कर सकेगा। वे विक्रमसे सम्पन्न समस्त राजाओंके भी राजा और वीरमूर्ति होंगे। भगवान् वासुदेव द्वारकामें रहते हुए दुर्वृद्धि दैत्योंको पराजित करके इस पृथ्वीका पालन करेंगे। आप सब लोग ब्रह्मर्षी तथा श्रेष्ठ पूजन-सामग्रियोंके साथ भगवान्की सेवामें उपस्थित हो सनातन ब्रह्माजीकी भाँति उनका यथालेख्य पूजन करें। ओ मेरा तथा पितामह ब्रह्मका दर्शन करना चाहता हो, उसे परम प्रसन्नी भगवान् वासुदेवका दर्शन अवश्य करना चाहिये। उनका दर्शन होनेसे ही मेरा भी दर्शन हो जाता है—इसमें कोई अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये। तपोधनो! भगवान् वासुदेव ही ब्रह्म हैं, ऐसा जानो। जिनपर कर्मजनयन भगवान् विष्णु प्रसन्न होंगे, उनपर ब्रह्मसहित सम्पूर्ण देवता भी प्रसन्न हो

जायेंगे। संसारमें जो मानव भगवान् केशवको शरण लेगा, उसे कीर्ति यज्ञ और स्वर्गकी प्राप्ति होगी। इतना ही नहीं, वह धर्मात्मा होनेके साथ ही धर्मका उपदेश करनेवाला आचार्य होगा।

महादेवजी भगवान् विष्णुने प्रजावर्गका हित करनेकी इच्छासे धर्मानुष्ठानके लिये कांठि-कोठि ऋषियोंको उत्पन्न किया। वे सनत्कुमार आदि ऋषि गन्धमादन पर्वतपर विधिपूर्वक तपस्यामें संलग्न हैं। इसलिये धर्मज्ञ एवं प्रवचन-कुशल भगवान् विष्णु सबके लिये नमस्कार करनेयोग्य हैं वे वन्दित होनेपर स्वयं वन्दना करते हैं और सम्मानित होनेपर स्वयं भी सम्मान देते हैं। जो प्रतिदिन उनका दर्शन करता है, उसपर वे भी सदा कृपादृष्टि रखते हैं जो उनकी शरणमें जाता है, उसकी ओर वे भी बड़ आते हैं। जो उनकी अर्चना करता है, उसकी वे भी सदा अर्चना करते हैं इस प्रकार आदिदेव भगवान् विष्णु अनिन्द्य हैं। साधु पुरुषोंने उनकी आराधनाके लिये बड़ी भारी तपस्या की है। देवताओंने भी सनातन देव श्रीहरिका सदा ही पूजन किया है। भगवान्के अनुरूप निर्भयतासे युक्त हो उनकी शरणमें जाकर उनकी आराधनामें मन लगाना है। सम्पूर्ण द्विजोंको

चाहिये कि वे मन, बाणों और क्रियाद्वारा भगवान् देवकी नन्दनकी सेवामें उपस्थित हो यत्नपूर्वक उनका दर्शन और नमस्कार करें। मुनिवरो! मैंने इसी मार्गका अनुष्ठान किया है उन सर्वदेवेश्वर भगवान्का दर्शन कर लेनेपर सम्पूर्ण देवताओंका दर्शन हो जाता है। उन महाबलरूपधारी सर्वलोकपितामह अगत्यति भगवान् विष्णुको मैं नित्यप्रति प्रणाम करता हूँ। उन्हीं श्रीकृष्णके बड़े भाई हलधर बलरामजी होंगे, जिनका श्वेतगिरिके समान गौर वर्ण होगा। इस पृथ्वीको धारण करनेवाले लेपनाग ही उनके रूपमें अवतीर्ण होंगे। वे भगवान् तोष बड़ी प्रसन्नताके साथ सर्वत्र विषारण करते हैं। वे अपने फणसे पृथ्वीको लपेट करके स्थित हैं। वे जो भगवान् विष्णु कहलाते हैं, वे ही इस पृथ्वीको धारण करनेवाले भगवान् अनन्त हैं। जो बलराम हैं, वही समस्त इन्द्रियोंके स्वामी धरणीधर अच्युत हैं। वे दोनों पुरुषसिंह दिव्य रूप एवं दिव्य पराक्रमी हैं। उन दोनोंका दर्शन और आदर करना चाहिये। वे क्रमशः चक्र और हल धारण करनेवाले हैं। तथेधने। मैंने तुमलोगोंसे भगवान्के अनुग्रहका यह उपाय बताया है, अतः तुम सब लोग प्रयत्नपूर्वक यदुक्ते भगवान् वासुदेवका पूजन करो।

~*~*~*~*~

श्रीवासुदेवके पूजनकी महिमा तथा एकादशीको भगवान्के मन्दिरमें जागरण करनेका माहात्म्य—ब्रह्मराक्षस और चाण्डालकी कथा

मुनियोंने कहा—महर्षे! हमने भगवान् श्रीकृष्णका अद्भुत माहात्म्य सुना। वह सब पापोंको दूर करनेवाला पुण्यप्रद, धन्य एवं संसारबन्धनका नाश करनेवाला है। महामुने! श्रीवासुदेवके पूजनमें संलग्न रहनेवाले मनुष्य उनका विधिपूर्वक भक्तिभावसे पूजन करके किस गतिको प्राप्त होते हैं?

व्यासजी बोले मुनिवरो! तुमने बहुत अच्छी बात पूछी है यह वैष्णवोंको सुख देनेवाला विषय

है, ध्यान देकर सुनो। वैष्णवोंके लिये स्वर्ग और मोक्ष दुर्लभ नहीं हैं। वैष्णव पुरुष जिन-जिन दुर्लभ भोगोंकी अभिलाषा करते हैं, उन सबको प्राप्त कर लेते हैं जैसे कोई पुरुष कल्पवृक्षके फल पहुँच जानेपर अपनी इच्छाके अनुसार फल खाता है, उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णसे सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंकी प्राप्ति होती है। भक्त मनुष्य ब्रह्म और विश्वके साथ जगद्गुरु भगवान् वासुदेवका

पूजन करके धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—जहाँ पुरुषार्थोंके फलस्वरूप स्वयं भगवान्‌को प्राप्त कर लेते हैं। जो लोग सदा भक्तिपूर्वक अविनाशी वासुदेवकी पूजा करते हैं, उनके लिये तीर्थों लोकोंमें कुछ भी दुर्लभ नहीं है। संसारमें वे मनुष्य धन्य हैं, जो समस्त मनोव्याम्बित कलोंके देनेवाले सर्वपापहारी श्रीहरिका सदा पूजन करते हैं। साधन, श्रित्य, वैश्य, स्त्री, शूद्र और अन्धज—सभी सुरश्रेष्ठ भगवान् वासुदेवका पूजन करके परम गतिकी प्राप्ति होते हैं।*

दोनों पक्षोंकी एकदशीको उपवासपूर्वक एकप्रविष्ट हो विधिपूर्वक स्नान करके भुले हुए वस्त्र पहने। इन्द्रियोंको अपने काबूमें रखे और पुष्प, गन्ध, धूप, दीप, नैवेद्य, चन्द प्रकारके उपहार, जप, होम, प्रदक्षिणा, भीति-भौतिके दिव्य स्तोत्र, मन्त्रोंपर गीत, वाद्य, हण्डवत्—प्रणाम तथा 'जय' शब्दके उच्चारणद्वारा प्रद्वारपूर्वक भगवान् विष्णुकी विधिबत् पूजा करे। पूजनके पश्चात् रात्रिमें जागरण करके श्रीकृष्णकी चिन्तन करते हुए उनकी कथा-वार्ता करे। अथवा भगवत्सम्बन्धी पदोंका गान करे। यों करनेवाला मनुष्य भगवान् विष्णुके परम धाममें जाता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

मुनिछोंने पूछा—महामुने! भगवान् विष्णुके लिये जागरण करके गीत गानेका क्या फल है? उसे बताइये। उसका श्रवण करनेके लिये हमारे मनमें बड़ी उत्कण्ठा है।

व्यासजी बोले—मुनिवरो! भगवान् विष्णुके लिये जागरण करते समय गान करनेका बड़े फल बताया गया है, उसका क्रमशः वर्णन करता हूँ, सुनो। इस पृथ्वीपर अश्वत्थो नामसे प्रसिद्ध एक नगरी थी, जहाँ सङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् विष्णु विराजमान थे। उस

नगरीके किनारे एक चाण्डाल रहता था, जो संश्रितमें कुशल था। वह उत्तम मृत्तिसे धन पैदा करके कुटुम्बके लोगोंका भरण-पोषण करता था। भगवान् विष्णुके प्रति उसकी बड़ी भक्ति थी। वह अपने चतुष्पाद दूतपूर्वक पालन करता था। प्रत्येक मासकी एकदशी तिथिको वह उपवास करता और भगवान्‌के मन्दिरके पास जाकर उन्हें गीत सुनाया करता था। वह गीत भगवान् विष्णुके नामोंसे युक्त और उनकी अवतार-कथासे सम्बन्ध रखनेवाला होता था। गन्धार, बह्वज, निषाद, पञ्चम और धेवत आदि स्वरोंसे वह रात्रि-जागरणके समय विभिन्न गायकोंद्वारा श्रीविष्णुका यत्नोगान करता था। एकदशीको प्रातःकाल भगवान्‌को प्रणाम करके अपने घर अग्रत और पहले दामाद, भजनजे और



कन्याओंको भोजन कराकर पीछे स्वयं सपरिवार भोजन करता था। इस प्रकार विभिन्न गीतोंद्वारा भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताका सम्पादन करते हुए

* धन्यास्तो पुरुषा लोके वेऽर्चयन्ति मया इतिम् । सर्वप्रसहं देवं सर्वकामफलप्रदम् ॥

ब्राह्मण श्रित्या वैश्यः शिवः शूद्रान्वक्तव्यः । सम्पूज्य च सुखं प्राप्नुवन्ति पतिं गरिम् ॥

उस चाण्डालकी अत्युक्त अधिकांश भाग बीत गया। एक दिन चैत्रके कृष्णपक्षकी एकादशी तिथिको वह भगवान् विष्णुकी सेवा करनेके लिये जंगली पुष्पोंका संग्रह करनेके निमित्त भक्तिपूर्वक उत्तम वनमें गया। भिक्षाके तटपर महान् वनके भीतर एक बड़े-बड़ेका वृक्ष था उसके नीचे पहुँचनेपर किल्ले राक्षसने उस चाण्डालको देखा और भक्षण करनेके लिये पकड़ लिया। यह देख चाण्डालने उस राक्षससे कहा—'भद्र! आज तुम मुझे न खाओ, कल प्रातःकाल खा लेना। मैं सत्य कहता हूँ, फिर तुम्हारे पास लौट आऊँगा। राक्षस! आज मेरा बहुत बड़ा कर्म है, अतः मुझे छोड़ दो। मुझे भगवान् विष्णुकी सेवाके लिये रात्रिमें जागरण करना है। तुम्हें उसमें विघ्न नहीं डालना चाहिये। ब्रह्मराक्षस! सम्पूर्ण जगत्का मूल सत्य ही है, अतः मेरी बात सुनो। मैं सत्यकी शपथ खाकर कहता हूँ, पुनः तुम्हारे पास लौट आऊँगा। फलके लिखीके पास जाने और पराध्वे धनको ग्रहण लेनेवाले मनुष्योंको जिस पापकी प्राप्ति होती है। ब्रह्मन्त्रके शराही और गुरुपत्नीगामी तथा सूदृजतीय स्त्रीसे सम्बन्ध रखनेवाले द्विजको जो पाप होता है, कृतक, मित्रघाती, दुकार व्याही हुई स्त्रीके पति, क्रूरतापूर्ण कर्म करनेवाले पुरुष, कृपण तथा कर्मके अतिथिको जो पाप लगता है, अम्यावस्था, अष्टमी, व्रती और दोनों पक्षोंकी चतुर्दशीमें स्त्रीसमागमसे जो पाप होता है, ब्राह्मण यदि रजस्वला स्त्रीके पास जाय अथवा श्राद्ध करके स्त्रीसम्प्राप्त करे, उससे जो पाप लगता है, घाल-भोजन करनेपर जिस पापकी प्राप्ति होती है, मित्रकी धनीके साथ सम्भोग करनेवालोंको जो दोष प्राप्त होता है, चुगलखोर, दम्भी, मयावी और मधुधक्षीको जिस पापकी प्राप्ति होती है, ब्राह्मणको कुछ देनेकी प्रतिज्ञा करके फिर उसे न देनेवालोंको जो दोष लगता है, स्त्री हत्या, बाल हत्या और पिष्ट्याभाषण करनेवालेको जिस पापका भगी होना पड़ता है, देवता, वेद, ब्राह्मण, राजा, मित्र और सखी स्त्रियोंकी विन्दा करनेसे जो पाप होता है, गुरुको शूद्र

कलङ्क देने, वनमें अग्न लگانे, गौक्षे हत्या करने, ब्रह्मभक्षण होने और बड़े भाईके अविवाहित रहने एवं विवाह कर लेनेपर जो पाप लगता है तथा भ्रूणहत्या करनेवाले मनुष्योंको जिस पापकी प्राप्ति होती है—अथवा यहाँ बहुत-से शपथोंका वर्णन करनेसे क्या लाभ। राक्षस! एक भक्तकर शपथ सुन लो। यद्यपि वह कहने योग्य नहीं है तो भी कहता हूँ—अपनी कन्याको बेचकर जीविक चलावेवाले, झूठी गवाही देने एवं राजके अनधिकारीसे यज्ञ करनेवाले मनुष्योंको जिस पापका भगी होना पड़ता है तथा, संन्यासी और ब्रह्मचारीको कर्मयोगमें अभ्यस्त होनेपर जिस पापकी प्राप्ति होती है, उक्त सभी पापोंसे मैं लित होऊँ, यदि तुम्हारे पास लौटकर न आऊँ।'

चाण्डालकी यह बात सुनकर ब्रह्मराक्षसको बड़ा विस्मय हुआ। उसने कहा—'आओ, सत्यके द्वारा अपनी की हुई प्रतिज्ञाका पालन करना।' राक्षसके धीं कहनेपर चाण्डाल फूल लेकर भगवान् विष्णुके मन्दिरपर आया। उसने सभी फूल ब्राह्मणको दे दिये। ब्राह्मणने उन्हें जलसे धोकर इनके द्वारा भगवान् विष्णुका पूजन किया और अपने घरकी राह ली। किन्तु चाण्डालने मन्दिरके बाहर ही भूमिपर बैठकर उपवासपूर्वक गीत गाते हुए रातभर जागरण किया। रात बीती, सबेर हुआ और चाण्डालने स्नान करके भगवान्को नमस्कार किया; फिर अपनी प्रतिज्ञा सत्य करनेके लिये वह राक्षसके पास चल दिया। उसे जाते देख किसी मनुष्यने पूछा—'भद्र! कहाँ जाते हो?' चाण्डालने सब बातें कह सुनायीं। तब वह मनुष्य फिर बोला—'यह शरीर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंका साधन है, अतः विद्वान् पुरुषको बड़े यत्नसे इसका पालन करना चाहिये। मनुष्य जीवित रहे तो वह धर्म, अर्थ, सुख और श्रेष्ठ मोक्ष-गतिको प्राप्त कर लेता है। जीवित रहनेपर वह कीर्तिक्रम भी उपार्जन करता है। संसारमें मरे हुए मनुष्यकी कोई चर्चा ही नहीं करता।' उसकी बात सुनकर चाण्डालने युक्तियुक्त ज-नोंमें उत्तर

दिया—'भद! मैंने सपना छापी है, अतः सत्यसे आगे करके उससे के पास जाता हूँ।' तब उस मनुष्यने फिर कहा—'सत्यो! तुम ऐसी मूर्खता क्यों करते हो? क्या तुमने मनुष्यीका यह बचन नहीं सुना है—'मैं, स्त्री और ब्राह्मणकी सखीके सिवा, विवाहके समय, एतके प्रसङ्गसे प्रान-संकटकालमें सर्वस्वका अपहरण होते समय—इन पाँच अवसरोंपर असत्यभाषणसे काम नहीं लगता।'*

उस मनुष्यका कथन सुनकर चाण्डालने पुनः उत्तर दिया—'असत्य कल्याण हो, अस्य ऐसी बात मुँहसे न निकलती। संसारमें सत्यका ही आदर होता है। भूतलपर जो कुछ भी सुख-सामग्री है, वह सत्यसे ही प्राप्त होती है। सत्यसे ही सूर्य तपक है, सत्यसे ही पलमें रसबधि स्थिति है, सत्यसे ही अन्न जलती और सत्यसे ही वायु चलती है। मनुष्योंको सत्यसे ही धर्म, अर्थ, काम और दुर्लभ मोक्षकी प्राप्ति होती है; अतः सत्यका परित्याग न करो। लोकमें सत्य ही बराबर है, यज्ञोंमें भी सत्य ही सबसे उत्तम है तथा सत्य स्वर्गसे अस्य हुआ है; इसलिए सत्यको कभी नहीं छोड़ना चाहिये।†

यों कहकर वह चाण्डाल उस मनुष्यको चुप कराकर उस स्थानपर गया, जहाँ प्राणियोंका बंध करनेवाला बहिराक्षस रहता था। चाण्डालको ज्ञाता देव बहिराक्षसके पैर आनन्दसे चकित हो उठे। उसने सिध हिलाकर कहा—'महाभाग! तुम्हें साधुवाद। तुम वास्तवमें सत्य बचनका फलन करनेवाले हो। तुम तो सत्यस्वरूप हो। मैं तुम्हें चाण्डाल नहीं मानता। तुम्हारे इस कर्मसे मैं तुम्हें पवित्र ब्राह्मण समझता हूँ। तुम्हारे मुखमें कल्याणका

निकल है। अब मैं तुमसे धर्म-सम्बन्धी कुछ बातें पूछता हूँ, बताओ।' तुमने भगवान् विष्णुके मन्दिरमें



कीर्ति-सा धर्म किया?' चाण्डालने कहा—'सुनो, मैं मन्दिरके नीचे बैठकर भगवान् के सामने भस्मक मुद्राका और उनका वसोगान करते हुए सारी रात जागरण किया।' बहिराक्षसने फिर पूछा—'बताओ, तुम्हें इस प्रकार भक्तिपूर्वक विष्णुमन्दिरमें जागरण करते कितना समय व्यतीत हो गया?' चाण्डालने ईमान कहा—'उत्तम! मुझे प्रायः एकदशहजार जागरण करते बीस वर्ष व्यतीत हो गये।' यह सुनकर बहिराक्षसने कहा—'साधो! अब मैं तुमसे जो कुछ कहता हूँ, वह करो। मुझे एक रातके जागरणका फल अर्पण करो। महाभाग! ऐसा करनेसे तुम्हें सुदृढता मिल जायगी; अन्यथा मैं तीन बार

* श्रीमद्भगवद्गीता परित्यागार्थं विष्णुमन्दिरं मुनिप्रसङ्गे । ब्रह्मरूपे सर्वभूतस्थे चन्द्रमुखचतुर्भुजपाणि ॥

(२२०।५०)

† सत्येवाकः प्रवर्तते सत्येनाथे रक्षन्त्यथः । ज्वलन्निष्कल सत्येन वासि सत्येन मास्तः ॥ धर्मार्थकाममोक्षप्राप्तिर्मात्रप्रतिष्ठः । दुर्लभः सत्येन जपते पुंसं तन्मन्त्रं सर्वं न संत्यजेत् ॥

सर्वं ब्रह्म परं लोकं सत्यं यदेतु चोत्तमम् । सर्वं स्वर्गसमाकृतं क्षम्यात्सत्यं न संत्यजेत् ॥

(२२०।५३-५५)

सत्यकी दुहाई देकर कहता हूँ कि तुम्हें कदापि नहीं छोड़ूँगा।' यों कहकर वह चुप हो गया।

चाण्डालने कहा—'निराश्रय! मैंने तुम्हें अपना स्वीर अर्पित कर दिया है। अतः अब दूसरी बात करनेसे क्या लाभ। तुम मुझे इच्छानुसार खा जाओ।' तब राक्षसने फिर कहा—'अच्छ, रातके दो ही पहरेके जागरण और संगीतका पुण्य मुझे दे दो। तुम्हें मुझपर भी कृपा करनी चाहिये।' यह सुनकर चाण्डालने राक्षससे कहा—'यह कैसी बेमिर-पैरकी बात करते हो। मुझे इच्छानुसार खा लो। मैं तुम्हें जागानका पुण्य नहीं दूँगा।' चाण्डालकी बात सुनकर ब्रह्मराक्षसने कहा—'भई! तुम तो अपने धर्म-कर्मसे मुरझित हो, कौन ऐसा अज्ञानी और दुर्बुद्धिकर पुरुष होगा, जो तुम्हारी ओर देखने, तुमपर आक्रमण करने अथवा तुम्हें पीड़ा देनेका साहस कर सके, दीन, पापग्रस्त, विषयविमोहित, भ्रकपोंदित और मूढ़ जीवपर साधु पुण्य सदा ही दयालु रहते हैं।' यह भाग! तुम मुझपर कृपा करके एक ही कमरेके जागरणका पुण्य दे दो अथवा अपने घरकी लौट जाओ।' चाण्डालने फिर उत्तर दिया—'म तो मैं अपने घर लौटूँगा और मैं तुम्हें किसी तरह एक यामके जागरणका पुण्य ही दूँगा।' यह सुनकर ब्रह्मराक्षस हँस पड़ा और बोला—'भई! छत्रि चरित्तो होते समय जो तुमने अन्तिम गीत गाया हो, उसीका फल मुझे दे दो और आपसे मेरा उद्धार करो।' तब चाण्डालने उससे कहा—'यदि तुम आजसे किसी प्राणीका बंध न करो तो मैं तुम्हें अपने पिछले गीतका पुण्य दे सकता हूँ, अन्यथा नहीं।' 'बहुत अच्छा' कहकर ब्रह्मराक्षसने उसकी बात मान ली तब चाण्डालने उसे आगे मुहूर्तके जागरण और गानका फल दे दिया। उसे पाकर ब्रह्मराक्षसने चाण्डालको प्रणाम किया और प्रसन्न होकर तीर्थोंमें श्रेष्ठ पुष्टदकतीर्थकी ओर चल दिया। वहाँ निराहार रहनेका संकल्प लेकर,



ब्रह्मराक्षसने प्राण त्याग दिया। उस गीतके फलसे पुण्यकी वृद्धि होनेके कारण उसका उस राक्षसयोनिसे उद्धार हो गया। पुष्टदकतीर्थके प्रभावसे दुर्लभ ब्रह्मलोकमें जाकर उसने दस हजार वर्षोंतक वहाँ निर्बंध निवास किया। अन्तमें वह जितेन्द्रिय ब्रह्मण हुआ और उसे पूर्वजन्मका स्मरण बना रहा। अब चाण्डालकी होम कथा कहता हूँ, सुनो। राक्षसके चले जानेपर वह बुद्धिमान् एव संघपी चाण्डाल अपने घर आया। उस घटनासे चाण्डालके मनमें बड़ा वैराग्य हुआ। उसने अपनी फलीकी रक्षाका भार पुत्रीपर डाल दिया और स्वयं पुष्पोंकी परिक्रमा आरम्भ कर दी। कोकामुखसे लेकर जहाँ बगवान् स्कन्दके दर्शन होते हैं, वहाँतक गया। स्कन्दका दर्शन करके वह भारा नगरीमें गया। वहाँ भी प्रदक्षिणा करके वह पर्वतमें श्रेष्ठ विन्ध्याचलपर जाकर फणयोवन तीर्थमें पहुँचा। वहाँ उस चाण्डालने स्नान किया, जो सब पापोंको दूर करनेवाला है। फिर, अपरहित हो वह उत्तम गतिको प्राप्त हुआ।

श्रीविष्णुमें भक्ति होनेका क्रम और कलि-धर्मका निरूपण

मुनिवोंने कहा—महाप्रभो! हमने भगवान् श्रीकृष्णके समीप जागरणपूर्वक गीत सुननेका फल सुन, जिससे वह चाण्डाल परम गतिको प्राप्त हुआ। अब जिस तपस्वी अथवा कर्मसे भगवान् विष्णुमें हमारी भक्ति हो सके, वह हमें बताइये। इस समय हम यही विषय सुनना चाहते हैं।

ब्रह्मजी बोले—मुनिवरों! भगवान् श्रीकृष्णकी भक्ति महान् फल देनेवाली है। वह मनुष्यको जिस प्रकार होती है, वह सब क्रमशः बतलाता है। ध्यान देकर सुनो। ब्राह्मणों! यह संसार अत्यन्त घोर और समस्त प्राणियोंके लिये भयंकर है। नाना प्रकारके सैकड़ों दुःखोंसे व्यक्त और मनुष्योंके हृदयमें महान् मोहका संचार करनेवाला है। इस जगत्में पशु-पक्षी आदि हवायें योनियोंमें बारबार जन्म लेनेके पश्चात् देहधारी जीव कभी किसी प्रकार मनुष्यका जन्म प्राप्त है। मनुष्योंमें भी ब्राह्मणत्व, क्षात्राण्यमें भी विवेक, विवेकसे भी धर्मनिष्ठ बुद्धि और बुद्धिसे भी कल्याणमय मार्गोंका ग्रहण होना अत्यन्त दुर्लभ है। मनुष्योंके पूर्वजन्मका संचित पाप जबतक नष्ट नहीं हो जाता, तबतक जगन्मय भगवान् वामुदेवमें उनकी भक्ति नहीं होती। अतः ब्राह्मणों! श्रीकृष्णमें जिस प्रकार भक्ति होती है, वह सुनो। अन्य देवताओंके प्रति मनुष्यकी जो मन्, वाप्ती और क्रियद्वारा तद्गताचित्तसे भक्ति होती है, उससे यज्ञमें उसका पान लगता है, फिर वह एकप्रचित्त होकर अग्निको उपासना करता है। अग्निदेवके संतुष्ट होनेपर भगवान् भस्करमें उसकी भक्ति होती है। तबसे वह निरन्तर सूर्यदेवकी आराधना करने लगता है। भगवान् सूर्यके प्रसन्न होनेपर उसकी भक्ति भगवान् शंकरमें होती है, फिर वह बड़े यत्नके साथ विधिपूर्वक महादेवजीकी पूजा करता है। जब महादेवजी संतुष्ट होते हैं, तब मनुष्यकी

भक्ति भगवान् श्रीकृष्णमें होती है। तब वह वामुदेवसंज्ञक अविनाशी भगवान् जगन्नाथका पूजन करके भोग और मोक्ष दोनों प्राप्त कर लेता है।

मुनिवोंने पूछा—महाप्रभो! संसारमें जो अवेक्षण मनुष्य देखे जाते हैं, वे श्रीविष्णुका पूजन क्यों नहीं करते? इसका कारण बताइये।

ब्रह्मजी बोले—मुनिवरों! इस संसारमें दो प्रकारके भूतस्पर्श विख्यात हैं—एक आसुर और दूसरा दैव। पूर्वकालमें इन दोनोंकी सृष्टि ब्रह्माजीने ही की थी। दैवी प्रकृतिका आश्रय लेनेवाले मनुष्य भगवान् विष्णुका पूजन करते हैं और आसुरी प्रकृतिको प्राप्त हुए लोग श्रीहरिकी निन्दा किया करते हैं। ऐसे लोग मनुष्योंमें अधम हैं। श्रीहरिकी पायासे उनकी बुद्धि मारी गयी है। ब्राह्मणों! वे श्रीहरिको न पाकर नीच गतिमें जाते हैं। भगवान्की मया बड़ी गूढ़ है। देवताओं और आसुरोंके लिये भी इसका ज्ञान होना कठिन है। वह मनुष्योंके हृदयमें महान् मोहका संचार करती है। जिन्होंने मनको वशमें नहीं किया है, ऐसे लोगोंके लिये उस पायाको पार करना कठिन है।

मुनिवोंने कहा—महर्षे, अब हम आपसे जगत्के संहारके कथा सुनना चाहते हैं। कल्पके अन्तमें जो महाप्रलय होता है, उसका वर्णन कीजिये।

ब्रह्मजी बोले—मुनिवरों! कल्पके अन्तमें तब प्राकृत प्रलयमें जो जगत्का संहार होता है, उसका वर्णन सुनो। सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलि—ये चार युग हैं, जो देवताओंके बारह हजार दिव्य वर्षोंमें समाप्त होते हैं। समस्त चतुर्युग स्वरूपसे एक से हो होते हैं। सृष्टिके आरम्भमें सत्ययुग होता है तथा अन्तमें कलियुग रहता है। ब्रह्माजी प्रथम कृतयुगमें जिस प्रकार सृष्टिका आरम्भ करते हैं, वैसे ही अन्तिम कलियुगमें उसका उपसंहार करते हैं।

मुनियोंने कहा—भगवान्! कलिके स्वस्वरूपका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये, जिसमें चार चरणवाले भगवान् धर्म खण्डित हो जाते हैं।

ध्यासजी बोले—निष्पाप मुनियो! तुम जो मुझसे कलिका स्वरूप पूछते हो, वह तो बहुत बड़ा है, तथापि मैं संक्षेपसे बतलाता हूँ, सुनो। कलियुगमें मनुष्योंकी वर्ष और आश्रमसंख्या आचारमें प्रवृत्ति नहीं होगी। सामवेद, ऋग्वेद और यजुर्वेदकी आज्ञाके पालनमें भी कोई प्रवृत्ति न होगा। कलियुगमें विवाहको धर्म नहीं माना जायगा। शिष्य गुरुके अधीन नहीं रहेंगे। पुत्र भी अपने धर्मका पालन नहीं करेंगे। अग्निहोत्रका नियम उठ जायगा। कोई किसी भी कुलमें क्यों न उत्पन्न हुआ हो—जो बलवान् होगा, वही कलियुगमें सबका स्वामी होगा। सभी वर्णोंके लोग कन्या बेचकर जीवन-निर्वाह करेंगे। ब्राह्मणों! कलियुगमें जिस किसीका जो भी वचन होगा, सब शास्त्र ही माना जायगा। कलियुगमें सब देवता होंगे और सबके लिये सब आश्रम होंगे अपनी अपनी रुचिके अनुसार अनुष्ठान करके उसमें उपवास, परिश्रम और धनका व्यवहार करना धर्म कहा जायगा। कलियुगमें घोड़े से ही धनसे मनुष्योंको बड़ा सम्बन्ध होगा। स्त्रियोंको अपने केशोंपर ही रूपकत्ती होनेका गर्व होगा। सुवर्ण, मणि और रत्न आदि तथा वस्त्रोंके भी नष्ट हो जानेपर स्त्रियाँ केशोंसे ही शृङ्गार करेंगी। कलियुगकी स्त्रियाँ धनहीन पतिको त्याग देंगी। उस समय धनवान् पुरुष ही युवतियोंका स्वामी होगा। जो अधिक देगा, उसे उसे ही मनुष्य अपना मालिक मानेंगे उस समय लोग प्रभुत्वके ही कारण सम्बन्ध रखेंगे द्रव्यरसि घर बनानेमें ही समाप्त हो जायगी। उसमें दान पुण्यादि न होंगे। बुद्धि द्रव्योंके संग्रहमात्रमें ही समीप रहेगी। उसके द्वारा आत्मचिन्तन न होगा। सारा धन उपभोगमें ही समाप्त हो जायगा। उससे धर्मका अनुष्ठान न

होगा। कलियुगकी स्त्रियाँ स्वेच्छाचारिणी होंगी। हाव भाव विलासमें ही उनकी स्थिरा रहेगी। अन्यायसे धन पैदा करनेवाले पुरुषोंमें ही उनकी आसक्ति होगी। सुहृदोंके निषेध करनेपर भी मनुष्य एक-एक पाईके लिये भी दूसरोंके स्वार्थकी हानि कर देंगे।

ब्राह्मणों! कलियुगमें सब लोग सदा सबके साथ समानताका दावा करेंगे। गायोंके प्रति तभीतक गौरव रहेगा, जबतक कि वे दूध देती रहेंगी। कलियुगको प्रज्ज प्रायः कृत्तवृष्टि और क्षुधाके भयसे व्याकुल रहेगी सबके नेत्र आकाशकी ओर सजे रहेंगे। वर्षा न होनेसे दुःखी मनुष्य तपस्वी-जनोंकी भीति मूल-फल और पत्ते छाकर रहेंगे और कितने ही अश्रमघात कर लेंगे। कलियुगमें सदा अकाल ही पड़ता रहेगा सब लोग सदा असमर्थ होकर बलेष्ट भोगेंगे। कभी किन्हीं मायवोंको जोड़ा सुख भी मिल जायगा। सब लोग बिन खान किये ही भोजन करेंगे। अग्निहोत्र, देवपूजा, अतिथि-सत्कार, श्राद्ध और तर्पणकी क्रिया कोई नहीं करेंगे। कलियुगकी स्त्रियाँ लोभी, नाटी, अधिक छानेवासी, बहुत संतान पैदा करनेवाली और मन्द भाग्यवाली होंगी। वे दोनों इन्धनोंसे सिर खुजलाते रहेंगी। गुरुजनों तथा पतिको आज्ञाका भी उल्लङ्घन करेंगी तथा पदोंके भीतर नहीं रहेगी अपना ही पेट पालेंगी क्रोधमें भरी रहेंगी। देह-तुष्टिकी ओर ध्यान नहीं देंगी और असत्य एवं कटु वचन बोलेंगी। इतना ही नहीं, वे दुराचारिणी होकर दुराचारी पुरुषोंसे मिलनेकी अभिलाषा करेंगी। कुलवत्ती स्त्रियाँ भी अन्य पुरुषोंके साथ व्यवहार करेंगी। ब्रह्मचारी लोग वेदोक्त व्रतका पालन किये बिना ही वेदाध्ययन करेंगे। गृहस्थ पुरुष न तो इंचन करेंगे और न सत्याग्रहको उचित दान ही देंगे। वानप्रस्थ आश्रममें रहनेवाले लोग वनके कन्द मूल अदिसे निर्वाह न करके ग्रामीण आहारका संग्रह करेंगे और संन्यासी भी मित्र

आदिके स्नेह-बन्धनमें बँधे रहेंगे। कलियुग आनेपर राजालोग प्रजाकी रक्षा नहीं करेंगे, अपितु कर लेनेके बड़ाने प्रजाके ही धनका अपहरण करनेवाले होंगे।* उस समय जिस-जिसके पास हाथी, घोड़े और रथ होंगे, वही-वही राज होगा और जो-जो निर्बल होंगे, वे ही सेवक होंगे। वैश्यस्त्रेण कृषि, वाणिज्य आदि अपने कर्मोंको छोड़कर सुद्ध-वृत्तिसे रहेंगे। शिल्प-कर्मसे जीवन-निर्वाह करेंगे। इसी प्रकार सुद्ध भी संन्यासका विह्व धारण करके भिक्षापर जीवन-निर्वाह करेंगे। वे अधम मनुष्य संस्कारहीन होते हुए भी लोगोंने ठगनेके लिये पाखण्ड-वृत्तिक आश्रय लेंगे। दुर्भिक्ष और करकी चोड़ासे अत्यन्त ठपड़मग्रस्त होकर प्रजाजन ऐसे देशोंमें चले जायेंगे, जहाँ भूँ और जो अदिकी अधिकता होगी। उस समय वेदमार्गका लोप, पाखण्डकी अधिकता और अधर्मकी वृद्धि होनेसे लोगोंकी आयु बहुत छोटी होगी। कलियुगमें पाँच, छः अथवा सात वर्षकी स्त्री और आठ, नौ या दस वर्षके पुरुषोंके ही संतानें होने लग जायेंगी। बारह वर्षकी अवस्थामें ही बाल स्नेह होने लगेंगे। यों कलियुग आनेपर कोई मनुष्य बीस वर्षतक जीवित नहीं रहेगा। उस समय लोग भन्दबुद्धि, अध्वं धिक् धारण करनेवाले और दुष्ट अन्तःकरणवाले होंगे, अतः वे थोड़े ही समयमें नष्ट हो जायेंगे।

ब्राह्मणों! जब-जब इस जगत्में पाखण्ड-वृत्ति

दृष्टिगोचर होने लगे, तब तब विद्वान् पुरुषोंको कलियुगकी वृद्धिक अनुमान करना चाहिये। जब-जब वैदिक मार्गका अनुसरण करनेवाले साधु पुरुषोंकी हानि हो, तब-तब बुद्धिमान् पुरुषोंको कलियुगकी वृद्धिका अनुमान करना चाहिये। जब धर्मात्मा मनुष्योंके आरम्भ किये हुए कार्य शिथिल हो जायें, तब उसमें विद्वानोंको कलियुगकी प्रधानताका अनुमान करना चाहिये। जब-जब पशुओंके अधीश्वर भगवान् पुरुषोत्तमका लोग यज्ञोंद्वारा यजन न करें, तब तब यह समझना चाहिये कि कलियुगका काल बढ़ रहा है। द्विजवरों! जब वेदवादमें प्रेम न हो और पाखण्डमें अनुराग बढ़ जाय, तब विद्वान् पुरुषोंको कलियुगकी वृद्धिक अनुमान करना चाहिये। ब्राह्मणों! कलियुगमें पाखण्डसे दूषित धितवाले मनुष्य सबकी सृष्टि करनेवाले जगत्पति भगवान् विष्णुको आराधना नहीं करेंगे। उस समय पाखण्डसे प्रभावित मनुष्य ऐसा कहेंगे कि 'देवताओंसे क्या लेना है। ब्राह्मणों और वेदोंसे क्या लाभ है। जलसे होनेवाले मुट्टिमें क्या रखा है' † कलियुगमें मेघ बोझी वृष्टि करेंगे। खेतोंमें बहुत कम फल लगेंगे और वृक्षोंके फल सारहीन होंगे। कलियुगमें प्रायः लगे घुटनोंतक बरस पहचेंगे। वृक्षोंमें शमीकी ही अधिकता होगी। जराँ वनोंके सब लोग प्रायः सूखवा हो जायेंगे। ‡ कलियुगके आनेपर प्रायः

* अरक्षितारो हतार- सुस्तक्याजेन पार्थिवः। हरिणो जगवितानं सम्प्राप्ते च कलौ भुगे॥

(२२९। ३४)

† यदा यदा हि पाखण्डवृत्तिरप्रेतक्षयोः। तदा तदा कलंबुद्धिरनुमेया विचक्षणैः॥

यदा यदा सतां हानिर्वेदमार्गानुसरिष्यात्। तदा तदा कलंबुद्धिरनुमेया विचक्षणैः॥

प्रारम्भक्षयसोदन्ति यदा कर्मकृतां नृकम्। तदनुमेयं प्रधान्यं कलैर्विप्रा विचक्षणैः॥

(२२९। ४४-४६)

‡ किं देवि किं द्विवेदे- किं त्रीपेन्द्रमुज्ज्वला। इत्येवं प्रलपिष्यन्ति पाखण्डोपहता नराः॥

(२२९। ५०)

§ जानुश्रापयि बरुषयि जयाप्राप्त्य महोरुहः। सुदृष्टान्ततथा वर्णं धक्षिष्यन्ति कलौ भुगे॥

(२२९। ५२)

छोटे-छोटे धान्य होंगे। अधिकतर कर्करियोंका दूध मिलेगा और रस्सीर (खस) ही एकमात्र अनुलेपन होगा। कलियुगमें अधिकतर सास और ससुर ही लोगोंके गुरुजन होंगे। मुनिवरो! उस समय मन्नेहारिणी भयार्थ और भाले आदि ही सुद्ध सम्पत्ते जायेंगी लोग अपने ससुरके अनुगामी होकर कहेंगे कि 'कौन किसकी माता है और कौन किसका पिता? सब जीव अपने कर्मोंके अनुसार ही जन्मते और मरते हैं।' उस समय थोड़ी बुद्धियाले मनुष्य मन, बाणी और शरीरके दोषोंसे प्रभ्रष्ट होकर प्रतिदिन बारम्बार पाप करेंगे। सत्य, शौच और सत्तासे रहित मनुष्योंके लिये जो-जो दुःखकी बात हो सकती है, वह सब कलियुगमें होगी। संसारमें स्वाध्याय, ब्रह्मचर्य, स्वधर्म और स्वाहाता शब्द नहीं सुनयी देगा। उस समय स्वधर्मनिष्ठ ब्राह्मण कोई विरला ही होगा। एक विशेषता अवश्य है, कलियुगमें थोड़ा-सा ही प्रयत्न करनेपर मनुष्य वह उत्तम पुण्यप्राप्ति प्राप्त कर सकता है, जो सत्ययुगमें बहुत बड़ी तपस्यासे ही साध्य हो सकती है।

ब्राह्मणों! कलियुग धन्य है, जहाँ थोड़े ही क्लेशसे महान् फलकी प्राप्ति होती है तथा स्त्री और शूद्र भी धन्य हैं। इसके सिवा और भी सुनो। सत्ययुगमें दस वर्षतक तपस्व्य, ब्रह्मचर्य और जप आदिका अनुष्ठान करनेसे जो फल मिलता है, वह त्रेतामें एक वर्ष, द्वापरमें एक मास तथा कलियुगमें एक दिन-रातके ही अनुष्ठानसे मिल जाता है।

इसीलिये मैं कलियुगको श्रेष्ठ बताया। सत्ययुगमें ध्यान, त्रेतामें ब्रह्मचर्य यवन और द्वापरमें पूजन करनेसे मनुष्य जिस फलको पाता है, वही कलियुगमें केवलक नाम-कीर्तन करनेमात्रसे मिल जाता है। धर्मज्ञ ब्राह्मणों! इस कलियुगमें थोड़े-से परिश्रमसे ही मनुष्यको महान् धर्मकी प्राप्ति हो जाती है। इसीलिये मैं कलियुगसे अधिक संतुष्ट हूँ।

जब सूर्योदय की विशेषताका वर्णन सुनो। द्विजोंको पहले ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करते हुए वेदाध्ययन करना पड़ता है। फिर धर्मतः प्राप्त हुए धनके द्वारा विधिपूर्वक यज्ञ करना पड़ता है। इसमें भी व्यर्थ जालासाय, व्यर्थ भोजन और व्यर्थ धन द्विजोंके पतनके कारण होते हैं, इसलिये उन्हें सदा संयमी रहना आवश्यक है। यदि वे सभी वस्तुओंमें विधिकर फलन न करें तो उन्हें दोष लागता है। यहाँतक कि भोजन और पान आदि भी उनकी इच्छाके अनुसार नहीं प्राप्त होते। वे समस्त कार्यमें परवन्त होते हैं। इस प्रकार विनीत भावसे महान् क्लेश उठाकर वे उत्तम लोकोंपर अधिकार प्राप्त करते हैं, परन्तु मन्त्रहीन पाक-यज्ञका अधिकारी नूक केवल द्विजोंकी सेवा करनेमात्रसे अपने लिये अभोष्ट पुण्यलोकोंको प्राप्त कर लेता है। इसीलिये सूर्य अन्य तपस्वी अपने अधिक धन्यवादका पात्र है। स्त्रियाँ क्यों धन्य हैं, इसका कारण कतलाया जाता है। पुरुषोंको अपने धर्मके विपरीत न चलकर सदा ही धनोपार्जन करना, उसे सुपात्रोंको देना और विधिपूर्वक यज्ञ करना आवश्यक

* कस्य माता पिता कस्य यदा कर्षात्मकः पुमान् । इति जोदाहरिष्यन्ति बभ्रुवाभुगता मताः ॥

(२२९। ५५)

† अन्ये कस्ती भवेद्विप्रास्त्यपक्षेत्तैर्भक्तकृतम् । तच्च मन्त्रेण स्त्रीशूद्री चन्द्री चान्यजिभोभक्त ॥ यत्कृते दत्तभिर्भैरवैरेतायां दाम्पत्येन तत् । द्वापरे तच्च पासेन महाराजेन तत्कस्ती ॥ तपसो ब्रह्मचर्यस्य जपदेष्टु फलं द्विजः । प्रप्रेषति पुरुषस्तेन कलिः शोभिवति पापितम् ॥ ध्यायन् कृते धनम् पत्नील्लेतायां द्वापरेऽक्षयम् । पश्यन्नेति सदाप्नोति कस्ती संकीर्त्य केशवम् ॥ धर्मोत्कण्ठस्योवाच प्राप्नोति पुरुषः कस्ती । स्वल्पकामेन धर्मज्ञस्तेन तुहोऽस्म्यहं कस्ती ॥

(२२९। ६१-६५)

है। धनके उपार्जन और संरक्षणमें महान् क्लेश उठाना पड़ता है तथा उसे उत्तम कार्यमें लगानेके लिये मनुष्योंको जो गहरे चिन्तन करनी पड़ती है, वह सबको विरहित है। वे तथा और भी बहुत-से क्लेश सहन करके पुरुष क्रमशः प्राजापत्य आदि शुभ लोक प्राप्त करते हैं; परंतु स्त्री मन, काष्ठी और क्रियाद्वारा केवल पतिकी सेवा करनेभ्रमसे उसके समान लोकोंपर अधिकार प्राप्त कर लेती है। वे महान् क्लेशके बिना ही उन्हीं लोकोंमें जाती हैं, जिनमें क्लेश-साध्य उपाय करके पुरुष जाता है; इसलिये तीसरी बार मैंने स्त्रियोंको साधुवाद दिया है। ब्राह्मणों! यह मैंने कलियुग आदिको ब्रह्माका कारण बताया है। अब तुमलोग जिस उद्देश्यसे यहाँ आये हो, उसे पूछो, मैं तुम्हारे इच्छानुसार उत्तर

भी वर्णन करूँगा। जो अपने सद्गुरुकी जलसे समस्त अपरुद्ध शक्तियों धो चुके हैं, उनके द्वारा थोड़े ही प्रयत्नसे कलियुगमें धर्मको सिद्ध हो जाती है। मुनिवरो! शूद्र केवल द्विजोंकी सेवामें तत्परा रहने तथा स्त्रियों पतिकी शूश्रूषा करनेमात्रसे अनायास ही पुण्यलोक प्राप्त कर लेती हैं। इसलिये इन तीनोंको ही मैंने परम धन्य माना है। द्विजातियोंको सत्य आदि तीनों गुणोंमें धर्मका साधन करते समय अधिक क्लेश उठाना पड़ता है, किंतु कलियुगमें मनुष्य थोड़ी ही तपस्यासे शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं। मुनिवरो! जो कलियुगमें धर्मका आचरण करते हैं, वे धन्य हैं।" धर्मज्ञो! तुम्हारा जो अभिष्ट विषय था, उसे मैंने यिन पूछे बता दिया; अब और क्या करें?



युगान्तकालकी अवस्थाका निरूपण

मुनियोंने कहा—धर्मज्ञ हमलोग धर्मकी लालसासे अब उस कलिकालके समीप आ पहुँचे हैं जब कि स्वल्प धर्मके द्वारा हम सुखपूर्वक उत्तम धर्मको प्राप्त कर सकते हैं। अब जिन विधियों (संस्कारों)-से धर्मका नश और क्रम एवं उद्देग करनेवाले युगान्तकालकी उपस्थिति जानी जाए, उसे बतानेकी कृपा करें।

व्यासजी बोले—ब्राह्मणों! युगान्तकालमें प्रजाकी रक्ष न करके केवल कर लेनेवाले राजा होंगे। वे अपनी ही रक्षामें लगे रहेंगे। उस समय प्रत्यक्ष शत्रियेतर राजा होंगे। ब्राह्मण शूद्रोंके यहाँ रहकर जीवन-निर्वाह करेंगे और शूद्र ब्राह्मणोंके आचारका

पालन करनेवाले होंगे, युगान्तकाल आनेपर श्रीश्रिय तथा काण्डपृष्ठ (अपने कुलका त्याग करके दूसरे कुलमें सम्मिलित हुए पुरुष) एक पंक्तिमें बैठकर ब्रह्मकर्मसे होन हविष्य भोजन करेंगे। मनुष्य अशिशु, स्वार्थपरायण, नीच तथा मदा और मांसके प्रेम्ते होकर भिक्ष-बत्तीके साथ व्यवधिचार करनेवाले होंगे। चोर राजाकी वृत्तिमें रहकर अपना काम करेंगे और राजा चोरोंका-ग्रह चर्ताव करेंगे। सेवकगण स्वामीके दिये बिना ही उसके धनका उपभोग करनेवाले होंगे। सचको धनकी ही अभिलाष होगी। साधु संतोंके बतावका कहीं भी आदर न होगा। पतित मनुष्यके प्रति किसीके

* अल्पैक प्रकल्पेन धर्मः सिद्धयति ये कन्तः। श्रीश्रयमुपायैः धर्मः कल्पितः।
शूद्रैश्च द्विजशूद्रादौ भूमिभक्तम्। तथा शरीरभक्त्या च पतितशूद्रैश्च हि॥
तत्कालतवाप्येतान्यम धनयुक्तं धनम्। धर्मयत्नार्थं कनरौ द्विजौ च कृतद्विपु॥
तथा स्वल्पेन तपसा सिद्धिं यम्यानि मानवाः। पञ्च धर्मैः करिष्यान् युगान्तं मुनिवन्द्यम्॥

मनमें घृणा न होगी। पुरुष नकटे, खुले केशवाले और कुरूप होंगे। स्त्रियाँ सोलह वर्षकी आयुके पहले ही बच्चाँकी माँ बन जायेंगी। युगान्तमें स्त्रियाँ धन लेकर पराये पुरुषोंसे समागम करेंगी। सभी द्विज साजसनेयी (बृहदारण्यक उपनिषद्के ज्ञाता) बनकर ब्रह्मकी बात करेंगे। शूद्र तो बका होंगे और ब्राह्मण चाण्डाल हो जायेंगे। शूद्र शठतापूर्ण बुद्धिसे जीविका चलाते हुए मुँड भुँडाकर गेरुआ वस्त्र पहने धर्मका उपदेष्टा करेंगे। युगान्तके समय शिकारी जीव अधिक होंगे। गौओंकी संख्या घटेगी और साधुओंके स्वभावमें परिवर्तन होगा। चाण्डाल तो गाँव या नगरके बीचमें बसेंगे और बीचमें रहनेवाले ऊँचे वर्णके लोग नगर या गाँवसे बाहर बसेंगे। सारी प्रजा लज्जाकी निराश्रयि दे उच्छृंखलतापूर्ण बर्तावसे नष्ट हो जायगी दो सालके बछड़े हलमें जोते जायेंगे और मेष कहीं बर्बाद करेगा। कहीं नहीं करेगा। शूरोरके कुलमें उत्पन्न हुए सब लोग पृथ्वीके मालिक होंगे। प्रजावर्गके सभी मानव निम्नश्रेणीके हो जायेंगे। प्रायः कोई मनुष्य धर्मका आचरण नहीं करेगा। अधिकांश भूमि ठसर हो जायगी। सभी मार्ग बटमारोंसे घिरे होंगे। सभी वर्णोंके लोग क्षाधिष्य-वृत्तिवाले होंगे। पिताके धनको उनके दिये बिना ही लड़के आपसमें बाँट लेंगे, उसे हड़प लेनेकी चेष्टा करेंगे और लोभ आदि कारणोंसे वे परस्परविरोधी बने रहेंगे। सुकुमारता, रूप और रक्तका नाश हो जानेसे नारियाँ कालोंसे ही सुसज्जित होंगी। उनमें वीर्यहीन गृहस्थकी रति होगी। युगान्तकालमें पत्नीके समान दूसरा कोई अनुरागका पात्र नहीं होगा। पुरुष थोड़े हों और स्त्रियाँ अधिक, यह युगान्तकालकी पहचान है। संसारमें याचक अधिक होंगे और एक दूसरेसे याचना करेंगे। किंतु कोई किसीको

कुछ न देगा। सब लोग राजदण्ड, चोरी और अग्निकाण्ड आदिसे क्षीण होकर नष्ट हो जायेंगे। खेतीमें फल नहीं लगेंगे। तरुण पुरुष बुढ़ाईकी तरह आलसी और अकर्मण्य होंगे। जो शील और सदाचारसे भ्रष्ट हैं, ऐसे लोग सुखी होंगे। वर्षाकालमें जांगसे आँधी चलेंगी और पानीके साथ कंकड़ पत्थरोंकी वर्षा होगी। युगान्तकालमें परलोक संदेहका विषय हो जायगा। क्षत्रिय वैश्योंकी भाँति धन धान्यके व्यापारसे जीविका चलायेंगे। युगान्तकालमें कोई किसीसे बन्धु-बान्धवका नाता नहीं निभायेंगा। प्रतिज्ञा और शपथका पालन नहीं होगा। प्रायः लोग ऋणको चुकाये बिना ही हड़प लेंगे। संगोंका हर्ष निष्फल और क्रोध सफल होगा। दूधकं लिये घरमें बकरियाँ बाँधी जायेंगी। इसी प्रकार जिसका शास्त्रमें कहीं विधान नहीं है, ऐसे यज्ञका अनुष्ठान होगा। मनुष्य अपनेको पण्डित समझेंगे और बिना प्रमाणके ही सब कार्य करेंगे। जारज, क्रूर कर्म करनेवाले और शराबी भी ब्रह्मसादी होंगे और अभयध-यज्ञ करेंगे। अभय-भक्षण करनेवाले ब्राह्मण धनकी तुष्णासे यज्ञके अनधिकारियोंसे भी यज्ञ करायेंगे कोई भी अध्ययन नहीं करेगा। तारोंकी ज्योति फीकी पड़ जायगी, दसों दिशाएँ विपरीत होंगी। पुत्र पिताको और बहुएँ सासको अपना काम करनेके लिये भेजेंगी। इस प्रकार युगान्तकालमें पुरुष और स्त्रियाँ ऐसा ही जीवन व्यतीत करेंगी। द्विजगण अग्निहोत्र और अग्रासन* किये बिना ही भोजन कर लेंगे। भिक्षा दिये बिना और बलिर्वैश्वदेव किये बिना ही लोग स्वयं भोजन करेंगे। स्त्रियाँ सोये हुए पतियोंको धोखा देकर अन्य पुरुषोंके पास चली जायेंगी।

मुनियोंने कहा—महर्षे! इस प्रकार धर्मका नाश होनेपर मनुष्य कहीं जायेंगे? वे कौन-सा

* बलिर्वैश्वदेव करके अतिथि आदिके लिये पहले ले जा अन्न निकाल दिया जाता है, वह 'अग्रासन' कहलाता है।

कर्म और कैसी चेष्टा करेंगे? वे किस प्रमाणको मानेंगे? उनकी कितनी आयु होगी? और किस सीमातक पहुँचकर वे सत्ययुग प्राप्त करेंगे?

ब्रह्मसजी बोले—मुनिवरों, तदनन्तर धर्मका नाश होनेसे समस्त ब्रह्म गुणहीन होगी। शीलका नाश हो जानेसे सबकी आयु घट जायगी। आयुकी हानिसे बलकी भी हानि होगी। बलकी हानिसे शरीरका रंग बदल जायगा। फिर शरीरमें रोगवृत्ति पैदा होगी। उससे निर्वेद (वैराग्य) होगा। निर्वेदसे आत्मबोध होगा और आत्मबोधसे धर्मसीला आयेगी। इस प्रकार अन्तिम सीमापर पहुँचकर लोगोंको सत्ययुगकी प्राप्ति होगी। कुछ लोग कोई उद्देश्य लेकर धर्मका आचरण करेंगे, कोई मध्यस्थ रहेंगे, कोई बहुत थोड़ी मात्रामें धर्मका आचरण करेंगे और कोई-कोई धर्मके प्रति केवल वैतुहल रखेंगे। कुछ लोग प्रत्यक्ष और अनुमानको ही प्रमाण मानेंगे। दूसरे लोग सबको अप्रमाण ही मानेंगे। कोई नास्तिकतापरायण, कोई धर्मका लोप करनेवाले और कोई द्विज अपनेको पण्डित माननेवाले होंगे। युगान्तकालके मनुष्य वर्तमानपर ही विश्वास करनेवाले, मत्स्वज्ञानसे रहित, दम्भी और अज्ञानी होंगे। इस प्रकार धर्मकी ढँवाडोल परिस्थितिमें श्रेष्ठ पुरुष दान और शीलरक्षामें तत्पर हो शुभ कर्मोंका अनुष्ठान करेंगे। जब जगत्के मनुष्य सर्वभक्षी हो जायें, स्वयं ही आत्मरक्षके लिये विवश हो—राज्य अदिके द्वारा उनकी रक्षा असम्भव हो जाय, जब उनमें निर्दयता और निर्लज्जता आ जाय, तब उसे कषायका लक्षण समझना चाहिये: (क्रोध-लेश आदिके विकारको कषाय कहते हैं। युगान्तकालमें वह परकाष्ठाको पहुँच जाता है।) मुनिवरों, जब छोटे बच्चोंके लोग ब्राह्मणोंकी सनतन वृत्तिक आश्रय लेने लगें, तब वह भी कषायका ही लक्षण है। युगान्तकालमें बड़े-बड़े धनकर युद्ध, बड़ी

भारी वर्षा, प्रचण्ड आँधों और जोरोंकी गर्मी पड़ेगी। यह सब कषायका लक्षण है। लोग खेतों काट लेंगे, कपड़े चुरा लेंगे, पानी पीनेका सामान और पेटिबो भी चुरा ले जायेंगे। कितने ही चोर ऐसे होंगे, जो चोरकी सम्पत्तिका भी अपहरण करेंगे। हत्यारोंकी भी हत्या करनेवाले लोग होंगे। चोरोंके द्वारा चोरोंका शरा हो जायपर जनताका कल्याण होगा। युगान्तकालमें मर्त्यलोकके मनुष्योंकी आयु अधिक-से-अधिक दोस वर्षकी होगी। लोग दुर्बल, विषय-सेवनके कारण क्रूर तथा बुढ़ाये और लोकसे प्रसन्न होंगे। उस समय रोगोंके कारण उनको इन्द्रिय क्षीण हो जायगी। फिर धीरे-धीरे लोग साधु पुरुषोंकी सेवा, दान, सत्य एवं प्राणियोंकी रक्षामें तत्पर होंगे। इससे धर्मके एक चरणकी स्थापना होगी। उस धर्मसे लोगोंको कल्याणकी प्राप्ति होगी। लोगोंके गुणोंमें परिवर्तन होगा और धर्मसे लाभ होनेका अनुमान दृढ़ होता जायगा। फिर श्रेष्ठ क्या है, इस बातपर विचार करनेसे धर्म ही श्रेष्ठ दिखायी देगा। जिस प्रकार क्रमशः धर्मकी हानि हुई थी, उसी प्रकार धीरे-धीरे प्रजा धर्मकी वृद्धिको प्राप्त होगी। इस प्रकार धर्मको पूर्णरूपसे अपना लेनेपर सब लोग सत्ययुग देखेंगे। सत्ययुगमें सबका व्यवहार अच्छा होता है और युगान्तकालमें साधु-वृत्तिकी हानि बतायी जाती है। ऋषियोंने प्रत्येक युगमें देश-कालकी अवस्थाके अनुसार पुरुषोंकी स्थिति देखकर उनके अनुरूप आशीर्वाद कहा है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके साधन, देवताओंकी प्रतिक्रिया, पुण्य एवं शुभ आशीर्वाद तथा धायु—ये प्रत्येक युगमें अलग-अलग होते हैं। युगोंके परिवर्तन भी चिरकालसे चलते रहते हैं। उत्पत्ति और संहारके द्वारा नित्य परिवर्तनशील यह संसार कभी क्षणभरके लिये भी स्थिर नहीं रहता।

हैं। इसके बाद प्राकृत प्रलयका वर्णन करेगा। एक सहस्र चतुर्युग बीजनेपर यह भूतल प्रायः क्षीण हो जाता है। उस समय सौ वर्षोंतक अत्यन्त धोर अनावृष्टि होती है—वर्षाकर अत्यन्त अल्प हो जाता है। मुनिवरो! उस अनावृष्टिके कारण अल्प शक्तिवाले अनेकानेक पार्थिव जीव अत्यन्त पीड़ित होनेसे नष्ट हो जाते हैं। तदनन्तर रुद्ररूपधारी अविनाशी भगवान् विष्णु जगत्का संहार करनेके लिये सम्पूर्ण प्रजाको अपनेमें लीन कर लेनेका यत्न करते हैं। मुनिवरो! उस समय भगवान् विष्णु सूर्यकी साक्षों किरणोंमें स्थित होकर पृथ्वीका सम्पूर्ण जल सोख लेते हैं। सम्पूर्ण प्राणियों और पृथ्वीमें स्थित समस्त जलको सोखकर वे समूची धसुधाको सुखा डराते हैं। समुद्र, नदी, पर्वतीय नदी, झरने तथा पातालमें जो जल होता है, वह सब वे सुखा देते हैं। तत्पश्चात् भगवान्के प्रभावसे और सब जगहके जलका शोषण करनेसे परिपुष्ट हुई वे सूर्यकी भाव रश्मियाँ मात सूर्योके रूपमें प्रकट होती हैं। उस समय ऊपर-नीचे सब ओर जाज्वल्यमान होकर वे मातों सूर्य पाताललोकसहित सम्पूर्ण त्रिलोकीको जला डराते हैं। उन तेजस्वी सूर्योकी किरणोंसे जलती हुई त्रिलोकी पर्वत, नदी और समुद्र आदिके सहित नीरस हो जाती है। तीनों लोकोंके जल और वृक्ष दग्ध हो जानेके कारण यह पृथ्वी कछुएकी पीठकी भाँति दिखायी देती है।

तदनन्तर भूतसंग्रह संहार करनेवाले कस्तूरिन्द्र-रूपधारी श्रीहरि शेषनागके श्वसजन्त तपसे नीचेके समस्त पातालोंको जलान आरम्भ करते हैं। मातों पातालोंको भस्म कर डालनेके पश्चात् वह प्रचण्ड अग्नि भूमिपर पहुँचकर सम्पूर्ण भूमण्डलको भी भस्म कर डालती है। फिर भुवर्लोक और स्वर्लोकको जलाकर ज्वालामालाओंके मडान् आवर्तके रूपमें वह दक्षिण अग्नि सब ओर चक्कर लगाने लगती है। उस

समय प्रचण्ड तपटोंसे चिरी हुई यह सारी त्रिलोकी जलते हुए कड़ाह-सी प्रतीत होती है। तत्पश्चात् भुवर्लोक और स्वर्लोकके निवासी अत्यन्त क्रोधसे संतप्त एवं क्षीणशक्ति होकर कहीं रहनेके स्थिरे स्थान न होनेसे महर्लोकमें चले जाते हैं। वहाँके लोग भी उस महान् तापसे तप्त हो वहाँसे हटकर जनस्लोकमें प्रवेश करते हैं। मुनिवरो! इसके बाद रुद्ररूपधारी श्रीजनार्दन सम्पूर्ण जगत्को दग्ध करके अपने मुखके निष्वाससे मेघोंको प्रकट करते हैं। उस समय आकाशमें धोर संवर्तक मेघ उभड़ आते हैं, जो बड़े बड़े गजराजोंके समान प्रतीत होते हैं। वे बिजलीकी गड़गड़ाहटके साथ भयंकर गर्जना करते हैं। उनका आकाश विशाल होता है, अपनी विकट गर्जनासे वे सम्पूर्ण आकाशको व्याप्त कर लेते हैं और मूसलाधार पानी बरसाकर त्रिलोकीके भीतर फैले हुए उस अत्यन्त भयंकर अग्निको पूर्णरूपसे बुझा देते हैं। रथकी घुरीके समान स्थूल घाराओंकी वर्षा करते हुए सम्पूर्ण जगत्को जलसे आप्लावित कर देते हैं। सम्पूर्ण भूतलको जलमग्न करनेके पश्चात् वे भुवर्लोकको भी बुझा देते हैं। उस समय संसारमें सब ओर अन्धकार छा जाता है। चर और अचर सब नष्ट हो जाते हैं। उस अवस्थामें वे महान् संवर्तक मेघ सौ वर्षोंसे अधिक कालतक वर्षा करते रहते हैं।

द्विजवरो! जब सारा जल सप्तर्षियोंके स्थानतक पहुँचकर स्थिर होता है, उस समय सम्पूर्ण त्रिलोकी एकजर्मजमग्न हो जाती है। तदनन्तर भगवान् विष्णुके निःश्वाससे प्रकट हुई वायु उन मेघोंको छिन्न-भिन्न कर देती है और सौ वर्षोंसे अधिक कालतक बहती रहती है। फिर विश्वके आदिकारण, अनादि, अचिन्त्य एवं सर्वभूतमय भूतभवन भगवान् सम्पूर्ण वायुको पीकर एकाग्रवक्त्र जलमें शेषनागको शय्यापर आसीन होते हैं। वे आदिकर्ता भगवान् श्रीहरि ब्रह्माजीका रूप धारण

करके शयन करते हैं। उस समय जन्मलोकके सनकादि सिद्ध उनकी स्तुति करते हैं और ब्रह्मलोकके मुमुक्षु उनकी चिन्तन करते रहते हैं। वे परमेश्वर अपनी मयामयी दिव्य योगनिद्राका आश्रय ले अपने ही वासुदेव नामक स्वरूपका चिन्तन करते हैं। विप्रवरों! यह नैमित्तिक नामका प्रलय है। इसमें निमित्त यही है कि उस समय ब्रह्मरूपधारी श्रीहरि शयन करते हैं। जबतक सर्वात्मा श्रीहरि जागते हैं, तबतक सारा जगत् सचेष्ट रहता है और जब वे मयामयी शय्यापर शयन करते हैं, इस समय सारा जगत् विलीन हो जाता है। ब्रह्माजीका जो सहस्र चतुर्गुणका दिन होता है, एकार्णवमें सम्पन्न करनेपर उनकी डलनी ही बड़ी रात्रि होती है। रात्रिके बाद आगनेपर ब्रह्मरूपधारी अजन्मा श्रीविष्णु पुनः सृष्टि करते हैं, यह बात मैं पहले बतला चुका हूँ। यह कल्पका संहार, अन्तर प्रलय अथवा नैमित्तिक प्रलय कहा गया अथ प्राकृत प्रलयका वर्णन सुनो।

अनावृष्टि और अग्नि आदिके द्वारा जब सब प्राणियोंका संहार हो जाता है और सम्पूर्ण लोक तथा समस्त पाताल नष्ट हो जाते हैं उस समय भगवान् विष्णुकी इच्छासे प्राकृत प्रलयका अवस्तर उपस्थित होनेपर महत्तत्त्वसे लेकर विशेषपर्यन्त सम्पूर्ण विकारोंका क्षय हो जाता है। पहले भूमिके गन्ध आदि गुणको जल अपनेमें लीन कर लेता है। गन्ध नष्ट हो जानेसे पृथ्वीका लय हो जाता है। गन्धनन्दाप्राका नाश हो जानेके कारण सारी पृथ्वी जलरूपमें परिणत हो जाती है। फिर तो जल बड़े वेगसे धीरे शब्द करते हुए बढ़ने लगता है और सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त कर लेता है। वह कहीं तो स्थिर रहता है और कहीं वेगसे बहता रहता है। इस प्रकार सम्पूर्ण लोक सब ओरसे तरङ्गमालाओंसे युक्त जल-गरिह्वात व्याप्त हो जाते हैं। तत्पश्चात् जलके गुण रसको तेज पी लेता है। रसकन्माप्राका नाश होनेसे जल अत्यन्त

तप्त होकर सूख जाता है। रसका अपहरण होनेसे सम्पूर्ण जल तेजःस्वरूप हो जाता है। इस प्रकार जब तेजसे व्याप्त होकर जल अग्निवी-सी अवस्थामें पहुँच जाता है, तब अग्नितात्त्व सब ओर फैलकर उस जलको सोख लेता है। उस समय सम्पूर्ण जगत्में धीरे-धीरे आगकी लपटें फैल जाती हैं। जब सब जगत् ऊपर-नीचे और इधर-उधर अग्निवी ज्वालामय हो जाता है, तब अग्निके प्रकाशक गुण रूपको वायुतात्त्व अपनेमें लीन कर लेता है। सबके कारणस्वरूप वायुमें अब अग्निका प्रकाशक तत्त्व—रूप विलीन हो जाता है, तब रूपतन्मात्रके नष्ट हो जानेसे अग्नितात्त्व रूपहीन हो स्वयं ही शान्त हो जाता है। फिर वायु प्रचण्ड गतिसे चलने लगती है। तेजस्तात्त्वके वायुमें स्थित हो जानेसे जगत्में प्रकाश नहीं रह जाता। तब वायुतात्त्व अपने ठंडक और लयस्थान आकाशका आश्रय ले ऊपर-नीचे, अगल-बगल एवं दसों दिशाओंमें बड़े वेगसे बहने लगता है। तदनन्तर वायुके भी गुण स्पर्शको आकाश प्रस्र लेता है। इससे जन्म शान्त हो जाती है और केवल अक्षरणशून्य आकाश रह जाता है। वह रूप, रस, स्पर्श, गन्ध तथा आकारसे रहित परम धाम् आकाश सबको व्याप्त करके प्रकाशित होता है। आकाश सब ओरसे गोल एवं छत्रस्वरूप है। शब्द उसका गुण है। वह रुन्दतन्माप्रायुक्त आकाश सम्पूर्ण विश्वको आवृत किये रहता है। तत्पश्चात् आकाशको भूतदि (तामस अहंकार), भूतादिको महत्तत्त्व और इन सबके सहित महत्तत्त्वके मूल प्रकृति अपनेमें लीन कर लेती है। द्विजवरों! न्यूनता और अधिकतासे रहित जो सत्त्वादि तीनों गुणोंकी साम्यावस्था है, उसीको प्रकृति कहते हैं। यही प्रधान भी कहलाती है। प्रधान ही सम्पूर्ण सृष्टिका प्रधान कारण है। ब्राह्मण्ये! इस प्रकार यह सम्पूर्ण प्रकृति व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणी है। इसमें जो व्यक्त स्वरूप है, वह अव्यक्तमें लीन होता है।

द्विजवरो! प्रकृतिसे भिन्न जो एक सिद्ध, अक्षर, नित्य तथा सर्वव्यापी पुरुष है, वह भी सर्वभूतमय परमात्माका ही अंश है। जो सत्तामात्रस्वरूप, ज्ञेय, ज्ञानात्मा और देहात्मसंघातसे परे है, जिसमें नाम और जाति आदिको समस्त कल्पनाएँ विलीन हो जाती हैं, वही परब्रह्म, परमधाम, परमात्मा तथा परमेश्वर है। उसीको विष्णु कहते हैं भगवान् विष्णु ही इस सम्पूर्ण विश्वके रूपमें स्थित हैं। उनको प्राप्त हो जानेपर मनुष्य फिर इस संसारमें नहीं लौटता। मैंने जिस व्यकाव्यक्त रूपिणी प्रकृतिका वर्णन किया है, वह तथा पुरुष दोनों ही परमात्मामें लीन होते हैं। वह परमात्मा सबका आधार तथा परमेश्वर है। वेदों और वेदान्तोंमें विष्णुके नामसे उसीकी महिमाका मान किया जाता है। प्रवृत्ति (कर्मयोग) और निवृत्ति (सांख्ययोग)-के भेदसे वैदिक कर्म दो प्रकारके हैं। उन दोनों ही कर्मोंद्वारा मनुष्य यज्ञस्वरूप भगवान्की आराधना करते हैं। प्रकृतिव्यक्ति अनुयायी पुरुष ऋक्, यजुः और सामवेदोक्त मागोंसे यहोंके स्वामी यज्ञपुरुष भगवान् पुरुषोत्तमका

यजन करते हैं तथा निवृत्ति एवं योगमार्गके पथिक ज्ञानयोगके द्वारा ज्ञानात्मा, ज्ञानमूर्ति एवं मुक्तिफलदायक भगवान् विष्णुकी आराधना करते हैं। इन्स, दीर्घ और प्लुत स्वरोंके द्वारा जिस किसी वस्तुका प्रतिपादन किया जाता है और जो वाणीका विषय नहीं है, वह सब अधिनाशी भगवान् विष्णु ही हैं। वे ही व्यक्त, वे ही अव्यक्त, वे ही अव्यय पुरुष तथा वे ही परम्यत्मा, विश्वात्मा और विश्वरूपधारी श्रीहरि हैं। वह व्यकाव्यक्तस्वरूपिणी प्रकृति तथा पुरुष भी ठन्हीं अव्यक्त परमात्मामें लीन होते हैं। ब्राह्मणे। मैंने जो परार्धका काल बतलाया है, वह सर्वेश्वर भगवान् विष्णुका दिन कहलाता है। व्यक्त जगत्के अव्यक्त प्रकृतिमें और प्रकृतिके पुरुषमें लीन होनेपर फिर उतने ही कालकी भगवान् विष्णुकी रात्रि होती है। तपोधने। वास्तवमें नित्यस्वरूप परमात्मा श्रीविष्णुका न तो कोई दिन है और न रात्रि ही, तथापि केवल आरोपसे उनके विषयमें ऐसा कहा जाता है। पुनिवरो! इस प्रकार मैंने तुमसे प्राकृत प्रलयका वर्णन किया



आत्यन्तिक प्रलयका निरूपण, आध्यात्मिक आदि त्रिविध तापोंका वर्णन और भगवत्तत्त्वकी व्याख्या

व्यासजी कहते हैं—ब्राह्मणो! आध्यात्मिक आदि तीनों तापोंको जानकर ज्ञान और वैराग्य उत्पन्न होनेपर विद्वान् आत्यन्तिक सयको प्राप्त होते हैं। आध्यात्मिक तापके भी दो भेद हैं—शरीरिक और मानसिक। शारीरिक तापके बहुत-से भेद हैं उनका वर्णन सुनो। शिरोरोग, प्रक्षिप्तय (पीनस), ज्वर, सूत्र, भगंदर, गुल्म (पेटकी गाँठ) अर्श (बवासीर), श्वयथु (सूजन) कृमि (दमा), छदि (चमन) आदि तब नेत्ररोग, अतीसार (पेचिश) और कुष्ठ (कोढ़) आदि शारीरिक

कहोंके भेदसे दैहिक तापके अनेक भेद हो जाते हैं। अब मानस तापका वर्णन सुनो। काम, क्रोध, मय, द्वेष, स्नेह, मोह, विषाद (चिन्ता), शोक, असूया (दोषदृष्टि), अपमान, ईर्ष्या, यात्सर्य तथा पराभव आदिके भेदसे मानस तापके अनेक रूप हैं। ये सभी प्रकारके ताप आध्यात्मिक माने गये हैं। मृग, पक्षी, मनुष्य आदि तथा पिशाच, सर्प, राक्षस और बिच्छू आदिसे मनुष्योंको जो पीड़ा होती है, उसका नाम आधिभौतिक ताप है। शैत, उष्ण, वायु, वर्षा, जल और विद्युत् आदिसे

होनेवाले संतानको आधिदैविक कहते हैं। मुनिवरो! इनके सिवा गर्भ, जन्म, बुढ़ापे, अज्ञान, मृत्यु और नरकसे प्राप्त होनेवाले दुःखके भी सहस्रों भेद हैं।

अत्यन्त मलसे भरे हुए गर्भाशयमें सुकुमार शरीरवाला जीव शिथिलसे लिपटा हुआ रहता है। उसकी पीठ और ग्रीवाकी हड्डियाँ मुड़ी होती हैं। माताके छाये हुए अत्यन्त तापदायक और अधिक खट्टे, कड़वे, चरपरे, गर्म और खारे पदार्थोंसे कष्ट पाकर उसकी पीड़ा बहुत बढ़ जाती है। वह अपने अङ्गोंको फैलाने या सिकोड़नेमें समर्थ नहीं होता। यस और भ्रूके महान् पङ्कमें उसे सोना पड़ता है, जिससे उसके सभी अङ्गोंमें पीड़ा होती है। चेतनायुक्त होनेपर भी वह खुलकर साँस नहीं ले सकता। अपने कर्माँके बन्धनमें बँधा हुआ वह जीव सैकड़ों जन्मोंका स्मरण करता हुआ बड़े दुःखसे गर्भमें रहता है। जन्मके समय उसका मुख मल-मूत्र, रक्त और जीव आदिमें लिपटा रहता है। प्राजापत्य नामक वायुसे उसके हड्डियोंके प्रत्येक जोड़में बड़ी पीड़ा होती है। प्रकृत प्रसूति-वायु उसके मुँहको नीचेको ओर कन देती है और वह गर्भस्थ जीव अत्यन्त आतुर होकर बड़े क्लेशके साथ माताके उदरसे बाहर निकल पाता है। मुनिवरो! जन्म लेनेके पश्चात् बाह्य वायुका स्पर्श होनेसे अत्यन्त मूर्च्छाको प्राप्त होकर वह बालक अपनी सुध-बुध खो बैठता है। दुर्गन्धयुक्त फोड़ेसे पृथ्वीपर गिरे हुए कीड़ेकी भाँति वह छटपटाता है। उस समय उसे ऐसी पीड़ा होती है, मानो उसके सारे अङ्गोंमें काँटि चुभो दिये गये हों अथवा वह आरसे चीरा जा रहा हो। उसे अपने अङ्गोंको खूबलानेकी भी शक्ति नहीं रहती। वह करछट बदलनेमें भी असमर्थ होता है। स्नान-पान आदि आहार भी उसे दूसरोंकी इच्छासे ही प्राप्त होता है। वह अपवित्र जिलौनेपर पड़ा रहता है। उस समय उसे खटमल और डाँस आदि काटते हैं तो भी वह उन्हें हटानेमें समर्थ नहीं होता।

इस प्रकार जन्मके समय उसे अनेक दुःख उठाने पड़ते हैं। जन्मके बाद भी वह बाल्यावस्थामें आधिपीतिक आदि अनेक दुःखोंका भागी होता है। अज्ञान-बन्धनसे आच्छादित मूढ़ अन्तःकरणवाला मनुष्य वह नहीं जानता कि 'मैं कहाँसे आया हूँ? कौन हूँ? कहाँ जाऊँगा? क्या मेरा स्वरूप है? मैं किस बन्धनसे बँधा हुआ हूँ? क्या इस बन्धनका कुछ कारण भी है या यह अकारण ही प्राप्त हुआ है? मुझे क्या करना चाहिये? और क्या नहीं करना चाहिये? मेरे लिये क्या कहना और क्या न कहना उचित है? मेरे लिये क्या धर्म है? और क्या अधर्म? किसके प्रति कैसा बर्ताव करना उचित है? क्या कर्तव्य है और क्या अकर्तव्य? तथा कौन-सा कार्य गुणयुक्त है और कौन-सा दोषयुक्त?' इस प्रकार पशुके समान मूढ़ तथा शिशुनोदरपरायण मनुष्योंको अज्ञानजन्त महान् दुःख प्राप्त होते हैं।

बाह्यको! अज्ञान तामसिक भ्रम है, अतः अज्ञानी पुरुषोंकी तामसिक कर्माँके अनुष्ठानमें ही प्रवृत्ति होती है। इससे शास्त्रविहित कर्माँका लोप हो जाता है। महर्षियोंने शास्त्रविहित कर्माँके लोपका फल नरक बतलाया है। अतः अज्ञानी पुरुषोंको इस लोक और परलोकमें भारी दुःख भोगना पड़ता है। बुद्धावस्थासे शरीरके जर्जर हो जानेपर पुरुषका प्रत्येक अङ्ग शिथिल हो जाता है। उसके दाँत कमजोर होकर गिर जाते हैं। शरीरमें श्रियाँ पड़ जाती हैं और सब ओर नस-नाडियाँ दिखायी देने लगती हैं। नेत्रोंकी दूरस्थ वस्तुओंको देखनेकी शक्ति नष्ट हो जाती है। नेत्रोंकी फुल्लियाँ ग्लेसकोंमें समा जाती हैं। नासिकोंके छिद्रोंमें बहुत-से रोएँ जमकर बाहर निकल आते हैं। शरीर काँपने लगता है। सब हड्डियाँ दिखायी देने लगती हैं। मेरुदण्ड झुक जाता है। जठराग्नि मन्द पड़ जानेके कारण उसका आहार कम हो जाता है। उससे कम-काज भी कम ही हो पाते

हैं घूमने-फिरने, उठने-बैठने और सोने आदिको चेष्टा भी बड़ी कठिनाईसे होती है। कबों और नेत्रोंकी शक्ति मन्द पड़ जाती है, सदा लार बहते रहनेसे मुख मलिन हो जाता है। समस्त इन्द्रियाँ कायके बाहर हो जाती हैं। मनुष्य मृत्युके निकट पहुँच जाता है। उसको उसी समय अनुभव किये हुए सभी पदार्थोंकी स्मृति नहीं रहती। एक बार भी कोई बात कहनेमें उसको बड़ा भारी परिश्रम होता है वह दमे और खाँसी आदिके कहसे रातभर जागता रहता है। बृद्ध पुरुषको दूसरा ही उतावता और दूसरा ही सुलाभा है। उसे अपने सेवक, पुत्र और स्त्रोके द्वारा भी अपमानित होना पड़ता है। उसका समस्त शौचाचार नष्ट हो जाता है। फिर भी आहार-विहारके लिये वह लालायित रहता है। उसके परिजन भी उसकी हींसी उड़ाते हैं। सभी बन्धु-बान्धव इसकी ओरसे विरक्त रहते हैं। अपनी युवावस्थाकी चेष्टाओंको वह इस प्रकार स्मरण करता है, माने वे दूसरे जन्ममें अनुभव की हुई बातें हों, उनके स्मरणसे अत्यन्त संतप्त होकर वह लंबी साँसें लेता है। इस प्रकार बृद्धावस्थामें अनेक दुःखोंको भोगकर वह मृत्युके समय जिन क्लेशोंका अनुभव करता है, उनका वर्णन सुनो।

मृत्युकालमें मनुष्यका कण्ठ और हाथ-पैर शिथिल हो जाते हैं। उसका शरीर कम्पता रहता है। उसे बार-बार मूच्छा होती है और कभी थोड़ी-सी घेतना भी आ जाती है। उस समय वह अपने सुवर्ण, धान्य, पुत्र, पत्नी, सेवक और गृह आदिके लिये ममतासे अत्यन्त व्यत्कुल होकर सोचता है—'हाय! मेरे बिना इनको कैसी दशा होगी।' पर्यं विदीर्ण करनेवाले महान् रोग भयंकर आरे तथा धमराजके घोर काणोंकी भीति उसके अस्थि-बन्धनोंको काटे डालते हैं। उसको औरोंकी पुतासियाँ घूमने लगती हैं, वह बार-बार हाथ-पैर पटकता है; उसके तानू, आँठ और

कण्ठ सूखने लगते हैं; गल्ल घुरघुराता है। उदान वायुसे पीड़ित होकर कण्ठ रूँध जाता है। उस अवस्थामें मनुष्य महान् ताप, भूख और प्याससे व्यथित हो यमदूर्तोंद्वारा दी हुई पीड़ा सहकर बड़े कहसे प्राणत्याग करता है। फिर क्लेशसे ही उसे यातनादेहकी प्राप्ति होती है। ये तथा और भी बहुत-से भयंकर दुःख मृत्युके समय मनुष्योंको भोगने पड़ते हैं।

विप्रचरो! नरकमें गये हुए जीवोंको जो पापजन्म दुःख भोगने पड़ते हैं उनको कोई गणना नहीं है। केवल नरकमें ही दुःखकी परम्परा हो, ऐसी बात नहीं है; स्वर्गमें भी जिसके पुण्यका भोग क्षीण हो रहा है और जो पापके फलभोगसे भयभीत है, उसे शान्ति नहीं मिलती। जीव पुन-पुनः गर्भमें जाता और जन्म लेता है। कभी वह गर्भमें ही मर हो जाता और कभी जन्म लेनेके समय मृत्युको प्राप्त होता है। कभी जन्मते ही, कभी वास्थावस्थामें और कभी युवावस्थामें ही उसकी मृत्यु हो जाती है। विप्रगण! मनुष्योंके लिये जो-जो वस्तु अत्यन्त प्रीतिकारक होती है, वही-वही उसके लिये दुःखरूपी वृक्षका बीज बन जाती है। स्त्री, पुत्र, मित्र आदि और गृह क्षेत्र तथा धन आदिसे पुरुषोंको उतना अधिक सुख नहीं मिलता, जितना कि दुःख उठाना पड़ता है। इस प्रकार सांसारिक दुःखरूपी सूर्यके तापसे संतप्त चित्तवाले मानवोंको मोक्षरूपी वृक्षकी शीतल छायाके सिवा अन्यत्र कहाँ सुख है। अतः विद्वानोंने गर्भ, जन्म और बुढ़ापा आदि स्थानोंमें होनेवाले आध्यात्मिक आदि विविध दुःखसमूहोंको दूर करनेके लिये एकमात्र भगवत्प्राप्तिको ही अमोघ ओषधि बताया है। उससे बढ़कर आह्लादजनक और सुखस्वरूप दूसरी कोई ओषधि नहीं है। अतः बुद्धिमान् पुरुषोंको भगवत्प्राप्तिके लिये सदा ही यत्न करना चाहिये। द्विजचरो! भगवत्प्राप्तिके

दो साधन कहे गये हैं—ज्ञान और कर्म। ज्ञान भी दो प्रकारका है—शस्त्र-जन्य और विवेक-जन्य। शस्त्र-जन्य ज्ञान शब्दब्रह्मका और विवेक-जन्य ज्ञान परब्रह्मका स्वरूप है। अज्ञान गाढ़ अन्धकारके समान है। उसको नष्ट करनेके लिये शस्त्र-जन्य ज्ञान दीपकके समान और विवेक-जन्य ज्ञान साक्षात् सूर्यके सदृश माना गया है।

मुनिवरो! मनुजोंने वेदार्थका स्मरण करके इसके विषयमें जो विचार प्रकट किया है, उसे बताता हूँ सुनो। ब्रह्मके दो स्वरूप जानने योग्य हैं—शब्दब्रह्म और परब्रह्म। जो शब्दब्रह्ममें पारंगत है, वह परब्रह्मको प्राप्त कर लेता है। अथर्ववेदकी श्रुति कहती है कि परा और अपरा—ये दो विधाएँ जानने योग्य हैं। परा विद्यासे अक्षरब्रह्मकी प्राप्ति होती है तथा आगेवादि शास्त्र ही अपरा विद्या हैं। वह जो अव्यक्त, जराबन्धासे रहित, अप्रियन्त्य, अजन्मा, अभिनाशी, अनिर्देश्य, अरूप, हस्त-पादादिसे रहित, सर्वव्यापक, निम्न, सब भूतोंका कारण तथा स्वयं कारणरहित है, जिससे सम्पूर्ण व्याप्य वस्तु व्याप्त है, जिसे ज्ञानी पुरुष ही ज्ञानदृष्टिसे देखते हैं, वही परब्रह्म और वही परमधाम है। मोक्षकी अभिलाषा रखनेवाले पुरुषोंको उसीका धिन्तन करना चाहिये। वही भगवान् दिष्णुका वेदवाक्योंद्वारा प्रतिपादित परम पद है। जो सम्पूर्ण भूतोंकी उत्पत्ति, प्रलय, आगमन, गमन तथा विद्या और अविद्याको जानता है, उसीको 'भगवान्' कहना चाहिये। स्थापने योग्य त्रिविध गुण आदिको छोड़कर सभद्र ज्ञान, समग्र शक्ति, सभद्र बल, समग्र ऐश्वर्य, समग्र वीर्य और समग्र तेज ही 'भगवत्' शब्दके वाच्यार्थ हैं। इस दृष्टिसे श्रीविष्णु ही

'भगवान्' हैं। उन परमात्मा श्रीहरिमें सम्पूर्ण भूत निवास करते हैं तथा वे भी सर्वात्म्यरूपसे सब भूतोंमें स्थित हैं। अतः वे 'वासुदेव' कहे गये हैं। पूर्वकालमें महर्षियोंके पूछनेपर स्वर्ग प्रजापति ब्रह्माने अनन्त भगवान् वासुदेवके नामकी यह वार्था व्याख्या बतलायी थी। सम्पूर्ण जगत्के धाता और विधाता भगवान् श्रीहरि सम्पूर्ण भूतोंमें वास करते हैं और सम्पूर्ण भूत उनमें वास करते हैं; इसलिये उनका नाम 'वासुदेव' है। वे परमात्मा निर्गुण, समस्त आवरणोंसे परे और सबके आत्मा हैं। सम्पूर्ण भूतोंकी, प्रकृति तथा उसके गुण और दोषोंकी पहुँचके बाहर हैं। सम्पूर्ण भुवनोंके बीचमें जो कुछ भी स्थित है, वह सब उनके द्वारा व्याप्त है। समस्त कल्याणमय गुण उनके स्वरूप हैं। उन्होंने अपनी मायाशक्तिके लेशमात्रसे सम्पूर्ण प्राणियोंकी सृष्टि की है। वे अपनी इच्छासे मनके अनुरूप अनेक शरीर धारण करते हैं तथा उनकी द्वारा सम्पूर्ण जगत्के कल्याणका साधन होता है। वे तेज, बल और ऐश्वर्यके महान् भंडार हैं। पराक्रम और शक्ति आदि गुणोंकी एकमात्र राशि हैं तथा परसे भी परे हैं। उन परमेश्वरमें सम्पूर्ण क्लेश आदिका अभाव है। वे ईश्वर ही व्यष्टि और समष्टिरूप हैं। वे ही अव्यक्त और व्यक्तस्वरूप हैं। सबके ईश्वर, सबके द्रष्टा, सबज्ञ, सर्वशक्तिमान् परमेश्वर नामसे प्रसिद्ध वे ही हैं। जिसके द्वारा दोषरहित, परम शुद्ध, निर्मल तथा एक रूप परमात्माका ज्ञान, साक्षात्कार अथवा प्राप्ति होती है, वही ज्ञान है। जो इसके विपरीत है, उसे अज्ञान कहा गया है।

योग और सांख्यका वर्णन

मुनियोंने कहा—महर्षे! अब हमें योगका उपदेश दीजिये, जो दुःखोंको दूर करनेवाला ओषधि है तथा जिस अविनाशी योगको जानकर हम भगवान् पुरुषोत्तमका संयोग प्राप्त कर सकें।

व्यासजी बोले—विप्रवरु! मैं संसार-बन्धनका नाश करनेवाले योगका वर्णन करता हूँ, सुनो। उसका अभ्यास करके योगी पुरुष परम दुर्लभ मोक्ष प्राप्त कर लेता है। पहले गुरुकी भक्तिपूर्वक आराधना करके बुद्धिमान् पुरुष योगशास्त्र, इतिहास, पुराण और वैदिक श्रवण करे तत्पश्चात् अष्टांग योगके दोष, दोष और फलका ज्ञान प्राप्त करके निर्द्वन्द्व एवं परिग्रहशून्य होकर योगका अभ्यास करे सत्, जाग्रत, मीढ़, महार, मूल चक्र, दूध, जाँका हस्तुआ, खुरी और तिलको खली—इन सब वस्तुओंका भोजन योगकी सिद्धि करनेवाला है। जिस समय मन व्याकुल न हो, कर्णोंमें किसी प्रकारका शब्द न आता हो, भूख-प्यासका कष्ट न हो, हर्ष, शोक आदि द्वन्द्व, सर्दी, गर्मी तथा जल बाधा न पहुँचाती हो, ऐसे समयमें योगसाधन करना चाहिये। जहाँ कोई शब्द होता हो तथा जो जलके समीप हो, ऐसे स्थानमें, टूटी पुरानी गेजालायें, चौराहेपर, सौप-भिच्छू आदिके स्थानमें, शम्भान-भूमिमें, नदीके तटपर, अग्निके समीप, देवकुक्षके नीचे, बाँबीपर, भयदायक स्थानमें, कुएँके समीप तथा सुखे पत्तोंपर कभी योगाभ्यास नहीं करना चाहिये। जो मूर्खतावश इन स्थानोंको परका न करके वहाँ योग साधन करता है, उसके सामने विघ्नकारक दोष आते हैं। उन दोषोंका वर्णन करता हूँ, सुनो। बहरापन, जड़ता, स्मरणशक्तिको छोड़, गूँगापन, अंधापन, ज्वर तथा अज्ञान-जनित दोष—ये सभी उसे प्राप्त होते हैं। अतः योगवेत्त पुरुषको सदा सब प्रकारसे शरीरकी रक्षा करनी चाहिये, क्योंकि शरीर ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों

पुरुषार्थोंका साधन है। एकान्त आश्रममें, गृह स्थानमें, सज्ज और भयसे रहित पर्वतीय गुफाओंमें, सूने घरमें, अथवा पवित्र रमणीय तथा एकान्त देवमन्दिरमें बैठकर शतके पहले और पिछले पहरेमें अथवा दिनके पूर्वाह्न और मध्याह्नकालमें एकाग्रचित्त होकर योग-साधन करे। भोजन थोड़ा और नियमके अनुकूल हो। इन्द्रियोंपर पूरा नियन्त्रण रहे। सुन्दर आसनपर पूर्वाभिमुख बैठकर योगाभ्यास करना उचित है। आसन सुखद और स्थिर हो। अधिक ऊँचा या अधिक नीचा न हो। योगके साधकको नि-स्पृह, सत्यवादी और पवित्र होना चाहिये। वह निद्रा और क्रोधको अपने वशमें रखे। सम्पूर्ण भूतोंके हितमें तत्पर रहे। सब प्रकारके द्वन्द्वोंको सहन करे। शरीर, चरण और वस्त्रोंको समान स्थितिमें रखे। दोनों हाथ नाभिपर रखकर शान्त हो पञ्चमनसे बैठे। दृष्टिको नासिकाके अपभागपर लगाकर प्राणायामपूर्वक मीन रहे मनके द्वारा इन्द्रिय-समुदायको विषयोंकी ओरसे हटका हृदयमें स्थापित करे। दीर्घस्वरासे प्रणवका उच्चारण करते हुए मुखको बंद रखे और स्वयं भी स्थिर रहे। योगी पुरुष नेत्र बंद करके बैठे। वह तमोगुणकी वृत्तिको रजोगुणसे और रजोगुणकी वृत्तिको सत्त्वगुणसे आच्छादित करके निर्मल एवं शान्त हृदयकमलकी कर्णिकामें लीन, सर्वव्यापी, निरञ्जन, मोक्षदायक भगवान् पुरुषोत्तमका निरन्तर चिन्तन करे।

योगवेत्ता पुरुष पहले अन्तःकरणसहित इन्द्रियों और पञ्चभूतोंको क्षेत्रज्ञमें स्थापित करे और क्षेत्रज्ञको परमात्मामें नियुक्त करे। तत्पश्चात् योगाभ्यास करे। जिस पुरुषका चञ्चल मन समस्त विषयोंका परित्याग करके परमात्मामें लीन हो जाता है, उसके सामने योगसिद्धि प्रकाशित होती है। जब योगयुक्त पुरुषका चित्त समग्रविकल्पमें सब विषयोंसे निवृत्त हो परब्रह्ममें एकीभूत हो जाता है, उस समय वह परमपदको

प्राप्त होता है। जब योगवैकाचित परममन्दको प्राप्तकर किसी भी कर्ममें आसक्त नहीं होगा, उस समय वह निर्वाणपदको प्राप्त होता है। योगी अपने योगबन्धसे मुक्त, सुख, गुणातीत तथा सत्त्वगुणसम्पन्न पुरुषोत्तमको प्राप्त करके निस्संदिह मुक्त हो जाता है। सम्पूर्ण भोगोंको ओरसे निःस्पृह, सर्वत्र प्रेमपूर्ण दृष्टि रखनेवाला तथा सब अनन्तपदार्थोंमें अनिश्चय बुद्धि रखनेवाला योगी ही मुक्त हो सकता है। जो योगवैकाचित पुरुष वैराग्यके कारण इन्द्रियोंके विषयोंका सेवन नहीं करता और निरन्तर अभ्यसयोगमें लगा रहता है, उसकी मुक्तिमें तनिक भी संदेह नहीं है। केवल पचासन लगानेसे और नासिकाके अग्रभागपर दृष्टि रखनेसे ही योगकी सिद्धि नहीं होती। आत्मामें मन और इन्द्रियोंकी संयोग—उनकी एकाग्रताको ही योग कहते हैं। मुनिवरों! इस प्रकार मैं संस्कार बन्धनसे मुक्तिके साधनभूत मोक्षदायक योगका वर्णन किया।

मुनि चोत्ते—द्विजनेह! आपके मुसकन्धी समुद्रसे निकले हुए यक्षचक्राकार पान करनेसे हमें तृप्ति होती नहीं दिखायी देती। अतः पुनः मोक्षदायक योग और साधनका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये। तपस्या, ब्रह्मचर्य, सर्वस्वत्याग और बुद्धि—जिस उपायसे मन और इन्द्रियोंकी एकाग्रता प्राप्त हो सके, वह कर्त्तव्यको कृपा कीजिये।

व्यासजीने कहा—विद्य, तप, इन्द्रियनिग्रह और सर्वस्वत्यागके विना कोई भी सिद्धि नहीं पा सकता। सम्पूर्ण महाभूत विभक्तिकी पहली सृष्टि है। ये प्राणियोंके शरीरमें भर हुए हैं। पृथ्वीसे देहका निर्माण हुआ है। ध्वनिनाद और पक्वने आदि जलके अंश हैं। अग्निसे नेत्र तथा वायुसे प्राण और अपान उत्पन्न हुए हैं। तन्म, मन आदिके चिद्र अकारकत्वके

स्वरूप हैं। चरणोंमें विष्णु, हाथोंमें इन्द्र और उदरमें अग्नि देवता भोक्तारूपसे स्थित रहते हैं। कर्णोंमें श्रोत्र-इन्द्रिय और दितारों हैं। जिह्वामें वाक्-इन्द्रिय और सरस्वती देवताका निवास है। कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका—ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं; उन्हें विषयानुभवका द्वार कहलाया गया है। तन्म, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये इन्द्रियोंके विषय हैं। इस ध्वन्म आकारका दर्शन नेत्रों अथवा सम्पूर्ण इन्द्रियोंसे नहीं हो सकता। वह विस्तृत धनरूपी दीपकसे ही बुद्धिमें प्रकाशित होता है। परमात्म तन्म, स्पर्श, रूप, रस और गन्धसे हीन, अविकारी तथा शरीर और इन्द्रियोंसे रहित है तो भी शरीरके भीतर ही इसका अनुसंधान करना चाहिये। जो इस विनाशशील शरीरमें अव्यक्तभवाससे स्थित परमपूजित परमेश्वरका ज्ञानकी दृष्टिसे निरन्तर स्मृताकर करता रहता है, वह मृत्युके पक्षार्थ ब्रह्मभयको प्राप्त होता है। प्राणीजन विद्य-विनयसम्पन्न ब्राह्मणमें तथा गौ, हाथी, कुत्ते और चण्डालमें भी समभावसे ही देखनेवाले होते हैं।* जिससे वह सम्पूर्ण जगत् ज्ञात है, वह परमात्म सम्पन्न चाचर प्राणियोंके भीतर निवास करता है। जब जीवात्मक सम्पूर्ण प्राणियोंमें अपनेकी और अपनेकी सम्पूर्ण प्राणियोंको स्थित देखता है, उस समय वह ब्रह्मभयको प्राप्त हो जाता है। अपने शरीरके भीतर केवल उच्छ्वास है, केवल ही दूसरोंके शरीरमें भी है—जिस पुरुषको निरन्तर ऐस ज्ञान बन्ध रहता है, वह अमृतत्व (मोक्ष)—को प्राप्त होता है।† जो सम्पूर्ण प्राणियोंका आर्या होकर सबके हितमें लगा हुआ है, जिसका अपना कोई मार्ग नहीं है तथा जो ब्रह्मपदको प्राप्त करना चाहता है, उसके मार्गकी खोज करनेमें देवता भी मोहित हो जाते हैं। जैसे

* विद्याव्रतनक्षत्रम्पने ब्राह्मणं याव इतिर्निः। मुनि उवाच शब्दके च पाण्डित्यः सधर्माग्निः॥

(२३५। २०)

† सर्वभूतेषु चतुर्वर्ण्यं सर्वभूतानि व्याप्यते। यत् परमं भूतत्वा ब्रह्म सम्पद्यते तत्॥

यथावात्मनि वेद्यत्वा तावान्मया ब्रह्मयति। य एवं सत्यं वेद सोऽमृतत्वाय कल्पते॥

(२३५। २२-२३)

अक्षरशः चिद्धिर्धर्मिके और जलमें मछलियोंके चलनेके चिह्न दिखायी नहीं पड़ते, उसी प्रकार ज्ञानियोंकी मस्तिका भी किसीको पता नहीं चलता।

कल सम्पूर्ण प्राणियोंको पक़ाता (नष्ट करता) है; किन्तु जहाँ कल भी पक़ाया जाता है—जो कालका भी काल है, उस आत्मको कोई नहीं जानता। परब्रह्म परमात्मा न ऊपर है न नीचे है, न इधर-उधर है और न बीचमें ही; कोई किसी अंतमें उसको ग्रहण कर सकता है। सम्पूर्ण लोक उसके भीतर ही स्थित हैं। उसके बाहर कुछ भी नहीं है। यद्यपि कोई धनुषसे छूटे हुए बाण अथवा मक्के सम्पन्न वेगसे निरन्तर आगेकी ओर दौड़ा छड़े तो भी कभी उस परमेश्वरका अन्त नहीं पड़ सकता। उससे अधिक सूक्ष्म तथा उससे बढ़कर स्पृष्ट दूसरी कोई वस्तु नहीं है। उसके सब ओर हाथ-पैर हैं, सब ओर नेत्र हैं तथा सब ओर सिर, मुख और कान हैं। वह संसारमें सबको जगत करके स्थित है। छोटे-से-छोटा और बड़े-से-बड़ा भी वही है। यद्यपि वह सब प्राणियोंके भीतर निश्चय ही स्थित रहता है तो भी वह किसीको दिखायी नहीं देता।* शर और अधर—ये पुरुषके दो भेद हैं। सम्पूर्ण भूत तो शर (विजयी) हैं और दिव्य अमृतस्वरूप चेतन आत्मा अधर (अविनाश) है। नौ द्वारोंवाले पुरु (शरीर)—का निर्माण करके जितेन्द्रिय तथा नियमभरायण हंस (आत्मा) उसमें वास करता है। समस्त चराचर भूतोंका आत्मा ऐसा ही है। अजन्मा आत्मा भक्ति भौतिके विकल्पोंका त्याग और शरीरोंका संध्य करता है, इसलिये फ़रदलो

विद्वानोंने उसे 'हंस' कहा है। 'हंस' नामसे जिस अविनाशी जीवात्मक प्रतिपादन किया गया है, वह कृतस्य अधर हो है। इस प्रकार जो विद्वान् उस अधर आत्माको जान लेता है, वह जन्म-मृत्युके बन्धनसे छुटकारा पा जाता है।

साध्यान्ते! इस प्रकार तुम्हारे पूछनेपर मैंने ज्ञानपुत्र सांख्यिक्य भवावत् वर्णन किया। अब योगकी बातें बताऊँगा, सुनो। इन्द्रिय, मन और बुद्धिकी वृत्तियोंको सब ओरसे रोककर व्यापक आत्मके साथ उनकी एकता स्थापित करना ही योगशास्त्रके मतमें उच्च ज्ञान है। योगी पुरुषको रुध-दम्भसे सम्पन्न होना चाहिये। वह अध्यत्मशास्त्रका अनुशीलन करे, आत्मामें ही अनुराग रखे, शास्त्रोंका तत्त्व जाने और निष्कामभावसे पावित्र्य कर्मोंका अनुष्ठान करे। इस प्रकार साधनसम्पन्न होकर योगोक्त उच्च ज्ञानको प्राप्त करे। कान, ज्ञेय, लोभ, भय और स्वप्न—ये पाँच योगके दोष हैं, इन्हें विद्वान् पुरुष जगते हैं। इन सभी दोषोंका उच्छेद करके अपनेको योगका अधिकारी बनाये।

धीर पुरुष मनको जरामें रखनेसे क्रोधपर और संकल्पका त्याग करनेसे कामपर विजय पाता है। सत्वगुणका सेवन करनेसे वह मित्राका नाश कर सकता है। धैर्यके द्वारा योगी शिल्प और उदरकी रक्षा करे। नेत्रोंकी सहायतासे हाथ और पैरोंकी रक्षा करे। मनके द्वारा नेत्र और कानोंकी तथा कर्मके द्वारा मन और बाणोंकी रक्षा करे। प्रमादके त्यागसे भयका और विद्वान् पुरुषोंके सेवनसे दम्भका त्याग करे।† इस प्रकार योगके साधकको

* सर्वतःपाणिपादं सर्वसर्वतोऽधिशिरोमुखम् । सर्वतःशुनिपत्तोके सर्वभक्त्य विवृतिः॥
तदेवाधरमुतर्कं तन्महद्विषये यदुत्तरम् । तदन्तः सर्वमुखं ध्रुवं तिष्ठत दृश्यते॥

(२३५। ३०-३१)

† क्रोधं रागेन जयति कामं संकल्पवर्जनात् । सत्वसंसेवनाद्विद्वान् मित्रामुच्छेदमुपार्हति॥
धृत्य शिश्रोदरं श्लेष्पाणिपादं च चक्षुषः । जघ्नुः श्रोत्रं च घनस्य पतो वायं च कर्णयोः॥
अध्माकट्यं भयं कण्ठ्यं दम्भं प्रज्ञेयसेवनात्॥

(२३५। ४०-४२)

आलस्य छोड़कर इन योग-सम्बन्धी दोषोंको जोतनेका प्रयत्न करना चाहिये। वह अग्नि, ब्राह्मण तथा देवताओंको सदा प्रणाम करे। मनपर प्रभाव डालनेवाली हिंसायुक्त दृष्ट्युद्धात्पूर्ण वाणी न बोले। तेजोमय ब्रह्म ही वीर्य (सम्यक् आदि कारण) है, यह सम्पूर्ण जगत् उसीका कार्य है। समस्त चराचर जगत् उस ब्रह्मके ही ईक्षण (संकल्प) का परिणाम है। ध्यान, वेदाध्ययन, दान, सत्य, लज्जा, सरलता, क्षमा, शौच, आत्मशुद्धि एवं इन्द्रियसंयम—इनसे तेजकी वृद्धि होती है और पापका नाश होता है।*

योगीको चाहिये कि वह सम्पूर्ण प्राणियोंमें समान भाव रखे, जो कुछ मिल जाय, उसीसे निर्वह करे, पापरहित, तेजस्वी, भित्तिकारी और जिज्ञेन्द्रिय होकर, काम और क्रोधको दूर करने के ब्रह्मपदका सेवन करे योगी रातके पहले और पिछले पहरमें मन एवं इन्द्रियोंको एकाग्र करने का प्रयत्न हो मनको आत्म्यामें लगावे। जैसे घनकर्ममें एक जगह भी छेद हो जानेपर सारा पानी बह जाता है उसी प्रकार यदि साधककी पाँच इन्द्रियोंमेंसे एक इन्द्रिय भी विकृत हो बिचल हो और चली जाय तो वह अपनी बुद्धि और विवेक छोड़ बैठता है। जैसे मछली पहले जाल काटनेवाली मछलीको पकड़कर पीछे अन्य मछलियोंको पकड़ता है, उसी प्रकार योगवेत्ता साधक पहले अपने मनको दूर करे। तत्पश्चात् काम, नेत्र, जिह्वा तथा नासिका आदि इन्द्रियोंका निग्रह करे। इन सबको अधीन करके मनमें स्थापित करे और मनको भी संकल्प-विकल्पसे हटाकर बुद्धिमें स्थिर करे। इस प्रकार पाँचों इन्द्रियोंको मनमें और मनको बुद्धिमें स्थापित करनेपर जब ये इन्द्रिय और मन स्थिर हो जाते हैं उस समय इनको

यत्नित दूर होकर इनमें स्वच्छता आ जाती है। फिर अन्तःकरणमें ब्रह्मका साक्षात्कार हो जाता है। योगी धूमरहित अग्नि, दीप्तिमान् सूर्य तथा आकाशमें चमकती हुई बिजलीकी भाँति आत्माका हृदयकेन्द्रमें दर्शन करता है। सब कुछ आत्म्यामें है और आत्मा सबमें व्यापक है; इसलिये वह सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। जो महात्मा ब्राह्मण मनीषी, वैश्यवान्, महाजानी और सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें तत्पर रहनेवाले हैं, वे ही उस आत्माका दर्शन कर पाते हैं। जो योगी एकान्तमें बैठकर कठोर विद्यमोंका पाठन करते हुए थोड़े समय भी इस प्रकार योगाभ्यास करता है, वह अक्षर ब्रह्मकी समानताको प्राप्त हो जाता है।

योग-साधनमें अग्रसर होनेपर मोह, भ्रम और अकर्तृ आदि विषय प्राप्त होते हैं। दिव्य सुगन्ध आती है, दिव्य वाणीका श्रवण तथा दिव्य रूपोंके दर्शन होते हैं। अद्भुत बातें देखनेमें आती हैं। अस्तीकिक रस और स्पर्शका अनुभव होता है। इच्छानुकूल सर्दी और गर्मी प्राप्त होती है। वायुकी भाँति आकाशमें चलने-फिरनेकी शक्ति आ जाती है। प्रतिष्ठा बढ़ जाती है और उपद्रवोंका अभय हो जाता है। योगसे इन सिद्धियोंके प्राप्त होनेपर भी तत्त्ववेत्ता पुरुष इनकी उपेक्षा करके समभावसे ही उन्हें लौटा दे। वह योगका ही अभ्यास बढ़ावे और नियमपूर्वक रहते हुए पहाड़की चोटीपर, शून्य देवमन्दिरमें अथवा वृक्षोंके नीचे बैठकर योगका अभ्यास करे। इन्द्रिय-समुदायको संयममें रखकर एकग्रचित्त हो निरन्तर आत्माका चिन्तन करता रहे। योगसे मनको उद्विग्न न होने दे। जिस उपायसे चञ्चल मनको रोका जा सके, उसमें तत्परतापूर्वक लग जाय और साधनासे कभी विचलित न हो। अपने रहनेके लिये शून्य गृहको

* ध्यानमध्ययनं दानं सत्यं ह्यस्तौषधं क्षम्यः शौचं वैराग्यं बुद्धिरिन्द्रियार्थं च निग्रहः ॥

एतैर्विचरन्ते तेजः कायस्य चापकचरति ॥

झोकाए करे, क्योंकि वहाँ चित्त एकाग्र रह सकता है। योगका साधक मन, वाणी अथवा क्रियाद्वारा भी कहीं आसक्त न हो। वह सबकी ओरसे उपेक्षाका भाव रखे, निश्चित भोजन करे तथा लाभ और अलाभको समान समझे। जो उस भोगीकी निन्दा करे और जो उसको भस्मक सुकाये, उन दोनोंके ही प्रति वह समान भाव रखे। वह किसी एककी बुराई या भलाई न सोचे। कुछ लाभ होनेपर हर्षसे फूल न उठे और लाभ न होनेपर विन्ता न करे। अग्नि वायुका सहधर्म होकर सब प्राणियोंके प्रति समान भाव रखे। इस प्रकार स्वस्थचित होकर सर्वत्र समान दृष्टि रखनेवाला साधक यदि छः महीने भी निरन्तर योगके अभ्यासमें लगा रहे तो उसे ब्रह्मका साक्षात्कार हो

जाता है। दूसरे लोग धनकी इच्छा या संग्रह करनेके कारण अत्यन्त विकल हैं, यह देखकर उसकी ओरसे विरक्त हो जाय। मिट्टीके डेले, पत्थर और सुवर्णको समान समझे। इस प्रकार योग-मार्गपर चलनेवाला साधक मोहवश कभी उससे विचलित न हो। कोई नीच वर्णका पुरुष अथवा स्त्री ही क्यों न हो, यदि उसे धर्म करनेकी अभिलाषा हो तो वह भी इस योगमार्गसे परम गतिको प्राप्त कर सकता है। योगी पुरुष अजन्म, पुरातन, जरावस्थासे रहित, सन्तान, इन्द्रियतीत एवं अगोचर ब्रह्मको प्राप्त होते हैं। जो मनोषी पुरुष इस योगकी पद्धतिपर दृष्टिपात करके इसे अपनाने हैं, वे ब्रह्मावीके समान हो उस उत्तम गतिको प्राप्त करते हैं, जहाँसे पुनः इस संसारमें नहीं आना पड़ता।

कर्म तथा ज्ञानका अन्तर, परमात्मतत्त्वका निरूपण तथा अध्यात्मज्ञान और उसके साधनोंका वर्णन

मुनि बोले—महर्षे! यदि वेदकी ऐसी आज्ञा है कि 'कर्म करो' तथा वह भी आदेश है कि 'कर्मका त्याग करो' तो यह बताइये कि मनुष्य इनके द्वारा कर्म त्याग देनेपर किस गतिको प्राप्त होते हैं तथा कर्म करनेसे उन्हें किस फलकी प्राप्ति होती है? इस बातको हम सुनना चाहते हैं। क्योंकि उक्त दोनों आज्ञाएँ परस्पर विरुद्ध प्रतीत होती हैं।

व्यासजीने कहा—ब्रह्मजो! ज्ञानसे मनुष्य जिस गतिको पाते हैं और कर्मसे उन्हें जैसी गति मिलती है, उसका वर्णन करता हूँ, सुनो। तुम्हारे इस प्रश्नका उत्तर गहन है। शास्त्रमें दो मार्गोंका वर्णन है—एकका नाम प्रवृत्तिधर्म है और दूसरेके

निवृत्तिधर्म कहा गया है। प्रवृत्तिमार्गको कर्म और निवृत्तिमार्गको ज्ञान भी कहते हैं। कर्म (अविद्या) से मनुष्य बन्धनमें पड़ता है और ज्ञानसे मुक्त हो जाता है, इसलिये पारदर्शी यति कर्म नहीं करते। कर्मसे मरनेके बाद जन्म लेना पड़ता है, सोलह तत्त्वोंसे बने हुए शरीरकी प्राप्ति होती है। किन्तु ज्ञानसे मित्र, अव्यक्त एवं अविनाशी परमात्मा प्राप्त होते हैं। कुछ मन्दबुद्धि मानव कर्मकी प्रशंसा करते हैं, अतः वे भोगासक्त होकर बारम्बार देहके बन्धनमें पड़ते हैं। परंतु जो धर्मके तत्त्वको भ्रूतार्थीति समझते हैं तथा जिन्हें उत्तम बुद्धि प्राप्त है, वे कर्मकी उसी तरह प्रशंसा नहीं करते,

१ सर्वत्र विचरते हुए भी कहीं आसक्त न होना ही कर्मका सहधर्म होना है।

२-वर्धनमभिनिन्देत्

वर्धनमभिनिन्देत् । समस्तवेद्यान्पुण्येर्नभिध्यायेच्छुभाशुभम् ॥

न प्रद्वेष्टेत् लाभेषु न हस्तधेयुषु च विनश्यत् । समः सर्वेषु भूतेषु सधर्मा भवतिरथ ॥

जैसे नदीका पानी पीनेवाला मनुष्य कुएँका ज्वार नहीं करता। कर्मके फल मिलते हैं—सुख और दुःख, जन्म और मृत्यु। किंतु ज्ञानसे उस पदको प्राप्ति होती है, जहाँ जाकर मनुष्य सदाके लिये शोकसे मुक्त हो जाता है। जहाँ जन्म, मृत्यु, मरा और बुद्धि उसका स्पर्श नहीं करते, वहाँ केवल अमृत, अचल, ध्रुव, अव्याकृत एवं अमृतस्वरूप परब्रह्मकी ही स्थिति है। उस स्थितिमें पहुँचे हुए मनुष्योंको शीत-उष्ण आदि द्वन्द्व बाध नहीं पहुँचाते। मानसिक विकार और क्रियाद्वारा भी उन्हें कष्ट नहीं होता। वे समत्वभावसे युक्त, सबके प्रति मैत्री रखनेवाले और सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें रहनेवाले होते हैं।

ब्राह्मणे! देह, इन्द्रिय और मन आदि जो प्रकृतिके विकार हैं, वे क्षेत्रज्ञके ही आधारपर स्थित हैं। वे जड़ होनेके कारण क्षेत्रज्ञको नहीं जानते, किंतु क्षेत्रज्ञ उन सबको जानता है। जैसे घातुर सारथि अपने वशमें किये बलवान् एवं उत्तम घोड़ोंसे अच्छी तरह काम लेता है, उसी प्रकार क्षेत्रज्ञ भी अपने अधीन किये हुए मन और इन्द्रियोंद्वारा सम्पूर्ण कार्य सिद्ध करता है। इन्द्रियोंको अपेक्ष उनके विषय (शब्दादि तन्मात्रा) पर—सूक्ष्म और ग्रेह हैं। विषयोंसे मन पर है; मनसे बुद्धि पर है। बुद्धिसे महत्त्व पर है। महत्त्वसे अव्यक्त (मूल प्रकृति) पर है और अव्यक्तसे अविनाशी परमात्मा पर है। अविनाशी परमात्मामें पर कुछ भी नहीं है। वही परमात्मा सच्चिदानन्द है। उसी परम गति है। इस प्रकार सम्पूर्ण प्राणियोंके भीतर छिपा हुआ यह परमात्मा सबके जाननेमें नहीं आता। उसे तो सूक्ष्मदर्शी ज्ञानी महात्मा ही अपनी सूक्ष्म एवं ग्रेह बुद्धिसे देखते हैं।*

मनसहित इन्द्रियोंको तथा इन्द्रियोंके साथ उनके विषयोंको भी बुद्धिके द्वारा अन्तरात्मामें लीन करके नाना प्रकारके दृश्योंका चिन्तन न करे। ध्यानके द्वारा मनको विषयोंकी ओरसे हटाकर विवेकके द्वारा उसे स्थिर करे और सन्नतधनसे स्थित हो जाय; ऐसा करनेसे साधक परम पदको प्राप्त होता है। जो इन्द्रियोंके वशमें रहता है, वह मानव विवेकशक्तिको खो देता है और अपनेको काम आदि सन्तुष्टियोंके हाथमें देकर मृत्युको प्राप्त होता है। इसलिये सब प्रकारके संकल्पोंका त्याग करके चित्तको सत्ययुक्त बुद्धिमें स्थापित करे। यों करनेसे चित्तमें प्रसन्न गुण आता है, जिससे यति पुरुष शुभ और अशुभ दोनोंको जीव लेता है। प्रसन्नचित्त साधक परमात्मामें स्थित होकर अत्यन्त आनन्दका अनुभव करता है। चित्तकी प्रसन्नताका लक्षण यह है कि सदा सुपुण्ड्रिके समान सुखका अनुभव होता रहे अथवा बाधशून्य स्थानमें जसते हुए भिष्काम दीपककी लौके समान मन कभी चञ्चल न हो।

जो भिन्नाहारी और शुद्धचित्त होकर रातके पहले तथा पिछले भागमें आत्माको परमात्माके ध्यानमें लगाता है, वही अपने अन्तःकरणमें परमात्माका दर्शन करता है। यह उपदेश सम्पूर्ण वेदोंका रहस्य है। यह परमात्माका बोध करानेवाला शास्त्र है। धर्म और सत्यके सम्पूर्ण उपाख्यानोमें जो सार वास्तु है, उसका दस हजार वर्षोंतक मन्थन करके यह अमृतमय उपदेश निकला गया है। जैसे दहीसे मक्खन निकलता और काहसे अग्नि प्रकट होती है, उसी प्रकार मोक्षके लिये विद्वानोंका ज्ञान यहाँ प्रकट किया गया है। इस शास्त्रका उपदेश स्नातकोंको देना चाहिये जिसका

* इन्द्रियेभ्यः १७ इत्यर्थः अर्बुदः परमं मनः। मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेः परमं महान् परः॥

महत्तः परमत्वकल्पकत्वात्परमोऽयमुत्तमः। अमृतमय परं किञ्चित्कालं काह्यं स परा गतिः॥

एवं सर्वेषु भूतेषु गूढात्मा न प्रकल्पते। दृश्यते त्वत्तत्त्वं बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिनः॥

मन शान्त नहीं है, इन्द्रियाँ बशमें नहीं हैं तथा जो तपस्वी नहीं है, उसे इस ज्ञानका उपदेश नहीं करना चाहिये। जो वेदका ज्ञाता नहीं है, जिसके मनमें गुरुके प्रति भक्ति नहीं है, जो दोष देखनेवाला, कुटिल, आज्ञाका भंगन न करनेवाला, व्यर्थ तर्क-वितर्कसे दूषित और चुगसखोर है, उसे भी इसका उपदेश नहीं देना चाहिये। जो प्रशंसनीय, शान्त, तपस्वी तथा सेवापरायण सिद्ध अथवा पुत्र हो, उसीको इस गूढ़ धर्मका उपदेश देना उचित है, दूसरे किसीको नहीं। यदि कोई रत्नोंसे भरी हुई सम्पूर्ण पृथ्वी देने लगे तो भी तत्त्ववेत्ता पुरुष उसकी अपेक्षा इस ज्ञानको ही ग्रेह माने। अतः मैं तुम्हें अत्यन्त गूढ़ अर्थवासे अध्यात्म ज्ञानका उपदेश देता हूँ, जो मानवीय ज्ञानसे बाहर है, जिसे महर्षियोंने ही जाना है तथा जिसका सम्पूर्ण उपनिषदोंमें वर्णन किया गया है। मुनिवरो! तुमलोग जो बात पूछते थे और तुम्हारे हृदयमें जिसके विषयमें संदेह था, वह सब तुमने सुन लिया, मेरे मनमें जैसा निश्चय था, वह सब बता दिया; अब और क्या सुनाऊँ?

मुनियोंने कहा—ऋषिग्रेह! अब पुनः अध्यात्म ज्ञानका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये। अध्यात्म क्या है और उसे हम किस प्रकार जानें?

भगवन्जी बोले—ज्ञाहणो! अध्यात्मका जो स्वरूप है, उसे बताता हूँ तुम उसकी व्याख्या ध्यान देकर सुनो। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—ये पञ्चमहाभूत सम्पूर्ण प्राणियोंके शरीरमें स्थित हैं। शब्द, त्रयणोन्द्रिय और शरीरके सम्पूर्ण छिद्र आकाशसे प्रकट हुए हैं। प्राण, चेहा और स्पर्शकी उत्पत्ति वायुसे हुई है। रूप, नेत्र और जठरानल—ये तीन अग्निके कार्य हैं। रस, रसज्ञ और शिकनाहट—ये जलके गुण हैं। गन्ध, नसिका और देह—ये पृथ्वीके कार्य हैं। यह पाञ्चभौतिक

विकास बताया गया। स्पर्श वायुका, रस जलका, रूप तेजका, शब्द आकाशका और गन्ध भूमिका गुण हैं। मन-बुद्धि और स्वभाव—ये स्वयंभोज गुण हैं। ये गुणोंकी सीमाको लॉच जाते हैं अतः उनसे ग्रेह माने गये हैं। जैसे कछुआ अपने अङ्गोंको फैलाकर फिर सिकोड़ लेता है, उसी प्रकार बुद्धिके द्वारा ग्रेह पुरुष सम्पूर्ण इन्द्रियोंको विषयोंकी ओरसे समेट लेता है। मनुष्यके शरीरमें पाँच इन्द्रियाँ हैं, छठवाँ तत्त्व मन है, सातवाँ तत्त्व बुद्धि है और क्षेत्रज्ञको आठवाँ समझो। आँख देखनेके लिये हो है, मन संदेह करता है, बुद्धि विचार करनेके लिये है और क्षेत्रज्ञको साक्षी कहा जाता है। सत्त्व, रज और तम—ये तीनों गुण अपने कारणभूत प्रकृतिसे प्रकट हैं। ये सम्पूर्ण प्राणियोंमें समान भावसे स्थित हैं। उनके कार्योंद्वारा उनकी पहचान करनी चाहिये। जब अन्तःकरण कुछ प्रीतियुक्त-सा जान पड़े, अत्यन्त श्रान्तिका-सा अनुभव हो, तब उसे सत्त्वगुण जानना चाहिये। जब शरीर और मनमें कुछ संतापका-सा अनुभव हो, तब उसे रजोगुणकी प्रवृत्ति मानना चाहिये। जब अन्तःकरणमें अल्पक, अतर्क्य और अज्ञेय मोहका संयोग होने लगे, तब उसे तमोगुण समझना चाहिये। जब अस्मत्मात् किसी कारणवश अत्यन्त दुःख, प्रेम, अन्नन्द, समस्त और स्वस्थचितताका विकास हो, तब उसे सार्विक गुण कहते हैं। अधिमान, असत्य भावण, लोभ और अस्मदनशीलता—ये रजोगुणके चिह्न हैं। मोह, प्रमाद, निद्रा, आलस्य और अज्ञान आदि दुर्गुण जब किसी तरह प्रवृत्त हों तब उन्हें तमोगुणका कार्य जानना चाहिये।

जैसे जलचर पक्षी जलमें विचरता हुआ भी उससे लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार मुक्तात्मा योगी संसारमें रहकर भी उसके गुण-दोषोंसे लिप्त नहीं होता।* इसी प्रकार ज्ञानी पुरुष विषयोंमें आसक्त

न होनेके कारण उनका उपभोग करते हुए भी उनके दोषोंसे लिप्त नहीं होता जो सदा परमात्मके चिन्तनमें ही लगा रहता है, वह पूर्वकृत कर्मोंके बन्धनसे रहित हो सम्पूर्ण प्राणियोंका आत्मा हो जाता है और विषयोंमें कभी आसक्त नहीं होता। गुण आत्माको नहीं जानते, किन्तु आत्मा उन्हें सदा जानता रहता है, क्योंकि वह गुणोंका द्रष्टा है। प्रकृति और आत्मामें यही अन्तर है। एक (प्रकृति) तो गुणोंकी सृष्टि करती है, किन्तु दूसरा (आत्मा) ऐसा नहीं करता, वे दोनों स्वभावतः पृथक् होते हुए भी एक-दूसरेसे संयुक्त हैं। जैसे पत्थरमें सुवर्ण जड़ा होता है, जैसे गूलर और उसके कीड़े साथ-साथ रहते हैं तथा जिस प्रकार मूँजमें सोंक होती है और वे सभी वस्तुएँ पृथक् होती हुई भी परस्पर संयुक्त रहती हैं उसी प्रकार प्रकृति और पुरुष भी एक-दूसरेसे संयुक्त रहते हैं।

प्रकृति गुणोंकी सृष्टि करती है और क्षेत्रज्ञ आत्मा उदासीनकी भाँति अलग रहकर समस्त विकारशील गुणोंको देखा करता है। प्रकृति जो इन गुणोंकी सृष्टि करती है, वह सब उसका स्वाभाविक कर्म है। जैसे मकड़ी अपने शरीरसे तन्तुओंकी सृष्टि करती है वैसे ही प्रकृति भी समस्त त्रिगुणात्मक पदार्थोंको जन्म देती है, किन्हींका मत है कि तत्त्वज्ञानसे जब गुणोंका नाश कर दिया जाता है, तब वे फिर उत्पन्न नहीं होते, उनका सर्वथा नाश हो जाता है। क्योंकि फिर उनका कोई चिह्न नहीं उपलब्ध होता। इस प्रकार वे भ्रम या अविद्याके निवारणकी ही मुक्ति मानते हैं दूसरोंके मतमें त्रिविध दुःखोंकी आत्यन्तिक निवृत्ति ही मोक्ष है। इन दोनों मतोंपर अपनी बुद्धिके अनुस्मरण विचार करके सिद्धान्तका निश्चय करे।

आत्मा आदि और अन्तसे रहित है। उसे जानकर मनुष्य हर्ष और क्रोधको त्याग दे और

मात्सर्वरहित होकर विचरण करे। जैसे तीलेकी कस्तूरी न जाननेवाले मनुष्य यदि भरी हुई नदीमें कूद पड़ते हैं तो वे डूब जाते हैं, किन्तु जो तीला जानते हैं, वे कष्टमें नहीं पड़ते, वे तो जलमें भी स्वस्थकी ही भाँति विचरते हैं, उसी प्रकार ज्ञानस्वरूप आत्माको प्राप्त हुआ तत्त्ववेत्ता पुरुष संसार-सागरसे पार हो जाता है। जो सम्पूर्ण प्राणियोंके अश्वामेधनको जानकर सबके प्रति समभाव रखते हुए वर्तान करता है, वह उत्तम शान्तिको प्राप्त होता है। ब्राह्मणमें इस ज्ञानको प्राप्त करनेकी सहज शक्ति होती है। मन और इन्द्रियोंका संयम तथा आत्माका ज्ञान—ये मोक्षप्राप्तिके लिये पर्याप्त साधन हैं तत्त्वका ज्ञान प्राप्त करके मनुष्य बुद्ध (ज्ञानी) हो जाता है। बुद्धका इसके सिवा और क्या लक्षण हो सकता है। बुद्धिमान् मनुष्य इस आत्मतत्त्वको जानकर कृतकृत्य हो संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाते हैं। अज्ञानी पुरुषोंको परलोकमें जो महान् भय प्राप्त होता है, वह ज्ञानीको नहीं होता। ज्ञानी पुरुषोंको जो सनातन गति प्राप्त होती है, उससे बढ़कर दूसरी कोई गति नहीं है।

मुनि बोले—भगवन् अब आप उस धर्मका वर्णन कीजिये, जो सब धर्मोंसे श्रेष्ठ है तथा जिससे बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है।

व्यासजीने कहा—मुनिवरों! मैं ऋषियोंके द्वारा प्रशंसित प्राचीन धर्मका, जो सम्पूर्ण धर्मोंसे श्रेष्ठ है, वर्णन करता हूँ तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो। जैसे पिता अपने छोटे बालकोंको अपनी आज्ञाके अधीन रखता है, उसी प्रकार मनुष्य बुद्धिके बलसे अपनी प्रमत्तशील इन्द्रियोंका यत्नपूर्वक संयम करे। मन और इन्द्रियोंकी एकाग्रता ही सबसे बड़ी तपस्या है, उसे ही सब धर्मोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ धर्म जानना चाहिये। पाँचों इन्द्रियोंसहित छठे मनको बुद्धिके द्वारा एकाग्र करके सदा अपने-आपमें ही संतुष्ट रहे, नाना प्रकारके चिन्तनीय

विषयोंका चिन्तन न करे * जिस समय वे इन्द्रियों अपने विषयोंसे हटकर बुद्धिमें स्थित हो जायेंगी, उसी समय तुम्हें सनातन परमात्माका दर्शन होगा। धूमरहित अग्निके समान देदीप्यमान उस परम महान् सर्वात्मा परमेश्वरको मनीषी ब्राह्मण ही देख पाते हैं। जलते हुए ज्ञानमय प्रदीपके द्वारा पुरुष अपने अन्तःकरणमें ही आत्माका दर्शन करता है। ब्राह्मणों, तुमलोग भी इसी प्रकार आत्माका साक्षात्कार करके संसारसे विरक्त हो जाओ। जैसे सौंप केंचुल छोड़ता है वैसे ही तुम भी सब पार्थसे मुक्त हो जाओगे। इस उत्तम बुद्धिके प्राप्त कर लेनेपर तुम्हारे मनमें चिन्ता तथा बेदना नहीं रहेगी। अविद्या एक धनंकर नदी है, जिसके सब ओर स्रोत हैं, यह लोकोंको प्रवाहित करनेवाली है। पाँचों इन्द्रियों इस नदीके भीतर रहनेवाले प्राह हैं। मानसिक संकल्प-विकल्प ही इसके तट हैं। यह लोभ-मोहरूपी तृण (संसार आदि)-से आच्छादित रहती है। काम और क्रोधरूपी सर्पोंसे युक्त है। सत्य ही इससे पार करनेवाला पुण्यतीर्थ है। इसमें असत्यका तूफान उठा करता है। क्रोध ही इस ग्रेह नदीकी कीचड़ है। इसका उद्गम-स्थान अव्यक्त है। यह काम-क्रोधसे व्याप्त तथा बेगसे बहनेवाली है। अजितेन्द्रिय पुरुषोंके लिये इसे पार करना अत्यन्त कठिन है। यह नदी संसाररूपी समुद्रमें मिलती है। अपना जन्म ही इस नदीकी उत्पत्तिका कारण है। विद्वतरूपी भँवरके कारण इसको पार करना कठिन है। स्थिर बुद्धिवाले पवित्र मनीषी पुरुष ही इस नदीको पार कर पाते हैं। तुम सब लोग भी इस नदीके पार हो जाओ। इससे पार हो सब बन्धनोंसे मुक्त हुआ पवित्र जितेन्द्रिय पुरुष उत्तम बुद्धि पाकर ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। वह सब क्लेशोंसे मुक्त होता है,

उसका अन्तःकरण प्रसन्नतासे पूर्ण रहता है तथा वह पापरहित हो जाता है। उसमें हर्ष और क्रोधरूपी विकार नहीं रह जाते। उसकी बुद्धि क्लृप्त नहीं होती। इस बुद्धिको प्राप्त करके तुमलोग समस्त प्राणियोंकी उत्पत्ति और प्रलयको देख सकोगे। यहाँ बताये हुए धर्मको विद्वानोंने सब धर्मोंसे श्रेष्ठ माना है। वह आत्मज्ञानका उपदेश सम्पूर्ण गुण रहस्योंमें भी सबसे अधिक गोपनीय है। जो कोई परम पवित्र, हितैषी तथा भक्त हो, उसको इसका उपदेश करना चाहिये। ब्राह्मणों! मैंने यहाँ जिस ज्ञानका वर्णन किया है, वह अन्वयास ही आत्माका साक्षात्कार करानेवाला है। वह आत्मतत्त्व न स्त्री है, न पुरुष है और न नपुंसक ही है। उसमें दुःख और सुख दोनोंका अभाव है। वह साक्षात् ब्रह्म है। भूत, भविष्य और वर्तमान—सब उसीके रूप हैं। कोई पुरुष ही सा स्त्री, जो उस ब्रह्मको जान लेता है, उसे फिर जन्म नहीं लेना पड़ता। विप्रगण सब प्रकारके पतंगों इस विषयका जैसा प्रतिपादन किया है, उसके अनुकूल ही मैंने भी वर्णन किया है।

मुनि कोले—ब्रह्मानीने उपायसे ही मोक्षकी प्राप्ति बतायी है, बिना उपायके नहीं। अतः हम न्यायानुकूल उपायको ही सुनना चाहते हैं।

व्यासजीने कहा—महाप्राज्ञ मुनिवरो हमलोगोंमें ऐसी ही निपुण दृष्टि होनी उचित है। उपायसे ही सब पुरुषार्थोंकी खोज करनी चाहिये। मोक्षका एक ही मार्ग है, उसे सुनो। क्षमाके द्वारा क्रोधका नाश करे। इच्छा, द्वेष और कामको वैर्यसे शान्त करे। तत्त्ववेत्ता योगी ज्ञानके अभ्याससे निद्रा तथा भेद-बुद्धिका निराकरण करे। हितकर, सुपक्व और स्वस्थ भोजनसे वह सब प्रकारके उपद्रवोंको मिटाये। विद्वान् पुरुष संतोषसे लोभ और मोहका,

* मनसंक्षेन्द्रियाणां चाप्येकद्वयं परमं तदः विज्ञेयं सर्वधर्मेभ्यः स धर्मः परं त्वच्यते॥

तानि सर्वाणि संधाय मनःस्थानि मेधया । अत्यतः सदाऽऽस्रेत बहुचिन्त्यमचिन्तयन्॥

सांख्यिक दृष्टिसे विषयोंकी आसक्तिकर, दृष्टिसे अभिमर्शक, सबमें अनित्य-बुद्धिके द्वारा स्नेहका तथा योग-साधनासे क्षुधाका निवारण करे। पूर्ण संतोषसे तृप्तिको, उत्थान (उत्थम)-से आलस्यको, निश्चयसे तर्क-विलम्बको, मीनत्वलम्बनसे बहुत बोलनेकी प्रवृत्तिको, शूरत्वसे भयको, बुद्धिसे मन और बाणीको तथा अनन्ददृष्टिसे बुद्धिको जीते ज्ञानाविष्ट हो पवित्र कर्मोंका अनुष्ठान करते हुए

इस कामको समझे। जिसके पाप धुल गये हैं, ऐसे तेजस्वी, मिताहारी तथा जितेन्द्रिय पुरुष काम और क्रोधको अपने वशमें करके ज्ञानमें प्रवेश करता है। अविवेक और आसक्तिकर अभिरुचि, दोनोका त्याग, अविनयसे दूर रहना, चित्तमें उद्वेग न आने देना, विद्यरत्न धारण किये रहना तथा मन, बाणी और सरोरको संयममें रखना—यह सब मोक्षका प्रसादपूर्ण निर्मल एवं पवित्र मार्ग है।

योग और सांख्यका संक्षिप्त वर्णन

यज्ञसूक्ती कहते हैं—जिस प्रकार दुर्कस यमुष्म पानीके वेगमें बह जाता है, उसी प्रकार निर्बल योगी विषयोंसे विचलित हो जाता है। किन्तु उसी यज्ञसूक्ती प्रवाहको जैसे हाथी रोक देता है, वैसे योगका महान् बल पाकर योगी भी समस्त विषयोंको रोक लेता है, उनके द्वारा विचलित नहीं होता। योगसत्किसम्पन्न पुरुष स्वतन्त्रतापूर्वक समस्त प्रजापतियों, धनुओं तथा महाभूतोंमें प्रवेश कर जाता है। अर्पित तेजस्वी योगीके ऊपर क्रोधमें भरे हुए यमराज, काम और भयंकर पराक्रम दिखानेवाली मृत्युका भी जोर नहीं चलता। वह योगबल पाकर अपने हजारों रूप बना सकता और उन सबके द्वारा इस पृथ्वीपर विचर सकता है। फिर तेजको समेट लेनेवाले सूर्यकी भाँति वह उन सभी रूपोंको अपनेमें लीन करके उग्र तपस्यामें प्रवृत्त हो जाता है। कस्तूरान् योगी बन्धन लेढ़नेमें समर्थ होता है उसमें अपनेको मुक्त करनेकी पूर्ण शक्ति होती है।

द्विजवरो, ये मैंने योगको स्थूल शक्तियों बताया है। अब दृष्टान्तके लिये योगसे प्राप्त होनेवाली कुछ सूक्ष्म शक्तियोंका वर्णन करूँगा तथा आत्म समाधिके लिये जो चित्तकी धारणा की जाती है, उसके विषयमें भी कुछ सूक्ष्म दृष्टान्त बतलाऊँगा। जिस प्रकार सदा सावधान

रहनेवाला धनुर्धर वीर विसर्गको एकाग्र करके प्रहार करनेपर शस्त्रको बेश देता है, उसी प्रकार जो योगी मनको परमात्माके ध्यानमें लगा देता है, वह निःसंदेह मोक्ष प्राप्त कर लेता है। जैसे सावधान यज्ञह समुद्रमें पड़ी हुई नावको शीघ्र ही किनारे लगा देता है, उसी प्रकार योगके अनुसार तत्त्वकी जानेवाला पुरुष समाधिके द्वारा मनको परमात्मामें लगाकर देहका त्याग करनेके अनन्तर दुर्गम स्थान (परम धाम)-को प्राप्त होता है। जिस प्रकार सावधान सारथि अच्छे घोड़ोंको रथमें जोतकर धनुर्धर श्रेष्ठ वीरको तुरंत अभीष्ट स्थानपर पहुँचा देता है, वैसे ही धारणाओंमें चित्तको एकाग्र करनेवाला योगी शस्त्रकी ओर हट्टे हुए बाणकी भाँति शीघ्र परम पदको प्राप्त कर लेता है। जो समाधिके द्वारा अपने आत्माको परमात्मामें लगाकर स्थिर भावसे बैठ रहता है, उसे अजर (बुढ़ापेसे रहित) पदकी प्राप्ति होती है। योगके महान् व्रतमें एकप्रचित्त रहनेवाला जो योगी नाभि, कण्ठ, पाशंभाग, हृदय, वक्षःस्थल, नाक, कान, नेत्र और मस्तक आदि स्थानोंमें धारणाके द्वारा आत्माको परमात्मके साथ युक्त करता है, वह पर्वतके समान महान् सुभासुध कर्मोंको भी शीघ्र ही भस्म कर डालता है और इच्छा करते ही उत्तम योगका

आश्रय ले मुक्त हो जाता है।

निर्मल अन्तःकरणवाले यदि परमात्मन को प्राप्त करके तद्रूप हो जाते हैं। उन्हें अमृतत्व मिल जाता है, फिर वे संसारमें नहीं लौटते। ब्राह्मणों। यही परम गति है। जो सब प्रकारके दुन्दुभोंसे रहित, सत्यवादी, सरल तथा सम्पूर्ण प्राप्तिपर दया करनेवाले हैं, उन महात्माओंको ही ऐसी गति प्राप्त होती है।

मुनि बोले—साधुशिरोमणि! दृढ़त्वपूर्वक तत्त्वका पालन करनेवाले यदि उत्तम स्थानस्वरूप भगवान् को प्राप्त होकर क्या निरन्तर उन्हींमें रमण करते रहते हैं? अथवा ऐसी बात नहीं है? यहाँ जो तथ्य हो, उसका यथावत् वर्णन कीजिये। आपके सिवा दूसरे किसीसे हम ऐसी प्रश्न नहीं कर सकते।

ब्रह्मजीने कहा—मुनिवरो! आपने जो प्रश्न किया है, वह उचित ही है। यह विषय बहुत ही कठिन है। इसमें विद्वानोंको भी मोड़ हो जाता है। यहाँ भी जो परम तत्त्वकी बात है, उसे बातसादा हूँ, सुनो। इस विषयमें कपिस्त्रिके सांख्यमतका अनुसरण करनेवाले महात्माओंका विचार उत्तम माना गया है। देहधारियोंकी इन्द्रियाँ भी अपने सूक्ष्म शरीरको जानती हैं, क्योंकि वे आत्माके करण हैं और अत्मा भी उनके द्वारा सब कुछ देखता है। आत्मासे सम्बन्ध न रहनेपर वे काष्ठ और दीवारकी भाँति जड़प्राप्त हैं तथा महासागरमें उसके तटकी भूमिकी भाँति नष्ट हो जाती हैं। विप्रवरो! जब इन्द्रियोंके साथ देहधारी जीव सो जाता है, तब उसका सूक्ष्म शरीर आकाशमें धातुकी भाँति सर्वत्र विचरता रहता है। वह चक्षुष्य वस्तुओंको देखता, स्पर्श करता, श्रुता और गन्तव्यकी ही भाँति उन सबका अनुभव करता है। सम्पूर्ण इन्द्रियों स्वयं असम्भवं होनेके कारण विषयोंके द्वारा मारे हुए सपनोंकी भाँति अपने-अपने गोलकोंमें

किलोम रहती हैं। उनकी सूक्ष्म गतिका आश्रय लेकर निश्चय ही आत्मा सर्वत्र विचरता है। सत्य, रज, तम, बुद्धि, मन, आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी—इन सबके गुणोंको व्याप्त करके क्षेत्रज्ञ अत्मा सम्पूर्ण क्षेत्रोंमें विचरण करता है, जैसे शिष्य महत्त्वा गुरुका अनुसरण करते हैं, उसी प्रकार इन्द्रियाँ क्षेत्रज्ञ आत्माका अनुसरण करती हैं। सांख्ययोगी प्रकृतिकर भी अतिक्रमण करके शुद्ध, सूक्ष्म, परात्पर, निर्विकार, समस्त तत्त्वोंसे रहित, अनामय, निर्गुण तथा आनन्दमय परमात्मा श्रीनारायणको प्राप्त होते हैं। विप्रवरो! इस ज्ञानके सम्बन्ध दूसरा कोई ज्ञान नहीं है। इसके विषयमें तुमको संदेह नहीं करना चाहिये। सांख्यज्ञान सबसे उत्कृष्ट माना गया है। इसमें अक्षर, ध्रुव एवं पूर्ण सनातन ब्रह्मका ही प्रतिपादन हुआ है। वह ब्रह्म आदि, मध्य और अन्तसे रहित, दुन्दुभोंसे अतीत, सन्तत, कूटस्थ और नित्य है—ऐसा तत्त्वपरायण विद्वान् पुरुषोंका कथन है। इसीसे ब्रह्मकी उत्पत्ति और प्रलय आदिरूप सम्पूर्ण विकर होते हैं। गूढ़ तत्त्वोंकी व्याख्या करनेवाले महर्षिर्षोने शास्त्रोंमें ऐसा ही वर्णन किया है। सम्पूर्ण ब्राह्मण, देवता, वेद तथा सामवेत्त पुरुष उन्हीं अनन्त, अच्युत, ब्राह्मणभक्त तथा परमदेव परमेश्वरकी प्रार्थना करते और उनके गुणोंका चिन्तन करते रहते हैं।

ब्राह्मणों! महात्मा पुरुषोंमें, वेदोंमें, सांख्य और योगमें तथा पुराणोंमें जो उत्तम ज्ञान देखा गया है, वह सब सांख्यसे ही आया हुआ है। बड़े-बड़े इतिहासोंमें, यथार्थ तत्त्वका वर्णन करनेवाले शास्त्रोंमें तथा इस लोकमें जो कुछ भी ज्ञान श्रेष्ठ पुरुषोंके देखनेमें आया है, वह सब सांख्यसे ही प्राप्त हुआ है। पूर्ण दृष्टि, उत्तम बल, ज्ञान, मोक्ष तथा सूक्ष्म तप आदि जितने भी विषय बताये गये हैं, उन सबका सांख्यशास्त्रमें यथावत् वर्णन किया गया है। सांख्यज्ञानी सदा

सुखपूर्वक कल्याणमय ब्रह्मको प्राप्त होते हैं। उस ज्ञानको धारण करके भी मनुष्य कृतार्थ हो जाते हैं। सांख्यिकी ज्ञान अत्यन्त विशाल और परम प्राचीन है। यह महासागरके समान अग्राध, निर्मल और उदर भरीसे पूर्ण है। इस अप्रमेय ज्ञानको

भगवान् नारदण ही पूर्णरूपसे धारण करते हैं। मुनिवरो! यह मैं तुमसे परम तत्त्वका वर्णन किया। यह सम्पूर्ण पुण्यजन विश्व भगवान् नारदणसे ही प्रकट हुआ है। वे ही सृष्टिके समय संसारकी सृष्टि और संहारकालमें उसका संहार करते हैं।



क्षर-अक्षर-तत्त्वके विषयमें राजा करालजनक और वसिष्ठका संवाद

मुनियोंने पूछा—महामुने! वह अक्षर-तत्त्व क्या है, जिसको प्राप्त कर सेनेपर जीव पुनः इस संसारमें नहीं आता? तथा क्षर पदार्थ क्या है, जिसको जाननेपर भी आवस्यमान बन रहता है? क्षर और अक्षरके स्वरूपको स्पष्टरूपसे जाननेके लिये हम आपसे यह प्रश्न करते हैं।

व्यासजीने कहा—मुनिवरो! इस विषयमें राजा करालजनक और वसिष्ठके संवादरूप एक प्राचीन इतिहासका वर्णन करता हूँ। एक समयकी बात है, सूर्यके समान तेजस्वी मुनिवर वसिष्ठ अपने आश्रमपर विराजमान थे। वे परमात्मतत्त्वके प्रतिपदनमें कुरात थे। उन्हें अध्यात्मतत्त्वका निष्ठायात्मक ज्ञान था। उस समय राजा करालजनकने उस आश्रमपर पहुँचकर वसिष्ठजीको हाथ जोड़कर प्रणाम किया और विनययुक्त मधुरवाणीमें कहा—‘भगवन्! जहाँसे ज्ञानी पुरुषोंको पुनः इस संसारमें नहीं आना पड़ता, उस सनातन ब्रह्मके स्वरूपका मैं वर्णन सुनना चाहता हूँ। इसके सिवा जो क्षर कहा गया है, उसका तथा जिसमें इस जगत्का लय होता है, उस अनामय, कल्याणमय, अक्षरतत्त्वका भी ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूँ, अतः आप इस विषयका उपदेश करें।’

वसिष्ठजीने कहा—राजन्! सुनो! जिस प्रकार इस जगत्का क्षरण (लय) होता है, उसकी तथा जिसमें इसका लय होता है, उस अक्षरको भी बतलाता हूँ। देवताओंके बारह हजार वर्षोंका एक

चतुर्गुण होता है। एक हजार चतुर्गुणको ब्रह्मका एक दिन कहते हैं। इसीको कल्प समझो। दिनके ही चरमर ब्रह्मजीकी रात्रि भी होती है, जिसके अन्तमें वे सोकर डूठते हैं और इस विशाल विश्वकी सृष्टि करते हैं। वे यद्यपि निराकार हैं तो भी साक्षर जगत्को रचना करते हैं। उनमें अजिमा, लघिमा तथा प्राप्ति आदि शक्तियोंका स्वाभाविक निवास है। वे अधिनाशी ज्योतिर्मय परमेश्वर हैं। उनके सब ओर हाव-पैर हैं, सब ओर नेत्र, मस्तक और मुख हैं तथा सब ओर कान हैं। वे संसारमें सबको ज्ञात करके स्थित हैं। वे ही भगवान् हिरण्यगर्भ हैं। वे ही योगशास्त्रमें महान् और विरम्बि आदि नायोंसे प्रसिद्ध हैं तथा सांख्यशास्त्रमें भी उनका अनेकों नामोंसे वर्णन आता है। उनके नाना प्रकारके अनेक अद्भुत रूप हैं। वे विश्वके आत्म और एकाक्षर कहे गये हैं। उन्होंने सम्पूर्ण त्रिलोकीको स्वयं ही धारण कर रखा है तथा वे बहुत-से रूप धारण करनेके कारण विश्वरूप नामसे प्रसिद्ध हैं। वे महातेजस्वी भगवान् अपने शक्तिसे महत्त्वकी सृष्टि करके फिर अहंकार और उसके अभिमानों देवता प्रजापतियोंको उत्पन्न करते हैं। राजस, तामस और सत्त्विक भेदसे तीन प्रकारके अहंकारोंसे आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी—ये पाँच महाभूत तथा सन्ध, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये पाँच विषय तथा कान्, त्वच्, नेत्र, जिह्वा और नासिका—ये

पाँच इन्द्रेन्द्रियाँ तथा वाणी, हाथ, पैर, गुदा और लिङ्ग—ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। मनके सहित इन सबका प्रादुर्भाव हुआ है। ये चौबीस तत्त्व सम्पूर्ण शरीरोंमें मौजूद रहते हैं। इनके स्वरूपको भलीभाँति जानकर तत्त्वदर्शी ब्राह्मण कभी शोक नहीं करते।

नरश्रेष्ठ! यह त्रिलोकी उन्हीं तत्त्वोंसे बनी है। देवता, मनुष्य, यक्ष, भूत, गन्धर्व, किन्नर, महानका, चारण, पिशाच, देवर्षि, निराधार, दंस, कीट, मशक, दुर्गन्धित कीड़े, घूँहे, कुत्ते, घाण्डास, हिरन, पुष्कर, हाथी, घोड़े, गधे, व्याध, भेड़िये तथा गी आदि जितने भी मूर्तिमान् पदार्थ हैं, उन सबमें इन्हीं तत्त्वोंका दर्शन होता है। पृथ्वी, जल और आकाशमें ही प्राणियोंका निवास है, अन्यत्र नहीं। यह सम्पूर्ण जगत् व्यक्त कहलाता है। प्रतिदिन इसका क्षरण (क्षय) होता है, इसलिये इसको क्षर कहते हैं। इससे भिन्न तत्त्व अक्षर कहा गया है। सम्पूर्ण भूतोंके आत्म परमेश्वरके ही अक्षर कहते हैं। इस प्रकार इस अव्यक्त अक्षरसे उत्पन्न यह व्यक्त जगत्वाला भोक्तृत्मक जगत् सदा क्षयशील होनेके कारण "क्षर" नाम धारण करता है। क्षरतत्त्वोंमें सबसे पहले यह तत्त्वकी सृष्टि हुई है। यही क्षरका निरूपण है। महाराज! मुझरे प्रश्नके अनुसार मैंने क्षर-अक्षरका वर्णन किया। अक्षरतत्त्व पच्चीसवाँ तत्त्व है। वह स्थिर एवं निराकार है। उसको प्राप्त कर लेनेपर इस संसारमें लौटना नहीं होता जो अव्यक्ततत्त्व इस व्यक्त जगत्की सृष्टि करता है, वह प्रत्येक शरीरमें साक्षीरूपसे निवास करता है। चौबीस तत्त्वोंका समुदाय तो व्यक्त है, किंतु उनका सबको पच्चीसवाँ तत्त्व परमात्मा निराकार होनेके कारण अव्यक्त है। यही सम्पूर्ण देहधारिकोंके हृदयमें निवास करता

है। वह चेतनरूपसे सबको चेतना प्रदान करता है। वह स्वयं अमूर्त होते हुए भी सर्वमूर्तिस्वरूप है। सृष्टि और प्रलयरूप धर्मसे वह सृष्टिस्वरूप भी है और प्रलयस्वरूप भी। वही विश्वरूपमें सबको प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होता है। वह निर्गुण होते हुए भी गुणस्वरूप है। वह परमात्मा करोंड़ों सृष्टि और प्रलय करता रहता है, तथापि उसे अपने कर्तृत्वका अभिमान नहीं होता।

अज्ञानी पुरुष तमोगुण, सत्त्वगुण और रजोगुणसे मुक्त होकर तदनुकूल योनियोंमें जन्म लेता है। वह जन्म न होने, अज्ञानी पुरुषोंका सेवन करने तथा उनके सम्पर्कमें रहनेसे ऐस्त अभिमान करने लगता है कि 'मैं कस्तक हूँ, यह हूँ, वह हूँ और वह नहीं हूँ' इत्यादि। इस अभिमानके कारण वह प्राकृत गुणोंका ही अनुसरण करता है। तमोगुणके सेवनसे वह नाग प्रकारके तापमिक भावोंको प्राप्त होता है। रजोगुणके सेवनसे रजसिक और सत्त्वगुणके आश्रयसे वह सन्निक रूप ग्रहण करता है। काले, लाल और श्वेत—ये जो तीन प्रकारके रूप हैं, उन सबको प्राकृत ही जानो। तमोगुणी पुरुष नरकमें पड़ते हैं, रजोगुणी मनुष्यलोकमें आते हैं और सत्त्वगुणका आश्रय लेनेवाले जीव सुखके चागी होकर देवलोकमें जाते हैं। केवल पापसे (पापकी प्रधानतासे) पशु-पक्षियोंकी योनियोंमें जाना पड़ता है। पुण्य और पाप दोनोंका मेल होनेसे मनुष्यलोककी प्राप्ति होती है तथा केवल पुण्यसे (पुण्यकी प्रधानतासे) जीव देवताका स्वरूप प्राप्त करता है। अव्यक्त परमात्मामें जो स्थिति होती है, उसीको मनीषी पुरुष भोक्ष कहते हैं। वे परमात्मा ही पच्चीसवाँ तत्त्व हैं। जिनसे ही उनकी प्राप्ति होती है।

क्षर-अक्षर तथा योग और सांख्यका वर्णन

जगन्मोक्ष कहता—मुनिश्रेष्ठ! क्षर और अक्षर (प्रकृति और पुरुष) दोनोंका सम्बन्ध तो पत्नी और पतिके सम्बन्धकी भाँति स्थिर जगन् पड़ता है। जैसे पुरुषके बिना स्त्री तथा स्त्रीके बिना पुरुष संतान नहीं उत्पन्न कर सकते, उसी प्रकार प्रकृति और पुरुष भी सदा एक-दूसरेसे संयुक्त होकर ही सृष्टि करते हैं। ऐसी दशामें पुरुषका मोक्ष अस्मभव जान पड़ता है। यदि मोक्षके निकट पहुँचनेवाला (उसके स्वरूपका स्पष्ट बोध करनेवाला) कोई दुष्टान्त हो तो बलवद्दे, क्योंकि आपको सब कुछ प्रत्यक्ष है। हमारे मनमें भी मोक्षकी अभिलाषा है। हम भी उस पदको प्राप्त करना चाहते हैं, जो अकर्म्य, अज्येष्ठ, बुढ़ापेसे रहित, निर्व्य, इन्द्रियाधीन एवं परम स्वतन्त्र है।

वासिष्ठजी बोले—जगन्! तुम्हारा कहना ठीक है, तुमने वेद और शास्त्रोंका दृष्टान्त देकर अपना प्रश्न उपस्थित किया है तथापि अभी ग्रन्थका वार्थ तत्त्व तुम्हारे समक्षमें नहीं आया है। जो वेद और शास्त्रोंके ग्रन्थोंको रट सेता है किन्तु उसके तत्त्वको नहीं समझता, उसका वह रटन व्यर्थ है। जो यह किन्हे हुए ग्रन्थका अर्थ नहीं जानता, वह तो केवल उसका जोड़ होता है। उसके तत्त्वका वार्थ बोध होनेसे ही वह उसके अर्थको ग्रहण कर सकता है। जिसको बुद्धि स्थूल और मन्द है, अतएव जो ग्रन्थके तत्त्वको ठीक-ठीक जाननेके लिये उत्सुक नहीं है, वह उस ग्रन्थके विषयका निर्णय कैसे कर सकता है। जो मनुष्य ग्रन्थके तत्त्वको जाने बिना ही लोभ अथवा हम्भवशः, उसपर विवाद करता है, वह पापी नरकमें पड़ता है। इसलिये महाशय। सांख्य और योगके ज्ञाता महात्मा पुरुषोंके मतमें मोक्षका जिस स्वरूप देखा जाता है, उसे मैं वार्थरूपसे बताता हूँ, सुनो। योगी जिस तत्त्वका साक्षात्कार

करते हैं, सांख्यके विद्वान् भी उसीका ज्ञान प्राप्त करते हैं। जो सांख्य और योगको एक समझता है, वही बुद्धिमान् है। जैसे बीजसे बीजकी उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार द्रव्यसे द्रव्य, इन्द्रियसे इन्द्रिय और देहसे देहकी प्राप्ति होती है। परंतु परमात्मा तो इन्द्रिय, बीज, द्रव्य और देहसे रहित तथा निर्गुण है, अतः उसमें गुण कैसे हो सकते हैं। जैसे आकाश आदि गुण सत्त्वादि गुणोंसे उत्पन्न होते और उन्हींमें लीन हो जाते हैं, उसी प्रकार सत्त्वादि गुण भी प्रकृतिसे उत्पन्न होकर उसीमें लीन होते हैं। आत्मा तो जन्म-मृत्युसे रहित, अनन्त, सबका द्रष्टा एवं अद्वितीय है। वह सत्त्वादि गुणोंमें केवल आत्मविभ्रान्त करनेके कारण ही गुणस्वरूप कहलाता है। गुण तो गुणवान्में ही रहते हैं, निर्गुण आत्मामें गुण कैसे रह सकते हैं। अतः गुणोंके स्वरूपको जाननेवाले विद्वान् पुरुष ऐसा मानते हैं कि जब जीवात्मा इन प्राकृत गुणोंमें अपनेपनका अभिमान करता है, उस समय वह गुणवान्-सा ही होकर भिन्न-भिन्न गुणोंको देखता है। किन्तु जब उस अभिमानको छोड़ देता है, उस समय देहादिमें आत्मबुद्धिका परिष्कार करके अपने विशुद्ध परमात्मस्वरूपका साक्षात्कार करता है। उस परमात्मको बुद्धि आदिसे परे संख्य-योगस्वरूप बताया गया है। वह सत्त्वादि गुणोंसे रहित, अमय, ईश्वर (नियामक), निर्गुण, निर्व्य तथा प्रकृति और उसके गुणोंका अधिपति पचीसवाँ तत्त्व है। यह सांख्य और योगमें कुशल एवं परम तत्त्वकी खोज करनेवाले विद्वानोंका कथन है। इस प्रकार परस्पर सम्बन्ध रखनेवाले क्षर-अक्षर (प्रकृति-पुरुष)-का स्वरूप बताया गया। सदा एक रूपमें रहनेवाला परमात्मा अक्षर है और नाना रूपोंमें प्रतीत होनेवाला प्राकृत जगन् क्षर कहलाता है। सारांश यह कि एकत्त्व ही अक्षर है और

नानात्वको ही श्वर कहते हैं। जब जीवात्मक पच्चीसवें तत्त्व परमात्मामें स्थित हो जाता है, उस समय उसकी सम्यक् स्थिति बतायी जाती है। एकत्व और नानात्व दोनों रूपोंमें उस परमात्माका ही दर्शन होता है। तत्त्ववेत्ता पुरुष एकत्व और नानात्व दोनोंके पार्थक्यको भलीभाँति जानता है। मनीषी पुरुष तत्त्वोंकी संख्या पच्चीस बतलाते हैं, परंतु उनमें पच्चीसवाँ तत्त्व परमकृत् है, जो तत्त्वोंसे विलक्षण है।

राजन्। योगीका प्रधान कर्तव्य है ध्यान; ध्यान ही योगियोंका सबसे बड़ा कर्म है। योगविद्याके ज्ञाता विद्वान् पुरुष मनकी एकग्रता और प्रवृत्तयों—ये ध्यानके दो भेद बतलाते हैं। योगीको सब प्रकारकी आसक्तियोंका त्याग करके पिताहारी और जितेन्द्रिय होना चाहिये। वह रात्रिके पहले और पिछले भागमें मनको परमात्मामें लगाकर अन्तःकरणमें ठनका ध्यान करे। मिथिलेश्वर। सम्पूर्ण इन्द्रियोंको मनके द्वारा स्थिर करके मनको भी बुद्धिमें स्थापित कर दे और पत्थरकी भाँति अविचल हो जाय, तभी उसे योगयुक्त कहते हैं। जिस समय उसे सुनने, सूँघने, स्वाद लेने, देखने और स्पर्श करनेका भी भान नहीं रहता, जब मनमें किसी प्रकारका संकल्प नहीं उठता तथा वह काठकी भाँति स्थिर होकर किसी भी वस्तुका अभिमान या सुख-बुख नहीं रखता, उस समय मनीषी पुरुष उसे अपने स्वरूपको प्राप्त 'योगयुक्त' कहते हैं। ध्याननिष्ठ योगीको अपने हृदयमें धूमरहित अग्नि, किरणमालाओंसे मण्डित सूर्य तथा विद्युत्के प्रकाशकी भाँति तेजस्वी आत्माका सप्तात्कार होता है। धीरवान्, मनीषी, वेदवेत्ता और महत्त्वा ब्राह्मण हो उस अजन्मा एवं अमृतस्वरूप ब्रह्मका दर्शन कर पाते हैं। वह ब्रह्म अणुसे भी अणु और महान्से भी महान् कहा गया है। सर्वत्र सम्पूर्ण भूतोंमें स्थित होते हुए भी वह किसीको

दिखायी नहीं देता। वेदोंके पारगामी तत्त्वज्ञ विद्वानोंने उसे हमसे दूर—अज्ञानान्धकारसे धरे बतलाया है। वह निर्मल एवं लिङ्गरहित है। यही योगियोंका योग है। इसके सिवा योगका और क्या लक्षण हो सकता है। इस प्रकार स्वधन करनेवाला योगी सबके दृष्टा अजर-अमर परमात्माका दर्शन करता है। पहलिक मैंने तुम्हें योग-दर्शनका पार्थक्यबोध बतलाया।

अब सांख्यिक वर्णन करता हूँ, यह विचार प्रधान दर्शन है। राजन्। प्रकृतिवादी विद्वान् मूल प्रकृतिको अण्वक कहते हैं। उससे दूसरा तत्त्व प्रकट हुआ, जो 'महत्तत्त्व' कहलाता है। महत्तत्त्वसे अहंकार नामक तीसरे तत्त्वकी उत्पत्ति सुनी गयी है। सांख्य-दर्शनके ज्ञाता विद्वान् अहंकारसे सूक्ष्म भूतोंका—पञ्च-तन्मात्राओंका प्रादुर्भाव बतलाते हैं। इन भावोंको प्रकृति कहते हैं, इनसे सोलह तत्त्वोंकी उत्पत्ति होती है, जो 'विकृति' कहलाते हैं। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, ग्यारहवाँ मन तथा पाँच स्थूलभूत—ये ही सोलह विकार हैं। ये प्रकृति और विकृति मिलकर चौबीस तत्त्व होते हैं। सांख्यदर्शनमें तत्त्वोंकी इतनी ही संख्या मानी गयी है। सांख्यमार्गपर स्थित और सांख्यविधिके ज्ञाता मनीषी पुरुष ऐसा ही कहते हैं जो तत्त्व जिससे उत्पन्न होता है, उसका ठसीमें लय भी होता है। प्रकृति परमात्माके संनिधानसे अनुलोम-क्रमके अनुसार तत्त्वोंकी रचना करती है अर्थात् प्रकृतिसे महत्तत्त्व, महत्तत्त्वसे अहंकार तथा अहंकारसे सूक्ष्म भूत आदिके क्रमसे सृष्टि होती है, किंतु उसका संहार विलोमक्रमसे होता है। अर्थात् पृथ्वीका जलमें, जलका तेजमें और तेजका वायुमें लय होता है, इसी प्रकार सभी तत्त्व अपने अपने कारणमें लीन होते हैं। जैसे समुद्रसे उठी हुई लहरें फिर ठसीमें शान्त हो जाती हैं, उसी प्रकार सम्पूर्ण तत्त्व अनुलोमक्रमसे उत्पन्न होकर विलोमक्रमसे लीन होते हैं।

नृपश्रेष्ठ ! इस प्रकार प्रकृतिसे ही जगत्की उत्पत्ति और उसीमें उसका लय होता है। प्रलयकालमें तो वह एक रूपमें रहती है और सृष्टिके समय नाना रूप धारण करती है। ज्ञान-निपुण पुरुषोंको इसी प्रकार प्रकृतिके एकत्व और नानात्वका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये।

प्रकृतिका अधिष्ठाता जो अव्यक्त आत्मा है, उसके विषयमें भी वही बात है। वह भी प्रकृतिसे सम्बन्ध रखनेपर एकत्व और नानात्वको प्राप्त होता है। प्रलयकालमें तो वह भी एक ही रूपमें रहता है, किंतु सृष्टिके समय प्रकृतिको प्रेरित करनेके कारण उसकी ही अनेकतासे वह स्वयं भी अनेक-सा प्रतीत होता है। परम्परा ही प्रकृतिको प्रसवके लिये उन्मुख करके उसे अनेक रूपोंमें परिणत करता है। प्रकृति और उसके विकारोंको क्षेत्र कहते हैं। चौबीस तत्त्वोंसे भिन्न जो पच्चीसवाँ तत्त्व महान् आत्मा है, वही उस क्षेत्रमें अधिष्ठातारूपसे निवास करता है। वह क्षेत्रको जानता है, इसलिये क्षेत्रज्ञ कहलाता है। क्षेत्रज्ञ प्रकृतिजनित पुर (शरीर)-में लयन करता है, इसलिये उसे पुरुष कहते हैं। वास्तवमें क्षेत्र अन्य वस्तु है और क्षेत्रज्ञ अन्य। क्षेत्र अव्यक्त (प्रकृति) है और क्षेत्रज्ञ उसका ज्ञाता पच्चीसवाँ तत्त्व परमात्मा है। जब पुरुष अपनेको प्रकृतिसे भिन्न ज्ञान लेता है, उस समय वह अद्वितीय परमात्मारूपसे स्थित होता है। इस प्रकार मैंने तुम्हें सम्यग् दर्शन (सांख्य)-का यथार्थ वर्णन किया। जो इसे इस प्रकार जानते हैं, वे समस्वरूप ब्रह्मको प्राप्त होते हैं।

महाराज ! इस प्रकार मैंने तुमसे शुद्ध, स्नातन आदि ब्रह्मके यथार्थ तत्त्वका वर्णन किया है। तुम मात्सर्यका त्याग करके अपनी बुद्धिसे इस तत्त्वको ग्रहण करो। असत्यवादी, सठ, भपुंसक, कुटिल बुद्धिवाले, अपनेको पण्डित माननेवाले तथा दूसरोंको कष्ट पहुँचानेवाले मनुष्यको इसका

उपदेश नहीं देना चाहिये। शिष्यको बोध करानेके लिये ही इस तत्त्वका उपदेश करना उचित है। जो ब्रह्मालु, गुणवान्, परायी भिन्दासे दूर रहनेवाले, विरुद्ध योगी, विद्वान्, वेदोक्त कर्म करनेवाले, क्षमाशील तथा सबके हितैषी हों, वे ही इस ज्ञानके अधिकारी हैं। जितेन्द्रिय तथा संयमी पुरुषको इसका उपदेश अवश्य देना चाहिये। महाराज कराल ! तुमने मुझसे आज परब्रह्मका ज्ञान प्राप्त किया है। अब तुम्हारे मनमें तनिक भी भय नहीं होना चाहिये। नरेन्द्र ! तुमने मुझसे जैसा प्रश्न किया था, उसके अनुसार ही मैंने तुम्हें यह उपदेश दिया है; कोई दूसरी बात नहीं कही है। यह महान् ज्ञान मोक्षदेता पुरुषोंका परम आश्रय है। यह मुझे साक्षात् ब्रह्माजीसे प्राप्त हुआ है।

अक्सजी कहते हैं—मुनिवरो। पूर्वकालमें महर्षि वसिष्ठने जिस प्रकार पच्चीसवें तत्त्वका परब्रह्मके स्वरूपका वर्णन किया था, उसी प्रकार मैंने तुम्हें बताया है। वही वह ब्रह्म है, जिसे ज्ञान लेनेपर मनुष्य फिर इस संसारमें नहीं आता। यह ज्ञान हिरण्यगर्भ ब्रह्माजीसे महर्षि वसिष्ठको प्राप्त हुआ, वसिष्ठजीसे देवर्षि नारदको मिला और देवर्षि नारदसे मुझको प्राप्त हुआ। वही यह सनातन ज्ञान मैंने तुम सब लोगोंको बताया है; यह परम धर्म है, इसका श्रवण करके अब तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये। जिसने क्षर और अक्षरके भेदको जान लिया, उसे किसी प्रकारका भय नहीं है। जो उन्हें ठीक-ठीक नहीं जानता, उसीको भय है। मूर्ख मनुष्य इस तत्त्वको न जाननेके कारण बारम्बार उपद्रवग्रस्त हो मरता और मरनेके बाद पुनः हजारों बार जन्म-मृत्युके कष्ट भोगता है। वह देव, मनुष्य और पशु-पक्षी आदिको योनियोंमें भटकता रहता है। अज्ञानरूपी समुद्र अव्यक्त, अपाध और भयंकर है। इसमें प्रतिदिन कितने ही प्राणी

बूझते चले जा रहे हैं। तुमलोग यह उपदेश सुनकर इस अगाध भवसागरसे फर हो गये हो। अब तुममें रजोगुण और तमोगुणका भाव नहीं रह गया। तुम्हारी झुठ सत्त्वमें स्थिति हो गयी है। मुनिवरों! इस प्रकार मैंने सारसे भी सारभूत परमतत्त्वका वर्णन किया। यह परम मोक्षरूप

है। इसे ज्ञान लेनेपर मनुष्य फिर इस संसारमें लौटकर नहीं आता। जो नास्तिक हो, जिसके हृदयमें गुरु और भगवान्‌के प्रति भक्ति न हो, जिसकी बुद्धि छोटी और हृदय श्रद्धासे विमुख हो, ऐसे मनुष्यको कभी इसका उपदेश नहीं करना चाहिये।

श्रीब्रह्मपुराणकी महिमा तथा ग्रन्थका उपसंहार

लोमहर्षणजी कहते हैं—द्विजवर! इस प्रकार पूर्वकालमें महर्षि व्यासने सारभूत निर्दोष वचनोंद्वारा मधुरवाणीमें मुनियोंको यह पुराण सुनाया था। इसमें अनेक शास्त्रोंके झुठ एवं निर्मल सिद्धान्तोंका समावेश है। यह सहज झुठ है और अच्छे शब्दोंके प्रयोगसे सुरोभित होता है। इसमें यथास्थान पूर्वपक्ष और सिद्धान्तका प्रतिपादन किया गया है। इस पुराणको व्यायानुकूल रीतिसे सुनाकर परम बुद्धिमान् वेदव्यासजी मौन हो गये। वे श्रेष्ठ मुनि भी सम्पूर्ण मनोव्याम्बित फलोंको देनेवाले तथा वेदोंके तुल्य माननीय इस आदि ब्रह्मपुराणको सुनकर बहुत प्रसन्न और विस्मित हुए। उन्होंने मुनिवर श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासकी बारंबार प्रशंसा की।

मुनि बोले—मुनिश्रेष्ठ! आपने हमें वेदोंके तुल्य प्रामाणिक तथा सम्पूर्ण अभीष्ट फलोंको देनेवाला सर्वपापहारी श्रेष्ठ पुराण सुनाया है। यह कितने हर्षकी बात है। हमने भी इस विचित्र पदोंवाले पुराणका अक्षर-अक्षर सुना है। प्रभो! तीनों लोकोंमें ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जो आपको विदित न हो। महाभाग! आप देवताओंमें बृहस्पतिकी भाँति सर्वज्ञ हैं, महाप्राज्ञ और ब्रह्मनिष्ठ

हैं। महामते! हम आपको नमस्कार करते हैं। आपने महाभारतमें सम्पूर्ण वेदोंके अर्थ प्रकट किये हैं। महामुने! आपके सम्पूर्ण गुणोंका वर्णन करनेमें कौन समर्थ है। जिन्होंने इन्हें अङ्गोंसहित चारों वेदों तथा सम्पूर्ण व्याकरणोंको पढ़कर महाभारत शास्त्रकी रचना की, उन ज्ञानात्मा भगवान् वेदव्यासको नमस्कार है। प्रफुल्ल कमलदलके समान बड़े-बड़े नेत्रों तथा विशाल बुद्धिवाले व्यासजी! आपको नमस्कार है। आपने (अगतको प्रकाश देनेके लिये) महाभारतरूपी तेलसे भरे हुए ज्ञानरूपी दीपकको जलाया है।*

यों कहकर उन महर्षियोंने व्यासजीका पूजन किया। फिर व्यासजीने भी उन सबका सम्मान किया। तत्पश्चात् वे कृतार्थ होकर जैसे आये थे, उसी प्रकार अपने आश्रमको लौट गये।

मुनिवरों! आपने हमसे जिस प्रकार प्रश्न किया था, उसके अनुसार हमने भी सब पापोंका नाश करनेवाले परम पुण्यमय इस सनातन पुराणका वर्णन किया। श्रीव्यासजीकी कृपासे ही मैंने यह सब कुछ आपलोगोंको सुनाया है। गृहस्थ, संन्यासी और ब्रह्मचारी—सबको ही इस पुराणका श्रवण करना चाहिये। यह मनुष्योंको धन और सुख

* नमोऽस्तु ते व्यास विशालबुद्धे फुल्लरजिन्दायतपत्रनेत्र।

येन त्वया भारततैलपूर्णः प्रज्वालितो ज्ञानमयः श्रद्धाभिः॥

देनेवाला, परम पवित्र एवं पापोंको दूर करनेवाला है। परम कल्याणको अभिलाषा रखनेवाले ब्रह्मपरायण ब्राह्मण आदिको संवत् और प्रवत्नपूर्वक यह पुराण सुनना चाहिये। इसको सुननेसे ब्राह्मण विद्या, क्षत्रिय संग्राममें विजय, वैश्य अक्षय धन और शूद्र सुख पाता है। पुरुष पवित्र होकर जिस-जिस काम्य वस्तुका चिन्तन करते हुए इस पुराणका श्रवण करता है, उस-उसको निश्चय ही प्राप्त कर लेता है। यह ब्रह्मपुराण भगवान् विष्णुसे सम्बन्ध रखनेवाला है। इससे सब पापोंका नाश हो जाता है। यह सब ताम्रग्रोंसे विशिष्ट और समस्त पुरुषार्थोंका साधक है।

यह जो मैंने आपलोगोंको वेदतुल्य पुराणका श्रवण कराया है, इसको सुननेसे सब प्रकारके दोषोंसे प्राप्त होनेवाली पापराशिका नाश हो जाता है। व्रजा, पुष्कर, कुरुक्षेत्र तथा अर्बुदारण्य (आबू)-में ठपवास करनेसे जो फल मिलता है, वह इसके श्रवणमात्रसे मिल जाता है। एक वर्षतक अग्निमें हवन करनेसे पुरुषको जो महापुण्यमय फल प्राप्त होता है, वह इसे एक बार सुननेसे ही मिल जाता है। ज्येष्ठ मासके शुक्लपक्षकी द्वादशीको यमुनामें स्नान करके मथुरापुरीमें श्रीहरिके दर्शनसे मनुष्य जिस फलका भागी होता है, वह एकाग्रचित्त होकर इस ब्रह्मपुराणकी कथा कहनेसे ही प्राप्त हो जाता है। जो इसका पाठ अथवा श्रवण करता है, वह भी उसी फलको प्राप्त करता है। जो मनुष्य प्रतिदिन श्रद्धापूर्वक इस वेदसम्मित पुराणका पाठ या श्रवण करता है, वह भगवान् विष्णुके धाममें जाता है और जो ब्राह्मण मन और इन्द्रियोंको

संयममें रखकर पर्वोंके दिन तथा एकादशी और द्वादशी तिथिको ब्रह्मपुराण बाँचकर दूसरोंको सुनाता है, वह वैकुण्ठ धाममें जाता है।* यह पुराण मनुष्योंको यश, आयु, सुख, कीर्ति, बल, पुष्टि तथा धन देनेवाला और अशुभ स्वप्नोंका नाश करनेवाला है। जो प्रतिदिन तीनों संध्याओंके समय एकाग्रचित्त हो श्रद्धापूर्वक इस श्रेष्ठ उपनिषद्का पाठ करता है, वह सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंको प्राप्त कर लेता है। इसको पढ़ने और सुननेसे रोगातुर मनुष्य रोगसे, कैदमें पड़ा हुआ पुरुष वहाँके बन्धनसे, भयसे डरा हुआ मानव भयसे तथा आपत्तिग्रस्त पुरुष आपत्तिसे छूट जाता है। इतना ही नहीं; इसके पाठ और श्रवणसे पूर्वजन्मोंके स्मरणकी शक्ति, विद्या, पुत्र, धारणावती बुद्धि, परशु, धैर्य, धर्म, अर्थ, काम और मोक्षको भी मनुष्य प्राप्त कर लेता है। जिन-जिन कामनाओंकी धनमें लेकर मनुष्य संयतचित्तसे इस पुराणका पाठ करता है, उन सबकी उसे प्राप्ति हो जाती है—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।†

जो मनुष्य एकमात्र भगवान्की भक्तिमें जित लग्नकर पवित्र हो अभीष्ट घर देनेवाले लोकगुरु भगवान् विष्णुको प्रणाम करके स्वर्ग और मोक्ष प्रदान करनेवाले इस पुराणका निरन्तर श्रवण करता है, उसके सारे पाप छूट जाते हैं। वह इस लोकमें उत्तम सुख भोगकर स्वर्गमें भी दिव्य सुखका अनुभव करता है। तत्पश्चात् प्राकृत गुणोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके निर्मल पदको प्राप्त होता है। इसलिये एकमात्र मुक्तिमार्गकी इच्छा रखनेवाले स्वधर्मपरायण श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको,

* इदं हि श्रद्धया नित्यं पुराणं वेदसम्मितम् । यः पठेच्छुश्रूष्यन्मर्त्यः स याति भुवनं हरिः ॥
श्रावयेद्ब्राह्मणो यस्तु सदा पर्वसु संवत् । एकादश्यं द्वादश्यां च विष्णुलोकं स गच्छति ॥

(२४५। २७-२८)

† यान् यान् कामानभिप्रेत्य पठेत्प्रकामनासः । तांस्तान् सर्वानवाप्नोति पुरुषो ज्ञान संशयः ॥

(२४५। ३४)

मन और इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले कल्याणकामी उत्तम क्षत्रियोंको, विशुद्ध कुलमें उत्पन्न वैश्योंको तथा धर्मनिष्ठ शूद्रोंको भी प्रतिदिन इस पुराणका श्रवण करना चाहिये। यह बहुत ही उत्तम, अनेक फलोंसे युक्त तथा धर्म, अर्थ एवं मोक्ष प्रदान करनेवाला है। आप सब लोग श्रेष्ठ पुरुष हैं, अतः आपकी बुद्धि निरन्तर धर्ममें लगी रहे। एकमात्र धर्म ही परलोकमें गये हुए प्राणीके लिये बन्धुकी भाँति सहायक है। धन और स्त्री आदि भोगोंका चतुर-से-चतुर मनुष्य भी क्यों न सेवन करे, उनपर न तो कभी भरोसा किया जा सकता है और न वे सदा स्थिर ही रहते हैं। मनुष्य धर्मसे ही राज्य प्राप्त करता है, धर्मसे ही वह स्वर्गमें जाता है तथा धर्मसे ही मानव आयु,

कीर्ति, तपस्या एवं धर्मका उपार्जन करता है और धर्मसे ही उसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। इस लोकमें तथा परलोकमें भी धर्म ही मनुष्यके लिये माता-पिता और सखा है। इस लोकमें भी धर्म ही रक्षक है और वही मोक्षकी भी प्राप्ति करानेवाला है धर्मके सिवा कुछ भी काम नहीं आता। यह श्रेष्ठ पुराण परम गोपनीय तथा वेदके तुल्य प्रामाणिक है। छोटी बुद्धिवाले और विशेषतः नास्तिक पुरुषको इसका उपदेश नहीं देना चाहिये। यह श्रेष्ठ पुराण पापोंका नाश तथा धर्मकी बुद्धि करनेवाला है। साथ ही इसे अत्यन्त गोपनीय माना गया है। मुनियो! मैंने आपलोगोंके सामने इसका कथन किया और आपने भी इसे भलीभाँति सुन लिया। अब आज्ञा दीजिये, मैं जाता हूँ।*

श्रीब्रह्मपुराण सम्पूर्ण

ॐ तत्सद्ब्रह्मार्पणमस्तु

* धर्मेण राज्यं लभते मनुष्यः स्वर्गं च धर्मेण नरः प्रपद्यते । अयुश्च कीर्तिश्च तपश्च धर्मं धर्मेण मोक्षं लभते मनुष्यः ॥
धर्मोऽत्र मातापितरौ नरस्य धर्मः सखा चात्र परे च लोकम् । ज्ञानं च धर्मसिन्धुर्ह मोक्षदहं धर्मोदृते नास्ति तु किञ्चिदेव ॥
इदं रहस्यं श्रेष्ठं च पुराणं वेदसम्मितम् । न देवं दुष्टमथैव नास्तिकाय विशेषतः ॥
इदं मयोक्तं प्रवरं पुराणं पाषाणहं धर्मविवर्धनं च । कुर्वन् भवद्भिः परमं रहस्यमज्ञापयध्वं मुनयो ब्रजामि ॥